ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥

वर्ष ६६ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१७, जनवरी १९९२ ई० { संख्या १
पूर्ण संख्या ७८२

भगवान् नर-नारायणकी वन्दना

तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्वगुरवे परदेवतायै ।
नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥
यद्दर्शनं निगम आत्मरहःप्रकाशं मुह्यन्ति यत्र कवयोऽजपरा यतन्तः ।
तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं वन्दे महापुरुषमात्मनि गूढबोधम् ॥

(श्रीमद्भागवत १२ । ८ । ४७, ४९)

(महर्षि मार्कण्डेयजी कहते हैं—) भगवन् ! आप अन्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वस्वरूप, जगद्गुरु, परमाराध्य और शुद्धस्वरूप हैं। समस्त लौकिक और वैदिक वाणी आपके अधीन है। आप ही वेदमार्गके प्रवर्तक हैं। मैं आपके इस युगलस्वरूप नरोत्तम नर और ऋषिवर नारायणको नमस्कार करता हूँ। प्रभो ! वेदमें आपका साक्षात्कार करानेवाला वह ज्ञान पूर्णरूपसे विद्यमान है, जो आपके स्वरूपका रहस्य प्रकट करता है। ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े प्रतिभाशाली मनीषी उसे प्राप्त करनेका यत्न करते रहनेपर भी मोहमें पड़ जाते हैं। आप भी ऐसे लीलाविहारी हैं कि विभिन्न मतवाले आपके सम्बन्धमें जैसा सोचते-विचारते हैं, वैसा ही शील-स्वभाव और रूप ग्रहण करके आप उनके सामने प्रकट हो जाते हैं। वास्तवमें आप देह आदि समस्त उपाधियोंमें छिपे हुए विशुद्ध विज्ञानघन ही हैं। हे पुरुषोत्तम ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ।

वैदिक स्तवन

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड-चेतनस्वरूप जगत् है, यह समस्त ईश्वरसे व्याप्त है। उस ईश्वरको साथ रखते हुए त्यागपूर्वक (इसे) भोगते रहो। (इसमें) आसक्त मत होओ, (क्योंकि) धन—भोग्य-पदार्थ किसका है अर्थात् किसीका भी नहीं है।

शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

हमारे लिये (दिन और प्राणके अधिष्ठाता) मित्र देवता कल्याणप्रद हों (तथा) (रात्रि और अपानके अधिष्ठाता) वरुण (भी) कल्याणप्रद हों। (चक्षु और सूर्यमण्डलके अधिष्ठाता) अर्यमा हमारे लिये कल्याणकारी हों, (बल और भुजाओंके अधिष्ठाता) इन्द्र (तथा) (वाणी और बुद्धिके अधिष्ठाता) बृहस्पति (दोनों) हमारे लिये शान्ति प्रदान करनेवाले हों। त्रिविक्रमरूपसे विशाल डगोंवाले विष्णु (जो पैरोंके अधिष्ठाता हैं) हमारे लिये कल्याणकारी हों। (उपर्युक्त सभी देवताओंके आत्मस्वरूप) ब्रह्मके लिये नमस्कार है। हे वायुदेव! तुम्हारे लिये नमस्कार है, तुम ही प्रत्यक्ष (प्राणरूपसे प्रतीत होनेवाले) ब्रह्म हो। (इसलिये मैं) तुमको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा, (तुम ऋतके अधिष्ठाता हो, इसलिये मैं तुम्हें) ऋत नामसे पुकारूँगा, (तुम सत्यके अधिष्ठाता हो, अतः मैं तुम्हें) सत्य नामसे कहूँगा, वह (सर्वशक्तिमान् परमेश्वर) मेरी रक्षा करे, वह वक्ताकी अर्थात् आचार्यकी रक्षा करे, रक्षा करे मेरी (और) रक्षा करे मेरे आचार्यकी। भगवान् शान्तिस्वरूप हैं, शान्तिस्वरूप हैं, शान्तिस्वरूप हैं।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

जो तेजोमयी किरणोंके पुञ्ज हैं, मित्र, वरुण तथा अग्नि आदि देवताओं एवं समस्त विश्वके प्राणियोंके नेत्र हैं और स्थावर तथा जङ्गम सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं, वे भगवान् सूर्य आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्षलोकको अपने प्रकाशसे पूर्ण करते हुए आश्चर्यरूपसे उदित हो रहे हैं।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

मैं आदित्य-स्वरूपवाले सूर्यमण्डलस्थ महान् पुरुषको, जो अन्धकारसे सर्वथा परे, पूर्ण प्रकाश देनेवाले और परमात्मा हैं, उनको जानता हूँ। उन्हींको जानकर मनुष्य मृत्युको लाँघ जाता है। मनुष्यके लिये मोक्ष-प्राप्तिका दूसरा कोई अन्य मार्ग नहीं है।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव॥

समस्त संसारको उत्पन्न करनेवाले—सृष्टि-पालन-संहार करनेवाले किंवा विश्वमें सर्वाधिक देदीप्यमान एवं जगत्को शुभकर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाले हे परब्रह्मस्वरूप सविता देव! आप हमारे सम्पूर्ण—आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक—दुरितों (बुराइयों—पापों) को हमसे दूर—बहुत दूर ले जायँ, दूर करें, किंतु जो भद्र (भला) है, कल्याण है, श्रेय है, मङ्गल है, उसे हमारे लिये—विश्वके हम सभी प्राणियोंके लिये—चारों ओरसे (भलीभाँति) ले आयें, दें—**'यद् भद्रं तन्न आ सुव।'**

असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय॥

हे भगवन्! आप हमें असत्से सत्की ओर, तमसे ज्योतिकी ओर तथा मृत्युसे अमरताकी ओर ले चलें।

पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्

(आदित्यहृदयसारामृत)

यन्मण्डलं दीप्तिकरं विशालं रत्नप्रभं तीव्रमनादिरूपम्। दारिद्र्यदुःखक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥
यन्मण्डलं देवगणैः सुपूजितं विप्रैः स्तुतं मानवमुक्तिकोविदम्। तं देवदेवं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥
यन्मण्डलं ज्ञानघनं त्वगम्यं त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्मरूपम्। समस्ततेजोमयदिव्यरूपं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥
यन्मण्डलं गूढमतिप्रबोधं धर्मस्य वृद्धिं कुरुते जनानाम्। यत्सर्वपापक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥
यन्मण्डलं व्याधिविनाशदक्षं यदृग्यजुःसामसु सम्प्रगीतम्। प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥
यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति गायन्ति यच्चारणसिद्धसंघाः। यद्योगिनो योगजुषां च संघाः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥
यन्मण्डलं सर्वजनेषु पूजितं ज्योतिश्च कुर्यादिह मर्त्यलोके। यत्कालकालादिमनादिरूपं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥
यन्मण्डलं विष्णुचतुर्मुखाख्यं यदक्षरं पापहरं जनानाम्। यत्कालकल्पक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥
यन्मण्डलं विश्वसृजां प्रसिद्धमुत्पत्तिरक्षाप्रलयप्रगल्भम्। यस्मिञ्जगत् संहरतेऽखिलं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥
यन्मण्डलं सर्वजनस्य विष्णोरात्मा परं धाम विशुद्धतत्त्वम्। सूक्ष्मान्तरैर्योगिपथानुगम्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥
यन्मण्डलं वेदविदोपगीतं यद्योगिनां योगपथानुगम्यम्। तत्सर्ववेदं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥

जिन भगवान् सूर्यका प्रखर तेजोमय मण्डल विशाल, रत्नोंके समान प्रभासित, अनादिकाल-स्वरूप, समस्त लोकोंका दुःख-दारिद्र्य-संहारक है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यका वरेण्य मण्डल देवसमूहोंद्वारा अर्चित, विद्वान् ब्राह्मणोंद्वारा संस्तुत तथा मानवोंको मुक्ति देनेमें प्रवीण है, वह मुझे पवित्र करे, मैं उसे प्रणाम करता हूँ। जिन भगवान् सूर्यका मण्डल अखण्ड-अविच्छेद्य, ज्ञानस्वरूप, तीनों लोकोंद्वारा पूज्य, सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंसे युक्त, समस्त तेजों तथा प्रकाश-पुञ्जसे युक्त है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यका श्रेष्ठ मण्डल गूढ़ होनेके कारण अत्यन्त कठिनतासे ज्ञानगम्य है तथा भक्तोंके हृदयमें धार्मिक बुद्धि उत्पन्न करता है, जिससे समस्त पापोंका क्षय हो जाता है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यका मण्डल समस्त आधि-व्याधियोंका उन्मूलन करनेमें अत्यन्त कुशल है, जो ऋक्, यजुः तथा साम—इन तीनों वेदोंके द्वारा सदा संस्तुत है और जिसके द्वारा भूलोक, अन्तरिक्षलोक तथा स्वर्गलोक सदा प्रकाशित रहता है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यके श्रेष्ठ मण्डलको वेदवेत्ता विद्वान् ठीक-ठीक जानते तथा प्राप्त करते हैं, चारणगण तथा सिद्धोंका समूह जिसका गान करते हैं, योग-साधना करनेवाले योगिजन जिसे प्राप्त करते हैं, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यका मण्डल सभी प्राणियोंद्वारा पूजित है तथा जो इस मनुष्यलोकमें प्रकाशका विस्तार करता है और जो कालका भी काल एवं अनादिकाल-रूप है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यके मण्डलमें ब्रह्मा एवं विष्णुकी आख्या है, जिनके नामोच्चारणसे भक्तोंके पाप नष्ट हो जाते हैं, जो क्षण, कला, काष्ठा, संवत्सरसे लेकर कल्पपर्यन्त कालका कारण तथा सृष्टिके प्रलयका भी कारण है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यका मण्डल प्रजापतियोंकी भी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेमें सक्षम एवं प्रसिद्ध है और जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् संहृत होकर लीन हो जाता है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यका मण्डल सम्पूर्ण प्राणिवर्गका तथा विष्णुकी भी आत्मा है, जो सबसे ऊपर श्रेष्ठ लोक है, शुद्धातिशुद्ध सारभूततत्त्व है और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म साधनोंके द्वारा योगियोंके देवयानद्वारा प्राप्य है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यका मण्डल वेदवादियोंद्वारा सदा संस्तुत और योगियोंको योग-साधनासे प्राप्त होता है, मैं तीनों काल और तीनों लोकोंके समस्त तत्त्वोंके ज्ञाता उन भगवान् सूर्यको प्रणाम करता हूँ, वह मण्डल मुझे पवित्र करे।

पुराण-श्रवण-कालमें पालनीय धर्म

श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः। वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः॥
अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः। तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि॥
पुराणं ये च सम्पूज्य ताम्बूलाद्यैरुपायनैः। शृण्वन्ति च कथां भक्त्याऽदरिद्राः स्युर्न संशयः॥
कथायां कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः। भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः॥
सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम्। ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः॥
ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम्। श्वविष्ठां खादयन्त्येतान् नयन्ति यमकिंकराः॥
ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः। अक्षय्यनरकान् भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः॥
ये वै वरासनारूढा ये च मध्यासनस्थिताः। शृण्वन्ति सत्कथां ते वै भवन्त्यर्जुनपादपाः॥
असम्प्रणम्य शृण्वन्ति विषभक्षा भवन्ति ते। तथा शयानाः शृण्वन्ति भवन्त्यजगरा नराः॥

जो लोग श्रद्धा और भक्तिसे सम्पन्न, अन्य कार्योंकी लालसासे रहित, मौन, पवित्र और शान्तचित्तसे (पुराणकी कथाको) श्रवण करते हैं, वे ही पुण्यके भागी होते हैं। जो अधम मनुष्य भक्तिरहित होकर पुण्यकथाको सुनते हैं, उन्हें पुण्यफल तो मिलता नहीं, उलटे प्रत्येक जन्ममें दुःख भोगना पड़ता है। जो लोग ताम्बूल, पुष्प, चन्दन आदि पूजन-सामग्रियोंद्वारा पुराणकी भलीभाँति पूजा करके भक्तिपूर्वक कथा सुनते हैं, वे निःसंदेह दरिद्रतारहित अर्थात् धनवान् होते हैं। जो मनुष्य कथा होते समय अन्य कार्योंके लिये वहाँसे उठकर अन्यत्र चले जाते हैं, उनकी पत्नी और सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। जो पापी अधम मनुष्य मस्तकपर पगड़ी बाँधकर (या टोपी लगाकर) पवित्र कथा सुनते हैं, वे बगुला होकर उत्पन्न होते हैं। जो लोग पान चबाते हुए पवित्र कथा सुनते हैं, उन्हें कुत्तेका मल भक्षण करना पड़ता है और यमदूत उन्हें यमपुरीमें ले जाते हैं। जो ढोंगी मनुष्य (व्यासासनसे) ऊँचे आसनपर बैठकर कथा सुनते हैं, वे अक्षय नरकोंका भोग करके कौआ होते हैं। जो लोग (व्यासासनसे) श्रेष्ठ आसनपर अथवा मध्यम आसनपर बैठकर उत्तम कथा श्रवण करते हैं, वे अर्जुन नामक वृक्ष होते हैं। (जो मनुष्य पुराणकी पुस्तक और व्यासको) बिना प्रणाम किये ही कथा सुनते हैं, वे विषभक्षी होते हैं तथा जो लोग सोते हुए कथा सुनते हैं, वे अजगर साँप होते हैं।

यः शृणोति कथां वक्तुः समानासनसंस्थितः। गुरुतल्पसमं पापं सम्प्राप्य नरकं व्रजेत्॥
ये निन्दन्ति पुराणज्ञान् कथां वै पापहारिणीम्। ते वै जन्मशतं मर्त्याः सूकराः सम्भवन्ति हि॥
कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः। ते भुक्त्वा नरकान् घोरान् भवन्ति वनसूकराः॥
ये कथामनुमोदन्ते कीर्त्यमानां नरोत्तमाः। अशृण्वन्तोऽपि ते यान्ति शाश्वतं परमं पदम्॥
कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः। कोट्यब्दं नरकान् भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः॥
ये श्रावयन्ति मनुजान् पुण्यां पौराणिकीं कथाम्। कल्पकोटिशतं साग्रं तिष्ठन्ति ब्रह्मणः पदे॥
आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः। कम्बलाजिनवासांसि मञ्चं फलकमेव च॥
स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्। स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम्॥

इसी प्रकार जो वक्ताके समान आसनपर बैठकर कथा सुनता है, वह गुरु-शय्या-गमनके समान पापका भागी होकर नरकगामी होता है। जो मनुष्य पुराणोंके ज्ञाता (व्यास) और पापोंको हरण करनेवाली कथाकी निन्दा करते हैं, वे सौ जन्मोंतक सूकर-योनिमें उत्पन्न होते हैं। जो मनुष्य इस पुण्य कथाको कभी भी नहीं सुनते, वे घोर नरकोंका भोग करके वनैले सूअर होते हैं। जो नरश्रेष्ठ कही जाती हुई कथाका अनुमोदन करते हैं, वे कथा न सुननेपर भी अविनाशी परम पदको प्राप्त होते हैं। जो दुष्ट कही जाती हुई कथामें विघ्न पैदा करते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरकोंका भोग करके अन्तमें ग्रामीण सूअर होते हैं। जो लोग साधारण मनुष्योंको पुराणसम्बन्धी पुण्य कथा सुनाते हैं, वे सौ करोड़ कल्पोंसे भी अधिक समयतक ब्रह्मलोकमें निवास

करते हैं। जो मनुष्य पुराणके ज्ञाता वक्ताको आसनके लिये कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, सिंहासन और चौकी प्रदान करते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाकर अभीष्ट भोगोंका उपभोग करनेके बाद ब्रह्मा आदिके लोकोंमें निवास कर अन्तमें निरामय पदको प्राप्त होते हैं।

पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये वरासनमुत्तमम्। भोगिनो ज्ञानसम्पन्ना भवन्ति च भवे भवे ॥
ये महापातकैर्युक्ता उपपातकिनश्च ये। पुराणश्रवणादेव ते प्रयान्ति परं पदम् ॥
एवंविधविधानेन पुराणं शृणुयान्नरः। भुक्त्वा भोगान् यथाकामं विष्णुलोकं प्रयाति सः ॥
पुस्तकं पूजयेत् पश्चाद् वस्त्रालंकरणादिभिः। वाचकं विप्रसंयुक्तं पूजयीत प्रयत्नवान् ॥
गोभूमिहेमवस्त्राणि वाचकाय निवेदयेत्। ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात्पयःपललड्डुकपायसैः ॥
त्वं व्यासरूपी भगवन् बुद्ध्या चाङ्गिरसोपमः। पुण्यवाञ् शीलसम्पन्नः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥
प्रसन्नमानसं कुर्याद् दानमानोपचारतः। त्वत्प्रसादादिमान् धर्मान् सम्पूर्णाञ्छ्रुतवानहम् ॥
एवं प्रार्थनकं कृत्वा व्यासस्य परमात्मनः। यशस्वी च भवेन्नित्यं यः कुर्यादिममादरात् ॥
नारदोक्तानिमान् धर्मान् यः कुर्यान्नियतेन्द्रियः। कृत्स्नं फलमवाप्नोति पुराणश्रवणस्य वै ॥

इसी तरह जो लोग पुराणकी पुस्तकके लिये उत्तम श्रेष्ठ आसन प्रदान करते हैं, वे प्रत्येक जन्ममें भोगोंका उपभोग करनेवाले एवं ज्ञानी होते हैं। जो महापातकोंसे युक्त अथवा उपपातकी होते हैं, वे सभी पुराणकी कथा सुननेसे ही परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। जो मनुष्य इस प्रकारके नियम-विधानसे पुराणकी कथा सुनता है, वह स्वेच्छानुसार भोगोंको भोगकर विष्णुलोकको चला जाता है। कथाके समाप्त होनेपर श्रोता पुरुष प्रयत्नपूर्वक वस्त्र और अलंकार आदिद्वारा पुस्तककी पूजा करे। तत्पश्चात् सहायक ब्राह्मणसहित वाचककी पूजा करे। उस समय वाचकको गौ, पृथ्वी, सोना और वस्त्र देना चाहिये। तदुपरान्त ब्राह्मणोंको मलाई, लड्डू और खीरका भोजन कराना चाहिये। तदनन्तर परमात्मा व्याससे प्रार्थना करे—'आप व्यासरूपी भगवान् बुद्धिमें बृहस्पतिके समान, पुण्यवान्, शीलसम्पन्न, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हैं, आपकी कृपासे मैंने इन सम्पूर्ण धर्मोंको सुना है।' इस प्रकार प्रार्थना कर दान, मान और सेवासे उनके मनको प्रसन्न करना चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकार आदरपूर्वक करता है, वह सदा यशस्वी होता है। जो जितेन्द्रिय मनुष्य देवर्षि नारदद्वारा कहे गये इन धर्मोंका पालन करता है, वह पुराण-श्रवणका सम्पूर्ण फल पाता है।

पुराण-महिमा

यज्ञकर्मक्रियावेदः स्मृतिर्वेदो गृहाश्रमे ॥
स्मृतिर्वेदः क्रियावेदः पुराणेषु प्रतिष्ठितः। पुराणपुरुषाज्जातं यथेदं जगदद्भुतम् ॥
तथेदं वाङ्मयं जातं पुराणेभ्यो न संशयः।
न वेदे ग्रहसंचारो न शुद्धिः कालबोधिनी। तिथिवृद्धिक्षयो वापि पर्वग्रहविनिर्णयः ॥
इतिहासपुराणैस्तु निश्चयोऽयं कृतः पुरा। यन्न दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ ॥
उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते।

(नार० पु०, उ०, अ० २४)

यज्ञ एवं कर्मकाण्डके लिये वेद प्रमाण हैं। गृहस्थोंके लिये स्मृतियाँ ही प्रमाण हैं। किंतु वेद और स्मृतिशास्त्र (धर्मशास्त्र) दोनों ही सम्यक् रूपसे पुराणोंमें प्रतिष्ठित हैं। जैसे परम पुरुष परमात्मासे यह अद्भुत जगत् उत्पन्न हुआ है, वैसे ही सम्पूर्ण संसारका वाङ्मय—साहित्य पुराणोंसे ही उत्पन्न है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। वेदोंमें तिथि, नक्षत्र आदि काल-निर्णायक और ग्रह-संचारकी कोई युक्ति नहीं बतायी गयी है। तिथियोंकी वृद्धि, क्षय, पर्व, ग्रहण आदिका निर्णय भी उनमें नहीं है। यह निर्णय सर्वप्रथम इतिहास-पुराणोंके द्वारा ही निश्चित किया गया है। जो बातें वेदोंमें नहीं हैं, वे सब स्मृतियोंमें हैं और जो बातें इन दोनोंमें नहीं मिलतीं, वे पुराणोंके द्वारा ज्ञात होती हैं।

'भविष्यपुराण'—एक परिचय

भारतीय वाङ्मयमें पुराणोंका एक विशिष्ट स्थान है। इनमें वेदके निगूढ़ अर्थोंका स्पष्टीकरण तो है ही, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्डके सरलतम विस्तारके साथ-साथ कथावैचित्र्यके द्वारा साधारण जनताको भी गूढ़-से-गूढ़तम तत्त्वको हृदयङ्गम करा देनेकी अपनी अपूर्व विशेषता भी है। इस युगमें धर्मकी रक्षा और भक्तिके मनोरम विकासका जो यत्किंचित् दर्शन हो रहा है, उसका समस्त श्रेय पुराण-साहित्यको ही है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति और साधनाके क्षेत्रमें कर्म, ज्ञान और भक्तिका मूल स्रोत वेद या श्रुतिको ही माना गया है। वेद अपौरुषेय, नित्य और स्वयं भगवान्‌की शब्दमयी मूर्ति हैं। स्वरूपतः वे भगवान्‌के साथ अभिन्न हैं, परंतु अर्थकी दृष्टिसे वेद अत्यन्त दुरूह भी हैं। जिनका ग्रहण तपस्याके बिना नहीं किया जा सकता। व्यास, वाल्मीकि आदि ऋषि तपस्याद्वारा ईश्वरकृपासे ही वेदका प्रकृत अर्थ जान पाये थे। उन्होंने यह भी जाना था कि जगत्‌के कल्याणके लिये वेदके निगूढ़ अर्थका प्रचार करनेकी आवश्यकता है। इसलिये उन्होंने उसी अर्थको सरल भाषामें पुराण, रामायण और महाभारतके द्वारा प्रकट किया। इसीसे शास्त्रोंमें कहा है कि रामायण, महाभारत और पुराणोंकी सहायतासे वेदोंका अर्थ समझना चाहिये—'**इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।**' इसके साथ ही इतिहास-पुराणको वेदोंके समकक्ष पञ्चम वेदके रूपमें माना गया है। छान्दोग्योपनिषद्‌में नारदजीने सनत्कुमारजीसे कहा है—'**स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेद सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्०।**' 'मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा चौथे अथर्ववेद और पाँचवें वेद इतिहास-पुराणको जानता हूँ।' इस प्रकार पुराणोंकी अनादिता, प्रामाणिकता तथा मङ्गलमयताका सर्वत्र उल्लेख है और वह सर्वथा सिद्ध तथा यथार्थ है। भगवान् व्यासदेवने प्राचीनतम पुराणका प्रकाश और प्रचार किया है। वस्तुतः पुराण अनादि और नित्य हैं।

पुराणोंमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार तथा सकाम एवं निष्कामकर्मकी महिमाके साथ-साथ यज्ञ, व्रत, दान, तप, तीर्थसेवन, देवपूजन, श्राद्ध-तर्पण आदि शास्त्रविहित शुभ कर्मोंमें जनसाधारणको प्रवृत्त करनेके लिये उनके लौकिक एवं पारलौकिक फलोंका भी वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त पुराणोंमें अन्यान्य कई विषयोंका समावेश पाया जाता है। इसके साथ ही पुराणोंकी कथाओंमें असम्भव-सी दीखनेवाली कुछ बातें परस्पर विरोधी-सी भी दिखायी देती हैं, जिसे स्वल्प श्रद्धावाले पुरुष काल्पनिक मानने लगते हैं। परंतु यथार्थमें ऐसी बात नहीं है। यह सत्य है कि पुराणोंमें कहीं-कहीं न्यूनाधिकता हुई है एवं विदेशी तथा विधर्मियोंके आक्रमण-अत्याचारसे बहुतसे अंश आज उपलब्ध भी नहीं हैं। इसी तरह कुछ अंश प्रक्षिप्त भी हो सकते हैं। परंतु इससे पुराणोंकी मूल महत्ता तथा प्राचीनतामें कोई बाधा नहीं आती।

'भविष्यपुराण' अठारह महापुराणोंके अन्तर्गत एक महत्त्वपूर्ण सात्त्विक पुराण है, इसमें इतने महत्त्वके विषय भी हैं, जिन्हें पढ़-सुनकर चमत्कृत होना पड़ता है। यद्यपि श्लोक-संख्यामें न्यूनाधिकता प्रतीत होती है। भविष्यपुराणके अनुसार इसमें पचास हजार श्लोक होने चाहिये; जबकि वर्तमानमें अट्ठाईस सहस्र श्लोक ही इस पुराणमें उपलब्ध हैं। कुछ अन्य पुराणोंके अनुसार इसकी श्लोक-संख्या साढ़े चौदह सहस्र होनी चाहिये। इससे यह प्रतीत होता है कि जैसे विष्णुपुराणकी श्लोक-संख्या विष्णुधर्मोत्तरपुराणको सम्मिलित करनेसे पूर्ण होती है, वैसे ही भविष्यपुराणमें भविष्योत्तरपुराण सम्मिलित कर लिया गया है, जो वर्तमानमें भविष्यपुराणका उत्तरपर्व है। इस पर्वमें मुख्यरूपसे व्रत, दान एवं उत्सवोंका ही वर्णन है।

वस्तुतः भविष्यपुराण सौर-प्रधान ग्रन्थ है। इसके अधिष्ठातृदेव भगवान् सूर्य हैं, वैसे भी सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देवता हैं जो पञ्चदेवोंमें परिगणित हैं और अपने शास्त्रोंके अनुसार पूर्णब्रह्मके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। द्विजमात्रके लिये प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालकी संध्यामें सूर्यदेवको अर्घ्य प्रदान करना अनिवार्य है, इसके अतिरिक्त स्त्री तथा अन्य आश्रमोंके लिये भी नियमित सूर्यार्घ्य देनेकी विधि बतलायी गयी है। आधिभौतिक और आधिदैविक रोग-शोक, संताप आदि

सांसारिक दुःखोंकी निवृत्ति भी सूर्योपासनासे सद्यः होती है। प्रायः पुराणोंमें शैव और वैष्णवपुराण ही अधिक प्राप्त होते हैं, जिनमें शिव और विष्णुकी महिमाका विशेष वर्णन मिलता है, परंतु भगवान् सूर्यदेवकी महिमाका विस्तृत वर्णन इसी पुराणमें उपलब्ध है। यहाँ भगवान् सूर्यनारायणको जगत्स्रष्टा, जगत्पालक एवं जगत्संहारक पूर्णब्रह्म परमात्माके रूपमें प्रतिष्ठित किया गया है। सूर्यके महनीय स्वरूपके साथ-साथ उनके परिवार, उनकी अद्भुत कथाओं तथा उनकी उपासना-पद्धतिका वर्णन भी यहाँ उपलब्ध है। उनका प्रिय पुष्प क्या है, उनकी पूजाविधि क्या है, उनके आयुध—व्योमके लक्षण तथा उनका माहात्म्य, सूर्य-नमस्कार और सूर्य-प्रदक्षिणाकी विधि और उसके फल, सूर्यको दीप-दानकी विधि और महिमा, इसके साथ ही सौरधर्म एवं दीक्षाकी विधि आदिका महत्त्वपूर्ण वर्णन हुआ है। इसके साथ ही सूर्यके विराट् स्वरूपका वर्णन, द्वादश मूर्तियोंका वर्णन, सूर्यावतार तथा भगवान् सूर्यकी रथयात्रा आदिका विशिष्ट प्रतिपादन हुआ है। सूर्यकी उपासनामें व्रतोंकी विस्तृत चर्चा मिलती है। सूर्यदेवकी प्रिय तिथि है 'सप्तमी'। अतः विभिन्न फलश्रुतियोंके साथ सप्तमी तिथिके अनेक व्रतोंका और उनके उद्यापनोंका यहाँ विस्तारसे वर्णन हुआ है। अनेक सौर तीर्थोंके भी वर्णन मिलते हैं। सूर्योपासनामें भावशुद्धिकी आवश्यकतापर विशेष बल दिया गया है। यह इसकी मुख्य बात है।

इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, गणेश, कार्तिकेय तथा अग्नि आदि देवोंका भी वर्णन आया है। विभिन्न तिथियों और नक्षत्रोंके अधिष्ठातृ-देवताओं तथा उनकी पूजाके फलका भी वर्णन मिलता है। इसके साथ ही ब्राह्मपर्वमें ब्रह्मचारिधर्मका निरूपण, गृहस्थधर्मका निरूपण, माता-पिता तथा अन्य गुरुजनोंकी महिमाका वर्णन, उनको अभिवादन करनेकी विधि, उपनयन, विवाह आदि संस्कारोंका वर्णन, स्त्री-पुरुषोंके सामुद्रिक शुभाशुभ-लक्षण, स्त्रियोंके कर्तव्य, धर्म, सदाचार और उत्तम व्यवहारकी बातें, स्त्री-पुरुषोंके पारस्परिक व्यवहार, पञ्चमहायज्ञोंका वर्णन, बलिवैश्वदेव, अतिथिसत्कार, श्राद्धोंके विविध भेद, मातृ-पितृ-श्राद्ध आदि उपादेय विषयोंपर विशेषरूपसे विवेचन हुआ है। इस पर्वमें नागपञ्चमी-व्रतकी कथाका भी उल्लेख मिलता है, जिसके साथ नागोंकी उत्पत्ति, सर्पोंके लक्षण, स्वरूप और विभिन्न जातियाँ, सर्पोंके काटनेके लक्षण, उनके विषका वेग और उसकी चिकित्सा आदिका विशिष्ट वर्णन यहाँ उपलब्ध है। इस पर्वकी विशेषता यह है कि इसमें व्यक्तिके उत्तम आचरणको ही विशेष प्रमुखता दी गयी है। कोई भी व्यक्ति कितना भी विद्वान्, वेदाध्यायी, संस्कारी तथा उत्तम जातिका क्यों न हो, यदि उसके आचरण श्रेष्ठ, उत्तम नहीं हैं तो वह श्रेष्ठ पुरुष नहीं कहा जा सकता। लोकमें श्रेष्ठ और उत्तम पुरुष वे ही हैं जो सदाचारी और सत्पथगामी हैं।

भविष्यपुराणमें ब्राह्मपर्वके बाद मध्यमपर्वका प्रारम्भ होता है। जिसमें सृष्टि तथा सात ऊर्ध्व एवं सात पाताल लोकोंका वर्णन हुआ है। ज्योतिश्चक्र तथा भूगोलके वर्णन भी मिलते हैं। इस पर्वमें नरकगामी मनुष्योंके २६ दोष बताये गये हैं, जिन्हें त्यागकर शुद्धतापूर्वक मनुष्यको इस संसारमें रहना चाहिये। पुराणोंके श्रवणकी विधि तथा पुराण-वाचककी महिमाका वर्णन भी यहाँ प्राप्त होता है। पुराणोंको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सुननेसे ब्रह्महत्या आदि अनेक पापोंसे मुक्ति मिलती है। जो प्रातः, रात्रि तथा सायं पवित्र होकर पुराणोंका श्रवण करता है, उसपर ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रसन्न हो जाते हैं[1]। इस पर्वमें इष्टापूर्तकर्मका निरूपण अत्यन्त समारोहके साथ किया गया है। जो कर्म ज्ञानसाध्य है तथा निष्कामभावपूर्वक किये गये कर्म और स्वाभाविक रूपसे अनुरागाभक्तिके रूपमें किये गये हरिस्मरण आदि श्रेष्ठ कर्म अन्तर्वेदी कर्मोंके अन्तर्गत आते हैं, देवताकी स्थापना और उनकी पूजा, कुआँ, पोखरा, तालाब, बावली आदि खुदवाना, वृक्षारोपण, देवालय, धर्मशाला, उद्यान आदि लगवाना तथा गुरुजनोंकी सेवा और उनको संतुष्ट करना—ये सब बहिर्वेदी (पूर्त) कर्म हैं। देवालयोंके निर्माणकी विधि, देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षण और उनकी स्थापना, प्रतिष्ठाकी कर्तव्य-विधि, देवताओंकी पूजापद्धति,

---

१-इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या द्विजोत्तमाः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्याशतं च यत्॥
सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति यः। तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते शङ्करस्तथा॥ (मध्यमपर्व १।७।३-४)

उनके ध्यान और मन्त्र, मन्त्रोंके ऋषि और छन्द—इन सबोंपर पर्याप्त विवेचन किया गया है। पाषाण, काष्ठ, मृत्तिका, ताम्र, रत्न एवं अन्य श्रेष्ठ धातुओंसे बनी उत्तम लक्षणोंसे युक्त प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। घरमें प्रायः आठ अंगुलतक ऊँची मूर्तिका पूजन करना श्रेयस्कर माना गया है। इसके साथ ही तालाब, पुष्करिणी, वापी तथा भवन आदिकी निर्माण-पद्धति, गृहवास्तु-प्रतिष्ठाकी विधि, गृहवास्तुमें किन देवताओंकी पूजा की जाय, इत्यादि विषयोंपर भी प्रकाश डाला गया है।

वृक्षारोपण, विभिन्न प्रकारके वृक्षोंकी प्रतिष्ठाका विधान तथा गोचरभूमिकी प्रतिष्ठा-सम्बन्धी चर्चाएँ मिलती हैं। जो व्यक्ति छाया, फूल तथा फल देनेवाले वृक्षोंका रोपण करता है या मार्गमें तथा देवालयमें वृक्षोंको लगाता है, वह अपने पितरोंको बड़े-से-बड़े पापोंसे तारता है और रोपणकर्ता इस मनुष्यलोकमें महती कीर्ति तथा शुभ परिणामको प्राप्त करता है। जिसे पुत्र नहीं है, उसके लिये वृक्ष ही पुत्र हैं। वृक्षारोपणकर्ताके लौकिक-पारलौकिक कर्म वृक्ष ही करते रहते हैं तथा उसे उत्तम लोक प्रदान करते हैं। यदि कोई अश्वत्थ वृक्षका आरोपण करता है तो वही उसके लिये एक लाख पुत्रोंसे भी बढ़कर है। अशोक वृक्ष लगानेसे कभी शोक नहीं होता। बिल्व-वृक्ष दीर्घ आयुष्य प्रदान करता है। इसी प्रकार अन्य वृक्षोंके रोपणकी विभिन्न फलश्रुतियाँ आयी हैं। सभी माङ्गलिक कार्य निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न हो जायँ तथा शान्ति-भङ्ग न हो इसके लिये ग्रह-शान्ति और शान्तिप्रद अनुष्ठानोंका भी इसमें वर्णन मिलता है।

भविष्यपुराणके इस पर्वमें कर्मकाण्डका भी विशद वर्णन प्राप्त होता है। विविध यज्ञोंका विधान, कुण्ड-निर्माणकी योजना, भूमि-पूजन, अग्निसंस्थापन एवं पूजन, यज्ञादि कर्मोंके मण्डल-निर्माणका विधान, कुशकण्डिका-विधि, होमद्रव्योंका वर्णन, यज्ञपात्रोंका स्वरूप और पूर्णाहुतिकी विधि, यज्ञादिकर्ममें दक्षिणाका माहात्म्य और कलश-स्थापन आदि विधि-विधानोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। शास्त्रविहित यज्ञादि कार्य दक्षिणारहित एवं परिमाणविहीन कभी नहीं करना चाहिये। ऐसा यज्ञ कभी सफल नहीं होता। जिस यज्ञका जो माप बतलाया गया है, उसीके अनुसार करना चाहिये।

इस क्रममें क्रौञ्च आदि पक्षियोंके दर्शनका विशेष फल भी वर्णित हुआ है। मयूर, वृषभ, सिंह एवं क्रौञ्च और कपिका घरमें, खेतमें और वृक्षपर भूलसे भी दर्शन हो जाय तो उसको नमस्कार करना चाहिये। ऐसा करनेसे दर्शकके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं, उनके दर्शनमात्रसे धन तथा आयुकी वृद्धि होती है।

कोई भी कर्म देवकर्म या पितृकर्म नियत समयपर किये जानेपर कालके आधारपर ही पूर्णरूपेण फलप्रद होते हैं। समयके बिना की गयी क्रियाओंका कोई फल नहीं होता। अतः कालविभाग, मास-विभाजन, तिथि-निर्णय एवं वर्षभरके विशेष पर्वों तथा तिथियोंके पुण्यप्रद कृत्योंका विवेचन भी इस पर्वमें साङ्गोपाङ्गरूपसे सम्पन्न हुआ है। जो सर्वसाधारणके लिये उपयोगी भी है।

अपने यहाँ गोत्र-प्रवरको जाने बिना किया गया कर्म विपरीत फलदायी होता है। समान गोत्रमें विवाहादि सम्बन्धोंका निषेध है। अतः गोत्र-प्रवरकी परम्पराको जानना अत्यन्त आवश्यक है। अपने-अपने गोत्र-प्रवरको पिता, आचार्य तथा शास्त्रद्वारा जानना चाहिये। इन सारी प्रक्रियाओंका विवेचन यहाँ उपलब्ध है।

भविष्यपुराणमें मध्यमपर्वके बाद प्रतिसर्गपर्व चार खण्डोंमें है। प्रायः अन्य पुराणोंमें सत्ययुग, त्रेता और द्वापरके प्राचीन राजाओंके इतिहासका वर्णन मिलता है, परंतु भविष्यपुराणमें इन प्राचीन राजाओंके साथ-साथ कलियुगी अर्वाचीन राजाओंका आधुनिक इतिहास भी मिलता है। वास्तवमें भविष्यपुराणके भविष्य नामकी सार्थकता प्रतिसर्गपर्वमें ही चरितार्थ हुई दीखती है। प्रतिसर्गपर्वके प्रथम खण्डमें सत्ययुगके राजाओंके वंशका परिचय, त्रेतायुगके सूर्य एवं चन्द्र-राजवंशोंका वर्णन, द्वापरयुगके चन्द्रवंशीय राजाओंके वृत्तान्त वर्णित हैं। इसके बाद म्लेच्छवंशीय राजाओंका वर्णन है। प्रारम्भमें राजा प्रद्योतने कुरुक्षेत्रमें यज्ञ करके म्लेच्छोंका विनाश किया था, परंतु कलिने स्वयं म्लेच्छरूपमें राज्य किया तथा भगवान् नारायणको अपनी पूजासे प्रसन्नकर वरदान प्राप्त किया। नारायणने कलिसे कहा कि 'कई दृष्टियोंसे अन्य युगोंकी अपेक्षा तुम श्रेष्ठ हो, अतः

तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।' इस वरदानके प्रभावसे आदम नामके पुरुष और हव्यवती (हौवा) नामकी पत्नीसे म्लेच्छवंशोंकी वृद्धि हुई। कलियुगके तीन हजार वर्ष व्यतीत होनेपर विक्रमादित्यका आविर्भाव होता है। इसी समय रुद्रकिंकर वैतालका आगम होता है, जो विक्रमादित्यको कुछ कथाएँ सुनाता है और इन कथाओंके व्याजसे राजनीतिक और व्यावहारिक शिक्षा भी प्रदान करता है। वैतालद्वारा कही गयी इन कथाओंका संग्रह 'वैतालपञ्चविंशति' अथवा 'बेतालपचीसी'के नामसे लोकमें प्रसिद्ध है।

इसके बाद श्रीसत्यनारायणव्रतकी कथाका वर्णन है। भारतवर्षमें सत्यनारायणव्रत-कथा अत्यन्त लोकप्रिय है और इसका प्रसार-प्रचार भी सर्वाधिक है। भारतीय सनातन परम्परामें किसी भी माङ्गलिक कार्यका प्रारम्भ भगवान् गणपतिके पूजनसे एवं उस कार्यकी पूर्णता भगवान् सत्यनारायणके कथाश्रवणसे प्रायः समझी जाती है। भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपर्वमें भगवान् सत्यनारायणव्रत-कथाका उल्लेख छः अध्यायोंमें प्राप्त है। यह कथा स्कन्दपुराणकी प्रचलित कथासे मिलती-जुलती होनेपर भी विशेष रोचक एवं श्रेष्ठ प्रतीत होती है। वास्तवमें इस मायामय संसारकी वास्तविक सत्ता तो है ही नहीं—'**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।**' परमेश्वर ही त्रिकालाबाधित सत्य हैं और एकमात्र वही ध्येय, ज्ञेय और उपास्य हैं। ज्ञान-वैराग्य और अनन्य भक्तिके द्वारा वही साक्षात्कार करने योग्य हैं। वस्तुतः सत्यनारायणव्रतका तात्पर्य उन शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्माकी आराधनासे ही है। निष्काम उपासनासे सत्यस्वरूप नारायणकी प्राप्ति हो जाती है। अतः श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजन, कथाश्रवण एवं प्रसाद आदिके द्वारा उन सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान् सत्यनारायणकी उपासनासे लाभ उठाना चाहिये।

इस खण्डके अन्तिम अध्यायोंमें पितृशर्मा और उनके वंशमें उत्पन्न होनेवाले व्याडि, मीमांसक, पाणिनि और वररुचि आदिकी रोचक कथाएँ प्राप्त होती हैं। इस प्रकरणमें ब्रह्मचारिधर्मकी विभिन्न व्याख्याएँ करते हुए यह कहा गया है कि 'जो गृहस्थधर्ममें रहता हुआ पितरों, देवताओं और अतिथियोंका सम्मान करता है और इन्द्रियसंयमपूर्वक ऋतुकालमें ही भार्याका उपगमन करता है, वही मुख्य ब्रह्मचारी है। पाणिनिकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् सदाशिव शंकरने '**अ इ उ ण्**', '**ऋ लृ क्**' इत्यादि चतुर्दश माहेश्वर-सूत्रोंको वररूपमें प्रदान किया। जिसके कारण उन्होंने व्याकरणशास्त्रका निर्माण कर महान् लोकोपकार किया। तदनन्तर बोपदेवके चरित्रका प्रसंग तथा श्रीमद्भागवतके माहात्म्यका वर्णन, श्रीदुर्गासप्तशतीके माहात्म्यमें व्याधकर्माकी कथा, मध्यमचरित्रके माहात्म्यमें कात्यायन तथा मगधके राजा महानन्दकी कथा और उत्तरचरितकी महिमाके प्रसंगमें योगाचार्य महर्षि पतञ्जलिके चरित्रका रोचक वर्णन हुआ है।

भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपर्वका तीसरा खण्ड रामांश और कृष्णांश अर्थात् आल्हा और ऊदल (उदयसिंह) के चरित्र तथा जयचन्द्र एवं पृथ्वीराज चौहानकी वीरगाथाओंसे परिपूर्ण है। इधर भारतमें जागनिक भाटरचित आल्हाका वीरकाव्य बहुत प्रचलित है। इसके बुन्देलखण्डी, भोजपुरी आदि कई संस्करण हैं, जिनमें भाषाओंका थोड़ा-थोड़ा भेद है। इन कथाओंका मूल यह प्रतिसर्गपर्व ही प्रतीत होता है। प्रायः ये कथाएँ लोकरञ्जनके अनुसार अतिशयोक्तिपूर्ण-सी प्रतीत होती हैं, किंतु ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्त्वकी भी हैं। इस खण्डमें राजा शालिवाहन तथा ईशामसीहकी कथा भी आयी है। एक समय शकाधीश शालिवाहनने हिमशिखरपर गौर-वर्णके एक सुन्दर पुरुषको देखा, जो श्वेत वस्त्र धारण किये था। शकराजकी जिज्ञासा करनेपर उस पुरुषने अपना परिचय देते हुए अपना नाम ईशामसी बताया। साथ ही अपने सिद्धान्तोंका भी संक्षेपमें वर्णन किया। शालिवाहनके वंशमें अन्तिम दसवें राजा भोजराज हुए, जिनके साथ महामदकी कथाका भी वर्णन मिलता है। राजा भोजने मरुस्थल (मदीन) में स्थित महादेवका दर्शन किया तथा भक्तिभावपूर्वक पूजन-स्तुति की। भगवान् शिवने प्रकट होकर म्लेच्छोंसे दूषित उस स्थानको त्यागकर महाकालेश्वर तीर्थमें जानेकी आज्ञा प्रदान की। तदनन्तर देशराज एवं वत्सराज आदि राजाओंके आविर्भावकी कथा तथा इनके वंशमें होनेवाले कौरवांश एवं पाण्डवांशोंके रूपमें उत्पन्न राजवंशोंका विवरण प्राप्त होता है। कौरवांशोंकी पराजय और पाण्डवांशोंकी विजय होती है। पृथ्वीराज चौहानको वीरगति प्राप्त होनेके उपरान्त सहोद्दीन (मुहम्मद

गोरी) के द्वारा कोतुकोद्दीनको दिल्लीका शासन सौंपकर इस देशसे धन लूटकर ले जानेका विवरण प्राप्त होता है।

प्रतिसर्गपर्वका अन्तिम चतुर्थ खण्ड है, जिसमें सर्वप्रथम कलियुगमें उत्पन्न आन्ध्रवंशीय राजाओंके वंशका परिचय मिलता है। तदनन्तर राजपूताना तथा दिल्ली नगरके राजवंशोंका इतिहास प्राप्त होता है। राजस्थानके मुख्य नगर अजमेरकी कथा मिलती है। अजन्मा (अज) ब्रह्माके द्वारा रचित होने तथा माँ लक्ष्मी (रमा) के शुभागमनसे रम्य या रमणीय इस नगरीका नाम अजमेर हुआ। इसी प्रकार राजा जयसिंहने जयपुरको बसाया, जो भारतका सर्वाधिक सुन्दर नगर माना जाता है। कृष्णवर्माके पुत्र उदयने उदयपुर नामक नगर बसाया, जिसका प्राकृतिक सौन्दर्य आज भी दर्शनीय है। कान्यकुब्ज नगरकी कथा भी अद्भुत है। राजा प्रणयकी तपस्यासे भगवती शारदा प्रसन्न होकर कन्यारूपमें वेणुवादन करती हुई आती हैं। उस कन्याने वरदानरूपमें यह नगर राजा प्रणयको प्रदान किया, जिस कारण इसका नाम 'कान्यकुब्ज' पड़ा। इसी प्रकार चित्रकूटका निर्माण भी भगवतीके प्रसादसे ही हुआ। इस स्थानकी विशेषता यह है कि यह देवताओंका प्रिय नगर है, जहाँ कलिका प्रवेश नहीं हो सकता। इसीलिये इसका नाम 'कलिंजर' भी कहा गया है[1]। इसी प्रकार बंगालके राजा भोगवर्माके पुत्र कालिवर्माने महाकालीकी उपासना की। भगवती कालीने प्रसन्न होकर पुष्पों और कलियोंकी वर्षा की, जिससे एक सुन्दर नगर उत्पन्न हुआ जो कलिकातापुरी (कलकत्ता) के नामसे प्रसिद्ध हुआ। चारों वर्णोंके उत्पत्तिकी कथा तथा चारों युगोंमें मनुष्योंकी आयुका निरूपण और फिर आगे चलकर दिल्ली नगरपर पठानोंका शासन, तैमूरलंगके द्वारा भारतपर आक्रमण करने और लूटनेकी क्रियाका वर्णन भी इसमें प्राप्त होता है।

कलियुगमें अवतीर्ण होनेवाले विभिन्न आचार्यों-संतों और भक्तोंकी कथाएँ भी यहाँ उपलब्ध हैं। श्रीशंकराचार्य, श्रीरामानन्दाचार्य, निम्बादित्य, श्रीधरस्वामी, श्रीविष्णुस्वामी, वाराहमिहिर, भट्टोजि दीक्षित, धन्वन्तरि, कृष्णचैतन्यदेव, श्रीरामानुज, श्रीमध्व एवं गोरखनाथ आदिका विस्तृत चरित्र यहाँ वर्णित है। प्रायः ये सभी सूर्यके तेज एवं अंशसे ही उत्पन्न बताये गये हैं। भविष्यपुराणमें इन्हें द्वादशादित्यके अवतारके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। कलियुगमें धर्मरक्षार्थ इनका आविर्भाव होता है। विभिन्न सम्प्रदायोंकी स्थापनामें इनका योगदान है। इन प्रसंगोंमें प्रमुखता चैतन्य महाप्रभुको दी गयी है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि श्रीकृष्णचैतन्यने ब्रह्मसूत्र, गीता या उपनिषद् किसीपर भी साम्प्रदायिक दृष्टिसे भाष्यकी रचना नहीं की थी और न किसी सम्प्रदायकी ही अपने समयमें स्थापना की थी। उदार-भावसे नाम और गुणकीर्तनमें विभोर रहते थे। भगवान् जगन्नाथके द्वारपर ही खड़े होकर उन्होंने अपनी जीवनलीलाको श्रीविग्रहमें लीन कर दिया। साथ ही यहाँ संत सूरदासजी, तुलसीदासजी, कबीर, नरसी, पीपा, नानक, रैदास, नामदेव, रंकण, धन्ना भगत आदिकी कथाएँ भी हैं। आनन्द, गिरि, पुरी, वन, आश्रम, पर्वत, भारती एवं नाथ आदि दस नामी साधुओंकी व्युत्पत्तिका कारण भी लिखा है। भगवती महाकाली तथा दुण्ढिराजकी उत्पत्तिकी कथा भी मिलती है।

भगवान् गणपतिको यहाँ परब्रह्मरूपमें चित्रित किया गया है। भूतभावन सदाशिवकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती पार्वतीके पुत्ररूपमें जन्म लेनेका उन्हें वर प्रदान किया। तदनन्तर उन्होंने भगवान् शिवके पुत्ररूपमें अवतार धारण किया। इसमें रावण एवं कुम्भकर्णके जन्मकी कथा, रुद्रावतार श्रीहनुमान्‌जीकी रोचक कथा भी मिलती है। केसरीकी पत्नी अंजनीके गर्भसे श्रीहनुमत्‌लालजी अवतार धारण करते हैं। आकाशमें उगते हुए लाल सूर्यको देख फल समझकर उसे निगलनेका प्रयास करते हैं। सूर्यके अभावमें अन्धकार देखकर इन्द्रने उनकी हनु (ठुड्डी) पर वज्रसे प्रहार किया, जिससे हनुमान्‌की ठुड्डी टेढ़ी हो जाती है और वे पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं, जिससे उनका नाम हनुमान् पड़ा। इसी बीच रावण उनकी पूँछ पकड़कर लटक जाता है। फिर भी उन्होंने सूर्यको नहीं छोड़ा। एक वर्षतक रावणसे युद्ध होता रहा। अन्तमें रावणके

१-नागरं चित्रकूटाद्रौ चकार कलिनिर्जरम्। कलिर्यत्र भवेद्बद्धो नगरेऽस्मिन् सुरप्रिये॥
अतः कलिंजरो नाम्ना प्रसिद्धोऽभून्महीतले। (प्रतिसर्गपर्व ४।४।३-४)

पिता विश्रवा मुनि वहाँ आते हैं और वैदिक स्तोत्रोंसे हनुमान्‌जीको प्रसन्नकर रावणका पिण्ड छुड़ाते हैं। तदनन्तर ब्रह्माजीके प्रादुर्भाव तथा सृष्टि और उत्पत्तिकी कथा एवं शिव-पार्वतीके विवाहका वर्णन हुआ है। अन्तिम अध्यायोंमें मुगल बादशाहों तथा अंग्रेज शासकोंकी भी चर्चा हुई है। मुगल बादशाहोंमें बाबर, हुमायूँ, अकबर, शाहजहाँ, जहाँगीर, औरंगजेब आदि प्रमुख शासकोंका वर्णन मिलता है। छत्रपति शिवाजीकी वीरताका भी वर्णन प्राप्त है। इसके साथ ही विक्टोरियाके शासन और उसके पार्लियामेंटका भी उल्लेख है। विक्टोरियाको यहाँ विकटावतीके नामसे कहा गया है। कलियुगके अन्तिम चरणमें नरकोंके भर जानेकी गाथा भी मिलती है। सभी नरक मनुष्योंसे परिपूर्ण हो जाते हैं तथा नरकोंमें अजीर्णता आ जाती है। अन्तमें कलियुगके सामान्यधर्मके वर्णनके साथ इस पर्वका उपसंहार किया गया है।

इस पुराणका अन्तिम पर्व है उत्तरपर्व। उत्तरपर्वमें मुख्य रूपसे व्रत, दान और उत्सवोंके वर्णन प्राप्त होते हैं। व्रतोंकी अद्भुत शृङ्खलाका प्रतिपादन यहाँ हुआ है। प्रत्येक तिथियों, मासों एवं नक्षत्रोंके व्रतों तथा उन तिथियों आदिके अधिष्ठातृ-देवताओंका वर्णन, व्रतकी विधि और उसकी फलश्रुतियोंका बड़े विस्तारसे प्रतिपादन किया गया है।

उत्तरपर्वके प्रारम्भमें श्रीनारदजीको भगवान् श्रीनारायण विष्णुमायाका दर्शन कराते हैं। किसी समय नारदमुनिने श्वेतद्वीपमें भगवान् नारायणका दर्शनकर उनकी मायाको देखनेकी इच्छा प्रकट की। नारदजीके बार-बार आग्रह करनेपर श्रीनारायण नारदजीके साथ जम्बूद्वीपमें आये और मार्गमें एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया। विदिशा नगरीमें धन-धान्यसे समृद्ध, उद्यमी, पशुपालनमें तत्पर, कृषिकार्यको भलीभाँति करनेवाला सीरभद्र नामका एक वैश्य निवास करता था, वे दोनों सर्वप्रथम उसीके घर गये। उस वैश्यने उनका यथोचित सत्कारकर भोजनके लिये पूछा। यह सुनकर वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी भगवान्‌ने हँसकर कहा—'तुमको अनेक पुत्र-पौत्र हों, तुम्हारी खेती और पशुधनकी नित्य वृद्धि हो यह मेरा आशीर्वाद है।' यह कहकर वे दोनों वहाँसे चल पड़े। मार्गमें गङ्गाके तटपर गाँवमें गोस्वामी नामका एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था। वे दोनों उसके पास पहुँचे, वह अपनी खेती आदिकी चिन्तामें लगा था। भगवान्‌ने उससे कहा—'हम तुम्हारे अतिथि हैं और भूखे हैं, अतः भोजन कराओ।' उस ब्राह्मणने दोनोंको अपने घरपर लाकर स्नान-भोजन आदि कराया, अनन्तर उत्तम शय्यापर शयन आदिकी व्यवस्था की। प्रातः उठकर भगवान्‌ने ब्राह्मणसे कहा—'हम तुम्हारे घरमें सुखपूर्वक रहे, परमेश्वर करे कि तुम्हारी खेती निष्फल हो, तुम्हारी संततिकी वृद्धि न हो' इतना कहकर वे वहाँसे चले गये। यह देखकर नारदजीने आश्चर्यचकित होकर पूछा—'भगवन्! वैश्यने आपकी कुछ भी सेवा नहीं की, परंतु आपने उसे उत्तम वर दिया, किंतु इस ब्राह्मणने श्रद्धासे आपकी बहुत सेवा की, फिर भी उसे आपने आशीर्वादके रूपमें शाप ही दिया—ऐसा आपने क्यों किया?' भगवान्‌ने कहा—'नारद! वर्षभर मछली पकड़नेसे जितना पाप होता है, एक दिन हल जोतनेसे उतना ही पाप होता है। वह वैश्य अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ इसी कृषि-कार्यमें लगा हुआ है। हमने न तो उसके घरमें विश्राम किया और न भोजन ही किया, इस ब्राह्मणके घरमें भोजन और विश्राम किया। इस ब्राह्मणको ऐसा आशीर्वाद दिया कि जिससे यह जगज्जालमें न फँसकर मुक्तिको प्राप्त कर सके। इस प्रकार बातचीत करते हुए वे दोनों आगे बढ़ने लगे। आगे चलकर भगवान्‌ने नारदजीको कान्यकुब्जके सरोवरमें अपनी मायासे स्नान कराकर एक सुन्दर स्त्रीका स्वरूप प्रदान किया तथा एक राजासे विवाह कराकर पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न जगज्जालकी मायामें लिप्त कर दिया तथा कुछ समय बाद पुनः नारदजीको अपने स्वाभाविक रूपमें लाकर भगवान् अन्तर्हित हो गये। नारदजीने अनुभव किया कि इस मायाके प्रभावसे संसारके जीव, पुत्र, स्त्री, धन आदिमें आसक्त हो रोते-गाते हुए अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करते हैं। अतः मनुष्यको इससे सावधान रहना चाहिये।

इसके बाद संसारके दोषोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। महाराज युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णसे प्रश्न करते हैं, यह जीव किस कर्मसे देवता, मनुष्य और पशु आदि योनियोंमें उत्पन्न होता है? शुभ और अशुभ फलका भोग वह कैसे करता है? इसका उत्तर देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि उत्तम कर्मोंसे देवयोनि, मिश्रकर्मसे मनुष्ययोनि और पापकर्मसे

पशु आदि योनियोंमें जन्म होता है। धर्म और अधर्मके निश्चयमें श्रुति ही प्रमाण है। पापसे पापयोनि और पुण्यसे पुण्ययोनि प्राप्त होती है[१]। वस्तुतः संसारमें कोई सुखी नहीं है। प्रत्येक प्राणीको एक दूसरेसे भय बना रहता है। यह कर्ममय शरीर जन्मसे लेकर अन्ततक दुःखी ही है। जो पुरुष जितेन्द्रिय हैं और व्रत, दान तथा उपवास आदिमें तत्पर रहते हैं, वे ही सदा सुखी रहते हैं। तदनन्तर यहाँ भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा विविध प्रकारके पाप एवं पुण्य कर्मोंका फल बताया गया है। अधम कर्मको ही पाप और अधर्म कहते हैं। स्थूल, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म आदि भेदोंद्वारा करोड़ों प्रकारके पाप हैं, पर यहाँ बड़े-बड़े पापोंका संक्षेपमें वर्णन किया गया है। परस्त्रीका चिन्तन, दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन और अकार्य (कुकर्म) में अभिनिवेश—ये तीन प्रकारके मानस पाप हैं। अनियन्त्रित प्रलाप, अप्रिय, असत्य, परनिन्दा और पिशुनता अर्थात् चुगली—ये पाँच वाचिक पाप हैं। अभक्ष्यभक्षण, हिंसा, मिथ्या कामसेवन (असंयमित जीवन व्यतीत करना) और परधन-हरण—ये चार कायिक पाप हैं। इन बारह कर्मोंके करनेसे नरककी प्राप्ति होती है। इसके साथ ही जो पुरुष संसाररूपी सागरसे उद्धार करनेवाले भगवान् सदाशिव अथवा भगवान् विष्णुसे द्वेष रखते हैं, वे घोर नरकमें पड़ते हैं। ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णकी चोरी और गुरुपत्नीगमन—ये चार महापातक हैं। इन पातकोंको करनेवालोंके सम्पर्कमें रहनेवाला पाँचवाँ महापातकी गिना जाता है। ये सभी नरकमें जाते हैं। इनके अतिरिक्त कई प्रकारके उपपातकोंका भी वर्णन आया है। जिनका फल दुःख और नरकगमन ही है।

इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य शरीरको नश्वर जानकर लेशमात्र भी पाप न करे, पापसे अवश्य ही नरक भोगना पड़ता है। पापका फल दुःख है और नरकसे बढ़कर अधिक दुःख कहीं नहीं है। पापी मनुष्य नरकवासके अनन्तर फिर पृथ्वीपर वृक्ष आदि अनेक प्रकारकी स्थावर-योनियोंमें जन्म ग्रहण करते हैं और अनेक कष्ट भोगते हैं। अनन्तर कीट, पतंग, पक्षी, पशु आदि अनेक योनियोंमें जन्म लेते हुए अतिदुर्लभ मनुष्य-जन्म पाते हैं। स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाला मनुष्य-जन्म पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे नरक न देखना पड़े। यह मनुष्य-योनि देवताओं तथा असुरोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। धर्मसे ही मनुष्यका जन्म मिलता है। मनुष्य-जन्म पाकर उसे धर्मकी वृद्धि करनी चाहिये। जो अपने कल्याणके लिये धर्मका पालन नहीं करता है, उसके समान मूर्ख कौन होगा ?

यह देश सभी देशोंमें उत्तम है। बहुत पुण्यसे प्राणीका जन्म भारतवर्षमें होता है। इस देशमें जन्म पाकर जो अपने कल्याणके लिये सत्कर्म करता है वही बुद्धिमान् है। जिसने ऐसा नहीं किया, उसने अपने आत्माके साथ वञ्चना की। जबतक यह शरीर स्वस्थ है, तबतक जो कुछ पुण्य बन सके, कर लेना चाहिये, बादमें कुछ भी नहीं हो सकता। दिन-रातके बहाने नित्य आयुके ही अंश खण्डित हो रहे हैं। फिर भी मनुष्योंको बोध नहीं होता कि एक दिन मृत्यु आ पहुँचेगी और इन सभी सामग्रियोंको छोड़कर अकेले चला जाना पड़ेगा। फिर अपने हाथसे ही अपनी सम्पत्ति सत्पात्रोंको क्यों नहीं बाँट देते ? मनुष्यके लिये दान ही पाथेय अर्थात् रास्तेके लिये भोजन है। जो दान करते हैं वे सुखपूर्वक जाते हैं। दान-हीन मार्गमें अनेक दुःख पाते हैं। भूखे मरते जाते हैं, इन सब बातोंको विचारकर पुण्य कर्म ही करना चाहिये। पुण्य कर्मोंसे देवत्व प्राप्त होता है और पाप करनेसे नरककी प्राप्ति होती है। जो सत्पुरुष सर्वात्मभावसे श्रीपरमात्म-प्रभुकी शरणमें जाते हैं, वे पद्मपत्रपर स्थित जलकी तरह पापोंसे लिप्त नहीं होते, इसलिये द्वन्द्वसे छूटकर भक्तिपूर्वक ईश्वरकी आराधना करनी चाहिये तथा सभी प्रकारके पापोंसे निरन्तर बचना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे कहते हैं कि यहाँ भीषण नरकोंका जो वर्णन किया गया है, उन्हें व्रत-उपवासरूपी नौकासे पार किया जा सकता है। प्राणीको अति दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे पश्चात्ताप न करना पड़े और यह जन्म भी व्यर्थ न जाय और फिर जन्म भी न लेना पड़े। जिस मनुष्यकी कीर्ति, दान, व्रत, उपवास

१-शुभैर्देवत्वमाप्नोति मिश्रैर्मानुषतां व्रजेत्। अशुभैः कर्मभिर्जन्तुस्तिर्यग्योनिषु जायते॥
प्रमाणं श्रुतिरेवात्र धर्माधर्मविनिश्चये। पापं पापेन भवति पुण्यं पुण्येन कर्मणा॥ (उत्तरपर्व ४। ६-७)

आदिकी परम्परा बनी है, वह परलोकमें उन्हीं कर्मोंके द्वारा सुख भोगता है। व्रत तथा स्वाध्याय न करनेवालेकी कहीं भी गति नहीं है। इसके विपरीत व्रत-स्वाध्याय करनेवाले पुरुष सदा सुखी रहते हैं। इसलिये व्रत-स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।

इस पर्वमें अनेक व्रतोंकी कथा, माहात्म्य, विधान तथा फलश्रुतियोंका वर्णन किया गया है। साथ ही व्रतोंके उद्यापनकी विधि भी बतायी गयी है। एक-एक तिथियोंमें कई व्रतोंका विधान है। जैसे प्रतिपदा तिथिमें तिलकव्रत, अशोकव्रत, कोकिलाव्रत, बृहत्तपोव्रत आदिका वर्णन हुआ है। इसी प्रकार जातिस्मर भद्रव्रत, यमद्वितीया, मधूकतृतीया, हरकालीव्रत, ललितातृतीयाव्रत, अवियोगतृतीयाव्रत, उमामहेश्वरव्रत, सौभाग्यशयन, अनन्ततृतीया, रसकल्याणिनी तृतीयाव्रत तथा अक्षयतृतीया आदि अनेक व्रत तृतीया तिथिमें ही वर्णित हैं। इसी प्रकार गणेशचतुर्थी, श्रीपञ्चमीव्रत-कथा, विशोक-षष्ठी, कमलषष्ठी, मन्दार-षष्ठी, विजया-सप्तमी, मुक्ताभरण-सप्तमी, कल्याण-सप्तमी, शर्करा-सप्तमी, शुभ-सप्तमी तथा अचला-सप्तमी आदि अनेक सप्तमी-व्रतोंका वर्णन हुआ है। तदनन्तर बुधाष्टमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, दूर्वाकी उत्पत्ति एवं दूर्वाष्टमी, अनघाष्टमी, श्रीवृक्षनवमी, ध्वजनवमी, आशादशमी आदि व्रतोंका निरूपण हुआ है। द्वादशी तिथिमें तारकद्वादशी, अरण्यद्वादशी, गोवत्सद्वादशी, देवशयनी एवं देवोत्थानी द्वादशी, नीराजनद्वादशी, मल्लद्वादशी, विजय-श्रवणद्वादशी, गोविन्दद्वादशी, अखण्डद्वादशी, धरणीव्रत (वाराहद्वादशी), विशोकद्वादशी, विभूतिद्वादशी, मदनद्वादशी आदि अनेक द्वादशी-व्रतोंका निरूपण हुआ है। त्रयोदशी तिथिके अन्तर्गत अबाधकव्रत, दौर्भाग्य-दौर्गन्ध्यनाशकव्रत, धर्मराजका समाराधन-व्रत (यमादर्शन-त्रयोदशी), अनङ्गत्रयोदशीव्रतका विधान और उसके फलके वर्णन लिखे हैं। चतुर्दशी तिथिमें पालीव्रत एवं रम्भा-(कदली-) व्रत, शिवचतुर्दशीव्रतमें महर्षि अङ्गिराका आख्यान, अनन्त-चतुर्दशीव्रत, श्रवणिका-व्रत, नक्तव्रत, फलत्याग-चतुर्दशीव्रत आदि विभिन्न व्रतोंका निरूपण हुआ है। तदनन्तर अमावास्यामें श्राद्ध-तर्पणकी महिमाका वर्णन, पूर्णमासी-व्रतोंका वर्णन, जिसमें वैशाखी, कार्तिकी और माघी पूर्णिमाकी विशेष महिमाका वर्णन, सावित्रीव्रत-कथा, कृत्तिका-व्रतके प्रसंगमें रानी कलिंगभद्राका आख्यान, मनोरम-पूर्णिमा तथा अशोक-पूर्णिमाकी व्रत-विधि आदि विभिन्न व्रतों और आख्यानोंका वर्णन किया गया है।

तिथियोंके व्रतोंके निरूपणके अनन्तर नक्षत्रों और मासोंके व्रतकथाओंका वर्णन हुआ है। अनन्तव्रत-माहात्म्यमें कार्तवीर्यके आविर्भावका वृत्तान्त आया है। मास-नक्षत्रव्रतके माहात्म्यमें साम्भरायणीकी कथा, प्रायश्चित्तरूप सम्पूर्ण व्रतका विधान, वृन्ताक (बैगन)-त्यागव्रत एवं ग्रह-नक्षत्रव्रतकी विधि, शनैश्चरव्रतमें महामुनि पैप्पलादका आख्यान, संक्रान्तिव्रतके उद्यापनकी विधि, भद्रा (विष्टि)-व्रत तथा भद्राके आविर्भावकी कथा, चन्द्र, शुक्र तथा बृहस्पतिको अर्घ्य देनेकी विधि आदिके वर्णन हुए हैं। इस पर्वके १२१ वें अध्यायमें विविध प्रकीर्ण व्रतके अन्तर्गत प्रायः ८५ व्रतोंका उल्लेख आता है, तदनन्तर माघ-स्नानका विधान, स्नान, तर्पणविधि, रुद्र-स्नानकी विधि, सूर्य-चन्द्र-ग्रहणमें स्नानका माहात्म्य आदिके वर्णन प्राप्त होते हैं।

मृत्युसे पूर्व अर्थात् मरणासन्न गृहस्थ पुरुषको शरीरका त्याग किस प्रकार करना चाहिये, इसका बड़ा ही सुन्दर विवेचन यहाँ १२६ वें अध्यायमें हुआ है। जब पुरुषको यह मालूम हो कि मृत्यु समीप आ गयी है तो उसे सब ओरसे मन हटाकर गरुडध्वज भगवान् विष्णुका अथवा अपने इष्टदेवका स्मरण करना चाहिये। स्नानसे पवित्र होकर श्वेत वस्त्र धारण करके सभी उपचारोंसे नारायणकी पूजाकर स्तोत्रोंसे स्तुति करे। अपनी शक्तिके अनुसार गाय, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, अन्न आदिका दान करे और बन्धु, पुत्र, मित्र, स्त्री, क्षेत्र, धन-धान्य तथा पशु आदिसे चित्त हटाकर ममत्वका सर्वथा परित्याग कर दे। मित्र, शत्रु, उदासीन, अपने और पराये लोगोंके उपकार और अपकारके विषयमें विचार न करता हुआ अपने मनको पूर्ण शान्त कर ले। जगद्गुरु भगवान् विष्णुके अतिरिक्त मेरा कोई बन्धु नहीं है, इस प्रकार सब कुछ छोड़कर सर्वेश्वर भगवान् अच्युतको हृदयमें धारण करके निरन्तर वासुदेवके नामका स्मरण-कीर्तन करता रहे और जब मृत्यु अत्यन्त समीप आ जाय तो दक्षिणाग्र कुशा बिछाकर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर सिरकर शयन करे और परमात्म-प्रभुसे यह प्रार्थना करे कि 'हे

जगन्नाथ! मैं आपका ही हूँ, आप शीघ्र मुझमें निवास करें, वायु एवं आकाशकी भाँति मुझमें और आपमें कोई अन्तर न रहे। मैं आपको अपने सामने देख रहा हूँ, आप भी मुझे देखें।' इस प्रकार भगवान् विष्णुको प्रणाम करे और उनका दर्शन करे। जो अपने इष्टदेवका अथवा भगवान् विष्णुका ध्यानकर प्राण त्याग करता है, उसके सब पाप छूट जाते हैं और वह भगवान्में लीन हो जाता है। मृत्युकालमें यदि इतना करना सम्भव न हो तो सबसे सरल उपाय यह है कि चारों तरफसे चित्तवृत्ति हटाकर गोविन्दका स्मरण करते हुए प्राण त्याग करना चाहिये, क्योंकि व्यक्ति जिस-जिस भावसे स्मरणकर प्राण त्याग करता है, उसे वही भाव प्राप्त होता है। अतः सब प्रकारसे निवृत्त होकर वासुदेवका स्मरण और चिन्तन करना ही श्रेयस्कर है। इसी प्रसंगमें भगवान्‌के चिन्तन-ध्यानके स्वरूपपर भी प्रकाश डाला गया है। जो साधकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी और जानने योग्य है।

महर्षि मार्कण्डेयजीके द्वारा चार प्रकारके ध्यानका विवेचन किया गया है—(१) राज्य, उपभोग, शयन, भोजन, वाहन, मणि, स्त्री, गन्ध, माल्य, वस्त्र, आभूषण आदिमें यदि अत्यन्त मोहके कारण उसका चिन्तन-स्मरण बना रहता है तो वह मोहजन्य 'आद्य' ध्यान कहा गया है। इस ध्यानसे तिर्यक्-योनि तथा अधोगतिकी प्राप्ति होती है। (२) दयाके अभावमें यदि जलाने, मारने, तड़पाने, किसीके ऊपर प्रहार करनेकी इच्छा रहती हो, ऐसी क्रियाओंमें जिसका मन लगा हो, उसे 'रौद्र' ध्यान कहा गया है। इस ध्यानसे नरक प्राप्त होता है। (३) वेदार्थके चिन्तन, इन्द्रियके उपशमन, मोक्षकी चिन्ता, प्राणियोंके कल्याणकी भावना आदि करना 'धर्म्य' ध्यान है। 'धर्म्य' ध्यानसे स्वर्गकी अथवा दिव्यलोककी प्राप्ति होती है। (४) समस्त इन्द्रियोंका अपने-अपने विषयोंसे निवृत्त हो जाना, हृदयमें इष्ट-अनिष्ट—किसीका भी चिन्तन नहीं होना और आत्मस्थित होकर एकमात्र परमेश्वरका चिन्तन करते हुए परमात्मनिष्ठ हो जाना—यह 'शुक्ल' ध्यानका स्वरूप है। इस ध्यानसे मोक्षकी प्राप्ति अथवा भगवत्प्राप्ति हो जाती है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि कल्याणकारी 'शुक्ल' ध्यानमें ही चित्त स्थिर हो जाय।

इस प्रकरणके बाद दानकी महिमा एवं विभिन्न उत्सवोंका वर्णन आया है। सर्वप्रथम दीपदानकी महिमामें रानी ललिताके आख्यानका तथा वृषोत्सर्गकी महिमाका वर्णन हुआ है। अनन्तर कन्यादानके महत्त्वपर प्रकाश डाला गया है। आभूषणोंसे अलंकृत कन्याको अपने वर्ण और जातिमें दान करनेकी अत्यधिक महिमा बतायी गयी है। अनाथ कन्याके विवाह करनेका भी विशेष फल कहा गया है। इस पर्वमें धेनुदानका विशद वर्णन प्राप्त होता है। कई प्रकारकी धेनुओंके दानका प्रकरण आया है। प्रत्यक्ष धेनु, तिलधेनु, जलधेनु घृतधेनु, लवणधेनु, काञ्चनधेनु, रत्नधेनु आदिके वर्णन मिलते हैं। इसके अतिरिक्त कपिलादान, महिषीदान, भूमिदान, सौवर्णपंक्तिदान, गृहदान, अन्नदान, विद्यादान, तुलापुरुषदान, हिरण्यगर्भदान, ब्रह्माण्डदान, कल्पवृक्ष-कल्पलतादान, गजरथाश्वरथदान, कालपुरुषदान, सप्तसागरदान, महाभूतघटदान, शय्यादान, हेमहस्तिरथदान, विश्वचक्रदान, नक्षत्रदान, तिथिदान, धान्यपर्वतदान, लवणपर्वतदान, गुडाचलदान, हेमाचलदान, तिलाचलदान, कार्पासाचलदान, घृताचलदान, रत्नाचलदान, रौप्याचलदान तथा शर्कराचलदान आदि दानोंकी विधियाँ विस्तारपूर्वक निरूपित हुई हैं।

भारतीय संस्कृतिमें उत्सवोंका विशेष महत्व है। विभिन्न तिथियोंपर तथा पर्वोंपर विभिन्न प्रकारसे उत्सवोंको मनाया जाता है और सभी उत्सवोंकी अलग-अलग महिमा भी है। यहाँ इन उत्सवोंका भी वर्णन हुआ है। होलिकोत्सव, दीपमालिकोत्सव, रक्षाबन्धन, महानवमी-उत्सव, इन्द्र-ध्वजोत्सव आदि मुख्य रूपसे वर्णित हैं। होलिकोत्सवमें ढौंढाकी कथा मिलती है। इन उत्सवोंके अतिरिक्त कोटिहोम, नक्षत्रहोम, गणनाथशान्ति आदिके विधान भी दिये गये हैं।

भविष्यपुराणमें व्रत और दान आदिके प्रकरणमें जो फलश्रुतियाँ दी गयी हैं, वे मुख्यतः इहलोक तथा परलोकमें दुःखोंकी निवृत्ति तथा भोगैश्वर्य और स्वर्ग आदि लोकोंकी प्राप्तिसे ही सम्बन्धित हैं। सामान्यतः मनुष्यको जीवनमें दो बातें प्रभावित करती हैं—एक तो दुःखोंका भय और दूसरा सुखका प्रलोभन। इन दोनोंके लिये मनुष्य कुछ भी करनेको तत्पर रहता है। परमात्म-प्रभुमें हमारी आस्था एवं विश्वास जाग्रत् हो और हमारे सम्बन्ध भगवान्‌से स्थापित हों, इसके लिये अपने शास्त्रों और पुराणोंमें लौकिक तथा पारलौकिक कामनाओंकी

सिद्धिके लिये फलश्रुतियाँ विशेषरूपसे प्रदर्शित हुई हैं। वास्तवमें दुःखोंके भयसे तथा स्वर्ग आदि सुखोंके प्रलोभनसे जब मानव एक बार व्रत, दान आदि सत्कर्मोंकी ओर प्रवृत्त हो जाता है और उसमें उसे सफलताके साथ आनन्दकी अनुभूति होने लगती है तो आगे चलकर यह सत्कर्म भी उसका स्वभाव और व्यसन बन जाता है और जब भी भगवत्कृपासे सत्संग आदिके द्वारा उसे वास्तविक तत्त्वका ज्ञान हो जाता है अथवा मानव-जीवनके मुख्य उद्देश्यको वह जान लेता है तो फिर भगवत्प्राप्तिमें देर नहीं लगती। वस्तुतः मानव-जीवनका मुख्य उद्देश्य भगवत्प्राप्ति ही है और भगवत्प्राप्ति निष्काम उपासनासे ही सम्भव है। यहाँ व्रत-दान आदिके प्रकरणमें जो फलश्रुतियाँ आयी हैं, वे लौकिक एवं पारलौकिक कामनाओंकी सिद्धिमें तो समर्थ हैं ही, यदि निष्कामभावसे भगवत्प्रीत्यर्थ इनका अनुष्ठान किया जाय तो वे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त कर भगवत्प्राप्ति करानेमें भी पूर्ण समर्थ हैं। अतः कल्याणकामी पुरुषोंको ये व्रत-दान आदि कर्म भगवत्प्रीत्यर्थ निष्कामरूपमें ही करने चाहिये।

एक बात और ध्यान देनेकी है, जो बुद्धिवादी लोगोंकी दृष्टिमें प्रायः खटकती है—वह यह कि पुराणोंमें जहाँ जिस देवता, व्रत, दान और तीर्थका महत्त्व बतलाया गया है, वहाँ उसीको सर्वोपरि माना है और अन्य सबके द्वारा उसकी स्तुति करायी गयी है। गहराईसे विचार न करनेपर यह बात विचित्र-सी प्रतीत होती है, परंतु इसका तात्पर्य यह है कि भगवान्‌का यह लीलाभिनय ऐसा आश्चर्यमय है कि इसमें एक ही परिपूर्ण भगवान् विभिन्न विचित्र लीलाव्यापारके लिये और विभिन्न रुचि, स्वभाव तथा अधिकारसम्पन्न साधकोंके कल्याणके लिये अनन्त विचित्र रूपोंमें नित्य प्रकट हैं। भगवान्‌के ये सभी रूप नित्य, पूर्णतम और सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, अपनी-अपनी रुचि और निष्ठाके अनुसार जो जिस रूप और नामको इष्ट बनाकर भजता है, वह उसी दिव्य नाम और रूपमें समस्त रूपमय भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है, क्योंकि भगवान्‌के सभी रूप पूर्णतम हैं और उन समस्त रूपोंमें एक ही भगवान् लीला कर रहे हैं। व्रतों तथा दान आदिके सम्बन्धमें भी यही बात है। अतएव श्रद्धा एवं निष्ठाकी दृष्टिसे साधकके कल्याणार्थ जहाँ जिसका वर्णन है, वहाँ उसको सर्वोपरि बताना युक्तियुक्त ही है और परिपूर्णतम भगवत्सत्ताकी दृष्टिसे सत्य तो है ही। तीर्थोंकी बात यह है कि भगवान्‌के विभिन्न नाम-रूपोंकी उपासना करनेवाले संतों, महात्माओं और भक्तोंने अपनी कल्याणमयी सत्साधनाके प्रतापसे विभिन्न रूपमय भगवान्‌को अपनी-अपनी रुचिके अनुसार नाम-रूपमें अपने ही साधन-स्थानमें प्राप्त कर लिया और वहीं उनकी प्रतिष्ठा की। एक ही भगवान् अपनी पूर्णतम स्वरूपशक्तिके साथ अनन्त स्थानोंमें, अनन्त नाम-रूपोंमें प्रतिष्ठित हुए। भगवान्‌के प्रतिष्ठास्थान ही तीर्थ हैं, जो श्रद्धा, निष्ठा और रुचिके अनुसार सेवन करनेवालेको यथायोग्य फल देते हैं, यही तीर्थ-रहस्य है। इस दृष्टिसे प्रत्येक तीर्थको सर्वोपरि बतलाना सर्वथा उचित ही है।

सब एक है, इसकी पुष्टि तो इसीसे भलीभाँति हो जाती है कि शैव कहे जानेवाले पुराणोंमें विष्णुकी और वैष्णवपुराणमें शिवकी महिमा गायी गयी है तथा दोनोंको एक बताया गया है। इसी प्रकार अन्य पुराण-विशेषके विशिष्ट प्रधान देवने अपने ही श्रीमुखसे अन्य पुराणोंके प्रधान देवताको अपना ही स्वरूप बतलाया है। यह भविष्यपुराण सौरपुराण है, जिसमें भगवान् सूर्यनारायणकी अनन्त महिमाका वर्णन प्राप्त होता है। परंतु इसी पुराणके अन्तमें अध्याय २०५ में सदाचारका निरूपण हुआ है। इसमें यह बात आयी है—भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे कहते हैं—हमने व्रतोंमें अनेक देवताओंका पूजन आदि कहा, परंतु वास्तवमें इन देवोंमें कोई भेद नहीं। जो ब्रह्मा है, वही विष्णु, जो विष्णु है वही शिव है, जो शिव है वही सूर्य है, जो सूर्य है वही अग्नि, जो अग्नि है वही कार्तिकेय, जो कार्तिकेय है वही गणपति अर्थात् इन देवताओंमें कोई भेद नहीं। इसी प्रकार गौरी, लक्ष्मी, सावित्री आदि शक्तियोंमें भी भेदका लेश नहीं। चाहे जिस देवी-देवताके उद्देश्यसे व्रत करे, पर भेदबुद्धि न रखे, क्योंकि सब जगत् शिव-शक्तिमय है[1]।

किसी देवताका आश्रय लेकर नियम-व्रत आदि करे,

१-यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः। महेश्वरः स्मृतः सूर्यः सूर्यः पावक उच्यते॥

परंतु जितने व्रत-दान आदि बताये गये हैं, वे सब आचारयुक्त पुरुषके सफल होते हैं। आचारहीन पुरुषको वेद पवित्र नहीं करते, चाहे उसने छहों अङ्गोंसहित क्यों न पढ़ा हो। जिस भाँति पंख जमनेपर पक्षियोंके बच्चे घोंसलेको छोड़कर उड़ जाते हैं, उसी भाँति आचारहीन पुरुषको वेद भी मृत्युके समय त्याग देते हैं। जैसे अशुद्ध पात्रमें जल अथवा श्वानके चर्ममें दुग्ध रहनेसे अपवित्र हो जाता है, उसी प्रकार आचारहीनमें स्थित शास्त्र भी व्यर्थ है। आचार ही धर्म और कुलका मूल है—जिन पुरुषोंमें आचार होता है वे ही सत्पुरुष कहलाते हैं। सत्पुरुषोंका जो आचरण है, उसीका नाम सदाचार है। जो पुरुष अपना कल्याण चाहे उसे अवश्य ही सदाचारी होना चाहिये।

भविष्यपुराणमें इन्हीं सब विषयोंका प्रतिपादन बड़े समारोहसे सम्पन्न हुआ है। पाठकोंकी सुविधाके लिये पुराणका एक विहङ्गमावलोकन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

—राधेश्याम खेमका

अक्ष्युपनिषद्

(नेत्ररोगहारी विद्या)

हरिः ॐ। अथ ह साङ्कृतिर्भगवानादित्यलोकं जगाम। स आदित्यं नत्वा चक्षुष्मतीविद्यया तमस्तुवत्। ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः। ॐ खेचराय नमः। ॐ महासेनाय नमः। ॐ तमसे नमः। ॐ रजसे नमः। ॐ सत्त्वाय नमः। ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय। हंसो भगवाञ्छुचिरूपः अप्रतिरूपः। विश्वरूपं घृणिनं जातवेदसं हिरण्मयं ज्योतीरूपं तपन्तम्। सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः पुरः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः। ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायादित्यायाक्षितेजसेऽहोऽवाहिनि वाहिनि स्वाहेति।

एवं चक्षुष्मतीविद्यया स्तुतः श्रीसूर्यनारायणः सुप्रीतोऽब्रवीच्चक्षुष्मतीविद्यां ब्राह्मणो यो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति। न तस्य कुलेऽन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वाथ विद्यासिद्धिर्भवति। य एवं वेद स महान् भवति।

× × ×

एक समय भगवान् साङ्कृति आदित्यलोकमें गये। वहाँ सूर्यनारायणको प्रणाम करके उन्होंने चक्षुष्मती विद्याके द्वारा उनकी स्तुति की। चक्षु-इन्द्रियके प्रकाशक भगवान् श्रीसूर्यनारायणको नमस्कार है। आकाशमें विचरण करनेवाले सूर्यनारायणको नमस्कार है। महासेन (सहस्रों किरणोंकी भारी सेनावाले) भगवान् श्रीसूर्यनारायणको नमस्कार है। तमोगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। रजोगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। सत्त्वगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। भगवन्! आप मुझे असत्से सत्की ओर ले चलिये, मुझे अन्धकारसे प्रकाशकी ओर ले चलिये, मुझे मृत्युसे अमृतकी ओर ले चलिये। भगवान् सूर्य शुचिरूप हैं और वे अप्रतिरूप भी हैं—उनके रूपकी कहीं भी तुलना नहीं है। जो अखिल रूपोंको धारण कर रहे हैं तथा रश्मिमालाओंसे मण्डित हैं, उन जातवेदा (सर्वज्ञ, अग्निस्वरूप) स्वर्णसदृश प्रकाशवाले ज्योतिःस्वरूप और तपनेवाले (भगवान् भास्करको हम स्मरण करते हैं।) ये सहस्रों किरणोंवाले और शत-शत प्रकारसे सुशोभित भगवान् सूर्यनारायण समस्त प्राणियोंके समक्ष (उनकी भलाईके लिये) उदित हो रहे हैं। जो हमारे नेत्रोंके प्रकाश हैं, उन अदितिनन्दन भगवान् श्रीसूर्यको नमस्कार है। दिनका भार वहन करनेवाले विश्ववाहक सूर्यदेवके प्रति हमारा सब कुछ सादर समर्पित है।

इस प्रकार चक्षुष्मतीविद्याके द्वारा स्तुति किये जानेपर भगवान् सूर्यनारायण अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—'जो ब्राह्मण इस चक्षुष्मतीविद्याका नित्य पाठ करता है, उसे आँखका रोग नहीं होता, उसके कुलमें कोई अंधा नहीं होता। आठ ब्राह्मणोंको इसका ग्रहण करा देनेपर इस विद्याकी सिद्धि होती है। जो इस प्रकार जानता है, वह महान् हो जाता है।

पावकः कार्तिकेयोऽसौ कार्तिकेयो विनायकः। गौरी लक्ष्मीश्च सावित्री शक्तिभेदाः प्रकीर्तिताः॥
देवं देवीं समुद्दिश्य यः करोति व्रतं नरः। न भेदस्तत्र मन्तव्यः शिवशक्तिमयं जगत्॥ (उत्तरपर्व २०५। ११—१३)

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

संक्षिप्त भविष्यपुराण

ब्राह्मपर्व

व्यास-शिष्य महर्षि सुमन्तु एवं राजा शतानीकका संवाद, भविष्यपुराणकी महिमा एवं परम्परा, सृष्टि-वर्णन, चारों वेद, पुराण एवं चारों वर्णोंकी उत्पत्ति, चतुर्विध सृष्टि, काल-गणना, युगोंकी संख्या, उनके धर्म तथा संस्कार

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

'बदरिकाश्रमनिवासी प्रसिद्ध ऋषि श्रीनारायण तथा श्रीनर (अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके नित्य-सखा नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन), उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनकी लीलाओंके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार कर जय[1]—आसुरी सम्पत्तियोंका नाश करके अन्तःकरणपर दैवी सम्पत्तियोंको विजय प्राप्त करानेवाले वाल्मीकीय रामायण, महाभारत एवं अन्य सभी इतिहास-पुराणादि सद्ग्रन्थों-का पाठ करना चाहिये।'

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति॥

'पराशरके पुत्र तथा सत्यवतीके हृदयको आनन्दित करनेवाले भगवान् व्यासकी जय हो, जिनके मुखकमलसे निःसृत अमृतमयी वाणीका यह सम्पूर्ण विश्व पान करता है।'

यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय।
पुण्यां भविष्यसुकथां शृणुयात् समग्रां
पुण्यं समं भवति तस्य च तस्य चैव॥

'वेदादि शास्त्रोंके जाननेवाले तथा अनेक विषयोंके मर्मज्ञ विद्वान् ब्राह्मणको स्वर्णजटित सींगोंवाली सैकड़ों गौओंको दान देनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, ठीक उतना ही पुण्य इस भविष्य-महापुराणकी उत्तम कथाओंके श्रवण करनेसे प्राप्त होता है।'

एक समय व्यासजीके शिष्य महर्षि सुमन्तु तथा वसिष्ठ पराशर, जैमिनि, याज्ञवल्क्य, गौतम, वैशम्पायन, शौनक, अङ्गिरा और भारद्वाजादि महर्षिगण पाण्डववंशमें समुत्पन्न महाबलशाली राजा शतानीककी सभामें गये। राजाने उन ऋषियोंका अर्घ्यादिसे विधिवत् स्वागत-सत्कार किया और उन्हें उत्तम आसनोंपर बैठाया तथा भलीभाँति उनका पूजन कर विनयपूर्वक इस प्रकार प्रार्थना की—'हे महात्माओं! आपलोगोंके आगमनसे मेरा जन्म सफल हो गया। आपलोगोंके स्मरणमात्रसे ही मनुष्य पवित्र हो जाता है, फिर आपलोग मुझे दर्शन देनेके लिये यहाँ पधारे हैं, अतः आज मैं धन्य हो गया। आपलोग कृपा करके मुझे उन पवित्र एवं पुण्यमयी धर्मशास्त्रकी कथाओंको सुनायें, जिनके सुननेसे मुझे परमगतिकी प्राप्ति हो।

ऋषियोंने कहा—हे राजन्! इस विषयमें आप हम सबके गुरु, साक्षात् नारायणस्वरूप भगवान् वेदव्याससे निवेदन करें। वे कृपालु हैं, सभी प्रकारके शास्त्रोंके और विद्याओंके ज्ञाता हैं। जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है, उस 'महाभारत' ग्रन्थके रचयिता भी यही हैं।

राजा शतानीकने ऋषियोंके कथनानुसार सभी शास्त्रोंके जाननेवाले भगवान् वेदव्याससे प्रार्थनापूर्वक जिज्ञासा की—प्रभो! मुझे आप धर्ममयी पुण्य-कथाओंका श्रवण करायें, जिससे मैं पवित्र हो जाऊँ और इस संसार-सागरसे मेरा

१-'जय' शब्दकी व्याख्या प्रायः कई पुराणोंमें आयी है। भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वके चौथे अध्याय (श्लोक ८६ से ८८) में इसे विस्तारसे समझाया गया है, वहाँ देखना चाहिये।

उद्धार हो जाय।

व्यासजीने कहा—'राजन्! यह मेरा शिष्य सुमन्तु महान् तेजस्वी एवं समस्त शास्त्रोंका ज्ञाता है, यह आपकी जिज्ञासाको पूर्ण करेगा।' मुनियोंने भी इस बातका अनुमोदन किया। तदनन्तर राजा शतानीकने महामुनि सुमन्तुसे उपदेश करनेके लिये प्रार्थना की—हे द्विजश्रेष्ठ! आप कृपाकर उन पुण्यमयी कथाओंका वर्णन करें, जिनके सुननेसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और शुभ फलोंकी प्राप्ति होती है।

महामुनि सुमन्तु बोले—राजन्! धर्मशास्त्र सबको पवित्र करनेवाले हैं। उनके सुननेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। बताओ, तुम्हारी क्या सुननेकी इच्छा है?

राजा शतानीकने कहा—ब्राह्मणदेव! वे कौनसे धर्मशास्त्र हैं, जिनके सुननेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! मनु, विष्णु, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शङ्ख, लिखित, हारीत तथा अत्रि आदि ऋषियोंद्वारा रचित मन्वादि बहुत-से धर्मशास्त्र हैं। इन धर्मशास्त्रोंको सुनकर एवं उनके रहस्योंको भलीभाँति हृदयङ्गमकर मनुष्य देवलोकमें जाकर परम आनन्दको प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

शतानीकने कहा—प्रभो! जिन धर्मशास्त्रोंको आपने कहा है, इन्हें मैंने सुना है। अब इन्हें पुनः सुननेकी इच्छा नहीं है। कृपाकर आप चारों वर्णोंके कल्याणके लिये जो उपयुक्त धर्मशास्त्र हो उसे मुझे बतायें।

सुमन्तु मुनि बोले—हे महाबाहो! संसारमें निमग्न प्राणियोंके उद्धारके लिये अठारह महापुराण, श्रीरामकथा तथा महाभारत आदि सद्ग्रन्थ नौकारूपी साधन हैं। अठारह महापुराणों तथा आठ प्रकारके व्याकरणोंको भलीभाँति समझकर सत्यवतीके पुत्र वेदव्यासजीने 'महाभारतसंहिता'की रचना की, जिसके सुननेसे मनुष्य ब्रह्महत्याके पापोंसे मुक्त हो जाता है। इनमें आठ प्रकारके व्याकरण ये हैं—ब्राह्म, ऐन्द्र, याम्य, रौद्र, वायव्य, वारुण, सावित्र्य तथा वैष्णव। ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड तथा ब्रह्माण्ड—ये अठारह महापुराण हैं। ये सभी चारों वर्णोंके लिये उपकारक हैं। इनमेंसे आप क्या सुनना चाहते हैं?

राजा शतानीकने कहा—हे विप्र! मैंने महाभारत सुना है तथा श्रीरामकथा भी सुनी है, अन्य पुराणोंको भी सुना है, किंतु भविष्यपुराण नहीं सुना है। अतः विप्रश्रेष्ठ! आप भविष्य-पुराणको मुझे सुनायें, इस विषयमें मुझे महत् कौतूहल है।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! आपने बहुत उत्तम बात पूछी है। मैं आपको भविष्यपुराणकी कथा सुनाता हूँ, जिसके श्रवण करनेसे ब्रह्महत्या आदि बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं और अश्वमेधादि यज्ञोंका पुण्यफल प्राप्त होता है तथा अन्तमें सूर्यलोककी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं। यह उत्तम पुराण पहले ब्रह्माजीद्वारा कहा गया है। विद्वान् ब्राह्मणको इसका सम्यक् अध्ययनकर अपने शिष्यों तथा चारों वर्णोंके लिये उपदेश करना चाहिये। इस पुराणमें श्रौत एवं स्मार्त सभी धर्मोंका वर्णन हुआ है। यह पुराण परम मङ्गलप्रद, सद्बुद्धिको बढ़ानेवाला, यश एवं कीर्ति प्रदान करनेवाला तथा परमपद—मोक्ष प्राप्त करानेवाला है—

इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्धनम्।
इदं यशस्यं सततमिदं निःश्रेयसं परम्॥

(ब्राह्मपर्व १।७९)

इस भविष्यमहापुराणमें सभी धर्मोंका संनिवेश हुआ है तथा सभी कर्मोंके गुणों और दोषोंके फलोंका निरूपण किया गया है। चारों वर्णों तथा आश्रमोंके सदाचारका भी वर्णन किया गया है, क्योंकि 'सदाचार ही श्रेष्ठ धर्म है' ऐसा श्रुतियोंने कहा है, इसलिये ब्राह्मणको नित्य आचारका पालन करना चाहिये, क्योंकि सदाचारसे विहीन ब्राह्मण किसी भी प्रकार वेदके फलको प्राप्त नहीं कर सकता। सदा आचारका पालन करनेपर तो वह सम्पूर्ण फलोंका अधिकारी हो जाता है, ऐसा कहा गया है। सदाचारको ही मुनियोंने धर्म तथा तपस्याओंका मूल आधार माना है, मनुष्य भी इसीका आश्रय लेकर धर्माचरण करते हैं। इस प्रकार इस भविष्यमहापुराणमें आचारका वर्णन किया गया है[1]। तीनों लोकोंको उत्पत्ति,

---

१-आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तश्च नरोत्तम। तस्मादस्मिन् समायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः॥

विवाहादि संस्कार-विधि, स्त्री-पुरुषोंके लक्षण, देवपूजाका विधान, राजाओंके धर्म एवं कर्तव्यका निर्णय, सूर्यनारायण, विष्णु, रुद्र, दुर्गा तथा सत्यनारायणका माहात्म्य एवं पूजा-विधान, विविध तीर्थोंका वर्णन, आपद्धर्म तथा प्रायश्चित्त-विधि, संध्याविधि, स्नान, तर्पण, वैश्वदेव, भोजनविधि, जातिधर्म, कुलधर्म, वेदधर्म तथा यज्ञ-मण्डलमें अनुष्ठित होनेवाले विविध यज्ञोंका वर्णन हुआ है।

हे कुरुश्रेष्ठ शतानीक! इस महापुराणको ब्रह्माजीने शंकरको, शंकरने विष्णुको, विष्णुने नारदको, नारदने इन्द्रको, इन्द्रने पराशरको तथा पराशरने व्यासको सुनाया और व्याससे मैंने प्राप्त किया। इस प्रकार परम्परा-प्राप्त इस उत्तम भविष्यमहापुराणको मैं आपसे कहता हूँ, इसे सुनें।

इस भविष्यमहापुराणकी श्लोक-संख्या पचास हजार है[1]। इसे भक्तिपूर्वक सुननेवाला ऋद्धि, वृद्धि तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको प्राप्त करता है। ब्रह्माजीद्वारा प्रोक्त इस महापुराणमें पाँच पर्व कहे गये हैं—(१) ब्राह्म, (२) वैष्णव, (३) शैव, (४) त्वाष्ट्र तथा (५) प्रतिसर्गपर्व। पुराणके सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित—ये पाँच लक्षण बताये गये हैं तथा इसमें चौदह विद्याओंका भी वर्णन है[2]। चौदह विद्याएँ इस प्रकार हैं—चार वेद (ऋक्, यजुः, साम, अथर्व), छः वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष), मीमांसा, न्याय, पुराण तथा धर्मशास्त्र। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा अर्थशास्त्र— इन चारोंको मिलानेसे अठारह विद्याएँ होती हैं।

सुमन्तु मुनि पुनः बोले—हे राजन्! अब मैं भूतसर्ग अर्थात् समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका वर्णन करता हूँ, जिसके सुननेसे सभी पापोंकी निवृत्ति हो जाती है और मनुष्य परम शान्तिको प्राप्त करता है।

हे तात! पूर्वकालमें यह सारा संसार अन्धकारसे व्याप्त था, कोई पदार्थ दृष्टिगत नहीं होता था, अविज्ञेय था, अतर्क्य था और प्रसुप्त-सा था। उस समय सूक्ष्म अतीन्द्रिय और सर्वभूतमय उस परब्रह्म परमात्मा भगवान् भास्करने अपने शरीरसे नानाविध सृष्टि करनेकी इच्छा की और सर्वप्रथम परमात्माने जलको उत्पन्न किया तथा उसमें अपने वीर्यरूप शक्तिका आधान किया। इससे देवता, असुर, मनुष्य आदि सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ। वह वीर्य जलमें गिरनेसे अत्यन्त प्रकाशमान सुवर्णका अण्ड हो गया। उस अण्डके मध्यसे सृष्टिकर्ता चतुर्मुख लोकपितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए।

नर (भगवान्)से जलकी उत्पत्ति हुई है, इसलिये जलको नार कहते हैं। वह नार जिसका पहले अयन (स्थान) हुआ, उसे नारायण कहते हैं। ये सदसद्रूप, अव्यक्त एवं नित्यकारण हैं, इनसे जिस पुरुष-विशेषकी सृष्टि हुई, वे लोकमें ब्रह्माके नामसे प्रसिद्ध हुए। ब्रह्माजीने दीर्घकालतक तपस्या की और उस अण्डके दो भाग कर दिये। एक भागसे भूमि और दूसरेसे आकाशकी रचना की, मध्यमें स्वर्ग, आठों दिशाओं तथा वरुणका निवास-स्थान अर्थात् समुद्र बनाया। फिर महदादि तत्त्वोंकी तथा सभी प्राणियोंकी रचना की।

परमात्माने सर्वप्रथम आकाशको उत्पन्न किया और फिर क्रमसे वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन तत्त्वोंकी रचना की। सृष्टिके आदिमें ही ब्रह्माजीने उन सबके नाम और कर्म वेदोंके निर्देशानुसार ही नियत कर उनकी अलग-अलग संस्थाएँ बना दीं। देवताओंके तुषित आदि गण, ज्योतिष्टोमादि सनातन यज्ञ, ग्रह, नक्षत्र, नदी, समुद्र, पर्वत, सम एवं विषम भूमि आदि उत्पन्न कर कालके विभागों (संवत्सर, दिन, मास आदि)और ऋतुओं आदिकी रचना की। काम, क्रोध आदिकी रचनाकर विविध कर्मोंके सदसद्विवेकके लिये धर्म और

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते। आचारेण च संयुक्तः सम्पूर्णफलभाक् स्मृतः॥
एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम्। सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम्॥
अन्ये च मानवा राजन्नाचारं संश्रिताः सदा। एवमस्मिन् पुराणे तु आचारस्य तु कीर्तनम्॥ (ब्राह्मपर्व १।८१-८४)

१-वर्तमान समयमें भविष्यपुराणका जो संस्करण उपलब्ध है, उसमें ब्राह्म, मध्यम, प्रतिसर्ग तथा उत्तर नामक चार सर्ग मिलते हैं और श्लोक-संख्या भी पचास हजारके स्थानपर लगभग अट्ठाईस हजार है। इसमें भी कुछ अंश प्रक्षिप्त माने जाते हैं।

२-सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च॥
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्। चतुर्दशभिर्विद्याभिर्भूषितं कुरुनन्दन॥ (ब्राह्मपर्व २।४-५)

अधर्मकी रचना की और नानाविध प्राणिजगत्‌की सृष्टिकर उनको सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वोंसे संयुक्त किया। जो कर्म जिसने किया था तदनुसार उनकी (इन्द्र, चन्द्र, सूर्य आदि) पदोंपर नियुक्ति हुई। हिंसा, अहिंसा, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य आदि जीवोंका जैसा स्वभाव था, वह वैसे ही उनमें प्रविष्ट हुआ, जैसे विभिन्न ऋतुओंमें वृक्षोंमें पुष्प, फल आदि उत्पन्न होते हैं।

इस लोककी अभिवृद्धिके लिये ब्रह्माजीने अपने मुखसे ब्राह्मण, बाहुओंसे क्षत्रिय, ऊरु अर्थात् जंघासे वैश्य और चरणोंसे शूद्रोंको उत्पन्न किया। ब्रह्माजीके चारों मुखोंसे चार वेद उत्पन्न हुए। पूर्व-मुखसे ऋग्वेद प्रकट हुआ, उसे वसिष्ठ मुनिने ग्रहण किया। दक्षिण-मुखसे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ, उसे महर्षि याज्ञवल्क्यने ग्रहण किया। पश्चिम-मुखसे सामवेद निःसृत हुआ, उसे गौतमऋषिने धारण किया और उत्तर-मुखसे अथर्ववेद प्रादुर्भूत हुआ, जिसे लोकपूजित महर्षि शौनकने ग्रहण किया। ब्रह्माजीके लोकप्रसिद्ध पञ्चम (ऊर्ध्व) मुखसे अठारह पुराण, इतिहास और यमादि स्मृति-शास्त्र उत्पन्न हुए[1]।

इसके बाद ब्रह्माजीने अपने देहके दो भाग किये। दाहिने भागको पुरुष तथा बायें भागको स्त्री बनाया और उसमें विराट् पुरुषकी सृष्टि की। उस विराट् पुरुषने नाना प्रकारकी सृष्टि रचनेकी इच्छासे बहुत कालतक तपस्या की और सर्वप्रथम दस ऋषियोंको उत्पन्न किया, जो प्रजापति कहलाये। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) नारद, (२) भृगु, (३) वसिष्ठ, (४) प्रचेता, (५) पुलह, (६) क्रतु, (७) पुलस्त्य, (८) अत्रि, (९) अङ्गिरा और (१०) मरीचि। इसी प्रकार अन्य महातेजस्वी ऋषि भी उत्पन्न हुए। अनन्तर देवता, ऋषि, दैत्य और राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, पितर, मनुष्य, नाग, सर्प आदि योनियोंके अनेक गण उत्पन्न किये और उनके रहनेके स्थानोंको बनाया। विद्युत्, मेघ, वज्र, इन्द्रधनुष, धूमकेतु (पुच्छल तारे), उल्का, निर्घात (बादलोंकी गड़गड़ाहट) और छोटे-बड़े नक्षत्रोंको उत्पन्न किया। मनुष्य, किंनर, अनेक प्रकारके मत्स्य, वराह, पक्षी, हाथी, घोड़े, पशु, मृग, कृमि, कीट, पतंग आदि छोटे-बड़े जीवोंको उत्पन्न किया। इस प्रकार उन भास्करदेवने त्रिलोकीकी रचना की।

हे राजन्! इस सृष्टिकी रचनाकर सृष्टिमें जिन-जिन जीवोंका जो-जो कर्म और क्रम कहा गया है, उसका मैं वर्णन करता हूँ, आप सुनें।

हाथी, व्याल, मृग और विविध पशु, पिशाच, मनुष्य तथा राक्षस आदि जरायुज (गर्भसे उत्पन्न होनेवाले) प्राणी हैं। मत्स्य, कछुवे, सर्प, मगर तथा अनेक प्रकारके पक्षी अण्डज (अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले) हैं। मक्खी, मच्छर, जूँ, खटमल आदि जीव स्वेदज हैं अर्थात् पसीनेकी उष्मासे उत्पन्न होते हैं। भूमिको उद्भेद कर उत्पन्न होनेवाले वृक्ष, ओषधियाँ आदि उद्भिज्ज सृष्टि हैं। जो फलके पकनेतक रहें और पीछे सूख जायँ या नष्ट हो जायँ तथा बहुत फूल और फलवाले वृक्ष हैं वे ओषधि कहलाते हैं और जो पुष्पके आये बिना ही फलते हैं, वे वनस्पति हैं तथा जो फूलते और फलते हैं उन्हें वृक्ष कहते हैं। इसी प्रकार गुल्म, वल्ली, वितान आदि भी अनेक भेद होते हैं। ये सब बीजसे अथवा काण्डसे अर्थात् वृक्षकी छोटी-सी शाखा काटकर भूमिमें गाड़ देनेसे उत्पन्न होते हैं। ये वृक्ष आदि भी चेतना-शक्तिसम्पन्न हैं और इन्हें सुख-दुःखका ज्ञान रहता है, परंतु पूर्वजन्मके कर्मोंके कारण तमोगुणसे आच्छन्न रहते हैं, इसी कारण मनुष्योंकी भाँति बातचीत आदि करनेमें समर्थ नहीं हो पाते[2]।

इस प्रकार यह अचिन्त्य चराचर-जगत् भगवान् भास्करसे उत्पन्न हुआ है। जब वह परमात्मा निद्राका आश्रय ग्रहण कर शयन करता है, तब यह संसार उसमें लीन हो जाता है और जब निद्राका त्याग करता है अर्थात् जागता है, तब सब सृष्टि उत्पन्न होती है और समस्त जीव पूर्वकर्मानुसार अपने-अपने

१-यत्तन्मुखं महाबाहो पञ्चमं लोकविश्रुतम्। अष्टादश पुराणानि सेतिहासानि भारत॥
निर्गतानि ततस्तस्मान्मुखात् कुरुकुलोद्वह। तथान्याः स्मृतयश्चापि यमाद्या लोकपूजिताः॥ (ब्राह्मपर्व २। ५६-५७)

२-ओषध्यः फलपाकान्ता नानाविधफलोपगाः। अपुष्पा फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः॥
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः। तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना॥
अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः। (ब्राह्मपर्व २। ७३—७५)

कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं। वह अव्यय परमात्मा सम्पूर्ण चराचर संसारको जाग्रत् और शयन दोनों अवस्थाओंद्वारा बार-बार उत्पन्न और विनष्ट करता रहता है।

परमेश्वर कल्पके प्रारम्भमें सृष्टि और कल्पके अन्तमें प्रलय करते हैं। कल्प परमेश्वरका दिन है। इस कारण परमेश्वरके दिनमें सृष्टि और रात्रिमें प्रलय होता है। हे राजा शतानीक! अब आप काल-गणनाको सुनें—

अठारह निमेष (पलक गिरनेके समयको निमेष कहते हैं) की एक काष्ठा होती है अर्थात् जितने समयमें अठारह बार पलकोंका गिरना हो, उतने कालको काष्ठा कहते हैं। तीस काष्ठाकी एक कला, तीस कलाका एक क्षण, बारह क्षणका एक मुहूर्त, तीस मुहूर्तका एक दिन-रात, तीस दिन-रातका एक महीना, दो महीनोंकी एक ऋतु, तीन ऋतुका एक अयन तथा दो अयनोंका एक वर्ष होता है। इस प्रकार सूर्यभगवान्‌के द्वारा दिन-रात्रिका काल-विभाग होता है। सम्पूर्ण जीव रात्रिको विश्राम करते हैं और दिनमें अपने-अपने कर्ममें प्रवृत्त होते हैं।

पितरोंका दिन-रात मनुष्योंके एक महीनेके बराबर होता है अर्थात् शुक्ल पक्षमें पितरोंकी रात्रि और कृष्ण पक्षमें दिन होता है। देवताओंका एक अहोरात्र (दिन-रात) मनुष्योंके एक वर्षके बराबर होता है अर्थात् उत्तरायण दिन तथा दक्षिणायन रात्रि कही जाती है। हे राजन्! अब आप ब्रह्माजीके रात-दिन और एक-एक युगके प्रमाणको सुनें—सत्ययुग चार हजार वर्षका है, उसके संध्यांशके चार सौ वर्ष तथा संध्याके चार सौ वर्ष मिलाकर इस प्रकार चार हजार आठ सौ दिव्य वर्षोंका एक सत्ययुग होता है[1]। इसी प्रकार त्रेतायुग तीन हजार वर्षोंका तथा संध्या और संध्यांशके छः सौ वर्ष कुल तीन हजार छः सौ वर्ष, द्वापर दो हजार वर्षोंका संध्या तथा संध्यांशके चार सौ वर्ष कुल दो हजार चार सौ वर्ष तथा कलियुग एक हजार वर्ष तथा संध्या और संध्यांशके दो सौ वर्ष मिलाकर बारह सौ वर्षके मानका होता है। ये सब दिव्य वर्ष मिलाकर बारह हजार दिव्य वर्ष होते हैं। यही देवताओंका एक युग कहलाता है।

देवताओंके हजार युग होनेसे ब्रह्माजीका एक दिन होता है और यही प्रमाण उनकी रात्रिका है। जब ब्रह्माजी अपनी रात्रिके अन्तमें सोकर उठते हैं तब सत्-असत्-रूप मनको उत्पन्न करते हैं। वह मन सृष्टि करनेकी इच्छासे विकारको प्राप्त होता है, तब उससे प्रथम आकाश-तत्त्व उत्पन्न होता है। आकाशका गुण शब्द कहा गया है। विकारयुक्त आकाशसे सब प्रकारके गन्धको वहन करनेवाले पवित्र वायुकी उत्पत्ति होती है, जिसका गुण स्पर्श है। इसी प्रकार विकारवान् वायुसे अन्धकारका नाश करनेवाला प्रकाशयुक्त तेज उत्पन्न होता है, जिसका गुण रूप है। विकारवान् तेजसे जल, जिसका गुण रस है और जलसे गन्धगुणवाली पृथ्वी उत्पन्न होती है। इसी प्रकार सृष्टिका क्रम चलता रहता है।

पूर्वमें बारह हजार दिव्य वर्षोंका जो एक दिव्य युग बताया गया है, वैसे ही एकहत्तर युग होनेसे एक मन्वन्तर होता है। ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर व्यतीत होते हैं।

सत्ययुगमें धर्मके चारों पाद वर्तमान रहते हैं अर्थात् सत्ययुगमें धर्म चारों चरणोंसे (अर्थात् सर्वाङ्गपूर्ण) रहता है। फिर त्रेता आदि युगोंमें धर्मका बल घटनेसे धर्म क्रमसे एक-एक चरण घटता जाता है,—अर्थात् त्रेतामें धर्मके तीन चरण, द्वापरमें दो चरण तथा कलियुगमें धर्मका एक ही चरण बचा रहता है और तीन चरण अधर्मके रहते हैं। सत्ययुगके

---

[1] एक संक्रान्तिसे दूसरी सूर्य-संक्रान्तितकके समयको सौर मास कहते हैं। बारह सौर मासोंका एक सौर वर्ष होता है और मनुष्य-मानका यही एक सौर वर्ष देवताओंका एक अहोरात्र होता है। ऐसे ही तीस अहोरात्रोंका एक मास और बारह मासोंका एक दिव्य वर्ष होता है।

दोनों संध्याओंसहित युगोंका मान	दिव्य वर्षोंमें	सौर वर्षोंमें
१-सत्ययुगका मान	४,८००	१७,२८,०००
२-त्रेतायुगका मान	३,६००	१२,९६,०००
३-द्वापरयुगका मान	२,४००	८,६४,०००
४-कलियुगका मान	१,२००	४,३२,०००
महायुग या एक चतुर्युगी—	१२,०००	४३,२०,०००वर्ष

मनुष्य धर्मात्मा, नीरोग, सत्यवादी होते हुए चार सौ वर्षोंतक जीवन धारण करते हैं। फिर त्रेता आदि युगोंमें इन सभी वर्षोंका एक चतुर्थांश न्यून हो जाता है, यथा त्रेताके मनुष्य तीन सौ वर्ष, द्वापरके दो सौ वर्ष तथा कलियुगके एक सौ वर्षतक जीवन धारण करते हैं। इन चारों युगोंके धर्म भी भिन्न-भिन्न होते हैं। सत्ययुगमें तपस्या, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान प्रधान धर्म माना गया है।

परम द्युतिमान् परमेश्वरने सृष्टिकी रक्षाके लिये अपने मुख, भुजा, ऊरु और चरणोंसे क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चार वर्णोंको उत्पन्न किया और उनके लिये अलग-अलग कर्मोंकी कल्पना की। ब्राह्मणोंके लिये पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना यज्ञ कराना तथा दान देना और दान लेना—ये छः कर्म निश्चित किये गये हैं। पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना तथा प्रजाओंका पालन आदि कर्म क्षत्रियोंके लिये नियत किये गये हैं। पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, पशुओंकी रक्षा करना, खेती-व्यापारसे धनार्जन करना—ये काम वैश्योंके लिये निर्धारित किये गये और इन तीनों वर्णोंकी सेवा करना—यह एक मुख्य कर्म शूद्रोंका नियत किया गया है।

पुरुषकी देहमें नाभिसे ऊपरका भाग अत्यन्त पवित्र माना गया है। उसमें भी मुख प्रधान है। ब्राह्मण ब्रह्माके मुख (उत्तमाङ्ग) से उत्पन्न हुआ है, इसलिये ब्राह्मण सबसे उत्तम हैं, यह वेदकी वाणी है। ब्रह्माजीने बहुत कालतक तपस्या करके सबसे पहले देवता और पितरोंको हव्य तथा कव्य पहुँचानेके लिये और सम्पूर्ण संसारकी रक्षा करने-हेतु ब्राह्मणको उत्पन्न किया। शिरोभागसे उत्पन्न होने और वेदको धारण करनेके कारण सम्पूर्ण संसारका स्वामी धर्मतः ब्राह्मण ही है। सब भूतों (स्थावर-जङ्गमरूप पदार्थों) में प्राणी (कीट आदि) श्रेष्ठ हैं, प्राणियोंमें बुद्धिसे व्यवहार करनेवाले पशु आदि श्रेष्ठ हैं। बुद्धि रखनेवाले जीवोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं और मनुष्योंमें ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमें विद्वान्, विद्वानोंमें कृतबुद्धि और कृतबुद्धियोंमें कर्म करनेवाले तथा इनसे ब्रह्मवेत्ता—ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणका जन्म धर्म-सम्पादन करनेके लिये है और धर्माचरणसे ब्राह्मण ब्रह्मत्व तथा ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

राजा शतानीकने पूछा—हे महामुने! ब्रह्मलोक और ब्रह्मत्व अति दुर्लभ है फिर ब्राह्मणमें कौनसे ऐसे गुण होते हैं, जिनके कारण वह इन्हें प्राप्त करता है। कृपाकर आप इसका वर्णन करें।

सुमन्तु मुनि बोले—हे राजन्! आपने बहुत ही उत्तम बात पूछी है, मैं आपको वे बातें बताता हूँ, उन्हें ध्यानपूर्वक सुनें।

जिस ब्राह्मणके वेदादि शास्त्रोंमें निर्दिष्ट गर्भाधान, पुंसवन आदि अड़तालीस संस्कार विधिपूर्वक हुए हों, वही ब्राह्मण ब्रह्मलोक और ब्रह्मत्वको प्राप्त करता है। संस्कार ही ब्रह्मत्व-प्राप्तिका मुख्य कारण है, इसमें कोई संदेह नहीं।

राजा शतानीकने पूछा—महात्मन्! वे संस्कार कौनसे हैं, इस विषयमें मुझे महान् कौतूहल हो रहा है। कृपाकर आप इन्हें बतायें।

सुमन्तुजी बोले—राजन्! वेदादि शास्त्रोंमें जिन संस्कारोंका निर्देश हुआ है उनका मैं वर्णन करता हूँ—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, चार प्रकारके वेदव्रत, वेदस्नान, विवाह, पञ्चमहायज्ञ (जिनसे देवता, पितरों, मनुष्य, भूत और ब्रह्मकी तृप्ति होती है), सप्तपाकयज्ञ-संस्था—अष्टकाद्वय, पार्वण, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री (शूलगव) तथा आश्वयुजी, सप्तहविर्यज्ञ-संस्था—अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्श-पौर्णमास, चातुर्मास्य, निरूढपशुबन्ध, सौत्रामणी और सप्तसोम-संस्था—अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम—ये चालीस ब्राह्मणके संस्कार हैं। इनके साथ ही ब्राह्मणमें आठ आत्मगुण भी अवश्य होने चाहिये, जिससे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। ये आठ गुण इस प्रकार हैं—

अनसूया दया क्षान्तिरनायासं च मङ्गलम्।
अकार्पण्यं तथा शौचमस्पृहा च कुरूद्वह॥

(ब्राह्मपर्व २। १५५)

'अनसूया (दूसरोंके गुणोंमें दोष-बुद्धि नहीं रखना), दया, क्षमा, अनायास (किसी सामान्य बातके पीछे जानकी बाजी न लगाना), मङ्गल (माङ्गलिक वस्तुओंका धारण), अकार्पण्य (दीन वचन नहीं बोलना और अत्यन्त कृपण न बनना), शौच (बाह्याभ्यन्तरकी शुद्धि) और अस्पृहा—ये आठ आत्मगुण हैं।' इनकी पूरी परिभाषा इस प्रकार है—

गुणीके गुणोंको न छिपाना अर्थात् प्रकट करना, अपने गुणोंको प्रकट न करना तथा दूसरेके दोषोंको देखकर प्रसन्न न होना **अनसूया** है। अपने-परायेमें, मित्र और शत्रुमें अपने समान व्यवहार करना और दूसरेका दुःख दूर करनेकी इच्छा रखना **दया** है। मन, वचन अथवा शरीरसे कोई दुःख भी पहुँचाये तो उसपर क्रोध और वैर न करना **क्षमा** है। अभक्ष्य वस्तुका भक्षण न करना, निन्दित पुरुषोंका सङ्ग न करना और सदाचरणमें स्थित रहना **शौच** कहा जाता है। जिन शुभ कर्मोंके करनेसे शरीरको कष्ट होता है, उस कर्मको हठात् नहीं करना चाहिये, यह **अनायास** है। नित्य अच्छे कार्योंको करना और बुरे कर्मोंका परित्याग करना—यह **मङ्गल**-गुण कहलाता है। बड़े कष्ट एवं परिश्रमसे न्यायोपार्जित धनसे उदारतापूर्वक थोड़ा-बहुत नित्य दान करना **अकार्पण्य** है। ईश्वरकी कृपासे प्राप्त थोड़ी-सी सम्पत्तिमें भी संतुष्ट रहना और दूसरेके धनकी किंचित् भी इच्छा न रखना **अस्पृहा** है[1]। इन आठ गुणों और पूर्वोक्त संस्कारोंसे जो ब्राह्मण संस्कृत हो वह ब्रह्मलोक तथा ब्रह्मत्वको प्राप्त करता है। जिसकी गर्भ-शुद्धि हो, सब संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुए हों और वह वर्णाश्रम-धर्मका पालन करता हो तो उसे अवश्य मुक्ति प्राप्त होती है।

(अध्याय १-२)

गर्भाधानसे यज्ञोपवीतपर्यन्त संस्कारोंकी संक्षिप्त विधि, अन्नप्रशंसा तथा भोजन-विधिके प्रसंगमें धनवर्धनकी कथा, हाथोंके तीर्थ एवं आचमन-विधि

राजा शतानीकने कहा—हे मुने! आपने मुझे जातकर्मादि संस्कारोंके विषयमें बताया, अब आप इन संस्कारोंके लक्षण तथा चारों वर्ण एवं आश्रमके धर्म बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूडाकर्म तथा यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंके करनेसे द्विजातियोंके बीज-सम्बन्धी तथा गर्भ-सम्बन्धी सभी दोष निवृत्त हो जाते हैं। वेदाध्ययन, व्रत, होम, त्रैविद्य व्रत, देवर्षि-पितृ-तर्पण, पुत्रोत्पादन, पञ्च महायज्ञ और ज्योतिष्टोमादि यज्ञोंके द्वारा यह शरीर ब्रह्म-प्राप्तिके योग्य हो जाता है। अब इन संस्कारोंकी विधिको आप संक्षेपमें सुनें—

पुरुषका जातकर्म-संस्कार नालच्छेदनसे पहिले किया जाता है। इसमें वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक बालकको सुवर्ण, मधु और घृतका प्राशन कराया जाता है। दसवें दिन, बारहवें दिन, अठारहवें दिन अथवा एक मास पूरा होनेपर शुभ तिथि-मुहूर्त और शुभ नक्षत्रमें नामकरण-संस्कार किया जाता है। ब्राह्मणका नाम मङ्गलवाचक रखना चाहिये, जैसे शिवशर्मा। क्षत्रियका बलवाचक जैसे इन्द्रवर्मा। वैश्यका धनयुक्त जैसे धनवर्धन और शूद्रका भी यथाविधि देवदासादि नाम रखना चाहिये। स्त्रियोंका नाम ऐसा रखना चाहिये, जिसके बोलनेमें कष्ट न हो, क्रूर न हो, अर्थ स्पष्ट और अच्छा हो, जिसके सुननेसे मन प्रसन्न हो तथा मङ्गलसूचक एवं आशीर्वादयुक्त हो और जिसके अन्तमें आकार, ईकार आदि दीर्घ स्वर हों। जैसे यशोदादेवी आदि।

जन्मसे बारहवें दिन अथवा चतुर्थ मासमें बालकको घरसे बाहर निकालना चाहिये, इसे निष्क्रमण कहते हैं। छठे मासमें बालकका अन्नप्राशन-संस्कार करना चाहिये। पहले या

१-न गुणान् गुणिनो हन्ति न स्तौत्यात्मगुणानपि। प्रहृष्यते नान्यदोषैरनसूया प्रकीर्तिता॥
अपरे बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा। आत्मवद्वर्तनं यत् स्यात् सा दया परिकीर्तिता॥
वाचा मनसि काये च दुःखेनोत्पादितेन च। न कुप्यति न चाप्रीतिः सा क्षमा परिकीर्तिता॥
अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः। आचारे च व्यवस्थानं शौचमेतत् प्रकीर्तितम्॥
शरीरं पीड्यते येन शुभेनापि च कर्मणा। अत्यन्तं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते॥
प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम्। एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तं मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः॥
स्तोकादपि प्रदातव्यमदीनेनान्तरात्मना। अहन्यहनि यत्किंचिदकार्पण्यं तदुच्यते॥
यथोत्पन्नेन संतुष्टः स्वल्पेनाप्यथ वस्तुना। अहिंसया परस्वेषु साऽस्पृहा परिकीर्तिता॥ (ब्राह्मपर्व २।१५७—१६४)

तीसरे वर्षमें मुण्डन-संस्कार करना चाहिये। गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका, ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियका और बारहवें वर्षमें वैश्यका यज्ञोपवीत-संस्कार करना चाहिये। परंतु ब्रह्मतेजकी इच्छावाला ब्राह्मण पाँचवें वर्षमें, बलकी इच्छावाला क्षत्रिय छठे वर्षमें और धनकी कामनावाला वैश्य आठवें वर्षमें अपने-अपने बालकोंका उपनयन-संस्कार सम्पन्न करे। सोलह वर्षतक ब्राह्मण, बाईस वर्षतक क्षत्रिय और चौबीस वर्षतक वैश्य गायत्री (सावित्री) के अधिकारी रहते हैं, इसके अनन्तर यथासमय संस्कार न होनेसे गायत्रीके अधिकारी नहीं रहते और ये 'व्रात्य' कहलाते हैं। फिर जबतक व्रात्यस्तोम नामक यज्ञसे उनकी शुद्धि नहीं की जाती, तबतक उनका शरीर गायत्री-दीक्षाके योग्य नहीं बनता। इन व्रात्योंके साथ आपत्तिमें भी वेदादि शास्त्रोंका पठन-पाठन अथवा विवाह आदिका सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये।

त्रैवर्णिक ब्रह्मचारियोंको उत्तरीयके रूपमें क्रमशः कृष्ण (कस्तूरी)-मृग-चर्म, रुरुनामक मृगका चर्म और बकरेका चर्म धारण करना चाहिये। इसी प्रकार क्रमशः सन (टाट), अलसी और भेड़के ऊनका वस्त्र धारण करना चाहिये। ब्राह्मण ब्रह्मचारीके लिये तीन लड़ीवाली सुन्दर चिकनी मूँजकी, क्षत्रियके लिये मूर्वा (मुरा) की और वैश्यके लिये सनकी मेखला कही गयी है। मूँज आदिके प्राप्त न होनेपर क्रमशः कुशा, अश्मन्तक और बल्वज नामक तृणकी मेखलाको तीन लड़ीवाली करके एक, तीन अथवा पाँच ग्रन्थियाँ उसमें लगानी चाहिये। ब्राह्मण कपासके सूतका, क्षत्रिय सनके सूतका और वैश्य भेड़के ऊनका यज्ञोपवीत धारण करे। ब्राह्मण बिल्व, पलाश या प्लक्षका दण्ड, जो सिरपर्यन्त हो उसे धारण करे। क्षत्रिय बड़, खदिर या बेंतके काष्ठका मस्तकपर्यन्त ऊँचा और वैश्य पैलव (पीलू वृक्षकी लकड़ी), गूलर अथवा पीपलके काष्ठका दण्ड नासिकापर्यन्त ऊँचा धारण करे। ये दण्ड सीधे, छिद्ररहित और सुन्दर होने चाहिये। यज्ञोपवीत-संस्कारमें अपना-अपना दण्ड धारणकर भगवान् सूर्यनारायणका उपस्थान करे और गुरुकी पूजा करे तथा नियमके अनुसार सर्वप्रथम माता, बहिन या मौसीसे भिक्षा माँगे। भिक्षा माँगते समय उपनीत ब्राह्मण बटु भिक्षा देनेवालीसे **'भवति ! भिक्षां मे देहि'**, क्षत्रिय **'भिक्षां भवति ! मे देहि'** तथा वैश्य **'भिक्षां देहि मे भवति !'**—इस प्रकारसे **'भवति'** शब्दका प्रयोग करे। भिक्षामें वे सुवर्ण, चाँदी अथवा अन्न ब्रह्मचारीको दें। इस प्रकार भिक्षा ग्रहणकर ब्रह्मचारी उसे गुरुको निवेदित कर दे और गुरुकी आज्ञा पाकर पूर्वाभिमुख हो आचमनकर भोजन करे। पूर्वकी ओर मुख करके भोजन करनेसे आयु, दक्षिण-मुख करनेसे यश, पश्चिम-मुख करनेसे लक्ष्मी और उत्तर-मुख करके भोजन करनेसे सत्यकी अभिवृद्धि होती है। एकाग्रचित्त हो उत्तम अन्नका भोजन करनेके अनन्तर आचमनकर अङ्गों (आँख, कान, नाक) का जलसे स्पर्श करे। अन्नकी नित्य स्तुति करनी चाहिये और अन्नकी निन्दा किये बिना भोजन करना चाहिये। उसका दर्शनकर संतुष्ट एवं प्रसन्न होना चाहिये। हर्षसे भोजन करना चाहिये। पूजित अन्नके भोजनसे बल और तेजकी वृद्धि होती है और निन्दित अन्नके भोजनसे बल और तेज दोनोंकी हानि होती है[1]। इसीलिये सर्वदा उत्तम अन्नका भोजन करना चाहिये। उच्छिष्ट (जूठा) किसीको नहीं देना चाहिये तथा स्वयं भी किसीका उच्छिष्ट नहीं खाना चाहिये। भोजन करके जिस अन्नको छोड़ दे उसे फिर ग्रहण न करे अर्थात् बार-बार छोड़-छोड़कर भोजन न करे, एक बार बैठकर तृप्तिपूर्वक भोजन कर लेना चाहिये। जो पुरुष बीच-बीचमें विच्छेद करके लोभवश भोजन करता है, उसके दोनों लोक नष्ट हो जाते हैं, जैसे धनवर्धन वैश्यके हुए थे।

राजा शतानीकने पूछा—महाराज ! आप धनवर्धन वैश्यकी कथा सुनाइये। उसने कैसा भोजन किया और उसका क्या परिणाम हुआ ?

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! सत्ययुगकी बात है, पुष्करक्षेत्रमें धन-धान्यसे सम्पन्न धनवर्धन नामक एक वैश्य रहता था। एक दिन वह ग्रीष्म ऋतुमें मध्याह्नके समय

१-तथाच पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्। दर्शनात् तस्य हृष्येद् वै प्रसीदेच्चापि भारत॥
पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमोजश्च यच्छति॥
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्। (ब्राह्मपर्व ३। ३७—३९)

वैश्वदेव-कर्म सम्पन्न कर अपने पुत्र, मित्र तथा बन्धु-बान्धवोंके साथ भोजन कर रहा था। इतनेमें ही अकस्मात् उसे बाहरसे एक करुण शब्द सुनायी पड़ा। उस शब्दको सुनते ही वह दयावश भोजनको छोड़कर बाहरकी ओर दौड़ा। किंतु जबतक वह बाहर पहुँचा वह आवाज बंद हो गयी। फिर लौटकर उस वैश्यने पात्रमें जो छोड़ा हुआ भोजन था उसे खा लिया। भोजन करते ही उस वैश्यकी मृत्यु हो गयी और इसी अपराधवश परलोकमें भी उसकी दुर्गति हुई। इसलिये छोड़े हुए भोजनको फिर कभी नहीं खाना चाहिये। अधिक भोजन भी नहीं करना चाहिये। इससे शरीरमें अत्यधिक रसकी उत्पत्ति होती है, जिससे प्रतिश्याय (जुकाम, मन्दाग्नि, ज्वर) आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अजीर्ण हो जानेसे स्नान, दान, तप, होम, तर्पण, पूजा आदि कोई भी पुण्य कर्म ठीकसे सम्पन्न नहीं हो पाते। अति भोजन करनेसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं—आयु घटती है, लोकमें निन्दा होती है तथा अन्तमें सद्गति भी नहीं होती। उच्छिष्ट मुखसे कहीं नहीं जाना चाहिये। सदा पवित्रतासे रहना चाहिये। पवित्र मनुष्य यहाँ सुखसे रहता है और अन्तमें स्वर्गमें जाता है।

राजाने पूछा—मुनीश्वर! ब्राह्मण किस कर्मके करनेसे पवित्र होता है? इसका आप वर्णन करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! जो ब्राह्मण विधिपूर्वक आचमन करता है, वह पवित्र हो जाता है और सत्कर्मोंका अधिकारी हो जाता है। आचमनकी विधि यह है कि हाथ-पाँव धोकर पवित्र स्थानमें आसनके ऊपर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके बैठे। दाहिने हाथको जानुके भीतर रखकर दोनों चरण बराबर रखे तथा शिखामें ग्रन्थि लगाये और फिर उष्णता एवं फेनसे रहित शीतल एवं निर्मल जलसे आचमन करे। खड़े-खड़े, बात करते, इधर-उधर देखते हुए, शीघ्रतासे और क्रोधयुक्त होकर आचमन न करे।

हे राजन्! ब्राह्मणके दाहिने हाथमें पाँच तीर्थ कहे गये हैं—(१) देवतीर्थ, (२) पितृतीर्थ, (३) ब्राह्मतीर्थ, (४) प्राजापत्यतीर्थ और (५) सौम्यतीर्थ। अब आप इनके लक्षणोंको सुनें—अँगूठेके मूलमें ब्राह्मतीर्थ, कनिष्ठाके मूलमें प्राजापत्यतीर्थ, अङ्गुलियोंके अग्रभागमें देवतीर्थ, तर्जनी और अङ्गुष्ठके बीचमें पितृतीर्थ और हाथके मध्य-भागमें
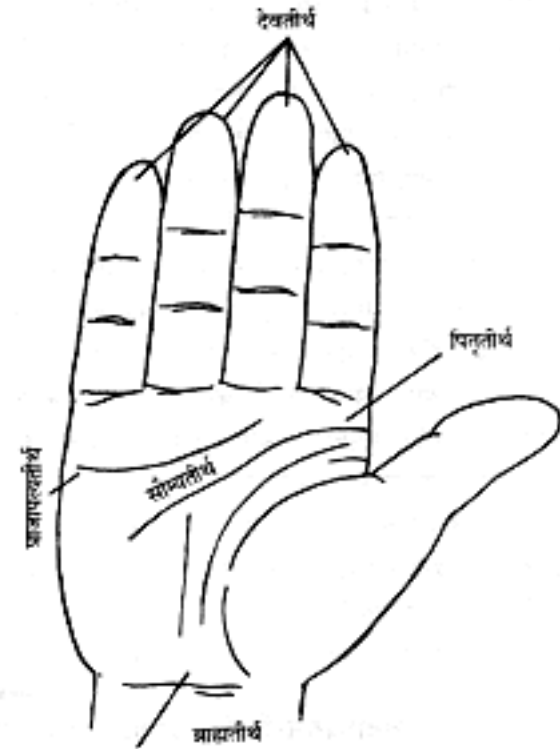
सौम्यतीर्थ कहा जाता है, जो देवकर्ममें प्रशस्त माना गया है[1]। देवार्चा, ब्राह्मणको दक्षिणा आदि कर्म देवतीर्थसे; तर्पण, पिण्डदानादि कर्म पितृतीर्थसे; आचमन ब्राह्मतीर्थसे; विवाहके समय लाजाहोमादि और सोमपान प्राजापत्यतीर्थसे; कमण्डलु-ग्रहण, दधिप्राशनादि कर्म सौम्यतीर्थसे करे। ब्राह्मतीर्थसे उपस्पर्शन सदा श्रेष्ठ माना गया है।

अङ्गुलियोंको मिलाकर एकाग्रचित्त हो, पवित्र जलसे बिना शब्द किये तीन बार आचमन करनेसे महान् फल होता है और देवता प्रसन्न होते हैं। प्रथम आचमनसे ऋग्वेद, द्वितीयसे यजुर्वेद और तृतीयसे सामवेदकी तृप्ति होती है तथा आचमन करके जलयुक्त दाहिने अँगूठेसे मुखका स्पर्श करनेसे

१- अङ्गुष्ठमूलोत्तरतो येयं रेखा महीपते ॥
ब्राह्मं तीर्थं वदन्त्येतद्वसिष्ठाद्या द्विजोत्तमाः। कायं कनिष्ठिकामूले अङ्गुल्यग्रे तु दैवतम् ॥
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पित्र्यं तीर्थमुदाहृतम्। करमध्ये स्थितं सौम्यं प्रशस्तं देवकर्मणि ॥ (ब्राह्मपर्व ३ । ६३—६५)

अथर्ववेदकी तृप्ति होती है। ओष्ठके मार्जनसे इतिहास और पुराणोंकी तृप्ति होती है। मस्तकमें अभिषेक करनेसे भगवान् रुद्र प्रसन्न होते हैं। शिखाके स्पर्शसे ऋषिगण, दोनों आँखोंके स्पर्शसे सूर्य, नासिकाके स्पर्शसे वायु, कानोंके स्पर्शसे दिशाएँ, भुजाके स्पर्शसे यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र तथा अग्निदेव तृप्त होते हैं। नाभि और प्राणोंकी ग्रन्थियोंके स्पर्श करनेसे सभी तृप्त हो जाते हैं। पैर धोनेसे विष्णुभगवान्, भूमिमें जल छोड़नेसे वासुकि आदि नाग तथा बीचमें जो जलबिन्दु गिरते हैं, उनसे चार प्रकारके भूतग्रामकी तृप्ति होती है।

अङ्गुष्ठ और तर्जनीसे नेत्र, अङ्गुष्ठ तथा अनामिकासे नासिका, अङ्गुष्ठ एवं मध्यमासे मुख, अङ्गुष्ठ और कनिष्ठकासे कान, सब अङ्गुलियोंसे भुजाओंका, अङ्गुष्ठसे नाभिमण्डल तथा सभी अङ्गुलियोंसे सिरका स्पर्श करना चाहिये। अङ्गुष्ठ अग्निरूप है, तर्जनी वायुरूप, मध्यमा प्रजापतिरूप, अनामिका सूर्यरूप और कनिष्ठिका इन्द्ररूप है।[1]

इस विधिसे ब्राह्मणके आचमन करनेपर सम्पूर्ण जगत्, देवता और लोक तृप्त हो जाते हैं। ब्राह्मण सदा पूजनीय है, क्योंकि वह सर्वदेवमय है।

ब्राह्मतीर्थ, प्राजापत्यतीर्थ अथवा देवतीर्थसे आचमन करे, परंतु पितृतीर्थसे कभी भी आचमन नहीं करना चाहिये। आचमनका जल हृदयतक जानेसे ब्राह्मणकी; कण्ठतक जानेसे क्षत्रियकी और वैश्यकी जलके प्राशनसे तथा शूद्रकी जलके स्पर्शमात्रसे शुद्धि हो जाती है।

दाहिने हाथके नीचे और बायें कंधेपर यज्ञोपवीत रहनेसे द्विज उपवीती (सव्य) कहलाता है, इसके विलोम रहनेसे अर्थात् यज्ञोपवीतके दाहिने कंधेसे बायीं ओर रहनेसे प्राचीनावीती (अपसव्य) तथा गलेमें मालाकी तरह यज्ञोपवीत रहनेसे निवीती कहा जाता है।

मेखला, मृगछाला, दण्ड, यज्ञोपवीत और कमण्डलु— इनमें कोई भी चीज भग्न हो जाय तो उसे जलमें विसर्जित कर मन्त्रोच्चारणपूर्वक दूसरा धारण करना चाहिये। उपवीती (सव्य) होकर और दाहिने हाथको जानु अर्थात् घुटनेके भीतर रखकर जो ब्राह्मण आचमन करता है वह पवित्र हो जाता है। ब्राह्मणके हाथकी रेखाओंको गङ्गा आदि नदियोंके समान पवित्र समझना चाहिये और अङ्गुलियोंके जो पर्व हैं, वे हिमालय आदि देवपर्वत माने जाते हैं। इसलिये ब्राह्मणका दाहिना हाथ सर्वदेवमय है और इस विधिसे आचमन करनेवाला अन्तमें स्वर्गलोकको प्राप्त करता है[2]। (अध्याय ३)

वेदाध्ययन-विधि, ओंकार तथा गायत्री-माहात्म्य, आचार्यादि-लक्षण, ब्रह्मचारिधर्म-निरूपण, अभिवादन-विधि, स्नातककी महिमामें अङ्गिरापुत्रका आख्यान, माता-पिता और गुरुकी महिमा

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! ब्राह्मणका केशान्त (समावर्तन)-संस्कार सोलहवें वर्षमें, क्षत्रियका बाईसवें वर्षमें तथा वैश्यका पचीसवें वर्षमें करना चाहिये। स्त्रियोंके संस्कार अमन्त्रक करने चाहिये। केशान्त-संस्कार होनेके अनन्तर चाहे तो गुरु-गृहमें रहे अथवा अपने घरमें आकर विवाह कर अग्निहोत्र ग्रहण करे। स्त्रियोंके लिये मुख्य संस्कार विवाह है।

राजन्! यहाँतक मैंने उपनयनका विधान बतलाया। अब आगेका कर्म बताते हैं, उसे आप सुनें। शिष्यका यज्ञोपवीत कर गुरु पहले उसको शौच, आचार, संध्योपासन, अग्निकार्य सिखाये और वेदका अध्ययन कराये। शिष्य भी आचमन कर उत्तराभिमुख हो ब्रह्माञ्जलि बाँधकर एकाग्रचित्त हो प्रसन्न-मनसे वेदाध्ययनके लिये बैठे। पढ़नेके आरम्भ तथा अन्तमें गुरुके चरणोंकी वन्दना करे। पढ़नेके समय दोनों हाथोंकी जो अञ्जलि बाँधी जाती है, उसे 'ब्रह्माञ्जलि' कहा जाता है।

१- अङ्गुष्ठोऽग्निर्महाबाहो प्रोक्तो वायुः प्रदेशिनी ॥
अनामिका तथा सूर्यः कनिष्ठा मघवा विभो। प्रजापतिर्मध्यमा ज्ञेया तस्माद् भरतसत्तम ॥ (ब्राह्मपर्व ३।८४-८५)

२- यास्त्वेताः करमध्ये तु रेखा विप्रस्य भारत ॥
गङ्गाद्याः सरितः सर्वा ज्ञेया भरतसत्तम। यान्यङ्गुलिषु पर्वाणि गिरयस्तानि विद्धि वै ॥
सर्वदेवमयो राजन् करो विप्रस्य दक्षिणः। (ब्राह्मपर्व ३।९२—९४)

शिष्य गुरुका दाहिना चरण दाहिने हाथसे और बायाँ चरण बायें हाथसे छूकर उनको प्रणाम करे। वेदके पढ़नेके समय आदिमें और अन्तमें ओंकारका उच्चारण न करनेसे सब निष्फल हो जाता है। पहलेका पढ़ा हुआ विस्मृत हो जाता है और आगेका विषय याद नहीं होता।

पूर्वदिशामें अग्रभागवाले कुशाके आसनपर बैठकर पवित्री धारण करे तथा तीन बार प्राणायामसे पवित्र होकर ओंकारका उच्चारण करे। प्रजापतिने तीनों वेदोंके प्रतिनिधिभूत अकार, उकार और मकार—इन तीन वर्णोंको तीनों वेदोंसे निकाला है, इनसे ओंकार बनता है। भूर्भुवः स्वः—ये तीनों व्याहृतियाँ और गायत्रीके तीन पाद तीनों वेदोंसे निकले हैं। इसलिये जो ब्राह्मण ओंकार तथा व्याहृतिपूर्वक त्रिपदा गायत्रीका दोनों संध्याओंमें जप करता है, वह वेदपाठके पुण्यको प्राप्त करता है। और जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपनी क्रियासे हीन होते हैं, उनकी साधु पुरुषोंमें निन्दा होती है तथा परलोकमें भी वे कल्याणके भागी नहीं होते, इसलिये अपने कर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। प्रणव, तीन व्याहृतियाँ और त्रिपदा गायत्री—ये सब मिलकर जो मन्त्र (गायत्री-मन्त्र) होता है, वह ब्रह्माका मुख है। जो इस गायत्री-मन्त्रका श्रद्धा-भक्तिसे तीन वर्षतक नित्य नियमसे विधिपूर्वक जप करता है, वह वायुकी तरह वेगसम्पन्न होकर आकाशके स्वरूपको धारणकर ब्रह्मतत्त्वको प्राप्त करता है। एकाक्षर ॐ परब्रह्म है, प्राणायाम परम तप है। सावित्री (गायत्री)से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है और मौनसे सत्य बोलना श्रेष्ठ है। तपस्या, हवन, दान, यज्ञादि क्रियाएँ स्वरूपतः नाशवान् हैं, किंतु प्रणव-स्वरूप एकाक्षर ब्रह्म ओंकारका कभी नाश नहीं होता। विधियज्ञों (दर्श-पौर्णमास आदि) से जपयज्ञ (प्रणवादि - जप) सदा ही श्रेष्ठ है। उपांशु-जप (जिस जपमें केवल ओठ और जीभ चलते हैं, शब्द न सुनायी पड़े) लाख गुना और उपांशु-जपसे मानस-जप हजार गुना अधिक फल देनेवाला होता है। जो पाकयज्ञ (पितृकर्म, हवन, बलिवैश्वदेव) विधि - यज्ञके बराबर हैं, वे सभी जप-यज्ञकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं। ब्राह्मणको सब सिद्धि जपसे प्राप्त हो जाती है और कुछ करे या न करे, पर ब्राह्मणको गायत्री-जप अवश्य करना चाहिये।

सूर्योदयसे पूर्व जब तारे दिखायी देते रहें तभीसे प्रातः-संध्या आरम्भ कर देनी चाहिये और सूर्योदयपर्यन्त गायत्री-जप करता रहे। इसी प्रकार सूर्यास्तसे पहिले ही सायं-संध्या आरम्भ करे और तारोंके दिखायी देनेतक गायत्री-जप करता रहे। प्रातः-संध्यामें खड़े होकर जप करनेसे रात्रिके पाप नष्ट होते हैं और सायं-संध्याके समय बैठकर गायत्री-जप करनेसे दिनके पाप नष्ट होते हैं। इसलिये दोनों कालोंकी संध्या अवश्य करनी चाहिये। जो दोनों संध्याओंको नहीं करता उसे सम्पूर्ण द्विजातिके विहित कर्मोंसे बहिष्कृत कर देना चाहिये। घरके बाहर एकान्त-स्थानमें, अरण्य या नदी-सरोवर आदिके तटपर गायत्रीका जप करनेसे बहुत लाभ होता है। मन्त्रोंके जप, संध्याके मन्त्र और जो ब्रह्म-यज्ञादि नित्य-कर्म हैं इनके मन्त्रोंके उच्चारणमें अनध्यायका विचार नहीं करना चाहिये अर्थात् नित्यकर्ममें अनध्याय नहीं होता।

यज्ञोपवीतके अनन्तर समावर्तन-संस्कारतक शिष्य गुरुके घरमें रहे। भूमिपर शयन करे, सब प्रकारसे गुरुकी सेवा करे और वेदाध्ययन करता रहे। सब कुछ जानते हुए भी जडवत् रहे। आचार्यका पुत्र, सेवा करनेवाला, ज्ञान देनेवाला, धार्मिक, पवित्र, विश्वासी, शक्तिमान्, उदार, साधुस्वभाव तथा अपनी जातिवाला—ये दस अध्यापनके योग्य हैं। बिना पूछे किसीसे कुछ न कहे, अन्यायसे पूछनेवालेको कुछ न बताये। जो अनुचित ढंगसे पूछता है और जो अनुचित ढंगसे उत्तर देता है, वे दोनों नरकमें जाते हैं और जगत्‌में सबके अप्रिय होते हैं। जिसको पढ़ानेसे धर्म या अर्थकी प्राप्ति न हो और वह कुछ सेवा-शुश्रूषा भी न करे, ऐसेको कभी न पढ़ाये, क्योंकि ऐसे विद्यार्थीको दी गयी विद्या ऊसरमें बीज-वपनके समान निष्फल होती है। विद्याके अधिष्ठातृ-देवताने ब्राह्मणसे कहा—'मैं तुम्हारी निधि हूँ, मेरी भलीभाँति रक्षा करो, मुझे ब्राह्मणों (अध्यापकों) के गुणोंमें दोष-बुद्धि रखनेवालेको और द्वेष करनेवालेको न देना, इससे मैं बलवती रहूँगी। जो ब्राह्मण जितेन्द्रिय, पवित्र, ब्रह्मचारी और प्रमादसे रहित हो उसे मुझे देना।'

जो गुरुकी आज्ञाके बिना वेद-शास्त्र आदिको स्वयं ग्रहण करता है, वह अति भयंकर रौरव नरकको प्राप्त होता है। जो लौकिक, वैदिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान दे, उसे

सर्वप्रथम प्रणाम करना चाहिये। जो केवल गायत्री जानता हो, पर शास्त्रकी मर्यादामें रहे वह सबसे उत्तम है, किंतु सभी वेदादि शास्त्रोंको जानते हुए भी मर्यादामें न रहे और भक्ष्याभक्ष्यका कुछ भी विचार न करे तथा सभी वस्तुओंको बेचे, वह अधम है।

गुरुके आगे, शय्या अथवा आसनपर न बैठे। यदि पहिलेसे बैठा हो तो गुरुको आते देख नीचे उतर जाय और उनका अभिवादन करे। वृद्धजनोंको आते देख छोटोंके प्राण उच्छ्वसित हो जाते हैं, इसलिये नम्रतापूर्वक खड़े होकर उन्हें प्रणाम करनेसे वे प्राण पुनः अपने स्थानपर आ जाते हैं। प्रतिदिन बड़ोंकी सेवा और उन्हें प्रणाम करनेवाले पुरुषके आयु, विद्या, यश और बल—ये चारों निरन्तर बढ़ते रहते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते आयुः प्रज्ञा यशो बलम्॥

(ब्राह्मपर्व ४।५०)

अभिवादनके समय दूसरेकी स्त्रीको और जिससे किसी प्रकारका सम्बन्ध न हो उसे भवती (आप), सुभगे अथवा भगिनी (बहन) कहकर सम्बोधित करे। चाचा, मामा, ससुर, ऋत्विक् और गुरु—इनको अपना नाम लेते हुए प्रणाम करना चाहिये। मौसी, मामी, सास, बुआ (पिताकी बहन) और गुरुकी पत्नी—ये सब मान्य एवं पूज्य हैं। बड़े भाईकी सवर्णा स्त्री (भाभी) का जो नित्य आदर करता है और उसे माताके समान समझता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। पिताकी बहन, माताकी बहन और अपनी बड़ी बहन—ये तीनों माताके समान ही हैं। फिर भी अपनी माता—इन सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। पुत्र, मित्र और भानजा (बहनका लड़का) इनको अपने समान समझना चाहिये। धन-सम्पत्ति, बन्धु, अवस्था, कर्म और विद्या—ये पाँचों महत्त्वके कारण हैं—इनमें उत्तरोत्तर एकसे दूसरा बड़ा है अर्थात् विद्या सर्वश्रेष्ठ है।

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्॥

(ब्राह्मपर्व ४।७०)

रथ आदि यानपर चढ़े हुए, अतिवृद्ध, रोगी, भारयुक्त, स्त्री, स्नातक (जिसका समावर्तन-संस्कार हो गया हो), राजा और वर (दूल्हा) यदि सामनेसे आते हों तो इन्हें मार्ग पहले देना चाहिये। ये सभी यदि एक साथ आते हों तो स्नातक और राजा मान्य हैं। इन दोनोंमेंसे भी स्नातक विशेष मान्य है[1]।

जो ब्राह्मण शिष्यका उपनयन कराकर रहस्य (यज्ञ, विद्या और उपनिषद्) तथा कल्पसहित वेदाध्ययन कराता है, उसे आचार्य कहते हैं। जो जीविकाके निमित्त वेदका एक भाग अथवा वेदाङ्ग पढ़ाता है, वह उपाध्याय कहलाता है। जो निषेक अर्थात् गर्भाधानादि संस्कारोंको रीतिसे कराता है और अन्नादिसे पोषण करता है, उस ब्राह्मणको गुरु कहते हैं। जो अग्निष्टोम, अग्निहोत्र, पाक-यज्ञादि कर्मोंका वरण लेकर जिसके निमित्त करता है, वह उसका ऋत्विक् कहलाता है। जो पुरुष वेद-ध्वनिसे दोनों कान भर देता है, उसे माता-पिताके समान समझकर उससे कभी द्वेष नहीं करना चाहिये।

उपाध्यायसे दस गुना गौरव आचार्यका और आचार्यसे सौ गुना पिताका तथा पितासे हजार गुना गौरव माताका होता है—

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रेण पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते॥

(ब्राह्मपर्व ४।७१)

जन्म देनेवाला और वेद पढ़ानेवाला—ये दोनों पिता हैं, किंतु इनमें भी वेदाध्ययन करानेवाला श्रेष्ठ है, क्योंकि ब्राह्मणका मुख्य जन्म तो वेद पढ़नेसे ही होता है। इसलिये उपाध्याय आदि जितने पूज्य हैं, उनमें सबसे अधिक गौरव महागुरुका ही होता है।

राजा शतानीकने पूछा—हे मुने! आपने उपाध्याय आदिके लक्षण बताये, अब महागुरु किसे कहते हैं? यह भी बतानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! जो ब्राह्मण जयोपजीवी हो अर्थात् अष्टादशपुराण, रामायण, विष्णुधर्म, शिवधर्म, महाभारत (भगवान् श्रीकृष्ण-द्वैपायन व्यासद्वारा रचित महाभारत जो पञ्चम वेदके नामसे भी विख्यात है) तथा श्रौत

१-चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः। स्नातकस्य तु राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च॥
एषां समागमे तात पूज्यौ स्नातकपार्थिवौ। आभ्यां समागमे राजन् स्नातको नृपमानभाक्॥

(ब्राह्मपर्व ४।७२-७३)

एवं स्मार्त-धर्म (विद्वान् लोग इन सभीको 'जय' नामसे अभिहित करते हैं) का ज्ञाता हो, वह महागुरु कहलाता है[1]। वह सभी वर्णोंके लिये पूज्य है। जो शास्त्रद्वारा थोड़ा या बहुत उपकार करे, उसको भी उस उपकारके बदले गुरु मानना चाहिये। अवस्थामें चाहे छोटा क्यों न हो, पढ़ानेसे वह बालक वृद्धका भी पिता हो सकता है। राजन्! इस विषयमें एक प्राचीन आख्यान सुनो—

पूर्वकालमें अङ्गिरा मुनिके पुत्र बृहस्पति (बालक होनेपर भी) बड़े वृद्धोंको पढ़ाते थे और पढ़ानेके समय 'हे पुत्रो! पढ़ो' ऐसा कहते थे। बालकद्वारा 'पुत्र' सम्बोधन सुनकर उनको बड़ा क्षोभ हुआ और वे देवताओंके पास गये तथा उन्होंने सारा वृत्तान्त बतलाया। तब देवताओंने कहा—पितृगणो! उस बालकने न्यायोचित बात ही कही है, क्योंकि जो अज्ञ हो अर्थात् कुछ न जानता हो वही सच्चे अर्थमें बालक है, किंतु जो मन्त्रको देनेवाला है (वेदोंको पढ़ानेवाला है), उपदेशक है, वह युवा आदि होनेपर भी पिता होता है। अवस्था अधिक होनेसे, केश श्वेत होनेसे और बहुत वित्त तथा बन्धु-बान्धवोंके होनेसे कोई बड़ा नहीं होता, बल्कि इस विषयमें ऋषियोंने यह व्यवस्था की है कि जो विद्यामें अधिक हो, वही सबसे महान् (वृद्ध) है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें क्रमशः ज्ञान, बल, धन तथा जन्मसे बड़प्पन होता है। सिरके बाल श्वेत हो जानेसे कोई वृद्ध नहीं होता, यदि कोई युवा भी वेदादि शास्त्रोंका भलीभाँति ज्ञान प्राप्त कर ले तो उसीको वृद्ध (महान्) समझना चाहिये। जैसे काष्ठसे बना हाथी, चमड़ेसे मढ़ा मृग किसी कामका नहीं, उसी प्रकार वेदसे हीन ब्राह्मणका जन्म निष्फल है। मूर्खको दिया हुआ दान जैसे निष्फल होता है, वैसे ही वेदकी ऋचाओंको न जाननेवाले ब्राह्मणका जन्म निष्फल होता है। ऐसा ब्राह्मण नाममात्रका ब्राह्मण होता है। वेदोंका स्वयं कथन है कि जो हमें पढ़कर हमारा अनुष्ठान न करे, वह पढ़नेका व्यर्थ क्लेश उठाता है, इसलिये वेद पढ़कर वेदमें कहे हुए कर्मोंका जो अनुष्ठान करता है अर्थात् तदनुकूल आचरण करता है, उसीका वेद पढ़ना सफल है। जो वेदादि शास्त्रोंको जानकर धर्मका उपदेश करते हैं, वही उपदेश ठीक है, किंतु जो मूर्ख वेदादि शास्त्रोंको जाने बिना धर्मका उपदेश करते हैं, वे बड़े पापके भागी होते हैं। शौचरहित (अपवित्र), वेदसे रहित तथा नष्टव्रत ब्राह्मणको जो अन्न दिया जाता है, वह अन्न रोदन करता है कि 'मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया था जो ऐसे मूर्ख ब्राह्मणके हाथ पड़ा।' और वही अन्न यदि जयोपजीवीको दिया जाय तो प्रसन्नतासे नाच उठता है और कहता है कि 'मेरा अहोभाग्य है, जो मैं ऐसे पात्रके हाथ आया।' विद्या और तपके अभ्याससे सम्पन्न ब्राह्मणके घरमें आनेपर सभी अन्नादि ओषधियाँ अति प्रसन्न होती हैं और कहती हैं कि अब हमारी भी सद्‌गति हो जायगी। व्रत, वेद और जपसे हीन ब्राह्मणको दान नहीं देना चाहिये, क्योंकि पत्थरकी नाव नदीके पार नहीं उतार सकती। इसलिये श्रोत्रियको हव्य-कव्य देनेसे देवता और पितरोंकी तृप्ति होती है। घरके समीप रहनेवाले मूर्ख ब्राह्मणसे दूर रहनेवाले विद्वान् ब्राह्मणको ही बुलाकर दान देना चाहिये। परंतु घरके समीप रहनेवाला ब्राह्मण यदि गायत्री भी जानता हो तो उसका परित्याग न करे। परित्याग करनेसे रौरव नरककी प्राप्ति होती है, क्योंकि ब्राह्मण चाहे निर्गुण हो या गुणवान्, परंतु यदि वह गायत्री जानता है तो वह परमदेव-स्वरूप है। जैसे अन्नसे रहित ग्राम, जलसे रहित कूप केवल नामधारक हैं, वैसे ही विद्याध्ययनसे रहित ब्राह्मण भी केवल नाममात्रका ब्राह्मण है।

प्राणियोंके कल्याणके लिये अहिंसा तथा प्रेमसे ही अनुशासन करना श्रेष्ठ है। धर्मकी इच्छा करनेवाले शासकको सदा मधुर तथा नम्र वचनोंका प्रयोग करना चाहिये। जिसके मन, वचन शुद्ध और सत्य हैं, वह वेदान्तमें कहे गये मोक्ष आदि फलोंको प्राप्त करता है। आर्त होनेपर भी ऐसा वचन कभी न कहे जिससे किसीकी आत्मा दुःखी हो और सुनने-वालोंको अच्छा न लगे। दूसरेका अपकार करनेकी बुद्धि नहीं करनी चाहिये। पुरुषको जैसा आनन्द मीठी वाणीसे मिलता है,

---

१-जयोपजीवी यो विप्रः स महागुरुरुच्यते। अष्टादशपुराणानि रामस्य चरितं तथा॥
विष्णुधर्मादयो धर्माः शिवधर्माश्च भारत। कार्ष्णं वेदं पञ्चमं तु यन्महाभारतं स्मृतम्॥
श्रौता धर्माश्च राजेन्द्र नारदोक्ता महीपते। जयेति नाम एतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः॥
(ब्राह्मपर्व ४। ८६—८८)

वैसा आनन्द न चन्द्रकिरणोंसे मिलता है, न चन्दनसे, न शीतल छायासे और न शीतल जलसे[1]। ब्राह्मणको चाहिये कि सम्मानकी इच्छाको भयंकर विषके समान समझकर उससे डरता रहे और अपमानको अमृतके समान स्वीकार करे, क्योंकि जिसकी अवमानना होती है, उसकी कुछ हानि नहीं होती, वह सुखी ही रहता है और जो अवमानना करता है, वह विनाशको प्राप्त होता है। इसलिये तपस्या करता हुआ द्विज नित्य वेदका अभ्यास करे, क्योंकि वेदाभ्यास ही ब्राह्मणका परम तप है।

ब्राह्मणके तीन जन्म होते हैं—एक तो माताके गर्भसे, दूसरा यज्ञोपवीत होनेसे और तीसरा यज्ञकी दीक्षा लेनेसे। यज्ञोपवीतके समय गायत्री माता और आचार्य पिता होता है। वेदकी शिक्षा देनेसे आचार्यको पिता कहते हैं, क्योंकि यज्ञोपवीत होनेके पूर्व किसी भी वैदिक कर्मके करनेका अधिकारी वह नहीं होता। श्राद्धमें पढ़े जानेवाले वेदमन्त्रोंको छोड़कर (अनुपनीत द्विज) वेदमन्त्रका उच्चारण न करे, क्योंकि जबतक वेदारम्भ न हो जाय, तबतक वह शूद्रके समान माना गया है। यज्ञोपवीत सम्पन्न हो जानेपर वटुको व्रतका उपदेश ग्रहण करना चाहिये और तभीसे विधिपूर्वक वेदाध्ययन करना चाहिये। यज्ञोपवीतके समय जो-जो मेखला-चर्म, दण्ड और यज्ञोपवीत तथा वस्त्र जिस-जिसके लिये कहा गया है वह-वह ही धारण करे। अपनी तपस्याकी वृद्धिके लिये ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होकर गुरुके पास रहे और नियमोंका पालन करता रहे। नित्य स्नानकर पवित्र हो देवता, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करे। पुष्प, फल, जल, समिधा, मृत्तिका, कुशा और अनेक प्रकारके काष्ठोंका संग्रह रखे। मद्य, मांस, गन्ध, पुष्पमाला, अनेक प्रकारके रस और स्त्रियोंका परित्याग करे। प्राणियोंकी हिंसा, शरीरमें उबटन, अंजन लगाना, जूता और छत्र धारण करना, गीत सुनना, नाच देखना, जुआ खेलना, झूठ बोलना, निन्दा करना, स्त्रियोंके समीप बैठना और काम, क्रोध तथा लोभादिके वशीभूत होना—इत्यादि बातें ब्रह्मचारीके लिये निषिद्ध हैं। उसे संयमपूर्वक एकाकी रहना चाहिये। वह जल, पुष्प, गौका गोबर, मृत्तिका और कुशा तथा आवश्यकतानुसार भिक्षा नित्य लाये। जो पुरुष अपने कर्मोंमें तत्पर हों और वेदादि-शास्त्रोंको पढ़ें तथा यज्ञादिमें श्रद्धावान् हों, ऐसे गृहस्थोंके घरसे ही ब्रह्मचारीको भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। गुरुके कुलमें और अपने पारिवारिक बन्धु-बान्धवोंके घरोंसे भिक्षा न माँगे। यदि भिक्षा अन्यत्र न मिले तो इनके घरसे भी भिक्षा ग्रहण करे, किंतु जो महापातकी हों उनकी भिक्षा न ले। नित्य समिधा लाकर सायंकाल और प्रातःकाल हवन करे। भिक्षा माँगनेके समय वाणी संयमित रखे। ब्रह्मचारीके लिये भिक्षाका अन्न मुख्य है। एकका अन्न नित्य न ले। भिक्षावृत्तिसे रहना उपवासके बराबर माना गया है। यह धर्म केवल ब्राह्मणके लिये कहा गया है, क्षत्रिय और वैश्यके धर्ममें कुछ भेद है।

ब्रह्मचारी गुरुके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा रहे, जब गुरुकी आज्ञा हो तब बैठे, परंतु आसनपर न बैठे। गुरुके उठनेसे पूर्व उठे, सोनेके पश्चात् सोये, गुरुके सम्मुख अति नम्रतासे बैठे, परोक्षमें गुरुका नाम उच्चारण न करे, किसी भी बातमें गुरुका अनुकरण अर्थात् नकल न करे। गुरुकी निन्दा न करे और जहाँ निन्दा होती हो, आलोचना होती हो वहाँसे उठकर चला जाय अथवा कान बंद कर ले—

परीवादस्तथा निन्दा गुरोर्यत्र प्रवर्तते।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः॥

(ब्राह्मपर्व ४। १७१)

वाहनपर चढ़ा हुआ गुरुका अभिवादन न करे, अर्थात् वाहनसे उतरकर प्रणाम करे। गुरुके साथ एक वाहन, शिला, नौकायान आदिपर बैठ सकता है। गुरुके गुरु तथा श्रेष्ठ सम्बन्धीजनों एवं गुरुपुत्रके साथ गुरुके समान ही व्यवहार करे। गुरुकी सवर्णा स्त्रीको गुरुके समान ही समझे, परंतु गुरुपत्नीके उबटन लगाना, स्नानादि कराना, चरण दबाना आदि क्रियाएँ निषिद्ध हैं। माता, बहन या बेटीके साथ एक आसनपर न बैठे, क्योंकि बलवान् इन्द्रियोंका समूह विद्वान्को भी अपनी ओर खींच लेता है[2]। जिस प्रकार भूमिको

१-न तथा शशी न सलिलं न चन्दनरसो न शीतलच्छाया। प्रह्लादयति च पुरुषं यथा मधुरभाषिणी वाणी॥ (ब्राह्मपर्व ४। १२८)

२-मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्। बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥ (ब्राह्मपर्व ४। १८४)

खोदते-खोदते जल मिल जाता है, उसी प्रकार सेवा-शुश्रूषा करते-करते गुरुसे विद्या मिल जाती है। मुण्डन कराये हो, जटाधारी हो अथवा शिखी (बड़ी शिखासे युक्त) हो, चाहे जैसा भी ब्रह्मचारी हो उसको गाँवमें रहते हुए सूर्योदय और सूर्यास्त नहीं होना चाहिये। अर्थात् जलके तट अथवा निर्जन स्थानपर जाकर दोनों संध्याओंमें संध्या-वन्दन करना चाहिये। जिसके सोते-सोते सूर्योदय अथवा सूर्यास्त हो जाय वह महान् पापका भागी होता है और बिना प्रायश्चित्त (कृच्छ्रव्रत) के शुद्ध नहीं होता।

माता, पिता, भाई और आचार्यका विपत्तिमें भी अनादर न करे। आचार्य ब्रह्माकी मूर्ति हैं, पिता प्रजापतिकी, माता पृथ्वीकी तथा भाई आत्ममूर्ति है। इसलिये इनका सदा आदर करना चाहिये। प्राणियोंकी उत्पत्तिमें तथा पालन-पोषणमें माता-पिताको जो क्लेश सहन करना पड़ता है, उस क्लेशका बदला वे सौ वर्षोंमें भी सेवा करके नहीं चुका पाते[1]। इसलिये माता-पिता और गुरुकी सेवा नित्य करनी चाहिये। इन तीनोंके संतुष्ट हो जानेसे सब प्रकारके तपोंका फल प्राप्त हो जाता है, इनकी शुश्रूषा ही परम तप कहा गया है। इन तीनोंकी आज्ञाके बिना किसी अन्य धर्मका आचरण नहीं करना चाहिये। ये ही तीनों लोक हैं, ये ही तीनों आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं और ये ही तीनों अग्नियाँ हैं। माता गार्हपत्य नामक अग्नि है, पिता दक्षिणाग्नि-स्वरूप है और गुरु आहवनीय अग्नि है। जिसपर ये तीनों प्रसन्न हो जायँ, वह तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर लेता है और दीप्यमान होते हुए देवलोकमें देवताओंकी भाँति सुख भोग करता है।

त्रिषु तुष्टेषु चैतेषु त्रींल्लोकाञ्जयते गृही।
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते॥

(ब्राह्मपर्व ४। २०१)

पिताकी भक्तिसे इहलोक, माताकी भक्तिसे मध्यलोक और गुरुकी सेवासे इन्द्रलोक प्राप्त होता है। जो इन तीनोंकी सेवा करता है, उसके सभी धर्म सफल हो जाते हैं और जो इनका आदर नहीं करता, उसकी सभी क्रियाएँ निष्फल होती हैं। जबतक ये तीनों जीवित रहते हैं, तबतक इनकी नित्य सेवा-शुश्रूषा और इनका हित करना चाहिये। इन तीनोंकी सेवा-शुश्रूषारूपी धर्ममें पुरुषका सम्पूर्ण कर्तव्य पूरा हो जाता है, यही साक्षात् धर्म है, अन्य सभी उपधर्म कहे गये हैं।

उत्तम विद्या अधम पुरुषमें हो तो भी उससे ग्रहण कर लेनी चाहिये। इसी प्रकार चाण्डालसे भी मोक्षधर्मकी शिक्षा, नीच कुलसे भी उत्तम स्त्री, विषसे भी अमृत, बालकसे भी सुन्दर उपदेशात्मक बात, शत्रुसे भी सदाचार और अपवित्र स्थानसे भी सुवर्ण ग्रहण कर लेना चाहिये[2]। उत्तम स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शौच, सुभाषित तथा अनेक प्रकारके शिल्प जहाँसे भी प्राप्त हों, ग्रहण कर लेने चाहिये। गुरुके शरीर-त्यागपर्यन्त जो गुरुकी सेवा करता है, वह श्रेष्ठ ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। पढ़नेके समय गुरुको कुछ देनेकी इच्छा न करे, किंतु पढ़नेके अनन्तर गुरुकी आज्ञा पाकर भूमि, सुवर्ण, गौ, घोड़ा, छत्र, उपानह, धान्य, शाक तथा वस्त्र आदि अपनी शक्तिके अनुसार गुरु-दक्षिणाके रूपमें देने चाहिये। जब गुरुका देहान्त हो जाय, तब गुणवान् गुरुपुत्र, गुरुकी स्त्री और गुरुके भाइयोंके साथ गुरुके समान ही व्यवहार करना चाहिये। इस प्रकार जो अविच्छिन्न-रूपसे ब्रह्मचारि-धर्मका आचरण करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

सुमन्तु मुनि पुनः बोले—हे राजन्! इस प्रकार मैंने ब्रह्मचारिधर्मका वर्णन किया। ब्राह्मणका उपनयन वसन्तमें, क्षत्रियका ग्रीष्ममें और वैश्यका शरद् ऋतुमें प्रशस्त माना गया है। अब गृहस्थधर्मका वर्णन सुनें। (अध्याय ४)

१-आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः। माताप्यथादितेर्मूर्तिर्भ्राता स्यान्मूर्तिरात्मनः॥
यन्मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्। न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥

(ब्राह्मपर्व ४। १९५-१९६)

२-श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि। अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥
विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्। अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम्॥

(ब्राह्मपर्व ४। २०३-२०८)

विवाह-संस्कारके उपक्रममें स्त्रियोंके शुभ और अशुभ लक्षणोंका वर्णन तथा आचरणकी श्रेष्ठता

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! गुरुके आश्रममें ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए स्नातकको वेदाध्ययन कर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये। घर आनेपर उस ब्रह्मचारीको पहले पुष्प-माला पहनाकर, शय्यापर बिठाकर उसका मधुपर्क-विधिसे पूजन करना चाहिये। तब गुरुसे आज्ञा प्राप्तकर उसे शुभ लक्षणोंसे युक्त सजातीय कन्यासे विवाह करना चाहिये।

राजा शतानीकने पूछा—हे मुनीश्वर! आप प्रथम स्त्रियोंके लक्षणोंका वर्णन करें और यह भी बतायें कि किन लक्षणोंसे युक्त कन्या शुभ होती है।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! पूर्वकालमें ऋषियोंके पूछनेपर ब्रह्माजीने स्त्रियोंके जो उत्तम लक्षण कहे हैं, उन्हें मैं संक्षेपमें बतलाता हूँ, आप ध्यान देकर सुनें।

ब्रह्माजीने कहा—ऋषिगणो! जिस स्त्रीके चरण लाल कमलके समान कान्तिवाले अत्यन्त कोमल तथा भूमिपर समतल-रूपसे पड़ते हों, अर्थात् बीचमें ऊँचे न रहें, वे चरण उत्तम एवं सुख-भोग प्रदान करनेवाले होते हैं। जिस स्त्रीके चरण रूखे, फटे हुए, मांसरहित और नाड़ियोंसे युक्त हों, वह स्त्री दरिद्रा और दुर्भगा होती है। यदि पैरकी अँगुलियाँ परस्पर मिली हों, सीधी, गोल, स्निग्ध और सूक्ष्म नखोंसे युक्त हों तो ऐसी स्त्री अत्यन्त ऐश्वर्यको प्राप्त करनेवाली और राजमहिषी होती है। छोटी अँगुलियाँ आयुको बढ़ाती हैं, परंतु छोटी और विरल अँगुलियाँ धनका नाश करनेवाली होती हैं।

जिस स्त्रीके हाथकी रेखाएँ गहरी, स्निग्ध और रक्तवर्णकी होती हैं, वह सुख भोगनेवाली होती है, इसके विपरीत टेढ़ी और टूटी हुई हों तो वह दरिद्र होती है। जिसके हाथमें कनिष्ठाके मूलसे तर्जनीतक पूरी रेखा चली जाय तो ऐसी स्त्री सौ वर्षतक जीवित रहती है और यदि न्यून हो तो आयु कम होती है। जिस स्त्रीके हाथकी अँगुलियाँ गोल, लंबी, पतली, मिलानेपर छिद्ररहित, कोमल तथा रक्तवर्णकी हों, वह स्त्री अनेक सुख-भोगोंको प्राप्त करती है। जिसके नख बन्धुजीव-पुष्पके समान लाल एवं ऊँचे और स्निग्ध हों तो वह ऐश्वर्यको प्राप्त करती है तथा रूखे, टेढ़े, अनेक प्रकारके रंगवाले अथवा श्वेत या नीले-पीले नखोंवाली स्त्री दुर्भाग्य और दारिद्र्यको प्राप्त होती है। जिस स्त्रीके हाथ फटे हुए, रूखे और विषम अर्थात् ऊँचे-नीचे एवं छोटे-बड़े हों वह कष्ट भोगती है। जिस स्त्रीकी अँगुलियोंके पर्वोंमें समान रेखा हो अथवा यवका चिह्न होता है, उसे अपार सुख तथा अक्षय धन-धान्य प्राप्त होता है। जिस स्त्रीका मणिबन्ध सुस्पष्ट तीन रेखाओंसे सुशोभित होता है, वह चिरकालतक अक्षय भोग और दीर्घ आयुको प्राप्त करती है।

जिस स्त्रीकी ग्रीवामें चार अङ्गुलके परिमापमें स्पष्ट तीन रेखाएँ हों तो वह सदा रत्नोंके आभूषण धारण करनेवाली होती है। दुर्बल ग्रीवावाली स्त्री निर्धन, दीर्घ ग्रीवावाली बंधकी, ह्रस्वग्रीवावाली मृतवत्सा होती है और स्थूल ग्रीवावाली दुःख-संताप प्राप्त करती है। जिसके दोनों कंधे और कृकाटिका (गरदनका उठा हुआ पिछला भाग) ऊँचे न हों, वह स्त्री दीर्घ आयुवाली तथा उसका पति भी चिरकालतक जीता है।

जिस स्त्रीकी नासिका न बहुत मोटी, न पतली, न टेढ़ी, न अधिक लंबी और न ऊँची होती है वह श्रेष्ठ होती है। जिस स्त्रीकी भौंहें ऊँची, कोमल, सूक्ष्म तथा आपसमें मिली हुई न हों, ऐसी स्त्री सुख प्राप्त करती है। धनुषके समान भौंहें सौभाग्य प्रदान करनेवाली होती हैं। स्त्रियोंके काले, स्निग्ध, कोमल और लंबे घुँघराले केश उत्तम होते हैं।

हंस, कोयल, वीणा, भ्रमर, मयूर तथा वेणु (वंशी) के समान स्वरवाली स्त्रियाँ अपार सुख-सम्पत्ति प्राप्त करती हैं और दास-दासियोंसे युक्त होती हैं। इसके विपरीत फूटे हुए काँसेके स्वरके समान स्वरवाली या गर्दभ और कौवेके सदृश स्वरवाली स्त्रियाँ रोग, व्याधि, भय, शोक तथा दरिद्रताको प्राप्त करती हैं। हंस, गाय, वृषभ, चक्रवाक तथा मदमस्त हाथीके समान चालवाली स्त्रियाँ अपने कुलको विख्यात बनानेवाली और राजाकी रानी होती हैं। श्वान, सियार और कौवेके समान गतिवाली स्त्री निन्दनीय होती है। मृगके समान गतिवाली दासी तथा द्रुतगामिनी स्त्री बन्धकी होती है। स्त्रियोंका फलिनी, गोरोचन, स्वर्ण, कुंकुम अथवा नये-नये निकले हुए दूर्वाङ्कुरके सदृश रंग उत्तम होता है। जिन स्त्रियोंके शरीर तथा अङ्ग कोमल, रोम और पसीनेसे रहित तथा सुगन्धित होते हैं, वे स्त्रियाँ पूज्य होती हैं।

कपिल-वर्णवाली, अधिकाङ्गी, रोगिणी, रोमोंसे रहित, अत्यन्त छोटी (बौनी), वाचाल तथा पिंगल वर्णवाली कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये। नक्षत्र, वृक्ष, नदी, म्लेच्छ, पर्वत, पक्षी, साँप आदि और दासीके नामपर जिसका नाम हो तथा डरावने नामवाली कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये। जिसके सब अङ्ग ठीक हों, सुन्दर नाम हो, हंस या हाथीकी-सी गति हो, जो सूक्ष्म रोम, केश और दाँतोंवाली तथा कोमलाङ्गी हो, ऐसी कन्यासे विवाह करना उत्तम होता है। गौ तथा धन-धान्यादिसे अत्यधिक समृद्ध होनेपर भी इन दस कुलोंमें विवाहका सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहिये—जो संस्कारोंसे रहित हों, जिनमें पुरुष-संतति न होती हो, जो वेदके पठन-पाठनसे रहित हों, जिनमें स्त्री-पुरुषोंके शरीरोंपर बहुत लंबे केश हों, जिनमें अर्श (बवासीर), क्षय (राजयक्ष्मा), मन्दाग्नि, मिरगी, श्वेत दाग और कुष्ठ-जैसे रोग होते हों।

ब्रह्माजीने ऋषियोंसे पुनः कहा—ये सब उत्तम लक्षण जिस कन्यामें हों और जिसका आचरण भी अच्छा हो उस कन्यासे विवाह करना चहिये। स्त्रीके लक्षणोंकी अपेक्षा उसके सदाचारको ही अधिक प्रशस्त कहा गया है। जो स्त्री सुन्दर शरीर तथा शुभ लक्षणोंसे युक्त भी है, किंतु यदि वह सदाचारसम्पन्न (उत्तम आचरणयुक्त) नहीं है तो वह प्रशस्त नहीं मानी गयी है। अतः स्त्रियोंमें आचरणकी मर्यादाको अवश्य देखना चाहिये[1]। ऐसे सल्लक्षणों तथा सदाचारसे सम्पन्न सुकन्यासे विवाह करनेपर ऋद्धि, वृद्धि तथा सत्कीर्ति प्राप्त होती है। (अध्याय ५)

गृहस्थाश्रममें धन एवं स्त्रीकी महत्ता, धन-सम्पादन करनेकी आवश्यकता तथा समान कुलमें विवाह-सम्बन्धकी प्रशंसा

राजा शतानीकने सुमन्तु मुनिसे पूछा—भगवन्! स्त्रियोंके लक्षणोंको तो मैंने सुना, अब उनके सद्वृत्त (सदाचार) को भी मैं सुनना चाहता हूँ, उसे आप बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनि बोले—महाबाहु शतानीक! ब्रह्माजीने ऋषियोंको स्त्रियोंके सद्वृत्त भी बतलाये हैं, उन्हें मैं आपको सुनाता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें। जब ऋषियोंने स्त्रियोंके सद्वृत्तके विषयमें ब्रह्माजीसे प्रश्न किया तब ब्रह्माजी कहने लगे—मुनीश्वरो! सर्वप्रथम गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेवाला व्यक्ति यथाविधि विद्याध्ययन करके सत्कर्मोंद्वारा धनका उपार्जन करे, तदनन्तर सुन्दर लक्षणोंसे युक्त और सुशील कन्यासे शास्त्रोक्त विधिसे विवाह करे। धनके बिना गृहस्थाश्रम केवल विडम्बना है। इसलिये धन-सम्पादन करनेके अनन्तर ही गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये। मनुष्यके लिये घोर नरककी यातना सहनी अच्छी है, किंतु घरमें क्षुधासे तड़पते हुए स्त्री-पुत्रोंको देखना अच्छा नहीं है। फटे और मैले-कुचैले वस्त्र पहने, अति दीन और भूखे स्त्री-पुत्रोंको देखकर जिनका हृदय विदीर्ण नहीं होता, वे वज्रके समान अति कठोर हैं। उनके जीवनको धिक्कार है, उनके लिये तो मृत्यु ही परम उत्सव है अर्थात् ऐसे पुरुषका मर जाना ही श्रेष्ठ है। अतः स्त्रीग्रहण करनेवाले अर्थहीन पुरुषके त्रिवर्ग-(धर्म, अर्थ, काम-)की सिद्धि कहाँ सम्भव है? वह स्त्री-सुख न प्राप्त कर यातना ही भोगता है। जैसे स्त्रीके बिना गृहस्थाश्रम नहीं हो सकता, उसी प्रकार धन-विहीन व्यक्तियोंको भी गृहस्थ बननेका अधिकार नहीं है। कुछ लोग संतानको ही त्रिवर्गका साधन मानते हैं अर्थात् संतानसे ही धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है, ऐसा समझते हैं; परंतु नीतिविशारदोंका यह अभिमत है कि धन और उत्तम स्त्री—ये दोनों त्रिवर्ग-साधनके हेतु हैं। धर्म भी दो प्रकारका कहा गया है—इष्ट धर्म और पूर्त धर्म। यज्ञादि करना इष्ट धर्म है और वापी, कूप, तालाब आदि बनवाना पूर्त धर्म है। ये दोनों धनसे ही सम्पन्न होते हैं।

दरिद्रीके बन्धु भी उससे लज्जा करते हैं और धनाढ्यके अनेक बन्धु हो जाते हैं। धन ही त्रिवर्गका मूल है। धनवान्में विद्या, कुल, शील अनेक उत्तम गुण आ जाते हैं और निर्धनमें विद्यमान होते हुए भी ये गुण नष्ट हो जाते हैं। शास्त्र, शिल्प, कला और अन्य भी जितने कर्म हैं, उन सबका तथा धर्मका

१-लक्षणेभ्यः प्रशस्तं तु स्त्रीणां सद्वृत्तमुच्यते। सद्वृत्तयुक्ता या स्त्री सा प्रशस्ता न च लक्षणैः॥ (ब्राह्मपर्व ५। ११०)

साधन भी धन ही है। धनके बिना पुरुषका जन्म अजागल-स्तनवत् व्यर्थ ही है।

पूर्वजन्ममें किये गये पुण्योंसे ही इस जन्ममें प्रभूत धनकी प्राप्ति होती है और धनसे पुण्य होता है। इसलिये धन और पुण्यका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है अर्थात् ये एक दूसरेके कारक हैं। पुण्यसे धनार्जन होता है और धनसे पुण्यार्जन होता है—

प्राक्पुण्यैर्विपुला सम्पद्धर्मकामादिहेतुजा ।
भूयो धर्मेण सामुत्र तया ताविति च क्रमः ॥

(ब्राह्मपर्व ६। २३)

—इसलिये विद्वान् मनुष्यको इसी रीतिसे त्रिवर्ग-साधन करना चाहिये। स्त्रीरहित तथा निर्धन पुरुषका त्रिवर्ग-साधनमें अधिकार नहीं है। अतः भार्या-ग्रहणसे पूर्व उत्तम रीतिसे अर्थार्जन अवश्य कर लेना चाहिये। न्यायोपार्जित धनकी प्राप्ति होनेपर दार-परिग्रह करना चाहिये। अपने कुलके अनुरूप, धन, क्रिया आदिसे प्रसिद्ध, अनिन्दित, सुन्दर तथा धर्मकी साधनभूता कन्याको प्राप्त करना चाहिये। जबतक विवाह नहीं होता है, तबतक पुरुष अर्ध-शरीर ही होता है। इसलिये यथाक्रम उचित अवसर प्राप्त हो जानेपर विवाह करना चाहिये। जैसे एक पहियेका रथ अथवा एक पंखवाला पक्षी किसी कार्यमें सफल नहीं हो पाता, वैसे ही स्त्रीहीन पुरुष भी प्रायः सभी धर्मकृत्योंमें असफल ही रहता है—

एकचक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः ।
अभार्योऽपि नरः तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु ॥

(ब्राह्मपर्व ६। ३०)

पत्नी-परिग्रहसे धर्म तथा अर्थ दोनोंमें बहुत लाभ होता है और इससे आपसमें प्रीति उत्पन्न होती है, सत्प्रीतिसे कामरूपी तृतीय पुरुषार्थ भी प्राप्त हो जाता है, ऐसा विद्वानोंका कहना है। विवाह-सम्बन्ध तीन प्रकारका होता है—नीच कुलमें, समान कुलमें और उत्तम कुलमें। नीच कुलमें विवाह करनेसे निन्दा होती है। उत्तम कुलवालेके साथ विवाह करनेसे वे अनादर करते हैं। अपनेसे बड़े लोगोंके साथ बनाया गया विवाह-सम्बन्ध, नीचके साथ बनाये गये विवाह-सम्बन्धके प्रायः समान ही होता है। इस कारण अपने समान कुलमें ही विवाह करना चाहिये। मनस्वी लोग विजातीय सम्बन्ध भी ठीक नहीं मानते। यह वैसा ही सम्बन्ध होता है जैसे कोयल और शुकका। जिस सम्बन्धमें प्रतिदिन स्नेहकी अभिवृद्धि होती रहती है और विपत्ति-सम्पत्तिके समय भी प्राणतक भी देनेमें विचार न किया जाय, वह सम्बन्ध उत्तम कहलाता है। परंतु यह बात उनमें ही होती है जो कुल, शील, विद्या और धन आदिमें समान होते हैं। मनुष्योंके स्नेह और कृतज्ञताकी परीक्षा विपत्तिमें ही होती है। इसलिये विवाह और परामर्श समानके साथ ही करना चाहिये, अपनेसे बड़े तथा छोटेके साथ नहीं। इसीमें अच्छी मित्रता रहती है।

(अध्याय ६)

विवाह-सम्बन्धी तत्त्वोंका निरूपण, विवाहयोग्य कन्याके लक्षण, आठ प्रकारके विवाह, ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त आदि उत्तम देशोंका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो! जो कन्या माताकी सपिण्ड अर्थात् माताकी सात पीढ़ीके अन्तर्गतकी न हो तथा पिताके समान गोत्रकी न हो, वह द्विजातियोंके विवाह-सम्बन्ध तथा संतानोत्पादनके लिये प्रशस्त मानी गयी है[1]। जिस कन्याके भाई न हो और जिसके पिताके सम्बन्धमें कोई जानकारी न हो ऐसी कन्यासे पुत्रिका-धर्मकी[2] आशंकासे बुद्धिमान् पुरुषको विवाह नहीं करना चाहिये। धर्मसाधनके लिये चारों वर्णोंको अपने-अपने वर्णकी कन्यासे विवाह करना श्रेष्ठ कहा गया है।

चारों वर्णोंके इस लोक और परलोकमें हिताहितके साधन करनेवाले आठ प्रकारके विवाह कहे गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच। अच्छे शील-स्वभाववाले उत्तम कुलके वरको स्वयं बुलाकर उसे अलंकृत और पूजित कर कन्या देना 'ब्राह्म-

---

१-असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः। सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥ (ब्राह्मपर्व ७। १, मनु० ३। ५)

२-पिता जिसके पुत्रसे अपने पिण्ड-पानीकी आशा करता है उसे पुत्रिका कहते हैं।

विवाह' है। यज्ञमें सम्यक् प्रकारसे कर्म करते हुए ऋत्विज्को अलंकृत कर कन्या देनेको 'दैव-विवाह' कहते हैं। वरसे एक या दो जोड़े गाय-बैल धर्मार्थ लेकर विधिपूर्वक कन्या देनेको 'आर्ष-विवाह' कहते हैं। 'तुम दोनों एक साथ गृहस्थ-धर्मका पालन करो' यह कहकर पूजन करके जो कन्यादान किया जाता है, वह 'प्राजापत्य-विवाह' कहलाता है। कन्याके पिता आदिको और कन्याको भी यथाशक्ति धन आदि देकर स्वच्छन्दतापूर्वक कन्याका ग्रहण करना 'आसुर-विवाह' है। कन्या और वरकी परस्पर इच्छासे जो विवाह होता है, उसे 'गान्धर्व-विवाह' कहते हैं। मार-पीट करके रोती-चिल्लाती कन्याका अपहरण करके लाना 'राक्षस-विवाह' है। सोयी हुई, मदसे मतवाली या जो कन्या पागल हो गयी हो उसे गुप्तरूपसे उठा ले आना यह 'पैशाच' नामक अधम कोटिका विवाह है।

ब्राह्म-विवाहसे उत्पन्न धर्माचारी पुत्र दस पीढ़ी आगे और दस पीढ़ी पीछेके कुलोंका तथा इक्कीसवाँ अपना भी उद्धार करता है। दैव-विवाहसे उत्पन्न पुत्र सात पीढ़ी आगे तथा सात पीढ़ी पीछे इस प्रकार चौदह पीढ़ियोंका उद्धार करनेवाला होता है। आर्ष-विवाहसे उत्पन्न पुत्र तीन अगले तथा तीन पिछले कुलोंका उद्धार करता है तथा प्राजापत्य-विवाहसे उत्पन्न पुत्र छः पीछेके तथा छः आगेके कुलोंको तारता है। ब्राह्मादि आद्य चार विवाहोंसे उत्पन्न पुत्र ब्रह्मतेजसे सम्पन्न, शीलवान्, रूप, सत्त्वादि गुणोंसे युक्त, धनवान्, पुत्रवान्, यशस्वी, धर्मिष्ठ और दीर्घजीवी होते हैं। शेष चार विवाहोंसे उत्पन्न पुत्र क्रूर-स्वभाव, धर्मद्वेषी और मिथ्यावादी होते हैं। अनिन्दित विवाहोंसे संतान भी अनिन्द्य ही होती है और निन्दित विवाहोंकी संतान भी निन्दित होती है। इसलिये आसुर आदि निन्दित विवाह नहीं करना चाहिये। कन्याका पिता वरसे यत्किंचित् भी धन न ले। वरका धन लेनेसे वह अपत्यविक्रयी अर्थात् संतानका बेचनेवाला हो जाता है। जो पति या पिता आदि सम्बन्धी वर्ग मोहवश कन्याके धन आदिसे अपना जीवन चलाते हैं, वे अधोगतिको प्राप्त होते हैं। आर्ष-विवाहमें जो गो-मिथुन लेनेकी बात कही गयी है, वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि चाहे थोड़ा ले या अधिक, वह कन्याका मूल्य ही गिना जाता है, इसलिये वरसे कुछ भी लेना नहीं चाहिये। जिन कन्याओंके निमित्त वर-पक्षसे दिया हुआ वस्त्राभूषणादि पिता-भ्राता आदि नहीं लेते, प्रत्युत कन्याको ही देते हैं, वह विक्रय नहीं है। यह कुमारियोंका पूजन है, इसमें कोई हिंसादि दोष नहीं है। इस प्रकार उत्तम विवाह करके उत्तम देशमें निवास करना चाहिये, इससे बहुत यशकी प्राप्ति होती है।

ऋषियोंने पूछा—ब्रह्मन्! वह कौन-सा देश है, जहाँ निवास करनेसे धर्म और यशकी वृद्धि होती है?

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो! जिस देशमें धर्म अपने चारों चरणोंके साथ रहे, जहाँ विद्वान् लोग निवास करते हों और सारे व्यवहार शास्त्रोक्त-रीतिसे सम्पन्न होते हों, वही देश उत्तम और निवास करने योग्य है।

ऋषियोंने पूछा—महाराज! विद्वान् जिस शास्त्रोक्त आचरणको ग्रहण करते हैं और धर्मशास्त्रमें जैसी विधि निर्दिष्ट की गयी है उसे हमें बतलायें, हमें इस विषयमें महान् कौतूहल हो रहा है।

ब्रह्माजी बोले—राग-द्वेषसे रहित सज्जन एवं विद्वान् जिस धर्मका नित्य अपने शुद्ध अन्तःकरणसे आचरण करते हैं, उसे आप सुनें—

इस संसारमें किसी वस्तुकी कामना करना श्रेष्ठ नहीं है। वेदोंका अध्ययन करना और वेदविहित कर्म करना भी काम्य है। संकल्पसे कामना उत्पन्न होती है। वेद पढ़ना, यज्ञ करना, व्रत-नियम, धर्म आदि कर्म सब संकल्पमूलक ही हैं। इसीलिये सभी यज्ञ, दान आदि कर्म संकल्पपठनपूर्वक किये जाते हैं। ऐसी कोई भी क्रिया नहीं है, जिसमें काम न हो। जो कोई भी जो कुछ करता है वह इच्छासे ही करता है[1]।

श्रुति, स्मृति, सदाचार और अपने आत्माकी प्रसन्नता—इन चार बातोंसे धर्मका निर्णय होता है। श्रुति तथा स्मृतिमें कहे गये धर्मके आचरणसे इस लोकमें बहुत यश प्राप्त होता है और परलोकमें इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। श्रुति वेदको कहते हैं और स्मृति धर्मशास्त्रका नाम है। इन दोनोंसे सभी बातोंका

१-कामकी गणना चार पुरुषार्थोंमें है। भोगकी कामनाके विरुद्ध योग, यज्ञ, जप-तप, धर्मसंस्थापन और गति-मुक्तिकी कामना ही शुभ कामना है। गीता (७।११) में भी भगवान् 'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥' कहकर मनको इन्हीं सत्कर्मोंकी ओर प्रेरित करनेकी आज्ञा देते हैं। यह एक प्रकारसे निष्कामताकी जननी है। वैदिक कर्मयोगको भी भविष्यपुराणमें सकाम कहनेका यही भाव है।

विचार करें, क्योंकि धर्मकी जड़ ये ही हैं, जो धर्मके मूल इन दोनोंका तर्क आदिके द्वारा अपमान करता है, उसे सत्पुरुषोंको तिरस्कृत कर देना चाहिये, क्योंकि वह वेदनिन्दक होनेसे नास्तिक ही है[1]।

जिनके लिये मन्त्रोंद्वारा गर्भाधानसे श्मशानतक संस्कारकी विधि कही गयी है, उन्हीं लोगोंको वेद तथा जपमें अधिकार है। सरस्वती तथा दृषद्वती—इन दो देवनदियोंके बीचका जो देश है वह देवताओंद्वारा बनाया गया है, उसे ब्रह्मावर्त कहते हैं। उस देशमें चारों वर्ण और उपवर्णोंमें जो आचार परम्परासे चला आया है, उसका नाम सदाचार है। कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, पाञ्चाल और सूरसेनदेश (मथुरा)—ये ब्रह्मर्षियोंके द्वारा सेवित हैं, परंतु ब्रह्मावर्तसे कुछ न्यून हैं। इन देशोंमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंसे सब देशके मनुष्य अपना-अपना आचार सीखते हैं[2]। हिमालय और विन्ध्यपर्वतके बीच, विनशनसे पूर्व और प्रयागसे पश्चिम जो देश है उसे मध्यदेश कहते हैं। इन्हीं दोनों पर्वतोंके बीच पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्रतक जो देश है वह आर्यावर्त कहलाता है[3]। जिस देशमें कृष्णसार मृग अपनी इच्छासे नित्य विचरण करें, वह देश यज्ञ करने योग्य होता है। इन शुभ देशोंमें ब्राह्मणको निवास करना चाहिये। इससे भिन्न म्लेच्छ देश हैं। हे मुनीश्वरो! इस प्रकार मैंने यह देशव्यवस्था आप सबको संक्षेपमें सुनायी है।

(अध्याय ७)

धन एवं स्त्रीके तीन आश्रय तथा स्त्री-पुरुषोंके पारस्परिक व्यवहारका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो! उत्तम रीतिसे विवाह सम्पन्न कर गृहस्थको जो करना चाहिये, उसका मैं वर्णन करता हूँ।

सर्वप्रथम गृहस्थको उत्तम देशमें ऐसा आश्रय ढूँढ़ना चाहिये, जहाँ वह अपने धन तथा स्त्रीकी भलीभाँति रक्षा कर सके। बिना आश्रयके इन दोनोंकी रक्षा नहीं हो सकती। ये दोनों—धन एवं स्त्री—त्रिवर्गके हेतु हैं, इसलिये इनकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा अवश्य करनी चाहिये। पुरुष, स्थान और घर—ये तीनों आश्रय कहलाते हैं। इन तीनोंसे धन आदिका रक्षण और अर्थोपार्जन होता है। कुलीन, नीतिमान्, बुद्धिमान्, सत्यवादी, विनयी, धर्मात्मा और दृढव्रती पुरुष आश्रयके योग्य होता है। जहाँ धर्मात्मा पुरुष रहते हों, ऐसे नगर अथवा ग्राममें निवास करना चाहिये। ऐसे स्थानमें गुरुजनोंकी अनुमति लेकर अथवा उस ग्राम आदिमें बसनेवाले श्रेष्ठजनोंकी सहमति प्राप्त कर रहनेके लिये अविवादित स्थलमें घर बनाना चाहिये, परंतु किसी पड़ोसीको कष्ट नहीं देना चाहिये। नगरके द्वार, चौक, यज्ञशाला, शिल्पियोंके रहनेके स्थान, जुआ खेलने तथा मांस-मद्यादि बेचनेके स्थान, पाखण्डियों और राजाके नौकरोंके रहनेके स्थान, देवमन्दिरके मार्ग तथा राजमार्ग और राजाके महल—इन स्थानोंसे दूर, रहनेके लिये अपना घर बनाना चाहिये। स्वच्छ, मुख्य मार्गवाला, उत्तम व्यवहारवाले लोगोंसे आवृत तथा दुष्टोंके निवाससे दूर—ऐसे स्थानमें गृहका निर्माण करना चाहिये। गृहके भूमिकी ढाल पूर्व अथवा उत्तरकी ओर हो। रसोईघर, स्नानागार, गोशाला, अन्तःपुर तथा शयन-कक्ष और पूजाघर आदि सब अलग-अलग बनाये जायँ। अन्तःपुरकी रक्षाके लिये वृद्ध, जितेन्द्रिय एवं विश्वस्त व्यक्तियोंको नियुक्त करना चाहिये। स्त्रियोंकी रक्षा न करनेसे वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं और अनेक प्रकारके दोष भी होते देखे गये हैं। स्त्रियोंको कभी स्वतन्त्रता न दे और न उनपर विश्वास करे।

१-निगमो धर्ममूलं स्यात् स्मृतिशीले तथैव च। तथाचारश्च साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् सदा नरः। प्राप्य चेह परां कीर्तिं याति शक्रसलोकताम्॥
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। ते सर्वार्थेषु मीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥
योऽवमन्येत ते चोभे हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः। स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं विप्राः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥ (ब्राह्मपर्व ७। ५२, ५४—५७)

२-एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ (ब्राह्मपर्व ७। ५३)

३-आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः॥ (ब्राह्मपर्व ७। ६५)

किंतु व्यवहारमें विश्वस्तके समान ही चेष्टा दिखानी चाहिये। विशेषरूपसे उसे पाकादि क्रियाओंमें ही नियुक्त करना चाहिये। स्त्रीको किसी भी समय खाली नहीं बैठना चाहिये।

दरिद्रता, अति-रूपवत्ता, असत्-जनोंका सङ्ग, स्वतन्त्रता, पेयादि द्रव्यका पान करना तथा अभक्ष्य-भक्षण करना, कथा, गोष्ठी आदि प्रिय लगना, काम न करना, जादू-टोना करनेवाली, भिक्षुकी, कुट्टिनी, दाई, नटी आदि दुष्ट स्त्रियोंके सङ्ग उद्यान, यात्रा, निमन्त्रण आदिमें जाना, अत्यधिक तीर्थयात्रा करना अथवा देवताके दर्शनोंके लिये घूमना, पतिके साथ बहुत वियोग होना, कठोर व्यवहार करना, पुरुषोंसे अत्यधिक वार्तालाप करना, अति क्रूर, अति सौम्य, अति निडर होना, ईर्ष्यालु तथा कृपण होना और किसी अन्य स्त्रीके वशीभूत हो जाना—ये सब स्त्रीके दोष उसके विनाशके हेतु हैं। ऐसी स्त्रियोंके अधीन यदि पुरुष हो जाता है तो वह भी निन्दनीय हो जाता है। यह पुरुषकी ही अयोग्यता है कि उसके भृत्य बिगड़ जाते हैं। स्वामी यदि कुशल न हो तो भृत्य और स्त्री बिगड़ जाते हैं, इसलिये समयके अनुसार यथोचित रीतिसे ताडन और शासनसे जिस भाँति हो इनकी रक्षा करनी चाहिये। नारी पुरुषका आधा शरीर है, उसके बिना धर्म-क्रियाओंकी साधना नहीं हो सकती। इस कारण स्त्रीका सदा आदर करना चाहिये। उसके प्रतिकूल नहीं करना चाहिये।

स्त्रीके पतिव्रता होनेके प्रायः तीन कारण देखे जाते हैं—(१) पर-पुरुषमें विरक्ति, (२) अपने पतिमें प्रीति तथा (३) अपनी रक्षामें समर्थता[1]।

उत्तम स्त्रीको साम तथा दाननीतिसे अपने अधीन रखे। मध्यम स्त्रीको दान और भेदसे और अधम स्त्रीको भेद और दण्डनीतिसे वशीभूत करे। परंतु दण्ड देनेके अनन्तर भी साम-दान आदिसे उसको प्रसन्न कर ले। भर्ताका अहित करनेवाली और व्यभिचारिणी स्त्री कालकूट विषके समान होती है, इसलिये उसका परित्याग कर देना चाहिये। उत्तम कुलमें उत्पन्न पतिव्रता, विनीत और भर्ताका हित चाहनेवाली स्त्रीका सदा आदर करना चाहिये। इस रीतिसे जो पुरुष चलता है वह त्रिवर्गकी प्राप्ति करता है और लोकमें सुख पाता है।

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो! मैंने संक्षेपमें पुरुषोंको स्त्रियोंके साथ कैसे व्यवहार करना चाहिये, यह बताया। अब पुरुषोंके साथ स्त्रियोंको कैसा व्यवहार करना चाहिये, उसे बता रहा हूँ आप सब सुनें—

पतिकी सम्यक् आराधना करनेसे स्त्रियोंको पतिका प्रेम प्राप्त होता है तथा फिर पुत्र तथा स्वर्ग आदि भी उसे प्राप्त हो जाते हैं, इसलिये स्त्रीको पतिकी सेवा करना आवश्यक है। सम्पूर्ण कार्य विधिपूर्वक किये जानेपर ही उत्तम फल देते हैं और विधि-निषेधका ज्ञान शास्त्रसे जाना जाता है। स्त्रियोंका शास्त्रमें अधिकार नहीं है और न ग्रन्थोंके धारण करनेमें अधिकार है। इसलिये स्त्रीद्वारा शासन अनर्थकारी माना जाता है[2]। स्त्रीको दूसरेसे विधि-निषेध जाननेकी अपेक्षा रहती है। पहले तो उसे भर्ता सब धर्मोंका निर्देश करता है और भर्ताके मरनेके अनन्तर पुत्र उसे विधवा एवं पतिव्रताके धर्म बतलाये। बुद्धिके विकल्पोंको छोड़कर अपने बड़े पुरुष जिस मार्गपर चले हों उसीपर चलनेमें उसका सब प्रकारसे कल्याण है। पतिव्रता स्त्री ही गृहस्थके धर्मोंका मूल है। (अध्याय ८-९)

पतिव्रता स्त्रियोंके कर्तव्य एवं सदाचारका वर्णन, स्त्रियोंके लिये गृहस्थ-धर्मके उत्तम व्यवहारकी आवश्यक बातें[3]

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो! गृहस्थ-धर्मका मूल पतिव्रता स्त्री है, पतिव्रता स्त्री पतिका आराधन किस विधिसे करे, उसका अब मैं वर्णन करता हूँ। आप सब इसे ध्यानपूर्वक सुनें।

आराधना करने योग्य पतिके आराधनकी विधि यह है कि उसकी चित्तवृत्तिको भलीभाँति जानकर उसके अनुकूल

१-सतीत्वे प्रायशः स्त्रीणां प्रदृष्टं कारणत्रयम्। परपुंसामसम्प्रीतिः प्रिये प्रीतिः स्वरक्षणे॥ (ब्राह्मपर्व ८।६६)

२-शास्त्राधिकारो न स्त्रीणां न ग्रन्थानां च धारणे। तस्मादिहान्ये मन्यन्ते तच्छासनमनर्थकम्॥ (ब्राह्मपर्व ९।६)

३-इस प्रकरणमें आगेके कुछ अंश—गोरक्षा, व्यापार, कृषि और लोक-संचालन आदि विषय प्रायः वार्ताशास्त्रसे सम्बन्धित हैं, जो लगभग नष्टप्राय हो गये हैं। इनका संक्षिप्त विवरण भविष्यपुराणमें मिलता है, जिसके कुछ अंश यहाँ दिये जा रहे हैं।

चलना और सदा उसका हित चाहते रहना। अर्थात् पतिके चित्तके अनुकूल चलना और यथोचित व्यवहार करना, यह पतिव्रताका मुख्य धर्म है—

आराध्यानां हि सर्वेषामयमाराधने विधिः।
चित्तज्ञानानुवृत्तिश्च हितैषित्वं च सर्वदा॥

(ब्राह्मपर्व १०।१)

पतिके माता-पिता, बहिन, ज्येष्ठ भाई, चाचा, आचार्य, मामा तथा वृद्ध स्त्रियों आदिका उसे आदर करना चाहिये और जो सम्बन्धमें अपनेसे छोटे हों, उनको स्नेहपूर्वक आज्ञा देनी चाहिये। जहाँ भी अपनेसे बड़े सास-ससुर या गुरु विद्यमान हों या अपना पति उपस्थित हो वहाँ उनके अनुकूल ही आचरण करना चाहिये; क्योंकि यही चरित्र स्त्रियोंके लिये प्रशस्त माना गया है। हास-परिहास करनेवाले पतिके मित्र और देवर आदिके साथ भी एकान्तमें बैठकर हास-परिहास नहीं करना चाहिये। किसी पुरुषके साथ एकान्तमें बैठना, स्वच्छन्दता और अत्यधिक हास-परिहास करना प्रायः कुलीन स्त्रियोंके पातिव्रत-धर्मको नष्ट करनेके कारण बनते हैं। सहसा दुष्टके संसर्गमें आकर युवकोंके साथ हास-परिहास करना उचित नहीं होता, क्योंकि स्वतन्त्र स्त्रियोंकी निर्भीकता एकान्तमें बुरे आचरणके लिये सफल हो जाती है। अतः उत्तम स्त्रीको ऐसा नहीं करना चाहिये। इस रीतिसे स्त्रीका शील नहीं बिगड़ता और कुलकी निन्दा भी नहीं होती। बुरे संकेत करनेवाले और बुरे भावोंको प्रकट करनेवाले पुरुषोंको भाई या पिताके समान देखते हुए स्त्रीको चाहिये कि उनका सर्वथा परित्याग कर दे। दुष्ट पुरुषोंका अनुचित आग्रह स्वीकार करना, उनके साथ वार्तालाप करना, हासयुक्त संकेत अथवा कुदृष्टिपर ध्यान देना, दूसरे पुरुषके हाथसे कुछ लेना या उसे देना सर्वथा परित्याज्य है। घरके द्वारपर बैठने या खड़ा होने, राजमार्गकी ओर देखने, किसी अपरिचित देश या घरमें जाने, उद्यान और प्रदर्शनी आदिमें रुचि रखनेसे स्त्रीको बचना चाहिये। बहुत पुरुषोंके मध्यसे निकलना, ऊँचे स्वरसे बोलना, हँसी-मजाक करना एवं अपनी दृष्टि, वाणी तथा शरीरसे चापल्य प्रकट करना, खँखारना तथा सीत्कारी भरना, दुष्ट स्त्री, भिक्षुकी, तान्त्रिक, मान्त्रिक आदिमें आसक्ति और उनके मण्डलोंमें निवास करनेकी इच्छा—ये सब बातें पतिव्रता स्त्रीके लिये त्याज्य हैं। इस प्रकारके आचरण तो प्रायः दुष्टोंके लिये ही उचित होते हैं, कुलीन स्त्रियोंके लिये नहीं। इन निन्दनीय बातोंसे अपनी रक्षा करते हुए स्त्रियोंको चाहिये कि वे अपने पातिव्रत-धर्म तथा कुलकी मर्यादाकी रक्षा करें।

उत्तम स्त्री पतिको मन, वचन तथा कर्मसे देवताके समान समझे और उसकी अर्धाङ्गिनी बनकर सदा उसके हित करनेमें तत्पर रहे। देवता और पितरोंके कृत्य तथा पतिके स्नान, भोजन एवं अभ्यागतोंके स्वागत-सत्कार आदिमें बड़ी ही सावधानी और समयका ध्यान रखे। वह पतिके मित्रोंको मित्र तथा शत्रुओंको शत्रुके समान समझे। अधर्म और अनर्थसे दूर रहकर पतिको भी उससे बचाये। पतिको क्या प्रिय है और कौन-सा भोजनादि पदार्थ उसके लिये हितकर है तथा कैसे पतिके साथ विचारों आदिमें समानता आये इस बातको सर्वदा उसे ध्यानमें रखना चाहिये, साथ ही उसे सेवकोंको असंतुष्ट नहीं रखना चाहिये।

रहनेका घर और शरीर—ये दो गृहिणियोंके लिये मुख्य हैं। इसलिये प्रयत्नपूर्वक वह सर्वप्रथम अपने घर तथा शरीरको सुसंस्कृत (पवित्र) रखे। शरीरसे भी अधिक स्वच्छ और भूषित घरको रखे। तीनों कालोंमें पूजा-अर्चना करे और व्यवहारकी सभी वस्तुओंको यथाविधि साफ रखे। प्रातः, मध्याह्न और सायंकालके समय घरका मार्जनकर स्वच्छ करे। गोशाला आदिको स्वच्छ करवा ले। दास-दासियोंको भोजन आदिसे संतुष्ट कर उन्हें अपने-अपने कार्योंमें लगाये। स्त्रीको उचित है कि वह प्रयोगमें आनेवाले शाक, कन्द, मूल, फल आदिके बीजोंका अपने-अपने समयपर संग्रह कर ले और समयपर इन्हें खेत आदिमें बुआ दे। ताँबे, काँसे, लोहे, काष्ठ और मिट्टीसे बने हुए अनेक प्रकारके बर्तनोंका घरमें संग्रह रखे। जल रखने तथा जल निकालने और जल पीनेके कलशादि पात्र, शाक-भाजी आदिसे सम्बद्ध विभिन्न पात्र, घी, तेल, दूध, दही आदिसे सम्बद्ध बर्तन, मूसल, ओखली, झाड़ू, चलनी, सँड़सी, सिल, लोढ़ा, चक्की, चिमटा, कड़ाही, तवा, तराजू, बाट, पिटार, संदूक, पलंग तथा चौकी आदि गृहस्थोंके प्रयोगमें आनेवाले आवश्यक उपकरणोंकी प्रयत्नपूर्वक व्यवस्था करनी चाहिये। उसे चाहिये कि वह हींग, जीरा, पिप्पल, राई, मरिच, धनिया तथा सोंठ आदि अनेक

प्रकारके मसाले, लवण, अनेक प्रकारके क्षार-पदार्थ, सिरका, अचार आदि, अनेक प्रकारकी दालें, सब प्रकारके तेल, सूखा काष्ठ, विविध प्रकारके दूध-दहीसे बने पदार्थ और अनेक प्रकारके कन्द आदि जो-जो भी वस्तु नित्य तथा नैमित्तिक कार्योंमें अपेक्षित हों, उन्हें अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रयत्नपूर्वक पहलेसे ही संग्रह करना चाहिये, जिससे समयपर उन्हें ढूँढ़ना न पड़े। जिस वस्तुकी भविष्यमें आवश्यकता पड़े, उसे पहलेसे ही संग्रहमें रखना चाहिये। सूखे-गीले, पिसे, बिना पिसे तथा कच्चे और पके अन्नादि पदार्थोंका अच्छी तरह हानि-लाभ विचारकर ही संग्रह करना चाहिये।

पतिव्रता नारी गुरु, बालक, वृद्ध, अभ्यागत और पतिकी सेवामें आलस्य न करे। पतिकी शय्या स्वयं बिछाये। देवर आदिके द्वारा पहिने हुए वस्त्र, माला तथा आभूषणोंको वह कभी न तो धारण करे और न इनके शय्या, आसन आदिपर बैठे। गौका इतना दूध निकाले कि जिसमें बछड़े भूखे न रह जायँ। दहीसे घी बनाये। वर्षा, शरद् और वसन्त ऋतुमें गायको दो बार दुहना चाहिये, शेष ऋतुओंमें एक ही बार दुहे। चरवाहे, ग्वाले आदिको चरवाहीके बदले रुपये अथवा अनाज दे। गोदोहक बछड़ोंका भाग अपने प्रयोगमें न ला सके, यह देखता रहे, साथ ही यह भी ध्यान रखे कि दूध दुहनेवाला समयपर दूध दुह रहा है या नहीं, क्योंकि दोहनके यथोचित समयपर ही गायको दुहना चाहिये। समयका अतिक्रमण अच्छा नहीं होता। जब गाय ब्याय जाय, तब एक महीनेतक उसका दूध नहीं निकालना चाहिये, उसे बछड़ेको ही पीने देना चाहिये। फिर एक महीनेतक एक थनका, तदनन्तर एक महीनेतक दो थनका और फिर तीन थनका दूध निकालना चाहिये। एक या दो थन बछड़ेके लिये अवश्य छोड़ना चाहिये। यथासमय तिलकी खली, कोमल हरी घास, नमक तथा जल आदिसे बछड़ोंका पालन करना चाहिये। बूढ़ी, गर्भिणी, दूध देनेवाली, बछड़ेवाली तथा बछियावाली—इन पाँचों गायोंका घास आदिके द्वारा समानरूपसे बराबर पालन-पोषण करते रहना चाहिये। किसीको भी न्यून तथा अधिक न समझे। गौके गलेमें घंटी अवश्य बाँधनी चाहिये। एक तो घंटी बाँधनेसे गौकी शोभा होती है, दूसरे उसके शब्दोंसे कोई जीव-जन्तु डरकर उसके पास नहीं आते, इससे उसकी रक्षा भी होती है और गौ कहीं चली जाय तो उसके शब्दसे उसे ढूँढ़ा भी जा सकता है। हिंसक पशुओं और सर्पोंसे रहित, घास और जलसे युक्त, छायादार घने वृक्षोंवाले तथा पशुओंके रोगसे रहित स्थानपर गायोंके रहनेके लिये गोष्ठ या गोशाला बनानी चाहिये। कृषि-कार्यमें लगे सेवकोंके लिये देश-काल और उनके कार्यके अनुरूप भोजन तथा वेतनका प्रबन्ध करना चाहिये। खेत, खलिहान अथवा वाटिका आदिमें जहाँ भी सेवक कामपर लगे हों वहाँ बार-बार जाकर उनके कार्य एवं कार्यके प्रति उनके मनोयोगकी जानकारी करनी चाहिये। उनमेंसे जो योग्य हो, अच्छा कार्य करता हो, उसका अधिक सत्कार करे और उसके लिये भोजन, आवास आदिकी औरोंसे विशेष व्यवस्था करे। समय-समयपर सब प्रकारके अन्न और कन्द-मूलके बीजोंका संग्रह करे तथा यथासमय उनकी बुआई कर दे।

घरका मूल है स्त्री और गृहस्थाश्रमका मूल है अन्न। इसलिये भोज्यादि अन्न पदार्थोंमें घरकी स्त्रीको मुक्तहस्त नहीं होना चाहिये अर्थात् अन्नको वह वृथा नष्ट न करे, सदा सँजोकर रखे। उसे मितव्ययी होना चाहिये। अन्नादिमें मुक्तहस्त होना गृहिणियोंके लिये अच्छा नहीं माना जाता। वह संचय करनेमें और खर्च करनेमें मधुमक्खी, वल्मीक और अञ्जनके समान हानि-लाभ देखकर अन्नको थोड़ा-सा समझकर उसकी अवज्ञा न करे। क्योंकि थोड़ा-थोड़ा ही मधु एकत्र करती हुई मधुमक्खी कितना एकत्र कर लेती है? इसी प्रकार दीमक जरा-जरा-सी मिट्टी लाकर कितना ऊँचा वल्मीक बना लेती है? किंतु इसके विपरीत बहुत-सा बनाया गया अंजन भी नित्य थोड़ा-थोड़ा आँखमें डालते रहनेसे कुछ दिनोंमें समाप्त हो जाता है। इसी रीतिसे सभी वस्तुओंका संग्रह और खर्च हो जाता है। इसमें थोड़ी वस्तुकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये। घरके सभी कार्य स्त्री-पुरुषके एकमत होनेपर ही अच्छे होते हैं।

जगत्‌में ऐसे भी हजारों पुरुष हैं, जिनके सब कार्योंमें स्त्रीकी प्रधानता रहती है। यदि स्त्री बुद्धिमान् और सुशील हो तो कुछ हानि नहीं होती, किंतु इसके विपरीत होनेपर अनेक प्रकारके दुःख होते हैं। इसलिये स्त्रीकी योग्यता-अयोग्यताको ठीकसे समझकर बुद्धिमान् पुरुषको उसे कार्यमें नियुक्त करना

चाहिये। इस प्रकार योग्यतासे कार्यमें नियुक्त की गयी स्त्रीको चाहिये कि वह सौभाग्यवश या अपने उद्यम आदिसे अपने पतिको भलीभाँति सेवा कर उसे अपने अनुकूल बनाये।

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वरो! घरमें स्त्री प्रातःकाल सबसे पहले उठे और अपने कार्यमें प्रवृत्त हो जाय तथा रात्रिमें सबसे पीछे भोजन करे और सबके बादमें सोये। पति तथा ससुर आदिके उपस्थित न रहनेपर स्त्रीको घरकी देहली पार नहीं करनी चाहिये। वह बड़े सवेरे ही जग जाय। स्त्री पतिके समीप बैठकर ही सब सेवकोंको कामकी आज्ञा दे, बाहर न जाय। जब पति भी जग उठे तब वहाँके सभी आवश्यक कार्य करके, घरके अन्य कार्योंको भी प्रमादरहित होकर करे। रात्रिके पहले ही उत्तम वस्त्राभूषणोंको उतारकर घरके कार्योंको करने योग्य साधारण वस्त्रोंको पहनकर तत्तत् समयमें करने योग्य कार्योंको यथाक्रम करना चाहिये। उसे चाहिये कि सबसे पहले रसोई, चूल्हा आदिको भलीभाँति लीप-पोतकर स्वच्छ करे। रसोईके पात्रोंको माँज-धो और पोंछकर वहाँ रखे तथा अन्य भी सब रसोईकी सामग्री वहाँ एकत्र करे। रसोई-घर न तो अधिक गुप्त (बंद) हो और न एकदम खुला ही हो। स्वच्छ, विस्तीर्ण और जिसमेंसे धुआँ निकल जाय ऐसा होना चाहिये। रसोई-घरके भोजन पकानेवाले पात्रोंको तथा दूध-दहीके पात्रोंको सीपी, रस्सी अथवा वृक्षकी छालसे खूब रगड़कर अंदर-बाहरसे अच्छी तरह धो लेना चाहिये। रात्रिमें धुएँ-आगके द्वारा तथा दिनमें धूपमें उन्हें सुखा लेना चाहिये, जिससे उन पात्रोंमें रखा जानेवाला दूध-दही आदि खराब न होने पाये। बिना शोधित पात्रोंमें रखा दूध-दही विकृत हो जाता है। दूध-दही, घी तथा बने हुए पाकादिको सावधानीसे रखना चाहिये और उसका निरीक्षण करते रहना चाहिये।

स्नानादि आवश्यक कृत्य करके उसे अपने हाथसे पतिके लिये भोजन बनाना चाहिये। उसे यह विचार करना चाहिये कि मधुर, क्षार, अम्ल आदि रसोंमें कौन-कौन-सा भोजन पतिको प्रिय है, किस भोजनसे अग्निकी वृद्धि होती है, क्या पथ्य है और कौन भोजन कालके अनुरूप होगा, क्या अपथ्य है, उत्तम स्वास्थ्य किस भोजनसे प्राप्त होगा और कौन भोजन कालके अनुरूप होगा आदि बातोंका भलीभाँति विचारकर और निर्णयकर उसे वैसा ही भोजन प्रीतिपूर्वक बनाना चाहिये। रसोई-घरमें सदासे काम करनेवाले, विश्वस्त तथा आहारका परीक्षण करनेवाले व्यक्तिको ही सूपकारके रूपमें नियुक्त करना चाहिये। रसोईके स्थानमें किसी अन्य दुष्ट स्त्री-पुरुषोंको न आने दे। इस विधिसे भोजन बनाकर सब पदार्थोंको स्वच्छ पात्रोंसे आच्छादित कर देना चाहिये, फिर रसोई-घरसे बाहर आकर पसीने आदिको पोंछकर, स्वच्छ होकर, गन्ध, ताम्बूल, माला-वस्त्र आदिसे अपनेको थोड़ा-सा भूषित करे फिर भोजनके निमित्त यथोचित समयपर विनयपूर्वक पतिको बुलाये। सब प्रकारके व्यञ्जन परोसे, जो देश-कालके विपरीत न हो और जिनका परस्पर विरोध भी न हो, जैसे दूध और लवणका है। जिस पदार्थमें पतिकी अधिक रुचि देखे उसे और परसे। इस प्रकार पतिको प्रीतिपूर्वक भोजन कराये।

सपत्नियोंको अपनी बहिनके समान तथा उनकी संतानोंको अपनी संतानसे भी अधिक प्रिय समझे। उनके भाई-बन्धुओंको अपने भाइयोंके समान ही समझे। भोजन, वस्त्र, आभूषण, ताम्बूल आदि जबतक सपत्नियोंको न दे दे, तबतक स्वयं भी ग्रहण न करे। यदि सपत्नीको अथवा किसी आश्रित जनको कुछ रोग हो जाय तो उसकी चिकित्साके लिये ओषधि आदिकी भलीभाँति व्यवस्था कराये। नौकर, बन्धु और सपत्नीको दुःखी देख स्वयं भी उन्हींके समान दुःखी होवे और उनके सुखमें सुख माने। सभी कार्योंसे अवकाश मिलनेपर सो जाय और रात्रिमें उठकर अनावश्यक धन-व्यय कर रहे पतिको एकान्तमें धीरे-धीरे समझाये। घरका सब वृत्तान्त पतिको एकान्तमें बताये, परंतु सपत्नियोंके दोषोंको न कहे, किंतु यदि कोई उनका व्यभिचार आदि बड़ा दोष देखे, जिसे गुप्त रखनेसे कोई अनर्थ हो तो ऐसा दोष पतिको अवश्य बता देना चाहिये। दुर्भगा, निःसंतान तथा पतिद्वारा तिरस्कृत सपत्नियोंको सदा आश्वासन दे। उन्हें भोजन, वस्त्र, आभूषण आदिसे दुःखी न होने दे। यदि किसी नौकर आदिपर पति कोप करे तो उसे भी आश्वस्त करना चाहिये, परंतु यह अवश्य विचार कर लेना चाहिये कि इसे आश्वासन देनेसे कोई हानि नहीं होनेवाली है।

इस प्रकार स्त्री अपने पतिकी सम्पूर्ण इच्छाओंको पूर्ण करे। अपने सुखके लिये जो अभीष्ट हो, उसका भी परित्याग कर पतिके अनुकूल ही सब कार्य करे। क्योंकि स्त्रियोंके देवता

पति, वर्णोंके देवता ब्राह्मण हैं तथा ब्राह्मणोंके देवता अग्नि हैं और प्रजाओंका देवता राजा है।

स्त्रियोंके त्रिवर्ग-प्राप्तिके दो मुख्य उपाय हैं—प्रथम सब प्रकारसे पतिको प्रसन्न रखना और द्वितीय आचरणकी पवित्रता। पतिके चित्तके अनुकूल चलनेसे जैसी प्रीति पतिकी स्त्रीपर होती है वैसी प्रीति रूपसे, यौवनसे और अलंकारादि आभूषणोंसे नहीं होती[1]। क्योंकि प्रायः यह देखा जाता है कि उत्तम रूप और युवावस्थावाली स्त्रियाँ भी पतिके विपरीत आचरण करनेसे दौर्भाग्यको प्राप्त करती हैं और अति कुरूप तथा हीन अवस्थावाली स्त्रियाँ भी पतिके चित्तके अनुकूल चलनेसे उनकी अत्यन्त प्रिय हो जाती हैं। इसलिये पतिके चित्तका अभिप्राय भलीभाँति समझना और उसके अनुकूल आचरण करना यही स्त्रियोंके लिये सब सुखोंका हेतु है और यही समस्त श्रेष्ठ योग्यताओंका कारण है। इसके बिना तो स्त्रीके अन्य सभी गुण बन्ध्यत्वको प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् निष्फल हो जाते हैं और अनर्थके कारण बन जाते हैं। इसलिये स्त्रीको अपनी योग्यता (परचित्तज्ञता) सर्वथा बढ़ाते रहना चाहिये।

पतिके आनेका समय जानकर उनके आनेके पूर्व ही वह घरको स्वच्छ कर बैठनेके लिये उत्तम आसन बिछा दे तथा पतिदेवके आनेपर स्वयं अपने हाथसे उनके चरण धोकर उन्हें आसनपर बैठाये और पंखा हाथमें लेकर धीरे-धीरे डुलाये और सावधान होकर उनकी आज्ञा प्राप्त करनेकी प्रतीक्षा करे। ये सब काम दासी आदिसे न करवाये। पतिके स्नान, आहार, पानादिमें स्पृहा दिखाये। पतिके संकेतोंको समझकर सावधानीपूर्वक सभी कार्योंको करे और भोजनादि निवेदित करे। अपने बन्धु-बान्धवों तथा पतिके बन्धुओं और सपत्नीके साथ स्वागत-सत्कार पतिकी इच्छानुसार करे अर्थात् जिसपर पतिकी रुचि न देखे उससे अधिक शिष्टाचार न करे। स्त्रियोंके लिये सभी अवस्थाओंमें स्वकुलकी अपेक्षा पतिकुल ही विशेष पूज्य होता है; क्योंकि कोई भी कुलीन पुरुष अपनी कन्यासे उपकारकी आशा भी नहीं रखता और जो रखता है वह अनुचित ही है। कन्याका विवाह करनेके बाद फिर उससे अपनी आजीविकाकी इच्छा करना यह महात्मा और कुलीन पुरुषोंकी रीति नहीं है, अतः स्त्रीके सम्बन्धियोंको चाहिये कि वे केवल मित्रताके लिये, प्रीतिके लिये ही सम्बन्ध बढ़ानेकी इच्छा करें और प्रसंगवश यथाशक्ति उसे कुछ देते भी रहें। उससे कोई वस्तु लेनेकी इच्छा न रखें। कन्याके मायकेवालोंको कन्याके स्वामीकी रक्षाका प्रयत्न सर्वथा करना चाहिये, उनकी परस्पर प्रीति-सम्बन्धकी चर्चा सर्वत्र करनी चाहिये और अपनी मिथ्या प्रशंसा नहीं करनी चाहिये। साधु-पुरुषोंका व्यवहार अपने सम्बन्धियोंके प्रति ऐसा ही होता है।

जो स्त्री इस प्रकारके सद्वृत्तको भलीभाँति जानकर व्यवहार करती है, वह पति और उसके बन्धु-बान्धवोंको अत्यन्त मान्य होती है। पतिकी प्रिय, साधु वृत्तवाली तथा सम्बन्धियोंमें प्रसिद्धिको प्राप्त होनेपर भी स्त्रीको लोकापवादसे सर्वदा डरते रहना चाहिये; क्योंकि सीता आदि उत्तम पतिव्रताओंको भी लोकापवादके कारण अनेक कष्ट भोगने पड़े थे। भोग्य होनेके कारण, गुण-दोषोंका ठीक-ठीक निर्णय न कर पानेसे तथा प्रायः अविनयशीलताके कारण स्त्रियोंके व्यवहारको समझना अत्यन्त दुष्कर है। ठीक प्रकारसे दूसरेकी मनोवृत्तिको न समझनेके कारण तथा कपट-दृष्टिके कारण एवं स्वच्छन्द हो जानेसे ऐसी बहुत ही कम स्त्रियाँ हैं जो कलंकित नहीं हो जातीं। दैवयोग अथवा कुयोगसे अथवा व्यवहारकी अनभिज्ञतासे शुद्ध हृदयवाली स्त्री भी लोकापवादको प्राप्त हो जाती है। स्त्रियोंका यह दौर्भाग्य ही दुःख भोगनेका कारण है। इसका कोई प्रतीकार नहीं, यदि है तो इसकी ओषधि है उत्तम चरित्रका आचरण और लोक-व्यवहारको ठीकसे समझना।

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो! उत्तम आचरणवाली स्त्री भी यदि बुरा सङ्ग करे या अपनी इच्छासे जहाँ चाहे चली जाय, तो उसे अवश्य कलंक लगता है और झूठा दोष लगनेसे कुल भी कलंकित हो जाता है। उत्तम कुलकी स्त्रियोंके लिये यह आवश्यक है कि वे किसी भी भाँति अपने कुल—मातृकुल,

---

१-भर्ताधिदेवता नार्यो वर्णा ब्राह्मणदेवताः। ब्राह्मणा ह्यग्निदेवास्तु प्रजा राजन्यदेवताः॥
तासां त्रिवर्गसंसिद्धौ प्रदिष्टं कारणद्वयम्। भर्तुर्यदनुकूलत्वं यच्च शीलमविप्लुतम्॥
न तथा यौवनं लोके नापि रूपं न भूषणम्। यथा प्रियानुकूलत्वं सिद्धं शश्वदनौषधम्॥ (ब्राह्मपर्व १३।३५—३७)

पितृकुल एवं संततिको कलंक न लगने दे। ऐसी कुलीन स्त्रीसे ही धर्म, अर्थ तथा काम—इस त्रिवर्गकी सिद्धि हो सकती है। इसके विपरीत बुरे आचरणवाली स्त्रियाँ अपने कुलोंको नरकमें डालती हैं और चरित्रको ही अपना आभूषण माननेवाली स्त्रियाँ नरकमें गिरे हुओंको भी निकाल लेती हैं। जिन स्त्रियोंका चित्त पतिके अनुकूल है और जिनका उत्तम आचरण है, उनके लिये रत्न, सुवर्ण आदिके आभूषण भारस्वरूप ही हैं। अर्थात् स्त्रियोंके यथार्थ आभूषण ये दो हैं—पतिकी अनुकूलता और उत्तम आचरण। जो स्त्री पतिकी और लोककी अपने यथोचित व्यवहारादिसे आराधना करती है अर्थात् पतिके अनुकूल चलती है और लोकव्यवहारको ठीक-ठीक समझकर तदनुकूल आचरण करती है, वह स्त्री धर्म, अर्थ तथा कामकी अबाधसिद्धि प्राप्त कर लेती है—

भर्तृचित्तानुकूलत्वं यासां शीलमविच्युतम्।
तासां रत्नसुवर्णादि भार एव न मण्डनम्॥
लोकज्ञाने परा कोटिः पत्यौ भक्तिश्च शाश्वती।
शुद्धान्वयानां नारीणां विद्यादेतत्कुलव्रतम्॥
तस्माल्लोकश्च भर्ता च सम्यगाराधितौ यया।
धर्ममर्थं च कामं च सैवाप्नोति निरत्यया॥

(ब्राह्मपर्व १३। ६४—६६)

जिस स्त्रीका पति परदेशमें गया हो, उस स्त्रीको अपने पतिकी मङ्गलकामनाके सूचक सौभाग्य-सूत्र आदि स्वल्प आभूषण ही पहनने चाहिये, विशेष शृङ्गार नहीं करना चाहिये। उसे पति-द्वारा प्रारम्भ किये कार्योंका प्रयत्नपूर्वक सम्पादन करते रहना चाहिये। वह देहका अधिक संस्कार न करे। रात्रिको सास आदि पूज्य स्त्रियोंके समीप सोये। बहुत अधिक खर्च न करे। व्रत, उपवास आदिके नियमोंका पालन करती रहे। दैवज्ञ आदि श्रेष्ठजनोंसे पतिके कुशल-क्षेमका वृत्तान्त जाननेकी कोशिश करे और परदेशमें उसके कल्याणकी कामनासे तथा शीघ्र आगमनकी अभिलाषासे नित्य देवताओंका पूजन करे। अत्यन्त उज्ज्वल वेष न बनाये और न सुगन्धित तैलादि द्रव्योंका प्रयोग करे। उसे सम्बन्धियोंके घर नहीं जाना चाहिये। यदि किसी आवश्यक कार्यवश जाना ही पड़ जाय तो अपनेसे बड़ोंकी आज्ञा लेकर पतिके विश्वसनीय जनोंके साथ जाय। किंतु वहाँ अधिक समयतक न रहे, शीघ्र वापस लौट आये। वहाँ स्नान आदि व्यवहारोंको न करे। प्रवाससे पतिके लौट आनेपर प्रसन्न-मनसे सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत होकर पतिका यथोचित भोजनादिसे सत्कार करे और देवताओंसे पतिके लिये माँगी गयी मनौतियोंको पूजादिद्वारा यथाविधि सम्पन्न करे।

इस प्रकार मन, वाणी तथा कर्मोंसे सभी अवस्थाओंमें पतिका हित-चिन्तन करती रहे, क्योंकि पतिके अनुकूल रहना स्त्रियोंके लिये विशेष धर्म है। अपने सौभाग्यपर अहंकार न करे और उद्धत कार्योंको भी न करे तथा अत्यन्त विनम्र भावसे रहे। इस प्रकारसे पतिकी सेवा करते हुए जो स्त्री पतिके कार्योंमें प्रमाद नहीं करती, पूज्यजनोंका सदा आदर करती रहती है, नौकरोंका भरण-पोषण करती है, नित्य सद्गुणोंकी अभिवृद्धिके लिये प्रयत्नशील रहती है तथा सब प्रकारसे अपने शीलकी रक्षा करती रहती है, वह स्त्री इस लोक तथा परलोकमें उत्तम सुख एवं उत्तम कीर्ति प्राप्त करती है[1]।

जिस स्त्रीपर पति अति क्रोधयुक्त हो और उसका आदर न करे, वह स्त्री दुर्भगा कहलाती है। उसे चाहिये कि वह नित्य व्रत-उपवासादि क्रियाओंमें संलग्न रहे और पतिके बाह्य कार्योंमें विशेषरूपसे सहयोग करे। जातिसे कोई स्त्री दुर्भगा अथवा सुभगा (सौभाग्यशालिनी) नहीं होती। वह अपने व्यवहारसे ही पतिकी प्रिय और अप्रिय हो जाती है। उत्तम स्त्री पतिके चित्तका अभिप्राय न जाननेसे, उसके प्रतिकूल चलनेसे और लोकविरुद्ध आचरण करनेसे दुर्भगा हो जाती है एवं उसके अनुकूल चलनेसे सुभगा हो जाती है। मनोवृत्तिके अनुकूल कार्य करनेसे पराया भी प्रिय हो जाता है और मनोऽनुकूल कार्य न करनेसे अपना जन भी शीघ्र शत्रु बन जाता है। इसलिये स्त्रीको मन, वचन तथा अपने कार्योंद्वारा

१-एवमाराध्य भर्तारं तत्कार्येष्वप्रमादिनी। पूज्यानां पूजने नित्यं भृत्यानां भरणेषु च॥
गुणानामर्जने नित्यं शीलवत्परिरक्षणे। प्रेत्य चेह च निर्द्वन्द्वं सुखमाप्नोत्यनुत्तमम्॥

(ब्राह्मपर्व १४। ३१-३२)

सभी अवस्थाओंमें पतिके अनुसार ही प्रिय आचरण करना चाहिये। इस प्रकार कहे गये स्त्री-वृत्तको भलीभाँति समझकर जो स्त्री पतिकी सेवा करती है, वह पतिको अपना बना लेती है और पतिकी सेवासे सभी सुखों तथा त्रिवर्गको भी प्राप्त कर लेती है[1]।

(अ० १०—१५)

पञ्चमहायज्ञोंका वर्णन तथा व्रत-उपवासोंके प्रकरणमें आहारका निरूपण एवं प्रतिपदा तिथिकी उत्पत्ति, व्रत-विधि और माहात्म्य

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! इस प्रकार स्त्रियोंके लक्षण और सदाचारका वर्णन करके ब्रह्माजी अपने लोक, तथा ऋषिगण भी अपने-अपने आश्रमोंकी ओर चले गये। अब गृहस्थोंको कैसा आचरण करना चाहिये, उसे मैं बताता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें—

गृहस्थोंको वैवाहिक अग्निमें विधिपूर्वक गृह्यकर्मोंको करना चाहिये तथा पञ्चमहायज्ञोंका भी सम्पादन करना चाहिये। गृहस्थोंके यहाँ जीव-हिंसा होनेके पाँच स्थान हैं—ओखली, चक्की, चूल्हा, झाड़ू तथा जल रखनेका स्थान। इस हिंसा-दोषसे मुक्ति पानेके लिये गृहस्थोंको पञ्चमहायज्ञों—(१) ब्रह्मयज्ञ, (२) पितृयज्ञ, (३) दैवयज्ञ, (४) भूतयज्ञ तथा (५) अतिथियज्ञको नित्य अवश्य करना चाहिये। अध्ययन करना तथा अध्यापन करना यह ब्रह्मयज्ञ है, तर्पणादि कर्म पितृयज्ञ है। देवताओंके लिये हवनादि कर्म दैवयज्ञ है। बलिवैश्वदेव कर्म भूतयज्ञ है तथा अतिथि एवं अभ्यागतोंका स्वागत-सत्कार करना अतिथियज्ञ है—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतस्तथाऽन्योऽतिथिपूजनम्॥

(ब्राह्मपर्व १६।७)

—इन पाँच नियमोंका पालन करनेवाला गृहस्थी घरमें रहता हुआ भी पञ्चसूना-दोषोंसे लिप्त नहीं होता। यदि समर्थ होते हुए भी वह इन पाँच यज्ञोंको नहीं करता है तो उसका जीवन ही व्यर्थ है।

राजा शतानीकने पूछा—जिस ब्राह्मणके घरमें अग्निहोत्र नहीं होता, वह मृतकके समान होता है—यह आपने कहा है, परंतु फिर वह देवपूजा आदि कार्योंको क्यों करे? और यदि ऐसी बात है तो देवता, पितर उससे कैसे संतुष्ट होंगे, इसका आप निराकरण करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! जिन ब्राह्मणोंके घरमें अग्निहोत्र न हो उनका उद्धार व्रत, उपवास, नियम, दान तथा देवताकी स्तुति, भक्ति आदिसे होता है। जिस देवताकी जो तिथि हो, उसमें उपवास करनेसे वे देवता उसपर विशेषरूपसे प्रसन्न होते हैं—

व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा नृप।
देवादयो भवन्त्येव प्रीतास्तेषां न संशयः॥
विशेषादुपवासेन तिथौ किल महीपते।
प्रीता देवादयस्तेषां भवन्ति कुरुनन्दन॥

(ब्राह्मपर्व १६।१३-१४)

राजाने फिर कहा—महाराज! अब आप अलग-अलग तिथियोंमें किये जानेवाले व्रतों, तिथि-व्रतोंमें किये जानेवाले भोजनों तथा उपवासकी विधियोंका वर्णन करें, जिनके श्रवणसे तथा जिनका आचरण कर संसारसागरसे मैं

१-न कापि दुर्भगा नाम सुभगा नाम जातितः। व्यवहाराद्भवन्त्येष निर्देशो रिपुमित्रवत्॥
भर्तृचित्तापरिज्ञानादननुष्ठानतोऽपि वा। वृत्तैर्लोकविरुद्धैश्च यान्ति दुर्भगतां स्त्रियः॥
आनुकूल्यान्मनोवृत्तेः परोऽपि प्रियतां व्रजेत्। प्रातिकूल्यान्निजोऽप्याशु प्रियः प्रद्वेषतामियात्॥
तस्मात् सर्वास्ववस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः। प्रियं समाचरेन्नित्यं तच्चित्तानुविधायिनी॥
एवमेव यथोद्दिष्टं स्त्रीवृत्तं यानुतिष्ठति। पतिमाराध्य सम्पूर्णं त्रिवर्गं साधिगच्छति॥

(ब्राह्मपर्व १५।१६—१९, ३२)

[वर्तमान समयमें पाश्चात्त्य सभ्यताके प्रभावसे देशमें दूषित और उच्छृङ्खलतापूर्ण वातावरण बन गया है। स्त्रियोंसे सम्बद्ध भविष्यपुराणका यह उल्लेख रामायण, महाभारत, स्मृतियों तथा अन्य पुराणोंमें भी उपलब्ध है। आजके विश्वकी सभी समस्याओंका एकमात्र मुख्य कारण आचारका पतन है, इसका प्रभाव संततियोंपर भी पड़ता है। अतः सभीको सदाचरणपर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है।]

मुक्त हो जाऊँ तथा मेरे सभी पाप दूर हो जायँ। साथ ही संसारके जीवोंका भी कल्याण हो जाय।

सुमन्तु मुनि बोले—मैं तिथियोंमें विहित कृत्योंका वर्णन करता हूँ, जिनके सुननेसे पाप कट जाते हैं और उपवासके फलोंकी प्राप्ति हो जाती है।

प्रतिपदा तिथिको दूध तथा द्वितीयाको लवणरहित भोजन करे। तृतीयाके दिन तिलान्न भक्षण करे। इसी प्रकार चतुर्थीको दूध, पञ्चमीको फल, षष्ठीको शाक, सप्तमीको बिल्वाहार करे। अष्टमीको पिष्ट, नवमीको अनग्निपाक, दशमी और एकादशीको घृताहार करे। द्वादशीको खीर, त्रयोदशीको गोमूत्र, चतुर्दशीको यवान्न भक्षण करे। पूर्णिमाको कुशाका जल पीये तथा अमावास्याको हविष्य-भोजन करे। यह सब तिथियोंके भोजनकी विधि है। इस विधिसे जो पूरे एक पक्ष भोजन करता है, वह दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है और मन्वन्तरतक स्वर्गमें आनन्द भोगता है। यदि तीन-चार मासतक इस विधिसे भोजन करे तो वह सौ अश्वमेध और सौ राजसूय-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है तथा स्वर्गमें अनेक मन्वन्तरोंतक सुख भोग करता है। पूरे आठ महीने इस विधिसे भोजन करे तो हजार यज्ञोंका फल पाता है और चौदह मन्वन्तरपर्यन्त स्वर्गमें वहाँके सुखोंका उपभोग करता है। इसी प्रकार यदि एक वर्षपर्यन्त नियमपूर्वक इस भोजन-विधिका पालन करता है तो वह सूर्यलोकमें कई मन्वन्तरोंतक आनन्दपूर्वक निवास करता है। इस उपवास-विधिमें चारों वर्णों तथा स्त्री-पुरुषों—सभीका अधिकार है। जो इन तिथि-व्रतोंका आरम्भ आश्विनकी नवमी, माघकी सप्तमी, वैशाखकी तृतीया तथा कार्तिककी पूर्णिमासे करता है, वह लंबी आयु प्राप्त कर अन्तमें सूर्यलोकको प्राप्त होता है। पूर्वजन्ममें जिन पुरुषोंने व्रत, उपवास आदि किया, दान दिया, अनेक प्रकारसे ब्राह्मणों, साधु-संतों एवं तपस्वियोंको संतुष्ट किया, माता-पिता और गुरुकी सेवा-शुश्रूषा की, विधिपूर्वक तीर्थयात्रा की, वे पुरुष स्वर्गमें दीर्घ कालतक रहकर जब पृथ्वीपर जन्म लेते हैं, तब उनके चिह्न—पुण्य-फल प्रत्यक्ष ही दिखलायी पड़ते हैं। यहाँ उन्हें हाथी, घोड़े, पालकी, रथ, सुवर्ण, रत्न, कंकण, केयूर, हार, कुण्डल, मुकुट, उत्तम वस्त्र, श्रेष्ठ सुन्दर स्त्री तथा अच्छे सेवक प्राप्त होते हैं। वे आधि-व्याधिसे मुक्त होकर दीर्घायु होते हैं। पुत्र-पौत्रादिका सुख देखते हैं और वन्दीजनोंके स्तुति-पाठद्वारा जगाये जाते हैं। इसके विपरीत जिसने व्रत, दान, उपवास आदि सत्कर्म नहीं किया वह काना, अंधा, लूला, लँगड़ा, गूँगा, कुबड़ा तथा रोग और दरिद्रतासे पीड़ित रहता है। संसारमें आज भी इन दोनों प्रकारके पुरुष प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं। यही पुण्य और पापकी प्रत्यक्ष परीक्षा है।

राजाने कहा—प्रभो! आपने अभी संक्षेपमें तिथियोंको बताया है। अब यह विस्तारसे बतलानेकी कृपा करें कि किस देवताकी किस तिथिमें पूजा करनी चाहिये और व्रत आदि किस विधिसे करने चाहिये जिनके करनेसे मैं पवित्र हो जाऊँ और द्वन्द्वरहित होकर यज्ञके फलोंको प्राप्त कर सकूँ[1]।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! तिथियोंका रहस्य, पूजाका विधान, फल, नियम, देवता तथा अधिकारी आदिके विषयमें मैं बताता हूँ, यह सब आजतक मैंने किसीको नहीं बतलाया, इसे आप सुनें—

सबसे पहले मैं संक्षेपमें सृष्टिका वर्णन करता हूँ। प्रथम परमात्माने जल उत्पन्न कर उसमें तेज प्रविष्ट किया, उससे एक अण्ड उत्पन्न हुआ, उससे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने सृष्टिकी इच्छासे उस अण्डके एक कपालसे भूमि और दूसरेसे आकाशकी रचना की। तदनन्तर दिशा, उपदिशा, देवता, दानव आदि रचे और जिस दिन यह सब काम किया उसका नाम प्रतिपदा तिथि रखा। ब्रह्माजीने इसे सर्वोत्तम माना और सभी तिथियोंके प्रारम्भमें इसका प्रतिपादन किया इसलिये इसका नाम प्रतिपदा हुआ। इसीके बाद सभी तिथियाँ उत्पन्न हुईं।

अब मैं इसके उपवास-विधि और नियमोंका वर्णन करता हूँ। कार्तिक-पूर्णिमा, माघ-सप्तमी तथा वैशाख शुक्ल तृतीयासे इस प्रतिपदा तिथिके नियम एवं उपवासोंको विधिपूर्वक प्रारम्भ करना चाहिये। यदि प्रतिपदा तिथिसे नियम ग्रहण करना है तो प्रतिपदासे पूर्व चतुर्दशी तिथिको भोजनके अनन्तर व्रतका संकल्प लेना चाहिये। अमावास्याको त्रिकाल स्नान करे,

१-नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये तीन प्रकारके कर्म होते हैं। यहाँ काम्य-कर्मोंका प्रकरण चल रहा है। इन्हीं कर्मोंको निष्कामभावसे भगवत्प्रीत्यर्थ करनेपर जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्ति भी मिल जाती है।

भोजन न करे और गायत्रीका जप करता रहे। प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल गन्ध-माल्य आदि उपचारोंसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करे और उन्हें यथाशक्ति दूध दे और बादमें 'ब्रह्माजी मुझपर प्रसन्न हों'—ऐसा कहे। स्वयं भी बादमें गायका दूध पिये। इस विधिसे एक वर्षतक व्रतकर अन्तमें गायत्रीसहित ब्रह्माजीका पूजन कर व्रत समाप्त करे।

इस विधानसे व्रत करनेपर व्रतीके सब पाप दूर हो जाते हैं और उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है। वह दिव्य-शरीर धारणकर विमानमें बैठकर देवलोकमें देवताओंके साथ आनन्द प्राप्त करता है और जब इस पृथ्वीपर सत्ययुगमें जन्म लेता है तो दस जन्मतक वेदविद्याका पारगामी विद्वान्, धनवान्, दीर्घ आयुष्य, आरोग्यवान्, अनेक भोगोंसे सम्पन्न, यज्ञ करनेवाला, महादानी ब्राह्मण होता है। विश्वामित्रमुनिने ब्राह्मण होनेके लिये बहुत समयतक घोर तपस्या की, किंतु उन्हें ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं हो सका। अतः उन्होंने नियमसे इसी प्रतिपदाका व्रत किया। इससे थोड़ेसे समयमें ब्रह्माजीने उन्हें ब्राह्मण बना दिया। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि कोई इस तिथिका व्रत करे तो वह सब पापोंसे मुक्त होकर दूसरे जन्ममें ब्राह्मण होता है। हैहय, तालजंघ, तुरुष्क, यवन, शक आदि म्लेच्छ जातिवाले भी इस व्रतके प्रभावसे ब्राह्मण हो सकते हैं। यह तिथि परम पुण्य और कल्याण करनेवाली है। जो इसके माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है वह ऋद्धि, वृद्धि और सत्कीर्ति पाकर अन्तमें सद्गति प्राप्त करता है[1]।

(अध्याय १६)
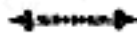
प्रतिपत्कल्प-निरूपणमें ब्रह्माजीकी पूजा-अर्चाकी महिमा

राजा शतानीकने कहा—ब्रह्मन्! आप प्रतिपदा तिथिमें किये जानेवाले कृत्य, ब्रह्माजीके पूजनकी विधि और उसके फलका विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

सुमन्तु मुनि बोले—हे राजन्! पूर्वकल्पमें स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगत्‌के नष्ट हो जानेपर सर्वत्र जल-ही-जल हो गया। उस समय देवताओंमें श्रेष्ठ चतुर्मुख ब्रह्माजी प्रकट हुए और उन्होंने अनेक लोकों, देवगणों तथा विविध प्राणियोंकी सृष्टि की। प्रजापति ब्रह्मा देवताओंके पिता तथा अन्य जीवोंके पितामह हैं, इसलिये इनकी सदा पूजा करनी चाहिये। ये ही जगत्‌की सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले हैं। इनके मनसे रुद्रका, वक्षःस्थलसे विष्णुका आविर्भाव हुआ। इनके चारों मुखोंसे अपने छः अङ्गोंके साथ चारों वेद प्रकट हुए। सभी देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग आदि इनकी पूजा करते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है और ब्रह्ममें स्थित है, अतः ब्रह्माजी सबसे पूज्य हैं। राज्य, स्वर्ग और मोक्ष—ये तीनों पदार्थ इनकी सेवा करनेसे प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये सदा प्रसन्नचित्तसे यावज्जीवन नियमसे ब्रह्माजीकी पूजा करनी चाहिये। जो ब्रह्माजीकी सदा भक्तिसे पूजा करता है, वह मनुष्य-स्वरूपमें साक्षात् ब्रह्मा ही है। ब्रह्माजीकी पूजासे अधिक पुण्य किसीमें न समझकर सदा ब्रह्माजीका पूजन करते रहना चाहिये। जो ब्रह्माजीका मन्दिर बनवाकर उसमें विधिपूर्वक ब्रह्माजीकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करता है, वह यज्ञ, तप, तीर्थ, दान आदिके फलोंसे करोड़ों गुना अधिक फल प्राप्त करता है। ऐसे पुरुषके दर्शन और स्पर्शसे इक्कीस पीढ़ीका उद्धार हो जाता है। ब्रह्माजीकी पूजा करनेवाला पुरुष बहुत कालतक ब्रह्मलोकमें निवास करता है। वहाँ निवास करनेके पश्चात् वह ज्ञानयोगके माध्यमसे मुक्त हो जाता है अथवा भोग चाहनेपर मनुष्यलोकमें चक्रवर्ती राजा अथवा वेद-वेदाङ्गपारङ्गत कुलीन ब्राह्मण होता है। किसी अन्य कठोर तप और यज्ञोंकी आवश्यकता नहीं है, केवल ब्रह्माजीकी पूजासे ही सभी पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। जो ब्रह्माजीके मन्दिरमें छोटे जीवोंकी रक्षा करता हुआ सावधानीपूर्वक धीरे-धीरे झाड़ू देता है तथा उपलेपन करता है, वह चान्द्रायण-व्रतका फल प्राप्त करता है। एक पक्षतक ब्रह्माजीके मन्दिरमें जो झाड़ू लगाता है, वह सौ करोड़ युगसे भी अधिक ब्रह्मलोकमें पूजित होता है और अनन्तर सर्वगुणसम्पन्न, चारों

[1] १-इसका वर्णन ठीक इसी प्रकार वराहपुराणमें इससे भी अधिक विस्तारसे मिलता है और मुहूर्त-चिन्तामणि एवं अन्य ज्योतिषग्रन्थोंमें भी रमणीयतापूर्वक प्रदर्शित है। व्रतकल्पद्रुम, व्रतरत्नाकर, व्रतराज आदिमें भी संगृहीत है।

वेदोंका ज्ञाता धर्मात्मा राजाके रूपमें पृथ्वीपर आता है। भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीका पूजन न करनेतक ही मनुष्य संसारमें भटकता है। जिस तरह मानवका मन विषयोंमें मग्न होता है, वैसे ही यदि ब्रह्माजीमें मन निमग्न रहे तो ऐसा कौन पुरुष होगा जो मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता[1]। ब्रह्माजीके जीर्ण एवं खण्डित मन्दिरका उद्धार करनेवाला प्राणी मुक्ति प्राप्त करता है। ब्रह्माजीके समान न कोई देवता है न गुरु, न ज्ञान है और न कोई तप ही है।

प्रतिपदा आदि सभी तिथियोंमें भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीकी पूजाकर पूर्णिमाके दिन विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये तथा शङ्ख, घण्टा, भेरी आदि वाद्य-ध्वनियोंके साथ आरती एवं स्तुति करनी चाहिये। इस प्रकार व्यक्ति जितने पर्वोंपर आरती करता है, उतने हजार युगतक ब्रह्मलोकमें निवास और आनन्दका उपभोग करता है। कपिला गौके पञ्चगव्य और कुशाके जलसे वेदमन्त्रोंके द्वारा ब्रह्माजीको स्नान कराना ब्राह्म-स्नान कहलाता है। अन्य स्नानोंसे सौ गुना पुण्य इसमें अधिक होता है। यज्ञ एवं अग्निहोत्रादिके लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको कपिला गौ रखनी चाहिये। ब्रह्माजीकी मूर्तिका कपिला गायके घृतसे अभ्यङ्ग करना चाहिये, इससे करोड़ों वर्षोंके किये गये पापोंका विनाश होता है। यदि प्रतिपदाके दिन कोई एक बार भी घीसे स्नान कराता है तो उसके इक्कीस पीढ़ीका उद्धार हो जाता है। सुवर्ण-वस्त्रादिसे अलंकृत दस हजार सवत्सा गौ वेदज्ञ ब्राह्मणोंको देनेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्य ब्रह्माजीको दुग्धसे स्नान करानेसे प्राप्त होता है। एक बार भी दूधसे ब्रह्माजीको स्नान करानेवाला पुरुष सुवर्णके विमानमें विराजमान हो ब्रह्मलोकमें पहुँच जाता है। दहीसे स्नान करानेपर विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। शहदसे स्नान करानेपर वीरलोक (इन्द्रलोक) की प्राप्ति होती है। ईखके रससे स्नान करानेपर सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। शुद्धोदकसे स्नान करानेपर सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें निवास करता है। वस्त्रसे छने हुए जलसे ब्रह्माजीको स्नान करानेपर वह सदा तृप्त रहता है और सम्पूर्ण विश्व उसके वशीभूत हो जाता है। सर्वौषधियोंसे स्नान करानेपर ब्रह्मलोक, चन्दनके जलसे स्नान करानेपर रुद्रलोक, कमलके पुष्प, नीलकमल, पाटला (लोध-लाल), कनेर आदि सुगन्धित पुष्पोंसे स्नान करानेपर ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। कपूर और अगरके जलसे स्नान करानेपर या गायत्रीमन्त्रसे सौ बार जलको अभिमन्त्रित कर उस जलसे स्नान करानेपर ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। शीतल जल या कपिला गायके धारोष्ण दुग्धसे स्नान करानेके अनन्तर घृतसे स्नान करानेसे सभी पापोंसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। इन तीनों स्नानोंको सम्पन्न कर भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे पूजकको अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। मिट्टीके घड़ेकी अपेक्षा ताँबेके घटसे ब्रह्माजीको स्नान करानेपर सौगुना, चाँदीके घटसे लाखगुना फल होता है और सुवर्ण-कलशसे स्नान करानेपर कोटिगुना फल प्राप्त होता है। ब्रह्माजीके दर्शनसे उनका स्पर्श करना श्रेष्ठ है, स्पर्शसे पूजन और पूजनसे घृतस्नान अधिक फलदायक है। सभी वाचिक और मानसिक पाप घृतस्नान करानेसे नष्ट हो जाते हैं।

राजन्! इस विधिसे स्नान कराकर भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीकी पूजा इस प्रकार करनी चाहिये—पवित्र वस्त्र पहनकर, आसनपर बैठ सम्पूर्ण न्यास करना चाहिये। प्रथम चार हाथ विस्तृत स्थानमें एक अष्टदल-कमलका निर्माण करे। उसके मध्य नाना वर्णयुक्त द्वादशदल-यन्त्र लिखे और पाँच रंगोंसे उसको भरे। इस प्रकार यन्त्र-निर्माणकर गायत्रीके वर्णोंसे न्यास करे।

गायत्रीके अक्षरोंद्वारा शरीरमें न्यास कर देवताके शरीरमें भी न्यास करना चाहिये। प्रणवयुक्त गायत्री-मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित केशर, अगर, चन्दन, कपूर आदिसे समन्वित जलसे सभी पूजाद्रव्योंका मार्जन करना चाहिये। अनन्तर पूजा करनी चाहिये। प्रणवका उच्चारण कर पीठस्थापन और प्रणवसे ही तेजःस्वरूप ब्रह्माजीका आवाहन करना चाहिये। पद्मपर विराजमान, चार मुखोंसे युक्त चराचर विश्वकी सृष्टि करनेवाले श्रीब्रह्माजीका ध्यान कर पूजा करनी चाहिये। जो पुरुष प्रतिपदा तिथिके दिन भक्तिपूर्वक गायत्रीमन्त्रसे ब्रह्माजीका पूजन करता है, वह चिरकालतक ब्रह्मलोकमें निवास करता है।

(अध्याय १७)

१-समासक्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे। यद्येवं ब्रह्मणि न्यस्तं को न मुच्येत बन्धनात्॥ (ब्राह्मपर्व १७।४०)

ब्रह्माजीकी रथयात्राका विधान और कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाकी महिमा

सुमन्तु मुनिने कहा—हे राजा शतानीक ! कार्तिक मासमें जो ब्रह्माजीकी रथयात्राका उत्सव करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। कार्तिककी पूर्णिमाको मृगचर्मके आसनपर सावित्रीके साथ ब्रह्माजीको रथमें विराजमान करे और विविध वाद्य-ध्वनिके साथ रथयात्रा निकाले। विशिष्ट उत्सवके साथ ब्रह्माजीको रथपर बैठाये और रथके आगे ब्रह्माजीके परम भक्त ब्राह्मण शाण्डिलीपुत्रको स्थापित कर उनकी पूजा करे। ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्ति एवं पुण्याहवाचन कराये। उस रात्रि जागरण करे। नृत्य-गीत आदि उत्सव एवं विविध क्रीडाएँ ब्रह्माजीके सम्मुख प्रदर्शित करे।

इस प्रकार रात्रिमें जागरण कर प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल ब्रह्माजीका पूजन करना चाहिये। ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये, अनन्तर पुण्य शब्दोंके साथ रथयात्रा प्रारम्भ करनी चाहिये।

चारों वेदोंके ज्ञाता उत्तम ब्राह्मण उस रथको खींचें और रथके आगे वेद पढ़ते हुए ब्राह्मण चलते रहें। ब्रह्माजीके दक्षिण-भागमें सावित्री तथा वाम-भागमें भोजककी स्थापना करे। रथके आगे शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग आदि विविध वाद्य बजते रहें। इस प्रकार सारे नगरमें रथको घुमाना चाहिये और नगरकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये, अनन्तर उसे अपने स्थानपर ले आना चाहिये। आरती करके ब्रह्माजीको उनके मन्दिरमें स्थापित करे। इस रथयात्राको सम्पन्न करनेवाले, रथको खींचनेवाले तथा इसका दर्शन करनेवाले सभी ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। दीपावलीके दिन ब्रह्माजीके मन्दिरमें दीप प्रज्वलित करनेवाला ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। दूसरे दिन प्रतिपदाको ब्रह्माजीकी पूजा करके स्वयं भी वस्त्र-आभूषणसे अलंकृत होना चाहिये। यह प्रतिपदा तिथि ब्रह्माजीको बहुत प्रिय है। इसी तिथिसे बलिके राज्यका आरम्भ हुआ है। इस दिन ब्रह्माजीका पूजनकर ब्राह्मण-भोजन करानेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। चैत्र मासमें कृष्णप्रतिपदाके दिन (होली जलानेके दूसरे दिन) चाण्डालका स्पर्शकर स्नान करनेसे सभी आधि-व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। उस दिन गौ, महिष आदिको अलंकृतकर उन्हें मण्डपके नीचे रखना चाहिये तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। चैत्र, आश्विन और कार्तिक इन तीनों महीनोंकी प्रतिपदा श्रेष्ठ है, किंतु इनमें कार्तिककी प्रतिपदा विशेष श्रेष्ठ है। इस दिन किया हुआ स्नान-दान आदि सौ गुने फलको देता है। राजा बलिको इसी दिन राज्य मिला था, इसलिये कार्तिककी प्रतिपदा श्रेष्ठ मानी जाती है। (अध्याय १८)

द्वितीया-कल्पमें महर्षि च्यवनकी कथा एवं पुष्पद्वितीया-व्रतकी महिमा

सुमन्तु मुनि बोले—द्वितीया तिथिको च्यवनऋषिने इन्द्रके सम्मुख यज्ञमें अश्विनीकुमारोंको सोमपान कराया था।

राजाने पूछा—महाराज ! इन्द्रके सम्मुख किस विधिसे अश्विनीकुमारोंको उन्होंने सोमरस पिलाया ? क्या च्यवन-ऋषिकी तपस्याके प्रभावकी प्रबलतासे इन्द्र कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हुए ?

सुमन्तु मुनिने कहा—सत्ययुगकी पूर्वसंध्यामें गङ्गाके तटपर समाधिस्थ हो च्यवनमुनि बहुत दिनोंसे तपस्यामें रत थे। एक समय अपनी सेना और अन्तःपुरके परिजनोंको साथ लेकर महाराज शर्याति गङ्गा-स्नानके लिये वहाँ आये। उन्होंने च्यवनऋषिके आश्रमके[1] समीप आकर गङ्गा-स्नान सम्पन्न किया तथा देवताओंकी आराधना की और पितरोंका तर्पण किया। तदनन्तर जब वे अपने नगरकी ओर जानेको उद्यत हुए तो उसी समय उनकी सभी सेनाएँ व्याकुल हो गयीं और मूत्र तथा विष्ठा उनके अचानक ही बंद हो गये, आँखोंसे कुछ भी नहीं दिखायी दिया। सेनाकी यह दशा देखकर राजा घबड़ा

१-अन्य पुराणोंमें तथा महाभारतके अनुसार यह आश्रम सोनभद्र और वधूसरा नदीके संगमपर था, जो आज देवकुण्डके नामसे प्रसिद्ध है। प्रायः पुराणोंमें यह श्लोक भी प्राप्त होता है—

मगधे तु गया पुण्या नदी पुण्या पुनः पुना। च्यवनस्य आश्रमं पुण्यं पुण्यं राजगृहं वनम्॥

तथा—

वधूसरेति सरिता च्यवनस्य आश्रमं प्रति।

उठे। राजा शर्याति प्रत्येक व्यक्तिसे पूछने लगे—यह तपस्वी च्यवनमुनिका पवित्र आश्रम है, किसीने कुछ अपराध तो नहीं किया ? उनके इस प्रकार पूछनेपर किसीने कुछ भी नहीं कहा।

सुकन्याने अपने पितासे कहा—महाराज ! मैंने एक आश्चर्य देखा, जिसका मैं वर्णन कर रही हूँ। अपनी सहेलियोंके साथ मैं वन-विहार कर रही थी कि एक ओरसे मुझे यह शब्द सुनायी पड़ा—'सुकन्ये ! तुम इधर आओ, तुम इधर आओ।' यह सुनकर मैं अपनी सखियोंके साथ उस शब्दकी ओर गयी। वहाँ जाकर मैंने एक बहुत ऊँचा वल्मीक

देखा। उसके अंदरके छिद्रोंमें दीपकके समान देदीप्यमान दो पदार्थ मुझे दिखलायी पड़े। उन्हें देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये पद्मरागमणिके समान क्या चमक रहे हैं। मैंने अपनी मूर्खता और चञ्चलतासे कुशाके अग्रभागसे वल्मीकके प्रकाशयुक्त छिद्रोंको बींध दिया, जिससे वह तेज शान्त हो गया।

यह सुनकर राजा बहुत व्याकुल हो गये और अपनी कन्या सुकन्याको लेकर वहाँ गये जहाँ च्यवनमुनि तपस्यामें रत थे। च्यवनऋषिको वहाँ समाधिस्थ होकर बैठे हुए इतने दिन व्यतीत हो गये थे कि उनके ऊपर वल्मीक बन गया था। जिन तेजस्वी छिद्रोंको सुकन्याने कुशके अग्रभागसे बींध दिया था, वे उस महातपस्वीके प्रकाशमान नेत्र थे। राजा वहाँ पहुँचकर अतिशय दीनताके साथ विनती करने लगे।

राजा बोले—महाराज ! मेरी कन्यासे बहुत बड़ा अपराध हो गया है। कृपाकर क्षमा करें।

च्यवनमुनिने कहा—अपराध तो मैंने क्षमा किया, परंतु अपनी कन्याका मेरे साथ विवाह कर दो, इसीमें तुम्हारा कल्याण है। मुनिका वचन सुनकर राजाने शीघ्र ही सुकन्याका च्यवनऋषिसे विवाह कर दिया। सभी सेनाएँ सुखी हो गयीं और मुनिको प्रसन्नकर सुखपूर्वक राजा अपने नगरमें आकर राज्य करने लगे। सुकन्या भी विवाहके बाद भक्तिपूर्वक मुनिकी सेवा करने लगी। राजवस्त्र, आभूषण उसने उतार दिये और वृक्षकी छाल तथा मृगचर्म धारण कर लिया। इस प्रकार मुनिकी सेवा करते हुए कुछ समय व्यतीत हो गया और वसन्त ऋतु आयी। किसी दिन मुनिने संतान-प्राप्तिके लिये अपनी पत्नी सुकन्याका आह्वान किया। इसपर सुकन्याने अतिशय विनयभावसे विनती की।

सुकन्या बोली—महाराज ! आपकी आज्ञा मैं किसी प्रकार भी टाल नहीं सकती, किंतु इसके लिये आपको युवावस्था तथा सुन्दर वस्त्र-आभूषणोंसे अलंकृत कमनीय स्वरूप धारण करना चाहिये।

च्यवनमुनिने उदास होकर कहा—न मेरा उत्तम रूप है और न तुम्हारे पिताके समान मेरे पास धन है, जिससे सभी भोग-सामग्रियोंको मैं एकत्र कर सकूँ।

सुकन्या बोली—महाराज ! आप अपने तपके प्रभावसे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। आपके लिये यह कौन-सी बड़ी बात है ?

च्यवनमुनिने कहा—राजपुत्रि ! इस कामके लिये मैं अपनी तपस्या व्यर्थ नहीं करूँगा। इतना कहकर वे पहलेकी तरह तपस्या करने लगे। सुकन्या भी उनकी सेवामें तत्पर हो गयी।

इस प्रकार बहुत काल व्यतीत होनेके बाद अश्विनीकुमार उसी मार्गसे चले जा रहे थे कि उनकी दृष्टि सुकन्यापर पड़ी।

अश्विनीकुमारोंने कहा—भद्रे ! तुम कौन हो ? और इस घोर वनमें अकेली क्यों रहती हो ?

सुकन्याने कहा—मैं राजा शर्यातिकी सुकन्या नामकी

पुत्री हूँ। मेरे पति च्यवन ऋषि यहाँ तपस्या कर रहे हैं, उन्हींकी सेवाके लिये मैं यहाँ उनके समीप रहती हूँ। कहिये, आपलोग कौन हैं ?

अश्विनीकुमारोंने कहा—हम देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमार हैं। इस वृद्ध पतिसे तुम्हें क्या सुख मिलेगा ? हम दोनोंमें किसी एकका वरण कर लो।

सुकन्याने कहा—देवताओ ! आपका ऐसा कहना ठीक नहीं। मैं पतिव्रता हूँ और सब प्रकारसे अनुरक्त होकर दिन-रात अपने पतिकी सेवा करती हूँ।

अश्विनीकुमारोंने कहा—यदि ऐसी बात है तो हम तुम्हारे पतिदेवको अपने उपचारके द्वारा अपने समान स्वस्थ एवं सुन्दर बना देंगे और जब हम तीनों गङ्गामें स्नानकर बाहर निकलें फिर जिसे तुम पतिरूपमें वरण करना चाहो कर लेना।

सुकन्याने कहा—मैं बिना पतिकी आज्ञाके कुछ नहीं कह सकती।

अश्विनीकुमारोंने कहा—तुम अपने पतिसे पूछ आओ, तबतक हम यहीं प्रतीक्षामें रहेंगे। सुकन्याने च्यवनमुनिके पास जाकर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया। अश्विनीकुमारोंकी बात स्वीकार कर च्यवनमुनि सुकन्याको लेकर उनके पास आये।

च्यवनमुनिने कहा—अश्विनीकुमारो ! आपकी शर्त हमें स्वीकार है। आप हमें उत्तम रूपवान् बना दें, फिर सुकन्या चाहे जिसे वरण करे। च्यवनमुनिके इतना कहनेपर अश्विनीकुमार च्यवनमुनिको लेकर गङ्गाजीके जलमें प्रविष्ट हो गये और कुछ देर बाद तीनों ही बाहर निकले। सुकन्याने देखा कि ये तीनों तो समान रूप, समान अवस्था तथा समान वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हैं, फिर इनमें मेरे पति च्यवनमुनि कौन हैं ? वह कुछ निश्चित न कर सकी और व्याकुल हो अश्विनीकुमारोंकी प्रार्थना करने लगी।

सुकन्या बोली—देवो ! अत्यन्त कुरूप पतिदेवका भी मैंने परित्याग नहीं किया था। अब तो आपकी कृपासे उनका रूप आपके समान सुन्दर हो गया है, फिर मैं कैसे उनका परित्याग कर सकती हूँ। मैं आपकी शरण हूँ, मुझपर कृपा कीजिये।

सुकन्याकी इस प्रार्थनासे अश्विनीकुमार प्रसन्न हो गये और उन्होंने देवताओंके चिह्नोंको धारण कर लिया। सुकन्याने देखा कि तीन पुरुषोंमेंसे दोकी पलकें गिर नहीं रही हैं और

उनके चरण भूमिको स्पर्श नहीं कर रहे हैं, किंतु जो तीसरा पुरुष है, वह भूमिपर खड़ा है और उसकी पलकें भी गिर रही हैं। इन चिह्नोंको देखकर सुकन्याने निश्चित कर लिया कि ये तीसरे पुरुष ही मेरे स्वामी च्यवनमुनि हैं। तब उसने उनका वरण कर लिया। उसी समय आकाशसे उसपर पुष्प-वृष्टि होने लगी और देवगण दुन्दुभि बजाने लगे।

च्यवनमुनिने अश्विनीकुमारोंसे कहा—देवो ! आप लोगोंने मुझपर बहुत उपकार किया है, जिसके फलस्वरूप मुझे उत्तम रूप और उत्तम पत्नी प्राप्त हुई। अब मैं आपलोगोंका क्या प्रत्युपकार करूँ, क्योंकि जो उपकार करनेवालेका प्रत्युपकार नहीं करता, वह क्रमसे इक्कीस नरकोंमें जाता है[1], इसलिये आपका मैं क्या प्रिय करूँ, आप लोग कहें।

अश्विनीकुमारोंने उनसे कहा—महात्मन् ! यदि आप हमारा प्रिय करना ही चाहते हैं तो अन्य देवताओंकी तरह हमें भी यज्ञभाग दिलवाइये। च्यवनमुनिने यह बात स्वीकार कर ली, फिर वे उन्हें बिदाकर अपनी भार्या सुकन्याके साथ अपने आश्रममें आ गये।

राजा शर्यातिको जब यह सारा वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो वे

१-उपकारं वरिष्ठं यो न करोत्युपकारिणः। एकविंशत् स गच्छेत नरकाणि क्रमेण वै। (ब्राह्मपर्व १९। ५०-५१)

भी रानीको साथ लेकर सुन्दर रूप-प्राप्त महातेजस्वी च्यवनऋषिको देखने आश्रममें आये। राजाने च्यवनमुनिको प्रणाम किया और उन्होंने भी राजाका स्वागत किया। सुकन्याने अपनी माताका आलिङ्गन किया। राजा शर्याति अपने जामाता महामुनि च्यवनका उत्तम रूप देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

च्यवनमुनिने राजासे कहा—राजन्! एक महायज्ञकी सामग्री एकत्र कीजिये, हम आपसे यज्ञ करायेंगे। च्यवनमुनिकी आज्ञा प्राप्तकर राजा शर्याति अपनी राजधानी लौट आये और यज्ञ-सामग्री एकत्रकर यज्ञकी तैयारी करने लगे। मन्त्री, पुरोहित और आचार्यको बुलाकर यज्ञकार्यके लिये उन्हें नियुक्त किया। च्यवनमुनि भी अपनी पत्नी सुकन्याको लेकर यज्ञ-स्थलमें पधारे।

सभी ऋषिगणोंको आमन्त्रण देकर यज्ञमें बुलाया गया। विधिपूर्वक यज्ञ प्रारम्भ हुआ। ऋत्विक् अग्निकुण्डमें स्वाहाकारके साथ देवताओंको आहुति देने लगे। सभी देवता अपना-अपना यज्ञ-भाग लेने वहाँ आ पहुँचे। च्यवनमुनिके कहनेसे अश्विनीकुमार भी वहाँ आये। देवराज इन्द्र उनके आनेका प्रयोजन समझ गये।

इन्द्र बोले—मुने! ये दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं, इसलिये ये यज्ञ-भागके अधिकारी नहीं हैं, आप इन्हें आहुतियाँ प्रदान न करवायें।

च्यवनमुनिने इन्द्रसे कहा—ये देवता हैं और इनका मेरे ऊपर बड़ा उपकार है, ये मेरे ही आमन्त्रणपर यहाँ पधारे हैं, इसलिये मैं इन्हें अवश्य यज्ञभाग दूँगा। यह सुनकर इन्द्र क्रुद्ध हो उठे और कठोर स्वरमें कहने लगे।

इन्द्र बोले—यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो वज्रसे तुमपर मैं प्रहार करूँगा। इन्द्रकी ऐसी वाणी सुनकर च्यवनमुनि किंचित् भी भयभीत नहीं हुए और उन्होंने अश्विनीकुमारोंको यज्ञभाग दे ही दिया, तब तो इन्द्र अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने ज्यों ही च्यवनमुनिपर प्रहार करनेके लिये अपना वज्र उठाया त्यों ही च्यवनमुनिने अपने तपके प्रभावसे इन्द्रका स्तम्भन कर दिया। इन्द्र हाथमें वज्र लिये खड़े ही रह गये।

च्यवनमुनिने अश्विनीकुमारोंको यज्ञभाग देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली और यज्ञको पूर्ण किया। उसी समय वहाँ ब्रह्माजी उपस्थित हुए।

ब्रह्माजीने च्यवनमुनिसे कहा—महामुने! आप इन्द्रको स्तम्भन-मुक्त कर दें। अश्विनीकुमारोंको यज्ञ-भाग दे दें। इन्द्रने भी स्तम्भनसे मुक्त करनेके लिये प्रार्थना की।

इन्द्रने कहा—मुने! आपके तपकी प्रसिद्धिके लिये ही मैंने इन अश्विनीकुमारोंको यज्ञमें भाग लेनेसे रोका था, अब आजसे सब यज्ञोंमें अन्य देवताओंके साथ अश्विनीकुमारोंको भी यज्ञभाग मिला करेगा और इनको देवत्व भी प्राप्त होगा। आपके इस तपके प्रभावको जो सुनेगा अथवा पढ़ेगा, वह भी उत्तम रूप एवं यौवनको प्राप्त करेगा। इतना कहकर देवराज इन्द्र देवलोकको चले गये और च्यवनमुनि सुकन्या तथा राजा शर्यातिके साथ आश्रमपर लौट आये।

वहाँ उन्होंने देखा कि बहुत उत्तम-उत्तम महल बन गये हैं, जिनमें सुन्दर उपवन और वापी आदि विहारके लिये बने हुए हैं। भाँति-भाँतिकी शय्याएँ बिछी हुई हैं, विविध रत्नोंसे जटित आभूषणों तथा उत्तम-उत्तम वस्त्रोंके ढेर लगे हैं। यह देखकर सुकन्यासहित च्यवनमुनि अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने यह सब देवराज इन्द्रद्वारा प्रदत्त समझकर उनकी प्रशंसा की।

महामुनि सुमन्तु राजा शतानीकसे बोले—राजन्! इस प्रकार द्वितीया तिथिके दिन अश्विनीकुमारोंको देवत्व तथा यज्ञभाग प्राप्त हुआ था। अब आप इस द्वितीया तिथिके व्रतका विधान सुनें—

शतानीक बोले—जो पुरुष उत्तम रूपकी इच्छा करे

वह कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वितीयासे व्रतको आरम्भ करे और वर्षपर्यन्त संयमित होकर पुष्प-भोजन करे। जो उत्तम हविष्य-पुष्प उस ऋतुमें हों उनका आहार करे। इस प्रकार एक वर्ष व्रतकर सोने-चाँदीके पुष्प बनाकर अथवा कमलपुष्पोंको ब्राह्मणोंको देकर व्रत सम्पन्न करे। इससे अश्विनीकुमार संतुष्ट होकर उत्तम रूप प्रदान करते हैं। व्रती उत्तम विमानोंमें बैठकर स्वर्गमें जाकर कल्पपर्यन्त विविध सुखोंका उपभोग करता है। फिर मर्त्यलोकमें जन्म लेकर वेद-वेदाङ्गोंका ज्ञाता, महादानी, आधि-व्याधियोंसे रहित, पुत्र-पौत्रोंसे युक्त, उत्तम पत्नीवाला ब्राह्मण होता है अथवा मध्यदेशके उत्तम नगरमें राजा होता है।

राजन्! इस पुष्पद्वितीया-व्रतका विधान मैंने आपको बतलाया। ऐसी ही फलद्वितीया भी होती है, जिसे अशून्यशयना-द्वितीया भी कहते हैं। फलद्वितीयाको जो श्रद्धापूर्वक व्रत करता है, वह ऋद्धि-सिद्धिको प्राप्तकर अपनी भार्यासहित आनन्द प्राप्त करता है।

(अध्याय १९)

फल-द्वितीया (अशून्यशयन-व्रत) का व्रत-विधान और द्वितीया-कल्पकी समाप्ति

राजा शतानीकने कहा—मुने! कृपाकर आप फलद्वितीयाका विधान कहें, जिसके करनेसे स्त्री विधवा नहीं होती और पति-पत्नीका परस्पर वियोग भी नहीं होता।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! मैं फलद्वितीयाका विधान कहता हूँ, इसीका नाम अशून्यशयना-द्वितीया भी है। इस व्रतको विधिपूर्वक करनेसे स्त्री विधवा नहीं होती और स्त्री-पुरुषका परस्पर वियोग भी नहीं होता। क्षीरसागरमें लक्ष्मीके साथ भगवान् विष्णुके शयन करनेके समय यह व्रत होता है। श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीयाके दिन लक्ष्मीके साथ श्रीवत्सधारी भगवान् श्रीविष्णुका पूजनकर हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

श्रीवत्सधारिन् श्रीकान्त श्रीवत्स श्रीपतेऽव्यय।
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम्॥
गावश्च मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु मे जनाः॥
जामयो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदतः।
लक्ष्म्या वियुज्येऽहं देव न कदाचिद्यथा भवान्॥
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे वियुज्यताम्।
लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा॥
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा तु मधुसूदन[1]।

(ब्राह्मपर्व २०।७—११)

इस प्रकार विष्णुकी प्रार्थना करके व्रत करना चाहिये। जो फल भगवान्को प्रिय हैं, उन्हें भगवान्की शय्यापर समर्पित करना चाहिये और स्वयं भी रात्रिके समय उन्हीं फलोंको खाकर दूसरे दिन ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये।

राजा शतानीकने पूछा—महामुने! भगवान् विष्णुको कौन-से फल प्रिय हैं, आप उन्हें बतायें। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको क्या दान देना चाहिये? उसे भी कहें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! उस ऋतुमें जो भी फल हों और पके हों, उन्हींको भगवान् विष्णुके लिये समर्पित करना चाहिये। कड़ुवे-कच्चे तथा खट्टे फल उनकी सेवामें नहीं चढ़ाने चाहिये। भगवान् विष्णुको खजूर, नारिकेल, मातुलुङ्ग अर्थात् बिजौरा आदि मधुर फलोंको समर्पित करना चाहिये। भगवान् मधुर फलोंसे प्रसन्न होते हैं। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भी इसी प्रकारके मधुर फल, वस्त्र, अन्न तथा सुवर्णका दान देना चाहिये।

इस प्रकार जो पुरुष चार मासतक व्रत करता है, उसका तीन जन्मोंतक गार्हस्थ्य जीवन नष्ट नहीं होता और न तो ऐश्वर्यकी कमी होती है। जो स्त्री इस व्रतको करती है वह तीन जन्मोंतक न विधवा होती है न दुर्भगा और न पतिसे पृथक् ही रहती है।

इस व्रतके दिन अश्विनीकुमारोंकी भी पूजा करनी चाहिये। राजन्! इस प्रकार मैंने द्वितीया-कल्पका वर्णन किया है।

(अध्याय २०)

---

[1] हे श्रीवत्स-चिह्नको धारण करनेवाले लक्ष्मीके स्वामी शाश्वत भगवान् विष्णु! धर्म, अर्थ और कामको पूर्ण करनेवाला मेरा गृहस्थ-आश्रम कभी नष्ट न हो। मेरी गौएँ भी नष्ट न हों न कभी मेरे परिवारके लोग कष्टमें पड़ें एवं न नष्ट हों। मेरे घरकी स्त्रियाँ भी कभी विपत्तियोंमें न पड़ें और हम पति-पत्नीमें भी कभी मतभेद उत्पन्न न हो। हे देव! मैं लक्ष्मीसे कभी वियुक्त न होऊँ और पत्नीसे भी कभी मुझे वियोगकी प्राप्ति न हो। प्रभो! जैसे आपकी शय्या कभी लक्ष्मीसे शून्य नहीं होती, उसी प्रकार मेरी शय्या भी कभी शोभारहित एवं लक्ष्मी तथा पत्नीसे शून्य न हो।

तृतीया-कल्पका आरम्भ, गौरी-तृतीया-व्रत-विधान और उसका फल

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! जो स्त्री सब प्रकारका सुख चाहती है, उसे तृतीयाका व्रत करना चाहिये। उस दिन नमक नहीं खाना चाहिये। इस विधिसे उपवासपूर्वक जीवन-पर्यन्त इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाली स्त्रीको भगवती गौरी संतुष्ट होकर रूप-सौभाग्य तथा लावण्य प्रदान करती हैं। इस व्रतका विधान जो स्वयं गौरीने धर्मराजसे कहा है, उसीका वर्णन मैं करता हूँ, उसे आप सुनें—

भगवती गौरीने धर्मराजसे कहा—धर्मराज! स्त्री-पुरुषोंके कल्याणके लिये मैंने इस सौभाग्य प्राप्त करानेवाले व्रतको बनाया है। जो स्त्री इस व्रतको नियमपूर्वक करती है, वह सदैव अपने पतिके साथ रहकर उसी प्रकार आनन्दका उपभोग करती है, जैसे भगवान् शिवके साथ मैं आनन्दित रहती हूँ। उत्तम पतिकी प्राप्तिके लिये कन्याको यह व्रत करना चाहिये। व्रतमें नमक न खाये। सुवर्णकी गौरी-प्रतिमा स्थापित करके भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्त हो गौरीका पूजन करे। गौरीके लिये नाना प्रकारके नैवेद्य अर्पित करने चाहिये। रात्रिमें लवणरहित भोजन करके स्थापित गौरी-प्रतिमाके समक्ष ही शयन करे। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा दे। इस प्रकार जो कन्या व्रत करती है, वह उत्तम पतिको प्राप्त करती है तथा चिरकालतक श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर अन्तमें पतिके साथ उत्तम लोकोंको जाती है।

यदि विधवा इस व्रतको करती है तो वह स्वर्गमें अपने पतिको प्राप्त करती है और बहुत समयतक वहाँ रहकर पतिके साथ वहाँके सुखोंका उपभोग करती है और पूर्वोक्त सभी सुखोंको भी प्राप्त करती है। देवी इन्द्राणीने पुत्र-प्राप्तिके लिये इस व्रतका अनुष्ठान किया था, इसके प्रभावसे उन्हें जयन्त नामका पुत्र प्राप्त हुआ। अरुन्धतीने उत्तम स्थान प्राप्त करनेके लिये इस व्रतका नियम-पालन किया था, जिसके प्रभावसे वे पतिसहित सबसे ऊपरका स्थान प्राप्त कर सकी थीं। वे आजतक आकाशमें अपने पति महर्षि वसिष्ठके साथ दिखायी देती हैं। चन्द्रमाकी पत्नी रोहिणीने अपनी समस्त सपत्नियोंको जीतनेके लिये बिना लवण खाये इस व्रतको किया तो वे अपनी सभी सपत्नियोंमें प्रधान तथा अपने पति चन्द्रमाकी अत्यन्त प्रिय पत्नी हो गयीं। देवी पार्वतीकी अनुकम्पासे उन्हें अचल सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस प्रकार यह तृतीया तिथि-व्रत सारे संसारमें पूजित है और उत्तम फल देनेवाला है। वैशाख, भाद्रपद तथा माघ मासकी तृतीया अन्य मासोंकी तृतीयासे अधिक उत्तम है, जिसमें माघ मास तथा भाद्रपद मासकी तृतीया स्त्रियोंको विशेष फल देनेवाली है।

वैशाख मासकी तृतीया सामान्यरूपसे सबके लिये है। यह साधारण तृतीया है। माघ मासकी तृतीयाको गुड़ तथा लवणका दान करना स्त्री-पुरुषोंके लिये अत्यन्त श्रेयस्कर है। भाद्रपद मासकी तृतीयामें गुड़के बने अपूपों (मालपूआ) का दान करना चाहिये। भगवान् शङ्करकी प्रसन्नताके लिये माघ मासकी तृतीयाको मोदक और जलका दान करना चाहिये। वैशाख मासकी तृतीयाको चन्दनमिश्रित जल तथा मोदकके दानसे ब्रह्मा तथा सभी देवता प्रसन्न होते हैं। देवताओंने वैशाख मासकी तृतीयाको अक्षय तृतीया कहा है। इस दिन अन्न-वस्त्र-भोजन-सुवर्ण और जल आदिका दान करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। इसी विशेषताके कारण इस तृतीयाका नाम अक्षय तृतीया है। इस तृतीयाके दिन जो कुछ भी दान किया जाता है वह अक्षय हो जाता है और दान देनेवाला सूर्यलोकको प्राप्त करता है। इस तिथिको जो उपवास करता है वह ऋद्धि-वृद्धि और श्रीसे सम्पन्न हो जाता है।

(अध्याय २१)

चतुर्थी-व्रत एवं गणेशजीकी कथा तथा सामुद्रिक शास्त्रका संक्षिप्त परिचय

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! तृतीया-कल्पका वर्णन करनेके अनन्तर अब मैं चतुर्थी-कल्पका वर्णन करता हूँ। चतुर्थी-तिथिमें सदा निराहार रहकर व्रत करना चाहिये। ब्राह्मणको तिलका दान देकर स्वयं भी तिलका भोजन करना चाहिये। इस प्रकार व्रत करते हुए दो वर्ष व्यतीत होनेपर भगवान् विनायक प्रसन्न होकर व्रतीको अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। उसका भाग्योदय हो जाता है और वह अपार धन-सम्पत्तिका स्वामी हो जाता है तथा परलोकमें भी अपने

पुण्य-फलोंका उपभोग करता है। पुण्य समाप्त होनेके पश्चात् इस लोकमें पुनः आकर वह दीर्घायु, कान्तिमान्, बुद्धिमान्, धृतिमान्, वक्ता, भाग्यवान्, अभीष्ट कार्यों तथा असाध्य-कार्योंको भी क्षण-भरमें ही सिद्ध कर लेनेवाला और हाथी, घोड़े, रथ, पत्नी-पुत्रसे युक्त हो सात जन्मोंतक राजा होता है।

राजा शतानीकने पूछा—मुने ! गणेशजीने किसके लिये विघ्न उत्पन्न किया था, जिसके कारण उन्हें विघ्नविनायक कहा गया। आप विघ्नेश तथा उनके द्वारा विघ्न उत्पन्न करनेके कारणको मुझे बतानेका कष्ट करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! एक बार अपने लक्षण-शास्त्रके अनुसार स्वामिकार्तिकेयने पुरुषों और स्त्रियोंके श्रेष्ठ लक्षणोंकी रचना की, उस समय गणेशजीने विघ्न किया। इसपर कार्तिकेय क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने गणेशका एक दाँत उखाड़ लिया और उन्हें मारनेके लिये उद्यत हो उठे। उस समय भगवान् शङ्करने उनको रोककर पूछा कि तुम्हारे क्रोधका क्या कारण है ?

कार्तिकेयने कहा—पिताजी ! मैं पुरुषोंके लक्षण बनाकर स्त्रियोंके लक्षण बना रहा था, उसमें इसने विघ्न किया, जिससे स्त्रियोंके लक्षण मैं नहीं बना सका। इस कारण मुझे क्रोध हो आया। यह सुनकर महादेवजीने कार्तिकेयके क्रोधको शान्त किया और हँसते हुए उन्होंने पूछा।

शङ्कर बोले—पुत्र ! तुम पुरुषके लक्षण जानते हो तो बताओ, मुझमें पुरुषके कौन-से लक्षण हैं ?

कार्तिकेयने कहा—महाराज ! आपमें ऐसा लक्षण है कि संसारमें आप कपालीके नामसे प्रसिद्ध होंगे। पुत्रका यह वचन सुनकर महादेवजीको क्रोध हो आया और उन्होंने उनके उस लक्षण-ग्रन्थको उठाकर समुद्रमें फेंक दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये।

बादमें शिवजीने समुद्रको बुलाकर कहा कि तुम स्त्रियोंके आभूषण-स्वरूप विलक्षण लक्षणोंकी रचना करो और कार्तिकेयने जो पुरुष-लक्षणके विषयमें कहा है उसको कहो।

समुद्रने कहा—जो मेरे द्वारा पुरुष-लक्षणका शास्त्र कहा जायगा, वह मेरे ही नाम 'सामुद्रिक शास्त्र'से प्रसिद्ध होगा। स्वामिन् ! आपने जो आज्ञा मुझे दी है, वह निश्चित ही पूरी होगी।

शङ्करजीने पुनः कहा—कार्तिकेय ! इस समय तुमने जो गणेशका दाँत उखाड़ लिया है उसे दे दो। निश्चय ही जो कुछ यह हुआ है, होना ही था। दैवयोगसे यह गणेशके बिना सम्भव नहीं था, इसलिये उनके द्वारा यह विघ्न उपस्थित किया गया। यदि तुम्हें लक्षणकी अपेक्षा हो तो समुद्रसे ग्रहण कर लो, किंतु स्त्री-पुरुषोंका यह श्रेष्ठ लक्षण-शास्त्र 'सामुद्र-शास्त्र' इस नामसे ही प्रसिद्ध होगा। गणेशको तुम दाँत-युक्त कर दो।

कार्तिकेयने भगवान् देवदेवेश्वरसे कहा—आपके कहनेसे मैं दाँत तो विनायकके हाथमें दे देता हूँ, किंतु इन्हें इस दाँतको सदैव धारण करना पड़ेगा। यदि इस दाँतको फेंककर ये इधर-उधर घूमेंगे तो यह फेंका गया दाँत इन्हें भस्म कर देगा। ऐसा कहकर कार्तिकेयने उनके हाथमें दाँत दे दिया। भगवान् देवदेवेश्वरने गणेशको कार्तिकेयकी इस बातको माननेके लिये सहमत कर लिया।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! आज भी भगवान् शङ्करके पुत्र विघ्नकर्ता महात्मा विनायककी प्रतिमा हाथमें दाँत लिये देखी जा सकती है। देवताओंकी यह रहस्यपूर्ण बात मैंने आपसे कही। इसको देवता भी नहीं जान पाये थे। पृथ्वीपर इस रहस्यको जानना तो दुर्लभ ही है। प्रसन्न होकर मैंने इस रहस्यको आपसे तो कह दिया है, किंतु गणेशकी यह अमृतकथा चतुर्थी तिथिके संयोगपर ही कहनी चाहिये। जो विद्वान् हो, उसे चाहिये कि वह इस कथाको वेदपारङ्गत श्रेष्ठ द्विजों, अपनी क्षत्रियोचित वृत्तिमें लगे हुए क्षत्रियों, वैश्यों और गुणवान् शूद्रोंको सुनाये। जो इस चतुर्थीव्रतका पालन करता है, उसके लिये इस लोक तथा परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। उसकी दुर्गति नहीं होती और न कहीं वह पराजित होता है। भरतश्रेष्ठ ! निर्विघ्न-रूपसे वह सभी कार्योंको सम्पन्न कर लेता है, इसमें संदेह नहीं है। उसे ऋद्धि-वृद्धि-ऐश्वर्य भी प्राप्त हो जाता है। (अध्याय २२)

चतुर्थी-कल्प-वर्णनमें गणेशजीका विघ्न-अधिकार तथा उनकी पूजा-विधि

राजा शतानीकने सुमन्तु मुनिसे पूछा—विप्रवर ! गणेशजीको गणोंका राजा किसने बनाया और बड़े भाई कार्तिकेयके रहते हुए ये कैसे विघ्नोंके अधिकारी हो गये ?

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! आपने बहुत अच्छी बात पूछी है। जिस कारण ये विघ्नकारक हुए हैं और जिन विघ्नोंको करनेसे इस पदपर इनकी नियुक्ति हुई, वह मैं कह रहा हूँ, उसे आप एकाग्रचित्त होकर सुनें। पहले कृतयुगमें प्रजाओंकी जब सृष्टि हुई तो बिना विघ्न-बाधाके देखते-ही-देखते सब कार्य सिद्ध हो जाते थे। अतः प्रजाको बहुत अहंकार हो गया। क्लेश-रहित एवं अहंकारसे परिपूर्ण प्रजाको देखकर ब्रह्माने बहुत सोच-विचार करके प्रजा-समृद्धिके लिये विनायकको विनियोजित किया। अतः ब्रह्माके प्रयाससे भगवान् शङ्करने गणेशको उत्पन्न किया और उन्हें गणोंका अधिपति बनाया।

राजन् ! जो प्राणी गणेशकी बिना पूजा किये ही कार्य आरम्भ करता है, उनके लक्षण मुझसे सुनिये—वह व्यक्ति स्वप्नमें अत्यन्त गहरे जलमें अपनेको डूबते, स्नान करते हुए या केश मुड़ाये देखता है। काषाय वस्त्रसे आच्छादित तथा हिंसक व्याघ्रादि पशुओंपर अपनेको चढ़ता हुआ देखता है। अन्त्यज, गर्दभ तथा ऊँट आदिपर चढ़कर परिजनोंसे घिरा वह अपनेको जाता हुआ देखता है। जो मानव केकड़ेपर बैठकर अपनेको जलकी तरंगोंके बीच गया हुआ देखता है और पैदल चल रहे लोगोंसे घिरकर यमराजके लोकको जाता हुआ अपनेको स्वप्नमें देखता है, वह निश्चित ही अत्यन्त दुःखी होता है।

जो राजकुमार स्वप्नमें अपने चित्त तथा आकृतिको विकृत रूपमें अवस्थित, करवीरके फूलोंकी मालासे विभूषित देखता है, वह उन भगवान् विघ्नेशके द्वारा विघ्न उत्पन्न कर देनेके कारण पूर्ववंशानुगत प्राप्त राज्यको प्राप्त नहीं कर पाता। कुमारी कन्या अपने अनुरूप पतिको नहीं प्राप्त कर पाती। गर्भिणी स्त्री संतानको नहीं प्राप्त कर पाती है। श्रोत्रिय ब्राह्मण आचार्यत्वका लाभ नहीं प्राप्त कर पाता और शिष्य अध्ययन नहीं कर पाता। वैश्यको व्यापारमें लाभ नहीं प्राप्त होता है और कृषकको कृषि-कार्यमें पूरी सफलता नहीं मिलती। इसलिये राजन् ! ऐसे अशुभ स्वप्नोंको देखनेपर भगवान् गणपतिकी प्रसन्नताके लिये विनायक-शान्ति करनी चाहिये।

शुक्ल पक्षकी चतुर्थीके दिन, बृहस्पतिवार और पुष्य-नक्षत्र होनेपर गणेशजीको सर्वौषधि और सुगन्धित द्रव्य-पदार्थोंसे उपलिप्त करे तथा उन भगवान् विघ्नेशके सामने स्वयं भद्रासनपर बैठकर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये। तदनन्तर भगवान् शङ्कर, पार्वती और गणेशकी पूजा करके सभी पितरों तथा ग्रहोंकी पूजा करे। चार कलश स्थापित कर उनमें सप्तमृत्तिका, गुग्गुल और गोरोचन आदि द्रव्य तथा सुगन्धित पदार्थ छोड़े। सिंहासनस्थ गणेशजीको स्नान कराना चाहिये। स्नान कराते समय इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम्।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते॥
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः॥
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु ते सदा॥

(ब्राह्मपर्व २३। १९—२१)

इन मन्त्रोंसे स्नान कराकर हवन आदि कार्य करे। अनन्तर हाथमें पुष्प, दूर्वा तथा सर्षप (सरसों) लेकर गणेशजीकी माता पार्वतीको तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करनी चाहिये। मन्त्र उच्चारण करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे।
अचलां बुद्धिं मे देहि धरायां ख्यातिमेव च॥

(ब्राह्मपर्व २३। २८)

अर्थात् 'हे भगवति ! आप मुझे रूप, यश, तेज, पुत्र तथा धन दें, आप मेरी सभी कामनाओंको पूर्ण करें। मुझे अचल बुद्धि प्रदान करें और इस पृथ्वीपर प्रसिद्धि दें।'

प्रार्थनाके पश्चात् ब्राह्मणोंको तथा गुरुको भोजन कराकर उन्हें वस्त्र-युगल तथा दक्षिणा समर्पित करे। इस प्रकार भगवान् गणेश तथा ग्रहोंकी पूजा करनेसे सभी कर्मोंका फल प्राप्त होता है और अत्यन्त श्रेष्ठ लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। सूर्य, कार्तिकेय और विनायकका पूजन एवं तिलक करनेसे सभी सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय २३)

पुरुषोंके शुभाशुभ लक्षण

राजा शतानीकने पूछा—विप्रेन्द्र ! स्त्री और पुरुषके जो लक्षण कार्तिकेयने बनाये थे और जिस ग्रन्थको क्रोधमें आकर भगवान् शिवने समुद्रमें फेंक दिया था, वह कार्तिकेयको पुनः प्राप्त हुआ या नहीं ? इसे आप मुझे बतायें।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजेन्द्र ! कार्तिकेयने स्त्री-पुरुषका जैसा लक्षण कहा है, वैसा ही मैं कह रहा हूँ। व्योमकेश भगवान्‌के सुपुत्र कार्तिकेयने जब अपनी शक्तिके द्वारा क्रौंचपर्वतको विदीर्ण किया, उस समय ब्रह्माजी उनपर प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कार्तिकेयसे कहा कि हम तुमपर प्रसन्न हैं, जो चाहो वह वर मुझसे माँग लो। उस तेजस्वी कुमार कार्तिकेयने नतमस्तक होकर उन्हें प्रणाम किया और कहा कि विभो ! स्त्री-पुरुषके विषयमें मुझे अत्यधिक कौतूहल है। जो लक्षण-ग्रन्थ पहले मैंने बनाया था उसे तो पिता देवदेवेश्वरने क्रोधमें आकर समुद्रमें फेंक दिया। वह मुझे भूल भी गया है। अतः उसको सुननेकी मेरी इच्छा है। आप कृपा करके उसीका वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—तुमने अच्छी बात पूछी है। समुद्रने जिस प्रकारसे इन लक्षणोंको कहा है, उसी प्रकार मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। समुद्रने स्त्री-पुरुषोंके उत्तम, मध्यम तथा अधम—तीन प्रकारके लक्षण बतलाये हैं।

शुभाशुभ लक्षण देखनेवालेको चाहिये कि वह शुभ मुहूर्तमें मध्याह्नके पूर्व पुरुषके लक्षणोंको देखे। प्रमाणसमूह, छायागति, सम्पूर्ण अङ्ग, दाँत, केश, नख, दाढ़ी-मूँछका लक्षण देखना चाहिये। पहले आयुकी परीक्षा करके ही लक्षण बताने चाहिये। आयु कम हो तो सभी लक्षण व्यर्थ हैं। अपनी अङ्गुलियोंसे जो पुरुष एक सौ आठ यानी चार हाथ बारह अङ्गुलका होता है, वह उत्तम होता है। सौ अङ्गुलका होनेपर मध्यम और नब्बे अङ्गुलका होनेपर अधम माना जाता है—लंबाईके प्रमाणका यही लक्षण आचार्य समुद्रने कहा है।

हे कुमार ! अब मैं पुरुषके अङ्गोंका लक्षण कहता हूँ। जिसका पैर कोमल, मांसल, रक्तवर्ण, स्निग्ध, ऊँचा, पसीनेसे रहित और नाड़ियोंसे व्याप्त न हो अर्थात् नाड़ियाँ दिखायी नहीं पड़ती हों तो वह पुरुष राजा होता है। जिसके पैरके तलवेमें अंकुशका चिह्न हो, वह सदा सुखी रहता है। कछुवेके समान ऊँचे चरणवाला, कमलके सदृश कोमल और परस्पर मिली हुई अङ्गुलियोंवाला, सुन्दर पार्ष्णि—एड़ीसे युक्त, निगूढ टखनेवाला, सदा गर्म रहनेवाला, प्रस्वेदशून्य, रक्तवर्णके नखोंसे अलंकृत चरणवाला पुरुष राजा होता है। सूर्पके समान रूखा, सफेद नखोंसे युक्त, टेढ़ी-रूखी नाड़ियोंसे व्याप्त, विरल अङ्गुलियोंसे युक्त चरणवाले पुरुष दरिद्र और दुःखी होते हैं। जिसका चरण आगमें पकायी गयी मिट्टीके समान वर्णका होता है, वह ब्रह्महत्या करनेवाला, पीले चरणवाला अगम्या-गमन करनेवाला, कृष्णवर्णके चरणवाला मद्यपान करनेवाला तथा श्वेतवर्णके चरणवाला अभक्ष्य पदार्थ भक्षण करनेवाला होता है। जिस पुरुषके पैरोंके अँगूठे मोटे होते हैं वे भाग्यहीन होते हैं। विकृत अँगूठेवाले सदा पैदल चलनेवाले और दुःखी होते हैं। चिपटे, विकृत तथा टूटे हुए अँगूठेवाले अतिशय निन्दित होते हैं तथा टेढ़े, छोटे और फटे हुए अँगूठेवाले कष्ट भोगते हैं। जिस पुरुषके पैरकी तर्जनी अँगुली अँगूठेसे बड़ी हो उसको स्त्री-सुख प्राप्त होता है। कनिष्ठा अँगुलीके बड़ी होनेपर स्वर्णकी प्राप्ति होती है। चपटी, विरल, सूखी अँगुली होनेपर पुरुष धनहीन होता है और सदा दुःख भोगता है। रुक्ष और श्वेत नख होनेपर दुःखकी प्राप्ति होती है। खराब नख होनेपर पुरुष शीलरहित और कामभोगरहित होता है। रोमसे युक्त जंघा होनेपर भाग्यहीन होता है। जंघे छोटे होनेपर ऐश्वर्य प्राप्त होता है, किंतु बन्धनमें रहता है। मृगके समान जंघा होनेपर राजा होता है। लंबी, मोटी तथा मांसल जंघावाला ऐश्वर्य प्राप्त करता है। सिंह तथा बाघके समान जंघावाला धनवान् होता है। जिसके घुटने मांसरहित होते हैं, वह विदेशमें मरता है, विकट जानु होनेपर दरिद्र होता है। नीचे घुटने होनेपर स्त्री-जित होता है और मांसल जानु होनेपर राजा होता है। हंस, भास पक्षी, शुक, वृष, सिंह, हाथी तथा अन्य श्रेष्ठ पशु-पक्षियोंके समान गति होनेपर व्यक्ति राजा अथवा भाग्यवान् होता है। ये आचार्य समुद्रके वचन हैं, इनमें संदेह नहीं है।

जिस पुरुषका रक्त कमलके समान होता है वह धनवान् होता है। कुछ लाल और कुछ काला रुधिरवाला मनुष्य अधम और पापकर्मको करनेवाला होता है। जिस पुरुषका रक्त मूँगेके समान रक्त और स्निग्ध होता है, वह सात द्वीपोंका राजा

होता है। मृग अथवा मोरके समान पेट होनेपर उत्तम पुरुष होता है। बाघ, मेढक और सिंहके समान पेट होनेपर राजा होता है। मांससे पुष्ट, सीधा और गोल पार्श्ववाला व्यक्ति राजा होता है। बाघके समान पीठवाला व्यक्ति सेनापति होता है। सिंहके समान लंबी पीठवाला व्यक्ति बन्धनमें पड़ता है। कछुवेके समान पीठवाला पुरुष धनवान् तथा सौभाग्य-सम्पन्न होता है। चौड़ा, मांससे पुष्ट और रोमयुक्त वक्षःस्थलवाला पुरुष शतायु, धनवान् और उत्तम भोगोंको प्राप्त करता है। सूखी, रूखी, विरल हाथकी अँगुलियोंवाला पुरुष धनहीन और सदा दुःखी रहता है।

जिसके हाथमें मत्स्यरेखा होती है, उसका कार्य सिद्ध होता है और वह धनवान् तथा पुत्रवान् होता है। जिसके हाथमें तुला अथवा वेदीका चिह्न होता है, वह पुरुष व्यापारमें लाभ करता है। जिसके हाथमें सोमलताका चिह्न होता है, वह धनी होता है और यज्ञ करता है। जिसके हाथमें पर्वत और वृक्षका चिह्न होता है, उसकी लक्ष्मी स्थिर होती है और वह अनेक सेवकोंका स्वामी होता है। जिसके हाथमें बर्छी, बाण, तोमर, खड्ग और धनुषका चिह्न होता है, वह युद्धमें विजयी होता है। जिसके हाथमें ध्वजा और शङ्खका चिह्न होता है, वह जहाजसे व्यापार करता है और धनवान् होता है। जिसके हाथमें श्रीवत्स, कमल, वज्र, रथ और कलशका चिह्न होता है, वह शत्रुरहित राजा होता है। दाहिने हाथके अँगूठेमें यवका चिह्न रहनेपर पुरुष सभी विद्याओंका ज्ञाता तथा प्रवक्ता होता है। जिस पुरुषके हाथमें कनिष्ठाके नीचेसे तर्जनीके मध्यतक रेखा चली जाती है और बीचमें अलग नहीं रहती है तो वह पुरुष सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। जिसका पेट साँपके समान लंबा होता है वह दरिद्री और अधिक भोजन करनेवाला होता है। विस्तीर्ण, फैली हुई, गम्भीर और गोल नाभिवाला व्यक्ति सुख भोगनेवाला और धन-धान्यसे सम्पन्न होता है। नीची और छोटी नाभिवाला व्यक्ति विविध क्लेशोंको भोगनेवाला होता है। बलिके नीचे नाभि हो और वह विषम हो तो धनकी हानि होती है। दक्षिणावर्त नाभि बुद्धि प्रदान करती है और वामावर्त नाभि शान्ति प्रदान करती है। सौ दलोंवाले कमलकी कर्णिकाके समान नाभिवाला पुरुष राजा होता है। पेटमें एक बलि होनेपर शस्त्रसे मारा जाता है, दो बलि होनेपर स्त्री-भोगी होता है, तीन बलि होनेपर राजा अथवा आचार्य होता है। चार बलि होनेपर अनेक पुत्र होते हैं, सीधी बलि होनेपर धनका उपभोग करता है।

जिसके स्कन्ध कठोर एवं मांसल तथा समान हों वे राजा होते हैं और सुखी रहते हैं। जिसका वक्षःस्थल बराबर, उन्नत, मांसल और विस्तृत होता है वह राजाके समान होता है। इसके विपरीत कड़े रोमवाले तथा नसें दिखायी पड़नेवाले वक्षःस्थल प्रायः निर्धनोंके ही होते हैं। दोनों वक्षःस्थल समान होनेपर पुरुष धनवान् होता है, पुष्ट होनेपर शूरवीर होता है, छोटे होनेपर धनहीन तथा छोटा-बड़ा होनेपर अकिंचन होता है और शस्त्रसे मारा जाता है। विषम हनुवाला धनहीन तथा उन्नत हनु (ठुड्डी) वाला भोगी होता है। चिपटी ग्रीवावाला धनहीन होता है। महिषके समान ग्रीवावाला शूरवीर होता है। मृगके समान ग्रीवावाला डरपोक होता है। समान ग्रीवावाला राजा होता है। तोता, ऊँट, हाथी और बगुलेके समान लंबी तथा शुष्क ग्रीवावाला धनहीन होता है। छोटी ग्रीवावाला धनवान् और सुखी होता है। पुष्ट, दुर्गन्धरहित, सम एवं थोड़े रोमोंसे युक्त काँखवाले धनी होते हैं, जिसकी भुजाएँ ऊपरको खिंची रहती हैं, वह बन्धनमें पड़ता है। छोटी भुजा रहनेपर दास होता है, छोटी-बड़ी भुजा होनेपर चोर होता है, लंबी भुजा होनेपर सभी गुणोंसे युक्त होता है और जानुओंतक लंबी भुजा होनेपर राजा होता है। जिसके हाथका तल गहरा होता है उसे पिताका धन नहीं प्राप्त होता, वह डरपोक होता है। ऊँचे करतलवाला पुरुष दानी, विषम करतलवाला पुरुष मिश्रित फलवाला, लाखके समान रक्तवर्णवाला करतल होनेपर राजा होता है। पीले करतलवाला पुरुष अगम्यागमन करनेवाला, काला और नीला करतलवाला मद्यादि द्रव्योंका पान करनेवाला होता है। रूखे करतलवाला पुरुष निर्धन होता है। जिनके हाथकी रेखाएँ गहरी और स्निग्ध होती हैं वे धनवान् होते हैं। इसके विपरीत रेखावाले दरिद्र होते हैं। जिनकी अँगुलियाँ विरल होती हैं, उनके पास धन नहीं ठहरता और गहरी तथा छिद्रहीन अँगुली रहनेपर धनका संचयी रहता है।

ब्रह्माजी पुनः बोले—कार्तिकेय! चन्द्रमण्डलके समान मुखवाला व्यक्ति धर्मात्मा होता है और जिसका मुख सूँडकी आकृतिका होता है वह भाग्यहीन होता है। टेढ़ा, टूटा

हुआ, विकृत और सिंहके समान मुखवाला चोर होता है। सुन्दर और कान्तियुक्त श्रेष्ठ हाथीके समान भरा हुआ सम्पूर्ण मुखवाला व्यक्ति राजा होता है। बकरे अथवा बंदरके समान मुखवाला व्यक्ति धनी होता है। जिसका मुख बड़ा होता है उसका दुर्भाग्य रहता है। छोटा मुखवाला कृपण, लंबा मुखवाला धनहीन और पापी होता है। चौखूँटा मुखवाला धूर्त, स्त्रीके मुखके समान मुखवाला और निम्न मुखवाला पुरुष पुत्रहीन होता है या उसका पुत्र उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है। जिसके कपोल कमलके दलके समान कोमल और कान्तिमान् होते हैं, वह धनवान् एवं कृषक होता है । सिंह, बाघ और हाथीके समान कपोलवाला व्यक्ति विविध भोग-सम्पत्तियों-वाला और सेनाका स्वामी होता है। जिसका नीचेका ओठ रक्तवर्णका होता है, वह राजा होता है और कमलके समान अधरवाला धनवान् होता है। मोटा और रूखा होंठ होनेपर दुःखी होता है।

जिसके कान मांसरहित हों वह संग्राममें मारा जाता है। चिपटा कान होनेपर रोगी, छोटा होनेपर कृपण, शङ्कुके समान कान होनेपर राजा, नाड़ियोंसे व्याप्त होनेपर क्रूर, केशोंसे युक्त होनेपर दीर्घजीवी, बड़ा, पुष्ट तथा लंबा कान होनेपर भोगी तथा देवता और ब्राह्मणकी पूजा करनेवाला एवं राजा होता है। जिसकी नाक शुककी चोंचके समान हो वह सुख भोगनेवाला और शुष्क नाकवाला दीर्घजीवी होता है। पतली नाकवाला राजा, लंबी नाकवाला भोगी, छोटी नाकवाला धर्मशील, हाथी, घोड़ा, सिंह या सुईकी भाँति तीखी नाकवाला व्यापारमें सफल होता है। कुन्द-पुष्पकी कलीके समान उज्ज्वल दाँतवाला राजा तथा हाथीके समान दाँतवाला एवं चिकने दाँतवाला गुणवान् होता है। भालू और बंदरके समान दाँतवाले नित्य भूखसे व्याकुल रहते हैं। कराल, रूखे, अलग-अलग और फूटे हुए दाँतवाले दुःखसे जीवन व्यतीत करनेवाले होते हैं। बत्तीस दाँतवाले राजा, एकतीस दाँतवाले भोगी, तीस दाँतवाले सुख-दुःख भोगनेवाले तथा उनतीस दाँतवाले पुरुष दुःख ही भोगते हैं। काली या चित्रवर्णकी जीभ होनेपर व्यक्ति दासवृत्तिसे जीवन व्यतीत करता है। रूखी और मोटी जीभवाला क्रोधी, श्वेतवर्णकी जीभवाला पवित्र आचरणसे सम्पन्न होता है। निम्न, स्निग्ध, अग्रभाग रक्तवर्ण और छोटी जिह्वावाला विद्वान् होता है। कमलके पत्तेके समान पतली, लंबी न बहुत मोटी और न बहुत चौड़ी जिह्वा रहनेपर राजा होता है। काले रंगका तालुवाला अपने कुलका नाशक, पीले तालुवाला सुख-दुःख भोग करनेवाला, सिंह और हाथीके तालुके समान तथा कमलके समान तालुवाला राजा होता है, श्वेत तालुवाला धनवान् होता है। रूखा, फटा हुआ तथा विकृत तालुवाला मनुष्य अच्छा नहीं माना जाता।

हंसके समान स्वरवाले तथा मेघके समान गम्भीर स्वरवाले पुरुष धन्य माने गये हैं। क्रौंचके समान स्वरवाले राजा, महान् धनी तथा विविध सुखोंका भोग करनेवाले होते हैं। चक्रवाकके समान जिनका स्वर होता है ऐसे व्यक्ति धन्य तथा धर्मवत्सल राजा होते हैं। घड़े एवं दुंदुभिके समान स्वरवाले पुरुष राजा होते हैं। रूखे, ऊँचे, क्रूर, पशुओंके समान तथा घर्घरयुक्त स्वरवाले पुरुष दुःखभागी होते हैं। नील-कण्ठ पक्षीके समान स्वरवाले भाग्यवान् होते हैं। फूटे काँसेके बर्तनके समान तथा टूटे-फूटे स्वरवाले अधम कहे गये हैं।

दाडिमके पुष्पके समान नेत्रवाला राजा, व्याघ्रके समान नेत्रवाला क्रोधी, केकड़ेके समान आँखवाला झगड़ालू, बिल्ली और हंसके समान नेत्रवाला पुरुष अधम होता है। मयूर एवं नकुलके समान आँखवाले मध्यम माने जाते हैं। शहदके समान पिङ्गल वर्णके नेत्रवालेको लक्ष्मी कभी भी त्याग नहीं करती। गोरोचन, गुंजा और हरतालके समान पिङ्गल नेत्रवाला बलवान् और धनेश्वर होता है। अर्धचन्द्रके समान ललाट होनेपर राजा होता है। बड़ा ललाट होनेपर धनवान् होता है। छोटा ललाट होनेपर धर्मात्मा होता है। ललाटके बीच जिस स्त्री तथा पुरुषके पाँच आड़ी रेखा होती है वह सौ वर्षोंतक जीवित रहता है और ऐश्वर्य भी प्राप्त करता है। चार रेखा होनेपर अस्सी वर्ष,तीन रेखा होनेपर सत्तर वर्ष, दो रेखा होनेपर साठ वर्ष, एक रेखा होनेपर चालीस वर्ष और एक भी रेखा न होनेपर पचीस वर्षकी आयुवाला होता है। इन रेखाओंके द्वारा हीन, मध्यम और पूर्ण आयुकी परीक्षा करनी चाहिये। छोटी रेखा होनेपर व्याधियुक्त तथा अल्पायु और लंबी-लंबी रेखाएँ होनेपर दीर्घायु होता है। जिसके ललाटमें त्रिशूल अथवा पट्टिशका चिह्न होता है, वह बड़ा प्रतापी, कीर्ति-सम्पन्न राजा होता है। छत्रके समान सिर होनेपर राजा,

लंबा सिर होनेपर दुःखी, दरिद्र, विषम होनेपर समान तथा गोल सिर होनेपर सुखी, हाथीके समान सिर होनेपर राजाके समान होता है। जिनके केश अथवा रोम मोटे, रूखे, कपिल और आगेसे फटे हुए होते हैं, वे अनेक प्रकारके दुःख भोगते हैं। बहुत गहरे और कठोर केश दुःखदायी होते हैं। विरल, स्निग्ध, कोमल, भ्रमर अथवा अंजनके समान अतिशय कृष्ण केशवाला पुरुष अनेक प्रकारके सुखका भोग करता है और राजा होता है। (अध्याय २४—२६)

राजपुरुषोंके लक्षण

कार्तिकेयजीने कहा—ब्रह्मन्! आप राजाओंके शरीरके अङ्गोंके लक्षणोंको बतानेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—मैं मनुष्योंमें राजाओंके अङ्गोंके लक्षणोंको संक्षेपमें बताता हूँ। यदि ये लक्षण साधारण पुरुषोंमें भी प्रकट हों तो वे भी राजाके समान होते हैं, इन्हें आप सुनें—

जिस पुरुषके नाभि, स्वर और संधिस्थान—ये तीन गम्भीर हों, मुख, ललाट और वक्षःस्थल—ये तीन विस्तीर्ण हों, वक्षःस्थल, कक्ष, नासिका, नख, मुख और कृकाटिका—ये छः उन्नत अर्थात् ऊँचे हों, उपस्थ, पीठ, ग्रीवा और जंघा—ये चार ह्रस्व हों, नेत्रोंके प्रान्त,हाथ, पैर, तालु, ओष्ठ, जिह्वा तथा नख—ये सात रक्त वर्णके हों, हनु, नेत्र, भुजा, नासिका तथा दोनों स्तनोंका अन्तर—ये पाँच दीर्घ हों तथा दन्त, केश, अङ्गुलियोंके पर्व, त्वचा तथा नख—ये पाँच सूक्ष्म हों, वह सप्तद्वीपवती पृथ्वीका राजा होता है। जिसके नेत्र कमलदलके समान और अन्तमें रक्तवर्णके होते हैं, वह लक्ष्मीका स्वामी होता है। शहदके समान पिङ्गल नेत्रवाला पुरुष महात्मा होता है। सूखी आँखवाला डरपोक, गोल और चक्रके समान घूमनेवाली आँखवाला चोर, केकड़ेके समान आँखवाला क्रूर होता है। नील कमलके समान नेत्र होनेपर विद्वान्, श्यामवर्णके नेत्र होनेपर सौभाग्यशाली, विशाल नेत्र होनेपर भाग्यवान्, स्थूल नेत्र होनेपर राजमन्त्री और दीन नेत्र होनेपर दरिद्र होता है। भौंहें विशाल होनेपर सुखी, ऊँची होनेपर अल्पायु और विषम या बहुत लंबी होनेपर दरिद्र और दोनों भौंहोंके मिले हुए होनेपर धनहीन होता है। मध्यभागमें नीचेकी ओर झुकी भौंहवाले परदारागिगामी होते हैं। बालचन्द्रकलाके समान भौंहें होनेपर राजा होता है। ऊँचा और निर्मल ललाट होनेपर उत्तम पुरुष होता है, नीचा ललाट होनेपर स्तुति किया जानेवाला और धनसे युक्त होता है, कहीं ऊँचा और कहीं नीचा ललाट होनेपर दरिद्र तथा सीपके समान ललाट होनेपर आचार्य होता है। स्निग्ध, हास्ययुक्त और दीनतासे रहित मुख शुभ होता है, दैन्यभावयुक्त तथा आँसुओंसे युक्त आँखोंवाला एवं रूखे चेहरेवाला श्रेष्ठ नहीं है। उत्तम पुरुषका हास्य कम्पनरहित धीरे-धीरे होता है। अधम व्यक्ति बहुत शब्दके साथ हँसता है। हँसते समय आँखको मूँदनेवाला व्यक्ति पापी होता है। गोल सिरवाला पुरुष अनेक गौओंका स्वामी तथा चिपटा सिरवाला माता-पिताको मारनेवाला होता है। घण्टेकी आकृतिके समान सिरवाला सदा कहीं-न-कहीं यात्रा करता रहता है। निम्न सिरवाला अनेक अनर्थोंको करनेवाला होता है।

इस प्रकार पुरुषोंके शुभ और अशुभ लक्षणोंको मैंने आपसे कहा। अब स्त्रियोंके लक्षण बतलाता हूँ।

(अध्याय २७)

स्त्रियोंके शुभाशुभ-लक्षण

ब्रह्माजी बोले—कार्तिकेय! स्त्रियोंके जो लक्षण मैंने पहले नारदजीको बतलाये थे, उन्हीं शुभाशुभ-लक्षणोंको बताता हूँ। आप सावधान होकर सुनें—शुभ मुहूर्तमें कन्याके हाथ, पैर, अँगुली, नख, हाथकी रेखा, जंघा, कटि, नाभि, ऊरु, पेट, पीठ, भुजा, कान, जिह्वा, ओठ, दाँत, कपोल, गला, नेत्र, नासिका, ललाट, सिर, केश, स्वर, वर्ण और भौंरी—इन सबके लक्षण देखे।

जिसकी ग्रीवामें रेखा हो और नेत्रोंका प्रान्तभाग कुछ लाल हो, वह स्त्री जिस घरमें जाती है, उस घरकी प्रतिदिन वृद्धि होती है। जिसके ललाटमें त्रिशूलका चिह्न होता है, वह कई हजार दासियोंकी स्वामिनी होती है। जिस स्त्रीकी राजहंसके समान गति, मृगके समान नेत्र, मृगके समान ही शरीरका वर्ण,

दाँत बराबर और श्वेत होते हैं, वह उत्तम स्त्री होती है। मेढकके समान कुक्षिवाली एक ही पुत्र उत्पन्न करती है और वह पुत्र राजा होता है। हंसके समान मृदु वचन बोलनेवाली, शहदके समान पिङ्गल वर्णवाली स्त्री धन-धान्यसे सम्पन्न होती है, उसे आठ पुत्र होते हैं। जिस स्त्रीके लंबे कान, सुन्दर नाक और भौंह धनुषके समान टेढ़ी होती है, वह अतिशय सुखका भोग करती है। तन्वी, श्यामवर्णा, मधुर भाषिणी, शङ्खके समान अतिशय स्वच्छ दाँतोंवाली, स्निग्ध अङ्गोंसे समन्वित स्त्री अतिशय ऐश्वर्यको प्राप्त करती है। विस्तीर्ण जंघाओंवाली, वेदीके समान मध्यभागवाली, विशाल नेत्रोंवाली स्त्री रानी होती है। जिस स्त्रीके वाम स्तनपर, हाथमें, कानके ऊपर या गलेपर तिल अथवा मसा होता है, उस स्त्रीको प्रथम पुत्र उत्पन्न होता है। जिस स्त्रीका पैर रक्तवर्ण हो, ठेहुने बहुत ऊँचे न हों, छोटी एड़ी हो, परस्पर मिली हुई सुन्दर अँगुलियाँ हों, लाल नेत्र हों—ऐसी स्त्री अत्यन्त सुख भोग करती है। जिसके पैर बड़े-बड़े हों, सभी अङ्गोंमें रोम हों, छोटे और मोटे हाथ हों, वह दासी होती है। जिस स्त्रीके पैर उत्कट हों, मुख विकृत हो, ऊपरके ओठके ऊपर रोम हो वह शीघ्र अपने पतिको मार देती है। जो स्त्री पवित्र, पतिव्रता, देवता, गुरु और ब्राह्मणोंकी भक्त होती है, वह मानुषी कहलाती है। नित्य स्नान करनेवाली, सुगन्धित द्रव्य लगानेवाली, मधुर वचन बोलनेवाली, थोड़ा खानेवाली, कम सोनेवाली और सदा पवित्र रहनेवाली स्त्री देवता होती है। गुप्तरूपसे पाप करनेवाली, अपने पापको छिपानेवाली, अपने हृदयके अभिप्रायको किसीके आगे प्रकट न करनेवाली स्त्री मार्जारी-संज्ञक होती है। कभी हँसनेवाली, कभी क्रीडा करनेवाली, कभी क्रोध करनेवाली, कभी प्रसन्न रहनेवाली तथा पुरुषोंके मध्य रहनेवाली स्त्री गर्दभी-श्रेणीकी होती है। पति और बान्धवोंके द्वारा कहे गये हितकारी वचनको न माननेवाली, अपनी इच्छाके अनुसार विहार करनेवाली स्त्री आसुरी कही जाती है। बहुत खानेवाली, बहुत बोलनेवाली, खोटे वचन बोलनेवाली, पतिको मारनेवाली स्त्री राक्षसी-संज्ञक होती है। शौच, आचार और रूपसे रहित, सदा मलिन रहनेवाली, अतिशय भयंकर स्त्री पिशाची कहलाती है। अतिशय चञ्चल स्वभाववाली, चपल नेत्रोंवाली, इधर-उधर देखनेवाली, लोभी नारी वानरी-संज्ञक होती है। चन्द्रमुखी, मदमत्त हाथीके समान चलनेवाली, रक्तवर्णके नखोंवाली, शुभ लक्षणोंसे युक्त हाथ-पैरवाली स्त्री विद्याधरी-श्रेणीकी होती है। वीणा, मृदङ्ग, वंशी आदि वाद्योंके शब्दोंको सुनने तथा पुष्पों और विविध सुगन्धित द्रव्योंमें अभिरुचि रखनेवाली स्त्री गान्धर्वी-श्रेणीकी होती है।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! ब्रह्माजी इस प्रकार स्त्री और पुरुषोंके लक्षणोंको स्वामिकार्तिकेयको बतलाकर अपने लोकको चले गये।

(अध्याय २८)

विनायक-पूजाका माहात्म्य

शतानीकने कहा—मुने! अब आप मुझे भगवान् गणेशकी आराधनाके विषयमें बतलायें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! भगवान् गणेशकी आराधनामें किसी तिथि, नक्षत्र या उपवासादिकी अपेक्षा नहीं होती। जिस किसी भी दिन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान् गणेशकी पूजा की जाय तो वह अभीष्ट फलोंको देनेवाली होती है। कामना-भेदसे अलग-अलग वस्तुओंसे गणपतिकी मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करनेसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। '**महाकर्णाय**[1] **विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि, तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्।**'—यह गणेश-गायत्री है। इसका जप करना चाहिये।

शुक्ल पक्षकी चतुर्थीको उपवास कर जो भगवान् गणेशका पूजन करता है, उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं और सभी अनिष्ट दूर हो जाते हैं। श्रीगणेशजीके अनुकूल होनेसे सभी जगत् अनुकूल हो जाता है। जिसपर एकदन्त भगवान् गणपति संतुष्ट होते हैं, उसपर देवता, पितर, मनुष्य आदि सभी प्रसन्न रहते हैं[2]। इसलिये सम्पूर्ण विघ्नोंको निवृत्त करनेके लिये श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गणेशजीकी आराधना करनी चाहिये।

(अध्याय २९-३०)

१-परम्परासे प्रचलित गणेश-गायत्रीमें 'एकदन्ताय' पाठ है।

२-एकदन्ते जगन्नाथे गणेशे तुष्टिमागते। पितृदेवमनुष्याद्याः सर्वे तुष्यन्ति भारत॥ (ब्राह्मपर्व ३०।८)

चतुर्थी-कल्पमें शिवा, शान्ता तथा सुखा—तीन प्रकारकी चतुर्थीका फल और उनका व्रत-विधान

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! चतुर्थी तिथि तीन प्रकारकी होती है—शिवा, शान्ता और सुखा। अब मैं इनका लक्षण कहता हूँ, उसे सुनें—

भाद्रपद मासकी शुक्ला चतुर्थीका नाम 'शिवा' है, इस दिन जो स्नान, दान, उपवास, जप आदि सत्कर्म किया जाता है, वह गणपतिके प्रसादसे सौ गुना हो जाता है। इस चतुर्थीको गुड़, लवण और घृतका दान करना चाहिये, यह शुभकर माना गया है और गुड़के अपूपों (मालपूआ) से ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये तथा उनकी पूजा करनी चाहिये। इस दिन जो स्त्री अपने सास और ससुरको गुड़के पूए तथा नमकीन पूए खिलाती है वह गणपतिके अनुग्रहसे सौभाग्यवती होती है। पतिकी कामना करनेवाली कन्या विशेषरूपसे इस चतुर्थीका व्रत करे और गणेशजीकी पूजा करे। राजन्! यह शिवा-चतुर्थीका विधान है।

माघ मासकी शुक्ला चतुर्थीको 'शान्ता' कहते हैं। यह शान्ता तिथि नित्य शान्ति प्रदान करनेके कारण 'शान्ता' कही गयी है। इस दिन किये हुए स्नान-दानादि सत्कर्म गणेशजीकी कृपासे हजार गुना फलदायक हो जाते हैं। इस शान्ता नामक चतुर्थी तिथिको उपवास कर गणेशजीका पूजन तथा हवन करे और लवण, गुड़, शाक तथा गुड़के पूए ब्राह्मणोंको दानमें दे। विशेषरूपसे स्त्रियाँ अपने ससुर आदि पूज्य जनोंका पूजन करें एवं उन्हें भोजन करायें। इस व्रतके करनेसे अखण्ड सौभाग्यकी प्राप्ति होती है, समस्त विघ्न दूर होते हैं और गणेशजीकी कृपा प्राप्त होती है।

किसी भी महीनेके भौमवारयुक्त शुक्ला चतुर्थीको 'सुखा' कहते हैं। यह व्रत स्त्रियोंको सौभाग्य, उत्तम रूप और सुख देनेवाला है। भगवान् शङ्कर एवं माता पार्वतीके संयुक्त तेजसे भूमिद्वारा रक्तवर्णके मङ्गलकी उत्पत्ति हुई। भूमिका पुत्र होनेसे वह भौम कहलाया और कुज, रक्त, वीर, अङ्गारक आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुआ। वह शरीरके अङ्गोंकी रक्षा करनेवाला तथा सौभाग्य आदि देनेवाला है, इसीलिये अङ्गारक कहलाया। जो पुरुष अथवा स्त्री भौमवारयुक्त शुक्ला चतुर्थीको उपवास करके भक्तिपूर्वक प्रथम गणेशजीका, तदनन्तर रक्त चन्दन, रक्त पुष्प आदिसे भौमका पूजन करते हैं, उन्हें सौभाग्य और उत्तम रूप-सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है।

प्रथम संकल्पकर स्नान करे, अनन्तर गणेश-स्मरणपूर्वक हाथमें शुद्ध मृत्तिका लेकर इस मन्त्रको पढ़े—

इह त्वं वन्दिता पूर्वं कृष्णेनोद्धरता किल।
तस्मान्मे दह पाप्मानं यन्मया पूर्वसंचितम्॥

(ब्राह्मपर्व ३१। २४)

इसके बाद मृत्तिकाको गङ्गाजलसे मिश्रितकर सूर्यके सामने करे, तदनन्तर अपने सिर आदि अङ्गोंमें लगाये और फिर जलके मध्य खड़ा होकर इस मन्त्रको पढ़कर नमस्कार करे—

त्वमापो योनिः सर्वेषां दैत्यदानवदौकसाम्।
स्वेदाण्डजोद्भिदां चैव रसानां पतये नमः॥

(ब्राह्मपर्व ३१। २७)

अनन्तर सभी तीर्थों, नदियों, सरोवरों, झरनों और तालाबोंमें मैंने स्नान किया—इस प्रकार भावना करता हुआ गोते लगाकर स्नान करे, फिर पवित्र होकर घरमें आकर दूर्वा, पीपल, शमी तथा गौका स्पर्श करे। इनके स्पर्श करनेके मन्त्र इस प्रकार हैं—

दूर्वा स्पर्श करनेका मन्त्र

त्वं दूर्वेऽमृतनामासि सर्वदेवैस्तु वन्दिता॥
वन्दिता दह तत्सर्वं दुरितं यन्मया कृतम्।

(ब्राह्मपर्व ३१। ३१-३२)

शमी स्पर्श करनेका मन्त्र

पवित्राणां पवित्रा त्वं काश्यपी प्रथिता श्रुतौ।
शमी शमय मे पापं नूनं वेत्सि धराधरान्॥

(ब्राह्मपर्व ३१। ३३)

पीपल-वृक्ष स्पर्श करनेका मन्त्र

नेत्रस्पन्दादिजं दुःखं दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तनम्।
शक्तानां च समुद्योगमश्वत्थ त्वं क्षमस्व मे॥

(ब्राह्मपर्व ३१। ३४)

गौको स्पर्श करनेका मन्त्र

सर्वदेवमयी देवि मुनिभिस्तु सुपूजिता।
तस्मात् स्पृशामि वन्दे त्वां वन्दिता पापहा भव॥

(ब्राह्मपर्व ३१। ३६)

श्रद्धापूर्वक पहले गौकी प्रदक्षिणा कर उपर्युक्त मन्त्रको पढ़े और गौका स्पर्श करे। जो गौकी प्रदक्षिणा करता है, उसे सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रदक्षिणाका फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार इनको स्पर्शकर, हाथ-पैर धोकर, आसनपर बैठकर आचमन करे। अनन्तर खदिर (खैर) की समिधाओंसे अग्नि प्रज्वलित कर, घृत, दुग्ध, यव, तिल तथा विविध भक्ष्य पदार्थोंसे मन्त्र पढ़ते हुए हवन करे। आहुति इन मन्त्रोंसे दे—**ॐ शर्वाय स्वाहा, ॐ शर्वपुत्राय स्वाहा, ॐ क्षोण्युत्सङ्गभवाय स्वाहा, ॐ कुजाय स्वाहा, ॐ ललिताङ्गाय स्वाहा** तथा **ॐ लोहिताङ्गाय स्वाहा**। इन प्रत्येक मन्त्रोंसे १०८ या अपनी शक्तिके अनुसार आहुति दे। अनन्तर सुवर्ण, चाँदी, चन्दन या देवदारुके काष्ठकी मङ्गलकी मूर्ति बनाकर ताँबे अथवा चाँदीके पात्रमें उसे स्थापित करे। घी, कुंकुम, रक्तचन्दन, रक्त पुष्प, नैवेद्य आदिसे उसकी पूजा करे अथवा अपनी शक्तिके अनुसार पूजा करे। अथवा ताम्र, मृत्तिका या बाँससे बने पात्रमें कुंकुम, केसर आदिसे मूर्ति अङ्कितकर पूजा करे। '**अग्निर्मूर्धा॰**'[१] इत्यादि वैदिक मन्त्रोंसे सभी उपचारोंको समर्पित कर वह मूर्ति ब्राह्मणको दे दे और यथाशक्ति घी, दूध, चावल, गेहूँ, गुड़ आदि वस्तु भी ब्राह्मणको दे। धन रहनेपर कृपणता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि कंजूसी करनेसे फल नहीं प्राप्त होता।

इस प्रकार चार बार भौमयुक्त चतुर्थीका व्रतकर श्रद्धा-पूर्वक दस अथवा पाँच तोले सोनेकी मङ्गल और गणपतिकी मूर्ति बनवाये। उसे बीस पल या दस पलके सोने, चाँदी अथवा ताम्र आदिके पात्रमें भक्तिपूर्वक स्थापित करे। सभी उपचारोंसे पूजा करनेके बाद दक्षिणाके साथ सत्पात्र ब्राह्मणको उसे दे, इससे इस व्रतका सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। राजन्! इस प्रकार इस उत्तम तिथिको मैंने कहा। इस दिन जो व्रत करता है, वह चन्द्रमाके समान कान्तिमान्, सूर्यके समान तेजस्वी एवं प्रभावान् तथा वायुके समान बलवान् होता है और अन्तमें महागणपतिके अनुग्रहसे भौमलोकमें निवास करता है। इस तिथिके माहात्म्यको जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक पढ़ता-सुनता है, वह महापातकादिसे मुक्त होकर श्रेष्ठ सम्पत्तियोंको प्राप्त करता है। (अध्याय ३१)

—⊙⊙⊙—

पञ्चमी-कल्पका आरम्भ, नागपञ्चमीकी कथा, पञ्चमी-व्रतका विधान और फल

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! अब मैं पञ्चमी-कल्पका वर्णन करता हूँ। पञ्चमी तिथि नागोंको अत्यन्त प्रिय है और उन्हें आनन्द देनेवाली है। इस दिन नागलोकमें विशिष्ट उत्सव होता है। पञ्चमी तिथिको जो व्यक्ति नागोंको दूधसे स्नान कराता है, उसके कुलमें वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक तथा धनञ्जय—ये सभी बड़े-बड़े नाग अभय दान देते हैं—उसके कुलमें सर्पका भय नहीं रहता। एक बार माताके शापसे नागलोग जलने लग गये थे। इसीलिये उस दाहकी व्यथाको दूर करनेके लिये पञ्चमीको गायके दूधसे नागोंको आज भी लोग स्नान कराते हैं, इससे सर्प-भय नहीं रहता।

राजाने पूछा—महाराज! नागमाताने नागोंको क्यों शाप दिया था और फिर वे कैसे बच गये? इसका आप विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

सुमन्तु मुनिने कहा—एक बार राक्षसों और देवताओंने मिलकर समुद्रका मन्थन किया। उस समय समुद्रसे अतिशय श्वेत उच्चैःश्रवा नामका एक अश्व निकला, उसे देखकर नागमाता कद्रूने अपनी सपत्नी (सौत) विनतासे कहा कि देखो, यह अश्व श्वेतवर्णका है, परंतु इसके बाल काले दीख पड़ते हैं। तब विनताने कहा कि न तो यह अश्व सर्वश्वेत है, न काला है और न लाल। यह सुनकर कद्रूने कहा—'मेरे साथ शर्त करो कि यदि मैं इस अश्वके बालोंको कृष्णवर्णका दिखा दूँ तो तुम मेरी दासी हो जाओगी और यदि नहीं दिखा सकी तो मैं तुम्हारी दासी हो जाऊँगी।' विनताने यह शर्त स्वीकार कर ली। दोनों क्रोध करती हुई अपने-अपने स्थानको चली गयीं। कद्रूने अपने पुत्र नागोंको बुलाकर सब वृत्तान्त उन्हें सुना दिया और कहा कि 'पुत्रो! तुम अश्वके बालके समान सूक्ष्म होकर उच्चैःश्रवाके शरीरमें लिपट जाओ, जिससे यह कृष्णवर्णका दिखायी देने लगे। ताकि मैं अपनी सौत विनताको जीतकर उसे अपनी दासी बना सकूँ।' माताके इस

१-अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपा ँ रेता ँ सि जिन्वति॥ (यजुर्वेद ३।१२)

वचनको सुनकर नागोंने कहा—'माँ ! यह छल तो हमलोग नहीं करेंगे, चाहे तुम्हारी जीत हो या हार। छलसे जीतना बहुत बड़ा अधर्म है।' पुत्रोंका यह वचन सुनकर कद्रूने क्रुद्ध होकर कहा—तुमलोग मेरी आज्ञा नहीं मानते हो, इसलिये मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि 'पाण्डवोंके वंशमें उत्पन्न राजा जनमेजय जब सर्प-सत्र करेंगे, तब उस यज्ञमें तुम सभी अग्निमें जल जाओगे।' इतना कहकर कद्रू चुप हो गयी। नागगण माताका शाप सुनकर बहुत घबड़ाये और वासुकिको साथमें लेकर ब्रह्माजीके पास पहुँचे तथा ब्रह्माजीको अपना सारा वृत्तान्त सुनाया। इसपर ब्रह्माजीने कहा कि वासुके ! चिन्ता मत करो। मेरी बात सुनो—यायावर-वंशमें बहुत बड़ा तपस्वी जरत्कारु नामका ब्राह्मण उत्पन्न होगा। उसके साथ तुम अपनी जरत्कारु नामवाली बहिनका विवाह कर देना और वह जो भी कहे, उसका वचन स्वीकार करना। उसे आस्तीक नामका विख्यात पुत्र उत्पन्न होगा, वह जनमेजयके सर्पयज्ञको रोकेगा और तुमलोगोंकी रक्षा करेगा। ब्रह्माजीके इस वचनको सुनकर नागराज वासुकि आदि अतिशय प्रसन्न हो, उन्हें प्रणाम कर अपने लोकमें आ गये।

सुमन्तु मुनिने इस कथाको सुनाकर कहा—राजन् ! यह यज्ञ तुम्हारे पिता राजा जनमेजयने किया था। यही बात श्रीकृष्णभगवान्‌ने भी युधिष्ठिरसे कही थी कि 'राजन् ! आजसे सौ वर्षके बाद सर्पयज्ञ होगा, जिसमें बड़े-बड़े विषधर और दुष्ट नाग नष्ट हो जायँगे। करोड़ों नाग जब अग्निमें दग्ध होने लगेंगे, तब आस्तीक नामक ब्राह्मण सर्पयज्ञ रोककर नागोंकी रक्षा करेगा।' ब्रह्माजीने पञ्चमीके दिन वर दिया था और आस्तीक मुनिने पञ्चमीको ही नागोंकी रक्षा की थी, अतः पञ्चमी तिथि नागोंको बहुत प्रिय है[1]।

पञ्चमीके दिन नागोंकी पूजाकर यह प्रार्थना करनी चाहिये कि जो नाग पृथ्वीमें, आकाशमें, स्वर्गमें, सूर्यकी किरणोंमें, सरोवरोंमें, वापी, कूप, तालाब आदिमें रहते हैं, वे सब हमपर प्रसन्न हों, हम उनको बार-बार नमस्कार करते हैं।

सर्वे नागाः प्रीयन्तां मे ये केचित् पृथिवीतले ॥
ये च हेलिमरीचिस्था येऽन्तरे दिवि संस्थिताः ।
ये नदीषु महानागा ये सरस्वतिगामिनः ।
ये च वापीतडागेषु तेषु सर्वेषु वै नमः ॥

(ब्राह्मपर्व ३२ । ३३-३४)

इस प्रकार नागोंको विसर्जित कर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये और स्वयं अपने कुटुम्बियोंके साथ भोजन करना चाहिये। प्रथम मीठा भोजन करना चाहिये, अनन्तर अपनी अभिरुचिके अनुसार भोजन करे।

इस प्रकार नियमानुसार जो पञ्चमीको नागोंका पूजन करता है, वह श्रेष्ठ विमानमें बैठकर नागलोकको जाता है और बादमें द्वापरयुगमें बहुत पराक्रमी, रोगरहित तथा प्रतापी राजा होता है। इसलिये घी, खीर तथा गुग्गुलसे इन नागोंकी पूजा करनी चाहिये।

राजाने पूछा—महाराज ! क्रुद्ध सर्पके काटनेसे मरनेवाला व्यक्ति किस गतिको प्राप्त होता है और जिसके माता-पिता, भाई, पुत्र आदि सर्पके काटनेसे मरे हों, उनके उद्धारके लिये कौन-सा व्रत, दान अथवा उपवास करना चाहिये, यह आप बतायें।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! सर्पके काटनेसे जो मरता है, वह अधोगतिको प्राप्त होता है तथा निर्विष सर्प होता है और जिसके माता-पिता आदि सर्पके काटनेसे मरते हैं, वह उनकी सद्गतिके लिये भाद्रपदके शुक्ल पक्षकी पञ्चमी तिथिको उपवास कर नागोंकी पूजा करे[2]। यह तिथि महापुण्या कही गयी है। इस प्रकार बारह महीनेतक चतुर्थी तिथिके दिन एक बार भोजन करना चाहिये और पञ्चमीको व्रतकर नागोंकी पूजा करनी चाहिये। पृथ्वीपर नागोंका चित्र अङ्कित कर अथवा सोना, काष्ठ या मिट्टीका नाग बनाकर पञ्चमीके दिन करवीर, कमल, चमेली आदि पुष्प, गन्ध, धूप और विविध नैवेद्योंसे उनकी पूजा कर घी, खीर और लड्डू उत्तम पाँच ब्राह्मणोंको खिलाये। अनन्त, वासुकि, शंख, पद्म, कंबल, कर्कोटक,

---

१-पञ्चम्यां तत्र भाविता ब्रह्मा प्रोवाच लेलिहान् । तस्मादियं महाबाहो पञ्चमी दयिता सदा।
नागानामानन्दकरी दत्ता वै ब्रह्मणा पुरा ॥ (ब्राह्मपर्व ३२ । ३२)

२-वर्तमानमें नागपञ्चमी प्रायः सभी पञ्चाङ्गों तथा व्रतके निबन्ध-ग्रन्थोंके अनुसार श्रावण शुक्ल पञ्चमीको होती है। यहाँ या तो पाठ अशुद्ध है या कालान्तरमें कभी भाद्रपदमें नागपञ्चमी मनायी जाती रही होगी।

अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक और पिंगल—इन बारह नागोंकी बारह महीनोंमें क्रमशः पूजा करे।

इस प्रकार वर्षपर्यन्त व्रत एवं पूजनकर व्रतकी पारणा करनी चाहिये। बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। विद्वान् ब्राह्मणको सोनेका नाग बनाकर उसे देना चाहिये। यह उद्यापनकी विधि है। राजन्! आपके पिता जनमेजयने भी अपने पिता परीक्षित्‌के उद्धारके लिये यह व्रत किया था और सोनेका बहुत भारी नाग तथा अनेक गौएँ ब्राह्मणोंको दी थीं। ऐसा करनेपर वे पितृ-ऋणसे मुक्त हुए थे और परीक्षित्‌ने भी उत्तम लोकको प्राप्त किया था। आप भी इसी प्रकार सोनेका नाग बनाकर उनकी पूजाकर उन्हें ब्राह्मणको दान करें, इससे आप भी पितृ-ऋणसे मुक्त हो जायँगे। राजन्! जो कोई भी इस नागपञ्चमी-व्रतको करेगा, साँपसे डँसे जानेपर भी वह शुभलोकको प्राप्त होगा और जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इस कथाको सुनेगा, उसके कुलमें कभी भी साँपका भय नहीं होगा। इस पञ्चमी-व्रतके करनेसे उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

(अध्याय ३२)

सर्पोंके लक्षण, स्वरूप और जाति[1]

राजा शतानीकने पूछा—मुने! सर्पोंके कितने रूप हैं, क्या लक्षण है, कितने रंग हैं और उनकी कितनी जातियाँ हैं? इसका आप वर्णन करें।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! इस विषयमें सुमेरु पर्वतपर महर्षि कश्यप और गौतमका जो संवाद हुआ था, उसका मैं वर्णन करता हूँ। महर्षि कश्यप किसी समय अपने आश्रममें बैठे थे। उस समय वहाँ उपस्थित महर्षि गौतमने उन्हें प्रणामकर विनयपूर्वक पूछा—महाराज! सर्पोंके लक्षण, जाति, वर्ण और स्वभाव किस प्रकारके हैं, उनका आप वर्णन करें तथा उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है यह भी बतायें। वे विष किस प्रकार छोड़ते हैं, विषके कितने वेग हैं, विषकी कितनी नाड़ियाँ हैं, साँपोंके दाँत कितने प्रकारके होते हैं, सर्पिणीको गर्भ कब होता है और वह कितने दिनोंमें प्रसव करती है, स्त्री-पुरुष और नपुंसक सर्पका क्या लक्षण है, ये क्यों काटते हैं, इन सब बातोंको आप कृपाकर मुझे बतायें।

कश्यपजी बोले—मुने! आप ध्यान देकर सुनें। मैं सर्पोंके सभी भेदोंका वर्णन करता हूँ। ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें सर्पोंको मद होता है। उस समय वे मैथुन करते हैं। वर्षा ऋतुके चार महीनेतक सर्पिणी गर्भ धारण करती है, कार्तिकमें दो सौ चालीस अंडे देती है और उनमेंसे कुछको स्वयं प्रतिदिन खाने लगती है। प्रकृतिकी कृपासे कुछेक अंडे इधर-उधर दुलककर बच जाते हैं। सोनेकी तरह चमकनेवाले अंडोंमें पुरुष, स्वर्णकेतक वर्णके समान आभावाले और लंबी रेखाओंसे युक्त अंडोंसे स्त्री तथा शिरीषपुष्पके समान रंगवाले अंडोंके बीच नपुंसक सर्प होता है। उन अंडोंको सर्पिणी छः महीनेतक सेती है। अनन्तर अंडोंके फूटनेपर उनसे सर्प निकलते हैं और वे बच्चे अपनी मातासे स्नेह करते हैं। अंडेके बाहर निकलनेके सात दिनमें बच्चोंका कृष्णवर्ण हो जाता है। सर्पकी आयु एक सौ बीस वर्षकी होती है और इनकी मृत्यु आठ प्रकारसे होती है—मोरसे, मनुष्यसे, चकोर पक्षीसे, बिल्लीसे, नकुलसे, शूकरसे, वृश्चिकसे और गौ, भैंस, घोड़े, ऊँट आदि पशुओंके खुरोंसे दब जानेपर। इनसे बचनेपर सर्प एक सौ बीस वर्षतक जीवित रहते हैं। सात दिनके बाद दाँत उगते हैं और इक्कीस दिनमें विष हो जाता है। साँप काटनेके तुरंत बाद अपने जबड़ेसे तीक्ष्ण विषका त्याग करता है और फिर विष इकट्ठा हो जाता है। सर्पिणीके साथ घूमनेवाला सर्प बालसर्प कहा जाता है। पचीस दिनमें वह बच्चा भी विषके द्वारा दूसरे प्राणियोंके प्राण हरनेमें समर्थ हो जाता है। छः महीनेमें कंचुक-(केंचुल-)का त्याग करता है। साँपके दो सौ चालीस पैर होते हैं, परंतु वे पैर गायके रोयेंके समान बहुत सूक्ष्म होते हैं, इसीलिये दिखायी नहीं देते। चलनेके समय निकल आते हैं और अन्य समय भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं। उनके शरीरमें दो सौ बीस अङ्गुलियाँ और दो सौ बीस संधियाँ होती हैं। अपने समयके बिना जो सर्प उत्पन्न होते हैं उनमें कम विष रहता है

१-शिवतत्त्व-रत्नाकर और अभिलषितार्थ-चिन्तामणि तथा आयुर्वेद-ग्रन्थों—सुश्रुत, चरक, वाग्भट्टके चिकित्साख्यानोंमें भी इस विषयका वर्णन मिलता है।

और वे पचहत्तर वर्षसे अधिक जीते भी नहीं हैं। जिस साँपके दाँत लाल, पीले एवं सफेद हों और विषका वेग भी मंद हो, वे अल्पायु और बहुत डरपोक होते हैं।

साँपको एक मुँह, दो जीभ, बत्तीस दाँत और विषसे भरी हुई चार दाढ़ें होती हैं। उन दाढ़ोंके नाम मकरी, कराली, कालरात्री और यमदूती है। इनके क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और यम—ये चार देवता हैं। यमदूती नामकी दाढ़ सबसे छोटी होती है। इससे साँप जिसे काटता है वह तत्क्षण मर जाता है। इसपर मन्त्र, तन्त्र, ओषधि आदिका कुछ भी असर नहीं होता। मकरी दाढ़का चिह्न शस्त्रके समान, करालीका काकके पैरके समान तथा कालरात्रीका हाथके समान चिह्न होता है और यमदूती कूर्मके समान होती है। ये क्रमशः एक, दो, तीन और चार महीनोंमें उत्पन्न होती हैं और क्रमशः वात, पित्त, कफ और संनिपात इनमें होता है। क्रमशः गुड़युक्त भात, कषाययुक्त अन्न, कटु पदार्थ, संनिपातमें दिया जानेवाला पथ्य इनके द्वारा काटे गये व्यक्तिको देना चाहिये। श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण—इन चार दाढ़ोंके क्रमशः रंग हैं। इनके वर्ण क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। सर्पोंके दाढ़ोंमें सदा विष नहीं रहता। दाहिने नेत्रके समीप विष रहनेका स्थान है। क्रोध करनेपर वह विष पहले मस्तकमें जाता है, मस्तकसे धमनी और फिर नाड़ियोंके द्वारा दाढ़में पहुँच जाता है।

आठ कारणोंसे साँप काटता है—दबनेसे, पहलेके वैरसे, भयसे, मदसे, भूखसे, विषका वेग होनेसे, संतानकी रक्षाके लिये तथा कालकी प्रेरणासे। जब सर्प काटते ही पेटकी ओर उलट जाता है और उसकी दाढ़ टेढ़ी हो जाती है, तब उसे दबा हुआ समझना चाहिये। जिसके काटनेसे बहुत बड़ा घाव हो जाय, उसको अत्यन्त द्वेषसे काटा है, ऐसा समझना चाहिये। एक दाढ़का चिह्न हो जाय, किंतु वह भी भलीभाँति दिखायी न पड़े तो भयसे काटा हुआ समझना चाहिये। इसी प्रकार रेखाकी तरह दाढ़ दिखायी दे तो मदसे काटा हुआ, दो दाढ़ दिखायी दे और बड़ा घाव भर जाय तो भूखसे काटा हुआ, दो दाढ़ दिखायी दे और घावमें रक्त हो जाय तो विषके वेगसे काटा हुआ, दो दाढ़ दिखायी दे, किंतु घाव न रहे तो संतानकी रक्षाके लिये काटा हुआ मानना चाहिये। काकके पैरकी तरह तीन दाढ़ गहरे दिखायी दें या चार दाढ़ दिखायी दें तो कालकी प्रेरणासे काटा हुआ जानना चाहिये। यह असाध्य है, इसकी कोई भी चिकित्सा नहीं है[१]।

सर्पके काटनेके दंष्ट, दंष्टानुपीत और दंष्टोद्धत—ये तीन भेद हैं। सर्पके काटनेके बाद ग्रीवा यदि झुके तो दंष्ट तथा काटकर पार करे तो दंष्टानुपीत कहते हैं। इसमें तिहाई विष चढ़ता है और काटकर सब विष उगल दे तथा स्वयं निर्विष होकर उलट जाय—पीठके बल उलटा हो जाय, उसका पेट दिखायी दे तो उसे दंष्टोद्धत कहते हैं।

(अध्याय ३३)

विभिन्न तिथियों एवं नक्षत्रोंमें कालसर्पसे डँसे हुए पुरुषके लक्षण, नागोंकी उत्पत्तिकी कथा

कश्यप मुनि बोले—गौतम! अब मैं कालसर्पसे काटे हुए पुरुषका लक्षण कहता हूँ, जिस पुरुषको कालसर्प काटता है, उसकी जिह्वा भंग हो जाती है, हृदयमें दर्द होता है, नेत्रोंसे दिखायी नहीं देता, दाँत और शरीर पके हुए जामुनके फलके समान काले पड़ जाते हैं, अङ्गोंमें शिथिलता आ जाती है, विष्ठाका परित्याग होने लगता है, कंधे, कमर और ग्रीवा झुक जाते हैं, मुख नीचेकी ओर लटक जाता है, आँखें चढ़ जाती हैं, शरीरमें दाह और कम्प होने लगता है, बार-बार आँखें बंद हो जाती हैं, शस्त्रसे शरीरमें काटनेपर खून नहीं निकलता। बेतसे मारनेपर भी शरीरमें रेखा नहीं पड़ती, काटनेका स्थान कटे हुए जामुनके समान नीले रंगका, फूला हुआ, रक्तसे परिपूर्ण और कौएके पैरके समान हो जाता है, हिचकी आने

१-सभी सर्पोंकी दवाके रूपमें मन्त्र-शास्त्रोंमें विशेषकर गारुडोपनिषद्में गरुड-मन्त्र और सर्पोंकी मणियाँ उनके विषकी अचूक ओषधियाँ हैं। कुछ अन्य ओषधियाँ भी अचूक होती हैं जो सर्पोंको निर्विष एवं स्तम्भित बना देती हैं। डुंडुभ सर्पके काट लेनेपर किसी भी अन्य सर्पका विष नहीं चढ़ता। नर्मदा नदीका नाम लेनेसे भी सर्प भागते हैं—

नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि। नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मां विषसर्पतः॥ (विष्णुपु० ४।३।१३)

लगती है, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है, श्वासकी गति बढ़ जाती है, शरीरका रंग पीला पड़ जाता है। ऐसी अवस्थाको कालसर्पसे काटा हुआ समझना चाहिये। उसकी मृत्यु आसन्न समझनी चाहिये।

घाव फूल जाय, नीले रंगका हो जाय, अधिक पसीना आने लगे, नाकसे बोलने लगे, ओठ लटक जाय, हृदयमें कम्पन होने लगे तो कालसर्पसे काटा हुआ समझना चाहिये। दाँत पीसने लगे, नेत्र उलट जायँ, लंबी श्वास आने लगे, ग्रीवा लटक जाय, नाभि फड़कने लगे तो कालसर्पसे काटा हुआ जानना चाहिये। दर्पण या जलमें अपनी छाया न दीखे, सूर्य तेजहीन दिखायी पड़े, नेत्र लाल हो जायँ, सम्पूर्ण शरीर कष्टके कारण काँपने लगे तो उसे कालसर्पसे काटा हुआ समझना चाहिये, उसकी शीघ्र ही मृत्यु सम्भाव्य है।

अष्टमी, नवमी, कृष्णा चतुर्दशी और नागपञ्चमीके दिन जिसको साँप काटता है, उसके प्रायः प्राण नहीं बचते। आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, भरणी, कृत्तिका, विशाखा, तीनों पूर्वा, मूल, स्वाती और शतभिषा नक्षत्रमें जिसको साँप काटता है वह भी नहीं जीता। इन नक्षत्रोंमें विष पीनेवाला व्यक्ति भी तत्काल मर जाता है। पूर्वोक्त तिथि और नक्षत्र दोनों मिल जायँ तथा खण्डहरमें, श्मशानमें और सूखे वृक्षके नीचे जिसे साँप काटता है वह नहीं जीता।

मनुष्यके शरीरमें एक सौ आठ मर्म-स्थान हैं, उनमें भी शंख अर्थात् ललाटकी हड्डी, आँख, भ्रूमध्य, वस्ति, अण्डकोशका ऊपरी भाग, कक्ष, कंधे, हृदय, वक्षःस्थल, तालु, ठोढ़ी और गुदा—ये बारह मुख्य मर्म-स्थान हैं। इनमें सर्प काटनेसे अथवा शस्त्राघात होनेपर मनुष्य जीवित नहीं रहता।

अब सर्प काटनेके बाद जो वैद्यको बुलाने जाता है उस दूतका लक्षण कहता हूँ। उत्तम जातिका हीन वर्ण दूत और हीन जातिका उत्तम वर्ण दूत भी अच्छा नहीं होता। वह दूत हाथमें दंड लिये हुए हो, दो दूत हों, कृष्ण अथवा रक्तवस्त्र पहने हों, मुख ढके हो, सिरपर एक वस्त्र लपेटे हो, शरीरमें तेल लगाये हो, केश खोले हो, जोरसे बोलता हुआ आये, हाथ-पैर पीटे तो ऐसा दूत अत्यन्त अशुभ है। जिस रोगीका दूत इन लक्षणोंसे युक्त वैद्यके समीप जाता है, वह रोगी अवश्य ही मर जाता है।

कश्यपजी बोले—गौतम! अब मैं भगवान् शिवके द्वारा कथित नागोंकी उत्पत्तिके विषयमें कहता हूँ। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने अनेक नागों एवं ग्रहोंकी सृष्टि की। अनन्त नाग सूर्य, वासुकि चन्द्रमा, तक्षक भौम, कर्कोटक बुध, पद्म बृहस्पति, महापद्म शुक्र, कुलिक और शंखपाल शनैश्चर ग्रहके रूप हैं। रविवारके दिन दसवाँ और चौदहवाँ यामार्ध, सोमवारको आठवाँ और बारहवाँ, भौमवारको छठा और दसवाँ, बुधवारको नवाँ, बृहस्पतिको दूसरा और छठा, शुक्रको चौथा, आठवाँ और दसवाँ, शनिवारको पहिला, सोलहवाँ, दूसरा और बारहवाँ प्रहरार्ध अशुभ है। इन समयोंमें सर्पके काटनेसे व्यक्ति जीवित नहीं रहता।

(अध्याय ३४)

सर्पोंके विषका वेग, फैलाव तथा सात धातुओंमें प्राप्त विषके लक्षण और उनकी चिकित्सा

कश्यपजी बोले—गौतम! यदि यह ज्ञात हो जाय कि सर्पने अपने यमदूती नामक दाढ़से काटा है तो उसकी चिकित्सा न करे। उस व्यक्तिको मरा हुआ ही समझे[1]। दिनमें और रातमें दूसरा और सोलहवाँ प्रहरार्ध साँपोंसे सम्बन्धित नागोदय नामक वेला कही गयी है। उसमें साँप काटे तो कालके द्वारा काटा गया समझना चाहिये और उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। पानीमें बाल डुबोनेपर और उसे उठानेपर बालके अग्रभागसे जितना जल गिरता है, उतनी ही मात्रामें विष सर्प प्रविष्ट कराता है। वह विष सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है। जितनी देरमें हाथ पसारना और समेटना होता है, उतने ही सूक्ष्म समयमें काटनेके बाद विष मस्तकमें पहुँच जाता है। हवासे आगकी लपट फैलनेके समान रक्तमें पहुँचनेपर विषकी बहुत वृद्धि हो जाती है। जैसे जलमें तेलकी बूँद फैल जाती है, वैसे ही त्वचामें पहुँचकर विष दूना हो जाता है। रक्तमें

१-गारुडोपनिषद् एवं तार्क्ष्योपनिषद्में यमदूतीके नामसे भी मन्त्र पढ़े गये हैं, यहाँ मध्यम नियमका वर्णन है। वैसे भगवत्कृपासे कुछ भी असाध्य नहीं है।

चौगुना, पित्तमें आठ गुना, कफमें सोलह गुना, वातमें तीस गुना, मज्जामें साठ गुना और प्राणोंमें पहुँचकर वही विष अनन्त गुना हो जाता है। इस प्रकार सारे शरीरमें विषके व्याप्त हो जाने तथा श्रवणशक्ति बंद हो जानेपर वह जीव श्वास नहीं ले पाता और उसका प्राणान्त हो जाता है। यह शरीर पृथ्वी आदि पञ्चभूतोंसे बना है, मृत्युके बाद भूत-पदार्थ अलग-अलग हो जाते हैं और अपने-अपनेमें लीन हो जाते हैं। अतः विषकी चिकित्सा बहुत शीघ्र करनी चाहिये, विलम्ब होनेसे रोग असाध्य हो जाता है। सर्पादि जीवोंका विष जिस प्रकार प्राण हरण करनेवाला होता है, वैसे ही संखिया आदि विष भी प्राणको हरण करनेवाले होते हैं।

विषके पहले वेगमें रोमाञ्च तथा दूसरे वेगमें पसीना आता है। तीसरे वेगमें शरीर काँपता है तथा चौथेमें श्रवणशक्ति अवरुद्ध होने लगती है, पाँचवेंमें हिचकी आने लगती है और छठेमें ग्रीवा लटक जाती है तथा सातवें वेगमें प्राण निकल जाते हैं। इन सात वेगोंमें शरीरके सातों धातुओंमें विष व्याप्त हो जाता है। इन धातुओंमें पहुँचे हुए विषका अलग-अलग लक्षण तथा उपचार इस प्रकार है—

आँखोंके आगे अँधेरा छा जाय और शरीरमें बार-बार जलन होने लगे तो यह जानना चाहिये कि विष त्वचामें है। इस अवस्थामें आककी जड़, अपामार्ग, तगर और प्रियंगु—इनको जलमें घोंटकर पिलानेसे विषकी बाधा शान्त हो सकती है। त्वचासे रक्तमें विष पहुँचनेपर शरीरमें दाह और मूर्च्छा होने लगती है। शीतल पदार्थ अच्छा लगता है। उशीर (खस), चन्दन, कूट, तगर, नीलोत्पल, सिंदुवारकी जड़, धतूरेकी जड़, हींग और मिरच—इनको पीसकर देना चाहिये। इससे बाधा शान्त न हो तो भटकटैया, इन्द्रायणकी जड़ और सर्पगंधाको घीमें पीसकर देना चाहिये। यदि इससे भी शान्त न हो तो सिंदुवार और हींगका नस्य देना चाहिये और पिलाना चाहिये। इसीका अञ्जन और लेप भी करना चाहिये, इससे रक्तमें प्राप्त विषकी बाधा शान्त हो जाती है।

रक्तसे पित्तमें विष पँहुच जानेपर पुरुष उठ-उठकर गिरने लगता है, शरीर पीला हो जाता है, सभी दिशाएँ पीले वर्णकी दिखायी देती हैं, शरीरमें दाह और प्रबल मूर्च्छा होने लगती है। इस अवस्थामें पीपल, शहद, महुवा, घी, तुम्बेकी जड़, इन्द्रायणकी जड़—इन सबको गोमूत्रमें पीसकर नस्य, लेपन तथा अञ्जन करनेसे विषका वेग हट जाता है।

पित्तसे विषके कफमें प्रवेश कर जानेपर शरीर जकड़ जाता है। श्वास भलीभाँति नहीं आती, कण्ठमें घर्घर शब्द होने लगता है और मुखसे लार गिरने लगती है। यह लक्षण देखकर पीपल, मिरच, सोंठ, श्लेष्मातक (बहुवार वृक्ष), लोध्र एवं मधुसारको समान भाग करके गोमूत्रमें पीसकर लेपन और अञ्जन लगाना चाहिये और उसे पिलाना भी चाहिये। ऐसा करनेसे विषका वेग शान्त हो जाता है।

कफसे वातमें विष प्रवेश करनेपर पेट फूल जाता है, कोई भी पदार्थ दिखायी नहीं पड़ता, दृष्टि-भंग हो जाता है। ऐसा लक्षण होनेपर शोणा (सोनागाछ)की जड़, प्रियाल, गजपीपल, भारंगी, वचा, पीपल, देवदारु, महुआ, मधुसार, सिंदुवार और हींग—इन सबको पीसकर गोली बना ले और रोगीको खिलाये और अञ्जन तथा लेपन करे। यह ओषधि सभी विषोंका हरण करती है।

वातसे मज्जामें विष पहुँच जानेपर दृष्टि नष्ट हो जाती है, सभी अङ्ग बेसुध हो शिथिल हो जाते हैं, ऐसा लक्षण होनेपर घी, शहद, शर्करायुक्त खस और चन्दनको घोंटकर पिलाना चाहिये और नस्य आदि भी देना चाहिये। ऐसा करनेसे विषका वेग हट जाता है।

मज्जासे मर्मस्थानोंमें विष पहुँच जानेपर सभी इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं और वह जमीनपर गिर जाता है। काटनेसे रक्त नहीं निकलता, केशके उखाड़नेपर भी कष्ट नहीं होता, उसे मृत्युके ही अधीन समझना चाहिये। ऐसे लक्षणोंसे युक्त रोगीकी साधारण वैद्य चिकित्सा नहीं कर सकते। जिनके पास सिद्ध मन्त्र और ओषधि होगी वे ही ऐसे रोगियोंके रोगको हटानेमें समर्थ होते हैं। इसके लिये साक्षात् रुद्रने एक ओषधि कही है। मोरका पित्त तथा मार्जारका पित्त और गन्धनाडीकी जड़, कुंकुम, तगर, कूट, कासमर्दकी छाल तथा उत्पल, कुमुद और कमल—इन तीनोंके केसर—सभीका समान भाग लेकर उसे गोमूत्रमें पीसकर नस्य दे, अञ्जन लगाये। ऐसा करनेसे कालसर्पसे डँसा हुआ भी व्यक्ति शीघ्र विषरहित हो जाता है। यह मृतसंजीवनी ओषधि है अर्थात् मरेको भी जिला देती है। (अध्याय ३५)

सर्पोंकी भिन्न-भिन्न जातियाँ, सर्पोंके काटनेके लक्षण, पञ्चमी तिथिका नागोंसे सम्बन्ध और पञ्चमी-तिथिमें नागोंके पूजनका फल एवं विधान

गौतम मुनिने कश्यपजीसे पूछा—महात्मन्! सर्प, सर्पिणी, बालसर्प, सूतिका, नपुंसक और व्यन्तर नामक सर्पोंके काटनेमें क्या भेद होता है, इनके लक्षण आप अलग-अलग बतायें।

कश्यपजी बोले—मैं इन सबको तथा सर्पोंके रूप-लक्षणोंको संक्षेपमें बतलाता हूँ, सुनिये—

यदि सर्प काटे तो दृष्टि ऊपरको हो जाती है, सर्पिणीके काटनेसे दृष्टि नीचे, बालसर्पके काटनेसे दाहिनी ओर और बालसर्पिणीके काटनेसे दृष्टि बायीं ओर झुक जाती है। गर्भिणीके काटनेसे पसीना आता है, प्रसूती काटे तो रोमाञ्च और कम्पन होता है तथा नपुंसकके काटनेसे शरीर टूटने लगता है। सर्प दिनमें, सर्पिणी रात्रिमें और नपुंसक संध्याके समय अधिक विषयुक्त होता है। यदि अँधेरेमें, जलमें, वनमें सर्प काटे या सोते हुए या प्रमत्तको काटे, सर्प न दिखायी पड़े अथवा दिखायी पड़े, उसकी जाति न पहचानी जाय और पूर्वोक्त लक्षणोंकी जानकारी न हो तो वैद्य उसकी कैसे चिकित्सा कर सकता है!

सर्प चार प्रकारके होते हैं—दर्वीकर, मण्डली, राजिल और व्यन्तर। इनमें दर्वीकरका विष वात-स्वभाव, मण्डलीका पित्त-स्वभाव, राजिलका कफ-स्वभाव और व्यन्तर सर्पका संनिपात-स्वभावका होता है अर्थात् उसमें वात, पित्त और कफ—इन तीनोंकी अधिकता होती है। इन सर्पोंके रक्तकी परीक्षा इस प्रकार करनी चाहिये। दर्वीकर सर्पमें रक्त कृष्णवर्ण और स्वल्प होता है, मण्डलीमें बहुत गाढ़ा और लाल रंगका रक्त निकलता है, राजिल तथा व्यन्तरमें स्निग्ध और थोड़ा-सा रुधिर निकलता है। इन चार जातियोंके अतिरिक्त सर्पोंकी अन्य कोई पाँचवीं जाति नहीं मिलती। सर्प ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चार वर्णोंके होते हैं। ब्राह्मण सर्प काटे तो शरीरमें दाह होता है, प्रबल मूर्च्छा आ जाती है, मुख काला पड़ जाता है, मज्जा स्तम्भित हो जाती है और चेतना जाती रहती है। ऐसे लक्षणोंके दिखायी देनेपर अश्वगन्धा, अपामार्ग, सिंदुवारको घीमें पीसकर नस्य दे और पिलाये तो विषकी निवृत्ति हो जाती है। क्षत्रिय वर्णके सर्पके काटनेपर शरीरमें मूर्च्छा छा जाती है, दृष्टि ऊपरको हो जाती है, अत्यधिक पीड़ा होने लगती है और व्यक्ति अपनेको पहचान नहीं पाता। ऐसे लक्षणोंके होनेपर आककी जड़, अपामार्ग, इन्द्रायण और प्रियंगुको घीमें पीसकर मिला ले तथा इसीका नस्य देनेसे एवं पिलानेसे बाधा मिट जाती है। वैश्य सर्प डँसे तो कफ बहुत आता है, मुखसे लार बहती है, मूर्च्छा आ जाती है और वह चेतनाशून्य हो जाता है। ऐसा होनेपर अश्वगन्धा, गृहधूम, गुग्गुल, शिरीष, अर्क, पलाश और श्वेत गिरिकर्णिका (अपराजिता)—इन सबको गोमूत्रमें पीसकर नस्य देने तथा पिलानेसे वैश्य सर्पकी बाधा तत्क्षण दूर हो जाती है। जिस व्यक्तिको शूद्र सर्प काटता है, उसे शीत लगकर ज्वर होता है, सभी अङ्ग चुलचुलाने लगते हैं, इसकी निवृत्तिके लिये कमल, कमलका केसर, लोध, क्षौद्र, शहद, मधुसार और श्वेतगिरिकर्णी—इन सबको समान भागमें लेकर शीतल जलके साथ पीसकर नस्य आदि दे और पान कराये। इससे विषका वेग शान्त हो जाता है।

ब्राह्मण सर्प मध्याह्नके पहले, क्षत्रिय सर्प मध्याह्नमें, वैश्य सर्प मध्याह्नके बाद और शूद्र सर्प संध्याके समय विचरण करता है। ब्राह्मण सर्प वायु एवं पुष्प, क्षत्रिय मूषक, वैश्य मेढक और शूद्र सर्प सभी पदार्थोंका भक्षण करता है। ब्राह्मण सर्प आगे, क्षत्रिय दाहिने, वैश्य बायें और शूद्र सर्प पीछेसे काटता है। मैथुनकी इच्छासे पीड़ित सर्प विषके वेगके बढ़नेसे व्याकुल होकर बिना समय भी काटता है। ब्राह्मण सर्पमें पुष्पके समान गन्ध होती है, क्षत्रियमें चन्दनके समान, वैश्यमें घृतके समान और शूद्र सर्पमें मत्स्यके समान गन्ध होती है। ब्राह्मण सर्प नदी, कूप, तालाब, झरने, बाग-बगीचे और पवित्र स्थानोंमें रहते हैं। क्षत्रिय सर्प ग्राम, नगर आदिके द्वार, तालाब, चतुष्पथ तथा तोरण आदि स्थानोंमें; वैश्य सर्प श्मशान, ऊसर स्थान, भस्म, घास आदिके ढेर तथा वृक्षोंमें; इसी प्रकार शूद्र सर्प अपवित्र स्थान, निर्जन वन, शून्य घर, श्मशान आदि बुरे स्थानोंमें निवास करते हैं। ब्राह्मण सर्प श्वेत एवं कपिल वर्ण, अग्निके समान तेजस्वी, मनस्वी और सात्त्विक होते हैं। क्षत्रिय सर्प मूँगेके समान रक्तवर्ण अथवा सुवर्णके तुल्य पीत वर्ण

तथा सूर्यके समान तेजस्वी, वैश्य सर्प अलसी अथवा बाण-पुष्पके समान वर्णवाले एवं अनेक रेखाओंसे युक्त तथा शूद्र सर्प अञ्जन अथवा काकके समान कृष्णवर्ण और धूम्रवर्णके होते हैं। एक अङ्गुलके अन्तरमें दो दंश हों तो बालसर्पका काटा हुआ जानना चाहिये। दो अङ्गुल अन्तर हो तो तरुण सर्पका, ढाई अङ्गुल अन्तर हो तो वृद्ध सर्पका दंश समझना चाहिये।

अनन्तनाग सामने, वासुकि बायीं ओर, तक्षक दाहिनी ओर देखता है और कर्कोटककी दृष्टि पीछेकी ओर होती है। अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंखपाल और कुलिक—ये आठ नाग क्रमशः पूर्वादि आठ दिशाओंके स्वामी हैं। पद्म, उत्पल, स्वस्तिक, त्रिशूल, महापद्म, शूल, क्षत्र और अर्धचन्द्र—ये क्रमशः आठ नागोंके आयुध हैं। अनन्त और कुलिक—ये दोनों ब्राह्मण नाग-जातियाँ हैं, शंख और वासुकि क्षत्रिय, महापद्म और तक्षक वैश्य तथा पद्म और कर्कोटक शूद्र नाग हैं। अनन्त और कुलिक नाग शुक्लवर्ण तथा ब्रह्माजीसे उत्पन्न हैं, वासुकि और शंखपाल रक्तवर्ण तथा अग्निसे उत्पन्न हैं, तक्षक और महापद्म स्वल्प पीतवर्ण तथा इन्द्रसे उत्पन्न हैं, पद्म और कर्कोटक कृष्णवर्ण तथा यमराजसे उत्पन्न हैं।

सुमन्तु मुनिने पुनः कहा—राजन्! सर्पोंके ये लक्षण और चिकित्सा महर्षि कश्यपने महामुनि गौतमको उपदेशके प्रसंगमें कहे थे और यह भी बताया कि सदा भक्तिपूर्वक नागोंकी पूजा करे और पञ्चमीको विशेषरूपसे दूध, खीर आदिसे उनका पूजन करे। श्रावण शुक्ला पञ्चमीको द्वारके दोनों ओर गोबरके द्वारा नाग बनाये। दही, दूध, दूर्वा, पुष्प, कुश, गन्ध, अक्षत और अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे नागोंका पूजनकर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। ऐसा करनेपर उस पुरुषके कुलमें कभी सर्पोंका भय नहीं होता।

भाद्रपदकी पञ्चमीको अनेक रंगोंके नागोंको चित्रितकर घी, खीर, दूध, पुष्प आदिसे पूजनकर गुग्गुलकी धूप दे। ऐसा करनेसे तक्षक आदि नाग प्रसन्न होते हैं और उस पुरुषकी सात पीढ़ीतकको साँपका भय नहीं रहता।

आश्विन मासकी पञ्चमीको कुशका नाग बनाकर गन्ध, पुष्प आदिसे उनका पूजन करे। दूध, घी, जलसे स्नान कराये। दूधमें पके हुए गेहूँ और विविध नैवेद्योंका भोग लगाये। इस पञ्चमीको नागकी पूजा करनेसे वासुकि आदि नाग संतुष्ट होते हैं और वह पुरुष नागलोकमें जाकर बहुत कालतक सुखका भोग करता है। राजन्! इस पञ्चमी तिथिके कल्पका मैंने वर्णन किया। जहाँ '**ॐ कुरुकुल्ले फट् स्वाहा**'—यह मन्त्र पढ़ा जाता है, वहाँ कोई सर्प नहीं आ सकता[1]।

(अध्याय ३६—३८)

षष्ठी-कल्प-निरूपणमें स्कन्द-षष्ठी-व्रतकी महिमा

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! अब मैं षष्ठी तिथि-कल्पका वर्णन करता हूँ। यह तिथि सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली है। कार्तिक मासकी षष्ठी तिथिको फलाहारकर यह तिथिव्रत किया जाता है[2]। यदि राज्यच्युत राजा इस व्रतका अनुष्ठान करे तो वह अपना राज्य प्राप्त कर लेता है। इसलिये विजयकी अभिलाषा रखनेवाले व्यक्तिको इस व्रतका प्रयत्न-पूर्वक पालन करना चाहिये।

यह तिथि स्वामिकार्तिकेयको अत्यन्त प्रिय है। इसी दिन कृत्तिकाओंके पुत्र कार्तिकेयका आविर्भाव हुआ था। वे भगवान् शङ्कर, अग्नि तथा गङ्गाके भी पुत्र कहे गये हैं। इसी षष्ठी तिथिको स्वामिकार्तिकेय देवसेनाके सेनापति हुए। इस तिथिको व्रतकर घृत, दही, जल और पुष्पोंसे स्वामि-कार्तिकेयको दक्षिणकी ओर मुखकर अर्घ्य देना चाहिये।

अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

सप्तर्षिदारज स्कन्द स्वाहापतिसमुद्भव।
रुद्रार्यमाग्निज विभो गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते।

१-कश्मीर नागोंका देश माना जाता है। 'नीलमतपुराण'में इसका विस्तृत वर्णन है।

२-पञ्चाङ्गोंके अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठीको स्कन्द-षष्ठी होती है तथा कार्तिक शुक्ला षष्ठीको रवि-षष्ठी मानी जाती है, जिस दिन सम्पूर्ण भारतमें सूर्योपासना होती है। परंतु यहाँ कार्तिक शुक्ला षष्ठीके रूपमें वर्णन आया है, यह गणना अमान्तमास (अमावास्याको पूर्ण होनेवाले मास)-के अनुसार प्रतीत होती है।

प्रीयतां देवसेनानीः सम्पादयतु हृद्गतम् ॥

(ब्राह्मपर्व ३९ । ६)

ब्राह्मणको अन्न देकर रात्रिमें फलका भोजन और भूमिपर शयन करना चाहिये। व्रतके दिन पवित्र रहे और ब्रह्मचर्यका पालन करे। शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष—दोनों षष्ठियोंको यह व्रत करना चाहिये। इस व्रतके करनेसे भगवान् स्कन्दकी कृपासे सिद्धि, धृति, तुष्टि, राज्य, आयु, आरोग्य और मुक्ति मिलती है। जो पुरुष उपवास न कर सके, वह रात्रि-व्रत ही करे, तब भी दोनों लोकोंमें उत्तम फल प्राप्त होता है। इस व्रतको करनेवाले पुरुषको देवता भी नमस्कार करते हैं और वह इस लोकमें आकर चक्रवर्ती राजा होता है। राजन्! जो पुरुष षष्ठी-व्रतके माहात्म्यका भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह भी स्वामिकार्तिकेयकी कृपासे विविध उत्तम भोग, सिद्धि, तुष्टि, धृति और लक्ष्मीको प्राप्त करता है। परलोकमें वह उत्तम गतिका भी अधिकारी होता है।

(अध्याय ३९)

आचरणकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन

राजा शतानीकने कहा—मुने! अब आप ब्राह्मण आदिके आचरणकी श्रेष्ठताके विषयमें बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! मैं अत्यन्त संक्षेपमें इस विषयको बताता हूँ, उसे आप सुनें। न्याय-मार्गका अनुसरण करनेवाले शास्त्रकारोंने कहा है कि 'वेद आचारहीनको पवित्र नहीं कर सकते, भले ही वह सभी अङ्गोंके साथ वेदोंका अध्ययन कर ले। वेद पढ़ना तो ब्राह्मणका शिल्पमात्र है, किंतु ब्राह्मणका मुख्य लक्षण तो सदाचरण ही बतलाया गया है*।' चारों वेदोंका अध्ययन करनेपर भी यदि वह आचरणसे हीन है तो उसका अध्ययन वैसे ही निष्फल होता है, जिस प्रकार नपुंसकके लिये स्त्रीरत्न निष्फल होता है।

जिनके संस्कार उत्तम होते हैं, वे भी दुराचरण कर पतित हो जाते हैं और नरकमें पड़ते हैं तथा संस्कारहीन भी उत्तम आचरणसे अच्छे कहलाते हैं एवं स्वर्ग प्राप्त करते हैं। मनमें दुष्टता भरी रहे, बाहरसे सब संस्कार हुए हों, ऐसे वैदिक संस्कारोंसे संस्कृत कतिपय पुरुष आचरणमें शूद्रोंसे भी अधिक मलिन हो जाते हैं। क्रूर कर्म करनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, गुरुदारगामी, चोर, गौओंको मारनेवाला, मद्यपायी, परस्त्रीगामी, मिथ्यावादी, नास्तिक, वेदनिन्दक, निषिद्ध कर्मोंका आचरण करनेवाला यदि ब्राह्मण है और सभी तरहके संस्कारसे सम्पन्न भी है, वेद-वेदाङ्ग-पारङ्गत भी है, फिर भी उसकी सद्गति नहीं होती। दयाहीन, हिंसक, अतिशय दाम्भिक, कपटी, लोभी, पिशुन (चुगलखोर), अतिशय दुष्ट पुरुष वेद पढ़कर भी संसारको ठगते हैं और वेदको बेचकर अपना जीवन-यापन करते हैं, अनेक प्रकारके छल-छिद्रसे प्रजाकी हिंसा कर केवल अपना सांसारिक सुख सिद्ध करते हैं। ऐसे ब्राह्मण शूद्रसे भी अधम हैं।

जो ग्राह्य-अग्राह्यके तत्त्वको जाने, अन्याय और कुमार्गका परित्याग करे, जितेन्द्रिय, सत्यवादी और सदाचारी हो, नियमोंके पालन, आचार तथा सदाचरणमें स्थिर रहे, सबके हितमें तत्पर रहे, वेद-वेदाङ्ग और शास्त्रका मर्मज्ञ हो, समाधिमें स्थित रहे, क्रोध, मत्सर, मद तथा शोक आदिसे रहित हो, वेदके पठन-पाठनमें आसक्त रहे, किसीका अत्यधिक सङ्ग न करे, एकान्त और पवित्र स्थानमें रहे, सुख-दुःखमें समान हो, धर्मनिष्ठ हो, पापाचरणसे डरे, आसक्ति-रहित, निरहंकार, दानी, शूर, ब्रह्मवेत्ता, शान्त-स्वभाव और तपस्वी हो तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंमें परिनिष्ठित हो—इन गुणोंसे युक्त पुरुष ब्राह्मण होते हैं। ब्रह्मके भक्त होनेसे ब्राह्मण, क्षतसे रक्षा करनेके कारण क्षत्रिय, वार्ता (कृषि-विद्या आदि) का सेवन करनेसे वैश्य और शब्द-श्रवणमात्रसे जो द्रुतगति हो जायँ, वे शूद्र कहलाते हैं। क्षमा, दम, शम, दान, सत्य, शौच, धृति, दया, मृदुता, ऋजुता, संतोष, तप, निरहंकारता, अक्रोध, अनसूया, अतृष्णता, अस्तेय, अमात्सर्य, धर्मज्ञान, ब्रह्मचर्य, ध्यान, आस्तिक्य, वैराग्य, पाप-भीरुता, अद्वेष, गुरुशुश्रूषा आदि गुण जिनमें रहते हैं, उनका ब्राह्मणत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहता है।

शम, तप, दम, शौच, क्षमा, ऋजुता, ज्ञान-विज्ञान और आस्तिक्य—ये ब्राह्मणोंके सहज कर्म हैं। ज्ञानरूपी शिखा,

* आचारहीनान् न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः। शिल्पं हि वेदाध्ययनं द्विजानां वृत्तं स्मृतं ब्राह्मणलक्षणं तु ॥ (ब्राह्मपर्व ४१ । ८)

तपोरूपी सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत जिनके रहते हैं, उनको मनुने ब्राह्मण कहा है। पाप-कर्मोंसे निवृत्त होकर उत्तम आचरण करनेवाला भी ब्राह्मणके समान ही है। शीलसे युक्त शूद्र भी ब्राह्मणसे प्रशस्त हो सकता है और आचाररहित ब्राह्मण भी शूद्रसे अधम हो जाता है।

जिस तरह दैव और पौरुषके मिलनेपर कार्य सिद्ध होते हैं, वैसे ही उत्तम जाति और सत्कर्मका योग होनेपर आचरणकी पूर्णता सिद्ध होती है। (अध्याय ४०—४५)

भगवान् कार्तिकेय तथा उनके षष्ठी-व्रतकी महिमा

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! भाद्रपद मासकी षष्ठी तिथि बहुत उत्तम तिथि है, यह सभी पापोंका हरण करनेवाली, पुण्य प्रदान करनेवाली तथा सभी कल्याण-मङ्गलोंको देनेवाली है। यह तिथि कार्तिकेयको अतिशय प्रिय है। इस दिन किया हुआ स्नान, दान आदि सत्कर्म अक्षय होता है। जो दक्षिण दिशा (कुमारिका-क्षेत्र) में निवास करनेवाले कुमार कार्तिकेयका इस तिथिको दर्शन करते हैं, वे ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाते हैं, इसलिये इस तिथिमें भगवान् कार्तिकेयका अवश्य दर्शन करना चाहिये। भक्तिपूर्वक कार्तिकेयका पूजन करनेसे मानव मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है और अन्तमें इन्द्रलोकमें निवास करता है। ईंट, पत्थर, काष्ठ आदिके द्वारा श्रद्धापूर्वक कार्तिकेयका मन्दिर बनानेवाला पुरुष स्वर्णके विमानमें बैठकर कार्तिकेयके लोकमें जाता है। इनके मन्दिरपर ध्वजा चढ़ाने तथा झाड़ू-पोंछा (मार्जन) आदि करनेसे रुद्रलोक प्राप्त होता है। चन्दन, अगर, कपूर आदिसे कार्तिकेयकी पूजा करनेपर हाथी, घोड़ा आदि वाहनोंका स्वामी होता है और सेनापतित्व भी प्राप्त होता है। राजाओंको कार्तिकेयकी अवश्य ही आराधना करनी चाहिये। जो राजा कृत्तिकाओंके पुत्र भगवान् कार्तिकेयकी आराधना कर युद्धके लिये प्रस्थान करता है वह देवराज इन्द्रकी तरह अपने शत्रुओंको परास्त कर देता है। कार्तिकेयकी चंपक आदि विविध पुष्पोंसे पूजा करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और शिवलोकको प्राप्त करता है। इस भाद्रपद मासकी षष्ठीको तेलका सेवन नहीं करना चाहिये। षष्ठी तिथिको व्रत एवं पूजनकर रात्रिमें भोजन करनेवाला व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो कार्तिकेयके लोकमें निवास करता है। जो व्यक्ति कुमारिकाक्षेत्रमें स्थित भगवान् कार्तिकेयका दर्शन एवं भक्तिपूर्वक उनका पूजन करता है, वह अखण्ड शान्ति प्राप्त करता है।

(अध्याय ४६)

सप्तमी-कल्पमें भगवान् सूर्यके परिवारका निरूपण एवं शाक-सप्तमी-व्रत

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! अब मैं सप्तमी-कल्पका वर्णन करता हूँ। सप्तमी तिथिको भगवान् सूर्यका आविर्भाव हुआ था। वे अण्डके साथ उत्पन्न हुए और अण्डमें रहते हुए ही उन्होंने वृद्धि प्राप्त की। बहुत दिनोंतक अण्डमें रहनेके कारण ये 'मार्तण्ड'के नामसे प्रसिद्ध हुए। जब ये अण्डमें ही स्थित थे तो दक्ष प्रजापतिने अपनी रूपवती कन्या रूपाको भार्याके रूपमें इन्हें अर्पित किया[1]। दक्षकी आज्ञासे विश्वकर्माने इनके शरीरका संस्कार किया, जिससे ये अतिशय तेजस्वी हो गये। अण्डमें स्थित रहते ही इन्हें यमुना एवं यम नामकी दो संतानें प्राप्त हुईं। भगवान् सूर्यका तेज सहन न कर सकनेके कारण उनकी स्त्री व्याकुल हो सोचने लगी—इनके अतिशय तेजके कारण मेरी दृष्टि इनकी ओर ठहर नहीं पाती, जिससे इनके अङ्गोंको मैं देख नहीं पा रही हूँ। मेरा सुवर्ण-वर्ण, कमनीय शरीर इनके तेजसे दग्ध हो श्यामवर्णका हो गया है। इनके साथ मेरा निर्वाह होना बहुत कठिन है। यह सोचकर उसने अपनी छायासे एक स्त्री उत्पन्न कर उससे कहा—'तुम भगवान् सूर्यके समीप मेरी जगह रहना, परंतु यह भेद खुलने न पाये।' ऐसा समझाकर उसने उस छाया नामकी स्त्रीको वहाँ रख दिया तथा अपनी संतान यम और यमुनाको वहीं छोड़कर वह तपस्या करनेके लिये उत्तरकुरु देशमें चली गयी और वहाँ घोड़ीका रूप धारणकर तपस्यामें रत रहते हुए इधर-उधर अनेक वर्षोंतक घूमती रही।

[1] १-सूर्यकी पत्नी 'रूपा' का दूसरा नाम 'संज्ञा' है। अन्य पुराणोंमें संज्ञाको विश्वकर्माकी पुत्री कहा गया है।

भगवान् सूर्यने छायाको ही अपनी पत्नी समझा। कुछ समयके बाद छायासे शनैश्चर और तपती नामकी दो संतानें उत्पन्न हुईं। छाया अपनी संतानपर यमुना तथा यमसे अधिक स्नेह करती थी। एक दिन यमुना और तपतीमें विवाद हो गया। पारस्परिक शापसे दोनों नदी हो गयीं। एक बार छायाने यमुनाके भाई यमको ताडित किया। इसपर यमने क्रुद्ध होकर छायाको मारनेके लिये पैर उठाया। छायाने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया—'मूढ़! तुमने मेरे ऊपर चरण उठाया है, इसलिये तुम्हारा प्राणियोंका प्राणहिंसक रूपी यह बीभत्स कर्म तबतक रहेगा, जबतक सूर्य और चन्द्र रहेंगे। यदि तुम मेरे शापसे कलुषित अपने पैरको पृथ्वीपर रखोगे तो कृमिगण उसे खा जायँगे।'

यम और छायाका इस प्रकार विवाद हो ही रहा था कि उसी समय भगवान् सूर्य वहाँ आ पहुँचे। यमने अपने पिता भगवान् सूर्यसे कहा—'पिताजी! यह हमारी माता कदापि नहीं हो सकती, यह कोई और स्त्री है। यह हमें नित्य क्रूर भावसे देखती है और हम सभी भाई-बहनोंमें समान दृष्टि तथा समान व्यवहार नहीं रखती। यह सुनकर भगवान् सूर्यने क्रुद्ध होकर छायासे कहा—'तुम्हें यह उचित नहीं है कि अपनी संतानोंमें ही एकसे प्रेम करो और दूसरेसे द्वेष। जितनी संतानें हों सबको समान ही समझना चाहिये। तुम विषम-दृष्टिसे क्यों देखती हो?' यह सुनकर छाया तो कुछ न बोली, पर यमने पुनः कहा—'पिताजी! यह दुष्टा मेरी माता नहीं है, बल्कि मेरी माताकी छाया है। इसीसे इसने मुझे शाप दिया है।' यह कहकर यमने पूरा वृत्तान्त उन्हें बतला दिया। इसपर भगवान् सूर्यने कहा—'बेटा! तुम चिन्ता न करो। कृमिगण मांस और रुधिर लेकर भूलोकको चले जायँगे, इससे तुम्हारा पाँव गलेगा नहीं, अच्छा हो जायगा और ब्रह्माजीकी आज्ञासे तुम लोकपाल-पदको भी प्राप्त करोगे। तुम्हारी बहन यमुनाका जल गङ्गाजलके समान पवित्र हो जायगा और तपतीका जल नर्मदाजलके तुल्य पवित्र माना जायगा। आजसे यह छाया सबके देहोंमें अवस्थित होगी।'

ऐसी व्यवस्था और मर्यादा स्थिर कर भगवान् सूर्य दक्ष प्रजापतिके पास गये और उन्हें अपने आगमनका कारण बताते हुए सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। इसपर दक्ष प्रजापतिने कहा—'आपके अति प्रचण्ड तेजसे व्याकुल होकर आपकी भार्या उत्तरकुरु देशमें चली गयी है। अब आप विश्वकर्मासे अपना रूप प्रशस्त करवा लें।' यह कहकर उन्होंने विश्वकर्माको बुलाकर उनसे कहा—'विश्वकर्मन्! आप इनका सुन्दर रूप प्रकाशित कर दें।' तब सूर्यकी सम्मति पाकर विश्वकर्माने अपने तक्षण-कर्मसे सूर्यको खरादना प्रारम्भ किया। अङ्गोंके तराशनेके कारण सूर्यको अतिशय पीड़ा हो रही थी और बार-बार मूर्च्छा आ जाती थी। इसीलिये विश्वकर्माने सब अङ्ग तो ठीक कर लिये, पर जब पैरोंकी अङ्गुलियोंको छोड़ दिया तब सूर्य भगवान्ने कहा—'विश्वकर्मन्! आपने तो अपना कार्य पूर्ण कर लिया, परंतु हम पीड़ासे व्याकुल हो रहे हैं। इसका कोई उपाय बताइये।' विश्वकर्माने कहा—'भगवन्! आप रक्तचन्दन और करवीरके पुष्पोंका सम्पूर्ण शरीरमें लेप करें, इससे तत्काल यह वेदना शान्त हो जायगी।' भगवान् सूर्यने विश्वकर्माके कथनानुसार अपने सारे शरीरमें इनका लेप किया, जिससे उनकी सारी वेदना मिट गयी। उसी दिनसे रक्तचन्दन और करवीरके पुष्प भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय हो गये और उनकी पूजामें प्रयुक्त होने लगे। सूर्यभगवान्के शरीरके खरादनेसे जो तेज निकला, उस तेजसे दैत्योंके विनाश करनेवाले वज्रका निर्माण हुआ।

भगवान् सूर्यने भी अपना उत्तम रूप प्राप्तकर प्रसन्न-मनसे अपनी भार्याके दर्शनोंकी उत्कण्ठासे तत्काल उत्तर-कुरुकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने देखा कि वह घोड़ीका रूप धारणकर विचरण कर रही है। भगवान् सूर्य भी अश्वका रूप धारण कर उससे मिले।

पर-पुरुषकी आशंकासे उसने अपने दोनों नासापुटोंसे सूर्यके तेजको एक साथ बाहर फेंक दिया, जिससे अश्विनी-कुमारोंकी उत्पत्ति हुई और यही देवताओंके वैद्य हुए। तेजके अन्तिम अंशसे रेवन्तकी उत्पत्ति हुई। तपती, शनि और सावर्णि—ये तीन संतानें छायासे और यमुना तथा यम संज्ञासे उत्पन्न हुए। सूर्यको अपनी भार्या उत्तरकुरुमें सप्तमी तिथिके दिन प्राप्त हुई, उन्हें दिव्य रूप सप्तमी तिथिको ही मिला तथा संतानें भी इसी तिथिको प्राप्त हुईं, अतः सप्तमी तिथि भगवान् सूर्यको अतिशय प्रिय है।

जो व्यक्ति पञ्चमी तिथिको एक समय भोजनकर षष्ठीको

उपवास करता है तथा सप्तमीको दिनमें उपवासकर भक्ष्य-भोज्योंके साथ विविध शाक-पदार्थोंको भगवान् सूर्यके लिये अर्पण कर ब्राह्मणोंको देता है तथा रात्रिमें मौन होकर भोजन करता है, वह अनेक प्रकारके सुखोंका भोग करता है तथा सर्वत्र विजय प्राप्त करता एवं अन्तमें उत्तम विमानपर चढ़कर सूर्यलोकमें कई मन्वन्तरोंतक निवास कर पृथ्वीपर पुत्र-पौत्रोंसे समन्वित चक्रवर्ती राजा होता है तथा दीर्घकालपर्यन्त निष्कण्टक राज्य करता है।

राजा कुरुने इस सप्तमी-व्रतका बहुत कालतक अनुष्ठान किया और केवल शाकका ही भोजन किया। इसीसे उन्होंने कुरुक्षेत्र नामक पुण्यक्षेत्र प्राप्त किया और इसका नाम रखा धर्मक्षेत्र। सप्तमी, नवमी, षष्ठी, तृतीया और पञ्चमी—ये तिथियाँ बहुत उत्तम हैं और स्त्री-पुरुषोंको मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाली हैं। माघकी सप्तमी, आश्विनकी नवमी, भाद्रपदकी षष्ठी, वैशाखकी तृतीया और भाद्रपद मासकी पञ्चमी—ये तिथियाँ इन महीनोंमें विशेष प्रशस्त मानी गयी हैं। कार्तिक शुक्ल सप्तमीसे इस व्रतको ग्रहण करना चाहिये। उत्तम शाकको सिद्ध कर ब्राह्मणोंको देना चाहिये और रात्रिमें स्वयं भी शाक ही ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार चार मासतक व्रत कर व्रतका पहला पारण करना चाहिये। उस दिन पञ्चगव्यसे सूर्य भगवान्‌को स्नान कराना चाहिये और स्वयं भी पञ्चगव्यका प्राशन करना चाहिये, अनन्तर केशरका चन्दन, अगस्त्यके पुष्प, अपराजित नामक धूप और पायसका नैवेद्य सूर्यनारायणको समर्पित करना चाहिये। ब्राह्मणोंको भी पायसका भोजन कराना चाहिये। दूसरे पारणमें कुशाके जलसे भगवान् सूर्यनारायणको स्नान कराकर स्वयं गोमयका प्राशन करना चाहिये और श्वेत चन्दन, सुगन्धित पुष्प, अगरुका धूप तथा गुडके अपूप नैवेद्यमें अर्पण करना चाहिये और वर्षके समाप्त होनेपर तीसरा पारण करना चाहिये। गौर सर्षपका उबटन लगाकर भगवान् सूर्यको स्नान कराना चाहिये। इससे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर रक्तचन्दन, करवीरके पुष्प, गुग्गुलका धूप और अनेक भक्ष्य-भोज्यसहित दही-भात नैवेद्यमें अर्पण करना चाहिये तथा यही ब्राह्मणोंको भी भोजन कराना चाहिये। भगवान् सूर्यनारायणके सम्मुख ब्राह्मणसे पुराण-श्रवण करना चाहिये अथवा स्वयं बाँचना चाहिये। अन्तमें ब्राह्मणको भोजन कराकर पौराणिकको वस्त्र-आभूषण, दक्षिणा आदि देकर प्रसन्न करना चाहिये। पौराणिकके संतुष्ट होनेपर भगवान् सूर्यनारायण प्रसन्न हो जाते हैं। रक्तचन्दन, करवीरके पुष्प, गुग्गुलका धूप, मोदक, पायसका नैवेद्य, घृत, ताम्रपात्र, पुराण-ग्रन्थ और पौराणिक—ये सब भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय हैं। राजन्! यह शाक-सप्तमी-व्रत भगवान् सूर्यको अति प्रिय है। इस व्रतका करनेवाला पुरुष भाग्यशाली होता है।

(अध्याय ४७)

श्रीकृष्ण-साम्ब-संवाद तथा भगवान् सूर्यनारायणकी पूजन-विधि

राजा शतानीकने कहा—ब्राह्मणश्रेष्ठ! भगवान् सूर्यनारायणका माहात्म्य सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, इसलिये सप्तमी-कल्पका आप पुनः कुछ और विस्तारसे वर्णन करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! इस विषयमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनके पुत्र साम्बका जो परस्पर संवाद हुआ था, उसीका मैं वर्णन करता हूँ, उसे आप सुनें।

एक समय साम्बने अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—'पिताजी! मनुष्य संसारमें जन्म-ग्रहणकर कौन-सा कर्म करे, जिससे उसे दुःख न हो और मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त कर वह स्वर्ग प्राप्त करे तथा मुक्ति भी प्राप्त कर सके। इन सबका आप वर्णन करें। मेरा मन इस संसारमें अनेक प्रकारकी आधि-व्याधियोंको देखकर अत्यन्त उदास हो रहा है, मुझे क्षणमात्र भी जीनेकी इच्छा नहीं होती, अतः आप कृपाकर ऐसा उपाय बतायें कि जितने दिन भी इस संसारमें रहा जाय, ये आधि-व्याधियाँ पीडित न कर सकें और फिर इस संसारमें जन्म न हो अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो जाय।'

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—वत्स! देवताओंके प्रसादसे, उनके अनुग्रहसे तथा उनकी आराधना करनेसे यह सब कुछ प्राप्त हो सकता है। देवताओंकी आराधना ही परम उपाय है। देवता अनुमान और आगम-प्रमाणोंसे सिद्ध होते हैं। विशिष्ट पुरुष विशिष्ट देवताकी आराधना करे तो वह

विशिष्ट फल प्राप्त कर सकता है।

साम्बने कहा—महाराज! प्रथम तो देवताओंके अस्तित्वमें ही संदेह है, कुछ लोग कहते हैं देवता हैं और कुछ कहते हैं कि देवता नहीं हैं, फिर विशिष्ट देवता किन्हें समझा जाय?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—वत्स! आगमसे, अनुमानसे और प्रत्यक्षसे देवताओंका होना सिद्ध होता है।

साम्बने कहा—यदि देवता प्रत्यक्ष सिद्ध हो सकते हैं तो फिर उनके साधनके लिये अनुमान और आगम-प्रमाणकी कुछ भी अपेक्षा नहीं है।

श्रीकृष्ण बोले—वत्स! सभी देवता प्रत्यक्ष नहीं होते। शास्त्र और अनुमानसे ही हजारों देवताओंका होना सिद्ध होता है।

साम्बने कहा—पिताजी! जो देवता प्रत्यक्ष हैं और विशिष्ट एवं अभीष्ट फलोंको देनेवाले हैं, पहले आप उन्हींका वर्णन करें। अनन्तर शास्त्र तथा अनुमानसे सिद्ध होनेवाले देवताओंका वर्णन करें।

श्रीकृष्णने कहा—प्रत्यक्ष देवता तो संसारके नेत्रस्वरूप भगवान् सूर्यनारायण ही हैं, इनसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। सम्पूर्ण जगत् इन्हींसे उत्पन्न हुआ है और अन्तमें इन्हींमें विलीन भी हो जायगा[1]।

सत्य आदि युगों और कालकी गणना इन्हींसे सिद्ध होती है। ग्रह, नक्षत्र, योग, करण, राशि, आदित्य, वसु, रुद्र, वायु, अग्नि, अश्विनीकुमार, इन्द्र, प्रजापति, दिशाएँ, भूः, भुवः, स्वः-ये सभी लोक और पर्वत, नदी, समुद्र, नाग तथा सम्पूर्ण भूतग्रामकी उत्पत्तिके एकमात्र हेतु भगवान् सूर्यनारायण ही हैं। यह सम्पूर्ण चराचर-जगत् इनकी ही इच्छासे उत्पन्न हुआ है। इनकी ही इच्छासे स्थित है और सभी इनकी ही इच्छासे अपने-अपने व्यवहारमें प्रवृत्त होते हैं। इन्हींकि अनुग्रहसे यह सारा संसार प्रयत्नशील दिखायी देता है। सूर्यभगवान्‌के उदयके साथ जगत्‌का उदय और उनके अस्त होनेके साथ जगत् अस्त होता है। इनसे अधिक न कोई देवता हुआ और न होगा। वेदादि शास्त्रों तथा इतिहास-पुराणादिमें इनका परमात्मा, अन्तरात्मा आदि शब्दोंसे प्रतिपादन किया गया है। ये सर्वत्र व्याप्त हैं। इनके सम्पूर्ण गुणों और प्रभावोंका वर्णन सौ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। इसीलिये दिवाकर, गुणाकर, सबके स्वामी, सबके स्रष्टा और सबका संहार करनेवाले भी ये ही कहे गये हैं। ये स्वयं अव्यय हैं।

जो पुरुष सूर्य-मण्डलकी रचनाकर प्रातः, मध्याह्न और सायं उनकी पूजा कर उपस्थान करता है, वह परमगतिको प्राप्त करता है। फिर जो प्रत्यक्ष सूर्यनारायणका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, उसके लिये कौन-सा पदार्थ दुर्लभ है और जो अपनी अन्तरात्मामें ही मण्डलस्थ भगवान् सूर्यको अपनी बुद्धिद्वारा निश्चित कर लेता है तथा ऐसा समझकर वह इनका ध्यानपूर्वक पूजन, हवन तथा जप करता है, वह सभी कामनाओंको प्राप्त करता है और अन्तमें इनके लोकको प्राप्त होता है। इसलिये हे पुत्र! यदि तुम संसारमें सुख चाहते हो और भुक्ति तथा मुक्तिकी इच्छा रखते हो तो विधिपूर्वक प्रत्यक्ष देवता भगवान् सूर्यकी तन्मयतासे आराधना करो। इससे तुम्हें आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक कोई भी दुःख नहीं होंगे। जो सूर्यभगवान्‌की शरणमें जाते हैं, उनको किसी प्रकारका भय नहीं होता और उन्हें इस लोक तथा परलोकमें शाश्वत सुख प्राप्त होता है। स्वयं मैंने भगवान् सूर्यकी बहुत कालतक यथाविधि आराधना की है, उन्हींकी कृपासे यह दिव्य ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है। इससे बढ़कर मनुष्योंके हितका और कोई उपाय नहीं है।

(अध्याय ४८)

श्रीसूर्यनारायणके नित्यार्चनका विधान

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—साम्ब! अब हम सूर्यनारायणके पूजनका विधान बताते हैं, जिसके करनेसे सम्पूर्ण पाप और विघ्न नष्ट हो जाते हैं तथा सभी मनोरथोंकी सिद्धि होती है और पुण्य भी प्राप्त होता है। प्रातःकाल उठकर शौच आदिसे निवृत्त हो नदीके तटपर जाकर आचमन करे तथा सूर्योदयके समय शुद्ध मृत्तिकाका शरीरपर लेपन कर स्नान

---

[1] प्रत्यक्षं देवता सूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकरः। तस्मादभ्यधिका काचिद्देवता नास्ति शाश्वती॥
यस्मादिदं जगज्जातं लयं यास्यति यत्र च। (ब्राह्मपर्व ४८। २१-२२)

करे। पुनः आचमन कर शुद्ध वस्त्र धारण करे और सप्ताक्षर मन्त्र '**ॐ खखोल्काय स्वाहा**' से सूर्यभगवान्‌को अर्घ्य दे तथा हृदयमें मन्त्रका ध्यान करे एवं सूर्य-मन्दिरमें जाकर सूर्यकी पूजा करे। सर्वप्रथम श्रद्धापूर्वक पूरक, रेचक और कुम्भक नामक प्राणायाम कर वायवी, आग्नेयी, माहेन्द्री और वारुणी धारणा करके भूतशुद्धिकी रीतिसे शरीरका शोषण, दहन, स्तम्भन और प्लावन करके अपने शरीरकी शुद्धि कर ले। अपने शुद्ध हृदयमें भगवान् सूर्यकी भावना कर उन्हें प्रणाम करे। स्थूल, सूक्ष्म शरीर तथा इन्द्रियोंको अपने-अपने स्थानोंमें उपन्यस्त करे। '**ॐ खः स्वाहा हृदयाय नमः, ॐ खं स्वाहा शिरसे स्वाहा, ॐ उल्काय स्वाहा शिखायै वषट्, ॐ याय स्वाहा कवचाय हुम्, ॐ खाँ स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ हाँ स्वाहा अस्त्राय फट्।**'

—इन मन्त्रोंसे अङ्गन्यास कर पूजन-सामग्रीका मूल-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलद्वारा प्रोक्षण करे। फिर सुगन्धित पुष्पादि उपचारोंसे सूर्यभगवान्‌का पूजन करे। सूर्यनारायणकी पूजा दिनके समय सूर्य-मूर्तिमें और रात्रिके समय अग्निमें करनी चाहिये। प्रभातकालमें पूर्वाभिमुख, सायंकालमें पश्चिमाभिमुख तथा रात्रिमें उत्तराभिमुख होकर पूजन करनेका विधान है। '**ॐ खखोल्काय स्वाहा**' इस सप्ताक्षर मूल मन्त्रसे सूर्यमण्डलके बीच षट्दल-कमलका ध्यान कर उसके मध्यमें सहस्र किरणोंसे देदीप्यमान भगवान् सूर्यनारायणकी मूर्तिका ध्यान करे। फिर रक्तचन्दन, करवीर आदि रक्तपुष्पों, धूप, दीप, अनेक प्रकारके नैवेद्य, वस्त्राभूषण आदि उपचारोंसे पूजन करे। अथवा रक्तचन्दनसे ताम्रपात्रमें षट्दल-कमल बनाकर उसके मध्यमें सभी उपचारोंसे भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करे। छहों दलोंमें षडङ्ग-पूजन कर उत्तर आदि दिशाओंमें सोमादि आठ ग्रहोंका अर्चन करे और अष्टदिक्पालों तथा उनके आयुधोंका भी तत्तद् दिशाओंमें पूजन करे। नामके आदिमें प्रणव लगाकर नामको चतुर्थी-विभक्तियुक्त करके अन्तमें नमः कहे— जैसे '**ॐ सोमाय नमः**' इत्यादि। इस प्रकार नाममन्त्रोंसे सबका पूजन करे। अनन्तर व्योम-मुद्रा, रवि-मुद्रा, पद्म-मुद्रा, महाश्वेत-मुद्रा और अस्त्र-मुद्रा दिखाये। ये पाँच मुद्राएँ पूजा, जप, ध्यान, अर्घ्य आदिके अनन्तर दिखानी चाहिये।

इस प्रकार एक वर्षतक भक्तिपूर्वक तन्मयताके साथ भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करनेसे अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति होती है और बादमें मुक्ति भी प्राप्त होती है। इस विधिसे पूजन करनेपर रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है, धनहीन धन प्राप्त करता है, राज्यभ्रष्टको राज्य मिल जाता है तथा पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है। सूर्यनारायणका पूजन करनेवाला पुरुष प्रज्ञा, मेधा तथा सभी समृद्धियोंसे सम्पन्न होता हुआ चिरंजीवी होता है। इस विधिसे पूजन करनेपर कन्याको उत्तम वरकी, कुरूपा स्त्रीको उत्तम सौभाग्यकी तथा विद्यार्थीको सद्विद्याकी प्राप्ति होती है। ऐसा सूर्यभगवान्‌ने स्वयं अपने मुखसे कहा है। इस प्रकार सूर्यभगवान्‌का पूजन करनेसे धन, धान्य, संतान, पशु आदिकी नित्य अभिवृद्धि होती है। मनुष्य निष्काम हो जाता है तथा अन्तमें उसे सद्गति प्राप्त होती है। (अध्याय ४९)

भगवान् सूर्यके पूजन एवं व्रतोद्यापनका विधान, द्वादश आदित्योंके नाम और रथसप्तमी-व्रतकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—साम्ब! अब मैं सूर्यके विशिष्ट अवसरोंपर होनेवाले व्रत-उत्सव एवं पूजनकी विधियोंका वर्णन करता हूँ, उन्हें सुनो। किसी मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी, ग्रहण या संक्रान्तिके एक दिन-पूर्व एक बार हविष्यान्नका भोजन कर सायंकालके समय भलीभाँति आचमन आदि करके अरुणदेवको प्रणाम करना चाहिये तथा सभी इन्द्रियोंको संयतकर भगवान् सूर्यका ध्यान कर रात्रिमें जमीनपर कुशकी शय्यापर शयन करना चाहिये। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर विधिपूर्वक स्नान सम्पन्न करके संध्या करे तथा पूर्वोक्त मन्त्र '**ॐ खखोल्काय स्वाहा**' का जप एवं सूर्यभगवान्‌की पूजा करे। अग्निको सूर्यतापके रूपमें समझकर वेदी बनाये और संक्षेपमें हवन तथा तर्पण करे। गायत्री-मन्त्रसे प्रोक्षणकर पूर्वाग्र और उत्तराग्र कुशा बिछाये। अनन्तर सभी पात्रोंका शोधन कर दो कुशाओंकी प्रादेशमात्रकी एक पवित्री बनाये। उस पवित्रीसे सभी वस्तुओंका प्रोक्षण करे, घीको अग्निपर रखकर पिघला ले, उत्तरकी ओर पात्रमें उसे रख दे,

अनन्तर जलते हुए उल्मुकसे पर्यग्निकरण करते हुए घृतका तीन बार उत्प्लवन करे। स्रुवा आदिका कुशोंके द्वारा परिमार्जन और सम्प्रोक्षण करके अग्निमें सूर्यदेवकी पूजा करे और दाहिने हाथमें स्रुवा ग्रहणकर मूल मन्त्रसे हवन करे। मनोयोगपूर्वक मौन धारण कर सभी क्रियाएँ सम्पन्न करनी चाहिये। पूर्णाहुतिके पश्चात् तर्पण करे। अनन्तर ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन कराना चाहिये और यथाशक्ति उनको दक्षिणा भी देनी चाहिये। ऐसा करनेसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है।

माघ मासकी सप्तमीको वरुण नामक सूर्यकी पूजा करे। इसी प्रकार क्रमशः फाल्गुनमें सूर्य, चैत्रमें वैशाख[1], वैशाखमें धाता, ज्येष्ठमें इन्द्र, आषाढ़में रवि, श्रावणमें नभ, भाद्रपदमें यम, आश्विनमें पर्जन्य, कार्तिकमें त्वष्टा, मार्गशीर्षमें मित्र तथा पौष मासमें विष्णुनामक सूर्यका अर्चन करे। इस विधिसे बारहों मासमें अलग-अलग नामोंसे भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक एक दिन पूजा करनेसे वर्षपर्यन्त की गयी पूजाका फल प्राप्त हो जाता है।

उपर्युक्त विधिसे एक वर्षतक व्रत कर रत्नजटित सुवर्णका एक रथ बनवाये और उसमें सात घोड़े बनवाये। रथके मध्यमें सोनेके कमलके ऊपर रत्नोंके आभूषणोंसे अलंकृत सूर्य-नारायणकी सोनेकी मूर्ति स्थापित करे। रथके आगे उनके सारथिको बैठाये। अनन्तर बारह ब्राह्मणोंमें बारह महीनोंके सूर्योंकी भावना कर तेरहवें मुख्य आचार्यको साक्षात् सूर्यनारायण समझकर उनकी पूजा करे तथा उन्हें रथ, छत्र, भूमि, गौ आदि समर्पित करे। इसी प्रकार रत्नोंके आभूषण, वस्त्र, दक्षिणा और एक-एक घोड़ा उन बारह ब्राह्मणोंको दे तथा हाथ जोड़कर यह प्रार्थना करे—'ब्राह्मण देवताओ! इस सूर्यव्रतके उद्यापन करनेके बाद यदि असमर्थतावश कभी सूर्यव्रत न कर सकूँ तो मुझे दोष न हो।' ब्राह्मणोंके साथ आचार्य भी 'एवमस्तु' ऐसा कहकर यजमानको आशीर्वाद दे और कहे—'सूर्यभगवान् तुमपर प्रसन्न हों। जिस मनोरथकी पूर्तिके लिये तुमने यह व्रत किया है और भगवान् सूर्यकी पूजा की है, वह तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो और भगवान् सूर्य उसे पूरा करें। अब व्रत न करनेपर भी तुमको दोष नहीं होगा।' इस प्रकार आशीर्वाद प्राप्त कर दीनों, अन्धों तथा अनाथोंको यथाशक्ति भोजन कराये तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराकर, दक्षिणा देकर व्रतकी समाप्ति करे।

जो व्यक्ति इस सप्तमी-व्रतको एक वर्षतक करता है, वह सौ योजन लंबे-चौड़े देशका धार्मिक राजा होता है और इस व्रतके फलसे सौ वर्षोंसे भी अधिक निष्कण्टक राज्य करता है। जो स्त्री इस व्रतको करती है, वह राजपत्नी होती है। निर्धन व्यक्ति इस व्रतको यथाविधि सम्पन्न कर बतलायी हुई विधिके अनुसार ताँबेका रथ ब्राह्मणको देता है तो वह अस्सी योजन लंबा-चौड़ा राज्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार आटेका रथ बनवाकर दान करनेवाला सात योजन विस्तृत राज्य प्राप्त करता है तथा वह चिरायु, नीरोग और सुखी रहता है। इस व्रतको करनेसे पुरुष एक कल्पतक सूर्यलोकमें निवास करनेके पश्चात् राजा होता है। यदि कोई व्यक्ति भगवान् सूर्यकी मानसिक आराधना भी करता है तो वह भी समस्त आधि-व्याधियोंसे रहित होकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। जिस प्रकार भगवान् सूर्यको कुहरा स्पर्श नहीं कर पाता, उसी प्रकार मानसिक पूजा करनेवाले साधकको किसी प्रकारकी आपत्तियाँ स्पर्श नहीं कर पातीं। यदि किसीने मन्त्रोंके द्वारा भक्तिपूर्वक विधि-विधानसे व्रत सम्पन्न करते हुए भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना की तो फिर उसके विषयमें क्या कहना? इसलिये अपने कल्याणके लिये भगवान् सूर्यकी पूजा अवश्य करनी चाहिये।

पुत्र! सूर्यनारायणने इस विधि-विधानको स्वयं अपने मुखसे मुझसे कहा था। आजतक उसे गुप्त रखकर पहली बार मैंने तुमसे कहा है। मैंने इसी व्रतके प्रभावसे हजारों पुत्र और पौत्रोंको प्राप्त किया है, दैत्योंको जीता है, देवताओंको वशमें किया है, मेरे इस चक्रमें सदा सूर्यभगवान् निवास करते हैं। नहीं तो इस चक्रमें इतना तेज कैसे होता? यही कारण है कि सूर्यनारायणका नित्य जप, ध्यान, पूजन आदि करनेसे मैं जगत्का पूज्य हूँ। वत्स! तुम भी मन, वाणी तथा कर्मसे सूर्यनारायणकी आराधना करो। ऐसा करनेसे तुम्हें विविध सुख प्राप्त होंगे। जो पुरुष भक्तिपूर्वक इस विधानको सुनता है, वह

१- प्रायः अन्य सभी पुराणोंमें चैत्रादि बारह महीनोंमें सूर्यके ये नाम मिलते हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंशु, भग, त्वष्टा और विष्णु। कल्पभेदके अनुसार नामोंमें भेद है।

भी पुत्र-पौत्र, आरोग्य एवं लक्ष्मीको प्राप्त करता है और सूर्यलोकको भी प्राप्त हो जाता है।

भगवान् कृष्णने कहा—साम्ब! माघ मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमी तिथिको एकभुक्त-व्रत और षष्ठीको नक्तव्रत करना चाहिये[1]। सुव्रत! कुछ लोग सप्तमीमें उपवास चाहते हैं और कुछ विद्वान् षष्ठीमें उपवास और सप्तमी तिथिमें पारण करनेका विधान कहते हैं (इस प्रकार विविध मत हैं)। वस्तुतः षष्ठीको उपवासकर भगवान् सूर्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। रक्तचन्दन, करवीर-पुष्प, गुग्गुल धूप, पायस आदि नैवेद्योंसे माघ आदि चार महीनोंतक सूर्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। आत्मशुद्धिके लिये गोमयमिश्रित जलसे स्नान, गोमयका प्राशन और यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी कराना चाहिये।

ज्येष्ठ आदि चार महीनोंमें श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प, कृष्ण अगरु धूप और उत्तम नैवेद्य सूर्यनारायणको अर्पण करना चाहिये। इसमें पञ्चगव्यप्राशन कर ब्राह्मणोंको उत्कृष्ट भोजन कराना चाहिये।

आश्विन आदि चार मासोंमें अगस्त्य-पुष्प, अपराजित धूप और गुड़के पूए आदिका नैवेद्य तथा इक्षुरस भगवान् सूर्यको समर्पित करना चाहिये। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराकर आत्मशुद्धिके लिये कुशाके जलसे स्नान करना चाहिये। उस दिन कुशोदकका ही प्राशन करे। व्रतकी समाप्तिमें माघ मासकी शुक्ला सप्तमीको रथका दान करे और सूर्यभगवान्‌की प्रसन्नताके लिये रथयात्रोत्सवका आयोजन करे। महापुण्यदायिनी इस सप्तमीको रथसप्तमी कहा गया है। यह महासप्तमीके नामसे अभिहित है। रथसप्तमीको जो उपवास करता है, वह कीर्ति, धन, विद्या, पुत्र, आरोग्य, आयु और उत्तमोत्तम कान्ति प्राप्त करता है। हे पुत्र! तुम भी इस व्रतको करो, जिससे तुम्हारे सभी अभीष्टोंकी सिद्धि हो। इतना कहकर शङ्ख, चक्र, गदा-पद्मधारी श्रीकृष्ण अन्तर्हित हो गये।

सुमन्तुने कहा—राजन्! उनकी आज्ञा पाकर साम्बने भी भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणकी आराधनामें तत्पर हो रथसप्तमीका व्रत किया और कुछ ही समयमें रोगमुक्त होकर मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लिया[2]। (अध्याय ५०-५१)

सूर्यदेवके रथ एवं उसके साथ भ्रमण करनेवाले देवता-नाग आदिका वर्णन

राजा शतानीकने पूछा—मुने! सूर्यनारायणकी रथयात्रा किस विधानसे करनी चाहिये। रथ कैसा बनाना चाहिये? इस रथयात्राका प्रचलन मृत्युलोकमें किसके द्वारा हुआ? इन सब बातोंको आप कृपाकर मुझे बतलायें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! किसी समय सुमेरु पर्वतपर समासीन भगवान् रुद्रने ब्रह्माजीसे पूछा—'ब्रह्मन्! इस लोकको प्रकाशित करनेवाले भगवान् सूर्य किस प्रकारके रथमें बैठकर भ्रमण करते हैं, इसे आप बतायें।'

ब्रह्माजीने कहा—त्रिलोचन! सूर्यनारायण जिस प्रकारके रथमें बैठकर भ्रमण करते हैं, उसका मैं वर्णन करता हूँ, आप सानन्द सुनें।

एक चक्र, तीन नाभि, पाँच अरे तथा स्वर्णमय अति कान्तिमान् आठ बन्धोंसे युक्त एवं एक नेमिसे सुसज्जित—इस प्रकारके दस हजार योजन लंबे-चौड़े अतिशय प्रकाशमान स्वर्ण-रथमें विराजमान भगवान् सूर्य विचरण करते रहते हैं। रथके उपस्थसे ईषा-दण्ड तीन-गुना अधिक है। यहीं उनके सारथि अरुण बैठते हैं। इनके रथका जुआ सोनेका बना हुआ है। रथमें वायुके समान वेगवान् छन्दरूपी सात घोड़े जुते रहते हैं। संवत्सरमें जितने अवयव होते हैं, वे ही रथके अङ्ग हैं। तीनों काल चक्रकी तीन नाभियाँ हैं। पाँच ऋतुएँ अरे हैं, छठी

१-जिस दिन प्रायः दिनका अधिक अंश बिताकर सायं चार बजेके लगभग भोजन कर पूरी रात उपवास रहकर बिताया जाता है, उसे एकभुक्त-व्रत कहा जाता है और दिनभर उपवासकर रात्रिको भोजन करना 'नक्तव्रत' कहलाता है।

२-रथसप्तमीके विषयमें व्रतरत्नाकर, व्रतकल्पद्रुम, व्रतराज आदिके अतिरिक्त पद्मपुराण एवं वायुपुराणके माघ-माहात्म्यमें बहुत विस्तारसे व्रत-विधानका निरूपण हुआ है और कुछ पञ्चाङ्गोंमें भी इसी दिन भगवान् सूर्यके रथपर चढ़कर आकाशकी प्रथम यात्रा करनेका उल्लेख किया गया है। जैसे रामनवमीके दिन भगवान् रामका, जन्माष्टमीके दिन भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य मानकर उत्सव किया जाता है, वैसे ही रथसप्तमीके दिन भगवान् सूर्यका प्राकट्य मानकर उनके लिये व्रत-उपवासके साथ विशेष अर्चा सपर्या की जाती है।

ऋतु नेमि है। दक्षिण और उत्तर—ये दो अयन रथके दोनों भाग हैं। मुहूर्त रथके इषु, कला, शम्य, काष्ठाएँ रथके कोण, क्षण अक्षदण्ड, निमेष रथके कर्ण, ईषा-दण्ड लव, रात्रि वरूथ, धर्म रथका ध्वज, अर्थ और काम धुरीका अग्रभाग, गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती तथा उष्णिक्— ये सात छन्द सात अश्व हैं। धुरीपर चक्र घूमता है। इस प्रकारके रथमें बैठकर भगवान् सूर्य निरन्तर आकाशमें भ्रमण करते रहते हैं।

देव, ऋषि, गन्धर्व अप्सरा, नाग, ग्रामणी और राक्षस सूर्यके रथके साथ घूमते रहते हैं और दो-दो मासोंके बाद इनमें परिवर्तन हो जाता है।

धाता और अर्यमा—ये दो आदित्य, पुलस्त्य तथा पुलह नामक दो ऋषि, खण्डक, वासुकि नामक दो नाग, तुम्बुरु और नारद ये दो गन्धर्व, क्रतुस्थला तथा पुञ्जिकस्थला ये अप्सराएँ, रथकृत्स्न तथा रथौजा ये दो यक्ष, हेति तथा प्रहेति नामके दो राक्षस ये क्रमशः चैत्र और वैशाख मासमें रथके साथ चला करते हैं।

मित्र तथा वरुण नामक दो आदित्य, अत्रि तथा वसिष्ठ ये दो ऋषि, तक्षक और अनन्त दो नाग, मेनका तथा सहजन्या ये दो अप्सराएँ, हाहा-हूहू दो गन्धर्व, रथस्वान् और रथचित्र ये दो यक्ष, पौरुषेय और बध नामक दो राक्षस क्रमशः ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मासमें सूर्यरथके साथ चला करते हैं।

श्रावण तथा भाद्रपदमें इन्द्र तथा विवस्वान् नामक दो आदित्य, अङ्गिरा तथा भृगु नामक दो ऋषि, एलापर्ण तथा शङ्खपाल ये दो नाग, प्रम्लोचा और दुंदुका नामक दो अप्सराएँ, भानु और दुर्दुर नामक गन्धर्व, सर्प तथा ब्राह्म नामक दो राक्षस, स्रोत तथा आपूरण नामके दो यक्ष सूर्यरथके साथ चलते रहते हैं।

आश्विन और कार्तिक मासमें पर्जन्य और पूषा नामके दो आदित्य, भारद्वाज और गौतम नामक दो ऋषि, चित्रसेन तथा वसुरुचि नामक दो गन्धर्व, विश्वाची तथा घृताची नामकी दो अप्सराएँ, ऐरावत और धनञ्जय नामक दो नाग और सेनजित् तथा सुषेण नामक दो यक्ष, आप एवं वात नामक दो राक्षस सूर्यरथके साथ चला करते हैं।

मार्गशीर्ष तथा पौष मासमें अंशु तथा भग नामक दो आदित्य, कश्यप और क्रतु नामक दो ऋषि, महापद्म और कर्कोटक नामक दो नाग, चित्राङ्गद और अरणायु नामक दो गन्धर्व, सहा तथा सहस्या नामक दो अप्सराएँ, तार्क्ष्य तथा अरिष्टनेमि नामक यक्ष, आप तथा वात नामक दो राक्षस सूर्यरथके साथ चला करते हैं।

माघ-फाल्गुनमें क्रमशः पूषा तथा जिष्णु नामक दो आदित्य, जमदग्नि और विश्वामित्र नामक दो ऋषि, काद्रवेय और कम्बलाश्वतर ये दो नाग, धृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्चा नामक दो गन्धर्व, तिलोत्तमा और रम्भा ये दो अप्सराएँ तथा सेनजित् और सत्यजित् नामक दो यक्ष, ब्रह्मोपेत तथा यज्ञोपेत नामक दो राक्षस सूर्यरथके साथ चला करते हैं[1]।

ब्रह्माजीने कहा—रुद्रदेव! सभी देवताओंने अपने अंशरूपसे विविध अस्त्र-शस्त्रोंको भगवान् सूर्यकी रक्षाके लिये उन्हें दिया है। इस प्रकार सभी देवता उनके रथके साथ-साथ भ्रमण करते रहते हैं। ऐसा कोई भी देवता नहीं है जो रथके पीछे न चले। इस सर्वदेवमय सूर्यनारायणके मण्डलको ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मस्वरूप, याज्ञिक यज्ञस्वरूप, भगवद्भक्त विष्णुस्वरूप तथा शैव शिवस्वरूप मानते हैं। ये स्थानाभिमानी देवगण अपने तेजसे भगवान् सूर्यको आप्यायित करते रहते हैं। देवता और ऋषि निरन्तर भगवान् सूर्यकी स्तुति करते रहते हैं, गन्धर्व-गण गान करते रहते हैं तथा अप्सराएँ रथके आगे नृत्य करती हुई चलती रहती हैं। राक्षस रथके पीछे-पीछे चलते हैं। साठ हजार बालखिल्य ऋषिगण रथको चारों ओरसे घेरकर चलते हैं। दिवस्पति और स्वयम्भू रथके आगे, भर्ग दाहिनी ओर, पद्मज बायीं ओर, कुबेर दक्षिण दिशामें, वरुण उत्तर दिशामें, वीतिहोत्र और हरि रथके पीछे रहते हैं। रथके पीठमें पृथ्वी, मध्यमें आकाश, रथकी कान्तिमें स्वर्ग, ध्वजामें दण्ड, ध्वजाग्रमें धर्म, पताकामें ऋद्धि-वृद्धि और श्री निवास करती हैं। ध्वजदण्डके ऊपरी भागमें गरुड तथा उसके ऊपर वरुण स्थित हैं। मैनाक पर्वत छत्रका दण्ड, हिमाचल छत्र होकर सूर्यके साथ रहते हैं। इन देवताओंका बल, तप, तेज, योग और तत्त्व जैसा है वैसे ही सूर्यदेव तपते हैं। ये ही देवगण तपते हैं, बरसते हैं, सृष्टिका पालन-पोषण करते हैं, जीवोंके अशुभ-कर्मको निवृत्त करते हैं, प्रजाओंको आनन्द देते हैं और

१- ये नाम विष्णु आदि अन्य पुराणोंमें कुछ भेदसे मिलते हैं।

सभी प्राणियोंकी रक्षाके लिये भगवान् सूर्यके साथ भ्रमण करते रहते हैं। अपनी किरणोंसे चन्द्रमाकी वृद्धि कर सूर्य भगवान् देवताओंका पोषण करते हैं। शुक्ल पक्षमें सूर्य-किरणोंसे चन्द्रमाकी क्रमशः वृद्धि होती है और कृष्ण पक्षमें देवगण उसका पान करते हैं। अपनी किरणोंसे पृथ्वीका रस-पान कर सूर्यनारायण वृष्टि करते हैं। इस वृष्टिसे सभी ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं तथा अनेक प्रकारके अन्न भी उत्पन्न होते हैं, जिससे पितरों और मनुष्योंकी तृप्ति होती है।

एक चक्रवाले रथमें भगवान् सूर्यनारायण बैठकर एक अहोरात्रमें सातों द्वीप और समुद्रोंसे युक्त पृथ्वीके चारों ओर भ्रमण करते हैं। एक वर्षमें ३६० बार भ्रमण करते हैं। इन्द्रकी पुरी अमरावतीमें जब मध्याह्न होता है, तब उस समय यमकी संयमनी पुरीमें सूर्योदय, वरुणकी सुखा नामकी नगरीमें अर्धरात्रि और सोमकी विभा नामकी नगरीमें सूर्यास्त होता है। संयमनीमें जब मध्याह्न होता है, तब सुखामें उदय, अमरावतीमें अर्धरात्रि तथा विभामें सूर्यास्त होता है। सुखामें जब मध्याह्न होता है, उस समय विभामें उदय, अमरावतीमें आधी रात और संयमनीमें सूर्यास्त होता है। विभा नगरीमें जब मध्याह्न होता है, तब अमरावतीमें सूर्योदय, संयमनीमें आधी रात और सुखा नामकी वरुणकी नगरीमें सूर्यास्त होता है। इस प्रकार मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करते हुए भगवान् सूर्यका उदय और अस्त होता है। प्रभातसे मध्याह्नतक सूर्य-किरणोंकी वृद्धि और मध्याह्नसे अस्ततक ह्रास होता है। जहाँ सूर्योदय होता है वह पूर्व दिशा और जहाँ अस्त होता है वह पश्चिम दिशा है। एक मुहूर्तमें भूमिका तीसवाँ भाग सूर्य लाँघ जाते हैं। सूर्य-भगवान्के उदय होते ही प्रतिदिन इन्द्र पूजा करते हैं, मध्याह्नमें यमराज, अस्तके समय वरुण और अर्धरात्रिमें सोम पूजन करते हैं।

विष्णु, शिव, रुद्र, ब्रह्मा, अग्नि, वायु, निर्ऋति, ईशान आदि सभी देवगण रात्रिकी समाप्तिपर ब्राह्मवेलामें कल्याणके लिये सदा भगवान् सूर्यकी आराधना करते रहते हैं।

(अध्याय ५२-५३)

भगवान् सूर्यकी महिमा, विभिन्न ऋतुओंमें उनके अलग-अलग वर्ण तथा उनके फल

भगवान् रुद्रने कहा—ब्रह्मन्! आपने भगवान् सूर्यनारायणके माहात्म्यका वर्णन किया, जिसके सुननेसे हमें बहुत आनन्द मिला, कृपाकर आप उनके माहात्म्यका और वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—हे रुद्र! इस सचराचर त्रैलोक्यके मूल भगवान् सूर्यनारायण ही हैं। देवता, असुर, मानव आदि सभी इन्हींसे उत्पन्न हैं। इन्द्र, चन्द्र, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि जितने भी देवता हैं, सबमें इन्हींका तेज व्याप्त है। अग्निमें विधिपूर्वक दी हुई आहुति सूर्यभगवान्को ही प्राप्त होती है। भगवान् सूर्यसे ही वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्नादि उत्पन्न होते हैं और यही अन्न प्राणियोंका जीवन है। इन्हींसे जगत्की उत्पत्ति होती है और अन्तमें इन्हींमें सारी सृष्टि विलीन हो जाती है। ध्यान करनेवाले इन्हींका ध्यान करते हैं तथा ये मोक्षकी इच्छा रखनेवालोंके लिये मोक्षस्वरूप हैं। यदि सूर्यभगवान् न हों तो क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष तथा युग आदि काल-विभाग हो ही नहीं और काल-विभाग न होनेसे जगत्का कोई व्यवहार भी नहीं चल सकता। ऋतुओंका विभाग न हो तो फिर फल-फूल, खेती, ओषधियाँ आदि कैसे उत्पन्न हो सकती हैं? और इनकी उत्पत्तिके बिना प्राणियोंका जीवन भी कैसे रह सकता है? इससे यह स्पष्ट है कि इस (चराचरात्मक) विश्वके मूलभूत कारण भगवान् सूर्य-नारायण ही हैं। सूर्यभगवान् वसन्त ऋतुमें कपिल वर्ण, ग्रीष्ममें तप्त सुवर्णके समान, वर्षामें श्वेत, शरद् ऋतुमें पाण्डु-वर्ण, हेमन्तमें ताम्रवर्ण और शिशिर ऋतुमें रक्तवर्णके होते हैं। इन वर्णोंका अलग-अलग फल है। रुद्र! उसे आप सुनें।

यदि सूर्यभगवान् (असमयमें) कृष्णवर्णके हों तो संसारमें भय होता है, ताम्रवर्णके हों तो सेनापतिका नाश होता है, पीतवर्णके हों तो राजकुमारकी मृत्यु, श्वेत वर्णके हों तो राजपुरोहितका ध्वंस और चित्र अथवा धूम्रवर्णके होनेसे चोर और शस्त्रका भय होता है, परंतु ऐसा वर्ण होनेके अनन्तर यदि वृष्टि हो जाती है तो अनिष्ट फल नहीं होते*।

(अध्याय ५४)

* इस विषयका बृहद् वर्णन 'बृहत्संहिता'की भट्टोत्पली टीका आदिमें है। विशेष जानकारीके लिये उन्हें देखा जा सकता है।

भगवान् सूर्यका अभिषेक एवं उनकी रथयात्रा

रुद्रने पूछा—ब्रह्मन्! भगवान् सूर्यकी रथयात्रा कब और किस विधिसे की जाती है? रथयात्रा करनेवाले, रथको खींचनेवाले, रथको वहन करनेवाले, रथके साथ जानेवाले और रथके आगे नृत्य-गान करनेवाले एवं रात्रि-जागरण करनेवाले पुरुषोंको क्या फल प्राप्त होता है? इसे आप लोककल्याणके लिये विस्तारपूर्वक बताइये।

ब्रह्माजी बोले—हे रुद्र! आपने बहुत उत्तम प्रश्न किया है। अब मैं इसका वर्णन करता हूँ, आप इसे एकाग्र-मनसे सुनें।

भगवान् सूर्यकी रथयात्रा और इन्द्रोत्सव—ये दोनों जगत्के कल्याणके लिये मैंने प्रवर्तित किये हैं। जिस देशमें ये दोनों महोत्सव आयोजित किये जाते हैं, वहाँ दुर्भिक्ष आदि उपद्रव नहीं होते और न चोरी आदिका कोई भय ही रहता है। इसलिये दुर्भिक्ष, अकाल आदि उपद्रवोंकी शान्तिके लिये इन उत्सवोंको मनाना चाहिये। मार्गशीर्षके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको घृतके द्वारा भगवान् सूर्यको श्रद्धापूर्वक स्नान कराना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष सोनेके विमानमें बैठकर अग्निलोकको जाता है और वहाँ दिव्य भोग प्राप्त करता है। जो व्यक्ति शर्कराके साथ शालि-चावलका भात, मिष्टान्न और चित्रवर्णके भातको भगवान् सूर्यको अर्पित करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन भगवान् सूर्यको भक्तिपूर्वक घृतका उबटन लगाता है, वह परम गतिको प्राप्त करता है।

पौष शुक्ल सप्तमीको तीर्थोंके जल अथवा पवित्र जलसे वेदमन्त्रोंके द्वारा भगवान् सूर्यको स्नान कराना चाहिये। सूर्य-भगवान्के अभिषेकके समय प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, नैमिष, पृथूदक (पेहवा), शोण, गोकर्ण, ब्रह्मावर्त, कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत, गङ्गाद्वार, गङ्गासागर, कालप्रिय, मित्रवन, भाण्डीरवन, चक्रतीर्थ, रामतीर्थ, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, नर्मदा, विपाशा (व्यासनदी), तापी, शिवा, वेत्रवती (वेतवा), गोदावरी, पयोष्णी (मन्दाकिनी), कृष्णा, वेण्या, शतद्रु (सतलज), पुष्करिणी, कौशिकी (कोसी) तथा सरयू आदि सभी तीर्थों, नदियों और समुद्रोंका स्मरण करना चाहिये[1]। दिव्य आश्रमों और देवस्थानोंका भी स्मरण करना चाहिये। इस प्रकार स्नान कराकर तीन दिन, सात दिन, एक पक्ष अथवा मासभर उस अभिषेकके स्थानमें ही भगवान्का अधिवास करे और प्रतिदिन भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता रहे।

माघ मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको मङ्गल कलशों तथा वितान आदिसे सुशोभित चौकोर एवं पक्के ईंटोंसे बनी वेदीपर सूर्यनारायणको भलीभाँति स्थापित कर हवन, ब्राह्मण-भोजन, वेद-पाठ और विभिन्न प्रकारके नृत्य, गीत, वाद्य आदि उत्सवोंको करना चाहिये। अनन्तर माघ शुक्ला चतुर्थीको अयाचित व्रत करे, पञ्चमीको एक बार भोजन करे, षष्ठीको रात्रिके समय ही भोजन करे और सप्तमीको उपवास कर हवन, ब्राह्मण-भोजन आदि सम्पन्न करे। सबको दक्षिणा देकर पौराणिककी भलीभाँति पूजा करे। तदनन्तर रत्नजटित सुवर्णके रथमें भगवान् सूर्यको विराजित करे। उस रथको उस दिन मन्दिरके आगे ही खड़ा करे। रात्रिमें जागरण करे और नृत्य-गीत चलता रहे। माघ शुक्ला अष्टमीको रथयात्रा करनी चाहिये। रथके आगे विविध बाजे बजते रहें, नृत्य-गीत और मङ्गल वेदध्वनि होती रहे। रथयात्रा प्रथम नगरके उत्तर दिशासे प्रारम्भ करनी चाहिये, पुनः क्रमशः पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशाओंमें भ्रमण कराना चाहिये। इस प्रकार रथयात्रा करनेसे राज्यके सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं। राजाको युद्धमें विजय मिलती है तथा उस राज्यमें सभी प्रजाएँ और पशुगण नीरोग एवं सुखी हो जाते हैं। रथयात्रा करनेवाले, रथको

१-यजेद्धि तीर्थनामानि मनसा संस्मरन् बुधः। प्रयागं पुष्करं देवं कुरुक्षेत्रं च नैमिषम्॥
पृथूदकं चन्द्रभागां शोणं गोकर्णमेव च। ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं बिल्वकं नीलपर्वतम्॥
गङ्गाद्वारं तथा पुण्यं गङ्गासागरमेव च। कालप्रियं मित्रवनं मुण्डीरस्वामिनं तथा॥
चक्रतीर्थं तथा पुण्यं रामतीर्थं तथा शिवम्। वितस्ता हर्षपन्था वै तथा वै देविका स्मृता॥
गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा सनर्मदा। विपाशा यमुना तापी शिवा वेत्रवती तथा॥
गोदावरी पयोष्णी च कृष्णा वेण्या तथा नदी। शतरुद्रा पुष्करिणी कौशिकी सरयूस्तथा॥
तथान्ये सागराश्चैव सांनिध्यं कल्पयन्तु वै। तथाश्रमाः पुण्यतमा दिव्यान्यायतनानि च॥ (ब्राह्मपर्व ५५। २४—३०)

वहन करनेवाले और रथके साथ जानेवाले सूर्यलोकमें निवास करते हैं।

रुद्रने कहा—हे ब्रह्मन्! मन्दिरमें प्रतिष्ठित प्रतिमाको किस प्रकार उठाना चाहिये और किस प्रकार रथमें विराजमान करना चाहिये। इस विषयमें मुझे कुछ संदेह हो रहा है, क्योंकि वह प्रतिमा तो स्थिर अर्थात् अचल प्रतिष्ठित है। अतः उसे कैसे चलाया जा सकता है? कृपाकर आप मेरे इस संशयको दूर करें।

ब्रह्माजी बोले—संवत्सरके अवयवोंके रूपमें जिस रथका पूर्वमें मैंने वर्णन किया है, वह रथ सभी रथोंमें पहला रथ है, उसको देखकर ही विश्वकर्माने सभी देवताओंके लिये अलग-अलग विविध प्रकारके रथ बनाये हैं। उस प्रथम रथकी पूजाके लिये भगवान् सूर्यने अपने पुत्र मनुको वह रथ प्रदान किया। मनुने राजा इक्ष्वाकुको दिया और तबसे यह रथयात्रा पूजित हो गयी और परम्परासे चली आ रही है। इसलिये सूर्यकी रथयात्राका उत्सव मनाना चाहिये। भगवान् सूर्य तो सदा आकाशमें भ्रमण करते रहते हैं, इसलिये उनकी प्रतिमाको चलानेमें कोई भी दोष नहीं है। भगवान् सूर्यके भ्रमण करते हुए उनका रथ एवं मण्डल दिखायी नहीं पड़ता, इसलिये मनुष्योंने रथयात्राके द्वारा ही उनके रथ एवं मण्डलका दर्शन किया है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवोंकी प्रतिमाके स्थापित हो जानेके बाद उनको उठाना नहीं चाहिये, किंतु सूर्य-नारायणकी रथयात्रा प्रजाओंकी शान्तिके लिये प्रतिवर्ष करनी चाहिये। सोने-चाँदी अथवा उत्तम काष्ठका अतिशय रमणीय और बहुत सुदृढ़ रथका निर्माण करना चाहिये। उसके बीचमें भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको स्थापित कर उत्तम लक्षणोंसे युक्त अतिशय सुशील हरित वर्णके घोड़ोंको रथमें नियोजित करना चाहिये। उन घोड़ोंको केशरसे रँगकर अनेक आभूषणों, पुष्पमालाओं और चँवर आदिसे अलंकृत करना चाहिये। रथके लिये अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। इस प्रकार रथको तैयार कर सभी देवताओंकी पूजा कर ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। दक्षिणा देकर दीन, अंधे, उपेक्षितों तथा अनाथोंको भोजन आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। उत्तम, मध्यम अथवा अधम किसी भी व्यक्तिको विमुख नहीं होने देना चाहिये। रथयात्रा-स्वरूप इस सूर्यमहायागमें भूखसे पीड़ित, बिना भोजन किये यदि कोई व्यक्ति भग्न आशावाला होकर लौट जाता है तो इस दुष्कृत्यसे उसके स्वर्गस्थ पितरोंका अधःपतन हो जाता है[1]। अतः सूर्य भगवान्के इस यज्ञमें भोजन और दक्षिणासे सबको संतुष्ट करना चाहिये, क्योंकि बिना दक्षिणाके यज्ञ प्रशस्त नहीं होता तथा निम्नलिखित मन्त्रोंसे देवताओंको उनका प्रिय पदार्थ समर्पित करना चाहिये—

बलिं गृह्णन्तु मे देवा आदित्या वसवस्तथा॥
मरुतोऽथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णा पन्नगा ग्रहाः।
असुरा यातुधानाश्च रथस्था यास्तु देवताः॥
दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः।
जगतः स्वस्ति कुर्वन्तु ये च दिव्या महर्षयः॥
मा विघ्नं मा च मे पापं मा च मे परिपन्थिनः।
सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च देवा भूतगणास्तथा॥

(ब्राह्मपर्व ५५। ६८—७१)

इन मन्त्रोंसे बलि देकर '**वामदेव्य**°', '**पवित्र**°', '**मानस्तोक**°' तथा '**रथन्तर**°' इन ऋचाओंका पाठ करे। अनन्तर पुण्याहवाचन और अनेक प्रकारके मङ्गल वाद्योंकी ध्वनि कर सुन्दर एवं समतल मार्गपर रथको चलाये, जिससे कहींपर धक्का न लगे। घोड़ेके अभावमें अच्छे बैलोंको रथमें लगाना चाहिये या पुरुषगण ही रथको खींचें। तीस या सोलह ब्राह्मण जो शुद्ध आचरणवाले हों तथा व्रती हों, वे प्रतिमाको मन्दिरसे उठाकर बड़ी सावधानीसे रथमें स्थापित करें। सूर्य-प्रतिमाके दोनों ओर सूर्यदेवकी राज्ञी (संज्ञा) एवं निक्षुभा (छाया) नामक दोनों पत्नियोंको स्थापित करे। निक्षुभाको दाहिनी ओर तथा राज्ञीको बायीं ओर स्थापित करना चाहिये। सदाचारी वेदपाठी दो ब्राह्मण प्रतिमाओंके पीछेकी ओर बैठें और उन्हें सँभालकर स्थिर रखें। सारथी भी कुशल रहना चाहिये। सुवर्णदण्डसे अलंकृत छत्र रथके ऊपर लगाये, अतिशय सुन्दर रत्नोंसे जटित सुवर्णदण्डसे युक्त ध्वजा रथपर चढ़ाये, जिसमें अनेक रंगोंकी सात पताकाएँ लगी हों। रथके आगेके भागमें सारथिके रूपमें ब्राह्मणको बैठना चाहिये।

१- सूर्यक्रतौ तु विततं एवमाहुर्मनीषिणः॥
यश्चिन्नयति भग्नाशः क्षुधावातप्रपीडितः। अध्वानुहि पितृंस्तेन स्वर्गस्थानपि पातयेत्॥ (ब्राह्मपर्व ५५। ६५-६६)

श्रद्धारहित व्यक्तिको रथके ऊपर नहीं चढ़ना चाहिये, क्योंकि जो श्रद्धारहित व्यक्ति रथपर आरूढ होता है, उसकी संतति नष्ट हो जाती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको ही रथके वहन करनेका अधिकार है। अपने स्थानसे चलकर सर्वप्रथम रथको उत्तर द्वारपर ले जाना चाहिये। वहाँ एक दिनतक रथकी पूजा करे, विविध नृत्य-गीतादि-उत्सव, वेदपाठ तथा पुराणोंकी कथा होनी चाहिये। वहाँ ब्राह्मण-भोजन भी कराना चाहिये। नवमीके दिन रथ चलाकर पूर्वद्वारपर ले जाय, एक दिन वहाँ रहे। तीसरे दिन दक्षिण द्वारपर रथ ले जाय तथा चौथे दिन पश्चिमद्वारपर रथ ले जाय। वहाँसे नगरके मध्यमें रथ ले जाय, वहाँ पूजन और उत्सव करे, दीपमालिका प्रज्वलित करे, ब्राह्मणोंको दान दे और भोजन कराये। अनन्तर वहाँसे मन्दिरमें रथको लाना चाहिये। वहाँ नगरके सभी लोग मिलकर पूजन और उत्सव करें। एक दिन-रात रथमें ही प्रतिमा रहे। दूसरे दिन भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको रथसे उतारकर बड़ी धूमधामसे मन्दिरमें स्थापित करे। इस प्रकार सप्तमीसे त्रयोदशीतक रथयात्रा होनी चाहिये और चतुर्दशीको प्रतिमा पूर्व स्थानमें स्थापित कर दे। इस रथयात्राके करनेसे सभी विघ्न-बाधाएँ निवृत्त हो जाती हैं।

(अध्याय ५५)

रथयात्रामें विघ्न होनेपर एवं गोचरमें दुष्ट ग्रहोंके आ जानेपर शान्तिका विधान और तिलकी महिमा

भगवान् रुद्रने पूछा—ब्रह्मन्! आप पुनः रथयात्राका वर्णन करें।

ब्रह्माजीने कहा—रुद्र! रथको धीरे-धीरे सममार्गपर चलाया जाय, जिससे रथको धक्का आदि न लगने पाये। मार्गकी शुद्धिके लिये प्रथम प्रतीहार और दण्डनायक उस मार्गमें जायँ। पिंगल, रक्षक, द्वारक, दिण्डी तथा लेखक—ये भी रथके साथ-साथ चलें। इतनी सतर्कता और कुशलतासे रथको ले जाया जाय कि रथका कोई अङ्ग-भङ्ग न हो। रथका ईषादण्ड टूटनेपर ब्राह्मणोंको, अक्ष टूटनेपर क्षत्रियोंको, तुला टूटनेपर वैश्योंको, शय्याके टूटनेपर शूद्रोंको भय होता है। युगके भङ्गसे अनावृष्टि, पीठके भङ्गसे प्रजाको भय, रथका चक्र टूटनेसे शत्रुसेनाका आगमन, ध्वजाके गिरनेसे राज-भङ्ग तथा प्रतिमा खण्डित होनेसे राजाकी मृत्यु होती है। छत्रके टूटनेपर युवराजकी मृत्यु होती है। इनमेंसे किसी भी प्रकारका उत्पात होनेपर उसकी शान्ति अवश्य करानी चाहिये तथा ब्राह्मणको भोजन और दान देना चाहिये एवं विधिपूर्वक ग्रह-शान्ति करानी चाहिये। रथके ईशानकोणमें वेदी अथवा कुण्ड बनाकर घृत और समिधाओंसे देवता तथा ग्रहोंकी प्रसन्नताके लिये हवन करना चाहिये और इन नाम-मन्त्रोंसे आहुति देनी चाहिये—'**ॐ अग्नये स्वाहा, ॐ सोमाय स्वाहा, ॐ प्रजापतये स्वाहा।**'—इत्यादि । अनन्तर शान्ति एवं कल्याणके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

स्वस्त्यस्त्विह च विप्रेभ्यः स्वस्ति राज्ञे तथैव च।
गोभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यश्च जगतः शान्तिरस्तु वै॥
शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शान्तिरस्तु चतुष्पदे।
शं प्रजाभ्यस्तथैवास्तु शं सदात्मनि चास्तु वै॥
भूः शान्तिरस्तु देवेश भुवः शान्तिस्तथैव च।
स्वश्चैवास्तु तथा शान्तिः सर्वत्रास्तु तथा रवेः॥
त्वं देव जगतः स्रष्टा पोष्टा चैव त्वमेव हि।
प्रजापाल ग्रहेशान शान्तिं कुरु दिवस्पते॥

(ब्राह्मपर्व ५६। १६—१९)

अपनी जन्मराशिसे दुष्ट स्थानमें स्थित ग्रहोंकी प्रसन्नता तथा शान्तिके लिये ग्रह-समिधाओंसे हवन करना चाहिये। ये समिधाएँ प्रादेशमात्र लंबी होनी चाहिये। सूर्यके लिये अर्ककी, चन्द्रमाके लिये पलाशकी, मङ्गलके लिये खदिरकी, बुधके लिये अपामार्गकी, बृहस्पतिके लिये पीपलकी, शुक्रके लिये गूलरकी, शनिके लिये शमीकी, राहुके लिये दूर्वाकी और केतुके लिये कुशाकी समिधा ही हवनके लिये प्रयोग करना चाहिये। उत्तम गौ, शङ्ख, लाल बैल, सुवर्ण, वस्त्र युगल, श्वेत अश्व, काली गौ, लौहपात्र और छाग—ये क्रमशः नौ ग्रहोंकी दक्षिणा हैं। गुड़ और भात, घी-मिश्रित खीर, हविष्यान्न, क्षीरान्न, दही-भात, घृत, तिल और उड़दके बने पकान्न, गूदोंवाला फल, चित्रवर्णका भात एवं काँजी—ये क्रमशः नवग्रहोंके भोजन हैं। जैसे शरीरमें कवच पहन लेनेसे बाण नहीं लगते, वैसे ही ग्रहोंकी शान्ति करनेसे किसी प्रकारका उपघात नहीं होता। अहिंसक, जितेन्द्रिय, नियममें स्थित और

न्यायसे धनार्जन करनेवाले पुरुषोंपर ग्रहोंका सदा अनुग्रह रहता है। यश, धन, संतानकी प्राप्तिके लिये, अनावृष्टि होनेपर, आरोग्य-प्राप्तिके लिये तथा सभी उपद्रवोंकी शान्तिके लिये ग्रहोंकी सदा पूजा करनी चाहिये। संतानसे रहित, दुष्ट संतानवाली, मृतवत्सा, मात्र कन्या संतानवाली स्त्री संतानदोषकी निवृत्तिके लिये, जिसका राज्य नष्ट हो गया हो वह राज्यके लिये, रोगी पुरुष रोगकी शान्तिके लिये अवश्य ग्रहोंकी शान्ति करे, ऐसा मनीषियोंने कहा है[1]। ग्रहोंकी प्रतिमा ताम्र, स्फटिक, रक्तचन्दन, सुवर्ण, चाँदी, लोहे और शीशे आदिकी बनवाकर अथवा इनके चित्रका निर्माण करा कर जिस ग्रहका जो वर्ण हो उसी रंगके वस्त्र एवं पुष्प उन्हें समर्पित करे। गुग्गुलका धूप सभीको अर्पित करना चाहिये।

'आ कृष्णेन०' (यजु० ३३। ४३), **'इमं देवा०'** (यजु० ९। ४०) इत्यादि नवग्रहोंके अलग-अलग मन्त्रोंसे एक-एक ग्रहके नामसे समिधा, घृत, शहद और दहीकी एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुतियाँ दे तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराये। उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा दे। जो ग्रह जिसके गोचर अथवा कुण्डलीमें दुष्ट स्थानपर स्थित हो, उसे उस ग्रहकी यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। महादेव ! मैंने इन ग्रहोंको ऐसा वर दिया है कि लोगोंद्वारा तुम सब पूजित होओगे। राजाओंका उत्थान और पतन तथा मनुष्योंका उदय और सम्पत्तियोंका नाश ग्रहोंके अधीन है, इसलिये ग्रहशान्ति अवश्य करनी चाहिये। ग्रह, गाय, राजा, गुरुजन तथा ब्राह्मण पूजन करनेवाले व्यक्तिको सब प्रकारका सुख प्रदान करते हैं। इनका अपमान करनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारके दुःख मिलते हैं। यज्ञ करनेवाले, सत्यवादी, जप, होम, उपवास आदिमें तत्पर धर्मात्मा पुरुषोंकी सभी बाधाएँ शान्त हो जाती हैं[2]।

इस प्रकारसे शान्ति कर रथको पुनः चलाना चाहिये और शेष मार्गोंमें घुमाकर अपने स्थानमें पहुँच जानेपर रथ-स्थित देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। उत्पात होनेपर ग्रहोंकी शान्तिके समान ही रथमें स्थित सभी देवताओंकी भी पूजा करनी चाहिये, ऐसा करनेसे सभी तरहके उत्पातोंकी सब प्रकारसे शान्ति हो जाती है।

दुष्ट ग्रहोंकी शान्तिके लिये ब्राह्मणोंको तिल प्रदान करे अथवा घीके साथ तिलोंका हवन करे और देवताओंको धूप दे। तिल देवताओंके लिये स्वाहारूप अमृत, पितरोंके लिये स्वधारूप अमृत तथा ब्राह्मणोंके लिये आश्रयस्वरूप कहे गये हैं। ये तिल कश्यपके अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं तथा देवता एवं पितरोंको अति प्रिय हैं। स्नान, दान, हवन, तर्पण और भोजनमें परम पवित्र माने गये हैं[3]।

इस प्रकार ग्रह और देवताओंका पूजनकर भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको रथसे उतारकर मण्डलमें स्थापित करे, फिर विघ्न-बाधाओंकी शान्तिके लिये दीप, जल, जौ, अक्षत, कपासके बीज, नमक तथा धानकी भूसीसे आरती कर पत्नियोंसहित सूर्यनारायणको वेदीके ऊपर स्थापित करे। वहाँ दस दिनतक उनकी विधिपूर्वक पूजा करे। दस दिनतक होनेवाली यह पूजा दशाहिका पूजा कहलाती है। इस प्रकार पूजनकर फिर भगवान् सूर्यनारायणको पूर्व स्थानपर स्थापित करना चाहिये।

(अध्याय ५६-५७)

१-यथा बाणप्रहाराणां वारणं कवचं स्मृतम्। तथा दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारणम्॥
अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च। नित्यं च नियमस्थस्य सदा सानुग्रहा ग्रहाः॥
ग्रहाः पूज्या सदा रुद्र इच्छता विपुलं यशः। श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत्॥
वृष्ट्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन् पुनः। यानपत्या भवेन्नारी दुष्पजाश्चापि या भवेत्॥
बाला यस्याः प्रम्रियन्ते या च कन्याप्रजा भवेत्। राज्यभ्रष्टो नृपो यस्तु दीर्घरोगी च यो भवेत्॥
ग्रहयज्ञः स्मृतस्तेषां मानवानां मनीषिभिः। (ब्राह्मपर्व ५६। ३०—३५)

२-ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च गुरवो ब्राह्मणास्तथा। पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यपमानिताः॥
यज्वनां सत्यवाक्यानां तथा नित्योपवासिनाम्। जपहोमपराणां च सर्वं दुष्टं प्रशाम्यति॥ (ब्राह्मपर्व ५६। ४७,४९)

३-देवानाममृतं ह्येते पितॄणां हि स्वधामृतम्। शरणं ब्राह्मणानां च सदा ह्येतान् विदुर्बुधाः॥
कश्यपस्याङ्गजा ह्येते पवित्राश्च तथा हर। स्नाने दाने तथा होमे तर्पणे ह्यशने पराः॥ (ब्राह्मपर्व ५७। २५-२६)

सूर्यनारायणकी रथयात्राका फल

ब्रह्माजीने कहा—हे महादेव! इस प्रकार अमित ओजस्वी भगवान् भास्करकी रथयात्रा करनेवाला और दूसरेसे करानेवाला व्यक्ति परार्ध वर्षों (ब्रह्माजीकी आधी आयु) तक सूर्यलोकमें निवास करता है। उस व्यक्तिके कुलमें न कोई दरिद्र होता है न कोई रोगी। सूर्य भगवान्‌के अभ्यङ्गके लिये घी समर्पण करनेवाले तथा अनेक प्रकारका तिलक करनेवाले व्यक्तिको सूर्यलोक प्राप्त होता है। गङ्गा आदि तीर्थोंसे जल लाकर जो सूर्यनारायणको स्नान कराता है, वह वरुणलोकमें निवास करता है। लाल रंगका भात और गुड़का नैवेद्य समर्पित करनेवाला व्यक्ति प्रजापतिलोकको प्राप्त करता है। भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको स्नान कराकर पूजन करनेवाला व्यक्ति सूर्यलोकमें निवास करता है। जो व्यक्ति सूर्यदेवको रथपर चढ़ाता है, रथके मार्गको पवित्र करता और पुष्प, तोरण, पताका आदिसे अलंकृत करता है, वह वायुलोकमें निवास करता है। जो व्यक्ति नृत्य-गीत आदिके द्वारा बृहद् उत्सव मनाता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त करता है। जब सूर्यदेव रथपर विराजमान होते हैं, उस दिन जागरण करनेवाला पुण्यवान् व्यक्ति निरन्तर आनन्द प्राप्त करता है। जो व्यक्ति भगवान् सूर्यकी सेवा आदिके लिये व्यक्तिको नियोजित करता है, वह सभी कामनाओंको प्राप्तकर सूर्यलोकमें निवास करता है। रथारूढ भगवान् सूर्यका दर्शन करना बड़े ही सौभाग्यकी बात है। जब रथकी यात्रा उत्तर अथवा दक्षिण दिशाकी ओर होती है, उस समय दर्शन करनेवाला व्यक्ति धन्य है। जिस दिन रथयात्रा हो, उसके सालभर बाद उसी दिन पुनः रथयात्रा करनी चाहिये। यदि वर्षके बाद यात्रा न करा सके तो बारहवें वर्ष अतिशय उत्साहके साथ उत्सव सम्पन्न कर यात्रा सम्पन्न करानी चाहिये। बीचमें यात्रा नहीं करनी चाहिये।

इसी प्रकार इन्द्रध्वजके उत्सवमें भी यदि विघ्न हो जाय तो बारहवें वर्षमें ही उसे सम्पन्न करना चाहिये। जो व्यक्ति रथयात्राकी व्यवस्था करता है, वह इन्द्रादि लोकपालके सायुज्यको प्राप्त करता है। यात्रामें विघ्न करनेवाले व्यक्ति मंदेह जातिके राक्षस होते हैं। सूर्यनारायणकी पूजा किये बिना जो अन्य देवताओंकी पूजा करता है, वह पूजा निष्फल है। रथयात्राके समय जो सूर्यनारायणका दर्शन करता है, वह निष्पाप हो जाता है। षष्ठी, सप्तमी, पूर्णिमा, अमावास्या और रविवारके दिन दर्शन करनेसे बहुत पुण्य होता है। आषाढ़, कार्तिक और माघकी पूर्णिमाको दर्शन करनेसे अनन्त पुण्य होता है। इन तीन मासोंमें भी रथयात्रा करनी चाहिये। इनमें भी कार्तिकी (कार्तिक-पूर्णिमा) को विशेष फलदायक होनेसे महाकार्तिकी कहा गया है। इन समयोंमें उपवासकर जो भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह सद्गतिको प्राप्त करता है। संसारपर अनुग्रह करनेके लिये प्रतिमामें स्थित होकर सूर्यदेव स्वयं पूजन ग्रहण करते हैं। जो व्यक्ति मुण्डन कराकर स्नान, जप, होम, दान आदि करता है, वह दीक्षित होता है। सूर्य-भक्तको अवश्य ही मुण्डन कराना चाहिये। जो व्यक्ति इस प्रकार दीक्षित होकर सूर्यनारायणकी आराधना करता है, वह परम गतिको प्राप्त करता है। महादेवजी! इस रथयात्राके विधानका मैंने वर्णन किया। इसे जो पढ़ता है, सुनता है, वह सभी प्रकारके रोगोंसे मुक्त हो जाता है और विधिपूर्वक रथयात्राका सम्पादन करनेवाला व्यक्ति सूर्यलोकको जाता है।

(अध्याय ५८)

रथसप्तमी तथा भगवान् सूर्यकी महिमाका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे रुद्र! माघ मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिको उपवास करके गन्धादि उपचारोंसे भगवान् सूर्यनारायणकी पूजाकर रात्रिमें उनके सम्मुख शयन करे। सप्तमीमें प्रातःकाल विधिपूर्वक पूजा करे और उदारतापूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये। इस प्रकार एक वर्षतक सप्तमीको व्रतकर रथयात्रा करे। कृष्णपक्षमें तृतीया तिथिको एकभुक्त, चतुर्थीको नक्तव्रत, पञ्चमीको अयाचितव्रत[1], षष्ठीको पूर्ण उपवास तथा सप्तमीको पारण करे। रथस्थ भगवान् सूर्यकी भलीभाँति पूजाकर सुवर्ण तथा रत्नादिसे अलंकृत तथा तोरण, पताकादिसे सुसज्जित रथमें सूर्यनारायणकी प्रतिमा स्थापित कर

१-बिना किसीसे माँगे जो भोजन मिल जाय, उसे अयाचित-व्रत कहते हैं।

ब्राह्मणकी पूजा करके उसका दान कर दे। स्वर्णके अभावमें चाँदी, ताम्र, आटे आदिका रथ बनाकर आचार्यको दान करे। महादेव ! यह माघ-सप्तमी बहुत उत्तम तिथि है, पापोंका हरण करनेवाली इस रथसप्तमीको भगवान् सूर्यके निमित्त किया गया स्नान, दान, होम, पूजा आदि सत्कर्म हजार गुना फलदायक हो जाता है। जो कोई भी इस व्रतको करता है, वह अपने अभीष्ट मनोरथको प्राप्त करता है। इस सप्तमीके माहात्म्यका भक्तिपूर्वक श्रवण करनेवाला व्यक्ति ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति पा जाता है।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! इस प्रकार रथयात्राका विधान बताकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और रुद्रदेवता भी अपने धाम चले गये। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं, यह बतायें।

राजा शतानीकने कहा—हे महाराज ! सूर्यदेवके प्रभावका मैं कहाँतक वर्णन करूँ ! उन्हींके अनुग्रहसे युधिष्ठिर

आदि मेरे पितामहोंको सभी प्रकारका दिव्य भोजन प्रदान करनेवाला अक्षय पात्र मिला था, जिससे वनमें भी वे ब्राह्मणोंको संतुष्ट करते थे। जिन भगवान् सूर्यकी देवता, ऋषि, सिद्ध तथा मनुष्य आदि निरन्तर आराधना करते रहते हैं उन भगवान् भास्करके माहात्म्यको मैंने अनेक बार सुना है, पर उनका माहात्म्य सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती। जिनसे सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है तथा जिनके उदय होनेसे ही सारा संसार चेष्टावान् होता है, जिनके हाथोंसे लोकपूजित ब्रह्मा और विष्णु तथा ललाटसे शंकर उत्पन्न हुए हैं, उनके प्रभावका वर्णन कौन कर सकता है ? अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि जिस मन्त्र, स्तोत्र, दान, स्नान, जप, पूजन, होम, व्रत तथा उपवासादि कर्मोंके करनेसे भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर सभी कष्टोंको निवृत्त करते हैं और संसार-सागरसे मुक्त करते हैं, आप उन्हीं उत्तम मन्त्र, स्तोत्र, रहस्य, विद्या, पाठ, व्रत आदिको बतायें, जिनसे भगवान् सूर्यका कीर्तन हो और जिह्वा धन्य हो जाय। क्योंकि वही जिह्वा धन्य है जो भगवान् सूर्यका स्तवन करती है। सूर्यकी आराधनाके बिना यह शरीर व्यर्थ है। एक बार भी सूर्यनारायणको प्रणाम करनेसे प्राणीका भवसागरसे उद्धार हो जाता है। रत्नोंका आश्रय मेरुपर्वत, आश्चर्योंका आश्रय आकाश, तीर्थोंका आश्रय गङ्गा और सभी देवताओंके आश्रय भगवान् सूर्य हैं। मुने ! इस प्रकार अनन्त गुणोंवाले भगवान् सूर्यके माहात्म्यको मैंने बहुत बार सुना है। देवगण भी भगवान् सूर्यकी ही आराधना करते हैं, यह भी मैंने सुना है। अब मेरा यही दृढ़ संकल्प है कि सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें निवास करनेवाले तथा स्मरणमात्रसे समस्त पाप-तापोंको दूर करनेवाले भगवान् सूर्यकी भक्तिपूर्वक उपासना कर मैं भी संसारसे मुक्त हो जाऊँ।

(अध्याय ५९-६०)

भगवान् सूर्यद्वारा योगका वर्णन एवं ब्रह्माजीद्वारा दिण्डीको दिया गया क्रियायोगका उपदेश

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! ऋषियोंको जिस प्रकार ब्रह्माजीने सूर्यनारायणकी आराधनाके विधानका उपदेश दिया था, उसे मैं सुनाता हूँ।

किसी समय ऋषियोंने ब्रह्माजीसे प्रार्थना की कि महाराज ! सभी प्रकारकी चित्तवृत्तिके निरोधरूपी योगको आपने कैवल्यपदको देनेवाला कहा है, किंतु यह योग अनेक जन्मोंकी कठिन साधनाके द्वारा प्राप्त हो सकता है। क्योंकि इन्द्रियोंको बलात् आकृष्ट करनेवाले विषय अत्यन्त दुर्जय हैं, मन किसी प्रकारसे स्थिर नहीं होता, राग-द्वेष आदि दोष नहीं छूटते और पुरुष अल्पायु होते हैं, इसलिये योगसिद्धिका प्राप्त

होना अतिशय कठिन है। अतः आप ऐसे किसी साधनका उपदेश करें जिससे बिना परिश्रमके ही निस्तार हो सके।

ब्रह्माजीने कहा—मुनीश्वरो! यज्ञ, पूजन, नमस्कार, जप, व्रतोपवास और ब्राह्मण-भोजन आदिसे सूर्यनारायणकी आराधना करना ही इसका मुख्य उपाय है। यह क्रियायोग है। मन, बुद्धि, कर्म, दृष्टि आदिसे सूर्यनारायणकी आराधनामें तत्पर रहे। वे ही परब्रह्म, अक्षर, सर्वव्यापी, सर्वकर्ता, अव्यक्त, अचिन्त्य और मोक्षको देनेवाले हैं। अतः आप उनकी आराधना कर अपने मनोवाञ्छित फलको प्राप्त करें और भवसागरसे मुक्त हो जायँ। ब्रह्माजीसे यह सुनकर मुनिगण सूर्यनारायणकी उपासना-रूप क्रियायोगमें तत्पर हो गये। हे राजन्! विषयोंमें डूबे हुए संसारके दुःखी जीवोंको सुख प्रदान करनेवाले सूर्यनारायणके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है, इसलिये उठते-बैठते, चलते-सोते, भोजन करते हुए सदा सूर्यनारायणका ही स्मरण करो, भक्तिपूर्वक उनकी आराधनामें प्रवृत्त होओ, जिससे जन्म-मरण, आधि-व्याधिसे युक्त इस संसारसमुद्रसे तुम पार हो जाओगे। जो पुरुष जगत्कर्ता, सदा वरदान देनेवाले, दयालु और ग्रहोंके स्वामी श्रीसूर्यनारायणकी शरणमें जाता है, वह अवश्य ही मुक्ति प्राप्त करता है।

सुमन्तु मुनिने पुनः कहा—राजन्! प्राचीन कालमें दिण्डीको ब्रह्महत्या लग गयी थी। उस ब्रह्महत्याके पापको दूर करनेके लिये उन्होंने बहुत दिनोंतक सूर्यनारायणकी आराधना और स्तुति की। उससे प्रसन्न हो भगवान् सूर्य उनके पास आये। भगवान् सूर्यने कहा—'दिण्डिन्! तुम्हारी भक्तिपूर्वक की गयी स्तुतिसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अपना अभीष्ट वर माँगो।'

दिण्डीने कहा—महाराज! आपने पधारकर मुझे दर्शन दिया, यह मेरे सौभाग्यकी बात है। यही मेरे लिये सर्वश्रेष्ठ वर है। पुण्यहीनोंके लिये आपका दर्शन सर्वदा दुर्लभ है। आप सबके हृदयमें स्थित हैं, अतः आप सबका अभिप्राय जानते हैं। जिस प्रकार मुझे ब्रह्महत्या लगी है, उसे तो आप जानते ही हैं। भगवन्! आप मुझपर ऐसा अनुग्रह करें कि मैं इस निन्दित ब्रह्महत्यासे तथा अन्य पापोंसे शीघ्र मुक्त हो जाऊँ और मैं सफल-मनोरथ हो जाऊँ। आप संसारसे उद्धारका उपाय बतलायें, जिसके आचरणसे संसारके प्राणी सुखी हों। दिण्डीके इस वचनको सुनकर योगवेत्ता भगवान् सूर्यने उन्हें निर्बीज-योगका उपदेश दिया, जो दुःखके निवारणके लिये औषधरूप है।

दिण्डीने प्रार्थना करते हुए कहा—महाराज! यह निष्कल-योग तो बहुत कठिन है, क्योंकि इन्द्रियोंको जीतना, मनको स्थिर करना, अहं-शरीरादिका अभिमान और ममताका त्याग करना, राग-द्वेषसे बचना—ये सब अतिशय कष्टसाध्य हैं। ये बातें कई जन्मोंके अभ्यास करनेसे प्राप्त होती हैं। अतः आप ऐसा साधन बतलायें, जिससे अनायास बिना विशेष परिश्रमके ही फलकी प्राप्ति हो जाय।

भगवान् सूर्यने कहा—गणनाथ! यदि तुम्हें मुक्तिकी इच्छा है तो समस्त क्लेशोंको नष्ट करनेवाले क्रियायोगको सुनो। अपने मनको मुझमें लगाओ, भक्तिसे मेरा भजन करो, मेरा यजन करो, मेरे परायण हो जाओ; आत्माको मेरेमें लगा दो, मुझे नमस्कार करो, मेरी भक्ति करो, सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें मुझे परिव्याप्त समझो[1], ऐसा करनेसे तुम्हारे सम्पूर्ण दोषोंका विनाश हो जायगा और तुम मुझे प्राप्त कर लोगे। भलीभाँति मुझमें आसक्त हो जानेपर राग-लोभादि दोषोंके नाश हो जानेसे कृतकृत्यता हो जाती है। अपने मनको स्थिर करनेके लिये सोना, चाँदी, ताम्र, पाषाण, काष्ठ आदिसे मेरी प्रतिमाका निर्माण कराकर या चित्र ही लिखकर विविध उपचारोंसे भक्तिपूर्वक पूजन करो। सर्वभावसे प्रतिमाका आश्रय ग्रहण करो। चलते-फिरते, भोजन करते, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे उसीका ध्यान करो, उसे पवित्र तीर्थोंके जलसे स्नान कराओ। गन्ध, पुष्प, वस्त्र, आभूषण, विविध नैवेद्य और जो पदार्थ स्वयंको प्रिय हों उन्हें अर्पण करो। इन विविध उपचारोंसे मेरी प्रतिमाको संतुष्ट करो। कभी गानेकी इच्छा हो तो मेरी मूर्तिके आगे मेरा गुणानुवाद गाओ, सुननेकी इच्छा हो तो हमारी कथा सुनो। इस प्रकार मुझमें अपने मनको अर्पण करनेसे तुम्हें परमपदकी प्राप्ति हो जायगी। सभी कर्म मुझमें अर्पण करो, डरनेकी कोई बात नहीं। मुझमें मन लगाओ, जो कुछ करो मेरे लिये करो, ऐसा करनेसे तुम ब्रह्महत्या आदि सभी दोष-पापोंसे

---

[1]-मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

(ब्राह्मपर्व ६२ । १९; गीता ९ । ३४)

रहित होकर मुक्त हो जाओगे, इसलिये तुम इस क्रियायोगका आश्रय ग्रहण करो।

दिण्डी बोले—महाराज! इस अमृतरूप क्रियायोगको आप विस्तारसे कहें, क्योंकि आपके बिना कोई भी इसे बतलानेमें समर्थ नहीं है। यह अत्यन्त गोपनीय और पवित्र है।

भगवान् सूर्यने कहा—तुम चिन्ता मत करो। इस सम्पूर्ण क्रियायोगका ब्रह्माजी तुमको विस्तारपूर्वक उपदेश करेंगे और मेरी कृपासे तुम इसे ग्रहण करोगे। इतना कहकर तीनों लोकोंके दीपस्वरूप भगवान् सूर्य अन्तर्हित हो गये और दिण्डी भी ब्रह्माजीके धामको चले गये। ब्रह्मलोक पहुँचकर दिण्डी सुरज्येष्ठ चतुर्मुख ब्रह्माजीको प्रणाम कर कहने लगे।

दिण्डीने प्रार्थनापूर्वक कहा—ब्रह्मन्! मुझे भगवान् सूर्यदेवने आपके पास भेजा है। आप कृपाकर मुझे क्रिया-योगका उपदेश करें, जिसके सहारे मैं शीघ्र ही भगवान् सूर्यको प्रसन्न कर सकूँ।

ब्रह्माजी बोले—गणाधिप! भगवान् सूर्यका दर्शन करते ही तुम्हारी ब्रह्महत्या तो नष्ट हो गयी। तुम भगवान् सूर्यके कृपापात्र हो। यदि सूर्यनारायणकी आराधना करनेकी इच्छा है तो प्रथम दीक्षा ग्रहण करो, क्योंकि दीक्षाके बिना उपासना नहीं होती। अनेक जन्मोंके पुण्यसे भगवान् सूर्यमें भक्ति होती है। जो पुरुष भगवान् सूर्यसे द्वेष रखता है, ब्राह्मण तथा वेदकी निन्दा करता है, उसे अवश्य ही अधम पुरुषसे उत्पन्न समझो। मायाके प्रभावसे ही अधम पुरुषोंकी कुकर्ममें प्रवृत्ति होती है और उनके स्वल्प शेष रहनेपर सूर्यकी आराधनाके लिये दीक्षाकी इच्छा होती है। इस भवसागरमें डूबनेवाले पुरुषोंका हाथ पकड़कर उद्धार करनेवाले एकमात्र भगवान् सूर्य ही हैं। इसलिये तुम दीक्षा ग्रहण कर भगवान् सूर्यमें तन्मय होकर उनकी उपासना करो, इससे शीघ्र ही भगवान् सूर्य तुमपर अनुग्रह करेंगे।

दिण्डीने पूछा—महाराज! दीक्षाका अधिकारी कौन पुरुष है और दीक्षा-ग्रहण करनेके बाद क्या करना चाहिये। कृपया आप इसे बतायें।

ब्रह्माजीने कहा—दिण्डिन्! दीक्षा-ग्रहणकी इच्छावाले व्यक्तिको मन, वचन और कर्मसे हिंसा नहीं करनी चाहिये। सूर्यभगवान्में भक्ति करनी चाहिये, दीक्षित ब्राह्मणोंको सदा नमस्कार करना चाहिये, किसीसे द्रोह नहीं करना चाहिये। सभी प्राणियोंको सूर्यके रूपमें समझना चाहिये। देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, चींटी, वृक्ष, पाषाण आदि जगत्के सभी पदार्थों और आत्माको सूर्यसे भिन्न न समझकर मन, वचन और कर्मसे जीवोंमें पापबुद्धि नहीं करनी चाहिये—ऐसा ही पुरुष दीक्षाका अधिकारी होता है। जो गति सूर्यनारायणकी आराधनासे प्राप्त होती है, वह न तो तपसे मिलती है और न बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंके करनेसे। सभी प्रकारसे जो भगवान् सूर्यका भक्त है, वह धन्य है। उस सूर्यभक्तके अनेक कुलोंका उद्धार हो जाता है। जो अपने हृदयप्रदेशमें भगवान् सूर्यकी अर्चा करता है, वह निष्पाप होकर सूर्यलोकको प्राप्त करता है। सूर्यका मन्दिर बनानेवाला अपनी सात पीढ़ियोंको सूर्यलोकमें निवास कराता है और जितने वर्षोंतक मन्दिरमें पूजा होती है, उतने हजार वर्षोंतक वह सूर्यलोकमें आनन्दका भोग करता है। निष्कामभावसे सूर्यकी उपासना करनेवाला व्यक्ति मुक्तिको प्राप्त करता है। जो उत्तम लेप, सुन्दर पुष्प, अतिशय सुगन्धित धूप प्रतिदिन सूर्य-नारायणको अर्पित करता है, वह यज्ञके फलको प्राप्त करता है। यज्ञमें बहुत सामग्रियोंकी अपेक्षा रहती है, इसलिये मनुष्य यज्ञ नहीं कर सकते, परंतु भक्तिपूर्वक दूर्वासे भी सूर्यनारायणकी पूजा करनेसे यज्ञ करनेसे भी अधिक फलकी प्राप्ति हो जाती है—

बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भारविस्तराः ॥
न दिण्डिन्नवाप्यन्ते मनुष्यैरल्पसंचयैः ।
भक्त्या तु पुरुषैः पूजा कृता दूर्वाङ्कुरैरपि ।
भानोर्ददाति हि फलं सर्वयज्ञैः सुदुर्लभम् ॥

(ब्राह्मपर्व ६३ । ३२-३३)

दिण्डिन्! गन्ध, पुष्प, धूप, वस्त्र, आभूषण तथा विविध प्रकारके नैवेद्य जो भी प्राप्त हों और तुम्हें जो प्रिय हों, उन्हें भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको निवेदित करो। तीर्थोंके जल, दही, दूध, घृत, शर्करा और शहदसे उन्हें स्नान कराओ। गीत-वाद्य, नृत्य, स्तुति, ब्राह्मण-भोजन, हवन आदिसे भगवान्‌को प्रसन्न करो, किंतु सभी पूजाएँ भक्तिपूर्वक होनी चाहिये। मैंने भगवान् सूर्यकी आराधना करके ही सृष्टि की है। विष्णु उनके अनुग्रहसे ही जगत्‌का पालन करते हैं और रुद्रने उनकी प्रसन्नतासे ही

संहारशक्ति प्राप्त की है। ऋषिगण भी उनके ही कृपाप्रसादको प्राप्तकर मन्त्रोंका साक्षात्कार करनेमें समर्थ होते हैं। इसलिये तुम भी पूजन, व्रत, उपवास आदिसे वर्षपर्यन्त भगवान् सूर्यकी आराधना करो, जिससे सभी क्लेश दूर हो जायँगे और तुम शान्ति प्राप्त करोगे[1]।

(अध्याय ६१—६३)

भगवान् सूर्यके व्रतोंके अनुष्ठान तथा उनके मन्दिरोंमें अर्चन-पूजनकी विधि तथा फल-सप्तमी-व्रतका फल

दिण्डीने ब्रह्माजीसे पूछा—ब्रह्मन्! आपने आदित्य-क्रियायोगको मुझे बतलाया, अब आप यह बतलानेकी कृपा करें कि भगवान् सूर्य उपवाससे कैसे प्रसन्न होते हैं? उपवास करनेवालोंके लिये क्या-क्या त्याज्य है? आराधनामें क्या-क्या करना चाहिये, इसका आप विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—दिण्डिन्! भगवान् सूर्य पुष्प आदिद्वारा पूजन करनेसे ही प्रसन्न हो जाते हैं और उत्तम फल देते हैं। पापोंसे रहित होकर सद्गुणोंका आश्रय ग्रहण कर, सभी भोगोंका परित्याग करना ही उपवास कहलाता है[2]। अतः ऐसे उपवाससे क्यों नहीं मनोवाञ्छित फल प्राप्त होगा? एक रात, दो रात, तीन रात या नक्त-व्रत करनेवाला निष्काम होकर उपवासकर मन, वचन और कर्मसे सूर्यनारायणकी आराधनामें तत्पर रहे तो ब्रह्मलोकको प्राप्त कर सकता है। यदि साधक किसी कामनासे दत्तचित्त होकर भगवान् सूर्यकी उपासना करता है तो प्रसन्न होकर भगवान् उसकी कामना पूर्ण कर देते हैं। अन्धकारका नाश करनेवाले जगदात्मा सूर्यनारायणकी तन्मयतापूर्वक आराधनाके बिना किसी प्रकार भी सद्गति नहीं मिलती। अतः पुष्प, धूप, चन्दन, नैवेद्य आदिसे भक्तिपूर्वक सूर्यकी पूजा और उनकी प्रसन्नताके लिये उपवास करना चाहिये। उत्तम पुष्पके न मिलनेपर वृक्षोंके कोमल पत्ते अथवा दूर्वाङ्कुरसे पूजन करना चाहिये। पुष्प, पत्र, फल, जल जो भी यथाशक्ति मिले, उसे ही भक्तिके साथ भगवान् सूर्यको अर्पण करना चाहिये। इससे भगवान् सूर्यको अतुल तुष्टि प्राप्त होती है। सूर्यनारायणके मन्दिरमें सदा झाड़ू देनेपर धूलिमें जितनी कणिकाएँ होती हैं, उतने समयतक सूर्यके समान होकर वह स्वर्गमें रहता है। मन्दिरके छोटे भागका भी मार्जन करनेपर उस दिनके पापसे व्यक्ति मुक्त हो जाता है। जो गोमयसे, मृत्तिका अथवा अन्य धातुओंके चूर्णोंसे मन्दिरमें उपलेपन करता है, वह विमानपर चढ़कर सूर्यलोकमें जाता है। मन्दिरमें जलसे छिड़काव करनेवाला वरुणलोकमें निवास करता है। जो लेपन किये हुए मन्दिरमें पुष्प बिखेरता है, वह कभी दुर्गति नहीं प्राप्त करता। मन्दिरमें दीपक प्रज्वलित करनेवाला व्यक्ति सभी ऋतुओंमें सुखप्रद सवारी प्राप्त करता है। ध्वजा चढ़ानेवालेके ज्ञात और अज्ञात सभी पाप पताकाके वायुसे हिलनेपर नष्ट हो जाते हैं। गीत, वाद्य और नृत्यके द्वारा मन्दिरमें उत्सव करनेवाला उत्तम विमानमें बैठता है, गन्धर्व और अप्सराएँ उसके आगे गान और नृत्य करती हैं। जो मन्दिरमें पुराणका पाठ करता है, उसे श्रेष्ठ बुद्धिकी प्राप्ति होती है और वह जातिस्मर (सभी जन्मोंकी बात जाननेवाला) हो जाता है। दिण्डिन्! सूर्यकी आराधनासे जो चाहो वह प्राप्त कर सकते हो। इनकी आराधनासे कई लोग गन्धर्व, कतिपय विद्याधर, कतिपय देवता बन गये हैं। इन्द्रने इनकी आराधनासे ही इन्द्रपद प्राप्त किया है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ एवं स्त्रियोंके ये ही उपास्य हैं। जितेन्द्रिय संन्यासी भी इनके अनुग्रहसे ही मुक्तिको प्राप्त करते हैं, क्योंकि ये ही मोक्षके द्वार हैं। इस तरह सभी वर्ण और आश्रमोंके आश्रय एवं परमगति भगवान् सूर्य ही हैं।

दिण्डिन्! अब मैं काम्य उपवास और फल-सप्तमीका वर्णन करता हूँ। फल-सप्तमीका व्रत करनेसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। भाद्रपद मासकी शुक्ला चतुर्थीको अयाचित-व्रत कर पञ्चमीको एक बार भोजन करे, षष्ठीको जितक्रोध, जितेन्द्रिय होकर पूर्ण उपवास करे और

१-क्रियायोगका वर्णन सभी पुराणोंमें मिलता है, विशेषरूपसे पद्मपुराणका क्रियायोगसार-खण्ड द्रष्टव्य है।

२-उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह। उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः॥ (ब्राह्मपर्व ६४।४)

भक्तिके साथ सभी सामग्रियोंसे सूर्यनारायणकी पूजा करे। रातमें भगवान् सूर्यके सम्मुख पृथ्वीपर शयन करे। सप्तमीको सूर्य भगवान्‌का ध्यान करते हुए प्रातः उठकर स्नान-पूजन करे और खजूर, नारियल, आम, मातुलुंग आदि नैवेद्योंका भोग लगाये और ब्राह्मणको दे तथा स्वयं भी प्रसादके रूपमें उन्हें ग्रहण करे। यदि ये फल न मिलें तो शालि (चावल) का या गेहूँका आटा लेकर उसमें गुड़ मिलाये और घीमें पकाकर उनका ही भगवान् सूर्यको भोग लगाये, अनन्तर हवन कर ब्राह्मण-भोजन कराये। इस प्रकार एक वर्षतक सप्तमीका व्रत कर अन्तमें उद्यापन करे। गोमूत्र, गोमय, गोदुग्ध, दही, घी, कुशका जल, श्वेत मृत्तिका, तिल और सरसोंका उबटन, दूर्वा, गौके सींगका जल, चमेलीके फूलके रस—इनसे स्नान करे और इनका ही प्राशन करे। ये सभी पापोंका हरण करनेवाले हैं। सभी प्रकारके फल, सस्यसम्पन्न भूमि, धान्ययुक्त भवन, बछड़ेके साथ गौ, विद्रुमके साथ ताम्रपात्र और श्वेत वस्त्र ब्राह्मणोंको दे। जो शक्ति-सम्पन्न हो वह चाँदी अथवा आटेके पिष्टक, फल तथा दो वस्त्र दे। सोना, रत्न और वस्त्र आचार्यको दे। ब्राह्मणको भोजन कराये। इस प्रकार व्रतको सम्पन्न करे। यह फल-सप्तमीका विधान कहा गया है।

यह अतिशय पुण्यमयी सप्तमी सभी पापोंका नाश करनेवाली है। इस दिन उपवासकर मनुष्य सूर्यलोकको प्राप्त करता है। वहाँ देव, गन्धर्व और अप्सराओंके साथ पूजित होता है। इस व्रतको जो करता है, वह पाप, दरिद्रता और सभी प्रकारके दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। इस व्रतके करनेसे ब्राह्मण मुक्ति, क्षत्रिय इन्द्रलोक, वैश्य कुबेर-लोकमें निवास करता है। शूद्र इस व्रतके करनेसे द्विजत्व प्राप्त कर लेता है। पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है, दुर्भगा सौभाग्यशालिनी होती है और विधवा नारी अगले जन्ममें वैधव्य प्राप्त नहीं करती। इस फल-सप्तमीको समस्त वाञ्छित पदार्थोंको प्रदान करनेवाली चिन्तामणिके समान समझना चाहिये। इस फल-सप्तमीकी कथाके श्रवण अथवा व्रत करनेवालोंकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। (अध्याय ६४)

रहस्य-सप्तमी-व्रतके दिन त्याज्य पदार्थका निषेध तथा व्रतका विधान एवं फल

ब्रह्माजीने कहा—दिण्डिन्! अब मैं रहस्य-सप्तमी-व्रतका विधान कह रहा हूँ। इस व्रतके करनेसे अपनेसे आगे आनेवाली सात पीढ़ी तथा पीछेकी भी सात पीढ़ीके कुलोंका उद्धार हो जाता है। जो इस व्रतका नियमसे पालन करता है, उसे धन, पुत्र, आरोग्य, विद्या, विनय, धर्म तथा अप्राप्य वस्तुकी भी प्राप्ति हो जाती है। इस व्रतके नियम इस प्रकार हैं—सबमें मैत्रीभाव रखते हुए भगवान् सूर्यका चिन्तन करता रहे। मनुष्यको व्रतके दिन न तैलका स्पर्श करना चाहिये, न नीला वस्त्र धारण करना चाहिये तथा न आँवलेसे स्नान करना चाहिये। किसीसे कलह तो करे ही नहीं। इस दिन नीला वस्त्र धारण करके जो सत्कर्म करता है, वह निष्फल होता है। जो ब्राह्मण इस व्रतके दिन एक बार नीला वस्त्र धारण कर ले तो उसे उचित है कि स्वयंकी शुद्धिके लिये उपवास करके पञ्चगव्य-प्राशन करे, तभी वह शुद्ध होता है। यदि अज्ञानवश नील वृक्षकी लकड़ीसे कोई ब्राह्मण दन्तधावन कर लेता है तो वह दो चान्द्रायण-व्रत करनेसे शुद्ध होता है। इस दिन रोमकूपमें नीले रंगके प्रवेश करनेमात्रसे ही तीन कृच्छ्र-चान्द्रायण-व्रत करनेसे शुद्धि होती है। जो व्यक्ति प्रमादवश नील वृक्षके उद्यानमें चला जाता है वह पञ्चगव्य-प्राशनसे ही शुद्ध होता है। जहाँ नील एक बार बोयी जाती है, वह भूमि बारह वर्षतक अपवित्र रहती है।

रहस्य-सप्तमी-व्रतके दिन जो तैलका स्पर्श करता है, उसकी प्रिय भार्या नष्ट हो जाती है, अतः तैलका स्पर्श नहीं करना चाहिये। इस तिथिको किसीके साथ द्रोह और क्रूरता भी करना उचित नहीं है। इस दिन गीत गाना, नृत्य करना, वीणादि वाद्ययन्त्र बजाना, शव देखना, व्यर्थमें हँसना, स्त्रीके साथ शयन करना, द्यूत-क्रीडा, रोना, दिनमें सोना, असत्य बोलना, दूसरेके अनिष्टका चिन्तन करना, किसी भी जीवको कष्ट देना, अत्यधिक भोजन करना, गली-कूचोंमें घूमना, दम्भ, शोक, शठता तथा क्रूरता—इन सबका प्रयत्नपूर्वक परित्याग कर देना चाहिये।

इस व्रतका आरम्भ चैत्र माससे करना चाहिये। व्रत

करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह चैत्रादि मासोंमें धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पर्जन्य, पूषा, भग, त्वष्टा, विष्णु तथा भास्कर—इन द्वादश सूर्योंका क्रमशः पूजन करे। प्रत्येक सप्तमीके दिन भोजक ब्राह्मणको घीके साथ भोजन कराकर उसे घृतसहित पात्र, एक माशा सुवर्ण और दक्षिणा देनी चाहिये। यदि भोजक न मिल सके तो श्रेष्ठ ब्राह्मणको ही भोजककी भाँति भोजन कराकर वही वस्तुएँ दानमें देनी चाहिये।

हे दिण्डिन्! इस प्रकार मैंने सप्तमीके इस माहात्म्यका वर्णन किया, जिसके श्रवणमात्रसे भी सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

सुमन्तु बोले—राजन्! इतना कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और दिण्डी भी उनके द्वारा बताये गये इस व्रतके अनुसार सूर्यनारायणका पूजन करके अपने मनोवाञ्छित फलको प्राप्त करनेमें सफल हुए और भगवान् सूर्यके अनुचर हो गये। (अध्याय ६५)

शंख एवं द्विज, वसिष्ठ एवं साम्ब तथा याज्ञवल्क्य और ब्रह्माके संवादमें आदित्यकी आराधनाका माहात्म्य-कथन, भगवान् सूर्यकी ब्रह्मरूपता

राजा शतानीकने कहा—मुने! आप भगवान् सूर्यनारायणके प्रभावका और भी वर्णन करें। आपकी अमृतमयी वाणी सुन-सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! इस विषयमें शंख और द्विजका जो संवाद हुआ है, उसे आप सुनें, जिसे सुनकर मानव सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।

एक अत्यन्त रमणीय आश्रम था, जिसमें सभी वृक्ष फलोंके भारसे झुक रहे थे। कहीं मृग अपनी सींगोंसे परस्पर एक-दूसरेके शरीरमें खुजला रहे थे, किसी दिशामें मयूरोंका नृत्य और भ्रमरोंकी मधुर ध्वनिका गुंजार हो रहा था। ऐसे मनोहारी आश्रममें अनेक तपस्वियोंसे सेवित भगवान् सूर्यके अनन्य भक्त शंख नामके एक मुनि रहते थे। एक बार भोजक-कुमारोंने मुनिके समीप जाकर विनयपूर्वक अभिवादन कर निवेदन किया—महाराज! वेदोंके विषयमें हमें संदेह है। आप उसका निवारण करें। उन विनयी भोजकोंकी इस प्रार्थनाको सुनकर प्रसन्न हुए शंखमुनि उन सभीको वेदाध्ययन कराने लगे। एक दिन वे सभी कुमार वेदका अध्ययन कर रहे थे, उसी समय परम तपस्वी द्विज नामके एक श्रेष्ठ मुनि वहाँ आये। अमित तेजस्वी उन शंख मुनिने उनकी विधिवत् अर्चना की और उन्हें आसनपर बैठाया। उन कुमारोंने भी उनकी वन्दना की, जिससे द्विज बहुत प्रसन्न हुए।

शंख मुनिने उन भोजक-कुमारोंसे कहा—शिष्ट पुरुषके आगमनसे अनध्याय होता है। अतः तुम सब इस समय अपना अध्ययन समाप्त करो। यह सुनते ही कुमारोंने अपने-अपने ग्रन्थ बंद कर दिये।

द्विजने शंख मुनिसे पूछा—ये बालक कौन हैं और क्या पढ़ते हैं?

शंख मुनिने कहा—महाराज! ये भोजक-कुमार हैं। सूत्र और कल्पके साथ चारों वेद, सूर्यनारायणके पूजन और हवनका विधान, प्रतिष्ठाविधि, रथयात्राकी रीति तथा सप्तमी तिथिके कल्पका ये अध्ययन कर रहे हैं।

द्विजने पुनः पूछा—मुने! सप्तमी-व्रतका क्या विधान है और भगवान् सूर्यके अर्चनकी क्या विधि है? सूर्य-मन्दिरमें गन्ध, पुष्प, दीप आदि देनेसे क्या फल प्राप्त होता है? किस व्रत, नियम और दानसे भगवान् सूर्य प्रसन्न होते हैं? उन्हें कौन-से पुष्प-धूप तथा उपहार दिये जाते हैं? यह सब मैं सुनना चाहता हूँ, इसे आप बतायें। सूर्यनारायणके माहात्म्यकी भी विशेषरूपसे चर्चा करें।

शंख मुनिने कहा—इस प्रसंगमें मैं महाराज साम्ब और महर्षि वसिष्ठके संवादका वर्णन कर रहा हूँ।

एक बार साम्ब महर्षि वसिष्ठके पवित्र आश्रमपर गये। वहाँ जाकर उन्होंने नियतात्मा वसिष्ठके चरणोंमें प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर विनीत भावसे खड़े हो गये। महर्षि वसिष्ठने भी उनके भक्तिभावको देखकर प्रसन्न-मनसे उनसे पूछा।

वसिष्ठ बोले—साम्ब! तुम्हारा तो सम्पूर्ण शरीर

भयंकर कुष्ठ-रोगसे विदीर्ण हो गया था, वह सर्वथा रोगमुक्त कैसे हुआ और तुम्हारे शरीरकी दिव्य कान्ति एवं शोभा कैसे बढ़ गयी ? यह सब मुझे बताओ।

साम्बने कहा—महाराज ! मैंने भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना उनके सहस्रनामोंद्वारा की है। उसी आराधनाके प्रभावसे उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे साक्षात् दर्शन दिया है और उनसे मुझे वरकी भी प्राप्ति हुई है।

वसिष्ठने पुनः पूछा—तुमने किस विधिसे सूर्यकी आराधना की है ? तुम्हें किस व्रत, तप अथवा दानसे उनका साक्षात् दर्शन हुआ ? यह सब विस्तारसे बतलाओ।

साम्बने कहा—महाराज ! जिस विधिसे मैंने भगवान् सूर्यको प्रसन्न किया है, वह समस्त वृत्तान्त आप ध्यान-पूर्वक सुनें।

आजसे बहुत पहले मैंने अज्ञानवश दुर्वासा मुनिका उपहास किया था। इसलिये क्रोधमें आकर उन्होंने मुझे कुष्ठरोगसे ग्रस्त होनेका शाप दे दिया, जिससे मैं कुष्ठरोगी हो गया। तब अत्यन्त दुःखी एवं लज्जित होते हुए मैंने अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर निवेदन किया—'तात ! मैं दुर्वासा मुनिके शापसे कुष्ठरोगसे ग्रस्त होकर अत्यधिक पीडित हो रहा हूँ, मेरा शरीर गलता जा रहा है। कण्ठका स्वर भी बैठता जा रहा है। पीड़ासे प्राण निकल रहे हैं। वैद्यों आदिके द्वारा उपचार करानेपर भी मुझे शान्ति नहीं मिलती। अब आपकी आज्ञा प्राप्त कर मैं प्राण त्यागना चाहता हूँ। अतः आप मुझे यह आज्ञा देनेकी कृपा करें, जिससे मैं इस कष्टसे मुक्त हो सकूँ।' मेरा यह दीन वचन सुनकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने क्षणभर विचार कर मुझसे कहा—'पुत्र ! धैर्य धारण करो, चिन्ता मत करो, क्योंकि जैसे सूखे तिनकेको आग जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही चिन्ता करनेसे रोग और अधिक कष्ट देता है। भक्तिपूर्वक तुम देवाराधन करो। उससे सभी रोग नष्ट हो जायँगे।' पिताके ऐसे वचन सुनकर मैंने पूछा—'तात ! ऐसा कौन देवता है, जिसकी आराधना करनेसे इस भयंकर रोगसे मैं मुक्ति पा सकूँ ?'

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पुत्र ! एक समयकी बात है, योगिश्रेष्ठ याज्ञवल्क्य मुनिने ब्रह्मलोकमें जाकर पद्मयोनि ब्रह्माजीको प्रणाम किया और उनसे पूछा कि महाराज ! मोक्ष प्राप्त करनेके इच्छुक प्राणीको किस देवताकी आराधना करनी चाहिये ? अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति किस देवताकी उपासना करनेसे होती है ? यह चराचर विश्व किससे उत्पन्न हुआ है और किसमें लीन होता है ? इन सबका आप वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—महर्षे ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है। यह सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं आपके प्रश्नोंका उत्तर दे रहा हूँ, इसे ध्यानपूर्वक सुनें—जो देवश्रेष्ठ अपने उदयके साथ ही समस्त जगत्का अन्धकार नष्ट कर तीनों लोकोंको प्रतिभासित कर देते हैं, वे अजर-अमर, अव्यय, शाश्वत, अक्षय, शुभ-अशुभके जाननेवाले, कर्मसाक्षी, सर्वदेवता और जगत्के स्वामी हैं। उनका मण्डल कभी क्षय नहीं होता। वे पितरोंके पिता, देवताओंके भी देवता, जगत्के आधार, सृष्टि, स्थिति तथा संहारकर्ता हैं। योगी पुरुष वायुरूप होकर जिनमें लीन हो जाते हैं, जिनकी सहस्र रश्मियोंमें मुनि, सिद्धगण और देवता निवास करते हैं, जनक, व्यास, शुकदेव, बालखिल्य, आदि ऋषिगण, पञ्चशिख आदि योगिगण जिनके प्रभा-मण्डलमें प्रविष्ट हुए हैं, ऐसे वे प्रत्यक्ष देवता सूर्यनारायण ही हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदिका नाम तो मात्र सुननेमें ही आता है, पर सभीको वे दृष्टिगोचर नहीं होते, किंतु तिमिरनाशक सूर्यनारायण सभीको प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं। इसलिये ये सभी देवताओंमें श्रेष्ठतम हैं। अतः याज्ञवल्क्य ! आपको भी सूर्यनारायणके अतिरिक्त अन्य किसी देवताकी उपासना नहीं करनी चाहिये। इन प्रत्यक्ष देवताकी आराधना करनेसे सभी फल प्राप्त हो सकते हैं।

याज्ञवल्क्य मुनिने कहा—महाराज ! आपने मुझे बहुत ही उत्तम उपदेश दिया है, जो बिल्कुल सत्य है, मैंने पहले भी बहुत बार सूर्यनारायणके माहात्म्यको सुना है। जिनके दक्षिण अङ्गसे विष्णु, वाम अङ्गसे स्वयं आप और ललाटसे रुद्र उत्पन्न हुए हैं, उनकी तुलना और कौन देवता कर सकते हैं ? उनके गुणोंका वर्णन भला किन शब्दोंमें किया जा सकता है ? अब मैं उनकी उस आराधना-विधिको सुनना चाहता हूँ, जिसके द्वारा मैं संसार-सागरको पार कर जाऊँ। वे कौन-से व्रत-उपवास-दान, होम-जप आदि हैं, जिनके करनेसे सूर्यनारायण प्रसन्न होकर समस्त कष्टोंको दूर कर देते हैं ? यह सब आप बतलानेकी कृपा करें; क्योंकि प्राणियोंद्वारा

धर्म, अर्थ तथा कामकी प्राप्तिके लिये जो चेष्टाएँ की जाती हैं, उनमें वही चेष्टा सफल है जो भगवान् सूर्यका आश्रय ग्रहण कर अनुष्ठित हो। अन्यथा वे सभी क्रियाएँ व्यर्थ हैं। इस अपार घोर संसार-सागरमें निमग्न प्राणियोंद्वारा एक बार भी किया गया सूर्यनमस्कार मुक्तिको प्राप्त करा देता है[1]। भक्तिभावसे परिपूर्ण याज्ञवल्क्यके इन वचनोंको सुनकर ब्रह्माजी प्रसन्न हो उठे और कहने लगे कि याज्ञवल्क्य ! आपने सूर्यनारायणकी आराधनाका जो उपाय पूछा है, उसका मैं वर्णन कर रहा हूँ, एकाग्रचित्त होकर आप सुनें।

ब्रह्माजी बोले—आदि और अन्तसे रहित, सर्वव्याप्त, परब्रह्म अपनी लीलासे प्रकृति-पुरुष-रूप धारण करके संसारको उत्पन्न करनेवाले, अक्षर, सृष्टि-रचनाके समय ब्रह्मा, पालनके समय विष्णु और संहारकालमें रुद्रका रूप धारण करनेवाले सर्वदेवमय, पूज्य भगवान् सूर्यनारायण ही हैं। अब मैं भेदाभेदस्वरूप उन भगवान् सूर्यको प्रणाम करके उनकी आराधनाका वर्णन करूँगा, यह अत्यन्त गुप्त है, जिसे प्रसन्न होकर भगवान् भास्करने मुझसे कहा था।

ब्रह्माजी पुनः बोले—याज्ञवल्क्य ! एक बार मैंने भगवान् सूर्यनारायणकी स्तुति की। उस स्तुतिसे प्रसन्न होकर वे प्रत्यक्ष प्रकट हुए, तब मैंने उनसे पूछा कि महाराज ! वेद-वेदाङ्गोंमें और पुराणोंमें आपका ही प्रतिपादन हुआ है। आप शाश्वत, अज तथा परब्रह्मस्वरूप हैं। यह जगत् आपमें ही स्थित है। गृहस्थाश्रम जिनका मूल है, ऐसे वे चारों आश्रमोंवाले रात-दिन आपकी अनेक मूर्तियोंका पूजन करते हैं। आप ही सबके माता-पिता और पूज्य हैं। आप किस देवताका ध्यान एवं पूजन करते हैं ? मैं इसे नहीं समझ पा रहा हूँ, इसे मैं सुनना चाहता हूँ, मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है।

भगवान् सूर्यने कहा—ब्रह्मन् ! यह अत्यन्त गुप्त बात है, किंतु आप मेरे परम भक्त हैं, इसलिये मैं इसका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ—वे परमात्मा सभी प्राणियोंमें व्याप्त, अचल, नित्य, सूक्ष्म तथा इन्द्रियातीत हैं, उन्हें क्षेत्रज्ञ, पुरुष, हिरण्यगर्भ, महान्, प्रधान तथा बुद्धि आदि अनेक नामोंसे अभिहित किया जाता है। जो तीनों लोकोंके एकमात्र आधार हैं, वे निर्गुण होकर भी अपनी इच्छासे सगुण हो जाते हैं, सबके साक्षी हैं, स्वतः कोई कर्म नहीं करते और न तो कर्मफलकी प्राप्तिसे संलिप्त रहते हैं। वे परमात्मा सब ओर सिर, नेत्र, हाथ, पैर, नासिका, कान तथा मुखवाले हैं, वे समस्त जगत्को आच्छादित करके अवस्थित हैं तथा सभी प्राणियोंमें स्वच्छन्द होकर आनन्दपूर्वक विचरण करते हैं।

शुभाशुभ कर्मरूप बीजवाला शरीर क्षेत्र कहलाता है। इसे जाननेके कारण परमात्मा क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं। वे अव्यक्तपुरमें शयन करनेसे पुरुष, बहुत रूप धारण करनेसे विश्वरूप और धारण-पोषण करनेके कारण महापुरुष कहे जाते हैं। ये ही अनेक रूप धारण करते हैं। जिस प्रकार एक ही वायु शरीरमें प्राण-अपान आदि अनेक रूप धारण किये हुए है और जैसे एक ही अग्नि अनेक स्थान-भेदोंके कारण अनेक नामोंसे अभिहित की जाती है, उसी प्रकार परमात्मा भी अनेक भेदोंके कारण बहुत रूप धारण करते हैं। जिस प्रकार एक दीपसे हजारों दीप प्रज्वलित हो जाते हैं, उसी प्रकार एक परमात्मासे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है। जब वह अपनी इच्छासे संसारका संहार करता है, तब फिर एकाकी ही रह जाता है। परमात्माको छोड़कर जगत्में कोई स्थावर या जंगम पदार्थ नित्य नहीं है, क्योंकि वे अक्षय, अप्रमेय और सर्वज्ञ कहे जाते हैं। उनसे बढ़कर कोई अन्य नहीं है, वे ही पिता हैं, वे ही प्रजापति हैं, सभी देवता और असुर आदि उन परमात्मा भास्करदेवकी आराधना करते हैं और वे उन्हें सद्गति प्रदान करते हैं। वे सर्वगत होते हुए भी निर्गुण हैं। उसी आत्मस्वरूप परमेश्वरका मैं ध्यान करता हूँ तथा सूर्यरूप अपने आत्माका ही पूजन करता हूँ। हे याज्ञवल्क्य मुने ! भगवान् सूर्यने स्वयं ही ये बातें मुझसे कही थीं। (अध्याय ६६-६७)

१-दुर्गसंसारकान्तारमपारमभिधावताम्। एकः सूर्यनमस्कारो मुक्तिमार्गस्य देशकः॥

(ब्राह्मपर्व ६६।७२)

सूर्यनारायणके प्रिय पुष्प, सूर्यमन्दिरमें मार्जन-लेपन आदिका फल, दीपदानका फल तथा सिद्धार्थ-सप्तमी-व्रतका विधान और फल

ब्रह्माजी बोले—याज्ञवल्क्य ! एक बार मैंने भगवान् सूर्यनारायणसे उनके प्रिय पुष्पोंके विषयमें जिज्ञासा की। तब उन्होंने कहा था कि मल्लिका-(बेला फूलकी एक जाति) पुष्प मुझे अत्यन्त प्रिय है। जो मुझे इसे अर्पण करता है, वह उत्तम भोगोंको प्राप्त करता है। मुझे श्वेत कमल अर्पण करनेसे सौभाग्य, सुगन्धित कुटज-पुष्पसे अक्षय ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है तथा मन्दार-पुष्पसे सभी प्रकारके कुष्ठ-रोगोंका नाश होता है और बिल्व-पत्रसे पूजन करनेपर विपुल सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है। मन्दार-पुष्पकी मालासे सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति, बकुल-(मौलसिरी-) पुष्पकी मालासे रूपवती कन्याका लाभ, पलाशपुष्पसे अरिष्ट-शान्ति, अगस्त्य-पुष्पसे पूजन करनेपर (मेरा) सूर्यनारायणका अनुग्रह तथा करवीर-(कनैल-) पुष्प समर्पित करनेसे मेरे अनुचर होनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। बेलाके पुष्पोंसे सूर्यकी (मेरी) पूजा करनेपर मेरे लोककी प्राप्ति होती है। एक हजार कमल-पुष्प चढ़ानेपर मेरे (सूर्य) लोकमें निवास करनेका फल प्राप्त होता है। बकुल-पुष्प अर्पित करनेसे भानुलोक प्राप्त होता है। कस्तूरी, चन्दन, कुंकुम तथा कपूरके योगसे बनाये गये यक्षकर्दम गन्धका लेपन करनेसे सद्गति प्राप्त होती है। सूर्यभगवान्‌के मन्दिरका मार्जन तथा उपलेपन करनेवाला सभी रोगोंसे मुक्त हो जाता है और उसे शीघ्र ही प्रचुर धनकी प्राप्ति होती है। जो भक्तिपूर्वक गेरूसे मन्दिरका लेपन करता है, उसे सम्पत्ति प्राप्त होती है और वह रोगोंसे मुक्ति प्राप्त करता है और यदि मृत्तिकासे लेपन करता है तो उसे अठारह प्रकारके कुष्ठरोगोंसे मुक्ति मिल जाती है।

सभी पुष्पोंमें करवीरका पुष्प और समस्त विलेपनोंमें रक्तचन्दनका विलेपन मुझे अधिक प्रिय है। करवीरके पुष्पोंसे जो सूर्यभगवान्‌की (मेरी) पूजा करता है, वह संसारके सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें स्वर्गलोकमें निवास करता है।

मन्दिरमें लेपन करनेके पश्चात् मण्डल बनानेपर सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। एक मण्डल बनानेसे अर्थकी प्राप्ति, दो मण्डल बनानेसे आरोग्य, तीन मण्डलकी रचना करनेसे अविच्छिन्न संतान, चार मण्डल बनानेसे लक्ष्मी, पाँच मण्डल बनानेसे विपुल धन-धान्य, छः मण्डलोंकी रचना करनेसे आयु, बल और यश तथा सात मण्डलोंकी रचना करनेसे मण्डलका अधिपति होता है तथा आयु, धन, पुत्र और राज्यकी प्राप्ति होती है एवं अन्तमें उसे सूर्यलोक मिलता है।

मन्दिरमें घृतका दीपक प्रज्वलित करनेसे नेत्र-रोग नहीं होता। महुएके तेलका दीपक जलानेसे सौभाग्य प्राप्त होता है, तिलके तेलका दीपक जलानेसे सूर्यलोक तथा कड़ुआ तेलसे दीपक जलानेपर शत्रुओंपर विजय प्राप्त होती है।

सर्वप्रथम गन्ध-पुष्प-धूप-दीप आदि उपचारोंसे सूर्यका पूजन कर नाना प्रकारके नैवेद्य निवेदित करने चाहिये। पुष्पोंमें चमेली और कनेरके पुष्प, धूपोंमें विजय-धूप, गन्धोंमें कुंकुम, लेपोंमें रक्तचन्दन, दीपोंमें घृतदीप तथा नैवेद्योंमें मोदक भगवान् सूर्यनारायणको परम प्रिय हैं। अतः इन्हीं वस्तुओंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। पूजन करनेके पश्चात् प्रदक्षिणा और नमस्कार करके हाथमें श्वेत सरसोंका एक दाना और जल लेकर सूर्यभगवान्‌के सम्मुख खड़े होकर हृदयमें अभीष्ट कामनाका चिन्तन करते हुए सरसोंसहित जलको पी जाना चाहिये, परंतु दाँतोंसे उसका स्पर्श नहीं हो। इसी प्रकार दूसरी सप्तमीको श्वेत सर्षप (पीली सरसों) के दो दाने जलके साथ पान करना चाहिये और इसी तरह सातवीं सप्तमीतक एक-एक दाना बढ़ाते हुए इस मन्त्रसे उसे अभिमन्त्रित करके पान करना चाहिये—

सिद्धार्थकस्त्वं हि लोके सर्वत्र श्रूयसे यथा।
तथा मामपि सिद्धार्थमर्थतः कुरुतां रविः॥

(ब्राह्मपर्व ६८। ३६)

तदनन्तर शास्त्रोक्त रीतिसे जप और हवन करना चाहिये। यह भी विधि है कि प्रथम सप्तमीके दिन जलके साथ सिद्धार्थ (सरसों) का पान करे, दूसरी सप्तमीको घृतके साथ और आगे शहद, दही, दूध, गोमय और पञ्चगव्यके साथ क्रमशः एक-एक सिद्धार्थ बढ़ाते हुए सातवीं सप्तमीतक सिद्धार्थका पान करे। इस प्रकार जो सर्षप-सप्तमीका व्रत करता है, वह बहुत-सा धन, पुत्र और ऐश्वर्य प्राप्त करता है। उसकी सभी मनःकामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और वह सूर्यलोकमें निवास करता है। (अध्याय ६८)

शुभाशुभ स्वप्न और उनके फल

ब्रह्माजी बोले—याज्ञवल्क्य ! जो व्यक्ति सप्तमीमें उपवास करके विधिपूर्वक सूर्यनारायणका पूजन, जप एवं हवन आदि क्रियाएँ सम्पन्नकर रात्रिके समय भगवान् सूर्यका ध्यान करते हुए शयन करता है, तब उसे रात्रिमें जो स्वप्न दिखायी देते हैं, उन स्वप्न-फलोंका मैं अब वर्णन कर रहा हूँ। यदि स्वप्नमें सूर्यका उदय, इन्द्रध्वज और चन्द्रमा दिखायी दे तो सभी समृद्धियाँ प्राप्त होती हैं। माला पहने व्यक्ति, गाय या वंशीकी आवाज, श्वेत कमल, चामर, दर्पण, सोना, तलवार, पुत्रकी प्राप्ति, रुधिरका थोड़ा या अधिक मात्रामें निकलना तथा पान करना ऐसा स्वप्न देखनेसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। घृताक्त प्रजापतिके दर्शनसे पुत्र-प्राप्तिका फल होता है। स्वप्नमें प्रशस्त वृक्षपर चढ़े अथवा अपने मुखमें महिषी, गौ या सिंहनीका दोहन करे तो शीघ्र ही ऐश्वर्य प्राप्त होता है। सोने या चाँदीके पात्रमें अथवा कमल-पत्रमें जो स्वप्नमें खीर खाता है उसे बलकी प्राप्ति होती है। द्यूत, वाद तथा युद्धमें विजयप्राप्तिका जो स्वप्न देखता है, वह सुख प्राप्त करता है। स्वप्नमें जो अग्नि-पान करता है, उसके जठराग्निकी वृद्धि होती है। यदि स्वप्नमें अपने अङ्ग प्रज्वलित होते दिखायी दें और सिरमें पीड़ा हो तो सम्पत्ति मिलती है। श्वेत वर्णके वस्त्र, माला और प्रशस्त पक्षीका दर्शन शुभ होता है। देवता-ब्राह्मण, आचार्य, गुरु, वृद्ध तथा तपस्वी स्वप्नमें जो कुछ कहते हैं, वह सत्य होता है[1]। स्वप्नमें सिरका कटना अथवा फटना, पैरोंमें बेड़ीका पड़ना, राज्य-प्राप्तिका संकेतक है। स्वप्नमें रोनेसे हर्षकी प्राप्ति होती है। घोड़ा, बैल, श्वेत कमल तथा श्रेष्ठ हाथीपर निडर होकर चढ़नेसे महान् ऐश्वर्य प्राप्त होता है। ग्रह और ताराओंका ग्रास देखे, पृथ्वीको उलट दे और पर्वतको उखाड़ फेंके तो राज्यका लाभ होता है। पेटसे आँत निकले और उससे वृक्षको लपेटे, पर्वत-समुद्र तथा नदी पार करे तो अत्यधिक ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। सुन्दर स्त्रीके गोदमें बैठे और बहुत-सी स्त्रियाँ आशीर्वाद दें, शरीरको कीड़े भक्षण करें, स्वप्नमें स्वप्नका ज्ञान हो, अभीष्ट बात सुनने और कहनेमें आये तथा मङ्गलदायक पदार्थोंका दर्शन एवं प्राप्ति हो तो धन और आरोग्यका लाभ होता है। जिन स्वप्नोंका फल राज्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति है, यदि उन स्वप्नोंको रोगी देखता है तो वह रोगसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार रात्रिमें स्वप्न देखनेके पश्चात् प्रातःकाल स्नानकर राजा-ब्राह्मण अथवा भोजकको अपना स्वप्न सुनाना चाहिये[2]।

(अध्याय ६९)

सिद्धार्थ-(सर्षप-) सप्तमी-व्रतके उद्यापनकी विधि

ब्रह्माजी बोले—याज्ञवल्क्य ! सिद्धार्थ-सप्तमीके व्रतके अनन्तर दूसरे दिन स्नान-पूजन-जप तथा हवन आदि करके भोजक, पुराणवेत्ता और वेद-पारङ्गत ब्राह्मणोंको भोजन कराकर लाल वस्त्र, दूध देनेवाली गाय, उत्तम भोजन तथा जो-जो पदार्थ अपनेको प्रिय हों, वे सब मध्याह्नकालमें भोजकोंको दान देने चाहिये। यदि भोजक न प्राप्त हो सकें तो पौराणिकको और पौराणिक न मिल सकें तो सामवेद जाननेवाले मन्त्रवित् ब्राह्मणको ये सभी वस्तुएँ देनी चाहिये। मुने ! यह सिद्धार्थ-सप्तमीके उद्यापनकी संक्षिप्त विधि है।

इस प्रकार भक्तिपूर्वक सात सप्तमीका व्रत करनेसे अनन्त सुखकी प्राप्ति होती है और दस अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। इस व्रतसे सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। गरुड़को देखकर सर्प आदिकी तरह कुष्ठ आदि सभी रोग इसके अनुष्ठानसे दूर भागते हैं। व्रत-नियम तथा तप करके सात सप्तमीको व्रत करनेसे मनुष्य विद्या, धन, पुत्र, भाग्य, आरोग्य और धर्मको तथा अन्त समयमें सूर्यलोकको प्राप्त कर लेता है।

१-देवद्विजजनाचार्यगुरुवृद्धतपस्विनः ॥
यद्यद्वदन्ति तत्सर्वं सत्यमेव हि निर्दिशेत्। (ब्राह्मपर्व ६९। १४-१५)

२-भारत तथा विदेशोंमें भी मैटिनी आदिके 'डिक्शनरी ऑफ ड्रीम्स' आदि अनेक ग्रन्थ हैं। बृहस्पतिप्रोक्त 'स्वप्नाध्याय' ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध है। वाल्मीकीय रामायणमें त्रिजटाके स्वप्नका वर्णन ध्येय है। स्वप्नका योगसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। सभीके संयुक्त अध्ययनसे साधकोंको विशेष लाभ हो सकता है।

इस सप्तमी-व्रतकी विधिका जो श्रवण करता है अथवा उसे पढ़ता है, वह भी सूर्यनारायणमें लीन हो जाता है। देवता और मुनि भी इस व्रतके माहात्म्यको सुनकर सूर्यनारायणके भक्त हो गये हैं। जो पुरुष इस आख्यानका स्वयं श्रवण करता है अथवा दूसरेको सुनाता है तो वे दोनों सूर्यलोकको जाते हैं। रोगी यदि इसका श्रवण करे तो रोगमुक्त हो जाता है। इस व्रतकी जिज्ञासा रखनेवाला भक्त अभिलषित इच्छाओंको प्राप्त करता है और सूर्यलोकको जाता है। यदि इस आख्यानको पढ़कर यात्रा की जाय तो मार्गमें विघ्न नहीं आते और यात्रा सफल होती है। जो कोई भी जिस पदार्थकी कामना करता है, वह उसे निश्चित प्राप्त कर लेता है। गर्भिणी स्त्री इस आख्यानको सुने तो वह सुखपूर्वक पुत्रको जन्म देती है, वन्ध्या सुने तो संतान प्राप्त करती है। याज्ञवल्क्य! यह सब कथा सूर्यनारायणने मुझसे कही थी और मैंने आपको सुना दी और अब आप भी भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणकी आराधना करें, जिससे सभी पातक नष्ट हो जायँ। उदित होते ही जो अपनी किरणोंसे संसारका अन्धकार दूरकर प्रकाश फैलाते हैं, वे द्वादशात्मा सूर्यनारायण ही जगत्‌के माता-पिता तथा गुरु हैं, अदिति-पुत्र भगवान् सूर्य आपपर प्रसन्न हों।

(अध्याय ७०)

ब्रह्माद्वारा कहा गया भगवान् सूर्यका नाम-स्तोत्र

ब्रह्माजी बोले—याज्ञवल्क्य! भगवान् सूर्य जिन नामोंके स्तवनसे प्रसन्न होते हैं, मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ—

नमः सूर्याय नित्याय रवयेऽर्काय भानवे।
भास्कराय मतङ्गाय मार्तण्डाय विवस्वते॥

नित्य, रवि, अर्क, भानु, भास्कर, मतङ्ग, मार्तण्ड तथा विवस्वान् नामोंसे युक्त भगवान् सूर्यको मेरा नमस्कार है।

आदित्यायादिदेवाय नमस्ते रश्मिमालिने।
दिवाकराय दीप्ताय अग्नये मिहिराय च॥

आदिदेव, रश्मिमाली, दिवाकर, दीप्त, अग्नि तथा मिहिर नामक भगवान् आदित्यको मेरा नमस्कार है।

प्रभाकराय मित्राय नमस्तेऽदितिसम्भव।
नमो गोपतये नित्यं दिशां च पतये नमः॥

हे अदितिके पुत्र भगवान् सूर्य! आप प्रभाकर, मित्र, गोपति (किरणोंके स्वामी) तथा दिक्पति नामवाले हैं, आपको मेरा नित्य नमस्कार है।

नमो धात्रे विधात्रे च अर्यम्णे वरुणाय च।
पूष्णे भगाय मित्राय पर्जन्यायांशवे नमः॥

धाता, विधाता, अर्यमा, वरुण, पूषा, भग, मित्र, पर्जन्य, अंशुमान् नामवाले भगवान् सूर्यको मेरा प्रणाम है।

नमो हितकृते नित्यं धर्माय तपनाय च।
हरये हरिताश्वाय विश्वस्य पतये नमः॥

हितकृत् (संसारका कल्याण करनेवाले), धर्म, तपन, हरि, हरिताश्व (हरे रंगके अश्वोंवाले), विश्वपति भगवान् सूर्यको नित्य मेरा नमस्कार है।

विष्णवे ब्रह्मणे नित्यं त्र्यम्बकाय तथात्मने।
नमस्ते सप्तलोकेश नमस्ते सप्तसप्तये॥

विष्णु, ब्रह्मा, त्र्यम्बक (शिव), आत्मस्वरूप, सप्तसप्ति, हे सप्तलोकेश! आपको मेरा नमस्कार है।

एकस्मै हि नमस्तुभ्यमेकचक्ररथाय च।
ज्योतिषां पतये नित्यं सर्वप्राणभृते नमः॥

अद्वितीय, एकचक्ररथ (जिनके रथमें एक ही चक्र है), ज्योतिष्पति, हे सर्वप्राणभृत् (सभी प्राणियोंका भरण-पोषण करनेवाले)! आपको मेरा नित्य नमस्कार है।

हिताय सर्वभूतानां शिवायार्तिहराय च।
नमः पद्मप्रबोधाय नमो वेदादिमूर्तये॥

समस्त प्राणिजगत्‌का हित करनेवाले, शिव (कल्याणकारी) और आर्तिहर (दुःखविनाशी), पद्मप्रबोध (कमलोंको विकसित करनेवाले), वेदादिमूर्ति भगवान् सूर्यको नमस्कार है।

काधिजाय नमस्तुभ्यं नमस्तारासुताय च।
भीमजाय नमस्तुभ्यं पावकाय च वै नमः॥

प्रजापतियोंके स्वामी महर्षि कश्यपके पुत्र! आपको नमस्कार है। भीमपुत्र तथा पावक नामवाले तारासुत! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।

धिषणाय नमो नित्यं नमः कृष्णाय नित्यदा।
नमोऽस्त्वदितिपुत्राय नमो लक्ष्याय नित्यशः॥

धिषण, कृष्ण, अदितिपुत्र तथा लक्ष्य नामवाले भगवान् सूर्यको बार-बार नमस्कार है।

ब्रह्माजीने कहा—याज्ञवल्क्य ! जो मनुष्य सायंकाल और प्रातःकाल इन नामोंका पवित्र होकर पाठ करता है, वह मेरे समान ही मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त करता है। इस नाम-स्तोत्रसे सूर्यकी आराधना करनेपर उनके अनुग्रहसे धर्म, अर्थ, काम, आरोग्य, राज्य तथा विजयकी प्राप्ति होती है। यदि मनुष्य बन्धनमें हो तो इसके पाठसे बन्धनमुक्त हो जाता है। इसके जप करनेसे सभी पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। यह जो सूर्य-स्तोत्र मैंने कहा है, वह अत्यन्त रहस्यमय है।

(अध्याय ७१)

जम्बूद्वीपमें सूर्यनारायणकी आराधनाके तीन प्रमुख स्थान, दुर्वासा मुनिका साम्बको शाप देना

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! ब्रह्माजीसे इस प्रकार उपदेश प्राप्तकर याज्ञवल्क्य मुनिने सूर्यभगवान्‌की आराधना की, जिसके प्रभावसे उन्हें सालोक्य-मुक्ति प्राप्त हुई। अतः भगवान् सूर्यकी उपासना करके आप भी उस देवदुर्लभ मोक्षको प्राप्त कर सकेंगे।

राजा शतानीकने पूछा—मुने ! जम्बूद्वीपमें भगवान् सूर्यदेवका आदि स्थान कहाँ है ? जहाँ विधिपूर्वक आराधना करनेसे शीघ्र ही मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति हो सके।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! इस जम्बूद्वीपमें भगवान् सूर्यनारायणके मुख्य तीन स्थान हैं[1]। प्रथम इन्द्रवन है, दूसरा मुण्डीर तथा तीसरा तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध कालप्रिय (कालपी) नामक स्थान है। इस द्वीपमें इन तीनोंके अतिरिक्त एक अन्य स्थान भी ब्रह्माजीने बतलाया है, जो चन्द्रभागा नदीके तटपर अवस्थित है, जिसको साम्बपुर भी कहा जाता है, वहाँ भगवान् सूर्यनारायण साम्बकी भक्तिसे प्रसन्न होकर लोककल्याणके लिये अपने द्वादश रूपोंमेंसे मित्र-रूपमें निवास करते हैं। जो भक्तिपूर्वक उनका पूजन करता है, उसको वे स्वीकार करते हैं।

राजा शतानीकने पुनः पूछा—महामुने ! साम्ब कौन है ? किसका पुत्र है ? भगवान् सूर्यने उसके ऊपर अपनी कृपा क्यों की ? यह भी आप बतानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! संसारमें द्वादश आदित्य प्रसिद्ध हैं, उनमेंसे विष्णु नामके जो आदित्य हैं, वे इस जगत्‌में वासुदेव श्रीकृष्णरूपमें अवतीर्ण हुए। उनकी जाम्बवती नामकी पत्नीसे महाबलशाली साम्ब नामक पुत्र हुआ। वह शापवश कुष्ठ-रोगसे ग्रस्त हो गया। उससे मुक्त होनेके लिये उसने भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना की और उसीने अपने नामसे साम्बपुर[2] नामक एक नगर बसाया और यहींपर भगवान् सूर्यनारायणकी प्रथम प्रतिमा प्रतिष्ठापित की।

राजा शतानीकने पूछा—महाराज ! साम्बके द्वारा ऐसा कौन-सा अपराध हुआ था, जिससे उसे इतना कठोर शाप मिला। थोड़ेसे अपराधपर तो शाप नहीं मिलता।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! इस वृत्तान्तका वर्णन हम संक्षेपमें कर रहे हैं, आप सावधान होकर सुनें। एक समय रुद्रके अवतारभूत दुर्वासा मुनि तीनों लोकोंमें विचरण करते हुए द्वारकापुरीमें आये, परंतु पीले-पीले नेत्रोंसे युक्त कृश-शरीर, अत्यन्त विकृत रूपवाले दुर्वासाको देखकर साम्ब अपने सुन्दर स्वरूपके अहंकारमें आकर उनके देखने, चलने आदि चेष्टाओंकी नकल करने लगे। उनके मुखके समान अपना ही विकृत मुख बनाकर उन्हींकी भाँति चलने लगे। यह देखकर और 'साम्बको रूप तथा यौवनका अत्यन्त अभिमान है' यह समझकर दुर्वासा मुनिको अत्यधिक क्रोध हो आया। वे क्रोधसे काँपते हुए यह कह उठे—'साम्ब ! मुझे कुरूप और अपनेको अति रूपसम्पन्न मानकर तूने मेरा परिहास किया है। जा, तू शीघ्र ही कुष्ठरोगसे ग्रस्त हो जायगा।'

१-इन तीनों स्थानोंकी विशेष जानकारीके लिये 'कल्याण'के ५३वें वर्षके विशेषाङ्क 'सूर्याङ्क'का 'तीन प्रसिद्ध सूर्य-मन्दिर' नामक अन्तिम लेख देखना चाहिये।

२-यही नगर आगे चलकर 'मूलस्थान' पुनः मुस्लिम शासनमें 'मुल्तान' नामसे प्रसिद्ध हुआ, जो आज पाकिस्तानमें लाहौरके पश्चिम भागमें स्थित है।

ऐसे ही एक बार पुनः परिहास किये जानेके कारण दुर्वासा मुनिको फिर शाप देना पड़ा और उसी शापके फलस्वरूप साम्बसे लोहेका एक मूसल उत्पन्न हुआ, जो समस्त यदुवंशियोंके विनाशका कारण बना।

अतः देवता, गुरु और ब्राह्मण आदिकी अवज्ञा बुद्धिमान् पुरुषको कभी नहीं करनी चाहिये। इन लोगोंके समक्ष सदैव विनम्र ही बना रहना चाहिये और सदा मधुर वाणी ही बोलनी चाहिये। राजन्! ब्रह्माजीने भगवान् शिवके समक्ष जो दो श्लोक पढ़े थे, क्या उनको आपने सुना नहीं है?

यो धर्मशीलो जितमानरोषो विद्याविनीतो न परोपतापी।
स्वदारतुष्टः परदारवर्जितो न तस्य लोके भयमस्ति किंचित्॥
न तथा शशी न सलिलं न चन्दनं नैव शीतलच्छाया।
प्रह्लादयति पुरुषं यथा हिता मधुरभाषिणी वाणी॥

(ब्राह्मपर्व ७३।४७-४८)

'जो धर्मात्मा है तथा जिसने सम्मान एवं क्रोधपर विजय प्राप्त कर ली है, विद्यासे युक्त और विनम्र है, दूसरेको संताप नहीं देता, अपनी स्त्रीसे संतुष्ट है तथा परायी स्त्रीका परित्याग करनेवाला है, ऐसे मनुष्यके लिये संसारमें किंचिन्मात्र भी भय नहीं है।'

'पुरुषको चन्द्रमा, जल, चन्दन और शीतल छाया वैसा आनन्दित नहीं कर पाते हैं, जैसा आनन्द उसे हितकारी मधुर वाणी सुननेसे प्राप्त होता है।'

राजन्! इस प्रकार दुर्वासा मुनिके शापसे साम्बको कुष्ठरोग हुआ था। तदनन्तर उसने भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना करके पुनः अपने सुन्दर रूप तथा आरोग्यको प्राप्त किया और अपने नामका साम्बपुर नामक एक नगर बसाकर उसमें भगवान् सूर्यको प्रतिष्ठापित किया।

(अध्याय ७२-७३)

सूर्यनारायणकी द्वादश मूर्तियोंका वर्णन

राजा शतानीकने कहा—महामुने! साम्बके द्वारा चन्द्रभागा नदीके तटपर सूर्यनारायणकी जो स्थापना की गयी है, वह स्थान आदिकालसे तो नहीं है, फिर भी आप उस स्थानके माहात्म्यका इतना वर्णन कैसे कर रहे हैं? इसमें मुझे संदेह है।

सुमन्तु मुनि बोले—भारत! वहाँपर सूर्यनारायणका स्थान तो सनातन-कालसे है। साम्बने उस स्थानकी प्रतिष्ठा तो बादमें की है। इसका हम संक्षेपमें वर्णन करते हैं। आप प्रेमपूर्वक उसे सुनें—

इस स्थानपर परमब्रह्मस्वरूप जगत्स्वामी भगवान् सूर्य-नारायणने अपने मित्ररूपमें तप किया है। वे ही अव्यक्त परमात्मा भगवान् सूर्य सभी देवताओं और प्रजाओंकी सृष्टि करके स्वयं बारह रूप धारण कर अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए। इसीसे उनका नाम आदित्य पड़ा। इन्द्र, धाता, पर्जन्य, पूषा, त्वष्टा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, अंशु, विष्णु, वरुण तथा मित्र—ये सूर्य भगवान्की द्वादश मूर्तियाँ हैं। इन सबसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। इनमेंसे प्रथम इन्द्र नामक मूर्ति देवराजमें स्थित है, जो सभी दैत्यों और दानवोंका संहार करती है। दूसरी धाता नामक मूर्ति प्रजापतिमें स्थित होकर सृष्टिकी रचना करती है। तीसरी पर्जन्य नामक मूर्ति किरणोंमें स्थित होकर अमृतवर्षा करती है। पूषा नामक चौथी मूर्ति मन्त्रोंमें अवस्थित होकर प्रजापोषणका कार्य करती है। पाँचवीं त्वष्टा नामकी जो मूर्ति है, वह वनस्पतियों और ओषधियोंमें स्थित है। छठी मूर्ति अर्यमा प्रजाकी रक्षा करनेके लिये पुरोंमें स्थित है। सातवीं भग नामक मूर्ति पृथ्वी और पर्वतोंमें विद्यमान है। आठवीं विवस्वान् नामक मूर्ति अग्निमें स्थित है और वह प्राणियोंके भक्षण किये हुए अन्नको पचाती है। नवीं अंशु नामक मूर्ति चन्द्रमामें अवस्थित है, जो जगत्को आप्यायित करती है। दसवीं विष्णु नामक मूर्ति दैत्योंका नाश करनेके लिये सदैव अवतार धारण करती है। ग्यारहवीं वरुण नामकी मूर्ति समस्त जगत्की जीवनदायिनी है और समुद्रमें उसका निवास है। इसीलिये समुद्रको वरुणालय भी कहा जाता है। बारहवीं मित्र नामक मूर्ति जगत्का कल्याण करनेके लिये चन्द्रभागा नदीके तटपर विराजमान है। यहाँ सूर्यनारायणने मात्र वायु-पान करके तप किया है और मित्र-रूपसे यहाँपर अवस्थित हैं, इसलिये इस स्थानको मित्रपद (मित्रवन) भी कहते हैं। ये अपनी कृपामयी दृष्टिसे संसारपर अनुग्रह करते हुए भक्तोंको भाँति-भाँतिके वर देकर संतुष्ट करते रहते हैं। यह स्थान

पुण्यप्रद है। महाबाहो! यहींपर अमित तेजस्वी साम्बने सूर्यनारायणकी आराधना करके मनोवाञ्छित फल प्राप्त किया है। उनकी प्रसन्नता और आदेशसे साम्बने यहाँ भगवान् सूर्यको प्रतिष्ठापित किया। जो पुरुष भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको प्रणाम करता है और श्रद्धा-भक्तिसे उनकी आराधना करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है। (अध्याय ७४)

देवर्षि नारदद्वारा सूर्यके विराट्रूप तथा उनके प्रभावका वर्णन

सुमन्तुजी बोले—राजन्! भयंकर कुष्ठरोगका शाप प्राप्तकर दुःखित हो साम्बने अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—तात! मेरा यह कष्ट कैसे दूर होगा? कृपाकर इसका उपाय आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—वत्स! तुम भगवान् सूर्यकी आराधना करो, उससे तुम्हारा यह कुष्ठरोग दूर हो जायगा। तुम देवर्षि नारदद्वारा सूर्यनारायणके आराधना-विधानकी शिक्षा प्राप्त करो। वे प्रसन्न होकर तुम्हें विस्तारसे उनकी आराधनाका विधान बतलायेंगे।

एक दिन नारदजी द्वारकापुरीमें भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये आये। उसी समय साम्बने अत्यन्त विनम्र भावसे जाकर उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रार्थना की। महामुने! मैं आपकी शरण हूँ, आप मेरे ऊपर कृपाकर कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे मेरा शरीर कुष्ठरोगसे मुक्त हो सके और मेरा कष्ट दूर हो जाय।

नारदजीने कहा—साम्ब! सभी देव जिनकी स्तुति करते हैं, उन्हींका तुम भी पूजन करो। उन्हींकी कृपासे तुम रोगसे मुक्त हो जाओगे।

साम्बने पूछा—महाराज! देवगण किसका पूजन और स्तवन करते हैं? आप ही उसे भी बतायें, जिससे मैं उनकी शरणमें जा सकूँ। यह शापाग्नि मुझे दग्ध कर रही है। ऐसे कौन देवता हैं, जो कृपा करके मुझे इस विपत्तिसे मुक्त करा सकेंगे?

नारदजीने कहा—पुत्र! समस्त देवताओंके पूज्य, नमस्कार करने योग्य और निरन्तर स्तुत्य भगवान् सूर्यनारायण ही हैं। तुम उनके प्रभावको सुनो—

किसी समय समस्त लोकोंमें विचरण करता हुआ मैं सूर्यलोकमें पहुँचा। वहाँ मैंने देखा कि देवता, गन्धर्व, नाग, यक्ष, राक्षस और अप्सराएँ सूर्यनारायणकी सेवामें लगे हुए हैं। गन्धर्व गीत गा रहे हैं और अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं। राक्षस-यक्ष तथा नाग शस्त्र धारण करके उनकी रक्षाके लिये खड़े हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद मूर्तिमान् स्वरूप धारण कर स्वयं स्तुति कर रहे हैं और ऋषिगण भी वेदोंकी ऋचाओंसे उनका स्तवन कर रहे हैं। मूर्तिरूपमें प्रातः, मध्याह्न और सायंकालकी तीनों सुन्दर रूपवाली संध्याएँ हाथमें वज्र तथा बाण धारण किये हुए सूर्यनारायणके चारों ओर स्थित हैं। प्रातः-संध्या रक्तवर्णकी है, मध्याह्न-संध्या चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णकी एवं सायं-संध्या मंगलके समान वर्णवाली है। आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत् तथा अश्विनीकुमार आदि सभी देवगण तीनों संध्याओंमें उन भगवान् सूर्यका पूजन करते हैं। इन्द्र सदैव वहाँ खड़े होकर भगवान् सूर्यकी जय-जयकार करते रहते हैं। गरुड़का ज्येष्ठ भ्राता अरुण उनका सारथि है। वह कालके अवयवोंसे निर्मित उनके रथका संचालक है। हरे वर्णके छन्दरूप सात अश्व उनके रथमें जुते हुए हैं। राज्ञी तथा निक्षुभा नामकी दो पत्नियाँ उनके दोनों ओर बैठी हुई हैं। सभी देवता हाथ जोड़कर चारों ओर खड़े हैं। पिंगल, लेखक, दण्डनायक आदिगण तथा कल्माष नामक दो पक्षी द्वारपालके रूपमें उनकी सेवामें लगे हुए हैं। दिण्डी उनके सामने तथा ब्रह्मा आदि सभी देवता उनकी स्तुति कर रहे हैं।

भगवान् सूर्यनारायणका ऐसा प्रभाव देखकर मैंने सोचा कि यही देव हैं, जो समस्त देवताओंके पूज्य हैं। साम्ब! तुम उन्हींकी शरणमें जाओ।

साम्बने पूछा—महाराज! मैं भलीभाँति यह जानना चाहता हूँ कि सूर्यनारायण सर्वगत कैसे हैं? उनकी कितनी रश्मियाँ हैं? कितनी मूर्तियाँ हैं? राज्ञी तथा निक्षुभा नामकी ये दोनों भार्याएँ कौन हैं? पिंगल, लेखक और दण्डनायक वहाँ क्या कार्य करते हैं? कल्माष, पक्षी कौन हैं? उनके आगे स्थित रहनेवाला दिण्डी कौन है? और वे कौन-कौन देवता हैं, जो उनके चतुर्दिक् खड़े रहते हैं? आप इन सबका तत्त्वतः अच्छी तरहसे वर्णन करें, जिससे मैं भी सूर्यनारायणके प्रभावको जानकर उनकी शरणमें जा सकूँ।

नारदजीने कहा—साम्ब ! अब मैं सूर्यनारायणके माहात्म्यका वर्णन कर रहा हूँ। तुम उसे प्रेमपूर्वक सुनो—

विवस्वान् देव अव्यक्त कारण, नित्य, सत् एवं असत्-स्वरूप हैं। जो तत्त्वचिन्तक पुरुष हैं, वे उनको प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं। वे गन्ध, वर्ण तथा रससे हीन एवं शब्द और स्पर्शसे रहित हैं। वे जगत्की योनि हैं तथा सनातन परब्रह्म हैं। वे सभी प्राणियोंके नियन्ता हैं। वे अनादि, अनन्त, अज, सूक्ष्म, त्रिगुण, निराकार तथा अविज्ञेय हैं, उन्हें परमपुरुष कहा जाता है। उन्हीं महात्मा भगवान् सूर्यसे यह सब जगत् परिव्याप्त है। उन परमेश्वरकी प्रतिमा ज्ञान एवं वैराग्य-लक्षणोंवाली है। उनकी बुद्धि धर्म एवं ऐश्वर्यको प्रदान करनेवाली ब्राह्मी बुद्धि कही जाती है। उन अव्यक्तकी जो भी इच्छा होती है, वही सब उत्पन्न होता है। वे ही सृष्टिके समय चतुर्मुख ब्रह्मा बन जाते हैं और प्रलयके समय कालरूप हो जाते हैं। पालनके समय वे ही पुरुष विष्णुरूप ग्रहण कर लेते हैं। स्वयम्भू पुरुषकी ये तीनों अवस्थाएँ उनके तीन गुणोंके अनुसार हैं। वे आदिदेव होनेके कारण आदित्य तथा अजात होनेके कारण अज कहे गये हैं। देवताओंमें महान् होनेसे वे महादेव कहे गये हैं। समस्त लोकोंके ईश होने तथा अधीश होनेके कारण वे ईश्वर कहे गये हैं। बृहत् होनेसे ब्रह्मा तथा भवत्व होनेसे भव कहे जाते हैं। वे समस्त प्रजाओंकी रक्षा और पालन करते हैं, इसलिये प्रजापति कहे गये हैं। पुरमें शयन करनेसे 'पुरुष,' उत्पाद्य न होने और अपूर्व होनेसे 'स्वयम्भू' नामसे प्रसिद्ध हैं। हिरण्याण्डमें रहनेके कारण ये हिरण्यगर्भ कहे जाते हैं। ये दिशाओंके स्वामी, ग्रहोंके ईश, देवताओंके भी देवता होनेसे देवदेव तथा दिवाकर भी कहे जाते हैं। तत्त्वद्रष्टा ऋषियोंने अप्को नार कहा है, यह अप् इनका आश्रय है, इसीलिये 'आप' नारायण कहे गये हैं। 'अर' यह शीघ्रतावाचक शब्द है। 'आप' ही समुद्र-रूप धारण करनेपर फिर उसमें शीघ्रता नहीं रहती, इसीके कारण उसे नार कहते हैं। प्रलयकालमें सभी स्थावर-जंगम नष्ट हो जाते हैं। जब सम्पूर्ण जगत् समुद्रके समान एकाकार हो जाता है, तब वे पुरुष नारायणरूप धारण करके उस समुद्रमें शयन करते हैं। वे पुरुष वेदोंमें सहस्रों सिरों, सहस्रों भुजाओं, सहस्रों नेत्रों तथा सहस्रों चरणोंवाले कहे गये हैं। वे ही देवताओंमें प्रथम देवता तथा जगत्की रक्षा करनेवाले हैं।

नारदजीने पुनः कहा—साम्ब ! सहस्रयुगके समान अपनी रात्रि बिताकर प्रभात होते ही उन पुरुषने जब सृष्टि रचनेकी इच्छा की, तब उन्होंने देखा कि सम्पूर्ण पृथ्वी जलमें डूबी हुई है। तदनन्तर उन्होंने वराहरूप धारण करके महासागरके जलमें निमग्न पृथ्वीका उद्धार किया। उस समय उनका वेदमय शरीर कम्पित हो उठा और रोमोंमें स्थित महर्षिगण उनकी स्तुति करने लगे। पुनः ब्रह्माका रूप धारण करके वे सृष्टिकी रचना करने लगे। उन्होंने सर्वप्रथम अपने ही समान अपने मनसे मुझ-सहित श्रेष्ठ दस मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया। जिनके नाम हैं—भृगु, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, दक्ष एवं वसिष्ठ—इन प्रजापतियोंकी सृष्टि करनेके बाद प्रजाओंकी हित-कामनासे वे ही सूर्यनारायण देवी अदितिके पुत्र-रूपमें स्वयं प्रादुर्भूत हुए। मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। दक्षकी कन्या अदितिका विवाह महर्षि कश्यपके साथ हुआ। उसने 'भूर्भुवः स्वः' से संयुक्त एक अण्ड उत्पन्न किया, जिससे द्वादशात्मा भगवान् सूर्य प्रकट हुए। इस सूर्यमण्डलका व्यास नौ हजार योजन है। सत्ताईस हजार योजन उसकी परिधि है। जिस प्रकार कदम्बका पुष्प चारों ओर केशरोंसे व्याप्त रहता है, उसी प्रकार सूर्यमण्डल अपनी किरणोंसे परिव्याप्त रहता है। वह सहस्रों सिरवाला पुरुष जिसको परमात्मा कहते हैं, इस तेजोमय मण्डलके मध्य स्थित है। वह अपनी सहस्र किरणोंद्वारा नदी, समुद्र, ह्रद, कूप आदिसे जलको ग्रहण कर लेता है। सूर्यकी प्रभा (तेज) रात्रिके समय अग्निमें प्रवेश कर जाती है, इसीलिये रात्रिमें अग्नि दूरसे ही दिखायी देने लगती है। सूर्योदयके समय वही प्रभा पुनः सूर्यमें प्रविष्ट हो जाती है। प्रकाशत्व और उष्णत्व—ये दोनों गुण सूर्यमें तथा अग्निमें भी हैं। इस प्रकार सूर्य और अग्नि एक दूसरेको आप्यायित किया करते हैं।

साम्ब ! हेति, किरण, गौ, रश्मि, गभस्ति, अभीषु, घन, उस्र, वसु, मरीचि, नाडी, दीधिति, साध्य, मयूख, भानु, अंशु, सप्तार्चि, सुपर्ण, कर तथा पाद—ये बीस भगवान् सूर्यकी किरणोंके नाम कहे गये हैं, जो संख्यामें एक हजार हैं। इनमेंसे चार सौ किरणें वृष्टि करती हैं, जिनका नाम चन्दन है। इन किरणोंका स्वरूप अमृतमय है। तीन सौ किरणें हिमको वहन

करती है। उनका नाम चन्द्र है और वर्ण पीत है। शेष तीन सौ शुक्र नामवाली किरणें धूपकी सृष्टि करती हैं, ये सभी किरणें ओषधियों, स्वधा तथा अमृतके रूपमें मनुष्यों, पितरों तथा देवताओंको सदा संतृप्त करती रहती हैं। ये द्वादशात्मा काल-स्वरूप सूर्यदेव तीनों लोकोंमें अपने तेजसे तपते रहते हैं। ये ही ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव हैं। ऋक्, यजुः एवं साम—ये तीनों वेद भी ये ही हैं। प्रातःकालमें ऋग्वेद, मध्याह्नकालमें यजुर्वेद तथा संध्याकालमें सामवेद इनकी स्तुति करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवके द्वारा इनका पूजन नित्य होता रहता है। जिस प्रकार वायु सर्वगत है, उसी प्रकार सूर्यकी किरणें भी सर्वव्याप्त हैं। तीन सौ किरणोंके द्वारा भूर्लोक प्रकाशित होता रहता है। इसके पश्चात् जो शेष किरणें हैं, वे तीन-तीन सौकी संख्यामें शेष अन्य दोनों लोकों(भुवर्लोक और स्वर्लोक) को प्रकाशित करती हैं। एक सौ किरणोंसे पाताल प्रकाशित होता है। ये नक्षत्र, ग्रह तथा चन्द्रमादि ग्रहोंके अधिष्ठान हैं। चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र तथा तारागणोंमें सूर्यनारायणका ही प्रकाश है। इनकी एक सहस्र किरणोंमें ग्रहसंज्ञक सात किरणें मुख्य हैं, जिन्हें सुषुम्णा, हरिकेश, विश्वकर्मा, सूर्य, रश्मि, विष्णु और सर्वबन्धु कहा जाता है।

सम्पूर्ण जगत्के मूल भगवान् आदित्य ही हैं। इन्द्र आदि देवता इन्हींसे उत्पन्न हुए हैं। देवताओं तथा जगत्का सम्पूर्ण तेज इन्हींका है। अग्निमें दी गयी आहुति सूर्यनारायणको ही प्राप्त होती है। इसलिये आदित्यसे ही वृष्टि उत्पन्न होती है। वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है तथा अन्नसे प्रजाका पालन होता है। ध्यान करनेवाले लोगोंके लिये ध्यान-रूप और मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छासे आराधना करनेवाले लोगोंके लिये ये मोक्षस्वरूप हैं। क्षण, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर तथा युगकी कल्पना सूर्यनारायणके बिना सम्भव नहीं है। काल-नियमके बिना अग्निहोत्रादि कर्म नहीं हो सकते। ऋतु-विभागके बिना पुष्प-फल तथा मूलकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। उनके न रहनेसे तो जगत्के सम्पूर्ण व्यवहार ही नष्ट हो जाते हैं। सूर्यनारायणके सामान्य द्वादश नाम इस प्रकार हैं—आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रतापन, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर और रवि। विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा तथा पर्जन्य—ये द्वादश आदित्य हैं। चैत्रादि बारह महीनोंमें ये द्वादश आदित्य उदित रहते हैं। चैत्रमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान्, आषाढ़में अंशुमान, श्रावणमें पर्जन्य, भाद्रपदमें वरुण, आश्विनमें इन्द्र, कार्तिकमें धाता, मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें पूषा, माघमें भग और फाल्गुनमें त्वष्टा नामके आदित्य तपते हैं।

उत्तरायणमें सूर्य-किरणें वृद्धिको प्राप्त करती हैं और दक्षिणायनमें वह किरण-वृद्धि घटने लगती है। इस प्रकार सूर्य-किरणें लोकोपकारमें प्रवृत्त रहती हैं। जैसे स्फटिकमें विभिन्न रंगोंके प्रविष्ट होनेसे वह अनेक वर्णका दिखायी देता है, जैसे एक ही मेघ आकाशमें अनेक रूपोंका हो जाता है तथा गुण-विशेषसे जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल भूमिके रस-वैशिष्ट्यसे अनेक स्वाद और गुणवाला हो जाता है, जिस प्रकार एक ही अग्नि ईंधन-भेदके कारण अनेक रूपोंमें विभक्त हो जाती है, जैसे वायु पदार्थोंके संयोगसे सुगन्धित और दुर्गन्धयुक्त हो जाती है, जैसे गृह्याग्निके भी अनेक नाम हो जाते हैं, उसी प्रकार एक सूर्यनारायण ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि अनेक रूप धारण करते हैं, इसलिये इनकी ही भक्ति करनी चाहिये। इस प्रकार जो सूर्यनारायणको जानता है, वह रोग तथा पापोंसे शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

पापी पुरुषकी सूर्यनारायणके प्रति भक्ति नहीं होती। इसलिये साम्ब ! तुम सूर्यनारायणकी आराधना करो, जिससे तुम इस भयंकर व्याधिसे मुक्त होकर सभी कामनाओंको प्राप्त कर लोगे।

(अध्याय ७५—७८)

भगवान् सूर्यका परिवार

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! साम्बने नारदजीसे पुनः कहा—महामुने! आपने भगवान् सूर्यनारायणके अत्यन्त आनन्दप्रद माहात्म्यका वर्णन किया, जिससे मेरे हृदयमें उनके प्रति दृढ़ भक्ति उत्पन्न हो गयी। अब आप भगवान् सूर्यनारायणकी पत्नी महाभागा राज्ञी एवं निक्षुभा तथा दिण्डी और पिंगल आदिके विषयमें बतायें।

नारदजीने कहा—साम्ब! भगवान् सूर्यनारायणकी राज्ञी और निक्षुभा नामकी दो पत्नियाँ हैं। इनमेंसे राज्ञीको द्यौ अर्थात् स्वर्ग और निक्षुभाको पृथ्वी भी कहा जाता है। पौष शुक्ल सप्तमी तिथिको द्यौके साथ और माघ कृष्णपक्षकी सप्तमी तिथिको निक्षुभा (पृथ्वी)के साथ सूर्यनारायणका संयोग होता है। जिससे राज्ञी—द्यौसे जल और निक्षुभा—पृथ्वीसे तीनों लोकोंके कल्याणके लिये अनेक प्रकारकी सस्य-सम्पत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। सस्य (अन्न)को देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे ब्राह्मण हवन करते हैं। स्वाहाकार तथा स्वधाकारसे देवताओं और पितरोंकी तृप्ति होती है। जिस प्रकार राज्ञी अपने दो रूपोंमें हुई और ये जिनकी पुत्री हैं तथा इनकी जो संतानें हुई उनका हम वर्णन करते हैं, इसे आप सुनें—

साम्ब! ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिके कश्यप, कश्यपसे हिरण्यकशिपु, हिरण्यकशिपुसे प्रह्लाद, प्रह्लादसे विरोचन नामका पुत्र हुआ। विरोचनकी बहिनका विवाह विश्वकर्माके साथ हुआ, जिससे संज्ञा नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। मरीचिकी सुरूपा नामकी कन्याका विवाह अंगिरा ऋषिसे हुआ, जिससे बृहस्पति उत्पन्न हुए। बृहस्पतिकी ब्रह्मवादिनी बहिनने आठवें प्रभास नामक वसुसे पाणिग्रहण किया, जिसका पुत्र विश्वकर्मा समस्त शिल्पोंको जाननेवाला हुआ। उन्हींका नाम त्वष्टा भी है। जो देवताओंके बढ़ई हुए। इन्हींकी कन्या संज्ञाको राज्ञी कहा जाता है। इन्हींको द्यौ, त्वाष्ट्री, प्रभा तथा सुरेणु भी कहते हैं। इन्हीं संज्ञाकी छायाका नाम निक्षुभा है। सूर्य भगवान्की संज्ञा नामक भार्या बड़ी ही रूपवती और पतिव्रता थी। किंतु भगवान् सूर्यनारायण मानवरूपमें उसके समीप नहीं जाते थे और अत्यधिक तेजसे परिव्याप्त होनेके कारण सूर्यनारायणका वह स्वरूप सुन्दर मालूम नहीं होता था। अतः वह संज्ञाको भी अच्छा नहीं लगता था। संज्ञासे तीन संतानें उत्पन्न हुईं, किंतु सूर्यनारायणके तेजसे व्याकुल होकर वह अपने पिताके घर चली गयी और हजारों वर्षतक वहाँ रही। जब पिताने संज्ञासे पतिके घर जानेके लिये अनेक बार कहा, तब वह उत्तर कुरुदेशको चली गयी। वहाँ वह अश्विनीका रूप धारण करके तृण आदि चरती हुई समय बिताने लगी।

सूर्यभगवान्के समीप संज्ञाके रूपमें उसकी छाया निवास करती थी। सूर्य उसे संज्ञा ही समझते थे। इससे दो पुत्र हुए और एक कन्या हुई। श्रुतश्रवा तथा श्रुतकर्मा—ये दो पुत्र और अत्यन्त सुन्दर तपती नामकी कन्या छायाकी संतानें हैं। श्रुतश्रवा तो सावर्णि मनुके नामसे प्रसिद्ध होगा और श्रुतकर्माने शनैश्चर नामसे प्रसिद्धि प्राप्त की। संज्ञा जिस प्रकारसे अपनी संतानोंसे स्नेह करती थी, वैसा स्नेह छायाने नहीं किया। इस अपमानको संज्ञाके ज्येष्ठ पुत्र सावर्णि मनुने तो सहन कर लिया, किंतु उनके छोटे पुत्र यम (धर्मराज) सहन नहीं कर सके। छायाने जब बहुत ही क्लेश देना शुरू किया, तब क्रोधमें आकर बालपन तथा भावी प्रबलताके कारण उन्होंने अपनी विमाता छायाकी भर्त्सना की और उसे मारनेके लिये अपना पैर उठाया। यह देखकर क्रुद्ध विमाता छायाने उन्हें कठोर शाप दे दिया—'दुष्ट! तुम अपनी माँको पैरसे मारनेके लिये उद्यत हो रहे हो, इसलिये तुम्हारा यह पैर टूटकर गिर जाय।' छायाके शापसे विह्वल होकर यम अपने पिताके पास गये और उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया। पुत्रकी बातें सुनकर सूर्यनारायणने कहा—'पुत्र! इसमें कुछ विशेष कारण होगा, क्योंकि अत्यन्त धर्मात्मा तुझ-जैसे पुत्रके ऊपर माताको क्रोध आया है। सभी पापोंका तो निदान है, किंतु माताका शाप कभी अन्यथा नहीं हो सकता। पर मैं तुम्हारे ऊपर अधिक स्नेहके कारण एक उपाय कहता हूँ। यदि तुम्हारे पैरके मांसको लेकर कृमि भूमिपर चले जायँ तो इससे माताका शाप भी सत्य होगा और तुम्हारे पैरकी रक्षा भी हो जायगी।'

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! इस प्रकार पुत्रको आश्वासन देकर सूर्यनारायण छायाके समीप जाकर बोले—'छाये! तुम इनसे स्नेह क्यों नहीं करती हो? माताके लिये तो सभी संतानें समान ही होनी चाहिये।' यह सुनकर

छायाने कोई उत्तर नहीं दिया, जिससे सूर्यनारायणको क्रोध आ गया और वे शाप देनेके लिये उद्यत हो गये। छाया भगवान् सूर्यको क्रुद्ध देखकर भयभीत हो गयी और उसने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त बतला दिया। तब सूर्य अपने ससुर विश्वकर्माके पास गये। अपने जामाता सूर्यको क्रुद्ध देखकर विश्वकर्माने उनका पूजन किया तथा मधुर वचनोंसे शान्त किया और कहा—'देव ! मेरी पुत्री संज्ञा आपके अत्यन्त तेजको सहन न कर सकनेके कारण वनको चली गयी है और वह आपके उत्तम रूपके लिये वहाँपर महान् तपस्या कर रही है। ब्रह्माजीने मुझे आज्ञा दी है कि यदि उनकी अभिरुचि हो तो तुम संसारके कल्याणके लिये सूर्यको तराशकर उत्तम रूप बनाओ।' विश्वकर्माका यह वचन सूर्यनारायणने स्वीकार कर लिया और तब विश्वकर्माने शाकद्वीपमें सूर्यनारायणको भ्रमि (खराद) पर चढ़ाकर उनके प्रचण्ड तेजको खराद डाला, जिससे उनका रूप बहुत कुछ सौम्य बन गया। सूर्यनारायणने भी अपने योगबलसे इस बातकी जानकारी की कि सम्पूर्ण प्राणियोंसे अदृश्य हमारी पत्नी संज्ञा अश्विनीके रूपको धारण करके उत्तर-कुरुमें निवास कर रही है। अतः सूर्य भी स्वयं अश्वका रूप धारण करके उसके पास आकर मिले। फलतः कालान्तरमें अश्विनीसे देवताओंके वैद्य जुड़वाँ अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। उनके नाम हैं नासत्य तथा दस्र। इसके पश्चात् सूर्यनारायणने अपना वास्तविक रूप धारण किया। उस रूपको देखकर संज्ञा अत्यन्त प्रीतिसे प्रसन्न हुई और वह उनके समीप गयी। तत्पश्चात् संज्ञासे 'रेवन्त' नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो भगवान् सूर्यनारायणके समान ही सौन्दर्य-सम्पन्न था।

इस प्रकार सावर्णि मनु, यम, यमुना, शनि, तपती, दो अश्विनीकुमार, वैवस्वत मनु और रेवन्त—ये सब सूर्यनारायणकी संतानें हुईं। यमकी भगिनी यमी यमुना नदी बनकर प्रवाहित हुई। सावर्णि आठवें मनु होंगे। सावर्णि मनु मेरु पर्वतके पृष्ठप्रदेशपर तपस्या कर रहे हैं। सावर्णिके भ्राता शनि एक ग्रह बन गये और उनकी भगिनी तपती नदी बन गयी, जो विन्ध्यगिरिसे निकलकर पश्चिमी समुद्रमें जाकर मिलती है। इस नदीमें स्नान करनेसे बहुत ही पुण्य प्राप्त होता है। सौम्या नदीसे तपतीका संगम और गङ्गा नदीसे वैवस्वती—यमुनाका संगम होता है। दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं, जिनकी विद्यासे ही वैद्यगण भूमिपर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। सूर्यनारायणने अपने समान रूपवाले रेवन्त नामक पुत्रको अश्वोंका स्वामी बनाया। जो मानव अपने गन्तव्य मार्गके लिये रेवन्तकी पूजा करके प्रस्थान करता है, उसे मार्गमें क्लेश नहीं होता। विश्वकर्माके द्वारा सूर्यनारायणको खरादपर चढ़ाकर जो तेज ग्रहण किया गया, उससे उन्होंने भगवान् सूर्यकी पूजा करनेके लिये भोजकोंको उत्पन्न किया। जो अमित तेजस्वी सूर्यनारायणकी संतानोत्पत्तिकी इस कथाको सुनता अथवा पढ़ता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें दीर्घकालतक रहनेके पश्चात् पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा होता है। (अध्याय ७९)

सूर्यभगवान्‌को नमस्कार एवं प्रदक्षिणा करनेका फल और विजया-सप्तमी-व्रतकी विधि

देवर्षि नारदने कहा—साम्ब ! अब मैं आपको भगवान् सूर्यनारायणके पूजन, उनके निमित्त दिये गये दान तथा उनको किये गये प्रणाम एवं प्रदक्षिणाके फलके विषयमें दिण्डी और ब्रह्माजीका संवाद सुना रहा हूँ, आप ध्यानसे सुनें—

ब्रह्माजी बोले—दिण्डिन् ! सूर्य भगवान्‌का पूजन, उनकी स्तुति, जप, प्रदक्षिणा तथा उपवास आदि करनेसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। सूर्यनारायणको नम्र होकर प्रणाम करनेके लिये भूमिपर जैसे ही सिरका स्पर्श होता है, वैसे ही तत्काल सभी पातक नष्ट हो जाते हैं*। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणकी प्रदक्षिणा करता है, उसे सप्तद्वीपा वसुमतीकी प्रदक्षिणाका फल प्राप्त हो जाता है और वह समस्त रोगोंसे मुक्त होकर अन्त समयमें सूर्यलोकको प्राप्त करता है, किंतु प्रदक्षिणामें पवित्रताका ध्यान रखना आवश्यक है। अतएव जूता या खड़ाऊँ आदि पहनकर प्रदक्षिणा नहीं करनी चाहिये। जो मनुष्य जूता या खड़ाऊँ पहनकर सूर्य-मन्दिरमें प्रवेश करता है, वह असिपत्र-वन नामक घोर नरकमें जाता

* प्रणिधाय शिरो भूमौ नमस्कारपरो रवेः। तत्क्षणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥

(ब्राह्मपर्व ८०।१०)

है। जो प्राणी षष्ठी या सप्तमीके दिन एकाहार अथवा उपवास रखकर भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणका पूजन करता है, वह सूर्यलोकमें निवास करता है। कृष्ण पक्षकी सप्तमीको रक्त पुष्पोपहारोंसे और शुक्ल पक्षकी सप्तमीको श्वेत कमलपुष्प तथा मोदक आदि उपचारोंसे भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेसे व्रती सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो सूर्यलोकको प्राप्त करता है।

दिण्डिन्! जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, महाजया, नन्दा तथा भद्रा नामकी ये सात प्रकारकी सप्तमियाँ कही गयी हैं। यदि शुक्ल पक्षकी सप्तमीको रविवार हो तो उसे विजया सप्तमी कहते हैं। उस दिन किया गया स्नान, दान, होम, उपवास, पूजन आदि सत्कर्म महापातकोंका विनाश करता है। इस विजया-सप्तमी-व्रतमें पञ्चमी तिथिको दिनमें एकभुक्त रहे, षष्ठी तिथिको नक्तव्रत करे और सप्तमीको पूर्ण उपवास करे, तदनन्तर अष्टमीके दिन व्रतकी पारणा करे। इस तिथिके दिन किया गया दान, हवन, देवता तथा पितरोंका पूजन अक्षय होता है।

(अध्याय ८०-८१)

द्वादश रविवारोंका वर्णन और नन्दादित्य-व्रतकी विधि

दिण्डीने ब्रह्माजीसे पूछा—ब्रह्मन्! जो मनुष्य आदित्यवारके दिन श्रद्धा-भक्तिसे सूर्यदेवका स्नान-दानादि कर पूजन करते हैं, उनको कौन-सा फल प्राप्त होता है? और जिस वारके संयोगसे सप्तमी तिथि विजया कहलाती है, उसके माहात्म्यका आप पुनः वर्णन करें।

ब्रह्माजीने कहा—दिण्डिन्! जो मनुष्य आदित्यवारको श्राद्ध करते हैं, वे सात जन्मतक नीरोग रहते हैं तथा जो नक्त-व्रत एवं आदित्यहृदयका[1] पाठ करते हैं, वे रोगसे मुक्त हो जाते हैं और सूर्यलोकमें निवास करते हैं। उपवास रखकर जो महाश्वेता मन्त्रका[2] जप करते हैं, वे मनोवाञ्छित फलको प्राप्त करते हैं। आदित्यवारके दिन महाश्वेता-मन्त्र तथा षडक्षर-मन्त्र **'खखोल्काय स्वाहा'** का जप करनेसे निःसंदेह सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

सूर्यनारायणके द्वादश वार इस प्रकार हैं—नन्द, भद्र, सौम्य, कामद, पुत्रद, जय, जयन्त, विजय, आदित्याभिमुख, हृदय, रोगहा एवं महाश्वेता-प्रिय। माघ शुक्लपक्षकी षष्ठीकी नन्दसंज्ञा है। उस दिन नक्त-व्रत करके घृतसे सूर्यनारायणको स्नान कराना चाहिये तथा श्वेत चन्दन, अगस्त्यके पुष्प, गुग्गुल-धूप आदिसे पूजन करके अपूप आदिका नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। ब्राह्मणको अपूप देकर स्वयं भी मौन धारण कर भोजन करना चाहिये। गेहूँके अथवा यवके चूर्णमें घृत तथा खाँड़ या शक्कर मिलाकर अपूप बनाना चाहिये और उसीका नैवेद्य सूर्यनारायणको निवेदित कर निम्न मन्त्र पढ़ते हुए ब्राह्मणको वह नैवेद्य दे देना चाहिये।

आदित्यतेजसोत्पन्नं राज्ञीकरविनिर्मितम्।
श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतीक्षापूपमुत्तमम्॥

(ब्राह्मपर्व ८२।१८)

ब्राह्मण नैवेद्य ग्रहण कर ले, तदनन्तर उस नैवेद्यको निम्न मन्त्र पढ़ते हुए पूजकको दे—

कामदं सुखदं धर्म्यं धनदं पुत्रदं तथा।

१-भविष्यपुराणके नामसे प्राप्त होनेवाले स्तोत्रोंमें 'श्रीआदित्यहृदय-स्तोत्र'का अत्यधिक प्रचार है और इसकी प्रसिद्धि प्राचीन कालमें भी इतनी अधिक थी कि महर्षि पराशरने सूर्यकी दशा-अन्तर्दशाओंमें शान्तिके लिये सर्वत्र इसी स्तोत्रके जपका निर्देश दिया है। यह स्तोत्र प्रायः दो सौ श्लोकोंमें उपनिबद्ध है। इसके पाठसे मनुष्य दुःख-दारिद्र्य तथा कुष्ठ आदि असाध्य रोगोंसे मुक्त होकर महासिद्धिको प्राप्त कर लेता है। इस स्तोत्रमें भगवान् सूर्यकी महिमा, अर्घ्यदान-विधि आदिका सुन्दर वर्णन है। इसका मण्डलाष्टक बड़ा ही सुन्दर है। इसके पाठसे भगवान् सूर्यमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। सूर्योपासनामें इस 'आदित्यहृदय'का महत्वपूर्ण स्थान है।

यह स्तोत्र वर्तमान उपलब्ध भविष्यपुराणमें प्राप्त नहीं होता, इससे यह उसका खिल-भाग प्रतीत होता है। नारदपुराणमें उपलब्ध भविष्यपुराणकी सूची भी वर्तमानमें उपलब्ध भविष्यपुराणमें नहीं मिलती। कालक्रमसे पुराणोंका प्राचीन रूप न रह जानेसे आज वह सब एकत्र उपलब्ध नहीं हो पाता, परंतु प्रायः सभी बड़े स्तोत्र-संग्रहोंमें यह 'आदित्यहृदय-स्तोत्र' संगृहीत है। वाल्मीकीय रामायणमें अगस्त्यमुनिप्रोक्त 'आदित्यहृदय-स्तोत्र' भविष्यपुराणके 'आदित्यहृदय-स्तोत्र'से भिन्न है।

२- महाश्वेता-मन्त्र 'गायत्री-मन्त्र'का ही अपर पर्याय प्रतीत होता है।

सदा ते प्रतीक्षामि मण्डकं भास्करप्रियम्॥

(ब्राह्मपर्व ८२।११)

उपर्युक्त दोनों मन्त्र ग्रहण करने और समर्पित करनेके लिये हैं। नन्दवारका यह विधान कल्याणकारी है। जो इस विधिसे सूर्यदेवकी पूजा करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। उसकी संततिका कभी क्षय नहीं होता अर्थात् उसकी कुल-परम्परा पृथ्वीपर चलती रहती है तथा उसके वंशमें दारिद्र्य एवं रोग भी नहीं होते। सूर्यलोक प्राप्त करनेके पश्चात् पुनर्जन्म होनेपर वह पृथ्वीका राजा होता है। इस पूजन-विधानको पढ़ने अथवा श्रवण करनेसे भी कल्याण होता है एवं दिव्य अचल लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय ८२)

भद्रादित्य, सौम्यादित्य और कामदादित्यवार-व्रतोंकी विधिका निरूपण

ब्रह्माजी बोले—दिण्डिन्! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिको जो वार हो उसका नाम भद्र है। उस दिन जो मनुष्य नक्तव्रत और उपवास करता है, वह हंसयुक्त विमानमें बैठकर सूर्यलोकको जाता है। उस दिन श्वेत चन्दन, मालती-पुष्प, विजय-धूप तथा खीरके नैवेद्यसे मध्याह्नकालमें सूर्यनारायणका पूजन करके ब्राह्मणको भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये।

दिण्डिन्! यदि रोहिणी नक्षत्रसे युक्त आदित्यवार हो तो उसे सौम्यवार कहा जाता है। उस दिन किये जानेवाले स्नान, दान, जप, होम, पितृ-देवादि तर्पण तथा पूजन आदि कृत्य अक्षय होते हैं।

मार्गशीर्षके शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिको जो वार हो, वह कामदवार कहलाता है। यह वार भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय है। इस दिन जो भक्ति और श्रद्धासे सूर्यनारायणकी पूजा करता है, वह सभी पातकोंसे विमुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है। इस व्रतको करनेसे विद्यार्थीको विद्या, पुत्रेच्छुको पुत्र, धनार्थीको धन और आरोग्यके अभिलाषीको आरोग्यकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार कामदवार-व्रतसे और अन्य सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, इसीलिये इसका नाम कामद है।

(अध्याय ८३—८५)

पुत्रद, जय, जयन्तसंज्ञक आदित्यवार-व्रतोंकी विधि

ब्रह्माजी बोले—दिण्डिन्! जिस आदित्यवारको हस्त नक्षत्र हो उसे पुत्रद (आदित्य) वार कहा जाता है। उस दिन उपवास करना चाहिये और श्राद्ध करके मध्यम पिण्डका प्राशन करना चाहिये। धूप, माल्य, दिव्य गन्ध आदि नाना प्रकारके उपचारोंसे सूर्यनारायणका पूजन कर महाश्वेता-मन्त्रको जपते हुए साधकको सूर्यनारायणके समक्ष ही शयन करना चाहिये। प्रातःकालमें ही उठकर स्नान आदिसे निवृत्त हो सूर्यभगवान्‌को अर्घ्य देना चाहिये। रक्त-चन्दन तथा करवीरके पुष्पोंसे पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् पाँच ब्राह्मणोंको बुलाकर उनमेंसे दो ब्राह्मणोंको मग-संज्ञक तथा तीन ब्राह्मणोंको भीमसंज्ञक मानकर विधिपूर्वक पार्वण-श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्धके समाप्त होनेपर मध्यम पिण्डको भगवान् सूर्यके सामने रखकर निम्नलिखित मन्त्रसे भक्षण करना चाहिये—

स एष पिण्डो देवेश योऽभीष्टस्तव सर्वदा।
अश्नामि पश्यते तुभ्यं तेन मे संततिर्भवेत्॥

(ब्राह्मपर्व ८६।१०)

इस विधानसे पूजा करनेपर सूर्यनारायण निश्चित ही पुत्र प्रदान करते हैं। इस प्रकार उपवासपूर्वक व्रतको करनेसे धन-धान्य, सुवर्ण, सुख-आरोग्य तथा सूर्यलोक भी प्राप्त होता है, किंतु विशेषरूपसे पुत्र-प्राप्तिका ही फल है, इसीसे इस वारको पुत्रद कहते हैं।

ब्रह्माजीने कहा—दिण्डिन्! दक्षिणायनके दिन जो वार हो, वह जयवार कहा जाता है। इस दिन किया गया उपवास, नक्तव्रत, स्नान-दान तथा जप भगवान् सूर्यमें सौगुनी प्रीति बढ़ानेवाला होता है। अतः सूर्यमें सौगुनी प्रीति बढ़ानेवाले इस नक्त-व्रतादिको अवश्य करना चाहिये।

यदि उत्तरायणके दिन रविवार हो तो उसे जयन्तवार कहते हैं। इस दिन भगवान् सूर्य स्नान-दानादि कर्म तथा पूजन करनेवालोंको हजार गुना फल प्रदान करते हैं। इस दिन उपवास करके घृत, दूध तथा इक्षुरससे सूर्यनारायणको स्नान कराकर कुंकुमका विलेपन करना चाहिये और गुगुलका धूप देकर मोदकका नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। इस प्रकार

भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करके तिलसे हवन करना चाहिये। तदनन्तर यथाशक्ति ब्राह्मणोंको मोदक, तिल तथा शष्कुली (पूरी) का भोजन कराना चाहिये।

(अध्याय ८६-८७)

विजय, आदित्याभिमुख तथा हृदयवार-व्रतोंकी विधि

ब्रह्माजी बोले—दिण्डिन्! शुक्ल पक्षमें रोहिणी नक्षत्रसे युक्त सप्तमी तिथिको विजय-संज्ञक आदित्यवार कहते हैं। वह सम्पूर्ण पापों और भयोंको नष्ट कर देता है। उस दिन सम्पन्न किये गये पुण्यकर्म कोटिगुना फल प्रदान करते हैं।

दिण्डिन्! माघ मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको जो दिन हो उसे आदित्याभिमुख कहते हैं। उस दिन प्रातःकाल ही स्नान कर गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे सूर्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर रक्तचन्दनके काष्ठसे बने हुए स्तम्भका आश्रय लेकर सूर्यदेवकी ओर मुखकर महाश्वेता-मन्त्र जपते हुए सायंकालतक खड़ा रहना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणको भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। तत्पश्चात् मौन होकर स्वयं भी भोजन करना चाहिये। जो मनुष्य इस व्रतका विधिपूर्वक पालन करते हैं, उन्हें भगवान् सूर्यनारायणका अनुग्रह प्राप्त होता है।

दिण्डिन्! संक्रान्तिके दिन यदि रविवार हो तो उसका नाम हृदयवार होता है। वह आदित्यके हृदयको अत्यन्त प्रिय है। उस दिन नक्तव्रत करके मन्दिरमें सूर्यनारायणके अभिमुख एक सौ आठ बार आदित्यहृदयका पाठ करना चाहिये अथवा सायंकालतक भगवान् सूर्यका हृदयमें ध्यान करना चाहिये। सूर्यास्त होनेके पश्चात् घर आकर यथाशक्ति ब्राह्मणको भोजन कराये तथा मौनपूर्वक स्वयं भी खीरका भोजन करके सूर्यदेवका स्मरण करते हुए भूमिपर ही शयन करे। इस प्रकार जो इस दिन व्रत रहकर श्रद्धा-भक्तिसे सूर्यनारायणकी पूजा करता है, उसके समस्त अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं और वह भगवान् सूर्यके समान ही तेज-कान्ति तथा यशको प्राप्त करता है। (अध्याय ८८—९०)

रोगहा एवं महाश्वेतवार-व्रतकी विधि

ब्रह्माजी बोले—दिण्डिन्! यदि आदित्यवारको उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र पड़े तो उसे **रोगहावार** कहते हैं। यह सम्पूर्ण रोगों एवं भयोंको दूर करनेवाला है। इस दिन जो गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंसे भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करता है, वह सभी रोगोंसे मुक्त हो जाता है तथा सूर्यलोकको प्राप्त होता है। मन्दारके पत्रोंका दोना बनाकर उसीमें उसीके फूल रखकर रात्रिमें भगवान् सूर्यनारायणके सामने रख देना चाहिये तथा प्रातःकाल उठकर उन्हीं फूलोंसे उनका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर खीरका भोजन करके व्रतकी समाप्ति करनी चाहिये।

दिण्डिन्! यदि सूर्यग्रहणके दिन रविवार हो तो उसे **महाश्वेतवार** कहते हैं, वह भगवान् सूर्यको बहुत प्रिय है। उस दिन उपवास करके पवित्रताके साथ गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणका पूजन करके महाश्वेता-मन्त्रका जप करे। तदनन्तर महाश्वेताकी पूजा करके सूर्यनारायणकी पूजा करनेका विधान है। महाश्वेताकी स्थापना करके गन्ध-पुष्प आदिसे उनका पूजन करे तथा उन्हींके सम्मुख एक वेदीपर सूर्यनारायणकी स्थापना कर उनकी पूजा आदि करे। तत्पश्चात् स्नान करके घृतसहित तिलोंका हवन करे। ग्रहणके समय महाश्वेता-मन्त्रका जप करता रहे और ग्रहणके समाप्त होनेके पश्चात् पुनः स्नान करके महाश्वेता तथा ग्रहाधिपति भगवान् सूर्यका पूजन करे। ब्राह्मणोंसे पुराण सुनकर उन्हें भोजन कराये तथा यथाशक्ति दक्षिणा दे। उसके बाद स्वयं मौन होकर भोजन करे। इस दिन किये हुए स्नान, दान, जप, होम आदि कर्म अनन्त फल देते हैं।

दिण्डिन्! सम्पूर्ण पापों और भयोंको दूर करनेवाले सूर्यनारायणके इन द्वादश वारोंका मैंने जो वर्णन किया है, इसे जो मनुष्य पढ़ता है अथवा सुनता है, वह भगवान् सूर्यका प्रिय हो जाता है और जो इन व्रतोंको नियमपूर्वक करता है, वह धर्म, अर्थ, काम और चन्द्रमाके समान कान्ति, सूर्यके समान प्रभा, इन्द्रके समान पराक्रम तथा स्थायी लक्ष्मीको प्राप्त करता है, तदनन्तर अन्तमें वह शिवलोकको चला जाता है।

(अध्याय ९१-९२)

सूर्यदेवकी पूजामें विविध उपचार और फल आदि निवेदन करनेका माहात्म्य

ब्रह्माजी बोले—दिण्डिन्! जो प्राणी भगवान् सूर्यनारायणके निमित्त सभी धर्मकार्य करते हैं, उनके कुलमें रोगी और दरिद्री उत्पन्न नहीं होते। जो व्यक्ति भगवान् सूर्यके मन्दिरमें भक्तिपूर्वक गोबरसे लेपन करता है, वह तत्क्षण सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। श्वेत-रक्त अथवा पीली मिट्टीसे जो मन्दिरमें लेप करता है, वह मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है। जो व्यक्ति उपवासपूर्वक अनेक प्रकारके सुगन्धित फूलोंसे सूर्यनारायणका पूजन करता है, वह समस्त अभीष्ट फलोंको प्राप्त करता है। घृत या तिल-तैलसे मन्दिरमें दीपक प्रज्वलित करनेवाला सूर्यलोकको तथा सूर्यनारायणके प्रीत्यर्थ चौराहे, तीर्थ, देवालयादिमें दीपक प्रज्वलित करनेवाला ओजस्वी रूपको प्राप्त करता है। भक्तिभावसे समन्वित होकर जिस मनुष्यके द्वारा सूर्यके लिये दीपक जलवाया जाता है, वह अपनी अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त कर देवलोकको प्राप्त करता है। जो चन्दन, अगरु, कुंकुम, कपूर तथा कस्तूरी आदि मिलाकर तैयार किये गये उबटनसे सूर्यनारायणके शरीरका लेपन करता है, वह करोड़ों वर्षतक स्वर्गमें विहार कर पुनः पृथ्वीपर सभी इच्छाओंसे संतृप्त रहता है और समस्त लोकोंका पूज्य बनकर चक्रवर्ती राजा होता है। चन्दन और जलसे मिश्रित पुष्पोंके द्वारा सूर्यको अर्घ्य प्रदान करनेपर पुत्र, पौत्र, पत्नीसहित स्वर्गलोकमें पूज्य होता है। सुगन्धित पदार्थ तथा पुष्पोंसे युक्त जलके द्वारा सूर्यको अर्घ्य देकर मनुष्य देवलोकमें बहुत समयतक रहकर पुनः पृथ्वीपर राजा होता है। स्वर्णसे युक्त जल अथवा लाल वर्णके जलसे अर्घ्य देनेपर करोड़ों वर्षतक स्वर्गलोकमें पूजित होता है। कमलपुष्पसे सूर्यकी पूजा करके मनुष्य स्वर्गको प्राप्त करता है। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको गुग्गुल तथा घृतमिश्रित धूप देनेसे तत्काल ही सभी पापोंसे मुक्ति मिल जाती है।

जो मनुष्य पूर्वाह्नमें भक्ति और श्रद्धासे सूर्यदेवका पूजन करता है, उसे सैकड़ों कपिला गोदान करनेका फल मिलता है। मध्याह्न-कालमें जो जितेन्द्रिय होकर उनकी पूजा करता है उसे भूमिदान और सौ गोदानका फल प्राप्त होता है। सायंकालकी संध्यामें जो मनुष्य पवित्र होकर श्वेत वस्त्र तथा उष्णीष (पगड़ी) धारण करके भगवान् भास्करकी पूजा करता है, उसे हजार गौओंके दानका फल प्राप्त होता है।

जो मनुष्य अर्धरात्रिमें भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, उसे जातिस्मरता प्राप्त होती है और उसके कुलमें धार्मिक व्यक्ति उत्पन्न होते हैं। प्रदोष-वेलामें जो मनुष्य भगवान् सूर्यदेवकी पूजा करता है, वह स्वर्गलोकमें अक्षय-कालतक आनन्दका उपभोग करता है। प्रभातकालमें भक्ति-पूर्वक सूर्यकी पूजा करनेपर देवलोककी प्राप्ति होती है। इस प्रकार सभी वेलाओंमें अथवा जिस किसी भी समय जो मनुष्य भक्तिपूर्वक मन्दार-पुष्पोंसे भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह तेजमें भगवान् सूर्यके समान होकर सूर्यलोकमें पूज्य बन जाता है। जो व्यक्ति दोनों अयन-संक्रान्तियोंमें भगवान् सूर्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह ब्रह्माके लोकको प्राप्त करता है और वहाँ देवताओंद्वारा पूजित होता है। ग्रहण आदि अवसरोंपर पूजन करनेवाला चिन्तित नहीं होता। जो निद्रासे उठनेपर सूर्यदेवको प्रणाम करता है, उसे प्रसन्न होकर भगवान् अभिलषित गति प्रदान करते हैं।

उदयकालमें सूर्यदेवको मात्र एक दिन यदि घृतसे स्नान करा दिया जाय तो एक लाख गोदानका फल प्राप्त होता है। गायके दूधद्वारा स्नान करानेसे पुण्डरीक-यज्ञका फल मिलता है। इक्षुरससे स्नान करानेपर अश्वमेध-यज्ञके फलका लाभ होता है। भगवान् सूर्यके लिये पहली बार ब्यायी हुई सुपुष्ट गौ तथा शस्य प्रदान करनेवाली पृथ्वीका जो दान करता है, वह अचल लक्ष्मीको प्राप्त कर पुनः सूर्यलोकको चला जाता है और गौके शरीरमें जितने रोयें होते हैं, उतने ही करोड़ वर्षतक वह सूर्यलोकमें पूजित होता है। जो मनुष्य भगवान् सूर्यके निमित्त भेरी, शंख, वेणु आदि वाद्य दान करते हैं, वे सूर्यलोकको जाते हैं। जो मनुष्य भक्तिभावसे सूर्यनारायणकी पूजा करके उन्हें छत्र, ध्वजा, पताका, वितान, चामर तथा सुवर्णदण्ड आदि समर्पित करता है, वह दिव्य छोटी-छोटी किंकिणियोंसे युक्त सुन्दर विमानके द्वारा सूर्यलोकमें जाकर आनन्दित होता है और चिरकालतक वहाँ रहकर पुनः मनुष्य-जन्म ग्रहण कर सभी राजाओंके द्वारा अभिवन्दित राजा होता है।

जो मनुष्य विविध सुगन्धित पुष्पों तथा पत्रोंसे सूर्यकी अर्चना करता है और विविध स्तोत्रोंसे सूर्यका संस्तवन-गान आदि करता है, वह उन्हींके लोकको प्राप्त होता है। जो पाठक और चारणगण सदा प्रातःकाल सूर्यसम्बन्धी ऋचाओं एवं विविध स्तोत्रोंका उपगान करते हैं, वे सभी स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य अश्वोंसे युक्त, सुवर्ण, रजत या मणिजटित सुन्दर रथ अथवा दारुमय रथ सूर्यनारायणको समर्पित करता है, वह सूर्यके वर्णके समान किंकिणी-जालमालासे समन्वित विमानमें बैठकर सूर्यलोककी यात्रा करता है।

जो लोग वर्षभर या छः मास नित्य इनकी रथयात्रा करते हैं, वे उस परमगतिको प्राप्त करते हैं, जिसे ध्यानी, योगी तथा सूर्यभक्तिके अनुगामी श्रेष्ठ जन प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य भक्तिभाव-समन्वित होकर भगवान् सूर्यके रथको खींचते हैं, वे बार-बार जन्म लेनेपर भी नीरोग तथा दरिद्रतासे रहित होते हैं। जो मनुष्य भास्करदेवकी रथयात्रा करते हैं, वे सूर्यलोकको प्राप्तकर यथाभिलषित सुखका आनन्द प्राप्त करते हैं, परंतु जो मोह अथवा क्रोधवश रथयात्रामें बाधा उत्पन्न करते हैं, उन्हें पाप-कर्म करनेवाले मंदेह नामक राक्षस ही समझना चाहिये। सूर्यभगवान्‌के लिये धन-धान्य-हिरण्य अथवा विविध प्रकारके वस्त्रोंका दान करनेवाले परमगतिको प्राप्त होते हैं। गौ, भैंस अथवा हाथी या सुन्दर घोड़ोंका दान करनेवाले लोग अक्षय अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले अश्वमेध-यज्ञके फलको प्राप्त करते हैं और उन्हें उस दानसे हजार गुना पुण्य-लाभ होता है। जो सूर्यनारायणके लिये खेती करने योग्य सुन्दर उपजाऊ भूमि-दान देता है, वह अपनी पीढ़ीसे पहलेके दस कुल और पश्चात्‌के दस कुलको तार देता है तथा दिव्य विमानसे सूर्यलोकको चला जाता है। जो बुद्धिमान् मनुष्य भगवान् सूर्यके लिये भक्तिपूर्वक ग्राम-दान करता है, वह सूर्यके समान वर्णवाले विमानमें आरूढ़ होकर परमगतिको प्राप्त होता है। भक्तिपूर्वक जो लोग फल-पुष्प आदिसे परिपूर्ण उद्यानका दान सूर्यनारायणके लिये देते हैं वे परमगतिको प्राप्त होते हैं। मनसा-वाचा-कर्मणा जो भी दुष्कृत होता है, वह सब भगवान् सूर्यकी कृपासे नष्ट हो जाता है। चाहे आर्त हो या रोगी हो अथवा दरिद्र या दुःखी हो, यदि वह भगवान् आदित्यकी शरणमें आ जाता है तो उसके सम्पूर्ण कष्ट दूर हो जाते हैं। एक दिनकी सूर्य-पूजा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह अनेक इष्टापूर्तोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

जो भगवान् सूर्यके मन्दिरके सामने भगवान् सूर्यकी कल्याणकारी लीला करता है, उसे सभी अभीष्ट कामनाओंको सिद्ध करनेवाले राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। गणाधिप ! जो मनुष्य सूर्यदेवके लिये महाभारत ग्रन्थका दान करता है, वह सभी पापोंसे विमुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है। रामायणकी पुस्तक देकर मनुष्य वाजपेय-यज्ञके फलको प्राप्त कर सूर्यलोकको प्राप्त करता है। सूर्यभगवान्‌के लिये भविष्यपुराण अथवा साम्बपुराणकी पुस्तकका दान करनेपर मानव राजसूय तथा अश्वमेध-यज्ञ करनेका फल प्राप्त करता है तथा अपनी सभी मनःकामनाओंको प्राप्त कर सूर्यलोकको पा लेता है और वहाँ चिरकालतक रहकर ब्रह्मलोकमें जाता है। वहाँ सौ कल्पतक रहकर पुनः वहे पृथ्वीपर राजा होता है। जो मनुष्य सूर्य-मन्दिरमें कुआँ तथा तालाब बनवाता है, वह मनुष्य आनन्दमय दिव्य लोकको प्राप्त करता है। जो मनुष्य सूर्यमन्दिरमें शीतकालमें मनुष्योंके शीत-निवारणके योग्य कम्बल आदिका दान करता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है। जो मनुष्य सूर्यमन्दिरमें नित्य पवित्र पुस्तक, इतिहास तथा पुराणका वाचन करता है, वह उस फलको प्राप्त करता है, जो नित्य हजारों अश्वमेधयज्ञको करनेसे भी प्राप्त नहीं होता। अतः सूर्यके मन्दिरमें प्रयत्नपूर्वक पवित्र पुस्तक, इतिहास तथा पुराणका वाचन करना चाहिये। भगवान् भास्कर पुण्य आख्यान-कथासे सदा संतुष्ट होते हैं।

(अध्याय ९३)

एक वैश्य तथा ब्राह्मणकी कथा, सूर्यमन्दिरमें पुराण-वाचन एवं भगवान् सूर्यको स्नानादि करानेका फल

ब्रह्माजी बोले—दिण्डिन् ! मैं आपको पितामह और कुमार कार्तिकेयका एक आख्यान सुना रहा हूँ, जो पुण्यदायक, पापनाशक तथा कल्याणकारी है। एक बार सभी लोकोंके रचयिता पितामह सुखपूर्वक बैठे थे, उनके पास श्रद्धा-भक्ति-

समन्वित हो कार्तिकेयने आकर प्रणाम किया और कहा—

विभो! आज मैं दिवाकर भगवान् सूर्यदेवका दर्शन करनेके लिये गया था। प्रदक्षिणा करके मैंने उनकी पूजा की तथा परमभक्ति और श्रद्धासे मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और वहीं बैठ गया। वहाँ मैंने एक महान् आश्चर्यकी बात देखी—स्वर्णजटित छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त श्रेष्ठ वैदूर्यादि मणियों एवं मुक्ताओंसे सुशोभित विचित्र विमानसे आ रहे एक पुरुषको देखकर भगवान् दिवाकर सहसा आसनसे उठ खड़े हुए। उन्होंने सामने आये हुए उस पुरुषको अपने दाहिने हाथसे पकड़कर अपने सामने बैठाया और उसके सिरको सूँघा तथा उसका पूजन किया, तदनन्तर समीपमें बैठे हुए उस पुरुषसे भगवान् सूर्यने कहा—

हे भद्र! आपका स्वागत है। आपका हम सबपर बड़ा प्रेम है। आपने बहुत आनन्द दिया। जबतक महाप्रलय नहीं होता, तबतक आप मेरे समीप रहें। उसके पश्चात् उस स्थानको जायँ, जहाँ ब्रह्मा स्वयं स्थित हैं। इसी बीच भगवान् सूर्यके सामने एक श्रेष्ठ विमानपर आसीन दूसरा पुरुष आया। उसका भी सूर्यभगवान्‌ने उसी प्रकार आदर किया और उसे भी विनम्र भावसे वहीं बैठाया। देवशार्दूल! भगवान् सूर्यके द्वारा की गयी उन दोनोंकी पूजा देखकर मेरे मनमें बड़ा कौतूहल उत्पन्न हो गया, अतः मैंने भगवान् भास्करसे पूछा—'देव! पहले जो यह मनुष्य आपके पास आया है और जिसे आपने अधिक संतुष्ट किया है, इसने कौन-सा ऐसा पुण्यकर्म किया है, जो इसकी आपने स्वयं ही पूजा की है? इस विषयको लेकर मेरे हृदयमें विशेषरूपसे कौतूहल उत्पन्न हो गया है। उसी प्रकारसे आपने दूसरे मनुष्यकी भी पूजा की है। ये दोनों सब प्रकारसे पुण्यकर्म करनेवाले उत्तम जनोंमें भी श्रेष्ठ मनुष्य हैं। आप तो सदा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवताओंके द्वारा भी अर्चित, पूजित होते हैं, फिर आपके द्वारा ये दोनों किस कारण पूजित हुए? देवेश! मुझे आप इसका रहस्य बतायें।'

भगवान् सूर्यने कहा—महामते! आपने इनके कर्मके विषयमें बहुत अच्छी बात पूछी है, जिस कारणसे ये मेरे पास आये हैं, उसे आप श्रवण करें—पृथ्वीतलपर अयोध्या नामकी एक प्रसिद्ध नगरी है, जो मेरे अंशसे उत्पन्न राजाओंद्वारा अभिरक्षित है। उस अयोध्या नामक नगरीमें धनपाल नामका एक श्रेष्ठ वैश्य रहता था। उस पुरीमें उसने एक दिव्य सूर्यमन्दिर बनवाया और बहुत-से श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाकर उनकी पूजा की। इतिहास-पुराणके वाचकोंकी विशेषरूपसे पूजा की और उनसे पुराण-श्रवण करानेकी प्रार्थना की तथा कहा—द्विजश्रेष्ठ! इस मन्दिरमें यह चारों वर्णोंका समूह पुराण-श्रवण करनेका इच्छुक है, अतः आप पुराणश्रवण करायें, जिससे भगवान् सूर्य मेरे लिये सात जन्मतक वर देनेवाले हों। आप एक वर्षतक मेरी दी हुई वृत्तिको ग्रहण करें। उन्होंने वैश्य धनपालके आग्रहको स्वीकार कर लिया। परंतु छः मासमें ही वैश्य धनपाल कालधर्मको प्राप्त हो गया। हे कुमार! वही यह वैश्य है। मैंने इसीको लानेके लिये विमान भेजा था। पुण्य आख्यानको कहने या सुननेसे जो फल एवं तुष्टि प्राप्त होती है, यह उसीका फल है। गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे पूजन करनेपर मेरे हृदयमें वैसी प्रसन्नता उत्पन्न नहीं होती जैसी पुराण सुननेसे होती है। कुमार! गौ, सुवर्ण तथा स्वर्णजटित वस्त्रों, ग्रामों तथा नगरोंका दान देनेसे मुझे इतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी प्रसन्नता इतिहास-पुराण सुनने-सुनानेसे होती है। मुझे अनेक खाद्य-पदार्थोंद्वारा किये गये श्राद्धोंसे वैसी प्रसन्नता नहीं होती, जैसी पुराण-वाचनसे होती है। सुरश्रेष्ठ! इससे अधिक और क्या कहूँ? इस रहस्ययुक्त पवित्र आख्यानके वाचनके बिना मुझे अन्य कुछ भी प्रिय नहीं है।

नरोत्तम! यह जो दूसरा ब्राह्मण यहाँ आया है, यह भी उसी श्रेष्ठ अयोध्या नगरीमें उत्तम कुलका ब्राह्मण था। एक बार यह परम श्रद्धा-भक्तिसे समन्वित होकर धर्मकी उत्तम कथाको सुननेके लिये गया था। वहाँपर उसने भक्तिपूर्वक उत्तम पवित्र आख्यानको सुनकर उन महात्मा वाचककी प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् यह ब्राह्मण उस परम तेजस्वी वाचकको दक्षिणामें एक माशा स्वर्ण दान देकर परम आनन्दित हुआ। यही इसका पुण्य है। जो यह मेरे द्वारा सम्मानित हुआ है यह उसी पुण्यकर्मका परिणाम है। श्रद्धा-भक्तिसमन्वित जो व्यक्ति वाचककी पूजा करता है, उसीसे मैं भी पूजित हो जाता हूँ।

जो मनुष्य अच्छे-से-अच्छे भोज्य पदार्थोंके द्वारा वाचकको परितृप्त करता है, उसीसे मेरी भी संतुष्टि हो जाती है।

मेरी संतानें—यम, यमी, शनि, मनु तथा तपती मुझे उतने प्रिय नहीं हैं, जितना मुझे कथावाचक प्रिय है[1]। वाचकके संतुष्ट होनेपर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। क्योंकि हे देवसेनापते! सबसे पहले संसारके द्वारा पूज्य जो मेरा मुख था, उसी मुखसे संसारका कल्याण करनेके निमित्त सभी इतिहास-पुराणादि ग्रन्थ प्रकट हुए। महामते! मुझे पुराण वेदोंसे भी अधिक प्रिय हैं। जो श्रद्धाभावसे नित्य इन्हें सुनते हैं और वाचकको वृत्ति प्रदान करते हैं, वे परमपद प्राप्त करते हैं। सुव्रत! धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष—पुरुषार्थचतुष्टयकी उत्तम व्याख्याके लिये मैंने ये इतिहास-पुराण बनाये हैं। वेदोंका अर्थ अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। अतएव महामते! इनको जाननेके लिये ही मैंने इतिहास-पुराणोंकी रचना की है। जो मनुष्य प्रतिदिन पुराण-श्रवणका उत्तम कार्य करवाता है, वह सूर्यदेवसे ज्ञान प्राप्तकर परमपदको प्राप्त करता है। वाचकको जो दक्षिणा देता है, वह सूर्यदेवके लोकको प्राप्त करता है। हे सुरश्रेष्ठ! इसमें आश्चर्य क्या है? जैसे देवताओंमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं, शस्त्रोंमें वज्र श्रेष्ठ है और जैसे तेजस्वियोंमें अग्नि, नदियोंमें सागर श्रेष्ठ माना गया है, वैसे ही सभी ब्राह्मणोंमें इतिहास-पुराण-वाचक ब्राह्मण श्रेष्ठ है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पुराण-वाचकका पूजन करता है, उसके उस पुण्यकर्मद्वारा सम्पूर्ण जगत् पूजित हो जाता है।

ब्रह्माजीने पुनः कहा—दिण्डिन्! देवदेवेश्वर भगवान् सूर्यके मन्दिरमें जो मनुष्य धर्मका श्रवण करता है या कराता है, उसके पुण्यसे वह परम गतिको प्राप्त करता है।

जो पुरुष भगवान् सूर्यकी तीन बार प्रदक्षिणा करके भूमिपर मस्तक झुकाकर सूर्यनारायणको प्रणाम करता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है। जो मनुष्य जूता पहनकर मन्दिरमें प्रवेश करता है, वह तामिस्र नामक भयंकर नरकमें जाता है। जो सूर्यदेवके स्नानार्थ घृत, दूध, मधु, इक्षुरस अथवा गङ्गादि पवित्र नदियोंका उत्तम जल देते हैं, वे सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्तकर सूर्यमण्डलको प्राप्त करते हैं। अभिषेकके समय जो उनका भक्तिपूर्वक दर्शन करते हैं, उन्हें अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है और अन्तमें वे शिवलोकको जाते हैं। सूर्यभगवान्‌को ऐसे स्थानपर स्नान कराना चाहिये, जहाँ स्नानका जल आदि किसीसे लाँघा न जा सके। जलका लङ्घन हो जानेपर अशुभ होता है। (अध्याय ९४-९५)

जया-सप्तमी-व्रतका वर्णन

दिण्डीने कहा—ब्रह्मन्! आपने मुझसे जो सात सप्तमियोंका वर्णन किया है, उसमें जो पहली सप्तमी है, उसके विषयमें तो आपने विस्तारपूर्वक वर्णन किया, किंतु शेष छः सप्तमियोंके विषयमें कुछ नहीं कहा। अतः अन्य सभी सप्तमियोंका भी आप वर्णन करें, जिनमें उपवास करके मैं सूर्यलोकको प्राप्त कर सकूँ।

ब्रह्माजी बोले—दिण्डिन्! शुक्ल पक्षकी जिस सप्तमीको हस्त नक्षत्र हो, उसे 'जया' सप्तमी कहते हैं। उस दिन किया गया दान, हवन, जप, तर्पण तथा देव-पूजन एवं सूर्यदेवका पूजन सौगुना लाभप्रद होता है। यह सप्तमी भगवान् भास्करको अत्यन्त प्रिय है। यह पापनाशिनी, श्रेष्ठ यश देनेवाली, पुत्र प्राप्त करानेवाली, अभीष्ट इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली और लक्ष्मीको प्राप्त करानेवाली है। प्राचीन कालमें इसी तिथिको भगवान् सूर्यने हस्त नक्षत्रपर संक्रमण किया था, इसलिये इसे शुक्ला सप्तमी भी कहते हैं। अपने दोनों हाथोंमें कमल धारण किये हुए भगवान् सूर्यकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर विधिपूर्वक वर्षभर उनका पूजन करना चाहिये। इस व्रतमें तीन पारणाएँ करनी चाहिये। प्रथम पारणा चार मासपर करे। उसमें करवीरके पुष्प तथा रक्तचन्दन, गुग्गुल-धूप तथा गेहूँके आटेके लड्डूके नैवेद्य आदिसे पूजा करनी चाहिये। इस विधिसे देवाधिपति मार्तण्ड भगवान् सूर्यकी विधिपूर्वक पूजा करके ब्राह्मणोंकी पूजा करे। सप्तमी तिथिमें उपवास रखकर अष्टमीको पारणा करनी चाहिये। इस पारणामें पीली सरसोंमिश्रित जलसे स्नान करे, गोमयका प्राशन करे तथा मदारसे दन्तधावन करे। **'भानुर्मे प्रीयताम्'**—'भगवान् सूर्य मुझपर प्रसन्न हों'—ऐसा उच्चारण करते हुए ये क्रियाएँ सम्पन्न करे। यह पहली पारणा-विधि है।

दूसरी पारणामें मालतीके पुष्प, श्रीखण्ड-चन्दन,

१-न यमो न यमी नापि न मन्दो न मनुस्तथा। तापी न तथाभिष्टा यथेष्टो वाचको मम॥ (ब्राह्मपर्व ९४।४५)

पायसका नैवेद्य तथा विजय-धूप देनी चाहिये। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी वैसा ही भोजन करना चाहिये। **'रविर्मे प्रीयताम्'**—'सूर्यदेव ! मुझपर प्रसन्न हों'—ऐसा कहते हुए पञ्चगव्य प्राशनकर खदिरकी लकड़ीसे दन्तधावन करना चाहिये।

तीसरी पारणामें अगस्ति-पुष्पसे भगवान् भास्करका पूजन करना चाहिये। इस व्रतमें भगवान् सूर्यको श्रीखण्ड, कुसुम, सिह्लक-धूप देने चाहिये, क्योंकि ये भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय हैं।

'विकर्तनो मे प्रीयताम्'—'भगवान् विकर्तन-सूर्य मुझपर प्रसन्न हों'—ऐसी प्रार्थना करते हुए कुशोदकका प्राशन करना चाहिये तथा बेरकी दातून करनी चाहिये। वर्षके अन्तमें भगवान् सूर्यकी गन्ध-पुष्प तथा नैवेद्यादि उपचारोंसे विधिवत् पूजा करनी चाहिये, अनन्तर उन्हींके समक्ष अवस्थित होकर परम पवित्र पुराणका वाचन करवाना चाहिये।

विभो ! इस विधिसे जो पुरुष इस सप्तमी-तिथिका व्रत करता है, उसके स्नानादिक समस्त व्रतके कार्य सौगुना फल देनेवाले हो जाते हैं। इस सप्तमीके व्रतको करनेवाला व्यक्ति यश, धन, धान्य, सुवर्ण, पुत्र, आयु, बल तथा लक्ष्मीको प्राप्त कर सूर्यलोकको जाता है। (अध्याय ९६)
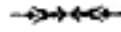
जयन्ती-सप्तमीका विधान और फल

ब्रह्माजी बोले—त्रिलोचन ! माघ मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथि जयन्ती-सप्तमी कही जाती है, यह पुण्यदायिनी, पापविनाशिनी तथा कल्याणकारिणी है। इस तिथिपर जिस विधिसे उपासना करनी चाहिये, उसे आप सुनें। पण्डितोंने इस व्रतमें चार पारणाओंका उल्लेख किया है। पञ्चमी तिथिमें एकभुक्त, षष्ठीमें नक्तव्रत और सप्तमीमें उपवास करके अष्टमीमें पारणा करनी चाहिये। माघ, फाल्गुन तथा चैत्र मासमें जब जयन्ती-सप्तमीका व्रत किया जाय तब भगवान् सूर्यको बकुलके सुन्दर पुष्प चढ़ाने चाहिये तथा कुंकुमका विलेपन करना चाहिये, मोदकोंका नैवेद्य और घृतका धूप देना चाहिये। पञ्चगव्य-प्राशन करके पवित्रीकरण करना चाहिये। ब्राह्मणोंको मोदक यथाशक्ति खिलाना चाहिये तथा शालि नामक चावलका भात भी देना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य लोकपूज्य भगवान् भास्करकी पूजा करता है, वह इस व्रतकी सभी पारणाओंमें अश्वमेध एवं राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त करता है।

द्वितीय पारणामें सूर्यभगवान्‌की पूजा करके राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें सूर्यदेवकी पूजा करनेके लिये शतदल कमल तथा श्वेत चन्दन और गुग्गुलके धूपका विधान कहा गया है। इसमें गुड़के बने हुए अपूपका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये और गोमयका प्राशन करना चाहिये। ब्राह्मणोंको गुड़से बने हुए अपूपोंका भोजन कराना अच्छा माना गया है। यह पारणा पापनाशिका है।

तृतीय पारणाकी विधि इस प्रकार है—श्रावण, भाद्रपद और आश्विन मासमें रक्त चन्दन, मालतीके पुष्प और विजय नामक धूपका पूजनमें प्रयोग करना चाहिये। घृतमें बनाये गये अपूपोंका नैवेद्य निवेदित करना चाहिये। ब्राह्मणोंको भोजन भी उसी घृतके अपूपोंसे करानेका विधान है। शरीरको परम पवित्र करनेवाले कुशोदकका पान करना चाहिये। यह तृतीय पारणा पापोंका नाश करनेवाली कही गयी है।

अब चौथी पारणा बता रहा हूँ, इसे सुनें—कार्तिक, मार्गशीर्ष तथा पौष मासमें सूर्यपूजनकी पारणा करनेसे अनन्त पुण्यफल प्राप्त होते हैं। इस पारणामें कनेरके लाल पुष्प, रक्तचन्दन देने चाहिये। अमृत[1] नामका धूप, पायसका श्रेष्ठ नैवेद्य निवेदित करना चाहिये। श्वेत गायके मट्ठेका प्राशन करनेका विधान है।

चारों पारणाओंमें क्रमशः **'चित्रभानुः प्रीयताम्'**, **'भानुः प्रीयताम्'**, **'आदित्यः प्रीयताम्'** तथा **'भास्करः**

१-अगरुं चन्दनं मुस्तं सिह्लकं त्र्यूषणं तथा। समभागैस्तु कर्तव्यमिदं चामृतमुच्यते॥
(ब्राह्मपर्व ९७। १९)

अगरु, चन्दन, मोथा, सिह्लक (एक गन्ध-द्रव्य) और त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मिर्च) को समभाग लेकर जो धूप बनाया जाता है, उसे अमृत-धूप कहते हैं।

प्रीयताम्'—ऐसा उच्चारण करना चाहिये। इस विधिसे जो मनुष्य विभावसु भगवान् सूर्यनारायणकी पूजा करता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। इस प्रकार सप्तमी-व्रत करनेपर व्रतकर्ताको सभी अभीष्ट कामनाओंकी प्राप्ति हो जाती है। पुत्रार्थी पुत्र तथा धनार्थी धन प्राप्त करता है और रोगी मनुष्य रोगोंसे मुक्त हो जाता है तथा अन्तमें वह नितान्त कल्याण प्राप्त करता है।

इस प्रकार जो मनुष्य इस सप्तमी-व्रतका आचरण करता है, वह सर्वत्र विजयी होता है तथा सभी पापोंसे मुक्त होकर वह विशुद्धात्मा सूर्यलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय ९७)

अपराजिता-सप्तमी एवं महाजया-सप्तमी-व्रतका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—गणाधिप! भाद्रपद मासके शुक्ल-पक्षकी सप्तमी तिथि अपराजिता-सप्तमी नामसे विख्यात है। यह महापातकोंका नाश करती है। इस व्रतमें चतुर्थी तिथिको एकभुक्त और पञ्चमी तिथिमें नक्तव्रत करनेका विधान है। षष्ठी तिथिको उपवास करके सप्तमी तिथिमें पारणा करनेका विधान है। विद्वानोंने इसमें भी चार पारणाएँ बतायी हैं। सूर्यदेवकी पूजा करवीर-पुष्प, रक्तचन्दन, गुग्गुलसे बने हुए धूप, गुड़से बने अपूपसे करनी चाहिये। भाद्रपद आदि तीन मासोंमें श्वेत पुष्प, श्वेत चन्दन, घृतका धूप तथा पायसके नैवेद्यसे सूर्यदेवका पूजन करना चाहिये। मार्गशीर्ष आदि तीन महीनोंमें अगस्त्य-पुष्प, कुंकुमका विलेपन, सिह्लक-धूप, शालि-चावलके नैवेद्य आदिसे पूजा करनी चाहिये। फाल्गुन आदि तीन मासोंमें रक्त कमलके पुष्प, अगरु, चन्दन, अनन्त[1] नामक धूप, शर्करा या मिश्रीखण्डसे बने हुए अपूपोंके नैवेद्यसे सूर्यदेवकी पूजा करनी चाहिये। विद्वानोंने ज्येष्ठ आदिके महीनोंमें सूर्यदेवकी पूजा करनेके लिये इसी विधिको कहा है। चारों पारणाओंमें क्रमशः भगवान् सूर्यदेवके नाम इस प्रकार हैं—सुधांशु, अर्यमा, सविता और त्रिपुरान्तक। सभी पारणाओंमें क्रमशः '**सुधांशुः प्रीयताम्**' इत्यादि कहे। गोमूत्र, पञ्चगव्य, घृत, गरम दूध—ये व्रतके क्रमशः प्राशन-पदार्थ हैं।

जो मनुष्य इस विधिसे इस सप्तमी-व्रतको करता है, वह युद्धमें शत्रुओंसे पराजित नहीं होता। वह शत्रुको जीतकर धर्म, अर्थ तथा काम—इस त्रिवर्गके फलको भी निःसंदेह प्राप्त कर लेता है। त्रिवर्गको प्राप्त करके वह सूर्य-लोकको प्राप्त होता है।

जो मनुष्य इस प्रकार सदा प्रयत्नपूर्वक सप्तमी-व्रतको करता है, वह शत्रुको पराजित करके सूर्यलोकको प्राप्त करता है और श्वेत अश्वोंसे युक्त एवं स्वर्णिम ध्वज-पताकासे समन्वित यानके द्वारा भगवान् वरुणदेवके समीपमें जाकर उनका प्रिय हो जाता है।

ब्रह्माजी बोले—शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें जब सूर्य संक्रमण करते हैं, तब वह सप्तमी महाजया कहलाती है, जो भगवान् भास्करको अत्यन्त प्रिय है। इस अवसरपर किये गये स्नान, दान, जप, होम और पितृ-देव-पूजन—ये सब कार्य कोटि-गुना फल देते हैं—ऐसा भगवान् भास्करने स्वयं कहा है। (अध्याय ९८-९९)

नन्दा-सप्तमी तथा भद्रा-सप्तमी-व्रतका विधान

ब्रह्माजी बोले—हे वीर! मार्गशीर्ष मासमें शुक्ल पक्षकी जो सप्तमी होती है, वह नन्दा कहलाती है। वह सभीको आनन्दित करनेवाली तथा कल्याणकारिणी है। इस व्रतमें पञ्चमी तिथिको एकभुक्त और षष्ठी तिथिमें नक्तव्रत कर मनीषीलोग सप्तमी तिथिको उपवास बतलाते हैं। इस व्रतमें विद्वानोंने तीन पारणाओंके करनेका उपदेश किया है। इसके पूजनमें मालतीके पुष्प, सुगन्ध, चन्दन, कर्पूर और अगरुसे मिश्रित धूपका प्रयोग करना चाहिये। खाँड़के सहित दही-भातका नैवेद्य भगवान् भास्करको प्रिय है। उसी खाँड़मिश्रित दही-भातका भोजन ब्राह्मणोंको करवाना चाहिये। तत्पश्चात्

१-श्रीखण्डं ग्रन्थिसहितमगुरुः सिह्लकं तथा। मुस्ता तथेन्द्रं भूतेश शर्करा गृह्यते ह्यहम्॥
इत्येष धूपोऽनन्तस्तु कथितो देवसत्तम।

(ब्राह्मपर्व ९८। ९-१०)

श्रीखण्ड, अगरु, सिह्लक, नागरमोथा, ग्रन्थिपर्णी, इन्द्रायण तथा शर्करा मिलाकर जो धूप बनाया जाता है, उसे अनन्त नामक धूप कहा गया है।

स्वयं भी उसी भोजनको करना चाहिये। भगवान् भास्करको धूप देनेके लिये प्रथम पारणामें विधि इस प्रकार है— पलाशके पुष्प, पक्षक[1] धूप अथवा यथासामर्थ्य जो भी धूप हो सके, उसी धूपसे पूजा करनी चाहिये।

द्वितीय पारणामें प्रबोध[2] धूप, शर्कराखण्डसे मिश्रित पुएका नैवेद्य सूर्यनारायणको अर्पित करनेका विधान है। खाँड़मिश्रित भोजनसे ब्राह्मणोंको भोजन भी कराना चाहिये। निम्ब-पत्रका प्राशन करनेके पश्चात् स्वयं भी मौन होकर भोजन करना चाहिये।

तृतीय पारणामें भगवान् भास्करको प्रसन्न करनेके लिये नील या श्वेत कमल और गुग्गुलके धूप तथा पायसका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। प्राशनमें तथा विलेपनमें भी चन्दनके उपयोगकी विधि कही गयी है।

मनुष्योंको सदा पवित्र करनेवाले भगवान् सूर्यनारायणके नामोंको भी सुनें—विष्णु, भग तथा धाता ये उनके नाम हैं। प्रत्येक पारणामें क्रमशः **'विष्णुः प्रीयताम्'** इत्यादि उच्चारण करना चाहिये। इस विधिसे जो मनुष्य दत्तचित्त होकर भगवान् भास्करकी पूजा करता है, वह इस लोकमें अपनी कामनाओंको पूर्ण करके अनन्तकालतक आनन्दित रहता है। तत्पश्चात् सूर्यलोकमें जाकर वह वहाँ भी आनन्दको प्राप्त करता है।

ब्रह्माजी बोले—शुक्ल पक्षमें सप्तमी तिथिको जब हस्त नक्षत्र हो तो वह भद्रा-सप्तमी कही जाती है। उस दिन भगवान् सूर्यदेवको पहले घीसे, अनन्तर दूधसे तत्पश्चात् इक्षुरससे स्नान कराकर चन्दनका लेप करना चाहिये। तत्पश्चात् उन्हें गुग्गुलका धूप दिखाये। चतुर्थी तिथिको एकभुक्त तथा पञ्चमी तिथिको नक्तव्रत करनेका विधान है। षष्ठी तिथिको अयाचित रहकर सप्तमी तिथिको उपवास रखना श्रेष्ठ कहा गया है। सप्तमी-व्रतका पालन करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह उस व्रतके दिन पाखण्डी, सत्कर्मोंसे दूर करनेवाले, बिडाल-वृत्तिका आचरण करनेवाले मनुष्योंसे दूर रहे। बुद्धिमान् व्यक्ति सप्तमी-व्रतका पालन करते हुए दिनमें शयन न करे। इस विधिसे जो मनुष्य भद्रा-सप्तमीका व्रत करता है, उसे ऋभु नामक देवता सदा समस्त कल्याणकी वस्तुएँ प्रदान करते हैं। जो मनुष्य इस तिथिको शालिचूर्णसे भद्र (वृषभ) बनाकर सूर्यदेवको समर्पित करता है, उसको भद्र पुत्र प्राप्त होता है और वह जीवन-पर्यन्त आनन्दित रहता है।

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सप्तमी-कल्पको प्रारम्भसे सुनता है, वह अश्वमेधयज्ञके फलको प्राप्त करनेके पश्चात् परमपद—मोक्षको प्राप्त होता है।

(अध्याय १००-१०१)

तिथियों और नक्षत्रोंके देवता तथा उनके पूजनका फल

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! यद्यपि भगवान् सूर्यको सभी तिथियाँ प्रिय हैं, किंतु सप्तमी तिथि विशेष प्रिय है।

शतानीकने पूछा—जब भगवान् सूर्यको सभी तिथियाँ प्रिय हैं तो सप्तमीमें ही यज्ञ, दान आदि विशेषरूपसे क्यों अनुष्ठित होते हैं?

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! प्राचीन कालमें इस विषयमें भगवान् विष्णुने सुरज्येष्ठ ब्रह्माजीसे जो प्रश्न किये थे और ब्रह्माजीने जैसा बतलाया था, उसे मैं आपको बताता हूँ, आप श्रवण करें—

ब्रह्माजी बोले—विष्णो! विभाजनके समय प्रतिपद् आदि सभी तिथियाँ अग्नि आदि देवताओंको तथा सप्तमी भगवान् सूर्यको प्रदान की गयी। जिन्हें जो तिथि दी गयी, वह

१-कर्पूरं चन्दनं कुष्ठमगरुः सिह्लकं तथा॥
सग्रन्थि वृषणं भीम कुंकुमं गुञ्जनं तथा। हरीतकी तथा भीम एष पक्षक उच्यते॥
(ब्राह्मपर्व १०० । ६-७)

कर्पूर, चन्दन, कुष्ठ (कूटकी), अगरु, सिह्लक, ग्रंथिपर्णी, कस्तूरी, कुंकुम, गुञ्जन तथा हरीतकीके मेलसे पक्षक धूप बनता है।

२-कृष्णागरुः सितं कंजं वालकं वृषणं तथा॥
चन्दनं तगरो मुस्ता प्रबोधशर्करान्विता। (ब्राह्मपर्व १०० । ८-९)

कृष्णागरु, श्वेत कमल, सुगन्धबाला, कस्तूरी, चन्दन, तगर, नागरमोथा और शर्करा मिलाकर प्रबोध धूप बनता है।

उसका ही स्वामी कहलाया। अतः अपने दिनपर ही अपने मन्त्रोंसे पूजे जानेपर वे देवता अभीष्ट प्रदान करते हैं।

सूर्यने अग्निको प्रतिपदा, ब्रह्माको द्वितीया, यक्षराज कुबेरको तृतीया और गणेशको चतुर्थी तिथि दी है। नागराजको पञ्चमी, कार्तिकेयको षष्ठी, अपने लिये सप्तमी और रुद्रको अष्टमी तिथि प्रदान की है। दुर्गादेवीको नवमी, अपने पुत्र यमराजको दशमी, विश्वेदेवगणोंको एकादशी तिथि दी गयी है। विष्णुको द्वादशी, कामदेवको त्रयोदशी, शङ्करको चतुर्दशी तथा चन्द्रमाको पूर्णिमाकी तिथि दी है। सूर्यके द्वारा पितरोंको पवित्र, पुण्यशालिनी अमावास्या तिथि दी गयी है। ये कही गयी पंद्रह तिथियाँ चन्द्रमाकी हैं। कृष्ण पक्षमें देवता इन सभी तिथियोंमें शनैः शनैः चन्द्रकलाओंका पान कर लेते हैं। वे शुक्ल पक्षमें पुनः सोलहवीं कलाके साथ उदित होती हैं। वह अकेली षोडशी कला सदैव अक्षय रहती है। उसमें साक्षात् सूर्यका निवास रहता है। इस प्रकार तिथियोंका क्षय और वृद्धि स्वयं सूर्यनारायण ही करते हैं। अतः वे सबके स्वामी माने जाते हैं। ध्यानमात्रसे ही सूर्यदेव अक्षय गति प्रदान करते हैं। दूसरे देवता भी जिस प्रकार उपासकोंकी अभीष्ट कामना पूर्ण करते हैं, उसे मैं संक्षेपमें बताता हूँ, आप सुनें—

प्रतिपदा तिथिमें अग्निदेवकी पूजा करके अमृतरूपी घृतका हवन करे तो उस हविसे समस्त धान्य और अपरिमित धनकी प्राप्ति होती है। द्वितीयाको ब्रह्माकी पूजा करके ब्रह्मचारी ब्राह्मणको भोजन करानेसे मनुष्य सभी विद्याओंमें पारङ्गत हो जाता है। तृतीया तिथिमें धनके स्वामी कुबेरका पूजन करनेसे मनुष्य निश्चित ही विपुल धनवान् बन जाता है तथा क्रय-विक्रयादि व्यापारिक व्यवहारमें उसे अत्यधिक लाभ होता है। चतुर्थी तिथिमें भगवान् गणेशका पूजन करना चाहिये। इससे सभी विघ्नोंका नाश हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। पञ्चमी तिथिमें नागोंकी पूजा करनेसे विषका भय नहीं रहता, स्त्री और पुत्र प्राप्त होते हैं और श्रेष्ठ लक्ष्मी भी प्राप्त होती है। षष्ठी तिथिमें कार्तिकेयकी पूजा करनेसे मनुष्य श्रेष्ठ मेधावी, रूप-सम्पन्न, दीर्घायु और कीर्तिको बढ़ानेवाला हो जाता है। सप्तमी तिथिको चित्रभानु नामवाले भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करना चाहिये, ये सबके स्वामी एवं रक्षक हैं। अष्टमी तिथिको वृषभसे सुशोभित भगवान् सदाशिवकी पूजा करनी चाहिये, वे प्रचुर ज्ञान तथा अत्यधिक कान्ति प्रदान करते हैं। भगवान् शङ्कर मृत्युहरण करनेवाले, ज्ञान देनेवाले और बन्धनमुक्त करनेवाले हैं। नवमी तिथिमें दुर्गाकी पूजा करके मनुष्य इच्छापूर्वक संसार-सागरको पार कर लेता है तथा संग्राम और लोकव्यवहारमें वह सदा विजय प्राप्त करता है। दशमी तिथिको यमकी पूजा करनी चाहिये, वे निश्चित ही सभी रोगोंको नष्ट करनेवाले और नरक तथा मृत्युसे मानवका उद्धार करनेवाले हैं। एकादशी तिथिको विश्वेदेवोंकी भली प्रकारसे पूजा करनी चाहिये। वे भक्तको संतान, धन-धान्य और पृथ्वी प्रदान करते हैं। द्वादशी तिथिको भगवान् विष्णुकी पूजा करके मनुष्य सदा विजयी होकर समस्त लोकमें वैसे ही पूज्य हो जाता है, जैसे किरणमाली भगवान् सूर्य पूज्य हैं। त्रयोदशीमें कामदेवकी पूजा करनेसे मनुष्य उत्तम रूपवान् हो जाता है और मनोवाञ्छित रूपवती भार्या प्राप्त करता है तथा उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। चतुर्दशी तिथिमें भगवान् देवदेवेश्वर सदाशिवकी पूजा करके मनुष्य समस्त ऐश्वर्योंसे समन्वित हो जाता है तथा बहुत-से पुत्रों एवं प्रभूत धनसे सम्पन्न हो जाता है। पौर्णमासी तिथिमें जो भक्तिमान् मनुष्य चन्द्रमाकी पूजा करता है, उसका सम्पूर्ण संसारपर अपना आधिपत्य हो जाता है और वह कभी नष्ट नहीं होता। दिण्डिन्! अपने दिनमें अर्थात् अमावास्यामें पितृगण पूजित होनेपर सदैव प्रसन्न होकर प्रजावृद्धि, धन-रक्षा, आयु तथा बल-शक्ति प्रदान करते हैं। उपवासके बिना भी ये पितृगण उक्त फलको देनेवाले होते हैं। अतः मानवको चाहिये कि पितरोंको भक्तिपूर्वक पूजाके द्वारा सदा प्रसन्न रखे। मूलमन्त्र, नाम-संकीर्तन और अंश मन्त्रोंसे कमलके मध्यमें स्थित तिथियोंके स्वामी देवताओंकी विविध उपचारोंसे भक्तिपूर्वक यथाविधि पूजा करनी चाहिये तथा जप-होमादि कार्य सम्पन्न करने चाहिये। इसके प्रभावसे मानव इस लोकमें और परलोकमें सदा सुखी रहता है। उन-उन देवोंके लोकोंको प्राप्त करता है और मनुष्य उस देवताके अनुरूप हो जाता है। उसके सारे अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं तथा वह उत्तम रूपवान्, धार्मिक, शत्रुओंका नाश करनेवाला राजा होता है।

इसी प्रकार सभी नक्षत्र-देवता जो नक्षत्रोंमें ही व्यवस्थित हैं, वे पूजित होनेपर समस्त अभीष्ट कामनाओंको प्रदान करते

हैं, अब मैं उनके विषयमें बताता हूँ। अश्विनी नक्षत्रमें अश्विनीकुमारोंकी पूजा करनेसे मनुष्य दीर्घायु एवं व्याधिमुक्त होता है। भरणी नक्षत्रमें कृष्ण वर्णके सुन्दर पुष्पों तथा शुभ्र कर्पूरादि गन्धसे पूजित यमदेव अपमृत्युसे मुक्त कर देते हैं। कृत्तिका नक्षत्रमें रक्त पुष्पोंसे बनी हुई माल्यादि और होमके द्वारा पूजा करनेसे अग्निदेव निश्चित ही यथेष्ट फल देते हैं। रोहिणी नक्षत्रमें प्रजापति—मुझ ब्रह्माकी पूजा करनेसे मैं उसकी अभिलाषा पूर्ण कर देता हूँ। मृगशिरा नक्षत्रमें पूजित होनेपर उसके स्वामी चन्द्रदेव उसे ज्ञान और आरोग्य प्रदान करते हैं। आर्द्रा नक्षत्रमें शिवके अर्चनसे विजय प्राप्त होती है। सुन्दर कमल आदि पुष्पोंसे पूजे गये भगवान् शिव सदा कल्याण करते हैं।

पुनर्वसु नक्षत्रमें अदितिकी पूजा करनी चाहिये। पूजासे संतृप्त होकर वे माताके सदृश रक्षा करती हैं। पुष्य नक्षत्रमें उसके स्वामी बृहस्पति अपनी पूजासे प्रसन्न होकर प्रचुर सद्बुद्धि प्रदान करते हैं। आश्लेषा नक्षत्रमें नागोंकी पूजा करनेसे नागदेव निर्भय कर देते हैं, काटते नहीं। मघा नक्षत्रमें हव्य-कव्यके द्वारा पूजे गये सभी पितृगण धन, धान्य, भृत्य, पुत्र तथा पशु प्रदान करते हैं। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें पूषाकी पूजा करनेपर विजय प्राप्त हो जाती है और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें भग नामक सूर्यदेवकी पुष्पादिसे पूजा करनेपर वे विजय, कन्याको अभीप्सित पति और पुरुषको अभीष्ट पत्नी प्रदान करते हैं तथा उन्हें रूप एवं द्रव्य-सम्पदासे सम्पन्न बना देते हैं। हस्त नक्षत्रमें भगवान् सूर्य गन्ध-पुष्पादिसे पूजित होनेपर सभी प्रकारकी धन-सम्पत्तियाँ प्रदान करते हैं। चित्रा नक्षत्रमें पूजे गये भगवान् त्वष्टा शत्रुरहित राज्य प्रदान करते हैं। स्वाती नक्षत्रमें वायुदेव पूजित होनेपर संतुष्ट हो परमशक्ति प्रदान करते हैं। विशाखा नक्षत्रमें लाल पुष्पोंसे इन्द्राग्निका पूजन करके मनुष्य इस लोकमें धन-धान्य प्राप्त कर सदा तेजस्वी रहता है।

अनुराधा नक्षत्रमें लाल पुष्पोंसे भगवान् मित्रदेवकी भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा करनेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और वह इस लोकमें चिरकालतक जीवित रहता है। ज्येष्ठा नक्षत्रमें देवराज इन्द्रकी पूजा करनेसे मनुष्य पुष्टि प्राप्त करता है तथा गुणोंमें, धनमें एवं कर्ममें सबसे श्रेष्ठ हो जाता है। मूल नक्षत्रमें सभी देवताओं और पितरोंकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे मानव स्वर्गमें अचल-रूपसे निवास करता है और पूर्वोक्त फलोंको प्राप्त करता है। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें अप्-देवता (जल) की पूजा और हवन करके मनुष्य शारीरिक तथा मानसिक संतापोंसे मुक्त हो जाता है। उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें विश्वेदेवों और भगवान् विश्वेश्वरकी पुष्पादिद्वारा पूजा करनेसे मनुष्य सभी कुछ प्राप्त कर लेता है।

श्रवण नक्षत्रमें श्वेत, पीत और नील वर्णके पुष्पोंद्वारा भक्तिभावसे भगवान् विष्णुकी पूजा कर मनुष्य उत्तम लक्ष्मी और विजयको प्राप्त करता है। धनिष्ठा नक्षत्रमें गन्ध-पुष्पादिसे वसुओंके पूजनसे मनुष्य बहुत बड़े भयसे भी मुक्त हो जाता है। उसे कहीं कुछ भी भय नहीं रहता। शतभिषा नक्षत्रमें इन्द्रकी पूजा करनेसे मनुष्य व्याधियोंसे मुक्त हो जाता है और आतुर व्यक्ति पुष्टि, स्वास्थ्य और ऐश्वर्यको प्राप्त करता है। पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रमें शुद्ध स्फटिक मणिके समान कान्तिमान् अजन्मा प्रभुकी पूजा करनेसे उत्तम भक्ति और विजय प्राप्त होती है। उत्तराभाद्रपद नक्षत्रमें अहिर्बुध्न्यकी पूजा करनेसे परम शान्तिकी प्राप्ति होती है। रेवती नक्षत्रमें श्वेत पुष्पसे पूजे गये भगवान् पूषा सदैव मङ्गल प्रदान करते हैं और अचल धृति तथा विजय भी देते हैं।

अपनी सामर्थ्यके अनुसार भक्तिसे किये गये पूजनसे ये सभी सदा फल देनेवाले होते हैं। यात्रा करनेकी इच्छा हो अथवा किसी कार्यको प्रारम्भ करनेकी इच्छा हो तो नक्षत्र-देवताकी पूजा आदि करके ही वह सब कार्य करना उचित है। इस प्रकार करनेपर यात्रामें तथा क्रियामें सफलता होती है—ऐसा स्वयं भगवान् सूर्यने कहा है।

ब्रह्माजीने कहा—मधुसूदन ! आप भक्तिपूर्वक सूर्यकी आराधना करें; क्योंकि भगवान् सूर्यकी नित्य पूजा, नमस्कार, सेवा-व्रत, उपवास, हवनादि तथा विविध प्रकारसे ब्राह्मणोंको तृप्त करनेसे मनुष्य पापरहित होकर सूर्यलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १०२)

सूर्य-पूजाका माहात्म्य

ब्रह्माजी बोले—मधुसूदन ! जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवका मन्दिर बनवाता है, वह अपनी सात पीढ़ियोंको दिव्य सूर्यलोक प्राप्त करा देता है। सूर्यदेवके मन्दिरमें जितने वर्षपर्यन्त भगवान् सूर्यकी पूजा होती है, उतने हजार वर्षोंतक वह सूर्यलोकमें आनन्द प्राप्त करता है। जिसके घरमें अर्घ्य, पुष्प, चन्दन, नैवेद्य आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी विधिपूर्वक आराधना होती है, वह चाहे सकाम हो या निष्काम, वह सूर्यकी साम्यता प्राप्त कर लेता है। भगवान् सूर्यमें अपने मनको लगाकर जो व्यक्ति अत्यन्त सुगन्धित मनोहारी पुष्प, विजय तथा अमृतादि नामक धूप, अत्यधिक सुगन्धित कर्पूरादिके विलेपनका लेप, दीपदान, नैवेद्य आदि उपहार भगवान् सूर्यनारायणको प्रतिदिन अर्पण करता है, वह अपनी अभीष्ट इच्छा प्राप्त कर लेता है। यज्ञाधिपति भगवान् भास्कर यज्ञोंसे भी प्रसन्न होते हैं, किंतु धनवान् तथा लोकसंचयी मनुष्य ही बहुत-से संसाधनों और नाना प्रकारके सम्भारोंसे युक्त एवं विस्तृत (अश्वमेध तथा राजसूयादि) यज्ञ सम्पन्न कर पाते हैं, इसलिये यदि मनुष्य भगवान् सूर्यकी भक्तिभावसे दूर्वाङ्कुरोंसे भी पूजा करते हैं तो सूर्यदेव उन्हें इन सभी यज्ञोंके करनेसे प्राप्त होनेवाले अति दुर्लभ फलको प्रदान कर देते हैं।

सूर्यदेवको अर्पित करने योग्य पुष्प, भोज्य-पदार्थ—नैवेद्य, धूप, गन्ध और शरीरमें लगानेवाला अनुलेप्य-पदार्थ, भूषण और लाल वस्त्र जो भी उपहार तथा भक्ष्य फल है, वह सब सूर्यदेवके अनुरूप होना चाहिये। उन आदिदेव यज्ञपुरुषकी आप यथाशक्ति आराधना करें। भगवान् सूर्यके मन्दिरमें जो चित्रभानु भगवान् दिवाकरको तीर्थके पवित्र जल, गन्ध, मधु, घृत और दूधसे स्नान कराता है, वह स्वर्गलोकके समान मधुर दूध-दहीसे सम्पन्न हो जाता है अथवा शाश्वत शान्तिको प्राप्त कर लेता है। अनेक विदेहवंशीय जनक नामसे प्रख्यात राजा और हैहयवंशी नृपतिगण भगवान् सूर्यकी आराधनासे अमरत्वको प्राप्त हो गये हैं। इसलिये आप भी विधिपूर्वक उपासनासे भगवान् भास्करको संतुष्ट करें, इससे प्रसन्न हुए भगवान् सूर्य शान्ति प्रदान करते हैं।

विष्णुने पूछा—ब्रह्मन् ! भगवान् सूर्य उपवाससे कैसे संतुष्ट होते हैं ? उपवास करनेवाले भक्तके द्वारा इनकी आराधना किस प्रकार की जाय ? इसे आप बतायें।

ब्रह्माजीने कहा—जब भोगपरायण व्यक्ति भी धूप, पुष्प आदि उपचारोंसे भगवान् सूर्यकी तन्मयतापूर्वक आराधना कर कल्याण प्राप्त कर लेता है तो फिर उपवास-परायण व्यक्ति यदि आराधना करता है तो उसके कल्याणके विषयमें कहना ही क्या है ?

पापोंसे दूर रहना, सद्गुणोंका आचरण करना और सम्पूर्ण भोगोंसे विरत रहना उपवास कहलाता है। जो उपवास-परायण पुरुष भक्तिभावसे एक रात, दो रात अथवा तीन रात भगवान् सूर्यका ध्यान करता है, उनके नामका जप करता है और उनके उद्देश्यसे ही सम्पूर्ण कार्य करता है तथा उन्हींमें अपना मन लगाये हुए है ऐसा अनासक्त पुरुष भगवान् सूर्यकी पूजाकर उस परम ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य किसी कामनावश अपने मनको भगवान् सूर्यमें लगाकर ध्यानपूर्वक उनकी उपासना करता है, वह वृषध्वज भगवान् सूर्यके प्रसन्न होनेपर उस उद्देश्यको प्राप्त कर लेता है।

विष्णुने पूछा—विभो ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्री आदि सभी सांसारिक पङ्कमें फँसे हुए हैं, उन्हें सुगति कैसे प्राप्त होगी ?

ब्रह्माजीने कहा—मनुष्य निष्कपट-भावसे तिमिरहर भगवान् भास्करकी आराधना करके सद्गति प्राप्त कर सकता है। जो व्यक्ति विषयोंमें आसक्त है तथा भगवान् सूर्यमें मन नहीं लगाता ऐसा पाप-कर्म करनेवाला मनुष्य सद्गति कैसे प्राप्त कर सकेगा ? संसारके दुःखसे पीड़ित व्यक्ति सद्गति प्राप्त करना चाहता है तो उस लोकपूज्य सर्वेश्वर भगवान् ग्रहाधिपति सूर्यकी पुष्प, सुगन्धित धूप, अगरु, चन्दन, वस्त्र, आभूषण तथा भक्ष्य-नैवेद्यादि उपचारोंसे उपवास-परायण होकर आराधना करे। यदि संसारसे विरक्त होकर सद्गति प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो तो कालके स्वामी सूर्यदेवकी आराधना करे। यदि उनकी आराधनाके लिये पुष्प नहीं है तो शुभ वृक्षोंके कोमल पल्लवों एवं दूर्वाङ्कुरोंसे भी पूजा की जा सकती है। अपनी सामर्थ्यके अनुसार पुष्प-पत्र-जल तथा धूपसे भक्तिभावपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजाकर वह अतुलनीय संतुष्टि प्राप्त कर सकता है। सूर्यदेवके लिये विधिवत् एक बार

भी किया गया प्रणाम दस अश्वमेध-यज्ञके बराबर होता है। दस अश्वमेध-यज्ञको करनेवाला मनुष्य बार-बार जन्म लेता है, किंतु सूर्यदेवको प्रणाम करनेवाला पुनः संसारमें जन्म नहीं लेता * ।

इस प्रकार भक्तिपूर्वक जिसके द्वारा विधि-विधानसे भगवान् सूर्यकी उपासना की जाती है, वह उत्तम गति प्राप्त करता है। उन्हींकी आराधना करके मैंने संसार-पूज्य इस ब्रह्मत्वको प्राप्त किया है। आपने भी पहले उन्हीं सूर्यदेवसे अपनी अभीष्ट इच्छाओंको प्राप्त किया। भगवान् शङ्कर भी उन्हींकी आराधनासे ब्रह्महत्यासे मुक्त हुए। भगवान् दिवाकरकी आराधनासे किन्हीं मनुष्योंने देवत्व, किन्हींने गन्धर्वत्व और किन्हींने विद्याधरत्व प्राप्त किया है। लेख नामक इन्द्रने एक सौ यज्ञोंद्वारा इन्हीं भगवान् सूर्यकी आराधना करके इन्द्रत्व प्राप्त किया, इसलिये भगवान् सूर्यके अतिरिक्त अन्य कोई देव पूजनीय नहीं है। ब्रह्मचारीको अन्य देवोंकी अपेक्षा अपने श्रेष्ठ गुरु भगवान् भास्करकी ही आराधना करनी चाहिये, क्योंकि ये यज्ञ-पुरुष विवस्वान् भगवान् सूर्य सर्वदा पूज्य हैं। स्त्रियोंके लिये पतिके अतिरिक्त विभावसु भगवान् सूर्यदेव ही पूज्य हैं। गृहस्थ-पतिके लिये भी गोपति अंशुमान् ही पूजने योग्य हैं। वैश्योंको भी तमोनाशक सूर्यदेवकी पूजा करनी चाहिये। संन्यासियोंके लिये भी सदैव विभावसु ही ध्यान करने योग्य हैं।

इस प्रकार सभी वर्णों तथा सभी आश्रमोंके लिये चित्रभानु भगवान् सूर्यनारायण ही उपास्य हैं। उनकी आराधनासे सद्गति प्राप्त हो जाती है।

(अध्याय १०३)

त्रिवर्ग-सप्तमीकी महिमा

ब्रह्माजी बोले—विष्णो! जिन-जिन कामनाओंको लेकर अथवा निष्काम होकर भगवान् सूर्यनारायणके उपवास-व्रतोंको करके व्यक्ति मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है, अब आप उन-उन उपवास-व्रतोंके विषयमें सुनें।

जो व्यक्ति फाल्गुन मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिको भक्तिपूर्वक बार-बार हेलि नामक भगवान् सूर्यका जप एवं पूजन करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। देव-पूजनमें पवित्र होकर १०८ बार जप करना चाहिये। स्नान करते हुए, प्रस्थान-कालमें, उठते-बैठते अर्थात् सभी समय भगवान् सूर्यका नामोच्चारण करना चाहिये। उपवास करनेवाले व्यक्तिको पाखण्डी, पतित और अन्यायी लोगोंसे बातचीत नहीं करनी चाहिये। श्रद्धापूर्वक सूर्यदेवके प्रति मन एकाग्र करके उनकी पूजा करते हुए इस श्लोकका पाठ करना चाहिये—

हंस हंस कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव।
संसारार्णवमग्नानां त्राता भव दिवाकर॥

(अध्याय १०४।५)

'हे परमहंस-स्वरूप भगवान् सूर्य! आप दयालु हैं, गतिहीनोंको सद्गति प्रदान करनेवाले हैं, संसार-सागरमें निमग्न लोगोंके लिये आप रक्षक बनें।'

इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर उपवास करते हुए भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करना चाहिये। पूर्वाह्णकालमें स्नानकर सूर्यदेवका पूजन करे, तत्पश्चात् '**हंस हंस॰**' इस श्लोकका जप करे और भगवान् सूर्यके चरणोंमें तीन बार जलधारा अर्पित करे।

इसी प्रकार चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ मासमें भी भगवान् सूर्यदेवका पूजन करते हुए मनुष्य मृत्युलोकमें ही श्रेष्ठ गतिको प्राप्त कर लेता है और अन्तमें सूर्यलोकको प्राप्त करता है। आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन मासमें भी इसी विधिसे उपवास रखकर सूर्यभगवान्‌का 'मार्तण्ड' नामसे सम्यक् पूजन और जप करना चाहिये। गोमूत्रके प्राशनसे पवित्र मनुष्य धनवान् होकर कुबेरलोकको प्राप्त करता है। संसारके स्वामी अव्यय आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना एवं अन्तकालमें भगवान् सूर्यका स्मरण करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। कार्तिक आदि चार महीनोंमें दूधका प्राशन करना चाहिये। इन महीनोंमें 'भास्कर' नामसे भगवान् सूर्यका पूजन तथा जप करना चाहिये। ऐसा करनेपर व्यक्ति भगवान् सूर्यके

* एकोऽपि हेलेः सुकृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः। दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म हेलिप्रणामी न पुनर्भवाय॥
(ब्राह्मपर्व १०३।४५)

लोकको प्राप्त होता है। प्रत्येक मासमें ब्राह्मणोंको यथाभिलषित दान देना चाहिये। चातुर्मासकी समाप्तिपर पुराण-वाचन कराना चाहिये और कीर्तनका आयोजन करना चाहिये। विद्वानोंको चाहिये कि कथावाचककी पूजा करके श्राद्धकर्म करें, क्योंकि सिद्ध मालपूआ आदि पकान्नोंद्वारा कथावाचक या ब्राह्मणके सहयोगसे किया गया यथोचित श्राद्ध भगवान् सूर्यनारायणको अभीष्ट है। यह तिथि अभीष्ट धर्म, अर्थ तथा काम—इस त्रिवर्गको सदैव देनेवाली है। (अध्याय १०४)
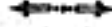
कामदा एवं पापनाशिनी-सप्तमी-व्रत-वर्णन

ब्रह्माजी बोले—विष्णो! फाल्गुन मासमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको उपवास करके भगवान् सूर्यनारायणकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् दूसरे दिन अष्टमीको प्रातः उठकर स्नानादिसे निवृत्त हो भक्तिपूर्वक सूर्यदेवका सम्यक् पूजन करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। श्रद्धापूर्वक भगवान् सूर्यके निमित्त आहुतियाँ प्रदान कर भगवान् भास्करको प्रणाम कर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

यमाराध्य पुरा देवी सावित्री काममाप वै।
स मे ददातु देवेशः सर्वान् कामान् विभावसुः॥
यमाराध्यादितिः प्राप्ता सर्वान् कामान् यथेप्सितान्।
स ददात्वखिलान् कामान् प्रसन्नो मे दिवस्पतिः॥
भ्रष्टराज्यश्च देवेन्द्रो यमभ्यर्च्य दिवस्पतिः।
कामान् सम्प्राप्तवान् राज्यं स मे कामं प्रयच्छतु॥

(ब्राह्मपर्व १०५। ५—७)

'प्राचीन समयमें देवी सावित्रीने अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये जिन आराध्यदेवकी आराधना की थी, वही मेरे आराध्य भगवान् सूर्य मेरी सभी कामनाओंको प्रदान करें। देवी अदितिने जिनकी आराधना करके अपने सभी अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त कर लिया था, वही दिवस्पति भगवान् भास्कर प्रसन्न होकर मेरी सभी अभिलाषाओंको पूर्ण करें। (दुर्वासा मुनिके शापके कारण) राजपदसे च्युत देवराज इन्द्रने जिनकी अर्चना करके अपनी सभी कामनाओंको प्राप्त कर लिया था, वही दिवस्पति मेरी कामना पूर्ण करें।'

हे गरुडध्वज! इस प्रकार भगवान् सूर्यकी प्रार्थना कर पूजा सम्पन्न करे। अनन्तर संयत होकर हविष्यान्नका भोजन करे। फाल्गुन, चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ—इन चार मासोंमें इस प्रकारसे व्रतकी पारणा करनेका विधान है। भक्तिपूर्वक करवीरके पुष्पोंसे चारों महीने सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। कृष्ण अगरुकी धूप जलानी चाहिये और गो-शृङ्गका जल प्राशन करना चाहिये तथा खाँड़-मिश्रित पकान्नका नैवेद्य देकर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये।

आषाढ़ आदि चातुर्मासमें पारणकी क्रिया इस प्रकार है—इन महीनोंमें चमेलीके पुष्प, गुग्गुलका धूप, कुएँका जल और पायसके नैवेद्यका विधान है। स्वयं भी उसी पायसके नैवेद्यको ग्रहण करना चाहिये।

कार्तिक आदि चातुर्मासमें गोमूत्रसे शरीर-शोधन करना चाहिये। दशाङ्ग[1]-धूप, रक्त कमल तथा कसारका नैवेद्य भगवान् सूर्यको निवेदित करना चाहिये। प्रत्येक महीनेमें ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। प्रत्येक पारणामें भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको प्रसन्न करनेका प्रयास करना चाहिये और यथाशक्ति संचित धनका दान करना चाहिये। वित्तशाठ्यता (कंजूसी) न करे। क्योंकि सद्भावसे पूजा करनेपर तथा दान आदिसे सात घोड़ोंसे युक्त रथपर आरूढ़ होनेवाले भगवान् सूर्य प्रसन्न होते हैं। पारणाके अन्तमें यथाशक्ति जल आदिसे स्नान कराकर पूजा करनेपर भगवान् सूर्य प्रसन्न हो निर्बाधरूपसे मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं। यह सप्तमी पुण्यदायिनी, पापविनाशिनी तथा सभी फलोंको देनेवाली है। मनुष्यकी जैसी अभिलाषाएँ होती हैं, वैसे ही फल प्राप्त होते हैं। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति सूर्यके समान ही तेजस्वी बनकर स्वर्णमय विमानपर आरूढ़ हो सूर्यलोकको प्राप्त करता

१- कर्पूरं चन्दनं मुस्तामगरुं नगरं तथा। उशणं शर्करा कृष्णं सुगन्धं सिह्लकं तथा॥
दशाङ्गोऽयं स्मृतो धूपः प्रियो देवस्य सर्वदा॥ (ब्राह्मपर्व १०५। १५-१६)

कर्पूर, चन्दन, नागरमोथा, अगरु, नगर, उशण, शर्करा, दालचीनी, कस्तूरी तथा सुगन्ध—इन्हें समभागमें मिलाकर दशाङ्ग नामक धूप बनाया जाता है। यह धूप भगवान् सूर्यदेवको सर्वदा प्रिय है।

है तथा वहाँ शाश्वती शान्तिको प्राप्त करता है। वहाँसे पुनः पृथ्वीपर जन्म लेकर उन गोपति सूर्यभगवान्‌की ही कृपासे प्रतापी राजा होता है।

इसी प्रकार उत्तरायणके सूर्यमें शुक्ल पक्षमें भग, अर्यमा, सूर्य आदिके नक्षत्रोंके पड़नेपर दान-मानसे भगवान् सूर्यकी पूजा कर उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। इससे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इसे पापनाशिनी सप्तमी कहा जाता है।

(अध्याय १०५-१०६)

सूर्यपदद्वय-व्रत, सर्वाप्ति-सप्तमी एवं मार्तण्ड-सप्तमीकी विधि

ब्रह्माजी बोले—धर्मज्ञ ! अब मैं जगद्धाता देवदेवेश्वर भगवान् सूर्यनारायणके पदद्वय-माहात्म्यका वर्णन करता हूँ, इसे आप सुनें।

अंशुमाली सूर्यदेवने संसारके कल्याणकी कामनासे अपने दोनों पादोंको एक पादपीठपर रखा है। उनके वामपादको उत्तरायण और दक्षिणपादको दक्षिणायनके रूपमें जानना चाहिये। सभी इन्द्र आदि देवगण इनके चरणोंकी वन्दना करते रहते हैं। हम और आप सूर्यदेवके दक्षिणपादकी अर्चना करते हैं। विष्णु तथा शङ्कर श्रद्धापूर्वक उनके वामपादकी पूजा करते हैं। जो मानव प्रत्येक सप्तमीको भगवान् सूर्यदेवकी विधिवत् आराधना करता है, उसपर वे सदा संतुष्ट रहते हैं।

भगवान् विष्णुने पूछा—गोलोक-स्वामी सूर्यनारायणकी आराधना किस प्रकार की जाती है ? उसका आप वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—उत्तरायण प्रारम्भ होनेके दिन स्नान करके संयमित मनसे घृत-दुग्ध आदि पदार्थोंके द्वारा भगवान् सूर्यको स्नान कराना चाहिये। सुन्दर वस्त्रोपहार, पुष्प-धूप तथा अनुलेपनादिसे उनकी विधिवत् पूजा कर ब्राह्मणोंको भोजन और दक्षिणादिसे संतुष्ट करना चाहिये। उसके बाद सूर्यभक्ति-परायण व्यक्तिको उनके पदद्वय-व्रतका विधान ग्रहण करना चाहिये। तदनन्तर स्नान करके 'चित्रभानु' दिवाकरकी वन्दना करनी चाहिये। खाते-चलते, सोते-जागते, प्रणाम करते, हवन और पूजन करते समय भगवान् चित्रभानुका ही जप करते हुए प्रतिदिन उनके नाम-कीर्तनका ही तबतक जप करना चाहिये, जबतक दक्षिणायनका समय न आ जाय। उनकी प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये—

परमात्ममयं ब्रह्म चित्रभानुमयं परम्।
यमन्ते संस्मरिष्यामि स मे भानुः परा गतिः॥

(अध्याय १०७। १७)

'चित्रभानु परमात्ममय परम ब्रह्म हैं, जिनका अन्तकालमें मैं भलीभाँति स्मरण करूँगा, क्योंकि वे ही सूर्यनारायण मेरी परम गति हैं।'

इस प्रकार स्तुति करके षाण्मासिक भगवान् सूर्यके व्रतको तबतक करना चाहिये, जबतक दक्षिणायन पूर्ण रूपसे न आ जाय। उसके पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराकर भगवान् मार्तण्डके सामने पुण्य-कथा और आख्यानका पाठ करना चाहिये। भक्तिपूर्वक यथाशक्ति वाचक और लेखकका पूजन भी करना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य यह व्रत करता है, उसको इसी जन्ममें सभी पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। यदि इस छः मासके बीचमें ही व्रतीकी मृत्यु हो जाती है तो उसे पूर्ण उपवासका फल प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उसे भगवान् सूर्यनारायणके चरणद्वय-पूजनका फल भी मिलता है।

ब्रह्माजी पुनः बोले—माघ मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको सर्वाप्ति-सप्तमी कहते हैं। इस व्रतसे सभी अभीप्सित कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इस व्रतमें पाखण्डी आदि दुराचारियोंसे वार्तालाप न करे और एकाग्र-मनसे विनम्र होकर उन्हीं भगवान् सूर्यका पूजन करे।

माघ आदि छः मासोंमें प्रत्येक संक्रान्तिको पारणा मानी गयी है। तदनुसार माघ आदि छः मासोंमें क्रमशः 'मार्तण्ड', 'क', 'चित्रभानु', 'विभावसु', 'भग' और 'हंस'—ये छः नाम कहे गये हैं। पूरे छः मासोंमें घृत-दुग्धादि पञ्चगव्य पदार्थोंको स्नान और प्राशनके लिये प्रशस्त एवं पापनाशक माना गया है।

इस व्रतमें तेल और क्षार पदार्थ ग्रहण न करे, रात्रिमें जागरण करे। संसारमें सब कुछ देनेवाली यह तिथि सर्वार्थावाप्ति-सप्तमीके नामसे विख्यात है। हे अनघ ! अब मैं कल्याण करनेवाली मार्तण्ड-सप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ।

यह व्रत पौष मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको किया जाता है। इसके सम्यक् अनुष्ठानसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है।

इस दिन व्रत रहकर भगवान् सूर्यका 'मार्तण्ड' नामसे पूजन एवं निरन्तर जप करना चाहिये। ब्राह्मणकी भी विशेष श्रद्धा-भक्तिसे पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार पवित्र मनसे सभी मासोंमें उपासना करके प्रत्येक मासमें अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको गौ आदिका दान देना चाहिये। दूसरे वर्षमें उपवासपूर्वक यथाशक्ति सूर्यनारायणके निमित्त गौ आदिका दान देनेसे व्रती साक्षात् भगवान् मार्तण्डके लोकको प्राप्त करता है। इस मार्तण्ड नामक सप्तमीकी नक्षत्रगण उपासना करके ही द्युलोकमें प्रकाशित होते हुए आज भी स्थित दृष्ट होते हैं।

(अध्याय १०७—१०९)

अनन्त-सप्तमी तथा अव्यङ्ग-सप्तमीका विधान

ब्रह्माजीने कहा—अच्युत ! भाद्रपद मासमें शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको जितेन्द्रिय होकर सप्ताश्ववाहन भगवान् आदित्यको प्रणाम करके पुष्प-धूप आदि सामग्रियोंसे इनका पूजन करना चाहिये। पाखण्डी आदि दुराचारियोंसे आलाप न करे। ब्राह्मणको दक्षिणा देकर रात्रिमें मौन होकर भोजन करना चाहिये। इस विधानसे बैठते-चलते, प्रस्थान करते और गिरने-पड़नेकी स्थितिमें प्रत्येक समय आदित्य नामका स्मरण तथा उच्चारण करते हुए क्रमशः द्वादश मासतक व्रत और जगद्गुरु भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये। व्रतकी पारणामें पुण्य-पुराणकी कथाका श्रवण करे। सूर्यदेवको प्रसन्न करे, इससे पुष्टिलाभ होता है। इस सप्तमीमें कथाश्रवणसे अनन्त फलोंकी प्राप्ति होती है।

श्रावण मासकी शुक्ला सप्तमीको अव्यङ्ग-सप्तमी कहा जाता है। इस दिन सप्ताश्ववाहन भगवान् सूर्यकी पुष्प-धूपादिसे पूजा करे। पाखण्डियोंसे वार्ता न करे, नियतात्मा होकर रहे। ब्राह्मणको दक्षिणा देकर मौन हो रात्रिमें भोजन करे। प्रतिवर्ष अव्यङ्ग बनाकर उन्हें निवेदित करे[1]। अव्यङ्ग-समर्पणके समय विविध प्रकारके बाजे बजवाने चाहिये। ब्राह्मणलोग वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करें। जिस प्रकार श्रावण मासमें अन्य देवताओंको पवित्रार्पण किया जाता है, उसी प्रकार सूर्यनारायणको भी प्रत्येक श्रावण मासमें अव्यङ्ग अर्पण करनेका विधान है।

इस प्रकार द्वादश मासपर्यन्त इस व्रतको करे। अन्तमें पारणा करनी चाहिये और ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। जो मनुष्य पवित्र होकर व्रत करके सूर्यनारायणकी आराधना करता है, वह भगवान् वनमाली सूर्यदेवके परम दिव्यलोकको प्राप्त होता है।

(अध्याय ११०-१११)

सूर्यपूजामें भाव-शुद्धिकी आवश्यकता एवं त्रिप्राप्ति-सप्तमी-व्रत

ब्रह्माजी बोले—गरुडध्वज ! भक्तिपूर्वक शुद्ध हृदयसे मात्र जलार्पणद्वारा भी सूर्यभगवान्‌की पूजा करनेपर दुर्लभ फलकी प्राप्ति हो जाती है। राग-द्वेषादिसे रहित हृदय, असत्य आदिसे अदूषित वाणी और हिंसावर्जित कर्म—ये भगवान् भास्करकी आराधनाके श्रेष्ठ तीन प्रकार हैं। रागादि दोषोंसे दूषित हृदयमें तिमिरविनाशक सूर्यनारायणकी रश्मियोंका स्पन्दन भी नहीं होता, फिर उनके निवासकी बात कौन कहे ? यहाँतक कि वह तो भगवान् सूर्यके द्वारा संसारपङ्कमें निमग्न कर दिया जाता है।

जिस प्रकार चन्द्रमाकी कला अन्धकारको दूर करनेमें सर्वथा सफल नहीं होती, उसी प्रकार हिंसादिसे दूषित कर्मके द्वारा सूर्यनारायणकी पूजामें कैसे सफलता प्राप्त हो सकती है? चित्तकी अप्रसन्नताके कारण भी मनुष्य सूर्यदेवको प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिये सत्य-स्वभाव, सत्य-वाक्य और अहिंसक कर्मसे ही स्वभावतः भगवान् आदित्य प्रसन्न होते हैं। यदि मनुष्य कलुषित-हृदयसे भगवान् देवेशको सब कुछ दे दे, तो तब भी उन देवदेवेश्वर भगवान् दिवाकरकी आराधना नहीं होती। अतः आप अपने हृदयको रागादि द्वेषोंसे रहित बनाकर भगवान् भास्करके लिये अर्पित करें। ऐसा करनेपर दुष्प्राप्य भगवान् भास्करको आप अनायास ही प्राप्त कर लेंगे।

विष्णुने कहा— आपने बताया कि भास्कर हमारे लिये पूजनीय हैं, अतः उनकी सम्पूर्ण आराधना-विधि आप मुझे

१-भविष्यपुराणमें अव्यङ्ग शब्द बार-बार आता है। वह सूतसे बनता है, जिसका भोजक ब्राह्मणके लिये कटिप्रदेशमें बाँधनेका विधान है। इसका वर्णन आगेके १४२ वें अध्यायमें आया है। इसे वहीं देखना चाहिये।

बतायें। ब्रह्मन्! श्रेष्ठ कुलमें जन्म, आरोग्य और दुर्लभ धनकी अभिवृद्धि—ये तीनों जिसके द्वारा प्राप्त होते हैं, उस त्रिप्राप्ति-व्रतको भी हमें बतायें।

ब्रह्माजी बोले—माघ मासमें कृष्ण पक्षकी सप्तमीके दिन हस्त नक्षत्रका योग रहनेपर व्रतीको चाहिये कि वह जगत्स्रष्टा सूर्यदेवकी सुगन्ध, धूप, नैवेद्य एवं उपहार आदि पूजन-सामग्रियोंके द्वारा पूजा करे। गृहस्थ पुरुष पुष्पोंके द्वारा दानादि-युक्त पूजा वर्षपर्यन्त सम्पन्न करे और वस्त्र (बाजरा), तिल, व्रीहि, यव, सुवर्ण, यव, अन्न, जल, ओला (ओलेका पानी), उपानह, छत्र और गुड़से बने पदार्थ, (क्रमसे प्रतिमास) मुनियों, ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये। इस व्रतमें आत्मशुद्धिके लिये सूर्यनारायणकी पूजा करके प्रतिमास क्रमशः शाक, गोमूत्र, जल, घृत, दूर्वा, दधि, धान्य, तिल, यव, सूर्यकिरणोंसे तपा हुआ जल, कमलगट्टा और दूधका प्राशन करना चाहिये। इस विधिसे इस सप्तमी-व्रतको करनेवाला मनुष्य धन-धान्यसे परिपूर्ण, लक्ष्मीयुक्त तथा समस्त दुःखोंसे रहित होता है और श्रेष्ठ कुलमें जन्म लेकर जितेन्द्रिय, नीरोग, बुद्धिमान् और सुखी रहता है। अतः आप भी बिना प्रमाद किये ही इन प्रभासम्पन्न स्वामी भगवान् दिवाकरकी आराधना कर कामनाओंके सम्पूर्ण फलको प्राप्त करें।

(अध्याय ११२)

सूर्यमन्दिर-निर्माणका फल तथा यमराजका अपने दूतोंको सूर्यभक्तोंसे दूर रहनेका आदेश, घृत तथा दूधसे अभिषेकका फल

ब्रह्माजीने कहा—हे वासुदेव! जो मनुष्य मिट्टी, लकड़ी अथवा पत्थरसे भगवान् सूर्यके मन्दिरका निर्माण करवाता है, वह प्रतिदिन किये गये यज्ञके फलको प्राप्त करता है। भगवान् सूर्यनारायणका मन्दिर बनवानेपर वह अपने कुलकी सौ आगे और सौ पीछेकी पीढ़ियोंको सूर्यलोक प्राप्त करा देता है। सूर्यदेवके मन्दिरका निर्माण-कार्य प्रारम्भ करते ही सात जन्मोंमें किया गया जो थोड़ा अथवा बहुत पाप है, वह नष्ट हो जाता है। मन्दिरमें सूर्यकी मूर्तिको स्थापित कर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और उसे दोष-फलकी प्राप्ति नहीं होती तथा अपने आगे और पीछेके कुलोंका उद्धार कर देता है। इस विषयमें प्रजाओंको अनुशासित करनेवाले यमने पाशदण्डसे युक्त अपने किंकरोंसे पहले ही कहा है कि 'मेरे इस आदेशका यथोचित पालन करते हुए तुमलोग संसारमें विचरण करो, कोई भी प्राणी तुमलोगोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकेगा। संसारके मूलभूत भगवान् सूर्यकी उपासना करनेवाले लोगोंको तुमलोग छोड़ देना, क्योंकि उनके लिये यहाँपर स्थान नहीं है। संसारमें जो सूर्यभक्त हैं और जिनका हृदय उन्हींमें लगा हुआ है, ऐसे लोग जो सूर्यकी सदा पूजा किया करते हैं, उन्हें दूरसे ही छोड़ देना। बैठते-सोते, चलते-उठते और गिरते-पड़ते जो मनुष्य भगवान् सूर्यदेवका नाम-संकीर्तन करता है, वह भी हमारे लिये बहुत दूरसे ही त्याज्य है। जो भगवान् भास्करके लिये नित्य-नैमित्तिक यज्ञ करते हैं, उन्हें तुमलोग दृष्टि उठाकर भी मत देखना। यदि तुमलोग ऐसा करोगे तो तुमलोगोंकी गति रुक जायगी। जो पुष्प-धूप-सुगन्ध और सुन्दर-सुन्दर वस्त्रोंके द्वारा उनकी पूजा करते हैं, उन्हें भी तुमलोग मत पकड़ना, क्योंकि वे मेरे पिताके मित्र या आश्रितजन हैं। सूर्यनारायणके मन्दिरमें उपलेपन तथा सफाई करनेवाले जो लोग हैं, उनके भी कुलकी तीन पीढ़ियोंको छोड़ देना। जिसने सूर्य-मन्दिरका निर्माण कराया है, उसके कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष भी तुमलोगोंके द्वारा बुरी दृष्टिसे देखने योग्य नहीं है। जिन भगवद्भक्तोंने मेरे पिताकी सुन्दर अर्चना की है, उन मनुष्योंको तथा उनके कुलको भी तुम सदा दूरसे ही त्याग देना।'

महात्मा धर्मराज यमके द्वारा ऐसा आदेश दिये जानेपर भी एक बार (भूलसे) यम-किंकर उनके आदेशका उल्लङ्घन करके राजा सत्राजित्के पास चले गये। परंतु उस सूर्यभक्त सत्राजित्के तेजसे वे सभी यमके सेवक मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर वैसे ही गिर पड़े, जैसे मूर्च्छित पक्षी पर्वतपरसे भूमिपर गिर पड़ता है। इस प्रकार जो भक्त भगवान् सूर्यके मन्दिरका निर्माण करता-कराता है, वह समस्त यज्ञोंको सम्पन्न कर लेता है, क्योंकि भगवान् सूर्य स्वयं ही सम्पूर्ण यज्ञमय हैं।

ब्रह्माजी बोले—सूर्यकी प्रतिष्ठित प्रतिमाको जो घीसे

स्नान कराता है, वह अपनी सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। कृष्णपक्षकी अष्टमीके दिन सूर्यभगवान्‌को जो घीसे स्नान कराता है, उसे सभी पापोंसे छुटकारा प्राप्त हो जाता है। सप्तमी अथवा षष्ठीके दिन सूर्यनारायणको गायके घीसे स्नान करानेसे सभी पातक दूर हो जाते हैं। संध्याकालमें घीसे स्नान करानेपर तो ज्ञात-अज्ञात सम्पूर्ण पाप दूर हो जाते हैं। सूर्यनारायण सर्व-यज्ञरूप हैं और समस्त हव्य-पदार्थोंमें घी ही उत्तम पदार्थ है, इसलिये उन दोनोंका संगम होते ही सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। सूर्यको दूधसे स्नान करानेवाला मनुष्य सात जन्मोंतक सुखी, रोगरहित और रूपवान् होता है और अन्तमें दिव्यलोकमें निवास करता है। जैसे दूध स्वच्छ होता है और रोगादिसे मुक्ति देनेवाला है, वैसे ही दूधसे स्नान करानेपर अज्ञान हटकर निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है। दूधके स्नानसे भगवान् सूर्यनारायण प्रसन्न होकर सभी ग्रहोंको अनुकूल करते हैं तथा सभी लोगोंको पुष्टि और प्रीति प्रदान करते हैं। घी और दूधसे तिमिर-विनाशक देवेश सूर्यदेवको स्नान करानेपर उनकी दृष्टिमात्र पड़ते ही मनुष्य सबका प्रिय हो जाता है।

(अध्याय ११३-११४)

कौसल्या और गौतमीके संवाद-रूपमें भगवान् सूर्यका माहात्म्य-निरूपण तथा भगवान् सूर्यके प्रिय पत्र-पुष्पादिका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—जनार्दन! देवलोकमें गौतमी और कौसल्याका सूर्यके विषयमें एक पुरातन संवाद प्रसिद्ध है। एक बार गौतमी ब्राह्मणीने स्वर्गमें अपने पतिके साथ अतिशय रमणीय कौसल्याको देखकर आश्चर्यचकित होकर पूछा—'कौसल्ये! स्वर्गमें निवास करनेवाले सैकड़ों देवता, अनेक देवाङ्गनाएँ हैं, इसी प्रकार सिद्धगण और उनकी पत्नियाँ आदि भी हैं, किंतु उनमें न ऐसी गन्ध है, न ऐसी कान्ति है, न ऐसा रूप है। धारण किये हुए वस्त्र तथा आभूषण भी ऐसे नहीं सुशोभित हो रहे हैं, जैसे कि आप दोनों स्त्री-पुरुषोंके हो रहे हैं। आप दोनोंने कौन-सा ऐसा तप, दान अथवा होमकर्म किया है, जिसका यह फल है। आप इसका वर्णन करें।

कौसल्या बोली—गौतमी! हम दोनोंने यज्ञेश्वर भगवान् सूर्यकी श्रद्धापूर्वक आराधना की है। सुगन्धित तीर्थ-जलोंसे तथा घृतसे उन्हें स्नान कराया है। उन्हींकी कृपासे हमने स्वर्ग, निर्मल कान्ति, प्रसन्नता, सौम्यता और सुख प्राप्त किया है। हमलोगोंके पास जो भी आभूषण, वस्त्र, रत्न आदि प्रिय वस्तुएँ हैं, उन्हें भगवान् सूर्यको अर्पण करनेके बाद ही हम धारण करते हैं। स्वर्गप्राप्तिकी अभिलाषासे हम दोनोंने भगवान् सूर्यकी आराधना की थी और उस आराधनाके फलस्वरूप ही हमलोग स्वर्गका सुख भोग रहे हैं। जो निष्काम-भावसे भलीभाँति सूर्यकी उपासना करता है, उसे भगवान् सूर्य मुक्ति प्रदान करते हैं। त्रिलोकके सृष्टिकर्ता सविताकी तृप्तिसे ही सब कुछ प्राप्त होता है।

ब्रह्माजी बोले—विष्णो! मार्तण्ड भगवान् सूर्यकी आराधनासे मैंने भी अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त किया है, जो अनन्तकालतक रहनेवाली हैं। चन्दन, अगरु, कपूर, कुंकुम तथा उशीरसे जो भगवान् सूर्यको अनुलिप्त करता है, प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य उसे लक्ष्मी प्रदान करते हैं। कालेयक (काला चन्दन), तुरुष्क (एक गन्ध-द्रव्य), रक्तचन्दन, गन्ध, विजयधूप तथा और भी जो अपनेको इष्ट पदार्थ हों, उन्हें भगवान् सूर्यको निवेदित करना चाहिये। मालती, मल्लिका, जूही, अतिमुक्तक, पाटला, करवीर, जपा, कुंकुम, तगर, कर्णिका, चम्पक, केतक (केवड़ा), कुन्द, अशोक, तिलक, लोध, कमल, अगस्ति, पलाश आदिके पुष्प भगवान् सूर्य-देवको विशेष प्रिय हैं। बिल्वपत्र, शमीपत्र, भृङ्गराज-पत्र, तमालपत्र आदि भगवान् सूर्यको प्रिय हैं। अतः उन्हें अर्पण करना चाहिये। कृष्णा तुलसी, केतकीके पुष्प और पत्र तथा रक्तचन्दनके अर्पण करनेसे भगवान् सूर्य सद्यः प्रसन्न होते हैं। नीलकमल, श्वेतकमल और अनेक सुगन्धित पुष्प भगवान् सूर्यको चढ़ाने चाहिये, किंतु कुटज, शाल्मलि और गन्धरहित पुष्प सूर्यको नहीं चढ़ाने चाहिये, इन्हें चढ़ानेसे दारिद्र्य, भय और रोगकी प्राप्ति होती है। जिनका निषेध न हो वे ही पुष्प भगवान्‌को चढ़ाने चाहिये। उत्तम धूप, मुरा, माँसी, कपूर, अगरु, चन्दन तथा दूसरे सुन्दर पदार्थोंसे भगवान् वनमालीकी अर्चना करनी चाहिये। विविध रेशमी तथा कपासद्वारा निर्मित उत्तरीय आदि वस्त्र तथा जो अपनेको भी प्रिय है ऐसा वस्त्र

सूर्यभगवान्को चढ़ाना चाहिये। फल तथा नैवेद्यादि भी जो अपनेको प्रिय हों उन्हें देना चाहिये। सुवर्ण, चाँदी, मणि और मुक्ता आदि जो अपनेको प्रिय हों, उन्हें भी भगवान् सूर्यको निवेदित करना चाहिये। अपनेको भास्करके रूपमें मानकर सारी यज्ञ-क्रियाएँ अव्यक्तरूप भगवान् सूर्यको निवेदित करनी चाहिये[1]। (अध्याय ११५)

सूर्य-भक्त सत्राजित्की कथा तथा त्रिविक्रम-व्रतकी विधि

ब्रह्माजी बोले—विष्णो! प्राचीन कालमें राजा ययातिके कुलमें सत्राजित् नामक एक प्रतापी चक्रवर्ती राजा हुए थे। वे अत्यन्त प्रभावशाली, तेजस्वी, कान्तिमान्, क्षमावान्, गुणवान् तथा बलशाली राजा थे तथा धीरता, गम्भीरता एवं यशसे सम्पन्न थे। उनके विषयमें पुराणवेत्ता लोग एक गाथा गाते हैं— महाबाहु सत्राजित्के इस पृथ्वीपर राज्य करते हुए जहाँसे सूर्य उदित होते और जहाँ अस्त होते हैं, जितनेमें भ्रमण करते हैं, वह सम्पूर्ण क्षेत्र सत्राजित्-क्षेत्र कहलाता है[2]। राजा सत्राजित् सम्पूर्ण रत्नोंसे परिपूर्ण सप्तद्वीपवती पृथ्वीपर धर्मपूर्वक राज्य करते थे। वे सूर्यदेवके परम भक्त थे। उनके ऐश्वर्यको देखकर सभी लोगोंको बड़ा आश्चर्य होता था। उनके राज्यमें सभी व्यक्ति धर्मानुयायी थे। राजा सत्राजित्के चार मन्त्री थे, वे सब अप्रतिहत सामर्थ्यवाले और राजाके स्वाभाविक भक्त थे। भगवान् सूर्यके प्रति उनकी अत्यन्त श्रद्धा थी और उनकी सामर्थ्यको देखकर न केवल उनकी प्रजाको आश्चर्य होता था, बल्कि स्वयं राजा भी अपने ऐश्वर्यपर आश्चर्यचकित थे। एक बार उनके मनमें आया कि अगले जन्मोंमें भी मेरा ऐसा ही ऐश्वर्य कैसे बना रहे। यह सोचकर उन्होंने शास्त्र और धर्मके तत्त्वको जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर उनकी यथोचित भक्तिपूर्वक पूजा कर उन्हें आसनपर बिठलाया और उनसे कहा—'भगवन्! यदि आपलोगोंकी मुझपर कृपा है तो मेरी जिज्ञासाको शान्त करें।'

ब्राह्मणोंने कहा—'महाराज! आप अपना संदेह हमलोगोंके सम्मुख प्रस्तुत करें। आपने हमारा पालन-पोषण किया है और सभी प्रकारसे भोजन आदिद्वारा संतुष्ट रखा है। विद्वान् ब्राह्मणका तो कर्तव्य ही है कि वह धर्मके संदेहको दूर करे, अधर्मसे निवृत्त करे और कल्याणकारी उपदेशको भलीभाँति समझाये[3]। आप अपनी इच्छाके अनुसार जो पूछना चाहें पूछें।' तभी उनकी महारानी विमलवतीने भी राजासे निवेदन किया कि 'महाराज! मेरा भी एक संदेह है, आप महात्माओंसे पूछकर निवृत्त करा लें। मैं तो अन्तःपुरमें ही रहती हूँ। अतः मेरी प्रार्थना है कि आप प्रथम मेरा ही संदेह निवृत्त करा दें, क्योंकि आपके संदेहकी निवृत्तिके अनेक साधन हैं।'

राजा सत्राजित्ने कहा—'प्रिये! क्या पूछना चाहती हो, पहले मैं तुम्हारा ही संदेह पूछूँगा।'

विमलवतीने कहा—'महाराज! मैंने अनेक राजाओंके चरित्र और ऐश्वर्यको सुना है, किंतु आपके समान ऐश्वर्य अन्य लोगोंको सुलभ नहीं है, यह किस कर्मका फल है? मैंने कौन-सा उत्तम कर्म किया था, जिसके फलस्वरूप मुझे आपकी रानी होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ? पूर्वजन्ममें हम दोनोंने कौन-सा पुण्यकर्म किया है? इस विषयमें आप मुनियोंसे पूछें।'

सत्राजित् बोले—'देवि! तुमने तो मेरे मनकी बात जान ली है। मुनियोंकी बातें सत्य हैं, पत्नी पुरुषकी अर्धाङ्गिनी होती है। ऐसी कोई बात नहीं है जो इन महामुनियोंसे छिपी हो। इन महात्माओंसे मैं भी यही पूछना चाहता था। अनन्तर महाराजने महात्माओंसे पूछा—भगवन्! मैं पूर्वजन्ममें कौन था, मैंने कौन-से पुण्य कर्म किये थे? इस सर्वाङ्गसुन्दरी मेरी पत्नीने कौन-से उत्तम कर्म सम्पन्न किये थे, जिससे हमें ऐसी दुर्लभ लक्ष्मी प्राप्त हुई है। हमलोगोंमें परस्पर अतिशय प्रीति है। सभी राजा मेरे अधीन हैं, मेरे पास असीम द्रव्य है और

१-आत्मानं भास्करं मत्वा यज्ञं तस्मै निवेदयेत्। तत्तदव्यक्तरूपाय भास्कराय निवेदयेत्॥ (ब्राह्मपर्व ११५। ३७)

२-
सत्राजिते महाबाहो कृष्ण धात्रीं समाश्रिते॥
यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति। सत्राजितेः तु तत्सर्वं क्षेत्रमित्यभिधीयते॥ (ब्राह्मपर्व ११६। ९-१०)

३-संतुष्टो ब्राह्मणोऽधीयाच्छिन्द्याद्वा धर्मसंशयम्। हितं चोपदिशेद्धर्मं अहिताद्वा निवर्तयेत्॥ (ब्राह्मपर्व ११६। २५)

मैं अत्यन्त बलशाली हूँ। मेरा शरीर भी नीरोग है। मेरी पत्नीके समान संसारमें कोई स्त्री नहीं है। सभी मेरे असीम तेजको सहन करनेमें असमर्थ हैं। महामुने ! आपलोग त्रिकालज्ञ हैं। आप मेरी जिज्ञासाको शान्त करें।' राजाके इस प्रकार पूछनेपर उन ब्राह्मणोंने सूर्यदेवके परम भक्त परावसुसे प्रार्थना की कि आप ही इनके संदेहको निवृत्त करें। धर्मज्ञ ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे महामति परावसुने योग-समाधिके द्वारा राजा तथा रानीके पूर्वजन्मके सभी कर्मोंकी जानकारी प्राप्त कर राजासे कहना आरम्भ किया—

परावसु बोले—महाराज ! आप पूर्वजन्ममें बड़े निर्दयी, हिंसक तथा कठोर हृदयके शूद्र थे, कुष्ठ-रोगसे पीड़ित थे। सुन्दर नेत्रोंवाली ये महारानी उस समय भी आपकी ही भार्या थीं। ये ऐसी पतिव्रता थीं कि आपके द्वारा पीड़ित होनेपर भी आपकी सेवामें निरन्तर संलग्न रहती थीं, परंतु आपकी अतिशय क्रूरताके कारण आपके बन्धु-बान्धव आपसे अलग हो गये और आपने भी अपने पूर्वजोंद्वारा संचित धनको नष्ट कर डाला। अनन्तर आपने कृषि-कार्य प्रारम्भ किया, किंतु दैवेच्छासे वह भी व्यर्थ हो गया। आप अत्यन्त दीन-हीन होकर दूसरोंकी सेवाद्वारा जीवन-यापन करने लगे। आपने अपनी स्त्रीको छोड़नेका बहुत प्रयास किया, किंतु उसने आपका साथ नहीं छोड़ा। इसके बाद आप दोनों कान्यकुब्ज देशमें चले गये और भगवान् सूर्यके मन्दिरमें सेवा करने लगे। वहाँ प्रतिदिन मन्दिरका मार्जन, लेपन, प्रोक्षण (जल छिड़कना) आदि कार्य बड़े भक्तिभावसे करते रहे। मन्दिरमें पुराणकी कथा होती थी। आप दोनोंने उसका भक्तिपूर्वक श्रवण किया। कथा-श्रवण करनेके बाद आपकी पत्नीने पितासे प्राप्त अँगूठीको कथामें चढ़ा दिया। आपके मनमें रात-दिन यही चिन्ता रहती थी कि यह मन्दिर कैसे स्वच्छ रहे। आप दोनों बहुत दिनोंतक वहाँ रहे। भगवान्‌के सेवारूपी योगकर्ममें आपका मन अहर्निश लगा रहता था।

इस प्रकार आप दोनों निष्काम-भावसे भगवान् सूर्यकी सेवा करते और जो कुछ मिलता, उसीसे निर्वाह करते थे। गोपति भगवान् सूर्यका आप नित्य चिन्तन करते थे, अतः आपके सभी पाप समाप्त हो गये।

किसी समय अपनी विशाल सेनाके साथ कुवलाश्व नामका एक राजा वहाँ आया। उसकी अपार सम्पत्ति और हजारों श्रेष्ठ रानियोंको देखकर आप दोनोंकी भी राजा-रानी बननेकी इच्छा हुई। कुछ ही समयमें आपका देहान्त हो गया। सूर्यदेवकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक की गयी सेवा तथा पुराण-श्रवणके प्रभावसे आप राजा हुए और आपकी स्त्री रानी हुई तथा आप दोनोंको जो असीम तेज प्राप्त हुआ है, उसका भी कारण सुनिये—

जब मन्दिरमें दीपक तेल तथा बत्तीके अभावमें बुझने लगता था, तब आप अपने भोजनके लिये रखे तेलसे उसे पूरित करते थे और आपकी रानी अपनी साड़ी फाड़कर उससे बत्ती बनाकर जलाती थी। राजन् ! यदि अन्य जन्ममें भी आपको ऐश्वर्यकी इच्छा है तो भगवान् सूर्यकी श्रद्धापूर्वक आराधना करें। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि जो आपको प्रिय हो, वही भगवान् सूर्यको अर्पण करें। उनके मन्दिरमें मार्जन, उपलेपन आदि कार्य करें, जिससे मन्दिर स्वच्छ और निर्मल रहे। उत्तम दिनोंमें उपवास कर रात्रि-जागरण और नृत्य-गीत-वाद्यादिद्वारा महोत्सव करायें। पुराण-इतिहास आदिकी कथा श्रद्धापूर्वक सुनें तथा भगवान् सूर्यकी प्रसन्नताके लिये वेद-पाठ करायें। सदा निष्काम-भावसे तन्मय होकर उनकी सेवामें लगे रहें। संतुष्ट होकर भगवान् सूर्य अभीष्ट फल देते हैं। वे पुष्प, नैवेद्य, रत्न, सुवर्ण आदिसे उतना प्रसन्न नहीं होते, जितना वे भक्तिभावसे प्रसन्न होते हैं। यदि भक्तिभावपूर्वक सूर्यकी आराधना और विविध उपचारोंसे पूजन करेंगे तो इन्द्रसे भी अधिक वैभवकी प्राप्ति कर लेंगे।

राजा सत्राजित्‌ने कहा—भगवन् ! इन्द्रत्वकी प्राप्ति या अमरत्वकी प्राप्तिसे जो आनन्द होता है, वह आनन्द आपकी इस वाणीको सुनकर मुझे प्राप्त हुआ। अज्ञानरूपी अन्धकारके लिये आपकी यह वाणी प्रदीप्त दीपकके समान है। सम्पत्तिके विनाशकी सम्भावनासे हम बहुत व्याकुल थे। आपने सम्पत्ति-प्राप्तिके लिये मूल तत्त्वका आज उपदेश दिया है। इससे यह सिद्ध हो गया कि मुझे यह सारी सम्पत्ति पूर्वजन्मके सुकृतकर्मके ही फलस्वरूप प्राप्त हुई है। भक्तिमान् दरिद्र भी भगवान् सूर्यको प्रसन्न कर सकता है, किंतु एक ऐश्वर्यशाली धनवान् भक्तिहीन होनेपर उनका अनुग्रह नहीं प्राप्त कर

सकता। भगवन्! आप मुझे सूर्यभगवान्‌की आराधनाके उस मार्गको सूचित करें, जिससे शीघ्र ही उनका अनुग्रह प्राप्त हो सके।

परावसु बोले—राजन्! कार्तिक मासमें प्रतिदिन भगवान् सूर्यका पूजन कर ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये और स्वयं भी एक ही बार भोजन करना चाहिये। इस आराधनासे बाल्यावस्थामें किये गये ज्ञात-अज्ञात सभी पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। मार्गशीर्षमें पूर्वोक्त रीतिसे व्रत करनेवाले स्त्री-पुरुषको, ब्राह्मणको मरकत मणिका दान करनेसे प्रौढावस्थामें किये गये पापोंसे मुक्ति हो जाती है। पौष मासमें पूर्वोक्त विधिके अनुसार एकभुक्त हो श्रद्धापूर्वक सूर्यकी आराधना करनेसे वृद्धावस्थामें किये गये सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

इस त्रैमासिक व्रतको श्रद्धापूर्वक विधि-विधानसे करनेवाले स्त्री या पुरुष सूर्यभगवान्‌के कृपापात्र हो जाते हैं और लघु पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। दूसरे वर्ष इसी प्रकार त्रैमासिक व्रत करनेपर सभी उपपातक निवृत्त हो जाते हैं। तीसरे वर्ष भी इस व्रतको करनेपर महापातक नष्ट हो जाते हैं और मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। यह व्रत तीन मासमें सम्पन्न होता है और इसे तीन वर्षतक करना चाहिये। सभी अवस्थाओंमें आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक—त्रिविध पातक इसके द्वारा नष्ट हो जाते हैं। इस सर्वपापहर्ता व्रतको त्रिविक्रम-व्रत कहा जाता है।

राजा सत्राजित्‌ने कहा—भगवन्! व्रतका विधान तो मैंने सुना, परंतु भोजन कैसे ब्राह्मणको कराना चाहिये, यह भी आप कृपाकर बतायें।

परावसु बोले—पौराणिक ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। इस प्रसंगमें अरुणको सूर्यदेवने जो निर्देश दिया था, वह मैं आपको बताता हूँ—

किसी समय उदयाचलपर अरुणने भगवान् सूर्यसे पूछा—'महाराज! कौन-कौन पुष्प, नैवेद्य, वस्त्र आदि आपको प्रिय हैं और कैसे ब्राह्मणको भोजन करानेसे आप संतुष्ट होते हैं?' इसे आप कृपाकर बतायें।

भगवान् सूर्यने कहा—अरुण! करवीरके पुष्प, रक्त-चन्दन, गुग्गुलका धूप, घीका दीपक और मोदक आदि नैवेद्य मुझे प्रिय हैं। मेरे भक्त और पौराणिक ब्राह्मणको दान देकर उसके प्रति श्रद्धा समर्पित करनेसे मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी प्रसन्नता गीत, वाद्य और पूजन आदिसे नहीं होती। मैं पुराण आदिके वाचन-श्रवणसे अतिशय प्रसन्न होता हूँ। इतिहास-पुराणके वाचक तथा मेरी पूजा करनेवाला भोजक—ये दोनों मुझे विशेष प्रिय हैं। इसलिये पौराणिकका पूजन करे और इतिहास आदिको सुने। (अध्याय ११६)

भोजकोंकी उत्पत्ति तथा उनके लक्षणोंका वर्णन

अरुणने पूछा—भगवन्! यह भोजक कौन है? किसका पुत्र है? इसने ऐसा कौन-सा उत्तम कर्म किया है, जिस कारण ब्राह्मण आदि वर्णोंको छोड़कर आपका इसपर इतना अनुग्रह हुआ? आप कृपाकर सब मुझे बतायें।

आदित्य बोले—महामति वैनतेय! तुमने बहुत सुन्दर बात पूछी है। इसके उत्तरमें मैं जो कहता हूँ, उसे तुम सावधान होकर सुनो। अपनी पूजाके निमित्त ही मैंने अपने तेजसे भोजकोंकी उत्पत्ति की है। ये वर्णतः ब्राह्मण हैं और मेरी पूजाके लिये अनुष्ठानमें तत्पर रहते हैं। ये भोजक मुझे अति प्रिय हैं।

प्राचीन कालमें शाकद्वीपके स्वामी राजा प्रियव्रतके पुत्रने विमानके समान एक भव्य सूर्य-मन्दिर बनवाया और उसमें स्थापित करनेके लिये सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न सोनेकी एक दिव्य सूर्यकी प्रतिमा भी बनवायी। अब राजाको यह चिन्ता होने लगी कि मन्दिर तथा प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कौन कराये? उन्हें कोई योग्य व्यक्ति नहीं दिखायी दिया। अतः वह राजा मेरी शरणमें आया। अपने भक्तको चिन्ताग्रस्त देखकर मैंने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और पूछा—'वत्स! तुम क्या विचार कर रहे हो, तुम क्यों चिन्तित हो, शीघ्र ही अपनी चिन्ताका कारण बताओ। तुम दुःखी मत होओ, मैं तुम्हारे अत्यन्त दुष्कर कर्मोंको भी सम्पन्न कर दूँगा।' इसपर राजाने प्रसन्न होकर कहा—'प्रभो! मैंने बड़ी भक्ति एवं श्रद्धासे इस द्वीपमें आपका एक विशाल मन्दिर बनवाया है तथा एक दिव्य सूर्य-प्रतिमा भी बनवायी है, मुझे यह चिन्ता सता रही है कि

प्रतिष्ठा-कार्य कैसे सम्पन्न हो ?' राजाके इन वचनोंको सुनकर मैंने कहा—'राजन् ! मैं अपने तेजसे अपनी पूजा करनेके लिये मगसंज्ञक ब्राह्मणोंकी सृष्टि करता हूँ। मेरे ऐसा कहते ही चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णवाले आठ बलशाली पुरुष मेरे शरीरसे उत्पन्न हो गये। वे सभी काषाय वस्त्र पहिने हुए थे, हाथोंमें पिटारी और कमलके पुष्प लिये हुए थे तथा साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों और उपनिषदोंका पाठ कर रहे थे। इनमेंसे दो पुरुष ललाटसे, दो वक्षःस्थलसे, दो चरणोंसे तथा दो पादोंसे उत्पन्न हुए।' उन महात्माओंने मुझे पिता मानते हुए हाथ जोड़कर मुझसे कहा—'हे पिता !हे लोकनाथ ! हम आपके पुत्र हैं। आपने किसलिये हमें उत्पन्न किया है ? हमें आज्ञा दीजिये। हम सब आपके आदेशका पालन करेंगे।' पुत्रोंका ऐसा वचन सुनकर मैंने कहा—'तुम सब इस राजाकी बात सुनो और ये जैसा कहें वैसा ही करो।' पुत्रोंसे ऐसा कहनेके बाद मैंने राजासे कहा—'राजन् ! ये मेरे पुत्र हैं, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ हैं तथा सर्वदा पूज्य हैं। मेरी प्रतिष्ठा करानेके लिये ये सर्वथा योग्य हैं। इनसे प्रतिष्ठा करवा लो। मन्दिरकी प्रतिष्ठा कराकर मन्दिर इन्हें समर्पित कर दो। ये सदा मेरा पूजन किया करेंगे, परंतु देकर फिर इनसे हरण मत करना। मेरे निमित्त जो कुछ धन-धान्य, गृह, क्षेत्र, बाग, ग्राम, नगर आदि मन्दिरमें अर्पण करो, उन सबके स्वामी ये भोजक ही होंगे । जैसे पिताके द्रव्यका अधिकारी उसका पुत्र होता है, वैसे ही मेरे धनके अधिकारी ये भोजक ही हैं।' मेरी आज्ञा पाकर उस राजाने प्रसन्न हो वैसा ही किया और भोजकोंद्वारा प्रतिष्ठा कराकर वह मन्दिर उन्हींको अर्पित कर दिया।

अरुण ! इस प्रकार अपनी पूजाके लिये मैंने अपने शरीरके तेजसे भोजकोंको उत्पन्न किया। ये मेरे आत्मस्वरूप हैं। मेरी प्रीतिके लिये जो कुछ भी देना हो वह भोजकको देना चाहिये। परंतु भोजकको दिया हुआ धन कभी वापस नहीं लेना चाहिये। भोजक हमारे सम्पूर्ण धनका स्वामी है।

भोजकमें ये लक्षण होने चाहिये—वह पहले वेदाध्ययन कर फिर गृहस्थजीवनमें प्रवेश करे। नित्य त्रिकाल स्नान करे, दिन-रात्रिमें पञ्चकृत्यों* द्वारा मेरा पूजन करे। वेद, ब्राह्मण और देवताओंकी कभी निन्दा न करे। नित्य हमारे सम्मुख शङ्ख-ध्वनि करे। छः महीने पुराण सुननेसे जैसी प्रसन्नता मुझे होती है, वैसी प्रीति केवल एक बार शङ्ख-ध्वनि श्रवण करनेसे हो जाती है। इसलिये भोजकको पूजनमें नित्य शङ्ख बजाना चाहिये। वे अभोज्य पदार्थ भक्षण नहीं करते हैं, इसलिये भोजक कहलाते हैं और नित्य हमको भोजन कराते हैं, इसलिये भी भोजक कहलाते हैं। वे सदा मगका ध्यान करते रहते हैं, इसलिये मगध कहे जाते हैं। भोजक परम शुद्धिकर अव्यङ्ग धारण किये बिना सदा अपवित्र रहता है। जो अव्यङ्ग धारण किये बिना मेरी पूजा करता है, उसको संतान नहीं होती और मेरी प्रसन्नता भी उसे प्राप्त नहीं होती। भोजकको सिर मुड़ाकर रहना चाहिये, किंतु शिखा अवश्य रखनी चाहिये। रविवारके दिन तथा षष्ठीको नक्तव्रत कर सप्तमीको उपवास करना चाहिये तथा संक्रान्तिका व्रत भी करना चहिये। मेरे समीप त्रिकाल गायत्रीका जप करे। भक्ति-श्रद्धापूर्वक मौन होकर मेरा पूजन करे। क्रोध न करे। सदा हमारा नैवेद्य भक्षण करे। वह नैवेद्य भोजकको शुद्ध करनेके लिये पवित्र हविष्यान्नके समान है। मुझे चढ़ा हुआ गन्ध, पुष्प, वस्त्राभूषण आदि बेचे नहीं। स्नान कराये गये जल और निर्माल्य (विसर्जनके बाद देवार्पित वस्तु) तथा अग्निका उल्लङ्घन न करे। सदा पवित्र रहे, एक बार भोजन करे और क्रोध, अमङ्गल-वचन तथा अशुभ कर्मोंका त्याग दे।

अरुण ! इस प्रकारके लक्षणोंवाला भोजक मुझे बहुत प्रिय है। भोजकका सदा सत्कार करना चाहिये। तुम्हारे ही समान भोजक भी मुझे बहुत प्रिय है।

महात्मा परावसु बोले—राजन् ! इस प्रकार अरुणको उपदेश देकर सूर्यनारायण आकाशमें भ्रमण करने लगे और अरुण भी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ।

ब्रह्माजी बोले—महामुनि परावसुके मुखसे यह कथा सुनकर राजा सत्राजित् और उसकी रानी विमलवती बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ भगवान् सूर्यके मन्दिर थे, उन सबमें मार्जन और उपलेपन कराया। सब मन्दिरोंमें कथा कहनेके लिये पौराणिकोंको नियुक्त किया और बहुत-सी

---

* इज्या, अभिगमन, उपादान, स्वाध्याय और योग—ये पाँच उपासनाके भेद हैं, जिनमें प्रतिमा-पूजन, संध्या-तर्पण, हवन-पूजन, ध्यान, जप एवं सूर्यके चरित्रोंका पाठ सम्मिलित है।

दक्षिणा देकर उन्हें संतुष्ट किया। वे विविध उपचारोंसे भक्तिपूर्वक नित्य सूर्यदेवकी पूजा-उपासना करने लगे और अन्तमें उन दोनोंने उनकी प्रीति प्राप्त कर उत्तम गति प्राप्त की। (अध्याय ११७)

भद्र ब्राह्मणकी कथा एवं कार्तिक मासमें सूर्य-मन्दिरमें दीपदानका फल

ब्रह्माजी बोले—विष्णो ! जो कार्तिक मासमें सूर्यदेवके मन्दिरमें दीप प्रज्वलित करता है, उसे सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त होता है एवं वह तेजमें सूर्यके समान तेजस्वी होता है। अब मैं आपको भद्र ब्राह्मणकी कथा सुनाता हूँ, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है, उसे आप सुनें—

प्राचीन कालमें माहिष्मती नामकी एक सुन्दर नगरीमें नागशर्मा नामका एक ब्राह्मण रहता था। भगवान् सूर्यकी प्रसन्नतासे उसके सौ पुत्र हुए। सबसे छोटे पुत्रका नाम था भद्र। वह सभी भाइयोंमें अत्यन्त विचक्षण विद्वान् था। वह भगवान् सूर्यके मन्दिरमें नित्य दीपक जलाया करता था। एक दिन उसके भाइयोंने उससे बड़े आदरसे पूछा—'भद्र ! हमलोग देखते हैं कि तुम भगवान् सूर्यको न तो कभी पुष्प, धूप, नैवेद्य आदि अर्पण करते हो और न कभी ब्राह्मण-भोजन कराते हो, केवल दिन-रात मन्दिरमें जाकर दीप जलाते रहते हो, इसमें क्या कारण है ? तुम हमें बताओ।' अपने भाइयोंकी बात सुनकर भद्र बोला—भ्रातृगण ! इस विषयमें आपलोग एक आख्यान सुनें—

प्राचीन कालमें राजा इक्ष्वाकुके पुरोहित महर्षि वसिष्ठ थे। उन्होंने राजा इक्ष्वाकुसे सरयू-तटपर सूर्यभगवान्का एक मन्दिर बनवाया। वे वहाँ नित्य गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजा करते और दीपक प्रज्वलित करते थे। विशेषकर कार्तिक मासमें भक्तिपूर्वक दीपोत्सव किया करते थे। तब मैं भी अनेक कुष्ठ आदि रोगोंसे पीड़ित हो उसी मन्दिरके समीप पड़ा रहता और जो कुछ मिल जाता, उसीसे अपना पेट भरता। वहाँके निवासी मुझे रोगी और दीन-हीन जानकर मुझे भोजन दे देते थे। एक दिन मुझमें यह कुत्सित विचार आया कि मैं रात्रिके अन्धकारमें इस मन्दिरमें स्थित सूर्यनारायणके बहुमूल्य आभूषणोंको चुरा लूँ। ऐसा निश्चयकर मैं उन भोजकोंकी निद्राकी प्रतीक्षा करने लगा। जब वे भोजक सो गये, तब मैं धीरे-धीरे मन्दिरमें गया और वहाँ देखा कि दीपक बुझ चुका है। तब मैंने अग्नि जलाकर दीपक प्रज्वलित किया और उसमें घृत डालकर प्रतिमासे आभूषण उतारने लगा, उसी समय वे देवपुत्र भोजक जग गये और मुझे हाथमें दीपक लिया देखकर पकड़ लिया। मैं भयभीत हो विलापकर उनके चरणोंपर गिर पड़ा। दयावश उन्होंने मुझे छोड़ दिया, किंतु वहाँ घूमते हुए राजपुरुषोंने मुझे फिर बाँध लिया और वे मुझसे पूछने लगे—'अरे दुष्ट ! तुम दीपक हाथमें लेकर मन्दिरमें क्या कर रहे थे ? जल्दी बताओ', मैं अत्यन्त भयभीत हो गया। उन राजपुरुषोंके भयसे तथा रोगसे आक्रान्त होनेके कारण मन्दिरमें ही मेरे प्राण निकल गये। उसी समय सूर्यभगवान्के गण मुझे विमानमें बैठाकर सूर्यलोक ले गये और मैंने एक कल्पतक वहाँ सुख भोगा और फिर उत्तम कुलमें जन्म लेकर आप सबका भाई बना। बन्धुओ ! यह कार्तिक मासमें भगवान् सूर्यके मन्दिरमें दीपक जलानेका फल है। यद्यपि मैंने दुष्टबुद्धिसे आभूषण चुरानेकी दृष्टिसे मन्दिरमें दीपक जलाया था तथापि उसीके फलस्वरूप इस उत्तम ब्राह्मणकुलमें मेरा जन्म हुआ तथा वेद-शास्त्रोंका मैंने अध्ययन किया और मुझे पूर्वजन्मोंकी स्मृति हुई। इस प्रकार उत्तम फल मुझे प्राप्त हुआ। दुष्टबुद्धिसे भी घीद्वारा दीपक जलानेका ऐसा श्रेष्ठ फल देखकर मैं अब नित्य भगवान् सूर्यके मन्दिरमें दीपक प्रज्वलित करता रहता हूँ। भाइयो ! मैंने कार्तिक मासमें यह दीपदानका संक्षेपमें माहात्म्य आपलोगोंको सुनाया।

इतनी कथा सुनाकर ब्रह्माजी बोले—विष्णो ! दीपक जलानेका फल भद्रने अपने भाइयोंको बताया। जो पुरुष सूर्यके नामोंका जप करता हुआ मन्दिरमें कार्तिकके महीनेमें दीपदान करता है, वह आरोग्य, धन-सम्पत्ति, बुद्धि, उत्तम संतान और जातिस्मरत्वको प्राप्त करता है। षष्ठी और सप्तमी तिथिको जो प्रयत्नपूर्वक सूर्यमन्दिरमें दीपदान करता है, वह उत्तम विमानमें बैठकर सूर्यलोकको जाता है। इसलिये भगवान् सूर्यके मन्दिरमें भक्तिपूर्वक दीप प्रज्वलित करना चाहिये। प्रज्वलित दीपकको न तो बुझाये और न उसका हरण करे। दीपक हरण करनेवाला पुरुष अन्धमूषक होता है। इस कारण कल्याणकी इच्छावाला पुरुष दीप प्रज्वलित करे, हरे नहीं। (अध्याय ११८)

यमदूत और नारकीय जीवोंके संवादके प्रसंगमें सूर्य-मन्दिरमें दीपदान करने एवं दीप चुरानेके पुण्य-पापोंका परिणाम

ब्रह्माजी बोले—विष्णो ! एक समय घोर नरकमें पड़े हुए भूखे, आर्त-दुःखी और विलाप करते हुए जीवोंसे यमदूतने कहा—मूढजनो ! अब अधिक विलाप करनेसे क्या लाभ होगा, प्रमादवश तुम सबने अपनी आत्माकी उपेक्षा कर रखी है। पहले तुम सबने यह विचार नहीं किया कि इन कर्मोंका फल आगे भोगना पड़ेगा। यह शरीर थोड़े ही दिनोंतक रहनेवाला है, विषय भी नाशवान् हैं, यह कौन नहीं जानता। हजारों जन्मोंके बाद एक बार मनुष्य-जन्म मिलता है, उसमें क्यों मूढजन भोगोंकी ओर दौड़ते हैं। वे पुत्र, स्त्री, गृह, क्षेत्र आदिके लिये प्रयत्नशील रहते हैं और उनमें आसक्त होकर अनेक दुष्कर्म करते हैं, वे मूढजन अपना हित नहीं जानते, वे यह भी नहीं जानते कि सूर्य, चन्द्र, काल तथा आत्मा—ये सभी मनुष्यके शुभ और अशुभ कर्मोंको देखते रहते हैं अर्थात् साक्षीभूत हैं। न केवल एक जन्म अपितु सैकड़ों जन्मोंमें पुत्र, स्त्री आदिके लिये जो-जो भी कर्म किया जाता है, उसे अच्छी तरहसे ये जानते रहते हैं। मोहकी यह महिमा तो देखो कि नरकमें भी ममता बनी रहती है। इस प्रकार परिणाममें भयंकर विषयोंके द्वारा आकृष्ट चित्तवाले मनुष्योंकी बुद्धि परमार्थ-तत्त्वकी ओर नहीं होती। जिह्वाद्वारा भगवान् सूर्यका नाम लेनेमें कौन-सा श्रम है ? मन्दिरमें दीप जलानेमें भी अधिक परिश्रम नहीं पड़ता, परंतु यदि मनुष्यसे इतना भी नहीं हो सकता तो अब रोदन और विलाप करनेसे क्या लाभ है ?[1] जैसा कर्म किया वैसा फल पाया। इसलिये पापकर्ममें कभी भी बुद्धि नहीं लगानी चाहिये। यदि कोई अज्ञानसे पापकर्म हो जाय तो सूर्यभगवान्‌की आराधना करे, जिससे सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

ब्रह्माजी बोले—यमदूतके ऐसे वचनोंको सुनकर तथा भूखसे व्याकुल, प्याससे सूखे कण्ठवाले, दुःखसे पीड़ित वे नारकीय जीव उससे कहने लगे—'साधो ! हमने ऐसा कौन-सा कर्म किया, जिससे हमें इस दारुण नरकमें वास करना पड़ा।'

यमदूतने कहा—पूर्वजन्ममें यौवनके उन्मादसे उन्मादित् तुम अविवेकियोंने घृतके लोभमें भगवान् सूर्यके मन्दिरसे दीप चुराया था। उसी कारण इस घोर नरकमें तुम सब दुःख भोग रहे हो।

ब्रह्माजी बोले—अच्युत ! मैंने सूर्यके मन्दिरमें दीपदान करनेके पुण्य तथा दीप-हरण करनेके दुष्परिणामोंका वर्णन किया। दीपदान करनेका तो सर्वत्र ही उत्तम फल है, परंतु सूर्यनारायणके मन्दिरमें विशेष फल है। जगत्‌में जो-जो अंध, मूक, बधिर, विवेकहीन, निन्द्य व्यक्ति दिखायी पड़ते हैं, उन सबने साधुजनोंद्वारा प्रज्वलित किये हुए दीपोंको सूर्यनारायणके मन्दिरसे हरण किया है।

(अध्याय ११९)

वैवस्वतके लक्षण और सूर्यनारायणकी महिमा

विष्णुभगवान्‌ने ब्रह्माजीसे पूछा—ब्रह्मन् ! संसारमें मनुष्य विष, रोग, ग्रह और अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे पीड़ित रहते हैं, यह किन कर्मोंका फल है, कृपाकर आप कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे जीवोंको रोग आदिकी बाधा न हो।

ब्रह्माजीने कहा—जिन्होंने पूर्वजन्ममें व्रत-उपवास आदिके द्वारा भगवान् सूर्यको प्रसन्न नहीं किया, वे मनुष्य विष, ज्वर, ग्रह, रोग आदिके भागी होते हैं और जो सूर्यनारायणकी आराधना करते हैं, उन्हें आधि-व्याधियाँ नहीं सतातीं। पूर्वजन्ममें भगवान् सूर्यकी आराधनासे इस जन्ममें आरोग्य, परम बुद्धि और जो-जो भी मनमें इच्छा करता है, निःसंदेह उसे प्राप्त कर लेता है। आधि-व्याधियोंसे पीड़ित नहीं होता है और न विष एवं दुष्ट ग्रहोंके बन्धनमें ही फँसता है तथा कृत्या

१-अहो मोहस्य माहात्म्यं ममत्वं नरकेष्वपि। क्रन्दते मातरं तातं पीड्यमानोऽपि पत्क्षयम्॥
एवमाकृष्टचित्तानां विषयैः स्वादुदुर्गमैः। नृणां न जायते बुद्धिः परमार्थविलोकिनी॥
तथा च विषयासक्तं करोत्यविरतं मनः। को हि भारो रवेर्नाम्नि जिह्वायाः परिकीर्तने॥
वर्तितैलेऽल्पमूल्ये च यद्दीपैर्लभ्यते सुधा। अतो वै कतरो लाभः कालक्षिप्ता भवेत् तदा॥ (ब्राह्मपर्व ११९। १०—१३)

आदिका भी भय उसे नहीं रहता। सूर्यनारायणके भक्तके लिये दुष्ट भी अनुकूल हो जाते हैं और सब ग्रह सौम्य दृष्टि रखते हैं। जिसपर सूर्यदेव संतुष्ट हो जाते हैं, वह देवताओंका भी पूज्य हो जाता है। परंतु भगवान् सूर्यका अनुग्रह उसी पुरुषपर होता है, जो सब जीवोंको अपने समान ही समझता है और भक्तिपूर्वक उनकी आराधना करता है। प्रजाओंके स्वामी भगवान् सूर्यके प्रसन्न हो जानेपर मनुष्य पूर्णमनोरथ हो जाता है[1]।

भगवान् विष्णुने पूछा—ब्रह्मन्! जिन्होंने पहले भगवान् सूर्यकी आराधना नहीं की और रोग-व्याधिसे दुःखी हो गये हैं, वे उन कष्ट एवं पापोंसे कैसे मुक्त हों, कृपाकर बतायें। हम भी भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी आराधना करना चाहते हैं।

ब्रह्माजी बोले—भगवन्! यदि आप भगवान् सूर्यकी आराधना करना चाहते हैं तो आप पहले वैवस्वत (सूर्यभक्त) बनें, क्योंकि बिना विधिपूर्वक सौरी दीक्षाके उनकी उपासना पूरी नहीं हो सकती। जब मनुष्योंके पाप क्षीण होने लगते हैं तब भगवान् सूर्य और ब्राह्मणोंमें उनकी नैष्ठिकी श्रद्धा-भक्ति होती है। इस संसार-चक्रमें भ्रमण करते हुए प्राणियोंके लिये भगवान् सूर्यको प्रसन्न करना एकमात्र कल्याणका निष्कण्टक मार्ग है।

विष्णुभगवान्‌ने पूछा—ब्रह्मन्! वैवस्वतोंका क्या लक्षण है और उन्हें क्या करना चाहिये? यह आप बतायें।

ब्रह्माजी बोले—वैवस्वत वही है जो भगवान् सूर्यका परम भक्त हो तथा मन, वाणी एवं कर्मसे कभी जीवहिंसा न करे। ब्राह्मण, देवता और भोजकको नित्य प्रणाम करे, दूसरेके धनका हरण न करे, सभी देवताओं एवं संसारको भगवान् सूर्यका ही स्वरूप समझे और उनसे अपनेको अभिन्न समझे। देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, पिपीलिका, वृक्ष, पाषाण, काष्ठ, भूमि, जल, आकाश तथा दिशा—सर्वत्र भगवान् सूर्यको व्याप्त समझे, साथ ही स्वयंको भी सूर्यसे भिन्न न समझे। जो किसी भी प्राणीमें दुष्ट-भाव नहीं रखता, वही वैवस्वत सूर्योपासक है। जो पुरुष आसक्तिरहित होकर निष्काम-भावसे भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यके निमित्त क्रियाएँ करता है, वह वैवस्वत कहलाता है। जिसका न तो कोई शत्रु हो और न कोई मित्र हो तथा न उसमें भेद-बुद्धि हो, सबको बराबर देखता हो, ऐसा पुरुष वैवस्वत कहलाता है। जिस उत्तम गतिको वैवस्वत पुरुष प्राप्त करता है, वह योगी और बड़े-बड़े तपस्वियोंके लिये भी दुर्लभ है। जो सभी प्रकारसे भगवान् सूर्यका दृढ़ भक्त है, वह धन्य है। भक्तिपूर्वक आराधना करनेसे ही सूर्यभगवान्‌का अनुग्रह प्राप्त होता है।

ब्रह्माजी पुनः बोले—मैं भी उनके दक्षिण किरणसे उत्पन्न हुआ हूँ और उन्हींके वाम किरणसे भगवान् शिव तथा वक्षःस्थलसे शङ्ख-चक्र-गदाधारी आप उत्पन्न हैं। उन्हींकी इच्छासे आप सृष्टिका पालन तथा शङ्कर संहार करते हैं। इसी प्रकार रुद्र, इन्द्र, चन्द्र, वरुण, वायु, अग्नि आदि सब देवता सूर्यदेवसे ही प्रादुर्भूत हुए हैं और उनकी आज्ञाके अनुसार **अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त हो रहे हैं। इसलिये भगवन्!** आप भी सूर्यभगवान्‌की आराधना करें, इससे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे।

पितामह ब्रह्माजी एवं विष्णुभगवान्‌के इस संवादको जो भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त कर अन्तमें सुवर्णके विमानमें बैठकर सूर्यलोकको जाता है।

(अध्याय १२०)

१-व्रतोपवासैर्यैर्भानुर्नान्यजन्मनि तोषितः। ते नरा देवशार्दूल ग्रहरोगादिभागिनः॥
यैर्न तत्प्रवणं चित्तं सर्वदैव नरैः कृतम्। विपद्गह्वरगास्ते मनुष्याः कृष्ण भागिनः॥
आरोग्यं परमां वृद्धिं मनसा यद्यदिच्छति। तत्तदाप्नोत्यसंदिग्धं परमादित्यतोषणात्॥
नाधीन् प्राप्नोति न व्याधीन् न विपद्बन्धनम्। कृत्यास्पर्शभयं चापि तोषिते तिमिरापहे॥
सर्वे दुष्टाः समास्तस्य सौम्यास्तस्य सदा ग्रहाः। देवानामपि पूज्योऽसौ तुष्टो यस्य दिवाकरः॥
यः समः सर्वभूतेषु यथात्मनि तथा हिते। उपवासादिना येन तोष्यते तिमिरापहः॥
तोषितेऽस्मिन् प्रजानाथे नराः पूर्णमनोरथाः। अरोगाः सुखिनो नित्यं बहुधर्मसुखान्विताः॥
न तेषां शत्रवो नैव शरीराद्यभिचारकम्। ग्रहरोगादिकं चापि पापकार्युपजायते॥
अव्याहतानि देवस्य धनजालानि तं नरम्। रक्षन्ति सकलापत्सु येन श्वेताधिपोऽर्चितः॥ (ब्राह्मपर्व १२०। ४—१२)

भगवान् सूर्यनारायणके सौम्य रूपकी कथा, उनकी स्तुति और परिवार तथा देवताओंका वर्णन

राजा शतानीकने कहा—मुने ! भगवान् सूर्यकी कथा सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती, अतः आप पुनः उन्हींके गुणों और चरित्रोंका वर्णन करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने भगवान् सूर्यकी जो पवित्र कथा ऋषियोंको सुनायी थी, उसे मैं आपको सुनाता हूँ। वह कथा पापोंको नष्ट करनेवाली है—•

एक समय भगवान् सूर्यके प्रचण्ड तेजसे संतप्त हो ऋषियोंने ब्रह्माजीसे पूछा—'ब्रह्मन् ! आकाशमें स्थित यह अग्निके तुल्य दाह करनेवाला तेजःपुञ्ज कौन है ?'

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो ! प्रलयके समय जब सारा स्थावर-जङ्गम जगत् नष्ट हो गया, उस समय सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार व्याप्त था। उस समय सर्वप्रथम बुद्धि उत्पन्न हुई, बुद्धिसे अहंकार तथा अहंकारसे आकाशादि पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति हुई और उनसे एक अण्ड उत्पन्न हुआ, जिसमें सात लोक और सात समुद्रोंसहित पृथ्वी स्थित है। उसी अण्डमें स्वयं ब्रह्मा तथा विष्णु और शिव भी स्थित थे। अन्धकारसे सभी व्याकुल थे। अनन्तर सब परमेश्वरका ध्यान करने लगे। ध्यान करनेसे अन्धकारको हरण करनेवाला एक तेजःपुञ्ज प्रकट हुआ। उसे देखकर हम सभी उसकी इस प्रकार दिव्य स्तुति करने लगे—

आदिदेवोऽसि देवानामीश्वराणां त्वमीश्वरः।
आदिकर्तासि भूतानां देवदेव सनातन ॥
जीवनं सर्वसत्त्वानां देवगन्धर्वरक्षसाम्।
मुनिकिन्नरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम् ॥
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विवस्वान् वरुणस्तथा ॥
त्वं कालः सृष्टिकर्ता च हर्ता त्राता प्रभुस्तथा।
सरितः सागराः शैला विद्युदिन्द्रधनूंषि च।
प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥
ईश्वरात्परतो विद्या विद्यायाः परतः शिवः।
शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वर ॥
सर्वतः पाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सहस्रांशुस्त्वं तु देव सहस्रकिरणस्तथा ॥
भूरादिभूर्भुवःस्वश्च महर्जनस्तपस्तथा।
प्रदीप्तं दीप्तिमन्नित्यं सर्वलोकप्रकाशकम्।
दुर्निरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः ॥
सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभिः।
शुभं परममव्यग्रं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥
पञ्चातीतस्थितं तद्वै दशैकादश एव च।
अर्धमासमतिक्रम्य स्थितं तत्सूर्यमण्डले।
तस्मै रूपाय ते देव प्रणताः सर्वदेवताः ॥
विश्वकृद्विश्वभूतं च विश्वानरसुरार्चितम्।
विश्वस्थितमचिन्त्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः ॥
परं यज्ञात्परं देवात्परं लोकात्परं दिवः।
दुरतिक्रमेति यः ख्यातस्तस्मादपि परंपरात्।
परमात्मेति विख्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥
अविज्ञेयमचिन्त्यं च अध्यात्मगतमव्ययम्।
अनादिनिधनं देवं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥
नमो नमः कारणकारणाय नमो नमः पापविनाशनाय।
नमो नमो वन्दितवन्दनाय नमो नमो रोगविनाशनाय ॥
नमो नमः सर्ववरप्रदाय नमो नमः सर्वबलप्रदाय।
नमो नमो ज्ञाननिधे सदैव नमो नमः पञ्चदशात्मकाय[१] ॥

(ब्राह्मपर्व १२३। ११—२४)

इस प्रकार हमारी स्तुतिसे प्रसन्न हो वे तैजस-रूप

१-स्तुतिका भाव इस प्रकार है—

हे सनातन देवदेव ! आप ही समस्त चराचर प्राणियोंके आदि स्रष्टा एवं ईश्वरोंके ईश्वर तथा आदिदेव हैं। देवता, गन्धर्व, राक्षस, मुनि, किन्नर, सिद्ध, नाग तथा तिर्यक् योनियोंके आप ही जीवनाधार हैं। आप ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, प्रजापति, वायु, इन्द्र, सोम, वरुण तथा काल हैं एवं जगत्के स्रष्टा, संहर्ता, पालनकर्ता और सबके शासक भी आप ही हैं। आप ही सागर, नदी, पर्वत, विद्युत्, इन्द्रधनुष इत्यादि सब कुछ हैं। प्रलय, प्रभव व्यक्त एवं अव्यक्त भी आप ही हैं। ईश्वरसे परे विद्या, विद्यासे परे शिव तथा शिवसे परतर आप परमदेव हैं। हे परमात्मन् ! आपके पाणि, पाद, अक्षि, सिर, मुख सर्वत्र—चतुर्दिक् व्याप्त हैं। आपकी देदीप्यमान सहस्रों किरणें सब ओर व्याप्त हैं। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः तथा सत्य

कल्याणकारी देव मधुर वाणीमें बोले—'देवगण ! आप क्या चाहते हैं ?' तब हमने कहा—'प्रभो ! आपके इस प्रचण्ड तप्त रूपको देखनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। अतः संसारके कल्याणके लिये आप सौम्य रूप धारण करें।' देवताओंकी ऐसी प्रार्थना सुनकर उन्होंने 'एवमस्तु' कहकर सभीको सुख देनेवाला उत्तम रूप धारण कर लिया।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! सांख्ययोगका आश्रय ग्रहण करनेवाले योगी आदि तथा मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुष इनका ही ध्यान करते हैं। इनके ध्यानसे बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। अग्निहोत्र, वेदपाठ और प्रचुर दक्षिणासे युक्त यज्ञ भी भगवान् सूर्यकी भक्तिके सोलहवीं कलाके तुल्य भी फलदायक नहीं है। ये तीर्थोंके भी तीर्थ, मङ्गलोंके भी मङ्गल और पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाले हैं। जो इनकी आराधना करते हैं, वे सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्य-लोकको प्राप्त करते हैं। वेदादि शास्त्रोंमें भगवान् दिवस्पति उपासना आदिके द्वारा जिस प्रकार सुलभ हो जाते हैं, उसी प्रकार सूर्यदेव समस्त लोकोंके उपास्य हैं।

राजा शतानीकने पूछा—मुने ! देवता तथा ऋषियोंने किस प्रकार भगवान् सूर्यका सुन्दर रूप बनवाया ? यह आप बतायें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! एक समय सभी ऋषियोंने ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीसे प्रार्थना की कि 'ब्रह्मन् ! अदितिके पुत्र सूर्यनारायण आकाशमें अति प्रचण्ड तेजसे तप रहे हैं। जिस प्रकार नदीका किनारा सूख जाता है, वैसे ही अखिल जगत् विनाशको प्राप्त हो रहा है, हम सब भी अति पीड़ित हैं और आपका आसन कमल-पुष्प भी सूख रहा है, तीनों लोकोंमें कोई सुखी नहीं है, अतः आप ऐसा उपाय करें, जिससे यह तेज शान्त हो जाय।

ब्रह्माजीने कहा—मुनीश्वरो ! सभी देवताओंके साथ आप और हम सब सूर्यनारायणकी शरणमें जायँ, उसीमें सबका कल्याण है। ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर सभी देवता और ऋषिगण उनकी शरणमें गये और उन्होंने भक्तिभावपूर्वक नम्र होकर अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की। देवताओंकी स्तुतिसे सूर्यनारायण प्रसन्न हो गये।

सूर्यभगवान् बोले—आपलोग वर माँगिये। उस समय देवताओंने यही वर माँगा कि 'प्रभो ! आपके तेजको विश्वकर्मा कम कर दें, ऐसी आप आज्ञा प्रदान करें।' इन्होंने देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब विश्वकर्माने उनके तेजको तराश कर कम किया। इसी तेजसे भगवान् विष्णुका चक्र और अन्य देवताओंके शूल, शक्ति, गदा, वज्र, बाण, धनुष, दुर्गा आदि देवियोंके आभूषण तथा शिविका (पालकी), परशु आदि आयुध बनाकर विश्वकर्माने उन्हें देवताओंको दिया।

भगवान् सूर्यका तेज सौम्य हो जानेसे तथा उत्तम-उत्तम आयुध प्राप्त कर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने पुनः उनकी भक्तिपूर्वक स्तुति की।

देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न हो भगवान् सूर्यने और भी अनेक वर उन्हें प्रदान किये। अनन्तर देवताओंने परस्पर विचार किया कि दैत्यगण वर पाकर अत्यन्त अभिमानी हो गये हैं। वे अवश्य भगवान् सूर्यको हरण करनेका प्रयत्न करेंगे। इसलिये उन सबको नष्ट करनेके लिये तथा इनकी रक्षाके लिये हमें चाहिये कि हम इनके चारों ओर खड़े हो जायँ, जिससे ये दैत्य सूर्यको देख न सकें। ऐसा विचारकर स्कन्द दण्डनायकका रूप धारणकर भगवान् सूर्यके बायीं ओर स्थित हो गये। भगवान् सूर्यने दण्डनायकको जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंको लिखनेका निर्देश दिया। दण्डका निर्णय करने तथा दण्डनीतिका निर्धारण करनेसे दण्डनायक नाम पड़ा। अग्निदेव पिंगलवर्णके होनेके कारण पिंगल नामसे प्रसिद्ध हुए और

इत्यादि समस्त लोकोंमें आपका ही प्रचण्ड एवं प्रदीप्त तेज प्रकाशित है। इन्द्रादि देवताओंसे भी दुर्निरीक्ष्य, भृगु, अत्रि, पुलह आदि ऋषियों एवं सिद्धोंद्वारा सेवित अत्यन्त कल्याणकारी एवं शान्त रूपवाले आपको नमस्कार है। हे देव ! आपका यह रूप पाँच, दस अथवा एकादश इन्द्रियों आदिसे अगम्य है, उस रूपकी देवता सदा वन्दना करते रहते हैं। देव ! विश्वस्रष्टा, विश्वमें स्थित तथा विश्वभृत् आपके अचिन्त्य रूपकी इन्द्रादि देवता अर्चना करते रहते हैं। आपके उस रूपको नमस्कार है। नाथ ! आपका रूप यज्ञ, देवता, लोक, आकाश—इन सबसे परे है, आप दुरतिक्रम नामसे विख्यात हैं, इससे भी परे आपका अनन्त रूप है, इसीलिये आपका रूप परमात्मा नामसे प्रसिद्ध है। ऐसे रूपवाले आपको नमस्कार है। हे अनादिनिधन ज्ञाननिधे ! आपका रूप अविज्ञेय, अचिन्त्य, अव्यय एवं अध्यात्मगत है, आपको नमस्कार है। हे कारणोंके कारण, पाप एवं रोगके विनाशक, वन्दितोंके भी वन्द्य, पञ्चदशात्मक, सभीके लिये श्रेष्ठ वरदाता तथा सभी प्रकारके बल देनेवाले ! आपको सदा बार-बार नमस्कार है।

सूर्यभगवान्‌की दाहिनी ओर स्थित हुए। इसी प्रकार दोनों पार्श्वोंमें दो अश्विनीकुमार स्थित हुए। वे अश्वरूपसे उत्पन्न होनेके कारण अश्विनीकुमार कहलाये। महाबलशाली राज्ञ और श्रौष दो द्वारपाल हुए। राज्ञ कार्तिकेयके और श्रौष हरके अवतार कहे गये हैं। लोकपूज्य ये दोनों द्वारपाल धर्म और अर्थके रूपमें प्रथम द्वारपर रहते हैं। दूसरे द्वारपर कल्माष और पक्षी ये दो द्वारपाल रहते हैं। इनमेंसे कल्माष यमराजके रूप हैं और पक्षी गरुडरूप हैं। ये दोनों दक्षिण दिशामें स्थित हैं। कुबेर और विनायक उत्तरमें तथा दिण्डी और रेवन्त पूर्व दिशामें स्थित हैं। दिण्डी रुद्ररूप हैं और रेवन्त भगवान् सूर्यके पुत्र हैं। ये सब देवता दैत्योंको मारनेके लिये सूर्यनारायणके चारों ओर स्थित हैं और सुन्दर रूपवाले, विरूप, अन्यरूप और कामरूप हैं तथा अनेक प्रकारके आयुध धारण किये हैं। चारों वेद भी उत्तम रूप धारणकर भगवान् सूर्यके चारों ओर स्थित हैं।

(अध्याय १२१—१२४)

श्रीसूर्यनारायणके आयुध—व्योमका लक्षण और माहात्म्य

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! अब भगवान् सूर्यके मुख्य आयुध व्योमका लक्षण कहता हूँ, उसे आप सुनें।

भगवान् सूर्यका आयुध व्योम सर्वदेवमय है, वह चार शृङ्गोंसे युक्त है तथा सुवर्णका बना हुआ है। जिस प्रकार वरुणका पाश, ब्रह्माका हुंकार, विष्णुका चक्र, त्र्यम्बकका त्रिशूल तथा इन्द्रका आयुध वज्र है, उसी प्रकार भगवान् सूर्यका आयुध व्योम है। उस व्योममें ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, दस विश्वेदेव*, आठ वसुगण तथा दो अश्विनीकुमार—ये सभी अपनी-अपनी कलाओंके साथ स्थित हैं। हर, शर्व, त्र्यम्बक, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, अपराजित, ईश्वर, अहिर्बुध्न्य और भुवन (भव) ये ग्यारह रुद्र हैं। ध्रुव, धर, सोम, अनिल, अनल, अप्, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु हैं। नासत्य और दस्र—ये दो अश्विनीकुमार हैं। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धृति, कुरु, शंकुमात्र तथा वामन— ये दस विश्वेदेव हैं। इसी प्रकार साध्य, तुषित, मरुत् आदि देवता हैं। इनमें आदित्य और मरुत् कश्यपके पुत्र हैं। विश्वेदेव, वसु और साध्य—ये धर्मके पुत्र हैं। धर्मका तीसरा पुत्र वसु (सोम) है और ब्रह्माजीका पुत्र धर्म है।

स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष—ये छः मनु तो व्यतीत हो गये हैं, वर्तमानमें सप्तम वैवस्वत मनु हैं। अर्कसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, धर्मसावर्णि, दक्षसावर्णि, रौच्य और भौत्य—ये सब मनु आगे होंगे। इन चौदहों मन्वन्तरोंमें इन्द्रोंके नाम इस प्रकार हैं—विष्णुभुक्, विद्युति, विभु, प्रभु, शिखी तथा मनोजव—ये छः इन्द्र व्यतीत हो गये हैं। ओजस्वी नामक इन्द्र वर्तमानमें हैं। बलि, अद्भुत, त्रिदिव, सुसात्त्विक, कीर्ति, शतधामा तथा दिवस्पति—ये सात इन्द्र आगे होंगे। कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र और जमदग्नि—ये सप्तर्षि हैं। प्रवह, आवह, उद्वह, संवह, विवह, निवह और परिवह—ये सात मरुत् हैं। (प्रत्येकमें सात-सात मरुद्गणोंका समूह है)। ये उनचास मरुत् आकाशमें पृथक्-पृथक् मार्गोंसे चलते हैं। सूर्याग्निका नाम शुचि, वैद्युत अग्निका नाम पावक और अरणि-मन्थनसे उत्पन्न अग्निका नाम पवमान है। ये तीन अग्नियाँ हैं। अग्नियोंके पुत्र-पौत्र उनचास हैं और मरुत् भी उनचास ही हैं। संवत्सर, परिवत्सर, इद्वत्सर (इडावत्सर), अनुवत्सर और वत्सर—ये पाँच संवत्सर हैं—ये ब्रह्माजीके पुत्र हैं। सौम्य, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त—ये तीन पितर हैं। सूर्य, सोम, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु—ये नव ग्रह हैं। ये सदा जगत्‌का भाव-अभाव सूचित करते हैं। इनमें सूर्य और चन्द्र मण्डलग्रह, भौमादि पाँच ताराग्रह और राहु-केतु छायाग्रह कहलाते हैं। नक्षत्रोंके अधिपति चन्द्रमा हैं और ग्रहोंके राजा सूर्य हैं। सूर्य कश्यपके पुत्र हैं, सोम धर्मके, बुध चन्द्रके, गुरु और शुक्र प्रजापति भृगुके, शनि सूर्यके, राहु सिंहिकाके और केतु ब्रह्माजीके पुत्र हैं।

पृथ्वीको भूलोक कहते हैं। भूलोकके स्वामी अग्नि,

* अन्य सभी पुराणोंमें विश्वेदेवोंकी संख्या कहीं दस, कहीं बारह, कहीं तेरह बतलायी गयी है। विशेष जानकारीके लिये 'कल्याण' विशेषाङ्क 'देवताङ्क' देखना चाहिये।

भुवर्लोकके वायु और स्वर्लोकके स्वामी सूर्य हैं। मरुद्गण भुवर्लोकमें रहते हैं और रुद्र, अश्विनीकुमार, आदित्य, वसुगण तथा देवगण स्वर्लोकमें निवास करते हैं। चौथा महर्लोक है, जिसमें प्रजापतियोंसहित कल्पवासी रहते हैं। पाँचवें जनलोकमें भूमिदान करनेवाले तथा छठे तपोलोकमें ऋभु, सनत्कुमार तथा वैराज आदि ऋषि रहते हैं। सातवें सत्यलोकमें वे पुरुष रहते हैं, जो जन्म-मरणसे मुक्ति पा जाते हैं। इतिहास-पुराणके वक्ता तथा श्रोता भी उस लोकको प्राप्त करते हैं। इसे ब्रह्मलोक भी कहा गया है, इसमें न किसी प्रकारका विघ्न है न किसी प्रकारकी बाधा।

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग, भूत और विद्याधर—ये आठ देवयोनियाँ हैं। इस प्रकार इस व्योममें सातों लोक स्थित हैं। मरुत्, पितर, अग्नि, ग्रह और आठों देवयोनियाँ तथा मूर्त और अमूर्त सब देवता इसी व्योममें स्थित हैं। इसलिये जो भक्ति और श्रद्धासे व्योमका पूजन करता है, उसे सब देवताओंके पूजनका फल प्राप्त हो जाता है और वह सूर्यलोकको जाता है। अतः अपने कल्याणके लिये सदा व्योमका पूजन करना चाहिये।

महीपते! आकाश, ख, दिक्, व्योम, अन्तरिक्ष, नभ, अम्बर, पुष्कर, गगन, मेरु, विपुल, बिल, आपोच्छिद्र, शून्य, तमस्, रोदसी—व्योमके इतने नाम कहे गये हैं। लवण, क्षीर, दधि, घृत, मधु, इक्षु तथा सुस्वादु (जलवाला)—ये सात समुद्र हैं। हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृङ्गवान्—ये छः वर्षपर्वत हैं। इनके मध्य महाराजत नामक पर्वत है। माहेन्द्री, आग्नेयी, याम्या, नैर्ऋती, वारुणी, वायवी, सौम्या तथा ईशानी—ये देवनगरियाँ ऊपर समाश्रित हैं। पृथ्वीके ऊपर लोकालोक पर्वत है। अनन्तर अण्डकपाल, इससे परे अग्नि, वायु, आकाश आदि भूत कहे गये हैं। इससे परे महान् अहंकार, अहंकारसे परे प्रकृति, प्रकृतिसे परे पुरुष और इस पुरुषसे परे ईश्वर है, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् आवृत है। भगवान् भास्कर ही ईश्वर हैं, उनसे यह जगत् परिव्याप्त है। ये सहस्रों किरणवाले, महान् तेजस्वी, चतुर्बाहु एवं महाबली हैं।

भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—ये सात लोक कहे गये हैं। भूमिके नीचे जो सात लोक हैं, वे इस प्रकार हैं—तल, सुतल, पाताल, तलातल, अतल, वितल और रसातल। काञ्चन मेरु पर्वत भूमण्डलके मध्यमें फैला हुआ चार रमणीय शृङ्गोंसे युक्त तथा सिद्ध-गन्धर्वोंसे सुसेवित है। इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। यह सोलह हजार योजन भूमिमें नीचे प्रविष्ट है। इस प्रकार सब मिलाकर एक लाख योजन मेरुपर्वतका मान है। उसका सौमनस नामका प्रथम शृङ्ग सुवर्णका है, ज्योतिष्क नामका द्वितीय शृङ्ग पद्मराग मणिका है। चित्र नामका तृतीय शृङ्ग सर्वधातुमय है और चन्द्रौजस्क नामक चतुर्थ शृङ्ग चाँदीका है। गाङ्गेय नामक प्रथम सौमनस शृङ्गपर भगवान् सूर्यका उदय होता है, सूर्योदयसे ही सब लोग देखते हैं, अतः उसका नाम उदयाचल है। उत्तरायण होनेपर सौमनस शृङ्गसे और दक्षिणायन होनेपर ज्योतिष्क शृङ्गसे भगवान् सूर्य उदित होते हैं। मेष और तुला-संक्रान्तियोंमें मध्यके दो शृङ्गोंमें सूर्यका उदय होता है। इस पर्वतके ईशानकोणमें ईश और अग्निकोणमें इन्द्र, नैर्ऋत्यकोणमें अद्रि और वायव्यकोणमें मरुत् तथा मध्यमें साक्षात् ब्रह्मा, ग्रह एवं नक्षत्र स्थित हैं। इसे व्योम कहते हैं। व्योममें सूर्यभगवान् स्वयं निवास करते हैं, अतः यह व्योम सर्वदेवमय और सर्वलोकमय है। राजन्! पूर्वकोणमें स्थित शृङ्गपर शुक्र हैं, दूसरे शृङ्गपर हेलिज (शनि), तीसरेपर कुबेर, चौथे शृङ्गपर सोम हैं। मध्यमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव स्थित हैं। पूर्वोत्तर शृङ्गपर पितृगण और लोकपूजित गोपति महादेव निवास करते हैं। पूर्वाग्नेय शृङ्गपर शाण्डिल्य निवास करते हैं। अनन्तर महातेजस्वी हेलिपुत्र यम निवास करते हैं। नैर्ऋत्यकोणके शृङ्गमें महाबलशाली विरूपाक्ष निवास करते हैं। उसके बाद वरुण स्थित हैं, अनन्तर महातेजस्वी महाबली वीरमित्र निवास करते हैं। सभी देवोंके नमस्कार्य वायव्य शृङ्गका आश्रयणकर नरवाहन कुबेर निवास करते हैं, मध्यमें ब्रह्मा, नीचे अनन्त, उपेन्द्र और शंकर अवस्थित हैं। इसीको मेरु, व्योम और धर्म भी कहा जाता है। यह व्योमस्वरूप मेरु वेदमय नामसे प्रसिद्ध है। चारों शृङ्ग चारों वेदस्वरूप हैं। (अध्याय १२५-१२६)

साम्बद्वारा भगवान् सूर्यकी आराधना, कुष्ठरोगसे मुक्ति तथा सूर्यस्तवराजका कथन

राजा शतानीकने पूछा—मुने ! साम्बने किस प्रकार भगवान् सूर्यकी आराधना की और उस भयंकर रोगसे कैसे मुक्ति पायी ? इसे आप कृपाकर बतायें।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! आपने बहुत उत्तम कथा पूछी है। इसका मैं विस्तारसे वर्णन करता हूँ, इसके सुननेसे सभी पाप दूर हो जाते हैं। नारदजीके द्वारा सूर्य-भगवान्‌का माहात्म्य सुनकर साम्बने अपने पिता श्रीकृष्ण-चन्द्रके पास जाकर विनयपूर्वक प्रार्थना की—'भगवन् ! मैं अत्यन्त दारुण रोगसे ग्रस्त हूँ। वैद्योंद्वारा बहुत ओषधियोंका सेवन करनेपर भी मुझे शान्ति नहीं मिल रही है। अब आप आज्ञा दें कि मैं वनमें जाकर तपस्याद्वारा अपने इस भयंकर रोगसे छुटकारा प्राप्त करूँ।' पुत्रका वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने आज्ञा दे दी और साम्ब अपने पिताकी आज्ञाके अनुसार सिन्धुके उत्तरमें चन्द्रभागा नदीके तटपर लोकप्रसिद्ध मित्रवन नामके सूर्यक्षेत्रमें जाकर तपस्या करने लगे। वे उपवास करते हुए सूर्यकी आराधनामें तत्पर हो गये। उन्होंने इतना कठोर तप किया कि उनका अस्थिमात्र ही शेष रह गया। वे प्रतिदिन इस गुह्य स्तोत्रसे दिव्य, अव्यय एवं प्रकाशमान आदित्यमण्डलमें स्थित भगवान् भास्करकी स्तुति करने लगे—

प्रजापति परमात्मन् ! आप तीनों लोकोंके नेत्र-स्वरूप हैं, सम्पूर्ण प्राणियोंके आदि हैं, अतः आदित्य नामसे विख्यात हैं। आप इस मण्डलमें महान् पुरुष-रूपमें देदीप्यमान हो रहे हैं। आप ही अचिन्त्य-स्वरूप विष्णु और पितामह ब्रह्मा हैं। रुद्र, महेन्द्र, वरुण, आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, चन्द्र, मेघ, कुबेर, विभावसु, यमके रूपमें इस मण्डलमें देदीप्यमान पुरुषके रूपसे आप ही प्रकाशित हैं। यह आपका साक्षात् महादेवमय वृत्त अण्डके समान है। आप काल एवं उत्पत्तिस्वरूप हैं। आपके मण्डलके तेजसे सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त हो रही है। आप सुधाकी वृष्टिसे सभी प्राणियोंको परिपुष्ट करते हैं। विभावसो ! आप ही अन्तःस्थ म्लेच्छजातीय एवं पशु-पक्षीकी योनिमें स्थित प्राणियोंकी रक्षा करते हैं। गलित कुष्ठ आदि रोगोंसे ग्रस्त तथा अन्ध और बधिरोंको भी आप ही रोगमुक्त करते हैं। देव ! आप शरणागतके रक्षक हैं। संसार-चक्र-मण्डलमें निमग्न निर्धन, अल्पायु व्यक्तियोंकी भी सर्वदा आप रक्षा करते हैं। आप प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं। आप अपनी लीलामात्रसे ही सबका उद्धार कर देते हैं। आर्त और रोगसे पीड़ित मैं स्तुतियोंके द्वारा आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हूँ। आप तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदिसे सदा स्तुत होते रहते हैं। महेन्द्र, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सरा, गुह्यक आदि स्तुतियोंके द्वारा आपकी सदा आराधना करते रहते हैं। जब ऋक्, यजु और सामवेद तीनों आपके मण्डलमें ही स्थित हैं तो दूसरी कौन-सी पवित्र अन्य स्तुति आपके गुणोंका पार पा सकती है ? आप ध्यानियोंके परम ध्यान और मोक्षार्थियोंके मोक्षद्वार हैं। अनन्त तेजोराशिसे सम्पन्न आप नित्य अचिन्त्य, अक्षोभ्य, अव्यक्त और निष्कल हैं। जगत्पते ! इस स्तोत्रमें जो कुछ भी मैंने कहा है, इसके द्वारा आप मेरी भक्ति तथा दुःखमय परिस्थिति (कुष्ठ रोगकी बात) को जान लें और मेरी विपत्तिको दूर करें*।

सूर्यभगवान्‌ने कहा—जाम्बवतीपुत्र ! मैं तुम्हारी

---

* आदित्य हि भूतानामादित्य इति संज्ञितः। त्रैलोक्यचक्षुरेवात्र परमात्मा प्रजापतिः॥
एष वै मण्डले ह्यस्मिन् पुरुषो दीप्यते महान्। एष विष्णुरचिन्त्यात्मा ब्रह्मा चैव पितामहः॥
रुद्रो महेन्द्रो वरुण आकाशं पृथिवी जलम्। वायुः शशाङ्कः पर्जन्यो धनाध्यक्षो विभावसुः॥
य एष मण्डले ह्यस्मिन् पुरुषो दीप्यते महान्। एकः साक्षान्महादेवो वृत्रमण्डनिभः सदा॥
कालो ह्येष महाबाहुर्निबोधोत्पत्तिलक्षणः। य एष मण्डले ह्यस्मिंस्तेजोभिः पूरयन् महीम्॥
भ्राम्यते ह्यव्यवच्छिन्नो वातैर्योऽमृतलक्षणः। नातः परतरं किंचित् तेजसा विद्यते क्वचित्॥
पुष्णाति सर्वभूतानि एष एव सुधामृतैः। अन्तःस्थान् म्लेच्छजातीयांस्तिर्यग्योनिगतानपि॥
कारुण्यात् सर्वभूतानि पासि त्वं च विभावसो। श्वित्रकुष्ठ्यन्धबधिरान् पंगूंश्चापि तथा विभो॥
प्रपन्नवत्सलो देव कुरुते नीरुजो भवान्। चक्रमण्डलमग्नांश्च निर्धनाल्पायुषस्तथा॥

स्तुतिसे प्रसन्न हूँ, वत्स ! मुझसे जो तुम चाहते हो वह कहो।

साम्बने कहा—भगवन् ! आपके चरणोंमें मेरी दृढ़ भक्ति हो, यही वर चाहता हूँ।

सूर्यभगवान्‌ने कहा— ऐसा ही होगा ! मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ, सुव्रत ! द्वितीय वर माँगो।

साम्बने कहा—भगवन् ! मेरे शरीरमें रहनेवाला यह मल—कुष्ठ आपकी कृपासे दूर हो जाय, गोपते ! मेरा शरीर सर्वथा शुद्ध निर्मल हो जाय।

भगवान् सूर्यने कहा— ऐसा ही होगा।

भगवान् सूर्यके ऐसा कहते ही साम्बके शरीरसे कुष्ठ रोग वैसे ही दूर हो गया जैसे सर्पके शरीरसे केंचुल। वह दिव्य रूपसम्पन्न हो गया। साम्ब भगवान् सूर्यको प्रणामकर उनके सम्मुख खड़े हो गये।

सूर्यदेवने कहा— साम्ब ! प्रसन्न होकर मैं और भी वर देता हूँ। आजसे मेरा यह स्थान तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा। लोकमें तुम्हारी अक्षय कीर्ति होगी। जो व्यक्ति तुम्हारे नामसे मेरा स्थान बनायेगा, उसे सनातन लोक प्राप्त होगा। इस चन्द्रभागा नदीके तटपर मेरी स्थापना करो। मैं तुझे स्वप्नमें दर्शन देता रहूँगा। इतना कहकर सूर्यभगवान् प्रत्यक्ष दर्शन देकर अन्तर्धान हो गये।

इस साम्बकृत स्तोत्रको जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक तीनों कालमें पढ़ता है, अथवा सात दिनोंमें एक सौ इक्कीस बार पाठ और हवन करता है तो राज्यकी कामना करनेवाला राज्य, धनकी कामना करनेवाला धन प्राप्त कर लेता है और रोगसे पीड़ित व्यक्ति वैसे ही रोगमुक्त हो जाता है, जैसे साम्ब कुष्ठ-रोगसे मुक्त हो गये।

सुमन्तुमुनि बोले—राजन् ! तपस्याके समय रोगसे दुर्बल साम्बने सूर्यकी स्तुति उनके सहस्रनामसे की थी। उसे दुःखी देखकर स्वप्नमें भगवान् सूर्यने साम्बसे कहा—'साम्ब ! सहस्रनामसे मेरी स्तुति करनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं अपने अतिशय गोपनीय, पवित्र और इक्कीस शुभ नामोंको बताता हूँ। प्रयत्नपूर्वक उन्हें ग्रहण करो, उनके पाठ करनेसे सहस्रनामके पाठका फल प्राप्त होगा। मेरे इक्कीस नाम इस प्रकार हैं—

(१) विकर्तन (विपत्तियोंको काटने तथा नष्ट करनेवाले), (२) विवस्वान् (प्रकाश-रूप), (३) मार्तण्ड (जिन्होंने अण्डमें बहुत दिन निवास किया), (४) भास्कर, (५) रवि, (६) लोकप्रकाशक, (७) श्रीमान्, (८) लोकचक्षु, (९) ग्रहेश्वर, (१०) लोकसाक्षी, (११) त्रिलोकेश, (१२) कर्ता, (१३) हर्ता, (१४) तमिस्रहा (अन्धकारको नष्ट करनेवाले), (१५) तपन, (१६) तापन, (१७) शुचि (पवित्रतम), (१८) सप्ताश्ववाहन, (१९) गभस्तिहस्त (किरणें ही जिनके हाथस्वरूप हैं), (२०) ब्रह्मा और (२१) सर्वदेवनमस्कृत।*

साम्ब ! ये इक्कीस नाम मुझे अतिशय प्रिय हैं। यह स्तवराजके नामसे प्रसिद्ध है। यह स्तवराज शरीरको नीरोग बनानेवाला, धनकी वृद्धि करनेवाला और यशस्कर है एवं तीनों लोकोंमें विख्यात है। महाबाहो ! इन नामोंसे उदय और अस्त दोनों संध्याओंके समय प्रणत होकर जो मेरी स्तुति करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। मानसिक, वाचिक और शारीरिक जो भी दुष्कृत है, वे सभी एक बार मेरे सम्मुख इसका जप करनेसे विनष्ट हो जाते हैं। यही मेरे लिये जपने

प्रत्यक्षदर्शी त्वं देव समुद्धरसि लीलया। का मे शक्तिः स्तवैः स्तोतुमार्तोऽहं रोगपीडितः ॥
स्तूयसे त्वं सदा देवैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः। महेन्द्रसिद्धगन्धर्वैरप्सरोभिः सगुह्यकैः ॥
स्तुतिभिः किं पवित्रैर्वा तव देव समीरितैः। यस्य ते ऋग्यजुःसाम्नां त्रितयं मण्डलस्थितम् ॥
ध्यानिनां त्वं परं ध्यानं मोक्षद्वारं च मोक्षिणाम्। अनन्ततेजसाक्षोभ्यो ह्यचिन्त्याव्यक्तनिष्कलः ॥
यदयं व्याहृतः किंचित् स्तोत्रेऽस्मिञ्जगतः पतिः। आर्तिं भक्तिं च विज्ञाय तत्सर्वं ज्ञातुमर्हसि ॥

(ब्राह्मपर्व १२७। १०—२३)

* वैकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः ॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा। तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः ॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः।

(ब्राह्मपर्व १२८। ५—७)

योग्य तथा हवन एवं संध्योपासना है। बलिमन्त्र, अर्घ्यमन्त्र, धूपमन्त्र इत्यादि भी यही है। अन्नप्रदान, स्नान, नमस्कार, प्रदक्षिणामें यह महामन्त्र प्रतिष्ठित होकर सभी पापोंका हरण करनेवाला और शुभ करनेवाला है। यह कहकर जगत्पति भगवान् भास्कर कृष्णपुत्र साम्बको उपदेश देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। साम्ब भी इस स्तवराजसे सप्ताश्ववाहन भास्करकी स्तुति कर नीरोग, श्रीमान् और उस भयंकर शारीरिक रोगसे सर्वथा मुक्त हो गये। (अध्याय १२७-१२८)

साम्बको सूर्य-प्रतिमाकी प्राप्ति

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! इस प्रकार साम्ब सूर्यनारायणसे वर प्राप्त कर अतिशय प्रसन्न हुए और वर-प्राप्तिको आश्चर्य मानते हुए अन्य तपस्वियोंके साथ समीपमें स्थित चन्द्रभागा नदीमें स्नान करनेके लिये गये। वहाँ वे स्नानकर श्रद्धाके साथ अपने हृदयमें मण्डलाकार भगवान् सूर्यकी भावना कर मनमें यह सोचने लगे कि 'सूर्यनारायणकी कैसी प्रतिमा हो और उसे किस प्रकार कहाँ स्थापित करूँ।' इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि उन्होंने देखा—चन्द्रभागा नदीके ऊपरसे एक अत्यन्त देदीप्यमान प्रतिमा बहती हुई चली आ रही है। प्रतिमा देखकर साम्बको यह निश्चय हो गया कि यह भगवान् सूर्यकी ही मूर्ति है। जैसी उन्होंने आज्ञा दी थी, वही यह सूर्य-प्रतिमा है, इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं। यह सोचकर नदीसे उस तेजसे चमकती हुई मूर्तिको निकालकर उन्होंने मित्रवन (मुल्तान) में एक स्थानपर तपस्वियोंके साथ विधिपूर्वक उसकी स्थापना की। एक दिन साम्बने सूर्य-प्रतिमाको प्रणामकर पूछा—'नाथ! आपकी यह प्रतिमा किसने बनायी? इसकी आकृति बड़ी सुन्दर है।' आप कृपाकर बतायें।

प्रतिमा बोली—साम्ब! पूर्वकालमें मेरा रूप प्रचण्ड तेजोमय था। उससे व्याकुल होकर सभी देवताओंने प्रार्थना की कि 'आप अपना रूप सभी प्राणियोंके सहन करनेके योग्य बनायें, नहीं तो सभी लोग जल जायँगे।' मैंने महातपस्वी विश्वकर्माको आदेश दिया कि मेरे तेजको कम कर मेरा निर्माण करो। मेरा आदेश प्राप्त कर उन्होंने शाकद्वीपमें चक्रको घुमाकर मेरे तेजको खराद दिया। उसी विश्वकर्माने कल्पवृक्षके काष्ठसे यह मेरी सुलक्षणा प्रतिमा बनायी है। तुम्हारा उद्धार करनेके लिये मेरी आज्ञाके अनुसार विश्वकर्माने ही सिद्धसेवित हिमालयपर इसे निर्मितकर चन्द्रभागा नदीमें प्रवाहित कर दिया है। साम्ब! यह स्थान बड़ा शुभ है, सुन्दर है। यहाँ सदा मेरा सांनिध्य रहेगा। प्रातः मनुष्यगण इस चन्द्रभागाके तटपर मेरा सांनिध्य प्राप्त करेंगे। मध्याह्नमें कालप्रियमें (कालपीमें) और अनन्तर यहाँ प्रतिदिन मेरा दर्शन प्राप्त करेंगे। पूर्वाह्नमें ब्रह्मा, मध्याह्नमें विष्णु और अपराह्नमें शंकर सदा पूजा करेंगे। महाबाहो! इस प्रकार भगवान् सूर्यके ऐसा कहनेपर साम्ब अत्यन्त प्रसन्न हुए और भगवान् सूर्य भी अन्तर्धान हो गये। (अध्याय १२९)

मन्दिर-निर्माण-योग्य भूमि एवं मन्दिरमें प्रतिमाओंके स्थानका निरूपण

राजा शतानीकने पूछा—मुने! साम्बने भगवान् सूर्यकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा किस प्रकार की? किसके कथनानुसार उन्होंने भगवान् आदित्यके प्रासादका निर्माण कराया।

सुमन्तु मुनि बोले—चन्द्रभागा नदीसे प्रतिमा प्राप्त करनेके बाद साम्बने देवर्षि नारदका स्मरण किया। स्मरण करते ही वे वहाँ उपस्थित हो गये। साम्बने विधिवत् उनका पूजन-सत्कार आदि करके उनसे पूछा—'महाराज! भगवान्‌के मन्दिरको जो बनवाता है तथा प्रतिमाकी जो प्रतिष्ठा करता है, उन दोनोंका क्या फल है?'

नारदजीने कहा—नरशार्दूल! जो रमणीय स्थानमें सूर्य-मन्दिरका निर्माण कराता है, वह व्यक्ति सूर्यलोकमें जाता है, इसमें संदेह नहीं।

साम्बने पूछा—सूर्य-मन्दिरका निर्माण किस प्रकार तथा किस स्थानपर कराना चाहिये? आप इसे बतायें।

नारद बोले—जहाँ जलराशि निरन्तर विद्यमान रहे, वहाँ मन्दिर बनवाना चाहिये अर्थात् सर्वप्रथम एक विशाल जलाशयका निर्माण कराना चाहिये। यश और धर्मकी अभिवृद्धिके लिये वहीं देवमन्दिरका निर्माण कराना चाहिये। उसके समीप उद्यान एवं पुष्पवाटिका भी लगवाने चाहिये। ब्राह्मण आदि वर्णोंके लिये जैसी भूमि वास्तुशास्त्रकी दृष्टिसे

प्रासाद-निर्माणके लिये वर्णित है, वैसी ही भूमि देवप्रासादके लिये भी प्रशस्त मानी गयी है।

सूर्यनारायणका मन्दिर पूर्वाभिमुख बनवाना चाहिये, पूर्वकी ओर द्वार रखनेका स्थान न हो तो पश्चिमाभिमुख बनवाये। परंतु मुख्य पूर्वाभिमुख ही है। स्थानकी इस प्रकारसे कल्पना करे कि मुख्य मन्दिरसे दक्षिणकी ओर भगवान् सूर्यका स्नान-गृह और उत्तरकी ओर यज्ञशाला रहे। भगवान् शिव और मातृकाका मन्दिर उत्तराभिमुख, ब्रह्माका पश्चिम और विष्णुका उत्तर-मुख बनवाना चाहिये। भगवान् सूर्यके दाहिने पार्श्वमें निक्षुभा तथा बायें पार्श्वमें राज्ञीको स्थापित करना चाहिये। सूर्यनारायणके दक्षिणभागमें पिङ्गल, वामभागमें दण्डनायक, सम्मुख श्री और महाश्वेताकी स्थापना करनी चाहिये। देवगृहके बाहर अश्विनीकुमारोंका स्थान बनाना चाहिये। मन्दिरके दूसरे कक्षमें राज्ञ और श्रौष, तीसरे कक्षमें कल्माष और पक्षी, दक्षिणमें दण्ड और माठर, उत्तरमें लोकपूजित कुबेरको स्थापित करना चाहिये। कुबेरसे उत्तर रेवन्त एवं विनायककी स्थापना करनी चाहिये या जिस दिशामें उत्तम स्थान हो वहींपर उनकी स्थापना करे। दाहिनी एवं बायीं ओर अर्घ्य प्रदान करनेके लिये दो मण्डल बनवाये। उदयके समय दक्षिण मण्डलमें और अस्तके समय वाम मण्डलमें भगवान्‌को अर्घ्य दे। चक्राकार पीठके ऊपर स्नानगृहमें चार कलशोंसे भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको सविधि स्नान कराये। स्नानके समय शङ्ख आदि मङ्गल वाद्य बजाने चाहिये। तीसरे मण्डलमें सूर्यनारायणकी पूजा करे। सूर्यनारायणके सामने दिण्डीकी स्थानक (खड़ी हुई) प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। सूर्यनारायणके सम्मुख समीपमें ही सर्वदेवमय व्योमकी रचना करनी चाहिये। मध्याह्नके समय वहाँ सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये अथवा मध्याह्नमें अर्घ्य देनेके लिये चन्द्र नामक तृतीय मण्डल बनाये। प्रथम स्नान कराकर बादमें अर्घ्य दे। भगवान् सूर्यके समीप ही उचित स्थानपर पुराणका पाठ करनेके लिये स्थान बनाना चाहिये। यह देवताओंके स्थापनका विधान है। गृहराज और सर्वतोभद्र—ये दो प्रासाद सूर्यनारायणको अतिशय प्रिय हैं।

(अध्याय १३०)

सात प्रकारकी प्रतिमा एवं काष्ठ-प्रतिमाके निर्माणोपयोगी वृक्षोंके लक्षण

नारदजी बोले—साम्ब! अब मैं विस्तारके साथ प्रतिमा-निर्माणका विधान बतलाता हूँ। भक्तोंके कल्याणकी अभिवृद्धिके लिये भगवान् सूर्यकी प्रतिमा सात प्रकारकी बनायी जा सकती है। सोना, चाँदी, ताम्र, पाषाण, मृत्तिका, काष्ठ तथा चित्रलिखित। इनमें काष्ठकी प्रतिमाके निर्माणका विधान इस प्रकार है—

नक्षत्र तथा ग्रहोंकी अनुकूलता एवं शुभ शकुन देखकर मङ्गलस्मरणपूर्वक काष्ठ-ग्रहण करनेके लिये वनमें जाकर प्रतिमोपयोगी वृक्षका चयन करना चाहिये। दूधवाले वृक्ष, कमजोर वृक्ष, चौराहे, देवस्थान, वल्मीक, श्मशान, चैत्य, आश्रम आदिमें लगे हुए वृक्ष तथा पुत्रक वृक्ष—जिसको किसी बिना पुत्रवाले व्यक्तिने पुत्रके रूपमें लगाया हो अथवा बाल वृक्ष, जिसमें बहुत कोटर हों, अनेक पक्षी रहते हों, शस्त्र, वायु, अग्नि, बिजली तथा हाथी आदिसे दूषित वृक्ष, एक-दो शाखावाले वृक्ष, जिनका अग्रभाग सूख गया हो ऐसे वृक्ष प्रतिमाके योग्य नहीं होते। महुआ, देवदारु, वृक्षराज चन्दन, बिल्व, खदिर, अंजन, निम्ब, श्रीपर्ण (अग्निमन्थ), पनस (कटहल), सरल, अर्जुन और रक्तचन्दन—ये वृक्ष प्रतिमाके लिये उत्तम हैं। चारों वर्णोंके लिये भिन्न-भिन्न ग्राह्य काष्ठोंका विधान है।

अभिमत वृक्षके पास जाकर वृक्षकी पूजा करनी चाहिये। पवित्र स्थान, एकान्त, केश-अङ्गारशून्य, पूर्व और उत्तरकी ओर स्थित, लोगोंको कष्ट न देनेवाला, विस्तृत सुन्दर शाखाओं तथा पत्तोंसे समृद्ध, सीधा, व्रणशून्य तथा त्वचावाला वृक्ष शुभ होता है। स्वयं गिरे हुए या हाथीसे गिराये गये, शुष्क होकर या अग्निसे जले हुए और पक्षियोंसे रहित वृक्षोंका प्रतिमा-निर्माणमें उपयोग नहीं करना चाहिये। मधुमक्खीके छातेवाला वृक्ष भी ग्राह्य नहीं है। स्निग्ध पत्र-समन्वित, पुष्पित तथा फलित वृक्षोंका कार्तिक आदि आठ मासोंमें उत्तम मुहूर्त देखकर उपवास रहकर अधिवासन-कर्म करना चाहिये। वृक्षके नीचे चारों ओर लीपकर गन्ध, पुष्पमाला, धूप आदिसे यथाविधि वृक्षकी पूजा करे। अनन्तर गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित

जलसे प्रोक्षण करे। दो उज्ज्वल वस्त्र धारण कर वृक्षकी गन्ध-माल्यसे पूजा करे तथा उसके सामने कुशासनपर बैठकर देवदारुकी समिधासे अग्निमें आहुतियाँ दे, नमस्कार करे।

ॐ प्रजापते सत्यसदाय नित्यं
श्रेष्ठान्तरात्मन् सचराचरात्मन्।
सांनिध्यमस्मिन् कुरु देव वृक्षे
सूर्यावृतं मण्डलमाविशेस्त्वं नमः॥

(ब्राह्मपर्व १३१। २६)

'प्रजापतिसत्यस्वरूप इस वृक्षको नित्य नमस्कार है। श्रेष्ठान्तरात्मन्! सचराचरात्मन्! देव! इस वृक्षमें आप सांनिध्य करें। सूर्यावृत-मण्डल इसमें प्रविष्ट हो। आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार वृक्षकी पूजा कर उसको सान्त्वना देते हुए कहे—'वृक्षराज! संसारके कल्याणके लिये आप देवालयमें चलें। देव! आप वहाँ छेदन और तापसे रहित होकर स्थित रहेंगे। समयपर धूप आदि प्रदानकर पुष्पोंके द्वारा संसार आपकी पूजा करेगा।'

वृक्षके मूलमें धूप-माल्य आदिसे कुठारका पूजन कर उसका सिर पूर्वकी ओर करके सावधानीसे स्थापित करे। अनन्तर मोदक, खीर आदि भक्ष्य द्रव्य तथा सुगन्धित पुष्प, धूप, गन्ध आदिसे वृक्षकी तथा देवता, पितर, राक्षस, पिशाच, नाग, सुरगण, विनायक आदिकी पूजा करके रात्रिमें वृक्षका स्पर्श कर यह कहे—'देवदेव! आप पूजामें देवोंके द्वारा परिकल्पित हैं। वृक्षराज! आपको नमस्कार है। यह विधिवत् की गयी पूजा आप ग्रहण करें। जो-जो प्राणी यहाँ निवास करते हैं, उनको भी मेरा नमस्कार है[1]।'

प्रभातकालमें पुनः उस वृक्षका पूजन करे तथा ब्राह्मण और भोजकको दक्षिणा देकर विशेषज्ञोंके द्वारा स्वस्तिवाचन-पूर्वक वृक्षका छेदन करे। पूर्व-ईशान और उत्तरकी ओर वृक्ष कट करके गिरे तो अच्छा है। शाखाओंके इन दिशाओंमें गिरनेपर ही वृक्षका छेदन करे अन्यथा नहीं। वृक्षका नैर्ऋत्य, आग्नेय और दक्षिण दिशाओंमें गिरना शुभ नहीं है एवं वायव्य और पश्चिममें गिरना मध्यम है। पहले वृक्षके चारों ओरकी शाखाओंको काटनेके बाद वृक्षको कटवाये। वृक्षसे शाखाएँ सर्वथा अलग हो जायँ तथा गिरकर टूटें नहीं एवं शब्द भी नहीं हो तो उत्तम है। जिसके कटनेसे दो भाग हो जाय, जिस वृक्षसे मधुर द्रव, घी, तेल आदि निकले उसका परित्याग कर दे। इन दोषोंसे रहित अच्छा काल देखकर काष्ठका संग्रह करना चाहिये।

(अध्याय १३१)

सूर्य-प्रतिमाकी निर्माण-विधि

नारदजीने कहा—यदुशार्दूल! मैं सभी देवोंकी प्रतिमाका लक्षण विशेषरूपसे आदित्यकी प्रतिमाका लक्षण कहता हूँ। एक हाथ, दो हाथ, तीन हाथ अथवा साढ़े तीन हाथ लम्बी या देवालयके द्वारके प्रमाणके अनुसार भगवान् सूर्यकी प्रतिमाका निर्माण कराना चाहिये। एक हाथकी प्रतिमा सौम्य होती है, दो हाथकी धन-धान्य देती है, तीन हाथकी प्रतिमासे सभी कार्य सिद्ध होते हैं, साढ़े तीन हाथकी लम्बी प्रतिमाकी स्थापनासे राष्ट्रमें सुभिक्ष, कल्याण और आरोग्यकी प्राप्ति होती है। प्रतिमाके अग्रभाग, मध्यभाग और मूलभागमें सौम्य होनेपर उसको गान्धर्वी प्रतिमा कहते हैं। वह धन-धान्य प्रदान करती है। देवालयके द्वारका जितना विस्तार हो, उसके आठवें अंशके समान प्रतिमा बनवानी चाहिये।

भगवान् सूर्यकी प्रतिमा विशाल नेत्र, कमलके समान मुख, रक्तवर्णके बिम्बके समान सुन्दर ओठ, रत्नजटित मुकुटसे अलंकृत मस्तक, मणि-कुण्डल, कटक, अंगद, हार आदि अलंकारोंसे सुशोभित अव्यङ्ग धारण किये हुए, हाथोंमें प्रफुल्लित कमल और सुवर्णकी माला लिये हुए अतिशय सुन्दर सभी शुभ लक्षणोंसे समन्वित बनवानी चाहिये।

इस प्रकारकी प्रतिमा प्रजाका कल्याण करनेवाली, आरोग्य-प्रदायक तथा अभय प्रदान करनेवाली होती है। हीन या कम अङ्गवाली प्रतिमा अनिष्टकारक होती है। अतः प्रतिमा सीधी और सुडौल बनवानी चाहिये।

ब्रह्माजीकी मूर्ति हाथमें कमण्डलु धारण किये कमलासनपर विराजमान तथा चार मुखोंसे संयुक्त बनवानी

१-अर्चासु देवदेव त्वं देवैश्च परिकल्पितः। नमस्ते वृक्ष पूजेयं विधिवत् परिगृह्यताम्॥ (ब्राह्मपर्व १३१। ३३)

चाहिये। कार्तिकेयकी प्रतिमा कुमार-स्वरूप, हाथमें शक्ति लिये, अतिशय सुन्दर बनवानी चाहिये। इनकी ध्वजा मयूर-मण्डित होनी चाहिये।

इन्द्रकी प्रतिमा चार दाँतोंसे युक्त सफेद दाँतोंवाले ऐरावत गजपर आरूढ़ तथा हाथमें वज्र धारण किये हुए बनवानी चाहिये। इस प्रकार देवोंकी प्रतिमा शुभ लक्षणोंसे युक्त और सुन्दर बनवानी चाहिये।

नारदजी बोले—साम्ब! भगवान् सूर्यकी इस प्रकारकी प्रतिमा बनवाकर ईशानकोणमें चार तोरण, पल्लव, पुष्पमाला, पताका आदिसे विभूषित कर फिर अधिवासनके लिये मण्डपका निर्माण करवाना चाहिये। काष्ठकी मूर्ति श्री, विजय, बल, यश, आयु और धन प्रदान करती है, मिट्टीकी प्रतिमा प्रजाका कल्याण करती है। मणिमयी प्रतिमा कल्याण और सुभिक्ष प्रदान करती है, सुवर्णकी प्रतिमा पुष्टि, चाँदीकी मूर्ति कीर्ति, ताम्रकी मूर्ति प्रजावृद्धि तथा पाषाणकी प्रतिमा विपुल भूमि लाभ कराती है। लोहे, शीशे एवं राँगेकी मूर्तियाँ अनिष्ट करनेवाली होती हैं, इसलिये इन धातुओंकी प्रतिमा नहीं बनवानी चाहिये।

साम्बने पूछा—नारदजी! भगवान् सूर्य सर्वदेवमय कहे गये हैं, यह उनका सर्वदेवमयत्व कैसा है? उसे कृपाकर बतलाइये।

नारदजीने कहा—साम्ब! तुमने बड़ी अच्छी बात पूछी है। अब मैं यह सब बता रहा हूँ। इसे ध्यानसे सुनो—

भगवान् सूर्य सर्वदेवमय हैं, उनके नेत्रोंमें बुध और सोम, ललाटपर भगवान् शंकर, सिरमें ब्रह्मा, कपालमें बृहस्पति, कण्ठमें एकादश रुद्र, दाँतोंमें नक्षत्र और ग्रहोंका निवास है। ओष्ठोंमें धर्म और अधर्म, जिह्वामें सर्वशास्त्रमयी महादेवी सरस्वती स्थित हैं। कर्णोंमें दिशाएँ और विदिशाएँ, तालुदेशमें ब्रह्मा और इन्द्र स्थित हैं। इसी प्रकार भ्रूमध्यमें बारहों आदित्य, रोमकूपोंमें सभी ऋषिगण, पेटमें समुद्र, हृदयमें यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, पिशाच, दानव और राक्षसगण विराजमान हैं। भुजाओंमें नदियाँ, कक्षोंमें वृक्ष, पीठके मध्यमें मेरु, दोनों स्तनोंके बीचमें मङ्गल और नाभिमण्डलमें धर्मराजका निवास है। कटिप्रदेशमें पृथ्वी आदि, लिङ्गमें सृष्टि, जानुओंमें अश्विनीकुमार, ऊरुओंमें पर्वत, नखोंके मध्य सातों पाताल, चरणोंके बीच वन और समुद्रसहित भूमण्डल तथा दन्तान्तरोंमें कालाग्नि रुद्र स्थित हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्य सर्वदेवमय तथा सभी देवताओंके आत्मा हैं। जैसे वायुसे विश्व व्याप्त है, वैसे ही चराचर जगत् इनसे परिव्याप्त है, क्योंकि वायु भी भगवान् सूर्यके प्रत्येक अङ्गोंमें ही स्थित रहता है। ऐसे ये भगवान् सूर्य सम्पूर्ण प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये निरन्तर तत्पर रहते हैं।

(अध्याय १३२-१३३)

सूर्य-प्रतिष्ठाका मुहूर्त और मण्डप बनानेका विधान

नारदजी बोले—साम्ब! भगवान् सूर्यकी स्थापनाके लिये प्रतिपदा, द्वितीया, चतुर्थी, पञ्चमी, दशमी, त्रयोदशी तथा पूर्णिमा—ये तिथियाँ प्रशस्त मानी गयी हैं। चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्र—इन ग्रहोंके उदित एवं अनुकूल होनेपर भगवान् सूर्यकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। सूर्यकी स्थापनामें तीनों उत्तरा, रेवती, अश्विनी, रोहिणी, हस्त, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण और भरणी—ये नक्षत्र प्रशस्त हैं। प्रतिष्ठाके लिये यज्ञभूमि भूसी, राख, केश आदिसे रहित एवं शुद्ध होनी चाहिये। उसमें बालू, कंकड़ एवं कोयले न हों। दस हाथ लंबा-चौड़ा मण्डप बनवाना चाहिये। उसके चारों ओर वृक्ष, उद्यान, उपवन आदि होने चाहिये। उस मण्डपमें चार हाथ लंबी-चौड़ी वेदीका निर्माण करे। नदीके संगम-स्थानसे मिट्टी अथवा बालू लाकर वहाँ बिछाये। भलीभाँति मण्डपको गोबर आदिसे उपलिप्त करे, पूर्व दिशामें चतुरस्र, दक्षिण दिशामें अर्धचन्द्र, पश्चिम दिशामें वर्तुलाकार और उत्तर दिशामें पद्मके आकारवाले चार कुण्डोंका निर्माण करे। वट, पीपल, गूलर, बेल, पलाश, शमी अथवा चन्दनके द्वारा पाँच-पाँच हाथके खंभे लगाये। शुक्ल वस्त्र, पुष्पमाला, कुशा आदिके द्वारा प्रत्येक खंभेको अलंकृत करे।

मण्डपके मध्यमें अलंकृत वेदीके ऊपर कुश बिछाकर पुष्पोंसे आच्छादित करे या ढककर प्रतिमाको रखे। मण्डपके आठों दिशाओंमें क्रमशः पीत, रक्त, कृष्ण, अञ्जनके समान नील, श्वेत, कृष्ण, हरित और चित्रवर्णकी आठ पताकाएँ आठ दिक्पालोंकी प्रसन्नताके लिये लगाये। सफेद और लाल चूर्णसे

वेदीके ऊपर कमलकी आकृति बनाये। **'वेद्या वेदिः॰'** (यजु॰ १९। १७) इस मन्त्रसे वेदीका स्पर्श करे। 'योगे योगेति॰' (यजु॰ ११। १४) इस मन्त्रसे उसपर पूर्वाग्र और उत्तराग्र कुशोंको बिछाये। वहाँ उत्तम बिछावन और दो तकियोंसे युक्त एक शय्या एवं विविध भक्ष्य पदार्थोंको मण्डपमें रखे। एक उत्तम श्वेत छत्र वहाँ स्थापित कर विचित्र दीपमालासे मण्डलको अलङ्कृत करे।

(अध्याय १३४)

साम्बोपाख्यानके प्रसंगमें सूर्यकी अभिषेक-विधि

नारदजी बोले—साम्ब! अब मैं भगवान् सूर्यके स्नपनकी विधि बताता हूँ। वेदपाठी, पवित्र आचारनिष्ठ, शास्त्रमर्मज्ञ, सूर्यभक्त भोजक अथवा अन्य ब्राह्मणोंके साथ मण्डलके ईशानकोणमें एक हाथ लंबा-चौड़ा और ऊँचा भद्रपीठ स्थापित कर देव-प्रतिमाको प्रासादमें लाये और प्रतिमाको उस पीठपर स्थापित करे। मार्गमें **'भद्रं कर्णेभिः॰'** आदि माङ्गलिक मन्त्रोंकी ध्वनि होती रहे तथा भाँति-भाँतिके वाद्य बजते रहें। अनन्तर समुद्र, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, चन्द्रभागा, सिन्धु, पुष्कर आदि तीर्थों, नदी, सरोवर, पर्वतीय झरनोंके जलसे भगवान् सूर्यको स्नान कराये। आठ ब्राह्मण और आठ भोजक सोनेके कलशोंके जलसे स्नान करायें। स्नानके जलमें रत्न, सुवर्ण, गन्ध, सर्वबीज, सर्वौषधि, पुष्प, ब्राह्मी, सुवर्चला (सूर्यमुखी), मुस्ता, विष्णुक्रान्ता, शतावरी, दूर्वा, मदार, हल्दी, प्रियंगु, वच आदि सभी ओषधियाँ डाले। कलशोंके मुखपर वट, पीपल और शिरीषके कोमल पल्लवोंको कुशके साथ रखे। भगवान् सूर्यको अर्घ्य देकर गायत्री-मन्त्रसे अभिमन्त्रित सोलह कलशोंसे स्नान कराये। सुवर्ण कलशके अभावमें चाँदी, ताँबा, मृत्तिकाके कलशोंसे ही स्नान कराना चाहिये। इसके अनन्तर पके ईंटोंसे बनी हुई वेदीके ऊपर कुश बिछाकर मूर्तिको दो वस्त्र पहनाकर स्थापित करना चाहिये। उस दिन व्रत रखे। मूर्ति स्थापित करनेके पश्चात् निम्न मन्त्रोंसे प्रतिमाका अभिषेक करे—

'देवश्रेष्ठ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवगण आकाश-गङ्गासे परिपूर्ण जलद्वारा आपका अभिषेक करें। दिवस्पते! भक्तिमान् मरुद्गण मेघजलसे परिपूर्ण द्वितीय कलशसे आपका अभिषेक करें। सुरोत्तम! विद्याधर सरस्वतीके जलसे परिपूर्ण तृतीय कलशके द्वारा आपका अभिषेक करें। देवश्रेष्ठ! इन्द्र आदि लोकपालगण समुद्रके जलसे परिपूर्ण चतुर्थ कलशसे आपका अभिषेक करें। नागगण कमलके परागसे सुगन्धित जलसे परिपूर्ण पञ्चम कलशसे आपका अभिषेक करें। हिमवान् एवं सुवर्णशिखरवाले सुमेरु आदि पर्वतगण दक्षिण-पश्चिममें स्थित छठे कलशके जलसे आपका अभिषेक करें। आकाशचारी सप्तर्षिगण पद्मपरागसे सुगन्धित सम्पूर्ण तीर्थ-जलोंसे परिपूर्ण सप्तम घटके द्वारा आपका अभिषेक करें। आठ प्रकारके मङ्गलसे समन्वित अष्टम कलशसे वसुगण आपका अभिषेक करें। हे देवदेव! आपको नमस्कार है[1]।'

इसी प्रकार एक ताम्रके पात्रमें पञ्चगव्य बनाकर स्नान कराये। वैदिक मन्त्रोंसे गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, कुशोदक लेकर ताम्रके नवीन पात्रमें पञ्चगव्य बनाकर सूर्यनारायणको स्नान कराये। मन्त्रसे गन्धयुक्त जलसे स्नान कराये, अनन्तर शुद्धोदक-स्नान कराये तथा रक्त वस्त्र एवं अलंकारसे अलंकृत कर इस प्रकार आवाहन करे—

१-देवास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुशिवादयः। व्योमगङ्गाम्बुपूर्णेन कलशेन सुरोत्तम॥
मरुतश्चाभिषिञ्चन्तु भक्तिमन्तो दिवस्पते। मेघतोयाभिपूर्णेन द्वितीयकलशेन तु॥
सारस्वतेन पूर्णेन कलशेन सुरोत्तम। विद्याधराभिषिञ्चन्तु तृतीयकलशेन तु॥
शक्राद्या अभिषिञ्चन्तु लोकपालाः सुरोत्तमाः। सागरोदकपूर्णेन चतुर्थकलशेन तु॥
वारिणा परिपूर्णेन पद्मरेणुसुगन्धिना। पञ्चमेनाभिषिञ्चन्तु नागास्त्वां कलशेन तु॥
हिमवद्धेमकूटाद्या अभिषिञ्चन्तु पार्वताः। नैर्ऋतोदकपूर्णेन षष्ठेन कलशेन तु॥
सर्वतीर्थाम्बुपूर्णेन पद्मरेणुसुगन्धिना। सप्तमेनाभिषिञ्चन्तु ऋषयः सप्त खेचराः॥
वसवश्चाभिषिञ्चन्तु कलशेनाष्टमेन वै। अष्टमङ्गलयुक्तेन देवदेव नमोऽस्तु ते॥

(ब्राह्मपर्व १३५। २१—२८)

एह्येहि भगवन् भानो लोकानुग्रहकारक।
यज्ञभागं गृहाण त्वमग्निदेव नमोऽस्तु ते॥

'भगवन्! लोकानुग्रहकारक भानो! आप आयें, इस यज्ञभागको ग्रहण करें, भगवान् सूर्यदेव! आपको नमस्कार है।'

तदनन्तर सुवर्णपात्रके द्वारा सूर्यदेवको अर्घ्य प्रदान करें। पहले मिट्टीके कलशसे, अनन्तर ताम्र-कलशसे फिर रजत-कलशसे और अन्तमें सुवर्णके कलशसे मन्त्रोंद्वारा अभिषेक करे। सम्पूर्ण तीर्थोदक और सर्वौषधिसे युक्त शङ्खको सूर्यदेवके मस्तकपर भ्रमण कराये और उसके जलसे स्नान कराये, अनन्तर पुष्प और धूप देकर जल, दूध, घृत, शहद और इक्षुरससे स्नान कराये।

इस प्रकारसे सूर्यदेवको स्नान करानेवाला पुरुष अग्निष्टोम, ज्योतिष्टोम, वाजपेय, राजसूय और अश्वमेध-यज्ञके फलको प्राप्त करता है। जो स्नानके समय सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक दर्शन करता है, वह भी पूर्वोक्त फल प्राप्त करता है। ऐसे स्थानमें स्नान कराना चाहिये जहाँ स्नानके जलका कोई लङ्घन न कर सके और स्नानके जल, दही, दूधको कुत्ता, कौआ आदि निन्दित जीव भक्षण न कर सकें।

इस प्रकारके स्नानविधिके सम्पादनके लिये जिस प्रकारके ब्राह्मण और भोजककी आवश्यकता होती है, उनका लक्षण सुनें—

वह व्यक्ति विकलाङ्ग अर्थात् न्यूनाधिक अङ्गवाला न हो। वेदादि-शास्त्रोंका ज्ञाता, सुन्दर, कुलीन और आर्यावर्त देशमें उत्पन्न हो। गुरुभक्त, जितेन्द्रिय, तत्त्ववेत्ता और सूर्यसम्बन्धी शास्त्रोंका ज्ञाता हो। ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणसे स्नान और प्रतिष्ठा करानी चाहिये। (अध्याय १३५)

भगवान् सूर्यकी प्रतिमाके अधिवासन और प्रतिष्ठाका विधान तथा फल

नारदजी बोले—साम्ब! अब मैं अधिवासनविधि कहता हूँ। पवित्र भूमिको लीपकर पाँच रंगोंसे चतुरस्र सुन्दर मण्डलकी रचना करे। पताका, ध्वज, तोरण, छत्र, पुष्पमाला आदिसे उसे अलंकृत कर मण्डलमें कुशा बिछाये और सूर्यदेवकी मूर्ति स्थापित करे। भगवान् सूर्यका आवाहन कर उन्हें अर्घ्य दे, मधुपर्क तथा वस्त्र, यज्ञोपवीत आदिसे पूजन करे और अव्यङ्ग अर्पण करे। जिस प्रकार देवताओंको पवित्रक अर्पण किया जाता है, वैसे ही प्रतिवर्ष श्रावण मासमें नवीन अव्यङ्गकी रचनाकर सूर्यनारायणको समर्पित करना चाहिये। इनका यह पवित्रक है। नवीन अव्यङ्गके समर्पणके समय ब्राह्मणोंको भोजन कराये। भगवान्‌की प्रतिमाको सुगन्धित द्रव्योंसे उपलिप्त कर पुष्पमाला चढ़ाये तथा धूप आदि दिखाये। **'नमः शम्भवाय०'** (यजु० १६।४१) इस मन्त्रसे भगवान्‌की प्रतिमाको शय्याके ऊपर शयन कराये। सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्तिके लिये इस प्रकार पाँच दिन, तीन दिन अथवा एक ही रात्रि प्रतिमाका अधिवासन करे[१]।

देवालयके ईशानकोणमें उत्तम स्थानके मध्यमें कुशा बिछाकर वहाँ शुक्ल वस्त्रोंसे सुसज्जित शय्या रखे। शय्याका सिरहाना पूर्वमुख रखा जाय। उसी शय्यापर भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको शयन कराये। उनके दाहिने भागमें निक्षुभा, वाम भागमें राज्ञी और चरणोंके समीप दण्डनायक तथा पिङ्गलको स्थापित करे। उस रात्रिमें सूर्यनारायणके समीप जागरण करे, वन्दी-चारणसे स्तुति, नृत्य, गीत आदि उत्सव कराये। प्रभात होते ही ऋग्वेदके विधानसे प्रतिमाका उद्बोधन करे और स्वस्तिवाचनपूर्वक भगवान्‌की पूजा कर ब्राह्मण तथा भोजकोंको हविष्यान्न भोजन कराये तथा उन्हें दक्षिणा देकर प्रसन्न करे। अनन्तर मन्दिरके गर्भगृहमें पिण्डिकाके ऊपर सात अश्वोंसे युक्त सुवर्णका रथ स्थापित कर सूर्यनारायणको अर्घ्य देकर मङ्गल वाद्योंके साथ जलधारा गिराये। फिर उत्तम मुहूर्त और स्थिर लग्नमें प्रतिमाकी स्थापना करे। प्रतिमाका मुख नीचे-ऊपर या अगल-बगल, तिरछा न हो, वरन् सीधा और सम रहे। भगवान् सूर्यकी प्रतिमाके दक्षिण-भागमें और वामभागमें क्रमशः निक्षुभा और राज्ञीकी प्रतिमा स्थापित करे। अनन्तर मोदक, शष्कुली, पायस, कृशर आदिसे इन्द्रादि दस दिक्पालोंका आवाहन तथा पूजन कर उन्हें बलि समर्पित करे।

इसके अनन्तर स्तुतियों तथा विविध उपचारोंसे

१-पाञ्चरात्र-आगमों तथा विविध प्रतिष्ठा-ग्रन्थोंमें अधिवासनकी विस्तृत विधियाँ निर्दिष्ट हैं।

सूर्यदेवका पूजनकर ब्राह्मणों और भोजकोंको भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा दे। इस प्रकार भक्तोंद्वारा भक्तिपूर्वक प्रतिमाकी स्थापना किये जानेपर, वह उनकी सभी प्रकार कल्याण, मङ्गल और सुख-समृद्धिकी वृद्धि करती है और उसमें भगवान् सूर्यका नित्य सांनिध्य रहता है। सूर्यकी स्थापना करनेवाला व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है और उसे सात जन्मोंतक आधि-व्याधियाँ भी नहीं सतातीं। तीन दिनोंतक प्रतिष्ठाके उत्सवोंमें सम्मिलित रहनेवाला व्यक्ति सूर्यलोकको जाता है। सूर्यनारायणकी प्रतिमाकी स्थापना करनेसे दस अश्वमेध तथा सौ वाजपेय-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। मन्दिरकी ईंट जबतक चूर्ण नहीं हो जाती, तबतक मन्दिर बनवानेवाला पुरुष स्वर्ग-सुख भोगता है। सूर्य-मन्दिरके जीर्णोद्धार करनेका पुण्य इससे भी अधिक है। जो पुरुष मन्दिरका निर्माण कराकर प्राणियोंकी सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयके हेतुभूत सुरश्रेष्ठ भगवान् सूर्यकी प्रतिमा स्थापित करता है, वह संसारके सब सुखोंको भोगकर सौ कल्पोंतक सूर्यलोकमें निवास करता है। मन्दिरमें इतिहास-पुराणका पाठ भी करना चाहिये।

इसी प्रकार अन्य देवताओंकी प्रतिमाओंका भी शय्याधिवास तथा उद्बोधन करे तथा शुभ मुहूर्तमें उन प्रतिमाओंको यथास्थान पिण्डिकापर स्थापित कर पूजन करे।

(अध्याय १३६-१३७)

ध्वजारोपणका विधान और फल

नारदजी बोले—साम्ब! अब मैं ब्रह्माजीद्वारा वर्णित ध्वजारोपणकी विधि बतलाता हूँ। पूर्वकालमें देवता और असुरोंमें जो भीषण युद्ध हुआ, उसमें देवताओंने अपने-अपने रथोंपर जिन-जिन चिह्नोंकी कल्पना की, वे ही उनके ध्वज कहलाये। उनका लक्षण इस प्रकार है—ध्वजका दण्ड सीधा, व्रणरहित और प्रासादके व्यासके बराबर लंबा होना चाहिये अथवा चार, आठ, दस, सोलह या बीस हाथ लंबा होना चाहिये। ध्वजाका दण्ड बीस हाथसे अधिक लंबा न हो और सम पर्वोंवाला हो। उसकी गोलाई चार अङ्गुल होनी चाहिये।

ध्वजके ऊपर देवताको सूचित करनेवाला चिह्न बनवाना चाहिये। भगवान् विष्णुके ध्वजपर गरुड, शिवजीकी ध्वजापर वृष, ब्रह्माजीकी ध्वजापर पद्म, सूर्यदेवकी ध्वजापर व्योम, सोमकी पताकापर नर, बलदेवकी पताकापर फालसहित हल, कामदेवकी पताकापर मकरध्वज, इन्द्रकी ध्वजापर हस्ती, दुर्गाकी ध्वजापर सिंह, उमादेवीकी ध्वजापर गोधा, रेवतकी ध्वजापर अश्व, वरुणकी ध्वजापर कच्छप, वायुकी ध्वजापर हरिण, अग्निकी ध्वजापर मेष, गणपतिकी ध्वजापर मूषकका तथा ब्रह्मर्षियोंकी पताकापर कुशका चिह्न बनाना चाहिये। जिस देवताका जो वाहन हो, वही ध्वजापर भी अङ्कित रहता है।

विष्णुकी ध्वजाका दण्ड सोनेका और पताका पीतवर्णकी होनी चाहिये, वह गरुड़के समीप रखनी चाहिये। शिवजीका ध्वजदण्ड चाँदीका और श्वेत वर्णकी पताका वृषके समीप स्थापित करे। ब्रह्माका ध्वजदण्ड ताँबेका और पद्मवर्णकी पताका कमलके समीप रखे। सूर्यनारायणका ध्वजदण्ड सुवर्णका और व्योमके नीचे पँचरंगी पताका होनी चाहिये, जिसमें किंकिणी लगी रहे एवं पुष्पमालाओंसे संयुक्त हो। इन्द्रका ध्वजदण्ड सोनेका और हस्तीके समीप अनेक वर्णकी पताका होनी चाहिये। यमका ध्वजदण्ड लोहेका और महिषके समीप कृष्णवर्णकी पताका रखनी चाहिये। कुबेरका ध्वजदण्ड मणिमय और मनुष्य-पादके समीप रक्त वर्णकी पताका रखे। बलदेवका ध्वजदण्ड चाँदीका और तालवृक्षके नीचे श्वेतवर्णकी पताका रखनी चाहिये। कामदेवका ध्वजदण्ड त्रिलौह (सोना, चाँदी और ताँबा-मिश्रित) का और मकरके समीप रक्तवर्णकी पताका स्थापित करनी चाहिये। कार्तिकेयका ध्वजदण्ड त्रिलौहका और मयूरके समीप चित्रवर्णकी पताका एवं गणपतिका ध्वजदण्ड ताम्रका अथवा हस्तिदन्तका एवं मूषकके समीप शुक्लवर्णकी पताका और मातृकाओंके ध्वजदण्ड अनेक रूपोंके तथा अनेक वर्णोंकी अनेक पताकाएँ होनी चाहिये। रेवन्तकी पताका अश्वके समीप लालवर्णकी, चामुण्डाका ध्वजदण्ड लौहका और मुण्डमालाके समीप नीले वर्णकी ध्वजा होनी चाहिये। गौरीका ध्वजदण्ड ताम्रका और इन्द्रगोप (बीरबहूटी कीट) के समान अतिशय रक्तवर्णकी ध्वजा होनी चाहिये। अग्निका ध्वजदण्ड सुवर्णका और मेषके

समीप अनेक वर्णकी पताका होनी चाहिये। वायुका ध्वजदण्ड लौहका और हरिणके समीप कृष्णवर्णकी पताका होनी चाहिये। भगवतीका ध्वजदण्ड सर्वधातुमय, उसके ऊपर सिंहके समीप तीन रंगकी पताका होनी चाहिये।

इस प्रकार ध्वजका पहिले निर्माणकर उसका अधिवासन करे। लक्षणके अनुसार वेदीका निर्माण करे, कलशकी स्थापना कर सर्वौषधि-जलसे ध्वजको स्नान कराये। वेदीके मध्यमें उसे खड़ाकर सभी उपचारोंसे उसकी पूजा करे और उसे पुष्पमाला पहिनाये, दिक्पालोंको बलि देकर एक राततक अधिवासन करे। दूसरे दिन भोजन कराकर शुभ मुहूर्तमें स्वस्तिवाचन आदि मङ्गल-कृत्य सम्पन्न कर ध्वजको मन्दिरके ऊपर आरूढ़ करे। ध्वजारोहणके समय अनेक प्रकारके वाद्योंको बजाये, ब्राह्मणगण वेद-ध्वनि करें। इस प्रकार देवालयपर ध्वजारोहण कराना चाहिये। ध्वजारोहण करानेवालेकी सम्पत्तिकी सदा वृद्धि होती रहती है और वह परम गतिको प्राप्त करता है। ध्वजरहित मन्दिरमें असुर निवास करते हैं, अतः ध्वजरहित मन्दिर नहीं रखना चाहिये। ध्वजारोहणके समय इन मन्त्रोंको पढ़ना चाहिये—

एह्येहि भगवन् देव देववाहन वै खग ॥
श्रीकरः श्रीनिवासश्च जय जैत्रोपशोभित ।
व्योमरूप महारूप धर्मात्मंस्त्वं च वै गतेः ॥
सांनिध्यं कुरु दण्डेऽस्मिन् साक्षी च ध्रुवतां व्रज ।
कुरु वृद्धिं सदा कर्तुः प्रासादस्यार्कवल्लभ ॥
ॐ एह्येहि भगवञ्छ्रीधरविनिर्मित उपरिचरवायुमार्गानुसारिञ्छ्रीनिवास रिपुध्वंस यक्षनिलय सर्वदेवप्रियं कुरु सांनिध्यं शान्तिं स्वस्त्ययनं च मे । भयं सर्वविघ्ना व्यपसरन्तु ॥

(ब्राह्मपर्व १३८ । ७३—७६)

स्वच्छ दण्डमें पताकाको प्रतिष्ठित करे तथा पताकाका दर्शन करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो रविका ध्वजारोपण करता है, वह श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर सूर्यलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १३८)

साम्बोपाख्यानमें मगोंका वर्णन

साम्बने कहा—नारदजी! आपकी कृपासे मुझे सूर्यभगवान्‌का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुआ, उत्तम रूप भी प्राप्त हुआ, किंतु मेरा मन चिन्तासे आकुल है, इस मूर्तिका पूजन और रक्षण कौन करेगा? इसे आप बतानेकी कृपा करें।

नारदजी बोले—साम्ब! इस कार्यको कोई भी ब्राह्मण स्वीकार नहीं करेगा, क्योंकि देवपूजा अर्थात् देवधनसे अपना निर्वाह करनेवाले ब्राह्मण देवलक कहे जाते हैं। जो लोग लोभवश देवधन और ब्राह्मण-धनको ग्रहण करते हैं, वे नरकमें जाते हैं, अतः कोई भी ब्राह्मण देवताका पूजक नहीं बनना चाहता। तुम भगवान् सूर्यकी शरणमें जाओ और उन्हींसे पूछो कि कौन उनका विधि-विधानसे पूजन करेगा? अथवा राजा उग्रसेनके पुरोहितसे कहो, सम्भव है कि वे इस कार्यको स्वीकार कर लें।

नारदजीकी इस बातको सुनकर जाम्बवतीपुत्र साम्ब उग्रसेनके पुरोहित गौरमुखके पास गये और उन्होंने उन्हें सादर प्रणामकर कहा—'महाराज! मैंने सूर्यभगवान्‌का एक विशाल मन्दिर बनवाया है, उसमें समस्त परिवार तथा परिच्छदों एवं पत्नियोंसहित उनकी प्रतिमा स्थापित की है और अपने नामसे वहाँ एक नगर भी बसाया है। आपसे मेरा यह विनम्र निवेदन है कि आप उन्हें ग्रहण करें।'

गौरमुखने कहा— साम्ब! मैं ब्राह्मण हूँ और आप राजा हैं। आपके द्वारा दिये गये इस प्रतिग्रहको लेनेपर मेरा ब्राह्मणत्व नष्ट हो जायगा। दान लेना ब्राह्मणका धर्म है, किंतु देवप्रतिग्रह ब्राह्मणको नहीं लेना चाहिये। आप यह दान किसी मगको दे दें, वही सूर्यदेवकी पूजाका अधिकारी है।

साम्बने पूछा— महाराज! मग कौन हैं? कहाँ रहते हैं? किसके पुत्र हैं? इनका क्या आचार है? आप कृपाकर बतायें।

गौरमुख बोले— मग भगवान् सूर्य (अग्नि) तथा निक्षुभाके पुत्र हैं। पूर्वजन्ममें निक्षुभा महर्षि ऋग्जिह्वकी अत्यन्त सुन्दर पुत्री थी। एक बार उससे अग्निका उल्लङ्घन हो गया। फलस्वरूप भगवान् सूर्य (अग्निस्वरूप) रुष्ट हो गये। बादमें अग्निरूप भगवान् सूर्यके द्वारा निक्षुभाका जो पुत्र हुआ, वही मग कहलाया। भगवान् सूर्यके वरदानसे ये ही अग्निवंशमें उत्पन्न अव्यङ्गको धारण करनेवाले मग सूर्यके परम भक्त हुए और सूर्यकी पूजाके लिये नियुक्त हुए। भगवान्

सूर्यकी पूजा करनेवाले मग शाकद्वीपमें निवास करते हैं, आप भगवान् सूर्यके पूजकके रूपमें उन्हें प्राप्त करनेके लिये शाकद्वीप जायँ।

अनन्तर साम्बने द्वारका जाकर अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णको सब समाचार सुनाया। फिर वे उनकी आज्ञा प्राप्तकर गरुड़पर सवार हो शीघ्र ही शाकद्वीप पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने अतिशय तेजस्वी महात्मा मगोंको सूर्य-भगवान्‌की आराधनामें संलग्न देखा। साम्बने उन्हें सादर प्रणामकर उनकी प्रदक्षिणा की।

साम्बने कहा—आपलोग धन्य हैं। आप सबका दर्शन सबके लिये कल्याणकारी है, आप लोग सदा भगवान् सूर्यकी आराधनामें लगे हुए हैं। मैं भगवान् श्रीकृष्णका पुत्र हूँ, मेरा नाम साम्ब है। मैंने चन्द्रभागा नदीके तटपर सूर्यदेवकी मूर्तिकी स्थापना की है। उनकी आज्ञाके अनुसार उनकी विधिवत् आराधनाके निमित्त शाकद्वीपसे जम्बूद्वीपमें ले जानेके लिये मैं आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। मेरी सविनय प्रार्थना है कि आपलोग कृपाकर जम्बूद्वीपमें पधारें और भगवान् सूर्यकी पूजा करें।

मगोंने कहा—'साम्ब! इस बातकी जानकारी भगवान् सूर्यने हमें पहले ही दे दी है।'

यह सुनकर साम्ब बहुत प्रसन्न हुए और गरुडपर उन्हें बैठाकर वहाँसे मित्रवन (मूलस्थान—मुल्तान) ले आये। सूर्यभगवान् मगोंको वहाँ उपस्थित देखकर बहुत प्रसन्न हुए और साम्बसे बोले—'साम्ब! अब तुम चिन्ता छोड़ दो, ये मग मेरी विधिवत् पूजा सम्पन्न करेंगे।'

इस प्रकार साम्बने शाकद्वीपसे अव्यङ्ग धारण करनेवाले मगोंको लाकर धन-धान्यसे परिपूर्ण इस साम्बपुरको उन्हें समर्पित कर दिया। वे सब भगवान् सूर्यकी सेवामें तत्पर हो गये और साम्ब भी सूर्यदेव एवं मगोंको प्रणामकर आनन्द-चित्तसे द्वारका लौट आये। (अध्याय १३९—१४१)

अव्यङ्गका लक्षण और उसका माहात्म्य

एक बार साम्बने महर्षि व्याससे मगोंद्वारा धारण किये जानेवाले अव्यङ्गके[1] विषयमें जिज्ञासा की।

व्यासजीने कहा—साम्ब! मैं तुम्हें अव्यङ्गके विषयमें बताता हूँ, उसे सुनो। देवता, ऋषि, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष और राक्षस ऋतु-क्रमसे भगवान् सूर्यके रथके साथ रहते हैं। यह रथ वासुकि नामक नागसे बँधा रहता है। किसी समय वासुकि नागका कंचुक (केंचुल) उतरकर गिर पड़ा। नागराज वासुकिके शरीरसे उत्पन्न उस निर्मोक (केंचुल) को भगवान् सूर्यने सुवर्ण और रत्नोंसे अलंकृतकर अपने मध्य भागमें धारण कर लिया। इसीलिये भगवान् सूर्यके भक्त अपने देवकी प्रसन्नताके लिये अव्यङ्ग धारण करते हैं। उसके धारण करनेसे भोजक पवित्र हो जाते हैं और उसपर सूर्यभगवान्‌का अनुग्रह भी होता है।

इस अव्यङ्गको सर्पके केंचुलकी तरह मध्यमें पोला अर्थात् खाली रखना चाहिये। यह एक वर्णका होना चाहिये। कपासके सूतसे बना अव्यङ्ग दो सौ अङ्गुलका उत्तम, एक सौ बीसका मध्यम और एक सौ आठ अङ्गुलका कनिष्ठ होता है, अतः इससे छोटा नहीं होना चाहिये। यज्ञोपवीतकी तरह आठवें वर्षमें अव्यङ्ग धारण करना चाहिये। भोजकोंके लिये यह मुख्य संस्कार है। इसके धारण करनेसे वह सभी क्रियाओंका अधिकारी होता है। यह अव्यङ्ग सर्वदेवमय, सर्ववेदमय, सर्वलोकमय और सर्वभूतमय है। इसके मूलमें विष्णु, मध्यमें ब्रह्मा और अन्तमें शशाङ्कमौलि भगवान् शिव निवास करते हैं। इसी तरह ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद क्रमशः मूल, मध्य और अग्रभागमें रहते हैं, अथर्ववेद ग्रन्थिमें स्थित रहता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक आदि सातों लोक अव्यङ्गमें निवास करते हैं। सूर्यभक्त भोजकको सभी समय अव्यङ्ग धारण कर भगवान् सूर्यकी उपासना करनी चाहिये।

(अध्याय १४२)

१-अहेरङ्गात् समुत्पन्नो ह्यव्यङ्गस्तु ततः स्मृतः ॥ (ब्राह्मपर्व १४२। १५)

साम्बोपाख्यानमें भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करने और धूप दिखानेकी महिमा

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! इस प्रकार व्यासजीके द्वारा अव्यङ्गके विषयमें जानकारी प्राप्त कर साम्ब नारदजीके पास वापस लौट आये और उन्होंने उनसे सब वृत्तान्त बताकर पूछा—'देवर्षे! भोजकोंको भगवान् सूर्यको स्नान, अर्घ्य, आचमन, धूप आदि किस प्रकार समर्पित करना चाहिये?' इसका आप कृपाकर वर्णन करें।

नारदजी बोले—साम्ब! संक्षेपमें मैं वह विधि बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। सर्वप्रथम शौचादिसे निवृत्त होकर आचमनपूर्वक नदीमें या जलाशय आदिमें स्नान करना चाहिये। अनन्तर स्वर्णदान कर तीन बार आचमन करे। शुद्ध वस्त्र पहनकर पवित्री धारणकर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख हो आचमन करना चाहिये। तदनन्तर दो बार मार्जन और तीन बार अभ्युक्षण करे। आचमनके बिना की गयी क्रिया निष्फल होती है एवं इसके बिना पुरुष शुद्ध भी नहीं होता। वेदमें कहा गया है कि देवता पवित्रताको ही चाहते हैं। आचमन करनेके बाद मौन होकर देवालयमें जाना चाहिये। आसनपर बैठकर प्राणायाम कर सिरको कपड़ेसे आच्छादित करे तथा विविध पुष्पोंसे सूर्यभगवान्‌की पूजा करे। व्याहृतिपूर्वक गायत्री-मन्त्रसे गुग्गुलका धूप दे। फिर भगवान् सूर्यके मस्तकपर पुष्पाञ्जलि अर्पित करे।

रक्तचन्दन, पद्म, करवीर, कुंकुम आदिको जलमें मिलाकर ताम्रके पात्रसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये। अर्घ्यपात्रको हाथमें उठाकर भगवान् सूर्यका आवाहन करे तथा दोनों जानुओंपर बैठकर भगवान् सूर्यका अपने हृदयमें ध्यान करते हुए नीचे लिखे मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे—

एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पां हि मे कृत्वा गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥

तदनन्तर इस प्रकार प्रार्थना करे—

अर्चितस्त्वं यथाशक्त्या मया भक्त्या विभावसो।
ऐहिकामुष्मिकीं नाथ कार्यसिद्धिं ददस्व मे॥

(ब्राह्मपर्व १४३।४७)

तीनों काल स्नानकर इस प्रकार जो भगवान् सूर्यकी आराधना करता है और धूप देता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है और उसे धन, पुत्र तथा आरोग्यकी भी प्राप्ति हो जाती है एवं अन्तमें वह भगवान् सूर्यमें लीन हो जाता है। उत्तम पुष्पोंके न मिलनेपर पत्रोंसे ही पूजन करे। धूप ही दे या भक्तिपूर्वक जल ही सूर्यको समर्पित करे। यदि यह भी न हो सके तो प्रणाम ही करे। प्रणाम करनेमें असमर्थ हो तो मानसी पूजा करे। यह विधि द्रव्यके अभावमें करनी चाहिये, द्रव्य रहनेपर विधिपूर्वक सभी सामग्रियोंसे पूजन करे। भक्तिपूर्वक सूर्यभगवान्‌की पूजा देखनेवालेको भी अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है और सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। धूप-दानके समय सूर्यका दर्शन करनेपर उत्तम गति प्राप्त होती है। (अध्याय १४३)

सूर्यमण्डलस्थ पुरुषका वर्णन

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! एक बार व्यासजी शङ्ख-चक्र-गदाधारी नारायण भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये द्वारका आये। महातेजस्वी श्रीकृष्णने पाद्य, अर्घ्य, आचमन आदिसे उनका पूजन कर आसनपर उन्हें बैठाया और प्रणाम कर साम्बद्वारा लाये गये भोजकोंकी महिमा तथा उनकी सूर्यभक्तिके विषयमें जिज्ञासा प्रकट की।

भगवान् वेदव्यास बोले—भोजक भगवान् सूर्यके अनन्य उपासक हैं और अन्तमें ये भगवान् सूर्यकी दिव्य तेजस्वी कलामें प्रविष्ट होते हैं। भगवान् भास्करकी तीन कलाएँ हैं। सूर्यनारायणकी प्रथम कला अग्निमें स्थित है, उससे सभी कर्मोंकी सिद्धि होती है। दूसरी प्रकाशिका कला आकाशमें स्थित है। तीसरी कला सूर्यमण्डलमें है। सवितादेवका यह मण्डल अजर एवं अव्यय है। इस मण्डलके मध्यमें सदसदात्मक वह परमात्मा पुरुष-रूपमें स्थित है। वह पुरुष क्षर-अक्षररूपमें है, इसको महासूर्य कहते हैं। इसके निष्कल और सकल दो भेद हैं। तत्त्वोंके साथ सभी भूतोंमें अवस्थित वह परमात्मा सकल कहा जाता है और तत्त्वहीन होनेपर निष्कल। तृण, गुल्म, लता, वृक्ष, सिंह, वृक, हाथी, पक्षी,

देवता, सिद्ध, मनुष्य, जल-जन्तु आदि सभीकी अन्तरात्मामें वह व्याप्त है। जब वह परमात्मा दूसरी कलामें स्थित होता है, तब वृष्टि आदि करता है। तीसरी तैजस कलामें स्थित होकर अपने भक्तोंको मोक्ष देता है, जिस मोक्षपदको प्राप्तकर वह परम शान्ति प्राप्त करता है।

यह परमात्मा ओंकारस्वरूप है, ओंकारकी साढ़े तीन मात्राएँ हैं, इनमें अर्धमात्रा मकारका जो ध्यान करता है, उसको सदसदात्मक ज्ञान होता है। सूर्यनारायणका रूप मकार है, मकारका ध्यान करनेसे ही ये मग कहे जाते हैं। धूप, माल्य आदिसे सूर्यनारायणका पूजन कर ये विविध पदार्थोंका भोजन कराते हैं, अतः उनकी भोजक संज्ञा है।

(अध्याय १४४)

भगवान् व्यासद्वारा योग-ज्ञानका वर्णन

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महामुने! कृपाकर आप भोजकोंके सभी ज्ञानोंकी उपलब्धिका वर्णन करें।

व्यासजीने कहा—यह शरीर अस्थियोंपर ही खड़ा है, स्नायुओंसे बँधा, चमड़ेसे ढका एवं रक्त-मांससे उपलिप्त है। मल-मूत्र आदि दुर्गन्ध-युक्त पदार्थोंसे भरा है। यह समस्त रोगोंका घर है और इसमें (भीतर) वृद्धावस्था और शोक छिपे हैं, जो अपने-अपने समयपर प्रकट होते रहते हैं। यह शरीर रजोगुण आदि गुणोंसे भरा है, अनित्य है और इसमें भूतसंघोंका आवास बना है। अतः इसमें आसक्तिका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये[1]।

वृक्षोंके नीचे निवास करना, भोजनके लिये मिट्टीका भिक्षापात्र रखना, साधारण वस्त्र पहनना और किसीसे सहायता न लेना तथा सभी प्राणियोंमें समभाव रखना—यही जीवन्मुक्त पुरुषके लक्षण हैं।

जैसे तिलमें तैल, गायमें दूध, काष्ठमें अग्नि स्थित है, वैसे ही परमात्मा समस्त प्राणियोंमें स्थित हैं। ऐसा समझकर उसकी प्राप्तिका उपाय करना चाहिये। प्रथम प्रमथन स्वभाववाले तथा चञ्चल मनको प्रयत्नपूर्वक वशमें कर बुद्धि और इन्द्रियोंको वैसे ही रोकना चाहिये जैसे पिंजरेमें पक्षियोंको रोका जाता है। इन संयत इन्द्रियोंके द्वारा इस शरीरको अमृतकी धाराके समान तृप्ति होती है[2]। प्राणायामसे शारीरिक दोष, धारणासे पूर्वजन्मार्जित तथा वर्तमानतकके सभी पाप, प्रत्याहारसे संसर्गजनित दोष एवं ध्यानसे जैविक दोषोंका त्यागकर ईश्वरीय गुणोंको प्राप्त करना चाहिये। जैसे आगके तापमें रखनेसे धातुओंके दोष दग्ध हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायामके द्वारा साधकके इन्द्रियजनित दोष दग्ध हो जाते हैं। जैसे एक हाथसे दूसरे हाथको दबाया जाता है, वैसे ही अपनी शुद्ध बुद्धिके द्वारा मनको एवं चित्तको शुद्ध कर पवित्र भावनाओंके द्वारा दुर्व्यसनोंको शान्तकर मन-बुद्धिको अत्यन्त पवित्र कर लेना चाहिये। अतः चित्तकी शुद्धिके लिये प्रयास करना चाहिये। चित्तकी शुद्धि होनेसे शुभ और अशुभ कर्मोंका ज्ञान होता है। शुभ और अशुभ कर्मोंसे छुटकारा प्राप्त कर साधक निर्द्वन्द्व, निर्मम, निष्परिग्रह और निरहंकार होकर मोक्षको प्राप्त कर लेता है[3]।

१-अस्थिस्थूलं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम्। चर्मावनद्धं दुर्गन्धिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः॥
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम्। रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत्॥ (ब्राह्मपर्व १४५। २-३)

२-तिले तैलं गवि क्षीरं काष्ठे पावकसंततिः। उपायं चिन्तयेदस्य धिया धीरः समाहितः॥
प्रमाथि च प्रयत्नेन मनः संयम्य चञ्चलम्। बुद्धीन्द्रियाणि संयम्य शकुनानिव पंजरे॥ (ब्राह्मपर्व १४५। ५-६)

३-इन्द्रियैर्नियतैर्देही धाराभिरिव तृप्यते। सततममृतस्यैव जनार्दन महामते॥
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्। प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥
ध्मायमानस्य दह्यन्ते धातो दोषा यथाग्निना। तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणनिग्रहात्॥
चित्तं चित्तेन संशोध्य भावं भावेन शोधयेत्। मनस्तु मनसा शोध्य बुद्धिं बुद्ध्या तु शोधयेत्॥
चित्तस्यातिप्रसादेन भाति कर्म शुभाशुभम्। शुभाशुभविनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः॥
निर्ममो निरहंकारस्ततो याति परां गतिम्॥

(ब्राह्मपर्व १४५। ७—११)

सूर्यका पूर्वाह्णमें रक्तवर्ण, ऋग्वेद-स्वरूप तथा राजसरूप होता है। मध्याह्नमें शुक्लवर्ण, यजुर्वेद-स्वरूप एवं सात्त्विक रूप होता है। सायंकालमें कृष्णवर्ण, सामवेदस्वरूप तथा तामसरूप होता है। इन तीनोंसे भिन्न ज्योतिःस्वरूप, सूक्ष्म और निरञ्जनस्वरूप चतुर्थ स्वरूप है। पद्मासनमें बैठकर सुषुम्णा नाडी-मार्गमें चित्तको स्थिर कर प्रणवसे पूरक, कुम्भक और रेचक-रूप प्राणायाम कर पैरके अँगूठेके अग्रभागसे लेकर मस्तकपर्यन्त न्यास करे। नाभिमें अग्निका, हृदयमें चन्द्रमाका और मस्तकमें अग्निशिखाका न्यास करना चाहिये। इन सबसे ऊपर सूर्यमण्डलका न्यास करे—यह चतुर्थ स्थान है, इस स्थानको मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषको अवश्य जानना चाहिये। ऋषिगण सूर्यभगवान्‌के इसी तुरीय स्थानमें मनको लीनकर मुक्त हो जाते हैं। मग भी इसी स्थानका ध्यान कर मोक्षके भागी होते हैं। इस ज्ञानको सुनाकर भगवान् वेदव्यास बदरिकाश्रमकी ओर चले गये।

(अध्याय १४५)

उत्तम एवं अधम भोजकोंके लक्षण

राजा शतानीकने पूछा—मुने ! भगवान् सूर्यकी पूजा करनेवाले भोजक दिव्य, उनसे उत्पन्न एवं उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। इसलिये वे पूज्य हुए किंतु वे अभोज्य कैसे कहलाते हैं, इस विषयमें आप बतलायें ?

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! मैं इस विषयमें भगवान् वासुदेव तथा कृतवर्माके द्वारा हुए संवादको अत्यन्त संक्षेपमें बतला रहा हूँ। किसी समय नारद और पर्वत—ये दोनों मुनि साम्बपुर गये। वहाँ उन्होंने भोजकोंके यहाँ भोजन किया, अनन्तर वे दोनों विमानपर आरूढ़ हो द्वारकापुरीमें आ गये। उनके विषयमें कृतवर्माको शंका हुई कि सूर्यके पूजक होनेसे भोजकोंका अन्न अग्राह्य है, फिर नारद तथा पर्वत—इन दोनोंने उनका अन्न कैसे ग्रहण किया ? इसपर वासुदेवने कृतवर्मासे कहा—जो भोजक अव्यङ्ग धारण नहीं करते और बिना अव्यङ्गके तथा बिना स्नान किये भगवान् सूर्यकी पूजा करते हैं और शूद्रका अन्न ग्रहण करते हैं तथा देवार्चाका परित्याग कर कृषि-कार्य करते हैं, जिनके जातकर्मादि संस्कार नहीं हुए हैं, शङ्ख धारण नहीं करते, मुण्डित नहीं रहते—वे भोजकोंमें अधम हैं। ऐसे भोजकद्वारा किये गये देवार्चन, हवन, स्नान, तर्पण, दान तथा ब्राह्मण-भोजन आदि सत्कर्म भी निष्फल होते हैं। इसीसे अशुचि होनेके कारण वे अभोज्य कहे गये हैं। भगवान् सूर्यके नैवेद्य, निर्माल्य, कुंकुम आदि शूद्रोंके हाथ बेचनेवाले, भगवान् सूर्यके धनको अपहृत करनेवाले भोजक उन्हें प्रिय नहीं हैं तथा वे भोजकोंमें अधम हैं। जो भोजक भगवान्‌को भोग लगाये बिना भोजन कर लेते हैं, उनका वह भोजन उन्हें नरक प्राप्त करानेवाला बन जाता है। अतः भगवान् सूर्यको अर्पण करके ही नैवेद्य भक्षण करना चाहिये, इससे शरीरकी शुद्धि होती है।

वासुदेवने पुनः बतलाया—कृतवर्मन् ! भोजकोंकी प्रियताके विषयमें भगवान् सूर्यने अरुणको जो बतलाया, उसे आप सुनें—

जो भोजक पर-स्त्री तथा पर-धनका हरण करते हैं, देवताओं तथा वेदोंके निन्दक हैं, वे मुझे अप्रिय हैं। उनके द्वारा की गयी पूजा तथा प्रदान किये गये अर्घ्यको मैं ग्रहण नहीं करता। जो भगवती महाश्वेताका यजन नहीं करते एवं सूर्य-मुद्राओंको नहीं जानते तथा मेरे पार्षदोंका नाम नहीं जानते, वे मेरी पूजा करनेके अधिकारी नहीं हैं और न मेरे प्रिय हैं।

इसके विपरीत देव, द्विज, मनुष्य, पितरोंकी पूजा करनेवाले, मुण्डित सिरवाले, अव्यङ्ग धारण करनेवाले, शङ्ख-ध्वनि करनेवाले, क्रोधरहित, तीनों कालमें स्नान एवं पूजन करनेवाले भोजक मुझे अत्यन्त प्रिय हैं एवं मेरे पूजनके अधिकारी हैं। जो रविवारके दिन षष्ठी तिथि पड़नेपर नक्तव्रत तथा सप्तमी एवं संक्रान्तिमें उपवास करते हैं एवं मुझमें विशेष भक्ति रखते हुए मेरे भक्त ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं तथा देव, ऋषि, पितर, अतिथि और भूत-यज्ञ—इन पाँचोंका अनुष्ठान करते हैं, एकभुक्त होकर सूर्यपूजा करते हैं तथा सांवत्सरिक, पार्वण, एकोद्दिष्ट आदि श्राद्ध सम्पन्न करते हैं और उन तिथियोंमें दान देते हैं, वे भोजक मुझे अत्यन्त प्रिय हैं तथा जो भोजक माघ मासकी सप्तमीको करवीर-पुष्प, रक्तचन्दन, मोदकका नैवेद्य, गुग्गुल धूप, दूध, शङ्खादि वाद्य-ध्वनि, पताका तथा छत्रादिसे मेरी पूजा करते हैं, घृतकी आहुति देकर हवन करते हैं तथा पुराणवाचक ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, वे मुझे प्रिय हैं। इतना कहकर भगवान् सूर्यदेव सुमेरु गिरिकी

और बढ़ गये।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! अधिक कहनेसे क्या लाभ, क्योंकि जैसे वेदसे श्रेष्ठ अन्य कोई शास्त्र नहीं, गङ्गाके समान कोई नदी नहीं, अश्वमेधके समान कोई यज्ञ नहीं, पुत्र-प्राप्तिके समान कोई सुख नहीं, माताके समान कोई आश्रय नहीं और भगवान् सूर्यके समान कोई देवता नहीं, वैसे ही भोजकोंके समान भगवान् सूर्यके अन्य कोई प्रिय नहीं है।

(अध्याय १४६-१४७)

भगवान् सूर्यके कालात्मक चक्रका वर्णन

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! एक बार महातेजस्वी साम्बने अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णके हाथमें ज्वाला-मालाओंसे प्रदीप्त सुदर्शनचक्रको देखकर पूछा—'देव! आपके हाथमें जो यह सूर्यके समान चक्र दिखलायी दे रहा है, यह आपको कैसे प्राप्त हुआ तथा भगवान् सूर्यके चक्रको कमलकी उपमा कैसे दी गयी है? इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाबाहो! तुमने अच्छी बात पूछी है, इसे मैं संक्षेपमें बतला रहा हूँ। मैंने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक दिव्य हजार वर्षोंतक भगवान् सूर्यकी आराधना कर इस चक्रको प्राप्त किया है। भगवान् भास्कर आकाशमें विचरण करते रहते हैं, जिनके रथ-चक्रके नाभिमण्डलमें चन्द्र आदि ग्रह अवस्थित हैं। अरोंमें द्वादश आदित्य बतलाये गये हैं, पृथ्वी आदि तत्त्व मार्गमें पड़नेवाले तत्त्व हैं, इन तत्त्वोंसे यह कलात्मक चक्र व्याप्त है। भगवान् सूर्यने अपने इस चक्रके समान ही दूसरा चक्र मुझे प्रदान किया है।

इस कमलरूप चक्रके षट्दल ही छः ऋतुएँ हैं। कमलके मध्यमें जो पुरुष अधिष्ठित हैं, वे ही भगवान् सूर्य हैं। जो भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीन काल कहे गये हैं, वे चक्रकी तीन नाभियाँ हैं। बारह महीने अरे तथा पक्ष परिधियाँ हैं, नेमियाँ दक्षिणायन तथा उत्तरायण दो अयन हैं, नक्षत्र, ग्रह तथा योग आदि भी इसी चक्रमें अवस्थित हैं। स्थूल और सूक्ष्मके भेदसे यह चक्र सर्वत्र व्याप्त है।

दुष्टोंका दमन करनेके लिये मैंने इस चक्रको आराधनाके द्वारा भगवान् सूर्यसे प्राप्त किया है। इसलिये ग्रहों और तत्त्वोंसे समन्वित इस चक्रकी मैं निरन्तर पूजा करता रहता हूँ। जो चक्रमें स्थित भगवान् सूर्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह तेजमें भगवान् सूर्यके समान हो जाता है। सप्तमीको जो भगवान् सूर्यका चक्र अङ्कित कर उनकी रक्तचन्दन, करवीर-पुष्प, कुंकुम, रक्त कमल, धूप, दीप, नैवेद्य, चामर, छत्र एवं फल आदिसे पूजा करता है तथा विविध नैवेद्योंका भोग लगाता है, पुण्य कथाओंका श्रवण करता है, वह अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार जो संक्रान्ति तथा ग्रहण आदिमें चक्रकी पूजा करता है, उसके ऊपर सभी ग्रह प्रसन्न हो जाते हैं, वह सम्पूर्ण रोगों और दुःखोंसे रहित हो जाता है तथा समस्त ऐश्वर्योंसे युक्त होकर चिरजीवी होता है। (अध्याय १४८)

सूर्यचक्रका निर्माण और सूर्य-दीक्षाकी विधि

साम्बने पूछा—भगवन्! भगवान् सूर्यके चक्रका और उसमें स्थित पद्मका कितने विस्तारमें किस प्रकार निर्माण करना चाहिये तथा नेमि, अर और नाभिका विभाग किस प्रकार करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—साम्ब! चक्र चौंसठ अङ्गुलका और नेमि आठ अङ्गुलकी बनानी चाहिये। नाभिका विस्तार भी आठ अङ्गुलका होना चाहिये और पद्म नाभिका तीन गुना अर्थात् चौबीस अङ्गुलका होना चाहिये। कमलमें नाभि, कर्णिका और केसर भी बनाने चाहिये। नाभिसे कमलकी ऊँचाई अधिक होनी चाहिये। वहींपर द्वारके कोणमें कमल-पुष्पके मुखकी कल्पना करनी चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्रके लिये चार द्वारोंकी कल्पना करनी चाहिये। द्वारोंको बनानेके पश्चात् ब्रह्मा आदि देवताओंका उनके नाम-मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक आवाहन कर पूजन करना चाहिये।

अर्क-मण्डलकी पूजाके लिये इस यज्ञ-क्रियाके अनुरूप दीक्षित होना चाहिये, भगवान् सूर्यने इसे मुझसे पूर्वकालमें कहा था।

साम्बने पूछा—भगवन्! सूर्यचक्र-यज्ञके लिये देवताओंने किन मन्त्रोंको कहा है? तथा यज्ञके स्वरूप और क्रमको भी आप बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सौम्य ! सूर्यनारायणके चक्रमें कमल बनाकर पूर्वकी भाँति हृदयमें स्थित भगवान् सूर्यका 'खखोल्क' नामसे कमलकी कर्णिका-दलोंमें नाममन्त्र-पूर्वक चतुर्थ्यन्त विभक्ति और क्रिया लगाते हुए **'नमः'** लगाकर अङ्गन्यास एवं हृदयादि न्यास तथा पूजन करना चाहिये। हवन करते समय नामके अन्तमें **'स्वाहा'** शब्दका प्रयोग करना चाहिये। यथा—**'ॐ खखोल्काय स्वाहा।''ॐ खखोल्काय विद्महे दिवाकराय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।'** इन चौबीस अक्षरोंवाली सूर्यगायत्रीका जप सभी कर्मोंमें करना चाहिये, अन्यथा कर्मोंका फल प्राप्त नहीं होता। यह सूर्यगायत्री ब्रह्मगोत्रवाली सर्वतत्त्वमयी तथा परम पवित्र है एवं भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय है, इसलिये प्रयत्नपूर्वक मन्त्रके ज्ञान और कर्मकी विधिको जानना चाहिये। इससे अभीष्ट मनोरथ सिद्ध होता है।

साम्बने पूछा—भगवन् ! आदित्य-मण्डलमें किसकी, किस कार्यके लिये और कैसी दीक्षा होनी चाहिये ? इसे बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और कुलीन शूद्र, पुरुष अथवा स्त्री भी सूर्य-मण्डलमें दीक्षाके अधिकारी हैं। सूर्यशास्त्रके जाननेवाले सत्यवादी, शुचि, वेदवेत्ता ब्राह्मणको गुरु बनाना चाहिये और भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम करना चाहिये। षष्ठी तिथिमें पूर्वोक्त विधिके अनुसार अग्नि-स्थापन कर विधिपूर्वक सूर्य तथा अग्निकी पूजा करके हवन करना चाहिये। तदनन्तर गुरु पवित्र शिष्यको कुशों और अक्षतोंके द्वारा उसके प्रत्येक अङ्गमें सूर्यकी भावना कर उसका स्पर्श करे। शिष्य वस्त्रादिसे अलंकृत होकर पुष्प, अक्षत, गन्ध आदिसे भगवान् सूर्यकी पूजा करे तथा बलि भी दे। आदित्य, वरुण, अग्नि आदिका अपने हृदयमें ध्यान करे। घी, गुड़, दधि, दूध, चावल आदि रखकर तीन बार जलसे अग्निको सिंचितकर अग्निमें पुनः हवन करे। उसके बाद गुरु शिष्टाचार-स्वरूप शिष्यको दातून दे। वह दातून दूधवाले वृक्षका हो और उसकी लंबाई बारह अङ्गुल होनी चाहिये। दातून करनेके पश्चात् उसे पूर्व-दिशामें फेंक देना चाहिये, उस दिशामें देखे नहीं। पूर्व, पश्चिम और ईशान कोणकी ओर मुख करके दातून करना शुभ होता है और अन्य दिशाओंमें दातून करना अशुभ माना गया है।

निन्दित दिशामें दन्तधावनसे जो दोष लगता है, उसकी शान्तिके लिये पूजन-अर्चन करना चाहिये। पुनः गुरु शिष्यके अङ्गोंका स्पर्श करे। सूर्यगायत्रीका जपपूर्वक उसके आँखोंका स्पर्श करे। इन्द्रियसंयमके लिये शिष्यसे संकल्प कराये। तदनन्तर आशीर्वाद देकर उसे शयन करनेकी आज्ञा दे। दूसरे दिन आचमनकर सूर्यको प्रातःकाल नमस्कार कर अग्नि-स्थापन करे और हवन करे। स्वप्नमें कोई शुभ संवाद सुने अथवा दिनमें यदि कोई अशुभ लक्षण दिखायी पड़े तो सूर्यनारायणको एक सौ आहुति दे। स्वप्नमें यदि देवमन्दिर, अग्नि, नदी, सुन्दर उद्यान, उपवन, पत्र, पुष्प, फल, कमल, चाँदी आदि और वेदवेत्ता ब्राह्मण, शौर्यसम्पन्न राजा, धनाढ्य क्षत्रिय, सेवामें संलग्न कुलीन शूद्र, तत्त्वको जाननेवाला, सुन्दर भाषण देनेवाला अथवा उत्तम वाहनपर सवार, वस्त्र, रत्न आदिकी प्राप्ति, वाहन, गाय, धान्य आदि उपकरण अथवा समृद्धिकी प्राप्ति आदि स्वप्नमें दिखायी दे तो उस स्वप्नको शुभ मानना चाहिये। शुभ कर्म दिखायी पड़े तो सब कार्य शुभ ही होते हैं। अनिष्टकारक स्वप्न दिखायी पड़नेपर सप्तमीको सूर्यचक्र लिखकर सूर्यदेवकी पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मणों तथा गुरुको संतुष्ट करना चाहिये। आदित्यमण्डल पवित्र और सभीको मुक्ति प्रदान करनेवाला है। इसलिये अपने मनमें ही आदित्य-मण्डलका ध्यान कर एक सौ आहुति देनी चाहिये। इस क्रमसे दीक्षा-विधि और मन्त्रका अनुसरण करते हुए आदित्यमण्डलपर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। इससे व्यक्तिके कुलका उद्धार हो जाता है। सूर्यप्रोक्त पुराणादिका श्रवण करना चाहिये। पूजनके बाद विसर्जन करे। सूर्यका दर्शन करनेके पश्चात् ही भोजन करना चाहिये। प्रतिमाकी छायाका और न ही ग्रह-नक्षत्र-योग और तिथिका लङ्घन करना चाहिये। सूर्य अयन, ऋतु, पक्ष, दिन, काल, संवत्सर आदि सभीके अधिपति हैं और वे सभीके पूज्य तथा नमस्कार करने योग्य हैं। सूर्यकी स्तुति, वन्दना और पूजा सदा करनी चाहिये। मन, वाणी और कर्मसे देवताओंकी निन्दाका परित्याग करना चाहिये। हाथ-पाँव धोकर, सभी प्रकारके शोकको त्यागकर शुद्ध अन्तःकरणसे सूर्यको नमस्कार करना चाहिये। इस प्रकार संक्षेपसे मैंने सूर्य-दीक्षाकी विधिको कहा है, जो सुखभोग और मुक्तिको प्रदान करनेवाली है। (अध्याय १४९)

भगवान् आदित्यकी सप्तावरण-पूजन-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— वत्स ! अब मैं दिवाकर भगवान् सूर्यनारायणकी पूजा-विधि बतलाता हूँ। एक वेदीपर अष्टदल-कमलयुक्त मण्डल बनाकर उसमें कालचक्रकी कल्पना करनी चाहिये। उसे बारह अरोंसे युक्त होना चाहिये। ये ही सर्वात्मा, सभी देवताओंमें श्रेष्ठ, उज्ज्वल किरणोंसे युक्त खखोल्क नामक भगवान् सूर्यदेव हैं। इसमें हजार किरणोंसे युक्त चतुर्बाहु भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। इनके पश्चिममें अरुण, दक्षिणमें निक्षुभा देवी, दक्षिणमें ही रेवन्त तथा उत्तरमें पिंगलकी पूजा करनी चाहिये और वहीं संज्ञाकी भी पूजा करनी चाहिये। अग्निकोणमें लेखककी, नैर्ऋत्यमें अश्विनीकुमारोंकी और वायव्यकोणमें वैवस्वत मनुकी तथा ईशानकोणमें लोकपावनी देवी यमुनाकी पूजा करनी चाहिये। द्वितीय आवरणमें पूर्वमें आकाशकी, दक्षिणमें देवोंकी, पश्चिममें गरुडकी और उत्तरमें नागराज ऐरावतकी पूजा शुभ होती है। अग्निकोणमें हेलि, नैर्ऋत्यकोणमें प्रहेलि, वायव्यमें उर्वशी और ईशानकोणमें विनतादेवीकी पूजा करनी चाहिये। तृतीयावरणमें पूर्वमें शुक्र, पश्चिममें शनि, उत्तरमें बृहस्पति, ईशानमें बुध और मण्डलके अग्निकोणमें चन्द्रमाकी पूजा करनी चाहिये। नैर्ऋत्यकोणमें राहु तथा वायव्यकोणमें केतुकी पूजा करनी चाहिये। चौथे आवरणमें लेखक, शाण्डिलीपुत्र, यम, विरूपाक्ष, वरुण, वायुपुत्र, ईशान तथा कुबेर आदिकी उन-उनकी दिशाओंमें पूजा करनी चाहिये। पाँचवें आवरणमें पूर्वादि क्रमसे महाश्वेता, श्री, ऋद्धि, विभूति, धृति, उन्नति, पृथ्वी तथा महाकीर्ति आदि देवियोंकी पूजा करनी चाहिये तथा इन्द्र, विष्णु, अर्यमा, भग, पर्जन्य, विवस्वान्, अर्क, त्वष्टा आदि द्वादश आदित्योंकी पूजा छठे आवरणमें करनी चाहिये। सिर, नेत्र, अस्त्र-शस्त्रसे युक्त रथसहित सूर्यकी सातवें आवरणमें पूजा करनी चाहिये। यक्ष, गन्धर्व, मासाधिपति तथा संवत्सर आदिकी भी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद भगवान् भास्करका पुष्प, गन्ध आदिसे विधिपूर्वक पूजनकर—'**ॐ खखोल्काय नमः**' इस मूल मन्त्रसे अपने अङ्गोंका स्पर्श अर्थात् हृदयादिन्यास करते हुए पूजन करना चाहिये। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक इस विधिसे सूर्यकी नित्य अथवा दोनों पक्षोंकी सप्तमीके दिन पूजन करता है, वह परमपदको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १५०)

सौरधर्मका वर्णन

राजा शतानीकने पूछा—मुने ! भगवान् सूर्यका माहात्म्य कीर्तिवर्धक और सभी पापोंका नाशक है। मैंने भगवान् सूर्यनारायणके समान लोकमें किसी अन्य देवताको नहीं देखा। जो भरण-पोषण और संहार भी करनेवाले हैं वे भगवान् सूर्य किस प्रकार प्रसन्न होते हैं, उस धर्मको आप अच्छी तरह जानते हैं। मैंने वैष्णव, शैव, पौराणिक आदि धर्मोंका श्रवण किया है। अब मैं सौरधर्मको जानना चाहता हूँ। इसे आप मुझे बतायें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! अब आप सौरधर्मके विषयमें सुनें।

यह सौरधर्म सभी धर्मोंमें श्रेष्ठ और उत्तम है। किसी समय स्वयं भगवान् सूर्यने अपने सारथि अरुणसे इसे कहा था। सौरधर्म अन्धकाररूपी दोषको दूरकर प्राणियोंको प्रकाशित करता है और यह संसारके लिये महान् कल्याणकारी है। जो व्यक्ति शान्तचित्त होकर सूर्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह सुख और धन-धान्यसे परिपूर्ण हो जाता है। प्रातः, मध्याह्न और सायं—त्रिकाल अथवा एक ही समय सूर्यकी उपासना अवश्य करनी चाहिये। जो व्यक्ति सूर्यनारायणका भक्तिपूर्वक अर्चन, पूजन और स्मरण करता है, वह सात जन्मोंमें किये गये सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो भगवान् सूर्यकी सदा स्तुति, प्रार्थना और आराधना करते हैं, वे प्राकृत मनुष्य न होकर देवस्वरूप ही हैं। षोडशाङ्ग-पूजन-विधिको स्वयं सूर्यनारायणने कहा है, वह इस प्रकार है—

प्रातः स्नानकर शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये जप, हवन, पूजन, अर्चनादिकर सूर्यको प्रणाम करके भक्तिपूर्वक ब्राह्मण, गाय, पीपल आदिकी पूजा करनी चाहिये। भक्तिपूर्वक इतिहास - पुराणका श्रवण और ब्राह्मणोंको वेदाभ्यास करना चाहिये। सबसे प्रेम करना चाहिये। स्वयं पूजनकर लोगोंको

पुराणादि ग्रन्थोंकी व्याख्या सुनानी चाहिये। मेरा नित्य-प्रति स्मरण करना चाहिये। इस प्रकारके उपचारोंसे जो अर्चन-पूजन-विधि बतायी गयी है, वह सभी प्रकारके लोगोंके लिये उत्तम है। जो कोई इस प्रकारसे भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करता है, वही मुनि, श्रीमान्, पण्डित और अच्छे कुलमें उत्पन्न है। जो कोई पत्र, पुष्प, फल, जल आदि जो भी उपलब्ध हो उससे मेरी पूजा करता है उसके लिये न मैं अदृश्य हूँ और न वह मेरे लिये अदृश्य है। मुझे जो व्यक्ति जिस भावनासे देखता है, मैं भी उसे उसी रूपमें दिखायी पड़ता हूँ। जहाँ मैं स्थित हूँ, वहीं मेरा भक्त भी स्थित होता है। जो मुझ सर्वव्यापीको सर्वत्र और सम्पूर्ण प्राणियोंमें स्थित देखता है, उसके लिये मैं उसके हृदयमें स्थित हूँ और वह मेरे हृदयमें स्थित है। सूर्यकी पूजा करनेवाला व्यक्ति बड़े-बड़े राजाओंपर विजय प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति मनसे मेरा निरन्तर ध्यान करता रहता है, उसकी चिन्ता मुझे बराबर बनी रहती है कि कहीं उसे कोई दुःख न होने पाये। मेरा भक्त मुझको अत्यन्त प्रिय है। मुझमें अनन्य निष्ठा ही सब धर्मोंका सार है।

(अध्याय १५१)

ब्रह्मादि देवताओंद्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति एवं वर-प्राप्ति

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! भगवान् सूर्यकी भक्ति, पूजा और उनके लिये दान करना तथा हवन करना सबके वशकी बात नहीं है तथा उनकी भक्ति और ज्ञान एवं उसका अभ्यास करना भी अत्यन्त दुर्लभ है। फिर भी उनके पूजन-स्मरणसे इसे प्राप्त किया जा सकता है। सूर्य-मन्दिरमें सूर्यकी प्रदक्षिणा करनेसे वे सदा प्रसन्न रहते हैं। सूर्यचक्र बनाकर पूजन एवं सूर्यनारायणका स्तोत्र-पाठ करनेवाला व्यक्ति इच्छित फल एवं पुण्य तथा विषयोंका परित्यागकर भगवान् सूर्यमें अपने मनको लगा देनेवाला मनुष्य निर्भीक होकर उनकी निश्चल भक्ति प्राप्त कर लेता है।

राजा शतानीकने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! मुझे भगवान् सूर्यकी पूजन-विधि सुननेकी बड़ी ही अभिलाषा है। मैं आपके ही मुखसे सुनना चाहता हूँ। कृपाकर कहिये कि सूर्यकी प्रतिमा स्थापित करनेसे कौन-सा पुण्य और फल प्राप्त होता है तथा सम्मार्जन करने और गन्ध आदिके लेपनसे किस पुण्यकी प्राप्ति होती है। आरती, नृत्य, मङ्गल-गीत आदि कृत्योंके करनेसे कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है। अर्घ्यदान, जल एवं पञ्चामृत आदिसे स्नान, कुश, रक्त पुष्प, सुवर्ण, रत्न, गन्ध, चन्दन, कपूर आदिके द्वारा पूजन, गन्धादि-विलेपन, पुराण-श्रवण एवं वाचन, अव्यङ्ग-दान और व्योमरूपमें भगवान् सूर्य तथा अरुणकी पूजा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! प्रथम आप भगवान् सूर्यके महनीय तेजके विषयमें सुनें। कल्पके प्रारम्भमें ब्रह्मादि देवगण अहंकारके वशीभूत हो गये। तमरूपी मोहने उन्हें अपने वशमें कर लिया। उसी समय उनके अहंकारको दूर करनेके लिये एक महनीय तेज प्रकट हुआ, जिससे यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त हो गया। अन्धकार-नाशक तथा सौ योजन विस्तारयुक्त वह तेजःपुञ्ज आकाशमें भ्रमण कर रहा था। उसका प्रकाश पृथ्वीपर कमलकी कर्णिकाकी भाँति दिखलायी दे रहा था। यह देख ब्रह्मादि देवगण परस्पर इस प्रकार विचार करने लगे—हमलोगोंका तथा संसारका कल्याण करनेके लिये ही यह तेज प्रादुर्भूत हुआ है। यह तेज कहाँसे प्रादुर्भूत हुआ, इस विषयमें वे कुछ न जान सके और इस तेजने सभी देवगणोंको आश्चर्यचकित कर दिया। तेजाधिपति उन्हें दिखायी भी नहीं पड़े। ब्रह्मादि देवताओंने उनसे पूछा—देव! आप कौन हैं, कहाँ हैं, यह तेजकी कैसी शक्ति है? हम सभी लोग आपका दर्शन करना चाहते हैं। उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न हो भगवान् सूर्यनारायण अपने विराट् रूपमें प्रकट हो गये। उस महनीय तेजःस्वरूप भगवान् भास्करकी देवगण पृथक्-पृथक् वन्दना करने लगे।

ब्रह्माजीकी स्तुतिका भाव इस प्रकार है[1]—हे देवदेवेश! आप सहस्रों किरणोंसे प्रकाशमान हैं। कोणवल्लभ! आप संसारके लिये दीपक हैं, आपको नमस्कार है। अन्तरिक्षमें

१-नमस्ते देवदेवेश सहस्रकिरणोज्ज्वल। लोकदीप नमस्तेऽस्तु नमस्ते कोणवल्लभ॥
भास्कराय नमो नित्यं खखोल्काय नमो नमः। विष्णवे कालचक्राय सोमायामिततेजसे॥

स्थित होकर सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करनेवाले भगवान् भास्कर, विष्णु, कालचक्र, अमित तेजस्वी, सोम, काल, इन्द्र, वसु, अग्नि, खग, लोकनाथ तथा एकचक्रवाले रथसे युक्त—ऐसे नामोंवाले आपको नमस्कार है। आप अमित तेजस्वी एवं संसारके कल्याण तथा मङ्गलकारक हैं, आपका सुन्दर रूप अन्धकारको नष्ट करनेवाला है, आप तेजकी निधि हैं, आपको नमस्कार है। आप धर्मादि चतुर्वर्गस्वरूप हैं तथा अमित तेजस्वी हैं, क्रोध-लोभसे रहित हैं, संसारकी स्थितिमें कारण हैं, आप शुभ एवं मङ्गलस्वरूप हैं तथा शुभ एवं मङ्गलके प्रदाता हैं, आप परम शान्तस्वरूप हैं तथा ब्राह्मण एवं ब्रह्मरूप हैं, ऐसे हे परब्रह्म परमात्मा जगत्पते ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये, आपको नमस्कार है।

ब्रह्माजीके बाद शिवजीने महातेजस्वी सूर्यनारायणको प्रणामकर उनकी स्तुति की—

विश्वकी स्थितिके कारण-स्वरूप भगवान् सूर्यदेव ! आपकी जय हो। अजेय, हंस, दिवाकर, महाबाहु, भूधर, गोचर, भाव, खग, लोकप्रदीप, जगत्पति, भानु, काल, अनन्त, संवत्सर तथा शुभानन ! आपकी जय हो। कश्यपके आनन्दवर्धन, अदितिपुत्र, सप्ताश्ववाहन, सप्तेश, अन्धकारको दूर करनेवाले, ग्रहोंके स्वामी, कान्तीश, कालेश, शंकर, धर्मादि चतुर्वर्गके स्वामी ! आपकी जय हो। वेदाङ्गरूप, ग्रहरूप, सत्यरूप, सुरूप, क्रोधादिके विनाशक, कल्माष-पक्षिरूप तथा यतिरूप ! आपकी जय हो। प्रभो ! आप विश्वरूप, विश्वकर्मा, ओंकार, वषट्कार, स्वाहाकार तथा स्वधारूप हैं और आप ही अश्वमेधरूप, अग्नि एवं अर्यमारूप हैं, संसाररूपी सागरसे मोक्ष दिलानेवाले हे जगत्पते ! मैं संसार-सागरमें डूब रहा हूँ, मुझे अपने हाथका अवलम्बन दीजिये, आपकी जय हो[1]।

भगवान् विष्णुने सूर्यनारायणको श्रद्धा और भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उनकी स्तुति की, भाव इस प्रकार है—

भूतभावन देवदेवेश ! आप दिवाकर, रवि, भानु, मार्तण्ड, भास्कर, भग, इन्द्र, विष्णु, हरि, हंस, अर्क—इन रूपोंमें प्रसिद्ध हैं, आपको नमस्कार है। लोकगुरो ! आप विभु, त्रिनेत्रधारी, त्र्यक्षरात्मक, त्र्यङ्गात्मक, त्रिमूर्ति, त्रिगति हैं, आप छः मुख, चौबीस पाद तथा बारह हाथवाले हैं, आप समस्त लोकों तथा प्राणियोंके अधिपति हैं, देवताओं तथा वर्णोंके भी आप ही अधिपति हैं, आपको नमस्कार है। जगत्स्वामिन् ! आप ही ब्रह्मा, रुद्र, प्रजापति, सोम, आदित्य, ओंकार, बृहस्पति, बुध, शुक्र, अग्नि, भग, वरुण, कश्यपात्मज हैं। आपसे ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है, देवता, असुर तथा मानव आदि सभी आपसे ही उत्पन्न हैं, अनघ ! कल्पके आरम्भमें संसारकी उत्पत्ति, पालन एवं संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव उत्पन्न हुए हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो ! आप ही वेद-रूप, दिवसस्वरूप,

---

नमस्ते पद्मकालाय इन्द्राय वसुरेतसे। खगाय लोकनाथाय एकचक्ररथाय च ॥
जगद्धिताय देवाय शिवायामिततेजसे। तमोघ्नाय सुरूपाय तेजसां निधये नमः ॥
अर्थाय कामरूपाय धर्मायामिततेजसे। मोक्षाय मोक्षरूपाय सूर्याय च नमो नमः ॥
क्रोधलोभविहीनाय लोकानां स्थितिहेतवे। शुभाय शुभरूपाय शुभदाय शुभात्मने ॥
शान्ताय शान्तरूपाय शान्तयेऽस्मासु वै नमः। नमस्ते ब्रह्मरूपाय ब्राह्मणाय नमो नमः ॥
ब्रह्मदेवाय ब्रह्मरूपाय ब्रह्मणे परमात्मने। ब्रह्मणे च प्रसादं वै कुरु देव जगत्पते ॥ (ब्राह्मपर्व १५३ । ५० — ५७)

१-जय भाव जयाजेय जय हंस दिवाकर। जय शम्भो महाबाहो खग गोचर भूधर ॥
जय लोकप्रदीपाय जय भानो जगत्पते। जय कालजयानन्त संवत्सर शुभानन ॥
जय देवादितेः पुत्र कश्यपानन्दवर्धन। तमोघ्न जय सप्तेश जय सप्ताश्ववाहन ॥
ग्रहेश जय कान्तीश जय कालेश शङ्कर। अर्थकामेश धर्मेश जय मोक्षेश शर्मद ॥
जय वेदाङ्गरूपाय ग्रहरूपाय वै नमः। सत्याय सत्यरूपाय सुरूपाय शुभाय च ॥
क्रोधलोभविनाशाय कामनाशाय वै जय। कल्माषपक्षिरूपाय यतिरूपाय शम्भवे ॥
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्माय वै जय। जयोंकार वषट्कार स्वाहाकार स्वधामय ॥
जयाश्वमेधरूपाय चाग्निरूपार्यमाय च। संसारार्णवपीताय मोक्षद्वारप्रदाय च ॥
संसारार्णवमग्नस्य मम देव जगत्पते। हस्तावलम्बनो देव भव त्वं गोपतेऽद्भुत ॥ (ब्राह्मपर्व १५३ । ६० — ६८)

यज्ञ एवं ज्ञानरूप हैं। किरणोज्ज्वल! भूतेश! गोपते! संसारमें निमग्न हुए हमपर आप प्रसन्न होइये, आप वेदान्त एवं यज्ञ-कलात्मक रूप हैं, आपकी जय हो, आपको नित्य नमस्कार है[1]।

ब्रह्मादि देवताओंकी स्तुतिसे भगवान् सूर्य बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवको अपनी अखण्ड भक्ति तथा अपना अनुग्रह प्राप्त करनेका वर प्रदान करते हुए कहा—हे विष्णो! आप दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि सभीपर विजय प्राप्त कर अजेय रहेंगे। सम्पूर्ण संसारका पालन करते हुए आपकी मेरे ऊपर अचल भक्ति बनी रहेगी। ब्रह्मा भी इस जगत्‌की सृष्टि करनेमें समर्थ होंगे और मेरे प्रसादसे शंकर भी इस संसारका संहार कर सकेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। मेरी पूजाके फलस्वरूप आपलोग ज्ञानियोंमें उत्कृष्ट स्थान प्राप्त कर लेंगे।

भगवान् सूर्यके इन वचनोंको सुनकर महादेवजी बोले—भगवन्! हमलोग आपकी आराधना किस प्रकार करें, उसे आप बतायें। हमें आपकी परम पूजनीय मूर्ति तो दिखायी नहीं दे रही है, केवल प्रकाशकी आकृति और मात्र तेज ही दिखायी पड़ रहा है, यह तेज आकार-विहीन होनेके कारण हृदयमें स्थान नहीं पा रहा है। जबतक मन किसी विषय-वस्तुमें नहीं लगता, तबतक किसी भी व्यक्तिकी भक्ति या इच्छा उस विषय-वस्तुको प्राप्त करनेकी नहीं होती। जबतक भक्ति उत्पन्न नहीं होगी, तबतक पूजन आदि करनेमें कोई भी समर्थ नहीं होगा। इसलिये आप साकार-रूपमें प्रकट हों, जिससे कि हमलोग उस साकार-रूपका पूजन-अर्चन कर सिद्धिको प्राप्त करनेमें समर्थ हो जायँ।

भगवान् सूर्यने कहा—महादेवजी! आपने बड़ी अच्छी बात पूछी है—आप दत्तचित्त होकर सुनें। इस जगत्‌में मेरी चार प्रकारकी मूर्तियाँ हैं जो सम्पूर्ण संसारको व्यवस्थित करती हुई सृजन, पालन, पोषण तथा संहार आदिमें प्रत्येक समय संलग्न रहती हैं। मेरी प्रथम मूर्ति राजसी मूर्ति है, जो ब्राह्मी शक्तिके नामसे प्रसिद्ध है, वह कल्पके आदिमें संसारकी सृष्टि करती है। द्वितीय सात्त्विकी मूर्ति विष्णुस्वरूपिणी है, जो संसारका पालन और दुष्टोंका विनाश करती है। तृतीय मूर्ति तामसी है, जो भगवान् शंकरके नामसे विख्यात है, वह हाथमें त्रिशूल धारण किये कल्पके अन्तमें विश्व-सृष्टिका संहार करती है। मेरी चतुर्थ मूर्ति सत्त्वादि गुणोंसे अतीत तथा उत्तम है, वह स्थित रहते हुए भी दिखायी नहीं पड़ती। उस अदृश्य शक्तिके द्वारा यह समस्त संसार विस्तारको प्राप्त हुआ है। ओंकार ही मेरा स्वरूप है। यह सकल तथा निष्कल और साकार एवं निराकार दोनों रूपोंमें है। यह सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त रहते हुए भी सांसारिक कर्म-फलोंसे लिप्त नहीं रहती, जलमें पद्मपत्रकी भाँति अलिप्त रहती है। यह प्रकाश आपलोगोंके अज्ञानको दूर करने तथा संसारमें प्रकाश करनेके लिये उत्पन्न हुआ है। आपलोग मेरे इस अस्पृष्ट (निर्लिप्त) रूपकी आराधना करें।

कल्पके अन्तमें मेरे आकाशरूपमें सभी देवताओंका लय हो जाता है। उस समय केवल आकाशरूप ही रहता

१-नमामि देवदेवेशं भूतभावनमव्ययम्। दिवाकरं रविं भानुं मार्तण्डं भास्करं भगम्॥
इन्द्रं विष्णुं हरिं हंसमर्कं लोकगुरुं विभुम्। त्रिनेत्रं त्र्यक्षरं त्र्यङ्गं त्रिमूर्तिं त्रिगतिं शुभम्॥
षण्मुखाय नमो नित्यं त्रिनेत्राय नमो नमः। चतुर्विंशतिपादाय नमो द्वादशपाणये॥
नमस्ते भूतपतये लोकानां पतये नमः। देवानां पतये नित्यं वर्णानां पतये नमः॥
त्वं ब्रह्मा त्वं जगन्नाथो रुद्रस्त्वं च प्रजापतिः। त्वं सोमस्त्वं तथादित्यस्त्वमोंकारक एव हि॥
बृहस्पतिर्बुधस्त्वं हि त्वं शुक्रस्त्वं विभावसुः। यमस्त्वं वरुणस्त्वं हि नमस्ते कश्यपात्मज॥
त्वया ततमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। त्वत्त एव समुत्पन्नं सदेवासुरमानुषम्॥
ब्रह्मा चाहं च रुद्रश्च समुत्पन्नो जगत्पते। कल्पादौ तु पुरा देव स्थितये जगतोऽनघ॥
नमस्ते वेदरूपाय अहोरूपाय वै नमः। नमस्ते ज्ञानरूपाय यज्ञाय च नमो नमः॥
प्रसीदास्मासु देवेश भूतेश किरणोज्ज्वल। संसारार्णवमग्नानां प्रसादं कुरु गोपते।
वेदान्ताय नमो नित्यं नमो यज्ञकलाय च॥

(ब्राह्मपर्व १५३।७१—८०)

है[1]। पुनः मुझसे ही ब्रह्मादि देवगण तथा चराचर उत्पन्न होते हैं। हे त्रिलोचन ! मैं सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त हूँ। इसलिये मेरे व्योमरूपकी आराधना आपसहित ब्रह्मा, विष्णु भी करें। त्रिलोचन ! आप गन्धमादनपर दिव्य सहस्र वर्षोंतक तपस्या करके परम शुभ षडङ्ग-सिद्धिको प्राप्त करें। जनार्दन ! आप मेरे व्योमरूपकी[2] श्रद्धा और भक्तिपूर्वक आराधना कलापग्राममें निवास कर करें। जगत्पति ब्रह्मा भी अन्तरिक्षमें जाकर लोकपावन पुष्करतीर्थमें मेरी आराधना करें। इस प्रकार आराधना करनेके पश्चात् कदम्बके समान गोलाकार, रश्मिमालासे युक्त मेरी मूर्तिका आपलोग दर्शन करेंगे।

इस प्रकार सूर्यनारायणके वचनको सुनकर भगवान् विष्णुने उन्हें प्रणाम कर कहा—देव ! हम सभी लोग उत्तम सिद्धि प्राप्त करनेके लिये आपके परम तेजस्वी व्योमरूपका पूजन-अर्चनकर किस विधिसे आराधना करें। परमपूजित ! कृपया आप उस विधिको बतलाकर मुझसहित ब्रह्मा और शिवपर दया कीजिये, जिससे हमलोगोंको परम सिद्धि प्राप्त होनेमें कोई विघ्न-बाधा न पहुँच सके।

भगवान् सूर्य बोले—देवताओंमें श्रेष्ठ वासुदेव ! आप शान्तचित्त होकर सुनिये। आपका प्रश्न उचित ही है। मेरे अनुपम व्योमरूपकी आपलोग आराधना करें। मेरी पूजा मध्याह्नकालमें भक्तिपूर्वक सदैव करनेसे इच्छित भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान् सूर्यके इस वाक्यको सुनकर ब्रह्मादि देवताओंने प्रणामकर कहा—'देव ! आप धन्य हैं, हमलोगोंको आपने अपने तेजसे प्रकाशित किया है, हमलोग कृतकृत्य हो गये। आपके दर्शनमात्रसे ही सभी लोगोंको ज्ञान प्राप्त हुआ है तथा तम, मोह, तन्द्रा आदि सभी क्षणमात्रमें ही दूर हो गये हैं। हमलोग आपके ही तेजके प्रभावसे उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं। अब आप व्योमके पूजन-विधिको बतानेकी कृपा करें।'

भगवान् आदित्यने कहा—आपलोग सत्य ही कह रहे हैं, जो मैं हूँ वही आपलोग भी हैं, अर्थात् आपलोगोंके स्वरूपमें मैं ही स्थित हूँ। अहंकारी, विमूढ, असत्य, कलहसे युक्त लोगोंके कल्याणके लिये तथा आपलोगोंके अन्धकार अर्थात् तम-मोहादिकी निवृत्तिके लिये मैंने तेजोमय स्वरूप प्रकट किया, इसलिये अहंकार, मान, दर्प आदिका परित्याग कर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निरन्तर आपलोग मेरी आराधना करें। इससे मेरे सकल-निष्कल उत्तम स्वरूपका दर्शन प्राप्त होगा और मेरे दर्शनसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी। इतना कहकर सहस्रकिरण भगवान् सूर्य देवताओंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। भगवान् भास्करके तेजस्वी रूपका दर्शनकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव सभी आश्चर्यचकित होकर परस्पर कहने लगे—'ये तो अदिति-पुत्र सूर्यनारायण हैं। ये महातेजस्वी लोकोंको प्रकाशित करनेवाले सूर्यनारायण हैं, इन्होंने हम सभी लोगोंको महान् अन्धकाररूपी तमसे निवृत्त किया है। हम अपने-अपने स्थानपर चलकर इनकी पूजा करें, जिससे इनके प्रसादसे हमें सिद्धि प्राप्त हो सके।'

उस व्योमरूपकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजन करनेके लिये ब्रह्माजी पुष्करक्षेत्रमें, भगवान् विष्णु शालग्राममें और वृषध्वज शंकर गन्धमादन पर्वतपर चले गये। वहाँ मान, दर्प तथा अहंकारका परित्याग कर ब्रह्माजी चार कोणसे युक्त व्योमकी, भगवान् विष्णु चक्रमें अङ्कित व्योमकी और शिव अग्निरूपी तेजसे अभिभूत व्योमवृत्तकी सदा भक्तिपूर्वक पूजा करने लगे। ब्रह्मादि देवता गन्ध, माला, नृत्य, गीत आदिसे दिव्य सहस्र वर्षोंतक सूर्यनारायणकी पूजाकर उनकी अचल भक्ति और प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये उत्तम तपस्यामें तत्पर हो गये।

सुमन्तु मुनि बोले—महाराज ! देवताओंके पूजनसे प्रसन्न हो वे एक रूपसे ब्रह्माके पास, एक रूपसे शंकरके पास तथा एक रूपसे विष्णुके पास गये एवं अपने चतुर्थ रूपसे रथारूढ हो आकाशमें स्थित रहे। भगवान् सूर्यने अपने योगबलसे पृथक्-पृथक् उन्हें दर्शन दिया। दिव्य रथपर

१-अन्य पुराणों तथा सांख्य, वेदान्त आदि दर्शनोंके अनुसार आकाशका मनस्तत्त्वमें, मनका अहंतत्त्वमें और अहंका महत्-तत्त्वमें, महतत्त्वका अव्यक्त-तत्त्वमें और अव्यक्तका सत्-तत्त्वमें लय होता है, जो संकल्प-विकल्पसे शून्य होता है और पुनः सृष्टिके समय सत्-तत्त्वमें कल्पनाके साथ अव्यक्त, महत्, मन, अहंकारके बाद आकाशकी उत्पत्ति होती है।

२-योगवासिष्ठमें सबको व्योमके ही अन्तर्गत स्थित मानकर हृद्-व्योम-उपासना (दहर-उपासना)का निर्देश है और ब्रह्मसूत्रके 'आकाशस्तल्लिङ्गात्' इस सूत्रमें आकाश शब्दका अर्थ परमात्मा माना गया है।

आरूढ सूर्यदेवने अपने अद्भुत योगबलसे देखा कि चतुर्मुख ब्रह्माजी कमलमुख-व्योमकी पूजामें अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे नतमस्तक हैं। यह देखकर ब्रह्माजीसे भगवान् सूर्यदेवने कहा—'सुरश्रेष्ठ ! देखो, मैं वर देनेके लिये उपस्थित हूँ।' यह सुनकर ब्रह्माजी हर्षसे प्रफुल्लित हो उठे और हाथ जोड़कर उनके कमलमुखको देखकर अति विनम्र-भावसे प्रणाम कर प्रार्थना करने लगे—

'देवेश ! आप प्रसन्न हैं तो मेरे ऊपर कृपा कीजिये। देव ! आपके अतिरिक्त मेरे लिये अन्य कोई गति नहीं है।'

भगवान् सूर्य बोले—जैसा आप कह रहे हैं, उसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है। आप कारण-रूपसे मेरे प्रथम पुत्रके रूपमें उत्पन्न हों। अब आप वर माँगिये, मैं वर देनेके लिये ही आया हूँ।

ब्रह्माजीने कहा—भगवन् ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, तो मुझे उत्तम वर दें, जिससे मैं सृष्टि कर सकूँ।

भगवान् आदित्यने कहा—जगत्पति चतुर्मुख ब्रह्मन् ! आपको मेरे प्रसादसे सिद्धि प्राप्त हो जायगी और आप इस जगत्के सृष्टिकर्ता होंगे।

ब्रह्माजीने कहा—जगन्नाथ ! मेरा निवास किस स्थानपर होगा।

भगवान् सूर्य बोले—जिस स्थानपर मेरा महद्-व्योम-पृष्ठ शृंगसे युक्त उत्तम रूप रहेगा, वहीं कदम्ब-रूपमें आप नित्य स्थित रहेंगे। पूर्व दिशामें इन्द्र, अग्निकोणमें शाण्डिलीसुत अग्नि, दक्षिणमें यम, नैर्ऋत्यकोणमें निर्ऋति, पश्चिममें वरुण और वायव्यकोणमें वायु तथा उत्तर दिशामें कुबेरका निवास रहेगा। ईशानकोणमें शंकर और आपका तथा मध्यमें विष्णुका निवास रहेगा।

ब्रह्माजीने कहा—देव ! आज मैं कृतकृत्य हो गया, जो कुछ भी मुझे चाहिये, वह सब प्राप्त हो गया।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! इस प्रकार भगवान् आदित्य ब्रह्माजीको वर प्रदानकर उनके साथ गन्धमादन पर्वतपर गये, वहाँ उन्होंने देखा—भूत-भावन शिव तीव्र तपस्यामें संलग्न हैं। वे तेजसे युक्त व्योमका पूजन कर रहे हैं। इस प्रकार शिवद्वारा पूजन-अर्चनको देखकर भगवान् भास्कर प्रसन्न हो गये।

सूर्यभगवान्ने कहा—भीम ! मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ। वत्स ! वर माँगो ! मैं वर देनेके लिये उपस्थित हूँ। इसपर महादेवजीने साष्टाङ्ग प्रणाम कर स्तुति की और कहा—'देव ! आप मुझपर कृपा करें। आप जगत्पति हैं। संसारका उद्धार करनेवाले हैं। मैं आपके अंशसे आपके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ हूँ, आप वही करें जो एक पिता अपने पुत्रके लिये करता है।' यह वचन सुनकर भगवान् सूर्य बोले—'शंकर ! जो तुम कह रहे हो, उसमें कोई भी संदेह नहीं है। मेरे ललाटसे तुम पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए हो। जो तुम्हारे मनमें हो वह वर माँगो।'

महादेवजीने कहा—भगवन् ! यदि आप मेरे ऊपर संतुष्ट हैं तो मुझे अपनी अचल भक्ति प्रदान करें, जिससे यक्ष, गन्धर्व, देव, दानव आदिपर मैं विजय प्राप्त कर सकूँ और युगके अन्तमें प्रजाका संहार कर सकूँ। देव ! मुझे उत्तम स्थान प्रदान करें। भगवान् सूर्यने 'ऐसा ही होगा' कहकर कहा कि इसी प्रकार तुम मेरे परम व्योमरूपकी पूजा प्रतिदिन करते रहो और यही परम तेजस्वी व्योम तुम्हारा शस्त्र—त्रिशूल होगा।

सुमन्तु मुनि बोले—महाराज ! तदनन्तर भगवान् सूर्य भगवान् विष्णुको वर देने शालग्राम (मुक्तिनाथ-क्षेत्र) गये। वहाँ उन्होंने देखा कि वे कृष्णाजिन धारणकर शान्तचित्त हो परम उत्कृष्ट तप कर रहे हैं और हृदयमें भगवान् सूर्यका ध्यान कर रहे हैं। भगवान् भास्करने अति प्रसन्न होकर कहा—'विष्णो ! मैं आ गया हूँ, मुझे देखो।' भगवान् विष्णुने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा—'जगन्नाथ ! आप मेरी रक्षा करें। मेरे ऊपर दया करें। मैं आपका द्वितीय पुत्र हूँ। पिता अपने पुत्रपर जैसी कृपादृष्टि रखता है, उसी प्रकार आप भी मेरे ऊपर दया-दृष्टि बनाये रखें।'

भगवान् सूर्य बोले— महाबाहो ! मैं तुम्हारी श्रद्धा-भक्तिसे संतुष्ट हो गया हूँ। जो कुछ भी इच्छा हो, माँग लो। मैं वर प्रदान करनेके लिये ही आया हूँ।

विष्णु भगवान्ने कहा—भगवन् ! मैं आज कृतकृत्य हो गया। मेरे समान कोई भी धन्य नहीं है, क्योंकि आप संतुष्ट होकर मुझे स्वयं वर देने आ गये। आप अपनी अचल भक्ति और शत्रुको पराजित करनेकी शक्ति मुझे प्रदान करें तथा जैसे मैं संसारका पालन कर सकूँ ऐसा वर प्रदान करें। मुझे इस प्रकारका स्थान दें जिससे कि मैं सभी लोकोंमें यशस्वी, बल,

वीर्य, यश और सुखसे सम्पन्न हो सकूँ।

भगवान् सूर्य बोले—'तथास्तु' महाबाहो! तुम ब्रह्माके छोटे और शिवके बड़े भ्राता हो, तुम्हें सभी देवता नमस्कार करेंगे। तुम मेरे परम भक्त और परम प्रिय हो, इसलिये तुम्हारी मुझमें अचल भक्ति रहेगी। जिस व्योमरूपका तुमने अर्चन किया है, यह व्योम ही तुम्हारे लिये चक्ररूपमें अस्त्र-शस्त्रका कार्य करेगा। यह सभी आयुधोंमें उत्तम एवं दुष्टोंका विनाशक है। समस्त लोक इसे नमस्कार करते हैं।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! इस प्रकार भगवान् भास्कर भगवान् विष्णुको वर प्रदानकर अपने लोकको चले गये और ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरने भगवान् सूर्यनारायणकी पूजाकर सृष्टि, पालन और संहार करनेकी शक्ति प्राप्त की। यह आख्यान अति पवित्र, पुण्य और सभी प्रकारके पापोंका नाशक है। यह तीन देवोंका उपाख्यान है और तीन देवता इस लोकमें पूजित हैं। यह तीन स्तोत्रोंसे युक्त तथा धर्म, अर्थ और कामका साधन है। यह धर्म, स्वर्ग, आरोग्य, धन-धान्यको प्रदान करनेवाला है। जो व्यक्ति इस आख्यानको प्रतिदिन सुनता है अथवा जो इन तीन स्तोत्रोंका पाठ करता है, वह आग्नेय विमानपर आरूढ होकर भगवान् सूर्यके परमपदको प्राप्त कर लेता है। पुत्रहीन पुत्र, निर्धन धन, विद्यार्थी विद्या प्राप्त कर तेजमें सूर्यके समान, प्रभामें उनके किरणोंके समान हो जाता है और अनन्तकालतक सुख भोग कर ज्ञानियोंमें उत्तम स्थानको प्राप्त करता है।

(अध्याय १५२—१५६)

सौर-धर्म-निरूपणमें सूर्यावतारका कथन

शतानीकने पूछा—ब्रह्मन्! जिन तेजस्वी भगवान् सूर्यनारायणने ब्रह्माजीको वर प्रदान किया, देवताओं और पृथ्वीको उत्पन्न किया, जो ब्रह्मादि देवताओंको प्रकाशित करनेवाले तथा समस्त जगत्‌के पालक, महाभूतोंसहित चौदह लोकोंके स्रष्टा, पुराणोंमें तेजरूपसे स्थित एवं पुराणोंकी आत्मा हैं तथा अग्निमें स्वयं स्थित हैं, जिनके सहस्रों सिर, सहस्रों नेत्र तथा सहस्रों चरण हैं, जिनके मुखसे लोकपितामह ब्रह्मा, वक्षःस्थलसे भगवान् विष्णु और ललाटसे साक्षात् भगवान् शिव उत्पन्न हुए हैं, जो विघ्नोंके विनाशक एवं अन्धकार-नाशक, लोककी शान्तिके लिये जो अग्नि, वेदि, कुशा, स्रुवा, प्रोक्षणी, व्रत आदिको उत्पन्न कर इनके द्वारा हव्य-भाग ग्रहण करते हैं, जो युगके अनुरूप कर्मोंके विभाजन तथा क्षण, काल, काष्ठ, मुहूर्त, तिथि, मास, पक्ष, संवत्सर, ऋतु, कालयोग, विविध प्रमाण और आयुके उत्पादक तथा विनाशक हैं एवं परमज्योति और परम तपस्वी हैं, जो अच्युत तथा परमात्माके नामसे जाने जाते हैं, वे ही महर्षि कश्यपके यहाँ पुत्रके रूपमें कैसे अवतरित हुए?

ब्रह्मादि जिनकी उपासना करते हैं तथा वेद-वेत्ताओंमें जो उत्तम और देवताओंमें प्रभु विष्णु हैं, जो सौम्योंमें सौम्य और अग्निमें तेजःस्वरूप हैं, मनुष्योंमें मन-रूपसे तथा तपस्वियोंमें तप-रूपसे विद्यमान हैं, जो विग्रहोंमें विग्रह हैं, जो देवताओं और मनुष्यों-सहित समस्त लोकोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, वे देवोंके देव भगवान् सूर्य किसलिये अदितिके गर्भसे स्वयं उत्पन्न हुए? ब्रह्मन्! इस विषयमें मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है, भगवान् सूर्यकी उत्पत्तिसे आश्चर्यचकित होकर ही मैंने आपसे उनके आख्यानको पूछा है। महामुने! भगवान् सूर्यके बल-वीर्य, पराक्रम, यश और उज्ज्वलित तेजका आप वर्णन करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! आपने भगवान् भास्करकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें बहुत ही जटिल प्रश्न पूछा है। मैं अपनी सामर्थ्यके अनुसार कह रहा हूँ। आप उसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सुनें।

जो भगवान् सूर्य सहस्रों नेत्रोंवाले, सहस्रों किरणोंसे युक्त और सहस्रों सिर तथा सहस्रों हाथवाले हैं, सहस्रों मुकुटोंसे सुशोभित तथा सहस्रों भुजाओंसे युक्त एवं अव्यय हैं, जो सभी लोकोंके कल्याण एवं सभी लोकोंको प्रकाशित करनेके लिये अनेक रूपोंमें अवतरित होते हैं, वही भगवान् सूर्य कश्यपद्वारा अदितिके गर्भसे पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए। महाराज! कश्यप और अदितिसे जो-जो पुत्र उत्पन्न होते थे, वे उसी क्षण मर जाते थे। इस पुत्र-विनाशको देखकर पुत्र-शोकसे दुःखी माता अदिति व्याकुल हो अपने पति महर्षि कश्यपके पास गयीं। अदितिने देखा कि महर्षि कश्यप अग्निके समान तेजस्वी, दण्ड धारण किये कृष्ण मृगचर्मपर आसीन तथा वल्कल धारण किये हुए भगवान् भास्करके सदृश देदीप्यमान

हो रहे हैं। इस प्रकारसे उन्हें स्थित देखकर अदितिने प्रार्थना करते हुए कहा—'देव ! आप इस तरह निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हैं ? मेरे पुत्र उत्पन्न होते ही मृत्युको प्राप्त होते जा रहे हैं।' अदितिके इस वचनको सुनकर ऋषियोंमें उत्तम कश्यपजी ब्रह्मलोक गये और उन्होंने अदितिकी बातें ब्रह्माजीको बतलायीं।

ब्रह्माजीने कहा—पुत्र ! हमें भगवान् भास्करके परम दुर्लभ स्थानपर चलना चाहिये। यह कहकर ब्रह्मा कश्यप और अदितिके साथ विमानपर आरूढ होकर सूर्यदेवके भवनको गये। उस समय सूर्यलोककी सभामें कहीं वेद-ध्वनि हो रही थी, कहीं यज्ञ हो रहा था। ब्राह्मण वेदकी शिक्षा दे रहे थे। अठारह पुराणोंके ज्ञाता, विद्याविशारद, मीमांसक, नैयायिक, वेदान्तविद्, लोकायतिक आदि सभी सूर्यकी उपासनामें लगे हुए थे। विद्वान् ब्राह्मण जप, तप, हवन आदिमें संलग्न थे। उस सभामें रश्मिमाली भगवान् दिवाकरको महर्षि कश्यप आदिने देखा। देवताओंके गुरु बृहस्पति, असुरोंके गुरु शुक्राचार्य आदि भी वहींपर भगवान् सूर्यकी उपासना कर रहे थे। दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, नारद, अन्तरिक्ष, तेज, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, प्रकृति, विकृति, अङ्ग-उपाङ्गोंसहित चारों वेद और लव, ऋतु, संकल्प, प्रणव आदि बहुतसे मूर्तिमान् होकर भगवान् भास्करकी स्तुति-उपासना कर रहे थे। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, द्वेष, हर्ष, मोह, मत्सर, मान, वैष्णव, माहेश्वर, सौर, मारुत, विश्वकर्मा तथा अश्विनीकुमार आदि सुन्दर-सुन्दर वचनोंसे भगवान् सूर्यका गुणगान कर रहे थे।

ब्रह्माजीने भगवान् भास्करसे निवेदन किया— भगवन् ! आप देवमाता अदितिके गर्भसे उत्पन्न होकर लोकका कल्याण कीजिये। इस त्रैलोक्यको अपने तेजसे प्रकाशित कीजिये। देवताओंको शरण दीजिये। असुरोंका विनाश एवं अदिति-पुत्रोंकी रक्षा कीजिये।

भगवान् सूर्यने कहा—आप जैसा कह रहे हैं, वैसा ही होगा। प्रसन्न होकर महर्षि कश्यप देवी अदितिके साथ अपने आश्रममें चले आये और ब्रह्माजी भी अपने लोकको चले गये।

सुमन्तु मुनि बोले—महाराज ! कालान्तरमें भगवान् सूर्य अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए, जिससे तीनों लोकोंमें सुख छा गया और दैत्योंका विनाश हो गया देवताओंकी वृद्धि हुई और उनके प्रभावसे सभी लोगोंमें परम आनन्द व्याप्त हो गया।

इस प्रकार देवमाता अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यके जन्म ग्रहण करनेपर आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्वगण गान करने लगे। द्वादशात्मा भगवान् सूर्यकी सभी देवगण, ऋषि-महर्षि तथा दक्ष प्रजापति आदि स्तुति करने लगे। उस समय एकादश रुद्र, अश्विनीकुमार, आठों वसु, महाबली गरुड, विश्वेदेव, साध्य, नागराज वासुकि तथा अन्य बहुतसे नाग और राक्षस भी हाथ जोड़े खड़े थे। पितामह ब्रह्मा भी स्वयं पृथ्वीपर आये और सभी देवता एवं ऋषि-महर्षियोंसे बोले—'देवर्षिगण ! जिस प्रकार बालक-रूपमें उत्पन्न होकर ये सभीको देख रहे हैं, उसी प्रकार ये लोकेश्वर श्रीमान् और विवस्वान्-रूपमें विख्यात होंगे। देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व आदिके जो कारण हैं वे ही आदिदेव भगवान् आदित्य हैं।' इस प्रकार कहकर पितामह ब्रह्माने देवताओं और ऋषियोंसहित उन्हें नमस्कार कर विधिपूर्वक उनकी अर्चना की तत्पश्चात् वे अपने-अपने लोकोंको चले गये।

वेदोंद्वारा गेय तथा इन्द्रादि बारह नामोंसे युक्त भगवान् सूर्यको पुत्र-रूपमें प्राप्तकर महर्षि कश्यप अदितिके साथ परम संतुष्ट हो गये एवं सारा विश्व हर्षसे व्याप्त हो गया तथा सभी राक्षस भयभीत हो गये।

भगवान् सूर्य बोले—महर्षे ! आपके पुत्र नष्ट हो जाते थे, इसलिये गर्भकी सिद्धिके लिये मैं आपके यहाँ पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुआ हूँ।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! इस प्रकार भगवान् भास्करकी आराधना करके ब्रह्माजीने सृष्टि करनेका वर प्राप्त किया और कश्यपमुनिने भी भगवान् भास्करको प्रसन्न कर उन्हें पुत्ररूपमें प्राप्त कर लिया। (अध्याय १५७—१५९)

ब्रह्मादि देवताओंद्वारा सूर्यके विराट्-रूपका दर्शन

महाराज शतानीकने कहा—मुने ! आपने भगवान् सूर्यके अद्भुत चरित्रका वर्णन किया है, जिनका पूजन ब्रह्मा आदि देवता प्रतिदिन विधिपूर्वक करते रहते हैं तथा जिस ब्रह्मकी ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सभी देवता आराधना करते रहते हैं, उसे आप बतायें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! एक बार भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी हिमाचलपर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान् शिव सिरपर अर्धचन्द्र धारण किये भगवान् विवस्वान्‌की पूजा कर रहे हैं। ब्रह्मा और विष्णुको वहाँ आये देखकर शिवजीने उन्हें प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा की तथा उनसे कहा—'भगवन् ! आपलोगोंने भगवान् सूर्यकी आराधना कर उनके किस स्वरूपका दर्शन किया है। मुझे उनके परम रूपको जाननेकी बड़ी ही अभिलाषा है, उसे आप बतायें।'

इसपर वे दोनों बोले—हमलोगोंने भी उस परम अद्भुत रूपको नहीं देखा है। हमें उस परम अद्भुत रूपकी आराधनाके लिये सुवर्णके समान उज्ज्वल पवित्र उदयगिरिपर एक साथ चलना चाहिये। अनन्तर तीनों देव तीव्र गतिसे पर्वतश्रेष्ठ उदयाचलपर गये और वहाँ भगवान् सूर्यनारायणकी विधिपूर्वक आराधना करने लगे। सहस्रों दिव्य वर्षतक पद्मासन लगाकर ब्रह्माजी निश्चल रूपसे स्थिर हो, ऊपर हाथ करके त्रिलोचन भगवान् शङ्कर और सिर नीचे करके पञ्चाग्निका सेवन करते हुए भगवान् विष्णु सूर्यदेवका दर्शन प्राप्त करनेके लिये कठोर तप करने लगे। ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीके उत्तम तपसे संतुष्ट हो भगवान् सूर्यनारायणने प्रकट होकर उनसे कहा—'आपलोग क्या चाहते हैं ? मैं आपलोगोंसे संतुष्ट हूँ और वर देनेके लिये उपस्थित हुआ हूँ।'

उन्होंने कहा—गोपते ! हमलोग आपके दर्शनसे कृत-कृत्य हो गये हैं। पहले ही आपकी आराधना करके हमलोगोंने शुभ वरोंको प्राप्त कर लिया है। आपकी दयासे हमलोग उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करनेमें समर्थ हैं, इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है, किंतु देवदेवेश ! हमलोग आपके परम दुर्लभ रूपका दर्शन करना चाहते हैं।

उनके वचनोंको सुनकर लोकपूजित भगवान् सूर्यने उन्हें अपना परम दुर्लभ तेजस्वी अद्भुत विराट्-रूप दिखलाया। इनके अनेक सिर तथा अनेक मुख हैं, सभी देव तथा सभी लोक उसमें स्थित हैं। पृथ्वी पैर, स्वर्ग सिर, अग्नि नेत्र, पैरकी अँगुलियाँ पिशाच, हाथकी अँगुलियाँ गुह्यक, विश्वेदेव जंघा, यज्ञ कुक्षि, अप्सरागण केश तथा तारागण ही इनके रोम-रूपमें हैं। दसों दिशाएँ इनके कान और दिक्पालगण इनकी भुजाएँ हैं। वायु नासिका, प्रसाद ही क्षमा तथा धर्म ही मन है। सत्य इनकी वाणी, देवी सरस्वती जिह्वा, ग्रीवा महादेवी अदिति और तालु वीर्यवान् रुद्र हैं। स्वर्गका द्वार नाभि, वैश्वानर अग्नि मुख, भगवान् ब्रह्मा हृदय और उदर महर्षि कश्यप हैं, पीठ आठों वसु तथा सभी संधियाँ मरुद्देव हैं। समस्त छन्द दाँत एवं ज्योतियाँ निर्मल प्रभा हैं। महादेव रुद्र प्राण, कुक्षियाँ समुद्र हैं। इनके उदरमें गन्धर्व और नाग हैं। लक्ष्मी, मेधा, धृति, कान्ति तथा सभी विद्याएँ इनके कटिदेशमें स्थित हैं। इनका ललाट ही परमात्माका परमपद है। दो स्तन, दो कुक्षि और चार वेद ये आठ ही इनके यज्ञ हैं।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! सर्वदेवमय भगवान् सूर्यके इस विराट् रूपको देखकर ब्रह्मा, शिव और भगवान् विष्णु परम विस्मित हो गये। उन्होंने बड़ी श्रद्धासे भगवान् सूर्यको प्रणाम किया।

भगवान् सूर्यने कहा—देवो ! आप सबकी कठिन तपस्यासे प्रसन्न होकर आप सबके कल्याणके लिये मैंने योगियोंके द्वारा समाधि-गम्य अपने इस विराट् रूपको दिखलाया है। इसपर वे बोले—भगवन् ! आपने जो कहा है, उसमें कोई भी संदेह नहीं है। इस विराट् रूपका दर्शन पाना योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। आपकी आराधना करने तथा आपका दर्शन करनेपर कुछ अप्राप्य नहीं है। आपके समान इस लोकमें दूसरा कोई देव नहीं है।

राजन् ! ब्रह्मादि देवता परम उत्कृष्ट इस रूपका दर्शन कर हर्षित हो गये और उन्होंने भगवान् सूर्यका पूजन-आराधन कर परम सिद्धि प्राप्त की। (अध्याय १६०)

सूर्योपासनाका फल

शतानीकने पूछा—मुने! आपने भगवान् सूर्यके विषयमें जो कहा, वह सत्य ही है, संसारके मूल कारण तथा परम दैवत भगवान् सूर्य ही हैं, सभीको यही तेज प्रदान करते हैं। भगवान् सूर्यनारायणके पूजनसे जो फल प्राप्त होता है, आप उसे बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! जो व्यक्ति सर्वदेवमय भगवान् सूर्यकी प्रतिष्ठा कर पूजन करता है, वह अमरत्व तथा भगवान् सूर्यका सामीप्य प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति भगवान् सूर्यका तिरस्कार कर सभी देवताओंका पूजन करता है, उस व्यक्तिके साथ भाषण करनेवाला व्यक्ति भी नरकगामी होता है। जो व्यक्ति श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी प्रतिष्ठा कर पूजन-अर्चन करता है, उसे यज्ञ, तप, तीर्थ-यात्रा आदिकी अपेक्षा कोटि गुना अधिक फल प्राप्त होता है तथा उसके मातृकुल, पितृकुल एवं स्त्रीकुल—इन तीनोंका उद्धार हो जाता है और वह इन्द्रलोकमें पूजित होता है तथा वहाँ ज्ञानयोगके आश्रयणसे वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। अथवा जो राज्य चाहता है वह दूसरे जन्ममें सप्तद्वीपवती वसुमतीका राजा होता है। जो व्यक्ति मिट्टीका सर्वदेवमय व्योम बनाकर भगवान् सूर्यका पूजन-अर्चन करता है, वह तीनों लोकोंमें पूजित एवं इस लोकमें धन-धान्यसे परिपूर्ण होकर अन्तमें सूर्यलोकको प्राप्त कर लेता है।

जो व्यक्ति भगवान् सूर्यके पिष्टमय व्योमकी रचनाकर गन्ध, धूप, पुष्प, माला, चन्दन, फल आदि उपचारोंसे पूजा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और कोई क्लेश नहीं पाता। वह भगवान् सूर्यके समान प्रतापपूर्ण हो अव्यय पदको प्राप्त करता है। अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यका मन्दिर निर्माण करानेवाला स्वर्णमय विमानपर आरूढ़ होकर भगवान् सूर्यके साथ विहार करता है। यदि साधन-सम्पन्न होनेपर भी श्रद्धा-भक्तिसे शून्य होकर मन्दिर आदिका निर्माण करता है तो उसे कोई फल नहीं होता। इसलिये अपने धनका तीन भाग करना चाहिये, उसमेंसे दो भाग धर्म तथा अर्थोपार्जनमें व्यय करे और एक भागसे जीवनयापन करे। धन-सम्पत्तिसे सम्पन्न रहनेपर भी यदि कोई बिना भक्तिके अपना सर्वस्व भगवान् सूर्यके लिये अर्पण कर दे, तब भी वह धर्मका भागी नहीं होता, क्योंकि इसमें भक्तिकी ही प्रधानता है[1]। मानव संसारमें दुःख और शोकसे व्याकुल होकर तबतक भटकता है, जबतक भगवान् सूर्यकी पूजा नहीं करता। संसारमें आसक्त प्राणियोंको भगवान् सूर्यके अतिरिक्त और कौन ऐसा देवता है जो बन्धनसे छुटकारा दिला सके।

(अध्याय १६१-१६२)

विभिन्न पुष्पोंद्वारा सूर्य-पूजनका फल

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! अमित तेजस्वी भगवान् सूर्यको स्नान कराते समय 'जय' आदि माङ्गलिक शब्दोंका उच्चारण करना चाहिये तथा शङ्ख, भेरी आदिके द्वारा मङ्गल-ध्वनि करनी चाहिये। तीनों संध्याओंमें वैदिक ध्वनियोंसे श्रेष्ठ फल होता है। शङ्ख आदि माङ्गलिक वाद्योंके सहारे नीराजन करना चाहिये। जितने क्षणोंतक भक्त नीराजन करता है, उतने युग सहस्र वर्ष वह दिव्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। भगवान् सूर्यको कपिला गौके पञ्चगव्यसे और मन्त्रपूत कुशयुक्त जलसे स्नान करानेको ब्रह्मस्नान कहते हैं। वर्षमें एक बार भी ब्रह्मस्नान करानेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

जो पितरोंके उद्देश्यसे शीतल जलसे भगवान् सूर्यको स्नान कराता है, उसके पितर नरकोंसे मुक्त होकर स्वर्ग चले जाते हैं। मिट्टीके कलशकी अपेक्षा ताम्र-कलशसे स्नान कराना सौ गुना श्रेष्ठ होता है। इसी प्रकार चाँदी आदिके कलशद्वारा स्नान करानेसे और अधिक फल प्राप्त होता है। भगवान् सूर्यके दर्शनसे स्पर्श करना श्रेष्ठ है और स्पर्शसे पूजा श्रेष्ठ है और घृत-स्नान कराना उससे भी श्रेष्ठ है। इस लोक और परलोकमें प्राप्त होनेवाले पापोंके फल भगवान् सूर्यको घृतस्नान करानेसे नष्ट हो जाते हैं एवं पुराण-श्रवणसे सात जन्मोंके पाप दूर हो जाते हैं।

एक सौ पल (लगभग छः किलो बीस ग्राम) प्रमाणसे

१-सर्वस्वमपि यो दद्यादर्के भक्तिविवर्जितः। न तेन धर्मभागी स्याद्भक्तिरेवात्र कारणम्॥ (ब्राह्मपर्व १६२। २१)

(जल, पञ्चामृत आदिसे) स्नान कराना 'स्नान' कहलाता है। पचीस पल (लगभग डेढ़ किलो) से स्नान कराना 'अभ्यङ्ग-स्नान' कहलाता है और दो हजार पल (लगभग एक सौ चौबीस किलो) से स्नान करानेको 'महास्नान' कहते हैं।

जो मानव भगवान् सूर्यको पुष्प-फलसे युक्त अर्घ्य प्रदान करता है, वह सभी लोकोंमें पूजित होता है और स्वर्गलोकमें आनन्दित होता है। जो अष्टाङ्ग अर्घ—जल, दूध, कुशका अग्रभाग, घी, दही, मधु, लाल कनेरका फूल तथा लाल चन्दन—बनाकर भगवान् सूर्यको निवेदित करता है, वह दस हजार वर्षतक सूर्यलोकमें विहार करता है। यह अष्टाङ्ग अर्घ भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय है[1]।

बाँसके पात्रसे अर्घ-दान करनेसे सौ गुना फल मिट्टीके पात्रसे होता है, मिट्टीके पात्रसे सौ गुना फल ताम्रके पात्रसे होता है और पलाश एवं कमलके पत्तोंसे अर्घ देनेपर ताम्र-पात्रका फल प्राप्त होता है। रजतपात्रके द्वारा अर्घ प्रदान करना लाख गुना फल देता है। सुवर्णपात्रके द्वारा दिया गया अर्घ कोटि गुना फल देनेवाला होता है। इसी प्रकार स्नान, अर्घ, नैवेद्य, धूप आदिका क्रमशः विभिन्न पात्रोंकी विशेषतासे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है।

धनिक या दरिद्र दोनोंको समान ही फल मिलता है, किंतु जो भगवान् सूर्यके प्रति भक्ति-भावनासे सम्पन्न रहता है, उसे अधिक फल मिलता है। वैभव रहनेपर भी मोहवश जो पूर्ण विधि-विधानके साथ पूजन आदि नहीं करता, वह लोभसे आक्रान्त-चित्त होनेके कारण उसका फल नहीं प्राप्त कर पाता। इसलिये मन्त्र, फल, जल तथा चन्दन आदिसे विधिपूर्वक सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। इससे वह अनन्त फलको प्राप्त करता है। इस अनन्त फल-प्राप्तिमें भक्ति ही मुख्य हेतु है। भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे वह सौ दिव्य कोटि वर्ष सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

राजन्! सूर्यको भक्तिपूर्वक तालपत्रका पंखा समर्पित करनेवाला दस हजार वर्षतक सूर्यलोकमें निवास करता है। मयूर-पंखका सुन्दर पंखा सूर्यको समर्पित करनेवाला सौ कोटि वर्षोंतक सूर्यलोकमें निवास करता है।

नरश्रेष्ठ! हजारों पुष्पोंसे कनेरका पुष्प श्रेष्ठ है, हजारों बिल्वपत्रोंसे एक कमल-पुष्प श्रेष्ठ है। हजारों कमल-पुष्पोंसे एक अगस्त्य-पुष्प श्रेष्ठ है, हजारों अगस्त्य-पुष्पोंसे एक मोंगरा-पुष्प श्रेष्ठ है, सहस्र कुशाओंसे शमीपत्र श्रेष्ठ है तथा हजार शमी-पत्रोंसे नीलकमल श्रेष्ठ है। सभी पुष्पोंमें नीलकमल ही श्रेष्ठ है। लाल कनेरके द्वारा जो भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह अनन्त कल्पोंतक सूर्यलोकमें सूर्यके समान श्रीमान् तथा पराक्रमी होकर निवास करता है। चमेली, गुलाब, विजय, श्वेत मदार तथा अन्य श्वेत पुष्प भी श्रेष्ठ माने गये हैं। नाग-चम्पक, सदाबहार-पुष्प, मुद्गर (मोंगरा) ये सब समान ही माने गये हैं। गन्धयुक्त किंतु अपवित्र पुष्पोंको देवताओंपर नहीं चढ़ाना चाहिये। गन्धहीन होते हुए भी पवित्र कुशादिकोंको ग्रहण करना चाहिये। पवित्र पुष्प सात्त्विक पुष्प हैं और अपवित्र पुष्प तामसी हैं। रात्रिमें मोंगरा और कदम्बका पुष्प चढ़ाना चाहिये। अन्य सभी पुष्पोंको दिनमें ही समर्पित करना चाहिये। अधखिले पुष्प तथा अपक्व पदार्थ भगवान् सूर्यको नहीं चढ़ाने चाहिये। फलोंके न मिलनेपर पुष्प, पुष्प न मिलनेपर पत्र और इनके अभावमें तृण, गुल्म और औषध भी समर्पित किये जा सकते हैं। इन सबके अभावमें मात्र भक्ति-पूर्वक पूजन-आराधनसे भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। जो माघ मासके कृष्ण पक्षमें सुगन्धित मुक्ता-पुष्पोंद्वारा सूर्यकी पूजा करता है, उसे अनन्त फल प्राप्त होता है। संयतचित्त होकर करवीर-पुष्पोंसे पूजा करनेवाला सभी पापोंसे रहित हो सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

अगस्त्यके पुष्पोंसे जो एक बार भी भक्तिपूर्वक सूर्यकी पूजा करता है, वह दस लाख गोदानका फल प्राप्त करता है और उसे स्वर्ग प्राप्त होता है।

मालती, रक्तकमल, चमेली, पुंनाग, चम्पक, अशोक, श्वेत मन्दार, कचनार, अंधुक, करवीर, कल्हार, शमी, तगर,

---

१-आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं दधि तथा मधु। रक्तानि करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम्॥
अष्टाङ्ग एव अर्घो वै ब्रह्मणा परिकीर्तितः। सततं प्रीतिजननो भास्करस्य नराधिप॥

(ब्राह्मपर्व १६३। ३७-३८)

कनेर, केशर, अगस्त्य, बक तथा कमल-पुष्पोंद्वारा यथाशक्ति भगवान् सूर्यकी पूजा करनेवाला कोटि सूर्यके समान देदीप्यमान विमानसे सूर्यलोकको प्राप्त करता है अथवा पृथ्वी या जलमें उत्पन्न पुष्पोंद्वारा श्रद्धापूर्वक पूजन करनेवाला सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

(अध्याय १६३)

सूर्यषष्ठी-व्रतकी महिमा

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! अब आप भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय सूर्यषष्ठी-व्रतके विषयमें सुनें। सूर्यषष्ठी-व्रत करनेवालेको जितेन्द्रिय एवं क्रोधरहित होकर अयाचित-व्रतका पालन करते हुए भगवान् सूर्यकी पूजामें तत्पर रहना चाहिये। व्रतीको अल्प और सात्त्विक-भोजी तथा रात्रिभोजी होना चाहिये। स्नान एवं अग्निकार्य करते रहने चाहिये और अधःशायी होना चाहिये। मध्याह्नमें देवताओंद्वारा, पूर्वाह्नमें ऋषियोंद्वारा, अपराह्नमें पितरोंद्वारा और संध्यामें गुह्यकोंद्वारा भोजन किया जाता है। अतः इन सभी कालोंका अतिक्रमणकर सूर्यव्रतीके भोजनका समय रात्रि ही माना गया है। मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी षष्ठीसे यह व्रत आरम्भ करना चाहिये। इस दिन भगवान् सूर्यकी 'अंशुमान्' नामसे पूजा करनी चाहिये तथा रात्रिमें गोमूत्रका प्राशनकर निराहार हो विश्राम करना चाहिये। ऐसा करनेवाला व्यक्ति अतिरात्र-यज्ञका फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार पौषमें भगवान् सूर्यकी 'सहस्रांशु' नामसे पूजा करे तथा घृतका प्राशन करे, इससे वाजपेययज्ञका फल प्राप्त होता है। माघ मासमें कृष्ण पक्षकी षष्ठीको रात्रिमें गोदुग्ध-पान करे। सूर्यकी पूजा 'दिवाकर' नामसे करे, इससे महान् फल प्राप्त होता है। फाल्गुन मासमें 'मार्तण्ड' नामसे पूजाकर, गोदुग्धका पान करनेसे अनन्त कालतक सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। चैत्र मासमें भास्करकी 'विवस्वान्' नामसे भक्तिपूर्वक पूजाकर हविष्य-भोजन करनेवाला सूर्यलोकमें अप्सराओंके साथ आनन्द प्राप्त करता है। वैशाख मासमें 'चण्डकिरण' नामसे सूर्यकी पूजा करनेसे दस हजार वर्षोंतक सूर्यलोकमें आनन्द प्राप्त करता है। इसमें पयोव्रती होकर रहना चाहिये। ज्येष्ठ मासमें भगवान् भास्करकी 'दिवस्पति' नामसे पूजा कर गो-शृङ्गका जल-पान करना चाहिये। ऐसा करनेसे कोटि गोदानका फल प्राप्त होता है। आषाढ़ मासके कृष्ण पक्षकी षष्ठीको 'अर्क' नामसे सूर्यकी पूजाकर, गोमयका प्राशन करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। श्रावण मासमें 'अर्यमा' नामसे सूर्यका पूजनकर दुग्ध-पान करे, ऐसा करनेवाला सूर्यलोकमें दस हजार वर्षोंतक आनन्दपूर्वक रहता है। भाद्रपद मासमें 'भास्कर' नामसे सूर्यकी पूजाकर पञ्चगव्य-प्राशन करे, इससे सभी यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। आश्विन मासके कृष्ण पक्षकी षष्ठीमें 'भग' नामसे सूर्यकी पूजा करे, इसमें एक पल गोमूत्रका प्राशन करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी षष्ठीको 'शक्र' नामसे सूर्यकी पूजाकर दुर्वाङ्कुरका एक बार भोजन करनेसे राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है।

वर्षके अन्तमें सूर्य-भक्तिपरायण ब्राह्मणोंको मधुसंयुक्त पायसका भोजन कराये तथा यथाशक्ति स्वर्ण और वस्त्रादि समर्पित करे। भगवान् सूर्यके लिये काले रंगकी दूध देनेवाली गाय देनी चाहिये। जो इस व्रतका एक वर्षतक निरन्तर विधिपूर्वक सम्पादन करता है, वह सभी पापोंसे विनिर्मुक्त हो जाता है एवं सभी कामनाओंसे पूर्ण होकर शाश्वत कालतक सूर्यलोकमें आनन्दित रहता है।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! इस कृष्ण-षष्ठी-व्रतको भगवान् सूर्यने अरुणसे कहा था। यह व्रत सभी पापोंका नाश करनेवाला है। भक्तिपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजा करनेवाला मनुष्य अमित तेजस्वी भगवान् भास्करके अमित स्थानको प्राप्त करता है। (अध्याय १६४)

उभयसप्तमी-व्रतका वर्णन

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन्! अब मैं आपको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्गकी प्राप्ति करानेवाले भगवान् सूर्यके उत्तम व्रतको बतलाता हूँ। पौष मासके उभयपक्षकी सप्तमियोंको जो शालि (धान), गेहूँके आटेसे बने पकान्न तथा दूधका रात्रिमें भोजन करता है और जितेन्द्रिय रहता है, सत्य बोलता है तथा दिनभर उपवास करता है, तीनों संध्याओंमें

भगवान् सूर्य तथा अग्निकी उपासना करता है, सभी भोग-पदार्थोंका परित्याग कर भूमिपर शयन करता है, मास बीतनेपर सप्तमीको घृतादिके द्वारा भगवान् सूर्यको स्नान कराता है तथा उनकी पूजा करता है, नैवेद्यमें मोदक, पका दूध तथा पक्वान्न निवेदित करता है, आठ ब्राह्मणोंको भोजन कराता है और भगवान्‌को कपिला गाय निवेदित करता है, वह कोटि सूर्योंके समान देदीप्यमान उत्तम विमानमें आरूढ होकर भगवान् अंशुमालीके परम स्थानको प्राप्त करता है। कपिला गौके तथा उसकी संततियोंके शरीरमें जितने रोम हैं, उतने हजार युग वर्षोंतक वह सूर्यलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। अपने इक्कीस कुलोंके साथ वह यथेच्छ भोगोंका उपभोगकर अन्तमें ज्ञान-योगका समाश्रयण कर मुक्त हो जाता है।

राजन्! इस प्रकार मैंने आपको इस संसार-समुद्रसे पार उतारनेवाले सौरधर्ममें मोक्ष-क्रमके उपाय बतलाये। यह विद्वानोंके लिये समाश्रयणीय है।

इसी प्रकार अन्य महीनोंमें (माघसे मार्गशीर्षतक) निर्दिष्ट नियमोंका पालन करते हुए व्रत और भगवान् सूर्यकी पूजा करनेसे विभिन्न कामनाओंकी पूर्ति होती है तथा सूर्य-लोककी प्राप्ति होती है।

कुरुनन्दन! अहिंसा, सत्य-वचन, अस्तेय, शान्ति, क्षमा, ऋजुता, तीनों कालोंमें स्नान तथा हवन, पृथ्वी-शयन, रात्रिभोजन—इनका पालन सभी व्रतोंमें करना चाहिये। इन गुणोंका आश्रयणकर उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले व्यक्तिके सभी पाप और भय नष्ट हो जाते हैं एवं रोगोंका नाश हो जाता है और सभी कामनाओंके अनुरूप फलकी प्राप्ति होती है। इस प्रकारका सूर्य-व्रती व्यक्ति अमित तेजस्वी होकर सूर्य-लोकको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १६५)

निक्षुभार्क-सप्तमी तथा निक्षुभार्क-चतुष्टय-व्रत-माहात्म्य-वर्णन

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! जो स्त्री उत्तम पुत्रकी आकाङ्क्षा रखती है, उसे निक्षुभार्क नामका व्रत करना चाहिये। यह व्रत स्त्री एवं पुरुषमें परस्पर प्रीतिवर्धक, अवियोगकारक और धर्म, अर्थ तथा कामका साधक है। इस व्रतको षष्ठी, सप्तमी, संक्रान्ति या रविवारके दिन करना चाहिये। भगवान् **सूर्यके सहित उनकी पत्नी महादेवी निक्षुभाकी द्यौ-रूपमें कांस्य,** रजत तथा स्वर्णकी सुन्दर प्रतिमा बनवाये। उसे घृतादिसे स्नान कराकर गन्ध-माल्यादि तथा वस्त्रोंसे अलंकृत करे। अनन्तर प्रतिमा स्थापित किये उस वितान और छत्रसे शोभित पात्रको सिरपर रखकर भगवान् सूर्यके मन्दिरमें ले जाय। उस प्रतिमाको एक वेदीपर स्थापित करे और प्रदक्षिणापूर्वक उसे नमस्कार कर क्षमा-याचना करे एवं उपवास रहकर हविके द्वारा हवन करे। फिर सूर्य-भक्त ब्राह्मणोंको शुक्ल वस्त्र पहनाकर भोजन कराये। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति देदीप्यमान महायानसे सूर्यलोकमें सूर्यभक्तोंके साथ आनन्द प्राप्त करता है, फिर वह अनन्त वर्षोंतक विष्णुलोकमें आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! जो स्त्री सौभाग्यकी आकाङ्क्षासे संयतेन्द्रिय होकर षष्ठी अथवा सप्तमीको एक वर्षतक भोजन नहीं करती और वर्षके अन्तमें निक्षुभा तथा सूर्यकी प्रतिमा बनाकर विधिपूर्वक स्नानादि पूर्वोक्त क्रियाएँ करती है, वह पूर्वोक्त फलोंको प्राप्त करती है तथा चारों द्वारोंसे सुशोभित स्वर्णमय यानके द्वारा रमणीय सूर्यलोकमें जाकर सभी फलोंको प्राप्त कर सौर आदि सभी लोकोंमें अभीप्सित फलका उपभोग कर इस लोकमें जन्म ग्रहण करती है तथा राजाको पतिरूपमें प्राप्त करती है।

इसी प्रकार जो नारी कृष्ण पक्षकी सप्तमीको उपवास कर वर्षके अन्तमें शालिके चूर्णसे सुन्दर निक्षुभार्ककी प्रतिमाका निर्माण करके पीत रंगकी मालासे और पीत वस्त्रोंसे उनकी पूजा करती है तथा ये सभी कर्म सूर्यको निवेदित करती है, वह हाथी-दाँतके समान कान्तिवाले महायानसे सातों लोकोंमें गमनकर, सौ करोड़ वर्षतक सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होती है। नरश्रेष्ठ! सौर आदि लोकोंमें भोगोंका उपभोगकर क्रमशः इस लोकमें जन्म ग्रहण करती तथा अभीप्सित धन-धान्य-समन्वित मनोऽनुकूल पतिको प्राप्त करती है[1]।

जो दृढव्रती नारी माघ मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको

१-चतुर्वर्गचिन्तामणि (हेमाद्रि)के व्रत-खण्डमें भविष्यपुराणके नामसे निक्षुभार्क-चतुष्टय-नामक इस व्रतका संग्रह हुआ है। उपलब्ध

सभी भोगोंका परित्याग कर एक वर्षतक प्रत्येक सप्तमीको उपवास करती और वर्षके अन्तमें गन्धादि पदार्थ निक्षुभार्कको निवेदित करती है तथा मगकी स्त्रियोंको भोजन कराती है, वह गन्धर्वोंसे सुशोभित विचित्र दिव्य महायानद्वारा सूर्यलोकमें जाकर अनेक सहस्र वर्षोंतक निवास करती है। वहाँ यथेष्ट सभी भोगोंका उपभोग कर इस लोकमें आनेपर राजाको पति-रूपमें वरण करती है।

राजन्! जो स्त्री पाप और भयका नाश करनेवाले इस निक्षुभार्क-व्रतको करती है, वह परमपद प्राप्त करती है। एक वर्षतक परम श्रद्धाके साथ इस व्रतको सम्पन्न कर वर्षान्तमें भोजक-दम्पतिको भोजन कराये और गन्ध-माल्य, सुन्दर वस्त्र आदिसे उनकी पूजा करे। ताम्रमय पात्रमें हीरेसे अलंकृत निक्षुभार्ककी सुवर्णमयी प्रतिमा भोजक-दम्पतिको निवेदित करे। देवी निक्षुभा भोजकी हैं और अर्क भोजक हैं। अतः उन दोनोंकी विधिवत् श्रद्धापूर्वक पूजा करनी चाहिये।

(अध्याय १६६-१६७)

कामप्रद स्त्री-व्रतका वर्णन

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! जो स्त्री कार्तिक मासके दोनों पक्षोंकी षष्ठी एवं सप्तमी तिथियोंमें क्षमा, अहिंसा आदि नियमोंका पालन कर, संयतेन्द्रिय होती हुई एकभुक्त रहती एवं उपवास करती है और गुड़-घीसे युक्त शालि-अन्न श्रद्धाके साथ भगवान् सूर्यको अर्पित करती है तथा करवीरके पुष्प और घृतके साथ गुग्गुल निवेदित करती है, वह स्त्री इन्द्रनीलके समान सार्वकालिक विमानपर बैठकर दस लाख वर्षोंतक सूर्यलोकमें आनन्दमय जीवन व्यतीत करती है। सभी लोकोंके भोगोंको भोगकर क्रमशः इस लोकमें आकर जन्म ग्रहण करती तथा अभीप्सित पतिको प्राप्त करती है। इस प्रकार वर्षभरके सभी व्रतोंकी विधि समान कही गयी है। एक समय भोजन और उपवासका समान ही फल होता है। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, सूर्यपूजा, अग्नि-हवन, संतोष तथा अचौर्यव्रत—ये दस सभी व्रतोंके लिये सामान्य (आवश्यक) धर्म (अङ्ग) हैं।

इसी तरह मार्गशीर्ष आदि मासोंमें निर्दिष्ट नियमोंका पालन करते हुए सूर्यकी पूजा करनेसे अभ्युदयकी प्राप्ति होती है, साथ ही सहस्रों वर्षोंतक सूर्यलोकका सुख भोगकर वह नारी अन्तमें राजपत्नी बनती है।

जो कोई भी पुरुष या स्त्री अथवा नपुंसक भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं वे सभी अपने मनोऽनुकूल फल प्राप्त करते हैं। (अध्याय १६८)

भगवान् सूर्यके निमित्त गृह एवं रथ आदिके दानका माहात्म्य

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! अपने वित्तके अनुसार मिट्टी, लकड़ी, पत्थर तथा पके हुए ईंटोंसे जो मठ या गृहका निर्माण कर उसे सभी उपकरणोंसे युक्त करके भगवान् सूर्यके लिये समर्पित करता है वह सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। माघ मासमें तन्द्रारहित होकर एक-भुक्तव्रत करे और मासके अन्तमें एक रथका निर्माण करे जो विचित्र वस्त्रसे सुशोभित, चार श्वेत अश्वोंसे अलंकृत, श्वेत ध्वज, पताका एवं छत्र, चामर, दर्पणसे युक्त हो। उस रथपर ढाई सेर चावलके चूर्णसे सूर्यकी प्रतिमाका निर्माण कर उसे संज्ञा देवीके साथ रथके पिछले भागमें (जहाँ रथी बैठता है) स्थापित कर शङ्ख, भेरी आदि ध्वनियोंके साथ रात्रिमें राजमार्गमें उस रथको घुमाकर क्रमशः धीरे-धीरे सूर्य-मन्दिरमें ले जाय। वहाँ जागरण एवं पूजा करे तथा दीपक एवं दर्पण आदिसे अलंकृत कर रात्रि व्यतीत करे। प्रातः मधु, क्षीर और घृतसे उस प्रतिमाको स्नान कराकर दीन, अन्ध एवं अनाथोंको अपनी शक्तिके अनुसार भोजन कराकर दक्षिणा दे और संवाहनसे युक्त रथ भगवान् भास्करको निवेदित करे तथा अपने बन्धुओंके साथ भोजन करे।

भविष्यपुराणमें पाठका कुछ अंश कम है, जिसे हेमाद्रिके आधारपर यहाँ दिया जा रहा है—

जो नारी एक वर्षतक संयतेन्द्रिय होकर सप्तमीको निराहार व्रत रखती है और जिसकी कर्णिकाएँ सुवर्णकी हों ऐसे चाँदीके कमलको, पिष्टमय गजका निर्माणकर उसको पीठपर स्थापित कर वर्षान्तमें उसका दान करती है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। शेष पूजन पूर्वोक्त विधिसे ही करना चाहिये। इससे वह पुरुषरूपसे सभी सौरादि लोकोंमें भ्रमण करते हुए पृथ्वीलोकमें आकर कुलीन तथा रूपसम्पन्न महाबली राजाको पतिरूपमें प्राप्त करती है।

मन्त्र और धर्मसे समन्वित अपने सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ यह सूर्यरथ-व्रत समस्त कामनाओं तथा अर्थकी सिद्धि करनेवाला है। सभी व्रतोंके पुण्य और सभी यज्ञोंके फल इसी व्रतके करनेसे प्राप्त हो जाते हैं। जो भगवान् सूर्यके निमित्त एक सवत्सा गौ दान करता है, वह सप्तद्वीपवती वसुन्धराके दानका फल प्राप्त करता है। (अध्याय १६९-१७०)

सौरधर्ममें सदाचरणका वर्णन

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! अब मैं सौरधर्मसे सम्बद्ध सदाचारोंका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ। सूर्य-उपासकको भूखे-प्यासे, दीन-दुःखी, थके हुए, मलिन तथा रोगी व्यक्तिका अपनी शक्तिके अनुसार पालन और रक्षण करना चाहिये, इससे सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। पतित, नीच तथा चाण्डाल और पक्षी आदि सभी प्राणियोंको अपनी शक्तिके अनुसार दी गयी थोड़ी भी वस्तु करुणाके कारण दिये जानेसे अक्षय-फल प्रदान करती है, अतः सभी प्राणियोंपर दया करनी चाहिये। जो मधुर वाणी बोलता है, उसे इस लोक तथा परलोकमें सभी सुख प्राप्त होते हैं। अमृत प्रवाहित करनेवाली प्रिय वाणी चन्दनके स्पर्शके समान शीतल होती है। धर्मसे युक्त वाणी बोलनेवालेको अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है।[1] प्रिय वाणी स्वर्गका अचल सोपान है, इसकी तुलनामें दान, पूजन, अध्यापन आदि सब व्यर्थ है। अतिथिके आनेपर सादर उससे कुशल-प्रश्न करना चाहिये और यात्राके समय 'आपका मार्ग मङ्गलमय हो, आपको सभी कार्यके साधक सुख नित्य प्राप्त हों'—ऐसा कहना चाहिये। सभी समय ऐसे आशीर्वादात्मक वचन बोलने चाहिये। नमस्कारात्मक वाक्यमें 'स्वस्ति', मङ्गल-वचन तथा सभी कर्मोंमें 'आपका नित्य कल्याण हो', ऐसा कहना चाहिये। इस प्रकारके आचरणोंका अनुष्ठान करके व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। मनुष्योंको जैसी भक्ति भगवान् सूर्यमें हो वैसी ही भक्ति सूर्यभक्तोंके प्रति भी रखनी चाहिये। किसीके द्वारा आक्रोश करने या ताडित होनेपर जो न आक्रोश करता है, न ताड़न करता है, वाणीमें अधिकार होनेके कारण ऐसा क्षमाशील एवं शान्त व्यक्ति सदा दुःखसे रहित होता है। सभी तीर्थोंमें क्षमा सबसे श्रेष्ठ है, इसलिये सभी क्रियाओंमें क्षमा धारण करना चाहिये। ज्ञान, योग, तप एवं यज्ञ-दानादि सत्क्रियाएँ क्रोधी व्यक्तिके लिये व्यर्थ हो जाती हैं, इसलिये क्रोधका परित्याग कर देना चाहिये[2]। अप्रिय वाणी मर्म, अस्थि, प्राण तथा हृदयको जलानेवाली होती है, इसलिये अप्रिय वाणीका कभी प्रयोग नहीं करना चाहिये। क्षमा, दान, तेजस्विता, सत्य, शम, अहिंसा—ये सब भगवान् सूर्यकी कृपासे ही प्राप्त होते हैं।

सुमन्तु मुनि पुनः बोले—महाराज! अब आप आदित्यसम्मत सौर-धर्मको पुनः सुनें। यह सौर-धर्म पाप-नाशक, भगवान् सूर्यको प्रिय तथा परम पवित्र है। यदि मार्गमें कहीं रविकी पूजा-अर्चा होती देखे तो यह समझना चाहिये कि वहाँ भगवान् सूर्यदेव स्वयं प्रत्यक्ष उपस्थित हैं। भगवान् सूर्यका मन्दिर देखकर वहाँ भगवान् सूर्यको नमस्कार करके ही वहाँसे आगे जाना चाहिये। देव-पर्व, उत्सव, श्राद्ध तथा पुण्य दिनोंमें विधिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। देवगण तथा पितृगण सूर्यका आश्रयण करके ही स्थित हैं। भगवान् सूर्यके प्रसन्न होनेपर निःसंदेह सभी प्रसन्न हो जाते हैं। सौर-धर्मके अनुष्ठानसे ज्ञान प्राप्त होता है तथा उससे वैराग्य। ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न व्यक्तिकी सूर्ययोगमें प्रवृत्ति होती है। सूर्यके योगसे वह सर्वज्ञ एवं परिपूर्ण हो जाता है तथा अपनी आत्मामें अवस्थित होकर सूर्यके समान स्वर्गमें आनन्द-लाभ करता है।

ब्रह्मचर्य, तप, मौन, क्षमा तथा अल्पाहार—ये तपस्वियोंके पाँच विशिष्ट गुण हैं। भाग्य या अन्य विशिष्ट मार्गसे तथा न्यायपूर्वक प्राप्त धन गुणवान् व्यक्तिको देना ही दान है। हजारों सस्य-राशियोंको उत्पन्न करनेवाली जल-युक्त उर्वरा भूमिका दान भूमिदान कहा जाता है। सभी दोषोंसे रहित,

---

१-न हीदृक् स्वर्गयानाय यथा लोके प्रियं वचः। इहामुत्र सुखं तेषां वाग्येषां मधुरा भवेत्॥
अमृतस्यन्दिनीं वाचं चन्दनस्पर्शशीतलाम्। धर्माविरोधिनीमुक्त्वा सुखमक्षय्यमाप्नुयात्॥ (ब्राह्मपर्व १७१। ३८-३९)

२-सर्वेषामेव तीर्थानां क्षान्तिः परमपूजिता। तस्मात्पूर्वं प्रयत्नेन क्षान्तिः कार्या क्रियासु वै॥
ज्ञानयोगतपो यस्य यज्ञदानानि सत्क्रिया। क्रोधनस्य वृथा यस्मात् तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत्॥ (ब्राह्मपर्व १७१। ४७-४८)

कुलीन, अलंकृता कन्या निर्धन विद्वान् द्विजको देना कन्यादान कहा जाता है। मध्यम या उत्तम नवीन वस्त्रका दान वस्त्रदान कहा जाता है। एक मासमें दो सौ चालीस ग्रासोंका[1] भक्षण करना चान्द्रायण[2]-व्रत कहलाता है। सभी शास्त्रोंके ज्ञाता तथा तपस्यापरायण जितेन्द्रिय ऋषियों एवं देवोंसे सेवित जल-स्थान तीर्थ कहा जाता है। सूर्यसम्बन्धी स्थानोंको पुण्य-क्षेत्र कहा जाता है। उन सूर्यसम्बन्धी क्षेत्रोंमें मरनेवाला व्यक्ति सूर्य-सायुज्यको प्राप्त करता है। तीर्थोंमें दान-देनेसे, उद्यान लगाने एवं देवालय, धर्मशाला आदि बनवानेसे अक्षय फल प्राप्त होता है। क्षमा एवं निःस्पृहता, दया, सत्य, दान, शील, तप तथा अध्ययन—इन आठ अङ्गोंसे युक्त व्यक्ति श्रेष्ठ पात्र कहा जाता है। भगवान् सूर्यमें भक्ति, क्षमा, सत्य, दसों इन्द्रियोंका विनिग्रह तथा सभीके प्रति मैत्रीभाव रखना सौर-धर्म है।

जो भक्तिपूर्वक भविष्यपुराण लिखवाता है, वह सौ कोटि युग वर्षोंतक सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो सूर्यमन्दिरका निर्माण करवाता है, उसे उत्तम स्थानकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय १७१-१७२)

सौर-धर्मकी महिमाका वर्णन, ब्रह्माकृत सूर्य-स्तुति

राजा शतानीकने कहा—ब्राह्मणश्रेष्ठ! आप सौर-धर्मका पुनः विस्तारसे वर्णन कीजिये।

सुमन्तु मुनि बोले—महाबाहो! तुम धन्य हो, इस लोकमें सौर-धर्मका प्रेमी तुम्हारे समान अन्य कोई भी राजा नहीं है। इस सम्बन्धमें मैं आपको प्राचीन कालमें गरुड एवं अरुणके बीच हुए संवादको पुनः प्रस्तुत कर रहा हूँ। आप इसे ध्यानपूर्वक सुनें।

अरुणने कहा—खगश्रेष्ठ! यह सौर-धर्म अज्ञान-सागरमें निमग्न समस्त प्राणियोंका उद्धार करनेवाला है। पक्षिराज! जो लोग भक्तिभावसे भगवान् सूर्यका स्मरण-कीर्तन और भजन करते है, वे परमपदको प्राप्त होते हैं। खगाधिप! जिसने इस लोकमें जन्म ग्रहणकर इन देवेश भगवान् भास्करकी उपासना नहीं की, वह संसारके क्लेशोंमें ही निमग्न रहता है। मनुष्य-जीवन परम दुर्लभ है, इसे प्राप्त कर जिसने भगवान् सूर्यका पूजन किया, उसीका जन्म लेना सफल है। जो श्रद्धा-भक्तिसे भगवान् सूर्यका स्मरण करता है, वह कभी किसी प्रकारके दुःखका भागी नहीं होता।

जिन्हें महान् भोगोंके सुख-प्राप्तिकी कामना है तथा जो राज्यासन पाना चाहते है अथवा स्वर्गीय सौभाग्य-प्राप्तिके इच्छुक हैं एवं जिन्हें अतुल कान्ति, भोग, त्याग, यश, श्री, सौन्दर्य, जगत्‌की ख्याति, कीर्ति और धर्म आदिकी अभिलाषा है, उन्हें सूर्यकी भक्ति करनी चाहिये।

जो परम श्रद्धा-भावसे भगवान् सूर्यकी आराधना करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। विविध आकारवाली डाकिनियाँ, पिशाच और राक्षस अथवा कोई भी उसे कुछ भी पीड़ा नहीं दे सकते। इनके अतिरिक्त कोई भी जीव उसे नहीं सता सकते। सूर्यकी उपासना करनेवाले मनुष्यके शत्रुगण नष्ट हो जाते हैं और उन्हें संग्राममें विजय प्राप्त होती है। वीर! वह नीरोग होता है। आपत्तियाँ उसका स्पर्शतक नहीं कर पातीं। सूर्योपासक मनुष्यकी धन, आयु, यश, विद्या और सभी प्रकारके कल्याण-मङ्गलकी अभिवृद्धि होती रहती है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

ब्रह्माजीने भगवान् सूर्यकी आराधना कर ब्रह्म-पदकी प्राप्ति की थी। देवोंके ईश भगवान् विष्णुने विष्णुत्व-पदको सूर्यके अर्चनसे ही प्राप्त किया है। भगवान् शंकर भी भगवान् सूर्यकी आराधनासे ही जगन्नाथ कहे जाते हैं तथा उनके

१-शुक्ल पक्षमें प्रतिदिन एक-एक ग्रासकी वृद्धि तथा कृष्ण पक्षमें एक-एक ग्रासकी न्यूनताके नियमका पालन करनेसे दो सौ चालीस ग्रास एक मासमें होते हैं।

२-चान्द्रायणके मुख्य तीन भेद है—यव-मध्य, पिपीलिका-मध्य और शिशु-चान्द्रायण। यव-मध्यमें शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे आरम्भ कर पूर्णिमाको पंद्रह ग्राससे लेकर क्रमशः घटाते हुए अमावास्याको समाप्त कर दिया जाता है। पिपीलिकामें पूर्णिमाको प्रारम्भ कर कृष्ण पक्षमें क्रमशः एक-एक ग्रास घटाते हुए अमावास्याको उपवास कर फिर पूर्णिमाको पूरा किया जाता है और शिशु या सामान्य चान्द्रायणमें प्रतिदिन आठ ग्रास लिया जाता है। इस प्रकार तीस दिनोंमें दो सौ चालीस ग्रास हो जाता है।

प्रसादसे ही उन्हें महादेवत्व-पद प्राप्त हुआ है एवं उनकी ही आराधनासे एक सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्रने भी इन्द्रत्वको प्राप्त किया है। मातृवर्ग, देवगण, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस और सभी सुरोंके नायक भगवान् सूर्यकी सदा पूजा किया करते हैं। यह समस्त जगत् भगवान् सूर्यमें ही नित्य प्रतिष्ठित है। जो मनुष्य अन्धकारनाशक भगवान् सूर्यकी पूजा नहीं करता, वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अधिकारी नहीं है। पक्षिश्रेष्ठ ! आपत्तिग्रस्त होनेपर भी भगवान् सूर्यकी पूजा सदा करणीय है। जो मनुष्य भगवान् सूर्यकी पूजा नहीं करता, उसका जीवन व्यर्थ है। प्रत्येक व्यक्तिको देवाधिदेव भगवान् सूर्यकी पूजा-उपासना करके ही भोजन करना चाहिये। जो सूर्यभक्त हैं, वे समस्त द्वन्द्वोंके सहन करनेवाले, वीर, नीति-विधि-युक्तचित्त, परोपकारपरायण तथा गुरुकी सेवामें अनुरक्त रहते हैं। वे अमानी, बुद्धिमान्, असक्त, अस्पर्धावाले, निःस्पृह, शान्त, स्वात्मानन्द, भद्र और नित्य स्वागतवादी होते हैं। सूर्यभक्त अल्पभाषी, शूर, शास्त्रमर्मज्ञ, प्रसन्नमनस्क, शौचाचारसम्पन्न और दाक्षिण्ययुक्त होते हैं।

सूर्यके भक्त दम्भ, मत्सरता, तृष्णा एवं लोभसे वर्जित हुआ करते हैं। वे शठ और कुत्सित नहीं होते। जिस प्रकार कमलका पत्र जलसे निर्लिप्त रहता है, उसी प्रकार सूर्यभक्त मनुष्य विषयोंमें कभी लिप्त नहीं होते। जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं होती, तबतक भगवान् सूर्यकी आराधना सम्पन्न कर लेनी चाहिये; क्योंकि मानव असमर्थ होनेपर इसे नहीं कर सकता और यह मानव-जीवन यों ही व्यर्थ चला जाता है। भगवान् सूर्यकी पूजाके समान इस जगत्में अन्य कोई भी धर्मका कार्य नहीं है। अतः देवदेवेश भगवान् सूर्यका पूजन करे। जो मानव भक्तिपूर्वक शान्त, अज, प्रभु, देवदेवेश सूर्यकी पूजा किया करते हैं, वे इस लोकमें सुख प्राप्त करके परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। सर्वप्रथम ब्रह्माजीने अपने परम प्रहृष्ट अन्तरात्मासे भगवान् सूर्यकी पूजा कर अञ्जलि बाँध कर जो स्तोत्र[1] कहा था, उसका भाव इस प्रकार है—

'षडैश्वर्यसम्पन्न, शान्त-चित्तसे युक्त, देवोंके मार्ग-प्रणेता एवं सर्वश्रेष्ठ श्रीभगवान् सूर्यको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। जो देवदेवेश शाश्वत, शोभन, शुद्ध, दिवस्पति, चित्रभानु, दिवाकर और ईशोंके भी ईश हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। समस्त दुःखोंके हर्ता, प्रसन्नवदन, उत्तमाङ्ग, वरके स्थान, वर-प्रदाता, वरद तथा वरेण्य भगवान् विभावसुको मैं प्रणाम करता हूँ। अर्क, अर्यमा, इन्द्र, विष्णु, ईश, दिवाकर, देवेश्वर, देवरत और विभावसु नामधारी भगवान् सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ।' इस स्तुतिका जो नित्य श्रवण करता है, वह परम कीर्तिको प्राप्तकर सूर्यलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १७३-१७४)

सौर-धर्ममें शान्तिक कर्म एवं अभिषेक-विधि

गरुडजीने पूछा—अरुण ! जो आधि-व्याधिसे पीड़ित एवं रोगी, दुष्ट ग्रह तथा शत्रु आदिसे उत्पीडित और विनायकसे गृहीत हैं, उन्हें अपने कल्याणके लिये क्या करना चाहिये ? आप इसे बतलानेकी कृपा करें।

अरुणजी बोले—विविध रोगोंसे पीड़ित, शत्रुओंसे संतप्त व्यक्तियोंके लिये भगवान् सूर्यकी आराधनाके अतिरिक्त अन्य कोई भी कल्याणकारी उपाय नहीं है, अतः ग्रहोंके घात और उपघातके नाशक, सभी रोगों एवं राज-उपद्रवोंको शमन करनेवाले भगवान् सूर्यकी आराधना करनी चाहिये।

गरुडजीने पूछा—द्विजश्रेष्ठ ! ब्रह्मवादिनीके शापसे मैं पंखविहीन हो गया हूँ, आप मेरे इन अङ्गोंको देखें। मेरे लिये अब कौन-सा कार्य उपयुक्त है ? जिससे मैं पुनः पंखयुक्त हो जाऊँ।

अरुणजी बोले—गरुड ! तुम शुद्ध-चित्तसे अन्धकारको

१-भगवन्तं भगकरं शान्तचित्तमनुत्तमम्। देवमार्गप्रणेतारं प्रणतोऽस्मि रविं सदा॥
शाश्वतं शोभनं शुद्धं चित्रभानुं दिवस्पतिम्। देवदेवेशमीशेशं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥
सर्वदुःखहरं देवं सर्वदुःखहरं रविम्। वराननं वराङ्गं च वरस्थानं वरप्रदम्॥
वरेण्यं वरदं नित्यं प्रणतोऽस्मि विभावसुम्। अर्कमर्यमणं चेन्द्रं विष्णुमीशं दिवाकरम्॥
देवेश्वरं देवरतं प्रणतोऽस्मि विभावसुम्। य इदं शृणुयान्नित्यं ब्रह्मणोक्तं स्तवं परम्।
स हि कीर्तिं परां प्राप्य पुनः सूर्यपुरं व्रजेत्॥ (ब्राह्मपर्व १७४। ३६—४०)

दूर करनेवाले जगन्नाथ भगवान् भास्करकी पूजा एवं हवन करो।

गरुडजीने कहा—मैं विकलाङ्ग होनेसे भगवान् सूर्यकी पूजा एवं अग्निकार्य करनेमें असमर्थ हूँ। इसलिये मेरी शान्तिके लिये अग्निका कार्य आप सम्पादित करें।

अरुणजी बोले—विनतानन्दन! महाव्याधिसे प्रपीडित होनेके कारण तुम इसके सम्पादनमें समर्थ नहीं हो, अतः मैं तुम्हारे रोगकी शान्तिके लिये पावकार्चन (अग्निहोम) करूँगा। यह लक्ष-होम सभी पापों, विघ्नों तथा व्याधियोंका नाशक, महापुण्यजनक, शान्ति प्रदान करनेवाला, अपमृत्यु-निवारक, महान् शुभकारी तथा विजय प्रदान करनेवाला है। यह सभी देवोंको तृप्ति प्रदान करनेवाला तथा भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय है।

इस पावकार्चनमें सूर्य-मन्दिरके अग्निकोणमें गोमयसे भूमिको लीपकर अग्निकी स्थापना करे और सर्वप्रथम दिक्पालोंको आहुति प्रदान करे[1]।

खगश्रेष्ठ! इस प्रकार विधिपूर्वक आहुतियाँ प्रदान करनेके अनन्तर '**ॐ भूर्भुवः स्वाहा**' इसके द्वारा लक्ष हवनका सम्पादन करे। सौर-महाहोममें यही विधि कही गयी है। भगवान् भास्करके उद्देश्यसे इस अग्निकार्यको करे। यह सभी लोकोंकी सभी प्रकारकी शान्तिके लिये उपयोगी है।

हवनके अनन्तर शान्तिके लिये निर्दिष्ट मन्त्रोंका पाठ करते हुए अभिषेक करना चाहिये। सर्वप्रथम ग्रहोंके अधिपति भगवान् सूर्य तथा सोमादि ग्रहोंसे शान्तिकी प्रार्थना करे[2]।

'रक्त कमलके समान नेत्रोंवाले, सहस्रकिरणोंवाले, सात

१- आरक्तदेहरूपाय रक्ताक्षाय महात्मने। धराधराय शान्ताय सहस्राक्षशिराय च॥

'अधोमुखाय श्वेताय स्वाहा'—इससे प्रथम आहुति दे।

चतुर्मुखाय शान्ताय पद्मासनगताय च॥ पद्मवर्णाय वेधाय कमण्डलुधराय च।

'ऊर्ध्वमुखाय स्वाहा'—इससे द्वितीय आहुति दे।

हेमवर्णाय देहाय ऐरावतगजाय च। सहस्राक्षशरीराय पूर्वदिङ्मुखाय च॥
देवाधिपाय चेन्द्राय विहस्ताय शुभाय च।

'पूर्ववदनाय स्वाहा'—इससे तृतीय आहुति दे।

दीप्ताय व्यक्तदेहाय ज्वालामालाकुलाय च। इन्द्रनीलाभदेहाय सर्वारोग्यकराय च॥
यमाय धर्मराजाय दक्षिणाशामुखाय च।

'कृष्णाम्बरधराय स्वाहा'—इससे चौथी आहुति दे।

नीलजीमूतवर्णाय रक्ताम्बरधराय च। मुक्ताफलशरीराय पिङ्गाक्षाय महात्मने॥
शुक्लवस्त्राय पीताय दिव्यपाशधराय च।

'पश्चिमाभिमुखाय स्वाहा'—इससे पाँचवीं आहुति दे।

कृष्णपिङ्गलनेत्राय वायव्याभिमुखाय च। नीलध्वजाय वीराय तथा चेन्द्राय वेधसे॥

'पवनाय स्वाहा'—इस मन्त्रसे छठी आहुति दे।

गदाहस्ताय सूर्याय चित्रस्रग्भूषणाय च॥ महोदराय शान्ताय स्वाहाधिपतये तथा।

'उत्तराभिमुखाय महादेवप्रियाय स्वाहा'—इससे सातवीं आहुति दे।

श्वेताय श्वेतवर्णाय त्रिनेत्राय महात्मने। शान्ताय शान्तरूपाय पिनाकवरधारिणे॥

'ईशानाभिमुखायेशाय स्वाहा'—इससे आठवीं आहुति दे। (ब्राह्मपर्व १७५। १८—३२)

[यह दश दिक्पाल-होम प्रतीत होता है, किंतु पाठकी गड़बड़ीसे आग्नेय तथा नैर्ऋत्यकोणकी आहुतियोंका स्वरूप अस्पष्ट है]

२-शान्त्यर्थं सर्वलोकानां ततः शान्तिकमाचरेत्। सिन्दूरासनरक्ताभः रक्तपद्माभलोचनः॥
सहस्रकिरणो देवः सप्ताश्वरथवाहनः। गभस्तिमाली भगवान् सर्वदेवनमस्कृतः॥
करोतु ते महाशान्तिं ग्रहपीडानिवारिणीम्। त्रिचक्ररथमारूढ अपां सारमयं तु यः॥
दशाश्ववाहनो देव आत्रेयश्चामृतस्रवः। शीतांशुरमृतात्मा च क्षयवृद्धिसमन्वितः।
सोमः सौम्येन भावेन ग्रहपीडां व्यपोहतु॥
पद्मरागनिभो भौमो मधुपिङ्गललोचनः। अङ्गारकोऽग्निसदृशो ग्रहपीडां व्यपोहतु॥
पुष्परागनिभेनेह देहेन परिपिङ्गलः। पीतमाल्याम्बरधरो बुधः पीडां व्यपोहतु॥

अश्वोंसे युक्त रथपर आरूढ़, सिन्दूरके समान रक्त आभावाले, सभी देवताओंद्वारा नमस्कृत भगवान् सूर्य ग्रहपीडा निवारण करनेवाली महाशान्ति आपको प्रदान करें। शीतल किरणोंसे युक्त, अमृतात्मा, अत्रिके पुत्र चन्द्रदेव सौम्यभावसे आपकी ग्रहपीडा दूर करें। पद्मरागके समान वर्णवाले, मधुके समान पिङ्गल नेत्रवाले, अग्निसदृश अङ्गारक, भूमिपुत्र भौम आपकी ग्रहपीडा दूर करें। पुष्परागके समान आभायुक्त, पिङ्गल वर्णवाले, पीत माल्य तथा वस्त्र धारण करनेवाले बुध आपकी पीडा दूर करें। तप्त स्वर्णके समान आभायुक्त, सर्वशास्त्र-विशारद, देवताओंके गुरु बृहस्पति आपकी ग्रहपीडा दूर कर आपको शान्ति प्रदान करें। हिम, कुन्दपुष्प तथा चन्द्रमाके समान स्वच्छ वर्णवाले, दैत्य तथा दानवोंसे पूजित, सूर्यार्चनमें तत्पर रहनेवाले, महामति, नीतिशास्त्रमें पारङ्गत शुक्राचार्य आपकी ग्रहपीडा दूर करें। विविध रूपोंको धारण करनेवाले, अविज्ञात-गति-युक्त, सूर्यपुत्र शनैश्चर, अनेक शिखरोंवाले केतु एवं राहु आपकी पीडा दूर करें। सर्वदा कल्याणकी दृष्टिसे देखनेवाले तथा भगवान् सूर्यकी नित्य अर्चना करनेमें तत्पर ये सभी ग्रह प्रसन्न होकर आपको शान्ति प्रदान करें।'

तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश—इन त्रिदेवोंसे इस प्रकार शान्तिकी प्रार्थना करे[1]—

'पद्मासनपर आसीन, पद्मवर्ण, पद्मपत्रके समान नेत्रवाले, कमण्डलुधारी, देव-गन्धर्वोंसे पूजित, देवशिरोमणि, महातेजस्वी, सभी लोकोंके स्वामी, सूर्यार्चनमें तत्पर चतुर्मुख, दिव्य ब्रह्म शब्दसे सुशोभित ब्रह्माजी आपको शान्ति प्रदान करें। पीताम्बर धारण करनेवाले, शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करनेवाले चतुर्भुज, श्यामवर्णवाले, यज्ञस्वरूप, आत्रेयीके पति तथा सूर्यके ध्यानमें तल्लीन माधव मधुसूदन विष्णु आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। चन्द्रमा एवं कुन्दपुष्पके समान उज्ज्वल वर्णवाले, सर्पादि विशिष्ट आभरणोंसे अलंकृत, महातेजस्वी, मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण करनेवाले, समस्त विश्वमें व्याप्त, श्मशानमें रहनेवाले, दक्ष-यज्ञ विध्वंस करनेवाले, वरणीय, आदित्यके देहसे सम्भूत, वरदानी, देवाधिदेव तथा भस्म धारण करनेवाले महेश्वर आपको शान्ति प्रदान करें।'

ताम्रगैरिकसंकाशः सर्वशास्त्रविशारदः। सर्वदेवगुरुर्विप्रो ह्याथर्वणवरो मुनिः॥
बृहस्पतिरिति ख्यात अर्थशास्त्रपरश्च यः। शान्तेन चेतसा सोऽपि परेण सुसमाहितः॥
ग्रहपीडां विनिर्जित्य करोतु तव शान्तिकम्। सूर्यार्चनपरो नित्यं प्रसादाद्भास्करस्य तु॥
हिमकुन्देन्दुवर्णाभो दैत्यदानवपूजितः। महेश्वरस्तो श्रीमान् महासौरो महामतिः॥
सूर्यार्चनपरो नित्यं शुक्रः शुक्लनिभस्तदा। नीतिशास्त्रपरो नित्यं ग्रहपीडां व्यपोहतु॥
नानारूपधरोऽव्यक्त अविज्ञातगतिश्च यः। नोत्पत्तिर्ज्ञायते यस्य नोदयपीडितैरपि॥
एकचूलो द्विचूलश्च त्रिशिखः पञ्चचूलकः। सहस्रशिररूपस्तु चन्द्रकेतुरिव स्थितः॥
सूर्यपुत्रोऽग्निपुत्रस्तु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः। अनेकशिखरः केतुः स ते पीडां व्यपोहतु॥
एते ग्रहा महात्मानः सूर्यार्चनपराः सदा। शान्तिं कुर्वन्तु ते ह्रष्टाः सदाकालं हितेक्षणाः॥

(ब्राह्मपर्व १७५। ३६—५०)

१-पद्मासनः पद्मवर्णः पद्मपत्रनिभेक्षणः। कमण्डलुधरः श्रीमान् देवगन्धर्वपूजितः॥
चतुर्मुखो देवपतिः सूर्यार्चनपरः सदा।
सुरज्येष्ठो महातेजाः सर्वलोकप्रजापतिः। ब्रह्मशब्देन दिव्येन ब्रह्मा शान्तिं करोतु ते॥
पीताम्बरधरो देव आत्रेयीदयितः सदा। शङ्खचक्रगदापाणिः श्यामवर्णश्चतुर्भुजः॥
यज्ञदेहः क्रमो देव आत्रेयीदयितः सदा। शङ्खचक्रगदापाणिर्माधवो मधुसूदनः॥
सूर्यभक्त्यान्वितो नित्यं विगतिर्विगतत्रयः। सूर्यध्यानपरो नित्यं विष्णुः शान्तिं करोतु ते॥
शशिकुन्देन्दुसंकाशो विश्रुताभरणैरिह। चतुर्भुजो महातेजाः पुष्पार्धकृतशेखरः॥
चतुर्मुखो भस्मधरः श्मशाननिलयः सदा। गोत्रारिर्विश्वनिलयस्तथा च क्रतुदूषणः॥
वरो वरेण्यो वरदो देवदेवो महेश्वरः। आदित्यदेहसम्भूतः स ते शान्तिं करोतु वै॥

(ब्राह्मपर्व १७६। १—८)

तदनन्तर सभी मातृकाओंसे शान्तिके लिये प्रार्थना करे[1]—

'पद्मरागके समान आभावाली, अक्षमाला एवं कमण्डलु धारण करनेवाली, आदित्यकी आराधनामें तथा आशीर्वाद देनेमें तत्पर, सौम्यवदनवाली ब्रह्माणी प्रसन्न होकर तुम्हें शान्ति प्रदान करें। हिम, कुन्द-पुष्प तथा चन्द्रमाके समान वर्णवाली, महावृषभपर आरूढ, हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाली, आश्चर्यजनक आभरणोंसे विश्रुत, चतुर्भुजा, चतुर्वक्त्रा तथा त्रिनेत्रधारिणी पापोंका नाश करनेवाली, वृषभध्वज शंकरकी अर्चनामें तत्पर, महाश्वेता नामसे विख्यात आदित्यदयिता रुद्राणी आपको शान्ति प्रदान करें। सिन्दूरके समान अरुण विग्रहवाली, सभी अलंकारोंसे विभूषित, हाथमें शक्ति धारण करनेवाली, सूर्यकी अर्चनामें तत्पर, महान् पराक्रमशालिनी, वरदायिनी, मयूरवाहिनी देवी कौमारी आपको शान्ति प्रदान करें। गदा एवं चक्रको धारण करनेवाली, पीताम्बरधारिणी, सूर्यार्चनमें नित्य तत्पर रहनेवाली, असुरमर्दिनी, देवताओंके द्वारा पूजित चतुर्भुजा देवी वैष्णवी आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। ऐरावतपर आरूढ, हाथमें वज्र धारण करनेवाली, महाबलशालिनी, सिद्ध-गन्धर्वोंसे सेवित, सभी अलंकारोंसे विभूषित, चित्र-विचित्र अरुणवर्णवाली, सर्वत्रलोचना देवी इन्द्राणी आपको शान्ति प्रदान करें। वराहके समान नासिकावाली, श्रेष्ठ वराहपर आरूढ, विकटा, शंख, चक्र तथा

१-पद्मरागप्रभा देवी चतुर्वदनपङ्कजा। अक्षमालार्पितकरा कमण्डलुधरा शुभा॥
ब्रह्माणी सौम्यवदना आदित्याराधने रता। शान्तिं करोतु सुप्रीता आशीर्वादपरा खग॥
महाश्वेतेति विख्याता आदित्यदयिता सदा। हिमकुन्देन्दुसदृशा महावृषभवाहिनी॥
त्रिशूलहस्ताभरणा विश्रुताभरणा सती। चतुर्भुजा चतुर्वक्त्रा त्रिनेत्रा पापनाशिनी।
वृषध्वजार्चनरता रुद्राणी शान्तिदा भवेत्॥
मयूरवाहना देवी सिन्दूरारुणविग्रहा। शक्तिहस्ता महाकाया सर्वालंकारभूषिता॥
सूर्यभक्ता महावीर्या सूर्यार्चनरता सदा। कौमारी वरदा देवी शान्तिमाशु करोतु ते॥
गदाचक्रधरा श्यामा पीताम्बरधरा खग। चतुर्भुजा हि सा देवी वैष्णवी सुरपूजिता॥
सूर्यार्चनपरा नित्यं सूर्यैकगतमानसा। शान्तिं करोतु ते नित्यं सर्वासुरविमर्दिनी॥
ऐरावतगजारूढा वज्रहस्ता महाबला। सर्वत्रलोचना देवी वर्णतः कर्बुरारुणा॥
सिद्धगन्धर्वनमिता सर्वालंकारभूषिता। इन्द्राणी ते सदा देवी शान्तिमाशु करोतु वै॥
वराहघोणा विकटा वराहवरवाहिनी। श्यामावदाता या देवी शङ्खचक्रगदाधरा॥
तेजयन्तीति निमिषान् पूजयन्ती सदा रविम्। वाराही वरदा देवी तव शान्तिं करोतु वै॥
अर्धकोशा कटीक्षामा निर्मांसा स्नायुबन्धना। करालवदना घोरा खड्गघण्टोद्यता सती॥
कपालमालिनी क्रूरा खट्वाङ्गवरधारिणी। आरक्ता पिङ्गनयना गजचर्मावगुण्ठिता॥
गोश्रुताभरणा देवी प्रेतस्थाननिवासिनी। शिवारूपेण घोरेण शिवरूपभयंकरी।
चामुण्डा चण्डरूपेण सदा शान्तिं करोतु ते॥
चण्डमुण्डकरा देवी मुण्डदेहगता सती। कपालमालिनी क्रूरा खट्वाङ्गवरधारिणी॥
आकाशमातरो देव्यस्तथान्या लोकमातरः। भूतानां मातरः सर्वास्तथान्याः पितृमातरः॥
वृद्धिश्राद्धेषु पूज्यन्ते यास्तु देव्यो मनीषिभिः। मात्रे प्रमात्रे तन्मात्रे इति मातृमुखास्तथा॥
पितामही तु तन्माता वृद्धा या च पितामही। इत्येतास्तु पितामह्यः शान्तिं ते पितृमातरः॥
सर्वा मातृमहादेव्यः सायुधा व्यग्रपाणयः। जगद्व्याप्य प्रतिष्ठन्त्यो बलिकामा महोदयाः॥
शान्तिं कुर्वन्तु ता नित्यमादित्याराधने रताः। शान्तेन चेतसा शान्त्यः शान्तये तव शान्तिदा॥
सर्वावयवमुख्येन गात्रेण च सुमध्यमा। पीतश्यामातिसौम्येन स्निग्धवर्णेन शोभना॥
ललाटतिलकोपेता चन्द्ररेखार्धधारिणी। चित्राम्बरधरा देवी सर्वाभरणभूषिता॥
वरा स्त्रीमयरूपाणां शोभा गुणसुसम्पदाम्। भावनामात्रसंतुष्टा उमा देवी वरप्रदा॥
साक्षादागत्य रूपेण शान्तेनामिततेजसा। शान्तिं करोतु ते प्रीता आदित्याराधने रता॥

(ब्राह्मपर्व १७७। १—२५)

गदा धारण करनेवाली, श्यामावदाता, तेजस्विनी, प्रतिक्षण भगवान् सूर्यकी आराधना करनेवाली, वरदायिनी देवी वाराही आपको शान्ति प्रदान करें।

क्षाम-कटि-प्रदेशवाली, मांसरहित कंकालस्वरूपिणी, कराल-वदना, भयंकर तलवार, घंटा, खट्वाङ्ग और वरमुद्रा धारण करनेवाली, क्रूर, लाल-पीले नेत्रोंवाली, गजचर्मधारिणी, गोश्रुताभरणा, प्रेतस्थानमें निवास करनेवाली, देखनेमें भयंकर परंतु शिवस्वरूपा, हाथमें चण्ड-मुण्डके कपाल धारण किये हुए तथा कपालकी माला पहने चन्द्ररूपिणी देवी चामुण्डा तुम्हें शान्ति प्रदान करें[1]—

आकाशमातृकाएँ, लोकमातृकाएँ तथा अन्य लोक-मातृकाएँ, भूतमातृकाएँ, अन्य पितृ-मातृकाएँ, वृद्धि-श्राद्धोंमें जिनकी पूजा होती है वे पितृमातृकाएँ, माता, प्रमाता, वृद्धप्रमाता—ये मातृ-मातृकाएँ, शान्त चित्तसे आपको शान्ति प्रदान करें। ये सभी मातृकाएँ अपने हाथोंमें आयुध धारण करती हैं और संसारको व्याप्त करके प्रतिष्ठित रहती हैं तथा भगवान् सूर्यकी आराधनामें तत्पर रहती हैं। सुन्दर अङ्ग-प्रत्यङ्गवाली तथा सुन्दर कटि-प्रदेशवाली, पीत एवं श्याम वर्णवाली, स्निग्ध आभावाली, तिलकसे सुशोभित ललाटवाली, अर्धचन्द्ररेखा धारण करनेवाली, सभी आभरणोंसे विभूषित, चित्र-विचित्र वस्त्र धारण करनेवाली, सभी स्त्रीस्वरूपोंमें गुण और सम्पत्तियोंके कारण सर्वश्रेष्ठ शोभावाली, आदित्यकी आराधनामें तत्पर, केवल भावनामात्रसे संतुष्ट होनेवाली वरदायिनी भगवती उमादेवी अपने अमित तेजस्वी एवं शान्त-रूपसे प्रत्यक्ष प्रकट होकर प्रसन्न हो आपको शान्ति प्रदान करें।

अनन्तर कार्तिकेय, नन्दीश्वर, विनायक, भगवान् शंकर, जगन्माता, पार्वती, चण्डेश्वर, ऐन्द्री आदि दिशाएँ, दिशाओंके अधिपति, लोकपालोंकी नगरियाँ, सभी देवता, देवी सरस्वती तथा भगवती अपराजितासे इस प्रकार शान्तिकी प्रार्थना करे[2]—

खट्वाङ्ग धारण किये हुए, शक्तिसे युक्त, मयूरवाहन, कृत्तिका और भगवान् रुद्रसे उद्भूत, समस्त देवताओंसे अर्चित तथा आदित्यसे वर-प्राप्त भगवान् कार्तिकेय अपने तेजसे

१-ये सात विश्वमाताएँ कही गयी हैं। शारदातिलकके षष्ठ पटलमें इन सातोंके साथ ही भगवती महालक्ष्मीको भी विश्वमाता कहा गया है।

२-अबलो बालरूपेण खट्वाङ्गशिखिवाहनः। पूर्णेन्दुवदनः श्रीमाञ्छिखिशिखः शक्तिसंयुतः॥
कृत्तिकायाश्च रुद्रस्य चाङ्गोद्भूतः सुरार्चितः। कार्तिकेयो महातेजा आदित्यवरदर्पितः।
शान्तिं करोतु ते नित्यं बलं सौख्यं च तेजसा॥
आत्रेयो बलवान् देव आरोग्यं च खगाधिप। श्वेतवस्त्रपरीधानस्त्र्यक्षः कनकसुप्रभः॥
शूलहस्तो महाप्राज्ञो नन्दीशो रविभावितः। शान्तिं करोतु ते शान्तो धर्मे च मतिमुत्तमाम्॥
धर्मेतरावुभौ नित्यमचलः सम्प्रयच्छतु। महोदरो महाकायः स्निग्धाञ्जनसमप्रभः॥
एकदंष्ट्रोत्कटो देवो गजवक्त्रो महाबलः। नागयज्ञोपवीतेन नानाभरणभूषितः॥
सर्वार्थसम्पदुद्धारो गणाध्यक्षो वरप्रदः।
भीमस्य तनयो देवो नायकोऽथ विनायकः। करोतु ते महाशान्तिं भास्करार्चनतत्परः॥
इन्द्रनीलनिभस्त्र्यक्षो दीप्तशूलायुधोद्यतः। रक्ताम्बरधरः श्रीमान् कृष्णाङ्गो नागभूषणः॥
पापापनोदमतुलमलक्ष्यो मलनाशनः। करोतु ते महाशान्तिं प्रीतः प्रीतेन चेतसा॥
वराम्बरधरा कन्या नानालंकारभूषिता। त्रिदशानां च जननी पुण्या लोकनमस्कृता॥
सर्वसिद्धिकरा देवी प्रसादपरमास्पदा। शान्तिं करोतु ते माता भुवनस्य खगाधिप॥
स्निग्धश्यामेन वर्णेन महामहिषमर्दिनी। धनुश्चक्रप्रहरणा खड्गपट्टिशधारिणी॥
आतर्जन्यायतकरा सर्वोपद्रवनाशिनी। शान्तिं करोतु ते दुर्गा भवानी च शिवा तथा॥
अतिसूक्ष्मो द्युतिक्रोधस्त्र्यक्षो भृङ्गिरिटिर्महान्।
सूर्यात्मको महावीरः सर्वोपद्रवनाशनः। सूर्यभक्तिपरो नित्यं शिवं ते सम्प्रयच्छतु॥
प्रचण्डगणसैन्येशो महाघण्टाक्षधारकः। अक्षमालार्पितकरश्चाथ चण्डेश्वरो वरः॥
चण्डपापहरो नित्यं ब्रह्महत्याविनाशनः।
शान्तिं करोतु ते नित्यमादित्याराधने रतः। करोतु च महायोगी कल्याणानां परम्पराम्॥

आपको बल, सौख्य एवं शान्ति प्रदान करें। हाथमें शूल एवं श्वेत वस्त्र धारण किये हुए, स्वर्ण-आभायुक्त, भगवान् सूर्यकी आराधना करनेवाले, तीन नेत्रोंवाले नन्दीश्वर आपको धर्ममें उत्तम बुद्धि, आरोग्य एवं शान्ति प्रदान करें। चिकने अञ्जनके समान आभायुक्त,महोदर तथा महाकाय नित्य अचल आरोग्य प्रदान करें। नाना आभूषणोंसे विभूषित नागको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण किये हुए, समस्त अर्थ-सम्पत्तियोंके उद्धारक, एकदन्त, उत्कट-स्वरूप, गजवक्त्र, महाबलशाली, गणोंके अध्यक्ष, वर-प्रदाता, भगवान् सूर्यकी अर्चनामें तत्पर, शंकरपुत्र विनायक आपको महाशान्ति प्रदान करें। इन्द्रनीलके समान आभावाले, त्रिनेत्रधारी, प्रदीप्त त्रिशूल धारण करनेवाले, नागोंसे विभूषित, पापोंको दूर करनेवाले तथा अलक्ष्य रूपवाले, मलोंके नाशक भगवान् शंकर प्रसन्न चित्तसे आपको महाशान्ति प्रदान करें। नाना अलंकारोंसे विभूषित, सुन्दर वस्त्रोंको धारण करनेवाली, देवताओंकी जननी, सारे संसारसे नमस्कृत, समस्त सिद्धियोंकी प्रदायिनी, प्रसाद-प्राप्तिकी एकमात्र स्थान जगन्माता भगवती पार्वती आपको शान्ति प्रदान करें। स्निग्ध श्यामल वर्णवाली, धनुष-चक्र, खड्ग तथा पट्टिश आयुधोंको धारण की हुई, सभी उपद्रवोंका नाश करनेवाली, विशाल बाहुओंवाली, महामहिष-मर्दिनी भगवती भवानी दुर्गा आपको शान्ति प्रदान करें। अत्यन्त सूक्ष्म, अतिक्रोधी, तीन नेत्रोंवाले, महावीर, सूर्यभक्त भृंगिरिटि आपका नित्य कल्याण करें। विशाल घण्टा तथा रुद्राक्ष-माला धारण किये हुए, ब्रह्महत्यादि उत्कट पापोंका नाश करनेवाले, प्रचण्डगणोंके सेनापति, आदित्यकी आराधनामें तत्पर महायोगी चण्डेश्वर आपको शान्ति एवं कल्याण प्रदान करें। दिव्य आकाश-मातृकाएँ, अन्य देव-मातृकाएँ, देवताओंद्वारा पूजित मातृकाएँ जो संसारको व्याप्त करके अवस्थित हैं और सूर्यार्चनमें तत्पर रहती हैं, वे आपको शान्ति प्रदान करें। रौद्र कर्म करनेवाले तथा रौद्र स्थानमें निवास करनेवाले रुद्रगण, अन्य समस्त गणाधिप, दिशाओं तथा विदिशाओंमें जो विघ्नरूपसे अवस्थित रहते हैं, वे सभी प्रसन्नचित होकर मेरे द्वारा दी गयी इस बलि (नैवेद्य) को ग्रहण करें। ये आपको नित्य सिद्धि प्रदान करें और आपकी भयोंसे रक्षा करें।

आकाशमातरो दिव्यास्तथान्या देवमातरः ।
सूर्यार्चनपरा देव्यो जगद्व्याप्य व्यवस्थिताः । शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं मातरः सुरपूजिताः ॥
ये रुद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः । मातरो रुद्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ॥
विघ्नभूतास्तथा चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः ।
सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्तु मे बलिम् । सिद्धिं कुर्वन्तु ते नित्यं भयेभ्यः पान्तु सर्वतः ॥
ऐन्द्राद्यो गणा ये तु वज्रहस्ता महाबलाः । हिमकुन्देन्दुसदृशा नीलकृष्णाङ्गलोहिताः ॥
दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च पातालतलवासिनः । ऐन्द्राः शान्तिं प्रकुर्वन्तु भद्राणि च पुनः पुनः ॥
आग्नेय्यां ये भूताः सर्वे धुवहस्तानुषङ्गिणः । सूर्यानुरक्ता रक्ताभा जपासुमनिभास्तथा ॥
विरक्तलोहिता दिव्या आग्नेय्यां भास्करादयः । आदित्याराधनपरा आदित्यगतमानसाः ॥
शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं प्रयच्छन्तु बलिं मम ।
भयादित्यसमा ये तु सततं दण्डपाणयः । आदित्याराधनपराः शं प्रयच्छन्तु ते सदा ॥
ऐशान्यां संस्थिता ये तु प्रशान्ताः शूलपाणयः । भस्मोद्धूलितदेहाश्च नीलकण्ठा विलोहिताः ॥
दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च पातालतलवासिनः । सूर्यपूजाकरा नित्यं पूजयित्वांशुमालिनम् ॥
ततः सुप्रीतमनसो लोकपालैः समन्विताः । शान्तिं कुर्वन्तु मे नित्यं शं प्रयच्छन्तु पूजिताः ॥
अमरावती पुरी नाम पूर्वभागे व्यवस्थिता । विद्याधरगणाकीर्णा सिद्धगन्धर्वसेविता ॥
रत्नप्राकारखचिता महारत्नोपशोभिता ।
तत्र देवपतिः श्रीमान् वज्रपाणिर्महाबलः । गोपतिर्गोसहस्रेण शोभमानेन शोभते ॥
ऐरावतगजारूढो गैरिकाभो महाद्युतिः । देवेन्द्रः सततं हृष्ट आदित्याराधने रतः ॥
सूर्यज्ञानैकपरमः सूर्यभक्तिसमन्वितः । सूर्यप्रणामः परमां शान्तिं तेऽद्य प्रयच्छतु ॥
आग्नेयदिग्विभागे तु पुरी तेजस्वती शुभा । नानादेवगणाकीर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥
तत्र ज्वालसमाकीर्णो दीप्ताङ्गारसमद्युतिः । पुरगो दहनो देवो ज्वलनः पापनाशनः ॥

हाथोंमें वज्र लिये हुए, महाबलशाली, सफेद, नीले, काले तथा लाल वर्णवाले, पृथ्वी, आकाश, पाताल तथा अन्तरिक्षमें रहनेवाले ऐन्द्रगण निरन्तर आपका कल्याण करें और शान्ति प्रदान करें। आग्नेयी दिशामें रहनेवाले निरन्तर ज्वलनशील, जपाकुसुमके समान लाल तथा लोहित वर्णवाले, हाथमें निरन्तर दण्ड धारण करनेवाले सूर्यके भक्त भास्कर आदि मेरे द्वारा दिये गये बलि (नैवेद्य) को ग्रहण करें और आपको नित्य शान्ति एवं कल्याण प्रदान करें। ईशानकोणमें अवस्थित शान्ति-स्वभावयुक्त, त्रिशूलधारी, अङ्गोंमें भस्म धारण किये हुए, नीलकण्ठ, रक्तवर्णवाले, सूर्य-पूजनमें तत्पर, अन्तरिक्ष, आकाश, पृथ्वी तथा स्वर्गमें निवास करनेवाले रुद्रगण आपको नित्य शान्ति एवं कल्याण प्रदान करें।

रत्नोंके प्राकारों एवं महारत्नोंसे शोभित, विद्याधर एवं सिद्ध-गन्धर्वोंसे सुसेवित पूर्वदिशामें अवस्थित अमरावती नामवाली नगरीमें महाबली, वज्रपाणि, देवताओंके अधिपति इन्द्र निवास करते हैं। वे ऐरावतपर आरूढ एवं स्वर्णकी आभाके समान प्रकाशमान हैं, सूर्यकी आराधनामें तत्पर तथा नित्य प्रसन्न-चित्त रहनेवाले हैं, वे परम शान्ति प्रदान करें। विविध देवगणोंसे व्याप्त, भाँति-भाँतिके रत्नोंसे शोभित, अग्निकोणमें अवस्थित तेजस्वती नामकी पुरी है, उसमें स्थित जलते हुए अंगारोंके समान प्रकाशवाले, ज्वालमालाओंसे व्याप्त, निरन्तर ज्वलन एवं दहनशील, पापनाशक, आदित्यकी आराधनामें तत्पर अग्निदेव आपके पापोंका सर्वथा नाश करें एवं शान्ति प्रदान करें। दक्षिण दिशामें संयमनीपुरी स्थित है, वह नाना रत्नोंसे सुशोभित एवं सैकड़ों सुरासुरोंसे व्याप्त है, उसमें रहनेवाले हरित-पिङ्गल नेत्रोंवाले महामहिषपर आरूढ, कृष्ण वस्त्र एवं मालासे विभूषित, सूर्यकी आराधनामें तत्पर महातेजस्वी यमराज आपको क्षेम एवं आरोग्य प्रदान करें। नैर्ऋत्यकोणमें स्थित कृष्णा नामकी पुरी है, जो महान् रक्षोगण, प्रेत तथा पिशाच आदिसे व्याप्त है, उसमें रहनेवाले रक्त माला और वस्त्रोंसे सुशोभित हाथमें तलवार लिये, करालवदन, सूर्यकी आराधनामें तत्पर राक्षसोंके अधिपति निर्ऋतिदेव शान्ति एवं धन-धान्य प्रदान करें। पश्चिम दिशामें शुद्धवती नामकी नगरी है, वह अनेक किंनरोंसे सेवित तथा भोगिगणोंसे व्याप्त है। वहाँ स्थित हरित तथा पिङ्गल वर्णके नेत्रवाले वरुणदेव प्रसन्न होकर आपको शान्ति प्रदान करें। ईशान-कोणमें स्थित

आदित्याराधनरत आदित्यगतमानसः। शान्तिं करोतु ते देवस्तथा पापपरिक्षयम्॥
वैवस्वती पुरी रम्या दक्षिणेन महात्मनः। सुरासुरशताकीर्णा नानारत्नोपशोभिता॥
तत्र कुन्देन्दुसंकाशो हरिपिङ्गललोचनः। महामहिषमारूढः कृष्णस्रग्वस्त्रभूषणः॥
अन्तकोऽथ महातेजाः सूर्यधर्मपरायणः। आदित्याराधनपरः क्षेमारोग्ये ददातु ते॥
नैर्ऋते दिग्विभागे तु पुरी कृष्णेति विश्रुता। महारक्षोगणाकीर्णपिशाचप्रेतसंकुला॥
तत्र कुन्दनिभो देवो रक्तस्रग्वस्त्रभूषणः। खड्गपाणिर्महातेजाः करालवदनोज्ज्वलः॥
रक्षेन्द्रो वसते नित्यमादित्याराधने रतः। करोतु मे सदा शान्तिं धनं धान्यं प्रयच्छतु॥
पश्चिमे तु दिशो भागे पुरी शुद्धवती सदा। नानाभोगिसमाकीर्णा नानाकिंनरसेविता॥
तत्र कुन्देन्दुसंकाशो हरिपिङ्गललोचनः। शान्तिं करोतु मे प्रीतः शान्तः शान्तेन चेतसा॥
यशोवती पुरी रम्या ऐशानीं दिशमाश्रिता।
नानागणसमाकीर्णा नानाकृतशुभालया। तेजःप्रकारपर्यन्ता अनौपम्या सदोज्ज्वला॥
तत्र कुन्देन्दुसंकाशश्चाम्बुजाक्षो विभूषितः।
त्रिनेत्रः शान्तरूपात्मा अक्षमालाधराधरः। ईशानः परमो देवः सदा शान्तिं प्रयच्छतु॥
भूर्लोके तु भुवर्लोके निवसन्ति च ये सदा। देवादेवाः शुभायुक्ताः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा॥
जनलोके महर्लोके परलोके गताश्च ये। ते सर्वे मुदिता देवाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा॥
सरस्वती सूर्यभक्ता शान्तिदा विदधातु मे।
चारुचामीकरस्था या सरोजकरपल्लवा। सूर्यभक्त्याश्रिता देवी विभूतिं ते प्रयच्छतु॥
हारेण सुविचित्रेण भास्वत्कनकमेखला। अपराजिता सूर्यभक्ता करोतु विजयं तव॥

(ब्राह्मपर्व १७८। १—४८)

यशोवती नामकी अनुपम पुरीमें रहनेवाले त्रिनेत्रधारी शान्तात्मा रुद्राक्ष-मालाधारी परमदेव ईशान (भगवान् शंकर) आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। भूः, भुवर्, महर् एवं जन आदि लोकोंमें रहनेवाले प्रसन्नचित्त देवता आपको शान्ति प्रदान करें।

सूर्यभक्ता सरस्वती आपको शान्ति प्रदान करें। हाथमें कमल धारण करनेवाली तथा सुन्दर स्वर्ण-सिंहासनपर अवस्थित, सूर्यकी आराधनामें तत्पर भगवती महालक्ष्मी आपको ऐश्वर्य प्रदान करें और आदित्यकी आराधनामें तल्लीन, विचित्र वर्णके सुन्दर हार एवं कनकमेखला धारण करनेवाली सूर्यभक्ता भगवती अपराजिता आपको विजय प्रदान करें।'

इसके अनन्तर सत्ताईस नक्षत्रों, मेषादि द्वादश राशियों, सप्तर्षियों, महातपस्वियों, ऋषियों, सिद्धों, विद्याधरों, दैत्येन्द्रों तथा अष्ट नागोंसे शान्तिकी प्रार्थना करे*।

'परमश्रेष्ठ कृत्तिका, वरानना रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य तथा आश्लेषा (पूर्व दिशामें रहनेवाली) ये सभी नक्षत्र-मातृकाएँ सूर्यार्चनमें रत हैं और प्रभा-मालासे विभूषित हैं। मघा, पूर्वा तथा उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा—ये दक्षिण दिशाका आश्रय ग्रहण कर भगवान् सूर्यकी पूजा करती रहती हैं। आकाशमें उदित होनेवाली ये नक्षत्र-मातृकाएँ आपको शान्ति प्रदान करें। पश्चिम दिशामें रहनेवाली अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा

---

* कृत्तिका परमा देवी रोहिणी च वरानना। श्रीमन्मृगशिरा भद्रा आर्द्रा चाप्यपरोज्ज्वला॥
पुनर्वसुस्तथा पुष्य आश्लेषा च तथाधिप। सूर्यार्चनरता नित्यं सूर्यभावानुभाविताः॥
अर्चयन्ति सदा देवमादित्यं सुरते सदा। नक्षत्रमातरो ह्येताः प्रभामालाविभूषिताः॥
मघा सर्वगुणोपेता पूर्वा चैव तु फाल्गुनी। स्वाती विशाखा वरदा दक्षिणां दिशमाश्रिताः॥
अर्चयन्ति सदा देवमादित्यं सुरपूजितम्। तवापि शान्तिकं ह्येते कुर्वन्तु गगनोदिताः॥
अनुराधा तथा ज्येष्ठा मूलं सूर्यपुरःसरा। पूर्वाषाढा महावीर्या आषाढा चोत्तरा तथा॥
अभिजिन्नाम नक्षत्रं श्रवणं च बहुश्रुतम्। एताः पश्चिमतो दीप्ता राजन्ते चानुमूर्तयः॥
भास्करं पूजयन्त्येताः सर्वकालं सुभाविताः। शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूतिं च महर्द्धिकाम्॥
धनिष्ठा शतभिषा तु पूर्वभाद्रपदा तथा॥
उत्तराभाद्ररेवत्यौ चाश्विनी च महामते। भरणी च महादेवी नित्यमुत्तरतः स्थिताः॥
सूर्यार्चनरता नित्यमादित्यगतमानसाः। शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूतिं च महर्द्धिकाम्॥
मेषो मृगाधिपः सिंहो धनुर्दीप्तिमतां वरः। पूर्वेण भासयन्त्येते सूर्ययोगपराः शुभाः॥
शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं भक्त्या सूर्यपदाम्बुजे। वृषः कन्या च परमा मकरश्चापि बुद्धिमान्॥
एते दक्षिणभागे तु पूजयन्ति रविं सदा। भक्त्या परमया नित्यं शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा॥
मिथुनं च तुला कुम्भः पश्चिमे च व्यवस्थिताः। जपन्त्येते सदाकालमादित्यं ग्रहनायकम्॥
शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं खद्योतध्यानतत्पराः। सगन्धोदकपुष्पाभ्यां ये स्मृता सततं बुधैः॥
ऋषयः सप्त विख्याता ध्रुवान्ताः परमोज्ज्वलाः। भानुप्रसादात् सम्पन्नाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा॥
कश्यपो गालवो गार्ग्यो विश्वामित्रो महामुनिः। मुनिर्दक्षो वसिष्ठश्च मार्कण्डः पुलहः क्रतुः॥
नारदो भृगुरात्रेयो भारद्वाजश्च वै मुनिः। वाल्मीकिः कौशिको वात्स्यः शाकल्योऽथ पुनर्वसुः॥
शालंकायन इत्येते ऋषयोऽथ महातपाः। सूर्यध्यानैकपरमाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा॥
मुनिकन्या महाभागा ऋषिकन्याः कुमारिकाः। सूर्यार्चनरता नित्यं शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा॥
सिद्धाः समृद्धतपसो ये चान्ये वै महातपाः। विद्याधरा महात्मानो गरुडश्च तथा सह॥
आदित्यपरमा ह्येते आदित्याराधने रताः। सिद्धिं ते सम्प्रयच्छन्तु आशीर्वादपरायणाः॥
नमुचिर्दैत्यराजेन्द्रः शंकुकर्णो महाबलः। महानादोऽथ विख्यातो दैत्यः परमवीर्यवान्॥
ग्रहाधिपस्य देवस्य नित्यं पूजापरायणाः। बलं वीर्यं च ते ऋद्धिमारोग्यं च ब्रुवन्तु ते॥
महाकायो यो हयग्रीवः प्रह्लादः प्रभयान्वितः। अग्निमुखो महान् दैत्यः कालनेमिर्महाबलः॥
एते दैत्या महात्मानः सूर्यभावेन भाविताः। तुष्टिं बलं तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छन्तु सुरारयः॥

तथा उत्तराषाढ़ा, अभिजित् एवं श्रवण—ये नक्षत्र-मातृकाएँ निरन्तर भगवान् भास्करकी पूजा करती रहती हैं, ये आपको वर्धनशील ऐश्वर्य एवं शान्ति प्रदान करें। उत्तर दिशामें अवस्थित धनिष्ठा, शतभिष, पूर्व तथा उत्तरभाद्रपद, रेवती, अश्विनी एवं भरणी नामकी नक्षत्र-मातृकाएँ नित्य सूर्यकी पूजा करती रहती हैं, ये आपको नित्य वर्धनशील ऐश्वर्य एवं शान्ति प्रदान करें।

पूर्वदिशामें अवस्थित तथा भगवान् सूर्यके चरणकमलोंमें भक्तिपूर्वक आराधना करनेवाली मेष, सिंह तथा धनु राशियाँ आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। दक्षिण दिशामें स्थित रहनेवाली, भगवान् सूर्यकी अर्चना करनेवाली वृष, कन्या तथा मकर राशियाँ परमा भक्तिके साथ आपको शान्ति प्रदान करें। पश्चिम दिशामें स्थित एवं निरन्तर ग्रहनायक भगवान् आदित्यकी आराधना करनेवाली मिथुन, तुला तथा कुम्भ राशियाँ आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। [कर्क, वृश्चिक तथा मीन राशियाँ जो उत्तर दिशामें स्थित रहती हैं तथा भगवान् सूर्यकी भक्ति करती हैं, आपको शान्ति प्रदान करें।]

भगवान् सूर्यके अनुग्रहसे सम्पन्न ध्रुव-मण्डलमें रहनेवाले सप्तर्षिगण आपको शान्ति प्रदान करें। कश्यप, गालव, गार्ग्य, विश्वामित्र, दक्ष, वसिष्ठ, मार्कण्डेय, क्रतु, नारद, भृगु, आत्रेय, भारद्वाज, वाल्मीकि, कौशिक, वात्स्य, शाकल्य, पुनर्वसु तथा शालंकायन—ये सभी सूर्य-ध्यानमें तत्पर रहनेवाले महातपस्वी ऋषिगण आपको शान्ति प्रदान करें। सूर्यकी आराधनामें तत्पर ऋषि तथा मुनिकन्याएँ, जो निरन्तर आशीर्वाद प्रदान करनेमें तत्पर रहती हैं, आपको नित्य सिद्धि प्रदान करें।

भगवान् सूर्यकी पूजामें तत्पर दैत्यराजेन्द्र नमुचि, महाबली शङ्कुकर्ण, पराक्रमी महानाथ—ये सभी आपके लिये बल, वीर्य एवं आरोग्यकी प्राप्तिके लिये निरन्तर कामना करें। महान् सम्पत्तिशाली हयग्रीव, अत्यन्त प्रभाशाली प्रह्लाद, अग्निमुख, कालनेमि—ये सभी सूर्यकी आराधना करनेवाले दैत्य आपको पुष्टि, बल और आरोग्य प्रदान करें। वैरोचन, हिरण्याक्ष, तुर्वसु, सुलोचन, मुचकुन्द, मुकुन्द तथा रैवतक—ये सभी सूर्यभक्त आपको पुष्टि प्रदान करें। दैत्यपत्नियाँ, दैत्यकन्याएँ तथा दैत्यकुमार—ये सभी आपकी शान्तिके लिये कामना करें।

वैरोचनो हिरण्याक्षस्तुर्वसुश्च सुलोचनः। मुचकुन्दो मुकुन्दश्च दैत्यो रैवतकस्तथा॥
भावेन परमेणेमं यजन्ते सततं रविम्। सततं च शुभात्मानः पुष्टिं कुर्वन्तु ते सदा॥
दैत्यपत्न्यो महाभागा दैत्यानां कन्यकाः शुभाः। कुमारा ये च दैत्यानां शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा॥
आरक्तेन शरीरेण रक्तान्तायतलोचनाः। महाभागाः कृताटोपाः शङ्खाद्याः कृतलक्षणाः॥
अनन्तो नागराजेन्द्र आदित्याराधने रतः। महापापविषं हत्वा शान्तिमाशु करोतु ते॥
अतिपीतेन देहेन विस्फुरद्भोगसम्पदा। तेजसा चातिदीप्तेन कृतस्वस्तिकलाञ्छनः॥
नागराट् तक्षकः श्रीमान् नागकोट्या समन्वितः। करोतु ते महाशान्तिं सर्वदोषविषापहाम्॥
अतिकृष्णेन वर्णेन स्फुरिताधिकमस्तकः। कण्ठरेखात्रयोपेतो घोरदंष्ट्रापुषोद्यतः॥
कर्कोटको महानागो विषदर्पबलान्वितः। विषशस्त्राग्निसंतापं हत्वा शान्तिं करोतु ते॥
पद्मवर्णः पद्मकान्तिः फुल्लपद्मायतेक्षणः। ख्यातः पद्मो महानागो नित्यं भास्करपूजकः॥
स ते शान्तिं शुभे शीघ्रमचलं सम्प्रयच्छतु। श्यामेन देहभारेण श्रीमत्कमललोचनः॥
विषदर्पबलोन्मत्तो ग्रीवायां रेखयान्वितः। शङ्खपालश्रिया दीप्तः सूर्यपादाब्जपूजकः॥
महाविषं गरश्रेष्ठं हत्वा शान्तिं करोतु ते। अतिगौरेण देहेन चन्द्रार्धकृतशेखरः॥
दीप्तभोगे कृताटोपशुभलक्षणलक्षितः।
कुलिको नाम नागेन्द्रो नित्यं सूर्यपरायणः। अपहृत्य विषं घोरं करोतु तव शान्तिकम्॥
अन्तरिक्षे च ये नागा ये नागाः स्वर्गसंस्थिताः। गिरिकन्दरदुर्गेषु ये नागा भुवि संस्थिताः॥
पाताले ये स्थिता नागाः सर्वे यत्र समाहिताः। सूर्यपादार्चनासक्ताः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा॥
नागिन्यो नागकन्याश्च तथा नागकुमारकाः। सूर्यभक्ताः सुमनसः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा॥
य इदं नागसंस्थानं कीर्तयेच्छृणुयात् तथा। न तं सर्पा विहिंसन्ति न विषं क्रमते सदा॥

(ब्राह्मपर्व १७९। १—४४)

नागराजेन्द्र अनन्त, अत्यन्त पीले शरीरवाले, विस्फुरित फणवाले, स्वस्तिक-चिह्नसे युक्त तथा अत्यन्त तेजसे उद्दीप्त नागराज तक्षक, अत्यन्त कृष्ण वर्णवाले, कण्ठमें तीन रेखाओंसे युक्त, भयंकर आयुधरूपी दंष्ट्रसे समन्वित तथा विषके दर्पसे बलान्वित महानाग कर्कोटक, पद्मके समान कान्तिवाले, कमलके पुष्पके समान नेत्रवाले, पद्मवर्णके महानाग पद्म, श्यामवर्णवाले, सुन्दर कमलके समान नेत्रवाले, विषरूपी दर्पसे उन्मत्त तथा ग्रीवामें तीन रेखावाले शोभासम्पन्न महानाग शंखपाल, अत्यन्त गौर शरीरवाले, चन्द्रार्धकृत-शेखर, सुन्दर फणोंसे युक्त नागेन्द्र कुलिक (और नागराज वासुकि) सूर्यकी आराधना करनेवाले—ये सभी अष्टनाग महाविषको नष्ट करके आपको निरन्तर अचल महाशान्ति प्रदान करें। अन्तरिक्ष, स्वर्ग, गिरिकन्दराओं, दुर्गों तथा भूमि एवं पातालमें रहनेवाले, भगवान् सूर्यके अर्चनमें आसक्त समस्त नागगण और नागपत्नियाँ, नागकन्याएँ तथा नागकुमार सभी प्रसन्नचित्त होकर आपको सदा शान्ति प्रदान करें।'

जो इस नाग-शान्तिका श्रवण या कीर्तन करता है, उसे सर्पगण कभी भी नहीं काटते और विषका प्रभाव भी उनपर नहीं पड़ता।

तदनन्तर गङ्गादि पुण्य नदियों, यक्षेन्द्रों, पर्वतों, सागरों, राक्षसों, प्रेतों, पिशाचों, अपस्मारादि ग्रहों, सभी देवताओं तथा भगवान् सूर्यसे शान्तिकी कामनाके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये[1]—

'ग्रहाधिपति भगवान् सूर्यकी नित्य आराधना करनेवाली पुण्यतोया गङ्गा, महादेवी यमुना, नर्मदा, गौतमी, कावेरी, वरुणा, देविका, निरञ्जना तथा मन्दाकिनी आदि नदियाँ और महानद शोण, पृथ्वी, स्वर्ग एवं अन्तरिक्षमें रहनेवाली नदियाँ आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। यक्षराज कुबेर, महायक्ष मणिभद्र, यक्षेन्द्र सुचिर, पाञ्चिक, महातेजस्वी धृतराष्ट्र, यक्षेन्द्र विरूपाक्ष, कङ्काक्ष तथा अन्तरिक्ष एवं स्वर्गमें रहनेवाले समस्त यक्षगण, यक्षपत्नियाँ, यक्षकुमार तथा यक्ष-कन्याएँ जो सभी सूर्यकी आराधनामें तत्पर रहते हैं—ये आपको शान्ति प्रदान करें, नित्य कल्याण, बल, सिद्धि भी शीघ्र प्रदान करें एवं मङ्गलमय बनायें।

१-गङ्गा पुण्या महादेवी यमुना नर्मदा नदी। गौतमी चापि कावेरी वरुणा देविका तथा॥
सर्वग्रहपतिं देवं लोकेशं लोकनायकम्।
पूजयन्ति सदा नद्यः सूर्यसद्भावभाविताः। शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं सूर्यध्यानैकमानसाः॥
निरञ्जना नाम नदी शोणश्चापि महानदः। मन्दाकिनी च परमा तथा संनिहिता शुभा॥
एताश्चान्याश्च बहवो भुवि दिव्यन्तरिक्षके। सूर्यार्चनरता नद्यः कुर्वन्तु तव शान्तिकम्॥
महावैश्रवणो देवो यक्षराजो महर्धिकः। यक्षकोटिपरीवारो यक्षासंख्येयसंयुतः॥
महाविभवसम्पन्नः सूर्यपादार्चने रतः। सूर्यध्यानैकपरमः सूर्यभावेन भावितः॥
शान्तिं करोतु ते प्रीतः पद्मपत्रायतेक्षणः। मणिभद्रो महायक्षो मणिरत्नविभूषितः॥
मनोहरेण हारेण कण्ठलग्नेन राजते।
यक्षिणीयक्षकन्याभिः परिवारितविग्रहः। सूर्यार्चनसमासक्तः करोतु तव शान्तिकम्॥
सुचिरो नाम यक्षेन्द्रो मणिकुण्डलभूषितः। ललाटे हेमपट्टलग्नबद्धेन विराजते॥
बहुयक्षसमाकीर्णो यक्षैर्नमितविग्रहः। सूर्यपूजापरो युक्तः करोतु तव शान्तिकम्॥
पाञ्चिको नाम यक्षेन्द्रः कण्ठाभरणभूषितः। कुकुटेन विचित्रेण बहुरत्नान्वितेन तु॥
यक्षवृन्दसमाकीर्णो यक्षकोटिसमन्वितः। सूर्यार्चनपरः श्रीमान् करोतु तव शान्तिकम्॥
धृतराष्ट्रो महातेजा नानायक्षाधिपः खग। दिव्यपट्टः शुक्लच्छत्रो मणिकाञ्चनभूषितः॥
सूर्यभक्तः सूर्यरतः सूर्यपूजापरायणः। सूर्यप्रसादसम्पन्नः करोतु तव शान्तिकम्॥
विरूपाक्षश्च यक्षेन्द्रः श्वेतवासा महाद्युतिः। नानाकाञ्चनमालाभिरूपशोभितकन्धरः॥
सूर्यपूजापरो भक्तः कङ्काक्षः कङ्कसंनिभः। तेजसादित्यसंकाशः करोतु तव शान्तिकम्॥
अन्तरिक्षगता यक्षा ये यक्षाः स्वर्गगामिनः। नानारूपधरा यक्षाः सूर्यभक्ता दृढव्रताः॥
तद्भक्तास्तद्गतमनसः सूर्यपूजासमुत्सुकाः। शान्तिं कुर्वन्तु ते हृष्टाः शान्ताः शान्तिपरायणाः॥

भगवान् सूर्यकी आराधना करनेवाले सभी पर्वत, ऋद्धि प्रदान करनेवाले वृक्ष, सभी सागर तथा पवित्रारण्य आपको शान्ति प्रदान करें। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग तथा पातालमें निवास करनेवाले एवं भगवान् सूर्यकी आराधना करनेवाले महाबलशाली और कामरूप सभी राक्षस, प्रेत, पिशाच एवं सभी दिशाओंमें अवस्थित अपस्मारग्रह तथा ज्वरग्रह आदि आपको नित्य शान्ति प्रदान करें।

जिन भगवान् सूर्यके दक्षिण भागमें विष्णु, वाम भागमें शंकर और ललाटमें ब्रह्मा सदा स्थित रहते हैं, ये सभी देवता उन भगवान् सूर्यके तेजसे सम्पन्न होकर आपको शान्ति प्रदान करें तथा सौरधर्मको जाननेवाले समस्त देवगण संसारके सूर्यभक्तों एवं सभी प्राणियोंको सर्वदा शान्ति प्रदान करें।

अन्धकार दूर करनेवाले तथा जय प्रदान करनेवाले विवस्वान् भगवान् भास्करकी सदा जय हो। ग्रहोंमें उत्तम तथा कल्याण करनेवाले, कमलको विकसित करनेवाले भगवान् सूर्यकी जय हो, ज्ञानस्वरूप भगवान् सूर्य! आपको नमस्कार है। शान्ति एवं दीप्तिका विधान करनेवाले, तमोहन्ता भगवान् अजित! आपको नमस्कार है, आपकी जय हो। सहस्र-किरणोज्ज्वल, दीप्तिस्वरूप, संसारके निर्माता आपको बार-बार नमस्कार है, आपकी जय हो। गायत्रीस्वरूपवाले, पृथ्वीको धारण करनेवाले सावित्री-प्रिय मार्तण्ड भगवान् सूर्यदेव! आपको बार-बार नमस्कार है, आपकी जय हो।'

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! इस विधानसे अरुणके द्वारा वैनतेय गरुडके कल्याणके लिये शान्ति-विधान करते ही वे सुन्दर पंखोंसे समन्वित हो गये। वे तेजमें बुधके समान देदीप्यमान और बलमें विष्णुके समान हो गये। राजन्! देवाधिदेव सूर्यके प्रसादसे सुपर्णके सभी अवयव पूर्ववत् हो गये।

राजन्! इसी प्रकार अन्य रोगग्रस्त मानवगण इस अग्निकार्यसे (सौरी-शान्तिसे) नीरोग हो जाते हैं। इसलिये इस

यक्षिण्यो विविधाकारास्तथा यक्षकुमारकाः। यक्षकन्या महाभागाः सूर्याराधनतत्पराः॥
शान्तिं स्वस्त्ययनं क्षेमं बलं कल्याणमुत्तमम्। सिद्धिं चाशु प्रयच्छन्तु नित्यं च सुसमाहिताः॥
पर्वताः सर्वतः सर्वे वृक्षाश्चैव महर्द्धिकाः। सूर्यभक्ताः सदा सर्वे शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा॥
सागराः सर्वतः सर्वे गृहारण्यानि कृत्स्नशः। सूर्यस्याराधनपराः कुर्वन्तु तव शान्तिकम्॥
राक्षसाः सर्वतः सर्वे घोररूपा महाबलाः। स्थलजा राक्षसा ये तु अन्तरिक्षगताश्च ये॥
पाताले राक्षसा ये तु नित्यं सूर्यार्चने रताः। शान्तिं कुर्वन्तु ते सर्वे तेजसा नित्यदीपिताः॥
प्रेताः प्रेतगणाः सर्वे ये प्रेताः सर्वतोमुखाः। अतिदीप्ताश्च ये प्रेता ये प्रेता रुधिराशनाः॥
अन्तरिक्षे च ये प्रेतास्तथा ये स्वर्गवासिनः। पाताले भूतले चापि ये प्रेताः कामरूपिणः॥
एकचक्ररथो यस्य यस्तु देवो वृषध्वजः। तेजसा तस्य देवस्य शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा॥
ये पिशाचा महावीर्या बुद्धिमन्तो महाबलाः। नानारूपधराः सर्वे सर्वे च गुणवत्तराः॥
अन्तरिक्षे पिशाचा ये स्वर्गे ये च महाबलाः। पाताले भूतले ये च बहुरूपा मनोजवाः॥
यस्याहं सारथिर्वीर यस्य त्वं तुरगः सदा। तेजसा तस्य देवस्य शान्तिं कुर्वन्तु तेऽञ्जसा॥
अपस्मारग्रहाः सर्वे सर्वे चापि ज्वरग्रहाः। ये च स्वर्गस्थिताः सर्वे भूमिगा ये ग्रहोत्तमाः॥
पाताले तु ग्रहा ये च ये ग्रहाः सर्वतो गताः। दक्षिणे किरणे यस्य सूर्यस्य च स्थितो हरिः॥
हरो यस्य सदा वामे ललाटे कञ्जजः स्थितः। तेजसा तस्य देवस्य शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा॥
इति देवादयः सर्वे सूर्ययज्ञविधायिनः। कुर्वन्तु जगतः शान्तिं सूर्यभक्तेषु सर्वदा॥
जय सूर्याय देवाय तमोहन्त्रे विवस्वते। जयप्रदाय सूर्याय भास्कराय नमोऽस्तु ते॥
ग्रहोत्तमाय देवाय जय कल्याणकारिणे। जय पद्मविकाशाय बुधरूपाय ते नमः॥
जय दीप्तिविधानाय जय शान्तिविधायिने। तमोघ्नाय जयायैव अजिताय नमो नमः॥
जयार्क जय दीप्तीश सहस्रकिरणोज्ज्वल। जय निर्मितलोकस्त्वमजिताय नमो नमः॥
गायत्रीदेहरूपाय सावित्रीदयिताय च। धराधराय सूर्याय मार्तण्डाय नमो नमः॥

(ब्राह्मपर्व १८०। १—३९)

शान्ति-विधानको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। ग्रहोपघात, दुर्भिक्ष, सभी उत्पातोंमें तथा अनावृष्टि आदिमें लक्ष-होमसमन्वित सौरसूक्तसे यत्नपूर्वक पूजन कर एवं वारुण-सूक्तसे प्रसन्नचित हो घी, मधु, तिल, यव एवं मधुके साथ पायससे हवन एवं शान्ति करे और सावधान हो बलि (नैवेद्य) प्रदान करे। ऐसा करनेसे देवतागण मनुष्योंके कल्याणकी कामना करते हैं एवं उनके लिये लक्ष्मीकी वृष्टि करते हैं। जो मनुष्य भगवान् दिवाकरका ध्यान कर इस शान्ति-अध्यायको पढ़ता या सुनता है, वह रणमें शत्रुपर विजयी हो परम सम्मानको प्राप्त कर एकच्छत्र शासक होकर सदा आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है। वह पुत्र-पौत्रोंसे प्रतिष्ठित होकर आदित्यके समान तेजस्वी एवं प्रभासमन्वित व्याधिशून्य जीवन-यापन करता है। वीर ! जिसके कल्याणके उद्देश्यसे इस शान्तिकाध्याय (शान्तिकल्प) का पाठ किया जाता है, वह वात-पित्त, कफजन्य रोगोंसे पीड़ित नहीं होता एवं उसकी न तो सर्पके दंशसे मृत्यु होती है और न अकालमें मृत्यु होती है। उसके शरीरमें विषका प्रभाव भी नहीं होता एवं जड़ता, अन्धत्व, मूकता भी नहीं होती। उत्पत्ति-भय नहीं रहता और न किसीके द्वारा किया गया अभिचार-कर्म सफल होता है। रोग, महान् उत्पात, महाविषैले सर्प आदि सभी इसके श्रवणसे शान्त हो जाते हैं। सभी गङ्गादि तीर्थोंका जो विशेष फल है, उसका कई गुना फल इस शान्तिकाध्यायके श्रवणसे प्राप्त होता है और दस राजसूय एवं अन्य यज्ञोंका फल भी उसे मिलता है। इसे सुननेवाला सौ वर्षतक व्याधिरहित नीरोग होकर जीवन-यापन करता है। गोहत्यारा, कृतघ्न, ब्रह्मघाती, गुरुतल्पगामी और शरणागत, दीन, आर्त, मित्र तथा विश्वासी व्यक्तिके साथ घात करनेवाला, दुष्ट, पापाचारी, पितृघातक तथा मातृघातक सभी इसके श्रवणसे निःसंदेह पापमुक्त हो जाते हैं। यह अग्निकार्य अतिशय उत्तम एवं परम पुण्यमय है।

(अध्याय १७५—१८०)

★

विविध स्मृति-धर्मों तथा संस्कारोंका वर्णन

राजा शतानीकने कहा—ब्रह्मन् ! पाँच प्रकारके जो स्मृति आदि धर्म हैं, उन्हें जाननेकी मुझे बड़ी ही अभिलाषा है। कृपापूर्वक आप उनका वर्णन करें।

सुमन्तुजी बोले—महाराज ! भगवान् भास्करने अपने सारथि अरुणसे जिन पाँच प्रकारके धर्मोंको बतलाया था, मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ, आप उन्हें सुनें।

भगवान् सूर्यने कहा—गरुडाग्रज ! स्मृतिप्रोक्त धर्मका मूल सनातन वेद ही है। पूर्वानुभूत ज्ञानका स्मरण करना ही स्मृति है। स्मृत्यादि धर्म पाँच प्रकारके होते हैं। इन धर्मोंका पालन करनेसे स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है तथा इस लोकमें सुख, यश और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। पहला वेद-धर्म है। दूसरा है आश्रम-धर्म अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। तीसरा है वर्णाश्रम-धर्म अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। चौथा है गुणधर्म और पाँचवाँ है नैमित्तिक धर्म—ये ही स्मृत्यादि पाँच प्रकारके धर्म कहे गये हैं। वर्ण और आश्रमधर्मके अनुसार अपने कर्तव्योंका निर्वाह करते हुए कर्मोंको सम्पादित करना ही वर्णाश्रम और आश्रमधर्म कहलाता है। जिस धर्मका प्रवर्तन गुणके द्वारा होता है, वह गुणधर्म कहलाता है। किसी निमित्तको लेकर जो धर्म प्रवर्तित होता है, उसे नैमित्तिक धर्म कहते हैं। यह नैमित्तिक धर्म जाति, द्रव्य तथा गुणके आधारपर होता है।

निषेध और विधि-रूपमें शास्त्र दो प्रकारके होते हैं। स्मृतियाँ पाँच प्रकारकी हैं—दृष्ट-स्मृति, अदृष्ट-स्मृति, दृष्टादृष्ट-स्मृति, अनुवाद-स्मृति और अदृष्टादृष्ट-स्मृति। सभी स्मृतियोंका मूल वेद ही है। स्मृतिधर्मके साधन-स्थान ब्रह्मावर्त, मध्यक्षेत्र, मध्यदेश, आर्यावर्त तथा यज्ञिय आदि देश हैं। सरस्वती और दृषद्वती (कुरुक्षेत्रके दक्षिण सीमाकी एक नदी) इन दो देव-नदियोंके बीचका जो देश है वह देव-निर्मित देश ब्रह्मावर्त नामसे कहा जाता है। हिमाचल और विन्ध्यपर्वतके बीचके देशको जो कुरुक्षेत्रके पूर्व और प्रयागके पश्चिममें स्थित है उसे मध्यदेश कहा जाता है। पूर्व-समुद्र तथा पश्चिम-समुद्र, हिमालय तथा विन्ध्याचल पर्वतके बीचके देशको आर्यावर्त देश कहा जाता है। जहाँ कृष्णसार मृग (कस्तूरी मृग) विचरण करते हैं और स्वभावतः निवास करते हैं, वह यज्ञिय देश है। इनके अतिरिक्त दूसरे अन्य देश म्लेच्छ-देश हैं जो

यज्ञ आदिके योग्य नहीं हैं। द्विजातियोंको चाहिये कि विचारपूर्वक इन देशोंमें निवास करें।

भगवान् आदित्यने पुनः कहा—खगराज ! अब मैं आश्रमधर्म बतला रहा हूँ। ब्रह्मचर्याश्रम-धर्म, गृहस्थाश्रम-धर्म, वानप्रस्थाश्रम-धर्म और संन्यासाश्रम-धर्म—क्रमसे इन चार प्रकारसे जीवनयापन करनेको आश्रमधर्म कहा जाता है। एक ही धर्म चार प्रकारसे विभक्त हो जाता है। ब्रह्मचारीको गायत्रीकी उपासना करनी चाहिये। गृहस्थको संतानोत्पत्ति और ब्राह्मण, देव आदिकी पूजा करनी चाहिये। वानप्रस्थीको देवव्रत-धर्मका और संन्यासीको नैष्ठिक धर्मका पालन करना चाहिये। इन चारों आश्रमोंके धर्म वेदमूलक हैं। गृहस्थको ऋतुकालमें मन्त्रपूर्वक गर्भाधान-संस्कार करना चाहिये। तीसरे मासमें पुंसवन तथा छठे अथवा सातवें मासमें सीमन्तोन्नयन-संस्कार करना चाहिये। जन्मके समय जातकर्म-संस्कार करना चाहिये। जातक (शिशु) को स्वर्ण, घी, मधुका मन्त्रोंद्वारा प्राशन कराना चाहिये। जन्मसे दसवें, ग्यारहवें या बारहवें दिन शुभ मुहूर्त, तिथि, नक्षत्र, योग आदि देखकर नामकरण-संस्कार करना चाहिये। शास्त्रानुसार छठे मासमें अन्नप्राशन करना चाहिये। सभी द्विजाति बालकोंका चूडाकरण-संस्कार एक वर्ष अथवा तीसरे वर्षमें करना चाहिये। ब्राह्मण-बालकका आठवें वर्षमें, क्षत्रियका ग्यारहवें और वैश्यका बारहवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार करना उत्तम होता है। गुरुसे गायत्रीकी दीक्षा ग्रहण कर वेदाध्ययन करना चाहिये। विद्याध्ययनके पश्चात् गुरुकी आज्ञा प्राप्तकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये और गुरुको यथेष्ट सुवर्णादि देकर प्रसन्न करना चाहिये। गृहस्थाश्रममें प्रवेश कर अपने समान वर्णवाली उत्तम गुणोंसे युक्त कन्यासे विवाह करना चाहिये। जो कन्या माता-पिताके कुलसे सात पीढ़ीतककी न हो और समान गोत्रकी न हो ऐसी अपने वर्णकी कन्यासे विवाह करना चाहिये।

विवाह आठ प्रकारके होते हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। वर और कन्याके गुण-दोषको भलीभाँति परखनेके बाद ही विवाह करना चाहिये। कन्याएँ अवस्था-भेदसे चार प्रकारकी होती हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—गौरी, नग्निका, देवकन्या तथा रोहिणी। सात वर्षकी कन्या गौरी, दस वर्षकी नग्निका, बारह वर्षकी देवकन्या तथा इससे अधिक आयुकी कन्या रोहिणी (रजस्वला) कहलाती है। निन्दित कन्याओंसे विवाह नहीं करना चाहिये। द्विजातियोंको अग्निके साक्ष्यमें विवाह करना चाहिये। स्त्री-पुरुषके परस्पर मधुर एवं दृढ़ सम्बन्धोंसे धर्म, अर्थ और कामकी उत्पत्ति होती है और वही मोक्षका कारण भी है।

(अध्याय १८१-१८२)

श्राद्धके विविध भेद तथा वैश्वदेव-कर्मकी महिमा

भगवान् सूर्यने अनूरु (अरुण)से कहा—अरुण ! द्विजमात्रको विधिपूर्वक पञ्च-महायज्ञ—भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, दैवयज्ञ और मनुष्ययज्ञ करना चाहिये। बलिवैश्वदेव करना भूतयज्ञ, तर्पण करना पितृयज्ञ, वेदका अध्ययन और अध्यापन करना ब्रह्मयज्ञ, हवन करना दैवयज्ञ तथा घरपर आये हुए अतिथिको सत्कारपूर्वक भोजन आदिसे संतुष्ट करना मनुष्ययज्ञ कहा जाता है।

श्राद्ध बारह प्रकारके होते हैं—नित्य-श्राद्ध, नैमित्तिक-श्राद्ध, काम्य-श्राद्ध, वृद्धि-श्राद्ध, सपिण्डन-श्राद्ध, पार्वण-श्राद्ध, गोष्ठ-श्राद्ध, शुद्धि-श्राद्ध, कर्माङ्ग-श्राद्ध, दैविक श्राद्ध, औपचारिक श्राद्ध तथा सांवत्सरिक श्राद्ध। तिल, व्रीहि (धान्य), जल, दूध, फल, मूल, शाक आदिसे पितरोंकी संतुष्टिके लिये प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिये। जो श्राद्ध प्रतिदिन किया जाता है, वह नित्य श्राद्ध है। एकोद्दिष्ट श्राद्धको नैमित्तिक-श्राद्ध कहते हैं। इस श्राद्धको विधिपूर्वक सम्पन्न कर अयुग्म (विषम संख्या) ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। जो श्राद्ध कामनापरक किया जाता है, वह काम्य-श्राद्ध है। इसे पार्वण-श्राद्धकी विधिसे करना चाहिये। वृद्धिके लिये जो श्राद्ध किया जाता है, उसे वृद्धि-श्राद्ध कहते हैं। ये सभी श्राद्धकर्म पूर्वाह्ण-कालमें उपवीती होकर करने चाहिये। सपिण्डन-श्राद्धमें चार पात्र बनाने चाहिये। उनमें गन्ध, जल और तिल छोड़ना चाहिये। प्रेत-पात्रका जल पितृ-पात्रमें छोड़े। इसके लिये '**ये समानाः०**' (यजु० १९।४५-४६) मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये।

स्त्रीका भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। अमावास्या तथा किसी पर्वपर जो श्राद्ध किया जाता है, उसे पार्वण-श्राद्ध कहते हैं। गौओंके लिये किया जानेवाला श्राद्ध-कर्म गोष्ठ-श्राद्ध कहा जाता है। पितरोंकी तृप्तिके लिये, सम्पत्ति और सुखकी प्राप्ति-हेतु तथा विद्वानोंकी संतुष्टिके निमित्त जो ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाता है, वह शुद्ध्यर्थ-श्राद्ध है। गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन तथा पुंसवन-संस्कारोंके समय किया गया श्राद्ध कर्माङ्ग-श्राद्ध है। यात्रा आदिके दिन देवताके उद्देश्यसे घीके द्वारा किया गया हवनादि कार्य दैविक श्राद्ध कहलाता है। शरीरकी वृद्धि, शरीरकी पुष्टि तथा अश्ववृद्धिके निमित्त किया गया श्राद्ध औपचारिक श्राद्ध कहलाता है। सभी श्राद्धोंमें सांवत्सरिक श्राद्ध सबसे श्रेष्ठ है। इसे मृत व्यक्तिकी तिथिपर करना चाहिये। जो व्यक्ति सांवत्सरिक श्राद्ध नहीं करता, उसकी पूजा न मैं ग्रहण करता हूँ, न विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र एवं अन्य देवगण ही ग्रहण करते हैं। इसलिये प्रयत्नपूर्वक प्रत्येक वर्ष मृत व्यक्तिकी तिथिपर सांवत्सरिक श्राद्ध करना चाहिये। जो व्यक्ति माता-पिताका वार्षिक श्राद्ध नहीं करता, वह घोर तामिस्र नामक नरकको प्राप्त करता है और अन्तमें सूकर-योनिमें उत्पन्न होता है।

अरुणने पूछा—भगवन्! जो व्यक्ति माता-पिताकी मृत्युकी तिथि, मास और पक्षको नहीं जानता, उस व्यक्तिको किस दिन श्राद्ध करना चाहिये ? जिससे वह नरकभागी न हो ?

भगवान् आदित्यने कहा—पक्षिराज अरुण! जो व्यक्ति माता-पिताके मृत्युके दिन, मास और पक्षको नहीं जानता, उस व्यक्तिको अमावास्याके दिन सांवत्सरिक नामक श्राद्ध करना चाहिये। जो व्यक्ति मार्गशीर्ष और माघमें पितरोंके उद्देश्यसे विशिष्ट भोजनादिद्वारा मेरी पूजा-अर्चना करता है, उसपर मैं अति प्रसन्न होता हूँ और उसके पितर भी संतुष्ट हो जाते हैं। पितर, गौ तथा ब्राह्मण—ये मेरे अत्यन्त इष्ट हैं। अतः विशेष भक्तिपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिये।

वेद-विक्रयद्वारा और स्त्रीद्वारा प्राप्त किया गया धन पितृकार्य और देव-पूजनादिमें नहीं लगाना चाहिये। वैश्वदेव कर्मसे हीन और भगवान् आदित्यके पूजनसे हीन वेदवेत्ता ब्राह्मणको भी निन्द्य समझना चाहिये। जो वैश्वदेव किये बिना ही भोजन कर लेता है वह मूर्ख नरकको प्राप्त करता है, उसका अन्न-पाक व्यर्थ है। प्रिय हो या अप्रिय, मूर्ख हो या विद्वान् वैश्वदेव कर्मके समय आया हुआ व्यक्ति अतिथि होता है और वह अतिथि स्वर्गका सोपानरूप होता है। जो बिना तिथिका विचार किये ही आता है उसे अतिथि कहते हैं। वैश्वदेव-कर्मके समय जो न तो पहले कभी आया हो और न ही उसके पुनः आनेकी सम्भावना हो तो उस व्यक्तिको अतिथि जानना चाहिये। उसे साक्षात् विश्वेदेवके रूपमें ही समझना चाहिये।

(अध्याय १८३-१८४)

मातृ-श्राद्धकी संक्षिप्त विधि

भगवान् आदित्यने कहा—अरुण! रात्रिमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये। रात्रिमें किया गया श्राद्ध राक्षसी श्राद्ध कहा जाता है। दोनों संध्याओंमें और सूर्यके अस्त होनेपर भी श्राद्ध करना निषिद्ध है।

अरुणने पूछा—भगवन्! माताका श्राद्ध किस प्रकार करना चाहिये और माता किन्हें माना गया है ? नान्दीमुख-पितरोंका पूजन किस प्रकार करना चाहिये, इन्हें मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् आदित्यने कहा—खगशार्दूल! मैं मातृ-श्राद्धकी विधि बतला रहा हूँ, उसे सुनिये।

मातृश्राद्धमें पूर्वाह्ण-कालमें आठ विद्वान् ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये तथा एक और अन्य नवम सर्वदैवत्य ब्राह्मणको भी भोजन देना चाहिये। इस प्रकार नौ ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। यव, तिल, दधि, गन्ध-पुष्पादिसे युक्त अर्घ्यद्वारा सबकी पूजा करनी चाहिये तथा सभी ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। ब्राह्मणोंको मधुर मिष्टान्न भोजन कराना चाहिये। भोजनमें कटु पदार्थ नहीं होने चाहिये। इस प्रकार ब्राह्मणोंको भोजन कराकर पिण्डदान देना चाहिये। दही-अक्षतका पिण्ड बनाये। एक चौरस मण्डप बनाकर उसकी प्रदक्षिणा करे। सव्य होकर हाथसे पूर्वाग्र कुशों तथा पुष्पोंको चढ़ाना चाहिये। माता, प्रमाता, वृद्धप्रमाता, पितामही, प्रपितामही, वृद्धप्रपितामही तथा अन्य अपने कुलमें

जो भी माताएँ हों, उन्हें आदरपूर्वक निमन्त्रित करना चाहिये। इस प्रकार माताओंको उद्दिष्ट कर छः पिण्ड बनाकर पूजन करना चाहिये। नान्दीमुखको उद्दिष्ट कर पाँच उत्तम ब्राह्मणोंको पाँच पितरोंके रूपमें भोजन कराना चाहिये। नान्दीमुख-श्राद्धमें ब्राह्मणोंको विधिवत् भोजन कराकर उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये।

खगपते! श्राद्धमें दौहित्र अर्थात् नाती, कुतुप वेला (एक बजे दिनका समय) और तिल—ये तीन पवित्र माने गये हैं तथा तीन प्रशंसा-योग्य कहे गये हैं—शुद्धि, अक्रोध और शीघ्रता न करना। एक वस्त्र धारण कर देव-पूजन और पितरोंके कर्म नहीं करने चाहिये। बिना उत्तरीय वस्त्र धारण किये पितर, देवता और मनुष्योंका पूजन, अर्चन तथा भोजन आदि सब कार्य निष्फल होता है।

(अध्याय १८५)

सौरधर्ममें शुद्धि-प्रकरण

भगवान् भास्करने कहा—खगाधिप! ब्राह्मणोंको नित्य पवित्र तथा मधुरभाषी होना चाहिये, उन्हें प्रतिदिन स्नानादिसे पवित्र हो चन्दनादि सुगन्धित द्रव्योंको धारणकर देवताओंका पूजन आदि करना चाहिये। सूर्यको निष्प्रयोजन नहीं देखना चाहिये और नग्न स्त्रीको भी नहीं देखना चाहिये। मैथुनसे दूर रहना चाहिये। जलमें मूत्र तथा विष्ठाका परित्याग नहीं करना चाहिये। शास्त्रोक्त नियमोंके अनुसार कर्म करने चाहिये। शास्त्र-वर्णित कर्मानुष्ठानके अतिरिक्त कोई भी व्रतादि नहीं करने चाहिये।

खगाधिपते! अभक्ष्य-भक्षण सभी वर्णोंके लिये वर्जित है। द्रव्यकी शुद्धि होनेपर ही कर्मकी शुद्धि होती है अन्यथा कर्मके फलकी प्राप्तिमें संशय ही बना रहता है। जातिसे दुष्ट, क्रियासे दुष्ट, कालसे दुष्ट, संसर्गसे दुष्ट, आश्रयसे दुष्ट तथा सहल्लेख (स्वभावतः निन्दित एवं अभक्ष्य) पदार्थमें अथवा दूषित हृदयके एवं कपटी व्यक्तिके स्वभावमें परिवर्तन नहीं होता। लहसुन, गाजर, प्याज, कुकुरमुत्ता, बैगन (सफेद) तथा मूली (लाल) आदि जात्या दूषित हैं। इनका भक्षण नहीं करना चाहिये। जो वस्तु क्रियाके द्वारा दूषित हो गयी हो अथवा पतितोंके संसर्गसे दूषित हो गयी हो, उसका प्रयोग न करे। अधिक समयतक रखा गया पदार्थ कालदूषित कहलाता है, वह हानिकर होता है, पर दही तथा मधु आदि पदार्थ कालदूषित नहीं होते। सुरा, लहसुन तथा सात दिनके अंदर ब्यायी हुई गायके दूधसे युक्त पदार्थ और कुत्तेद्वारा स्पर्श किये गये पदार्थ संसर्ग-दुष्ट कहे जाते हैं। इन पदार्थोंका परित्याग करना चाहिये। शूद्रसे तथा विकलाङ्ग आदिसे स्पृष्ट पदार्थ आश्रय-दूषित कहा जाता है। जिस वस्तुके भक्षण करनेमें मनमें स्वभावतः घृणा उत्पन्न हो जाती है, जैसे पुरीष (विष्ठा)-के प्रति स्वभावतः घृणा उत्पन्न होती है—उसे ग्रहण नहीं करना चाहिये। वह सहल्लेख दोषयुक्त पदार्थ कहा गया है। खीर, दूध, पाकादिका भक्षण शास्त्रोक्त विधिके अनुसार ही करना चाहिये।

सपिण्डमें दस दिन, बारह दिन अथवा पंद्रह दिन और एक मासमें प्रेत-शुद्धि हो जाती है। सूतकाशौच तथा मरणाशौचमें दस दिनके भीतर किसी व्यक्तिके यहाँ भोजन नहीं करना चाहिये। दशरात्र एवं एकादशाहके बीत जानेपर बारहवें दिन स्नान करनेसे शुद्धि हो जाती है। संवत्सर पूर्ण हो जानेपर स्नान-मात्रसे ही शुद्धि हो जाती है। सपिण्डमें जन्म और मृत्यु होनेपर अशौच लगता है। दाँत आनेतकके बालककी मृत्यु हो जानेपर सद्यः शुद्धि हो जाती है। चूडाकरणके पहले बालककी मृत्यु हो जानेपर एक दिन-रातकी अशुद्धि होती है तथा चूडाकरणके बाद और यज्ञोपवीत लेनेके पहले मृत्यु होनेपर त्रिरात्र अशुद्धि होती है और इसके अनन्तर दशरात्रकी अशुद्धि होती है। गर्भ-स्राव हो जानेपर तीन रात्रिके पश्चात् जलसे स्नान करनेके बाद शुद्धि होती है। असपिण्डी (एवं सगोत्री)-की मृत्यु होनेपर तीन अहोरात्रके बाद शुद्धि होती है। यदि केवल शव-यात्रा करता है तो स्नानमात्रसे शुद्धि हो जाती है।

द्रव्यकी शुद्धि आगमें तपाने, मिट्टी और जलसे धोने तथा मल हटाने, प्रक्षालन करने, स्पर्श और प्रोक्षण करनेसे होती है। द्रव्य-शुद्धिके पश्चात् स्नान करनेसे शुद्धि होती है। प्रातःकालका स्नान नित्य-स्नान है, ग्रहणमें स्नान करना काम्य-स्नान है तथा क्षौर और शौचादिके पश्चात् जो स्नान किया जाता है वह नैमित्तिक स्नान है, इससे पापादिकी निवृत्ति होती है।

(अध्याय १८६)

श्रद्धाकी महिमा, खखोल्क-मन्त्रका माहात्म्य तथा गौकी महिमा

अरुणने पूछा—भगवन् आदित्यदेव! मनुष्य किस पुण्यकर्मका सम्पादन कर स्वर्ग जाते हैं? कर्मयज्ञ, तपोयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ध्यानयज्ञ और ज्ञानयज्ञ—इन पाँच यज्ञोंमें सर्वोत्तम यज्ञ कौन है? इन यज्ञोंका क्या फल है और इनसे कौन-सी गति प्राप्त होती है? धर्म और अधर्मके कितने भेद कहे गये हैं? उनके साधन क्या हैं और उनसे कौन-सी गति होती है। नारकी पुरुषोंके पुनः पृथ्वीपर आनेपर भोगसे शेष कर्मोंके कौन-कौनसे चिह्न उपलब्ध रहते हैं? इस धर्माधर्मसे व्याप्त भवसागर तथा गर्भमें आगमन-रूपी दुःखसे कैसे मुक्ति प्राप्त होती है? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् सूर्य बोले—अरुण! स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष)के फलको देनेवाले तथा नरकरूपी समुद्रसे पार करानेवाले, पापहारी एवं पुण्यप्रद धर्मको सुनो। धर्मके पूर्वमें तथा मध्यमें और उसके अन्तमें श्रद्धा आवश्यक है। श्रद्धानिष्ठ ही धर्म प्रतिष्ठित होता है, अतः धर्म श्रद्धामूलक ही है। वेद-मन्त्रोंके अर्थ अतीव गूढतम हैं। उनमें प्रधान पुरुष परमेश्वर अधिष्ठित हैं, अतः इन्हें श्रद्धाके आश्रयसे ही ग्रहण किया जा सकता है। ये इस बाह्य चक्षुसे नहीं देखे जाते। श्रद्धारहित देवता भी भाँति-भाँतिके शरीरको कष्ट देनेपर तथा अत्यधिक अर्थव्यय करनेपर भी धर्मके सूक्ष्मरूप वेदमय परमात्माको नहीं प्राप्त कर सकते। श्रद्धा परम सूक्ष्म धर्म है, श्रद्धा यज्ञ है, श्रद्धा हवन, श्रद्धा तप, श्रद्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है। यह सम्पूर्ण जगत् श्रद्धामय ही है, अश्रद्धासे सर्वस्व जीवन देनेपर भी कुछ फल नहीं होता। बिना श्रद्धाके किया गया कार्य सफल नहीं होता। अतः मानवको श्रद्धा-सम्पन्न होना चाहिये*।

हे खगश्रेष्ठ! अब मेरे मण्डलके विषयमें सुनो। मेरा कल्याणमय मण्डल खखोल्क नामसे विख्यात है। यह तीनों देवों एवं तीनों गुणोंसे परे एवं सर्वज्ञ है। यह सर्वशक्तिमान् है। 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्रमें यह मण्डल अवस्थित है। जैसे घोर संसार-सागर अनादि है वैसे ही खखोल्क भी अनादि और संसार-सागरका शोधक है। जैसे व्याधियोंके लिये ओषधि होती है वैसे ही यह संसार-सागरके लिये ओषधि है। मोक्ष चाहनेवालोंके लिये मुक्तिका साधन और सभी अर्थोंका साधक है। खखोल्क नामका यह मेरा मन्त्र सदा उच्चारण एवं स्मरण करने योग्य है। जिसके हृदयमें यह **'ॐ नमः खखोल्काय'** मन्त्र स्थित है, उसीने सब कुछ पढ़ा है, सुना है और सब कुछ अनुष्ठित किया है—ऐसा समझना चाहिये।

मनीषियोंने इस खखोल्कको मार्तण्डके नामसे कहा है। उसके प्रति श्रद्धायुक्त होनेपर पुण्य प्राप्त होता है और अश्रद्धासे अधःपतन होता है। सूर्य-सम्बन्धी वचनको कहनेवाले गुरुकी सूर्यके समान पूजा करनी चाहिये। वह गुरु भवसागरमें निमग्न व्यक्तिका उद्धार कर देता है। सौरधर्मरूपी शीतल जलके द्वारा जो अज्ञानरूपी वह्निसे संतप्त मनुष्यको शान्त करता है, उसके समान गुरु कौन होगा? जो भक्तोंको ज्ञानरूपी अमृतसे आप्लावित करते हैं, भला उनकी कौन पूजा नहीं करेगा। स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष)की प्राप्तिके लिये देवाधिदेव सूर्यके द्वारा जो वाक्य कहे गये हैं, वे अतिशय कल्याणकारी हैं। राग, द्वेष, अक्षमा, क्रोध, काम, तृष्णाका अनुसरण करनेवाले व्यक्तिका कहा हुआ वाक्य नरकका साधन होनेसे दुर्भाषित कहा जाता है। अविद्यात्मक संसारके क्लेश-साधक मृदुल आलापवाले संस्कृत वाक्यसे भी क्या लाभ है? जिस वाक्यके सुननेसे राग-द्वेष आदिका नाश एवं पुण्य प्राप्त होता है, वह कठोर वाक्य भी अतिशय शोभाजनक है। स्मृतियाँ, महाभारत, वेद, महान् शास्त्र यदि धर्म-साधक न बन सकें तो इनका अध्ययनमात्र अपनी आयुके व्यतीत करनेके लिये ही है। सहस्रों वर्षकी आयु प्राप्त करनेपर भी शास्त्रका अन्त नहीं मिलता। अतः सभी शास्त्रोंको छोड़कर अक्षर तन्मात्र (परमात्मा) का ज्ञान कर परलोकके अनुरूप आचरण करना चाहिये। मनुष्योंके समर्थ

---

* श्रद्धापूर्वाः सदा धर्माः श्रद्धामध्यान्तसंस्थिताः। श्रद्धानिष्ठप्रतिष्ठाश्च धर्माः श्रद्धा प्रकीर्तिता॥
श्रुतिमन्त्ररसाः सूक्ष्माः प्रधानपुरुषेश्वराः। श्रद्धामात्रेण गृह्यन्ते न परेण च चक्षुषा॥
कायक्लेशैर्न बहुभिर्न चैवार्थस्य राशिभिः। धर्मः सम्प्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धाहीनैः सुरैरपि॥
श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा यज्ञाहुतं तपः। श्रद्धा मोक्षश्च स्वर्गश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत्॥
सर्वस्वं जीवितं वापि दद्यादश्रद्धया च यः। नाप्नुयात् स फलं किंचित् तस्माच्छ्रद्धापरो भवेत्॥ (ब्राह्मपर्व १८७। ९—१३)

शरीरसे भी क्या लाभ है जो पारलौकिक पुण्य-भारको वहन करनेमें असमर्थ है। जो सौरज्ञानके माहात्म्यको उच्चारण करनेमें असमर्थ है, वह शक्तिसम्पन्न और पण्डित होते हुए भी मूर्ख है। इसलिये जो सौर-ज्ञानके सद्भावकी महिमामें तत्पर रहता है, वही पण्डित, समर्थ, तपस्वी और जितेन्द्रिय है। जो नृप गुरुको सम्पूर्ण पृथिवी, धन और सुवर्ण आदि देकर भी यदि अन्यायपूर्वक सौर-ज्ञानकी जिज्ञासा करता है अर्थात् अन्यायाचरण करते हुए पूछता है तो उसे षडक्षर-मन्त्रका उपदेश गुरुको नहीं देना चाहिये। जो भगवान् सूर्यके धर्मको न्यायपूर्वक विनम्र भावसे सुनता है और कहता है, वह उचित स्थानको प्राप्त करता है, अन्यथा उसके विपरीत नरकको जाता है।

जो भगवान् सूर्यके षडक्षर-मन्त्रसे विधानपूर्वक गोदुग्ध-द्वारा सूर्यकी पूजा करता है वह मनुष्योंमें श्रेष्ठ है। देवासुरोंद्वारा मन्थन करनेपर क्षीरसागरसे सभी लोकोंकी मातृस्वरूपा पाँच गौएँ उत्पन्न हुई—नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुमना तथा शोभनावती। गौएँ तेजमें सूर्यके समान हैं। ये सम्पूर्ण संसारका उपकार करनेके लिये एवं देवताओंकी तृप्तिके लिये और मुझे स्नान करानेके लिये उत्पन्न हुई हैं। ये मेरा ही आधार लेकर स्थित हैं। गौओंके सभी अङ्ग पवित्र हैं। उनमें छहों रस निहित हैं। गायके गोबर, मूत्र, गोरोचन, दूध, दही तथा घृत—ये छः पदार्थ परम पवित्र हैं तथा सभी सिद्धियोंको देनेवाले हैं। सूर्यका परम प्रिय बिल्ववृक्ष गोमयसे ही उत्पन्न हुआ है, उस वृक्षपर कमलहस्ता लक्ष्मी विराजमान रहती हैं, अतः यह श्रीवृक्ष कहा जाता है। गोमयसे पद्म उत्पन्न होता है और उससे कमल उत्पन्न हुए हैं। गोरोचन परम मङ्गलमय, पवित्र और सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। गोमूत्रसे सभी देवोंका आहार-स्वरूप विशेषकर भास्करके लिये भोग्य एवं प्रियदर्शन सुगन्धित गुग्गुल उत्पन्न हुआ है। जगत्‌के सभी बीज क्षीरसे उत्पन्न हुए हैं। कामनाकी सिद्धिके लिये सभी माङ्गल्य वस्तु दहीसे उत्पन्न समझें। देवोंका अतिशय प्रिय अमृत घृतसे उत्पन्न है, अतः घी, दूध, दहीसे भगवान् सूर्यको स्नान कराना चाहिये। अनन्तर उष्ण जल और कषायसे स्नपन कराना चाहिये। फिर शीतल जलसे स्नान कराकर गोरोचनका लेपन एवं बिल्वपत्र, कमल और नीलकमलसे पूजन करना चाहिये। शर्करायुक्त गुग्गुलसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। दूध, दही, भात, मधुके साथ शर्करा एवं विविध भक्ष्य पदार्थोंको निवेदित करे। इसके बाद भगवान् भास्करकी प्रदक्षिणा कर उनसे क्षमा-याचना करे।

इस विधिसे जो दिनपति भगवान् भानुकी षडङ्ग-पूजा करता है, वह इस लोकमें सभी कामनाओंको प्राप्तकर अपने कुलकी इक्कीस पीढ़ियोंको स्वर्गमें ले जाता है तथा उन्हें वहाँ प्रतिष्ठित कर स्वयं ज्योतिष्क नामक स्थानको प्राप्त करता है। भगवान् भास्करकी पूजामें पत्र, पुष्प, फल, जल जो भी अर्पित होता है वह सब तथा सूर्य-सम्बन्धी गौएँ भी सूर्यलोकको प्राप्त करती हैं, इसमें संदेह नहीं है। देश, काल तथा विधिके अनुरूप श्रद्धापूर्वक सुपात्रको दिया गया अल्प भी दान अक्षय होता है। हे वीर! तिलका अर्धपरिमाणमात्र सत्पात्रको दिया गया श्रद्धापूर्वक दान सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। जिसने ज्ञानरूपी जलसे स्नान कर लिया है और शीलरूपी भस्मसे अपनेको शुद्ध कर लिया है, वह सभी पात्रोंमें उत्तम सत्पात्र माना गया है। जप, इन्द्रियदमन और संयम मनुष्यको संसार-सागरसे पार उतारनेवाले साधन हैं।

(अध्याय १८७)

पञ्चमहायज्ञ एवं अतिथि-माहात्म्य-वर्णन, सौर-धर्ममें दानकी महत्ता और पात्रापात्रका निर्णय तथा पञ्च महापातक

सप्ताश्ववाहन (भगवान् सूर्य) ने कहा—हे वीर! जो प्राणी सूर्य, अग्नि, गुरु तथा ब्राह्मणको निवेदन किये विना स्वयं जो कुछ भी भक्षण करता है वह पाप-भक्षण करता है। गृहस्थ मनुष्योंके कृषिकार्यसे, वाणिज्यसे, क्रोध और असत्य आदिके आचरणसे तथा पञ्चसूना[1]-दोषसे पाप होते हैं। सूर्य, गुरु, अग्नि और अतिथि आदिके सेवारूप पञ्चमहायज्ञोंसे ये

१-भोजन पकानेका स्थान (चूल्हा), आटा आदि पीसनेका स्थान (चक्की आदि), मसाला आदि कूटने-पीसनेका स्थान (लोढ़ा, सिल्बट आदि), जल रखनेका स्थान तथा झाड़ू देनेका काम—इनमें अनजाने ही हिंसाकी सम्भावना रहती है। अतः गृहस्थके लिये इन्हें ही पञ्चसूना-दोष कहा गया है।

पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य पापोंसे भी वह लिप्त नहीं होता, अतः इनकी नित्य पूजा करनी चाहिये। देवाधिदेव दिवाकरके प्रति जो इस प्रकार भक्ति करता है, वह अपने पितरोंको सभी पापोंसे विमुक्त कर स्वर्ग ले जाता है।

हे खग ! भगवान् सूर्यके दर्शनमात्रसे ही गङ्गा-स्नानका फल एवं उन्हें प्रणाम करनेसे सभी तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है तथा सभी पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। संध्या-समयमें सूर्यकी सेवा करनेवाला सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। एक बार भी भगवान् सूर्यकी आराधना करनेसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पितृगण तथा सभी देवगण एक ही साथ पूजित एवं संतुष्ट हो जाते हैं।

श्राद्धमें भगवान् सूर्यकी पूजा करने तथा सौर-भक्तोंको भोजन करानेसे पितृगण तृप्त हो जाते हैं। पुराणवेत्ताको आते हुए देखकर सभी ओषधियाँ यह कहकर आनन्दसे नृत्य करने लगती हैं कि आज हमें अक्षय स्वर्ग प्राप्त होगा। पितृगण एवं देवगण अतिथिके रूपमें लोकके अनुग्रह और श्रद्धाके परीक्षणके लिये आते हैं, अतः अतिथिको आया हुआ देखकर हाथ जोड़कर उसके सम्मुख जाना चाहिये तथा स्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अन्न आदिद्वारा उसकी सेवा करनी चाहिये। अतिथि रूप-सम्पन्न है या कुरूप, मलिन वस्त्रधारी है अथवा स्वच्छ वस्त्रधारी इसपर विद्वान् पुरुषको विचार नहीं करना चाहिये; उसका यथेष्ट स्वागत करना चाहिये।

अरुण ! दान सत्पात्रको ही देना चाहिये, जैसे कच्चे मिट्टीके पात्रमें रखा हुआ द्रव—जल आदि पदार्थ नष्ट हो जाता है, जैसे ऊषर-भूमिमें बोया गया बीज और भस्ममें हवन किया गया हव्य पदार्थ निष्फल हो जाता है वैसे ही अपात्रको दिया गया दान भी निष्फल हो जाता है।

खगश्रेष्ठ ! जो दान करुणापूर्वक श्रद्धाके साथ प्राणियोंको दिया जाता है, वह सभी कर्मोंमें उत्तम है। हीन, अन्ध, कृपण, बाल, वृद्ध तथा आतुरको दिये गये दानका फल अनन्त होता है। साधु पुरुष दाताके दानको अपने स्वार्थका उद्देश्य न रखकर ग्रहण करते हैं। इससे दाताका उपकार होता है। कोई अर्थी यदि घरपर आये तो कौन ऐसा व्यक्ति है जो उसका आदर नहीं करेगा। घर-घर याचना करनेवाला याचक पूज्य नहीं होता। कौन दाता है और कौन याचक इसका भेद देने और लेनेवालेके हाथसे ही सूचित हो जाता है। जो दाता व्यक्ति याचकको आया हुआ देखकर दान देनेकी अपेक्षा उसकी पात्रतापर विचार करता है, वह सभी कर्मोंको करता हुआ भी पारमार्थिक दाता नहीं है। संसारमें यदि याचक न हों तो दानधर्म कैसे होगा ? इसलिये याचकको 'स्वागत है, स्वागत है'—यह कहते हुए दान देना चाहिये।

याचकको प्रेमपूर्वक आधा ग्रास भी दिया जाय तो वह श्रेष्ठ है, किंतु बिना प्रेमका दिया हुआ बहुत-सा दान भी व्यर्थ है, ऐसा मनीषियोंने कहा है। इसलिये अनन्त फल चाहनेवाले व्यक्तिको सत्कारपूर्वक दान देना चाहिये। इससे मरनेपर भी उसकी कीर्ति बनी रहती है। प्रिय एवं मधुर वचनोंद्वारा दिया गया दान कल्याणकारी है, किंतु कठोरतासे असत्कारपूर्वक दिया गया दान युक्त दान नहीं है। अन्तरात्मासे क्रुद्ध होकर याचकको दान देनेसे न देना अच्छा है। प्रेमसे रहित दान न धर्म है, न धन है, न प्रीति है। दान, प्रदान, नियम, यज्ञ, ध्यान, हवन और तप—ये सभी क्रोधके साथ करनेपर निष्फल हो जाते हैं[1]।

श्रद्धाके साथ आदरपूर्वक ग्रहीताका अर्चन कर दान देनेवाले तथा श्रद्धा एवं आदरपूर्वक दान ग्रहण करनेवाले—दोनों स्वर्ग प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत देना और लेना ये दोनों नरक-प्राप्तिके कारण बन जाते हैं। उदारता, स्वागत, मैत्री, अनुकम्पा, अमत्सर—इन पाँच प्रकारोंसे दिया गया दान महान् फल देनेवाला होता है।

हे खगश्रेष्ठ ! वाराणसी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, गङ्गा और समुद्रतट, नैमिषारण्य, महापुण्य, मूलस्थान, मुण्डीरस्वामी (उड़ीसाका कोणार्कक्षेत्र) कालप्रिय (कालपी), क्षीरिकावास—ये स्थान देवताओं और पितरोंसे सेवित कहे गये हैं। सभी सूर्याश्रम, पर्वतोंसे युक्त सभी नदियाँ, गौ, सिद्ध

१- न तद्दानमसत्कारपारुष्यमलिनीकृतम्। वरं न दत्तमर्थिभ्यः संक्रुद्धेनान्तरात्मना॥
न तद्धनं न च प्रीतिर्न धर्मः प्रियवर्जितः। दानप्रदाननियमयज्ञध्यानं हुतं तपः।
यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधोऽस्य निष्फलं खग॥ (ब्राह्मपर्व १८९। १९-२०)

और मुनियोंसे प्रतिष्ठित स्थान पुण्यक्षेत्र कहे गये हैं। सूर्यमन्दिरसे युक्त स्थानोंमें रहनेवालेको दिया गया थोड़ा भी दान क्षेत्रके प्रभावसे अनन्त फलप्रद होता है। सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, उत्तरायण, विषुव, व्यतीपात, संक्रान्ति—ये सब पुण्यकाल कहे गये हैं। इनमें दान देनेसे पुण्यकी वृद्धि होती है। भक्तिभाव, परमप्रीति, धर्म, धर्मभावना तथा प्रतिपत्ति—ये पाँच श्रद्धाके पर्याय हैं। श्रद्धापूर्वक विधानके साथ सुपात्रको दिया गया दान उत्तम एवं अनन्त फलप्रद कहा गया है, अतः अक्षय पुण्यकी इच्छासे श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। इसके विपरीत दिया गया दान भारस्वरूप ही है। आर्त, दीन और गुणवान्को श्रद्धाके साथ थोड़ा भी दिया गया दान सभी कामनाओंका पूरक और सभी श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त करानेवाला होता है। मनीषियोंने श्रद्धाको ही दान माना है। श्रद्धा ही दान, श्रद्धा ही परम तप तथा श्रद्धा ही यज्ञ और श्रद्धा ही परम उपवास है। अहिंसा, क्षमा, सत्य, नम्रता, श्रद्धा, इन्द्रियसंयम, दान, यज्ञ, तप तथा ध्यान—ये दस धर्मके साधन हैं।

पर-स्त्री तथा परद्रव्यकी अपेक्षा करनेवाला और गुरु, आर्त, अशक्त, विदेशमें गये हुए तथा शत्रुसे पराभूत व्यक्तिको कष्ट देनेवाला पापकर्मा कहा जाता है। ऐसे व्यक्तियोंका परित्याग कर देना चाहिये, किंतु उसकी भार्या तथा उसके मित्र एवं पुत्रका अपमान नहीं करना चाहिये। उनका अवमान करना गुरुनिन्दाके समान पातक माना गया है। ब्राह्मणको मारनेवाला, सुरा-पान करनेवाला, स्वर्ण-चोर, गुरुकी शय्यापर शयन करनेवाला एवं इनके साथ सम्पर्क रखनेवाला—ये पाँच महापातकी कहे गये हैं। जो क्रोध, द्वेष, भय एवं लोभसे ब्राह्मणका अपमान करता है, वह ब्रह्महत्यारा कहा गया है। जो याचना करनेवालेको और ब्राह्मणको बुलाकर 'मेरे पास कुछ नहीं है' ऐसा कहकर बिना कुछ दिये लौटा देता है, वह चाण्डालके समान है। देव, द्विज और गौके लिये पूर्वप्रदत्त भूमिका जो अपहरण करता है, वह ब्रह्मघाती है। जो मूर्ख सौरज्ञानको प्राप्तकर उसका परित्याग कर देता है अर्थात् तदनुकूल आचरण नहीं करता, उसे सुरा-पान करनेवालेके समान जानना चाहिये। अग्निहोत्रके परित्यागी, माता और पिताके परित्यागी, कुकर्मके साक्षी, मित्रके हन्ता, सूर्य-भक्तोंके अप्रियको और पञ्चयज्ञोंके न करनेवाले, अभक्ष्य-भक्षण करनेवाले तथा निरपराध प्राणियोंको मारनेवालेको सर्वाधिपत्यकी प्राप्ति नहीं होती। सर्वजगत्पति भानुकी आराधनासे आत्मलोकका आधिपत्य प्राप्त होता है। अतः मोक्षकामीको भोगकी आसक्तिका परित्याग कर देना चाहिये। जो विरक्त हैं, शान्तचित्त हैं, वे सूर्यसम्बन्धी लोकको प्राप्त करते हैं। (अध्याय १८८-१८९)

पातक, उपपातक, यममार्ग एवं यमयातनाका वर्णन

सप्ताश्वतिलक भगवान् सूर्यने कहा—खगश्रेष्ठ! मानसिक, वाचिक तथा कायिक-भेदसे पाप अनेक प्रकारके होते हैं, जो नरक-प्राप्तिके कारण हैं, उन्हें मैं संक्षेपमें बतला रहा हूँ—

गौओंके मार्गमें, वनमें, नगरमें और ग्राममें आग लगाना आदि सुरापानके समान महापातक माने गये हैं। पुरुष, स्त्री, हाथी एवं घोड़ोंका हरण करना तथा गोचरभूमिमें उत्पन्न फसलोंको नष्ट करना, चन्दन, अगरु, कपूर, कस्तूरी, रेशमी वस्त्र आदिकी चोरी करना और धरोहर (थाती) वस्तुका अपहरण करना—ये सभी सुवर्णस्तेयके समान महापातक माने गये हैं। कन्याका अपहरण, पुत्र एवं मित्रकी स्त्री तथा भगिनीके प्रति दुराचरण, कुमारी कन्या और अन्त्यजकी स्त्रीके साथ सहवास, सवर्णाके साथ गमन—ये सभी गुरु-शय्यापर शयन (गुरुपत्नी-गमन)के समान महापातक माने गये हैं।

ब्राह्मणको अर्थ देनेका वचन देकर नहीं देनेवाले, सदाचारिणी पत्नीका परित्याग करनेवाले, साधु, बन्धु एवं तपस्वियोंका त्याग करनेवाले, गौ, भूमि, सुवर्णको प्रयत्नपूर्वक चुरानेवाले, भगवद्भक्तोंको उत्पीडित करनेवाले, धन, धान्य, कूप तथा पशु आदिकी चोरी करनेवाले तथा अपूज्योंकी पूजा करनेवाले—ये सभी उपपातकी हैं।

नारियोंकी रक्षा न करना, ऋषियोंको दान न देना, देवता, अग्नि, साधु, साध्वी, गौ तथा ब्राह्मणकी निन्दा करना पितर एवं देवताओंका उच्छेद, अपने कर्तव्य-कर्मका परित्याग, दुःशीलता, नास्तिकता, पशुके साथ कदाचार, रजःस्वलासे दुराचार, अप्रिय बोलना, फूट डालना आदि उपपातक कहे गये हैं।

जो गौ, ब्राह्मण, सस्य-सम्पदा, तपस्वी और साधुओंके दूषक हैं, वे नरकगामी हैं। परिश्रमसे तपस्या करनेवालेका

छिद्रान्वेषण करनेवाला, पर्वत, गोशाला, अग्नि, जल, वृक्षोंकी छाया, उद्यान तथा देवायतनमें मल-मूत्रका परित्याग करनेवाला, काम, क्रोध तथा मदसे आविष्ट पराये दोषोंके अन्वेषणमें तत्पर, पाखण्डियोंका अनुगामी, मार्ग रोकनेवाला, दूसरेकी सीमाका अपहरण करनेवाला, नीच कर्म करनेवाला, भृत्योंके प्रति अतिशय निर्दयी, पशुओंका दमन करनेवाला, दूसरोंकी गुप्त बातोंको कान लगाकर सुननेवाला, गौको मारने अथवा उसे बार-बार त्रास देनेवाला, दुर्बलकी सहायता न करनेवाला, अतिशय भारसे प्राणीको कष्ट देनेवाला और असमर्थ पशुको जोतनेवाला—ये सभी पातकी कहे गये हैं तथा नरकगामी होते हैं। जो परोक्षमें किसी प्रकार भी सरसोंके बराबर किसीका धन चुराता है, वह निश्चित ही नरकमें जाता है। ऐसे पापियोंको मृत्युके उपरान्त यमलोकमें यातना-शरीरकी प्राप्ति होती है। यमकी आज्ञासे यमदूत उसे यमलोकमें ले जाते हैं और वहाँ उसे बहुत दुःख देते हैं। अधर्म करनेवाले प्राणियोंके शास्ता धर्मराज कहे गये हैं। इस लोकमें जो पर-स्त्रीगामी हैं, चोरी करते हैं, किसीके साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करते हैं तो इस लोकका राजा उन्हें दण्ड देता है। परंतु छिपकर पाप करनेवालोंको धर्मराज दण्ड देते हैं। अतः किये गये पापोंका प्रायश्चित्त करना चाहिये। अनेक प्रकारके शास्त्र-कथित प्रायश्चित्तोंके द्वारा पातक नष्ट हो जाते हैं। शरीरसे, मनसे और वाणीसे किये गये पाप बिना भोगे अन्य किसी प्रकारसे कोटि कल्पोंमें भी नष्ट नहीं होते। जो व्यक्ति स्वयं अच्छा कर्म करता है, कराता है या उसका अनुमोदन करता है, वह उत्तम सुख प्राप्त करता है।

सप्ताश्वतिलक भगवान् सूर्यने पुनः कहा—हे खगश्रेष्ठ! पाप करनेवालोंको अपने पापके निमित्त घोर संत्रास भोगना पड़ता है। गर्भस्थ, जायमान, बालक, तरुण, मध्यम, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, नपुंसक सभी शरीरधारियोंको यमलोकमें अपने किये गये शुभ और अशुभ फलोंको भोगना पड़ता है। वहाँ सत्यवादी चित्रगुप्त आदि धर्मराजको जो भी शुभ और अशुभ कर्म बतलाते हैं, उन कर्मोंका फल उस प्राणीको अवश्य ही भोगना पड़ता है। जो सौम्य-हृदय, दया-समन्वित एवं शुभकर्म करनेवाले हैं, वे सौम्य पथसे और जो मनुष्य क्रूर कर्म करनेवाले एवं पापाचरणमें संलग्न हैं, वे घोर दक्षिण-मार्गसे कष्ट सहन करते हुए यमपुरीमें जाते हैं। वैवस्वतपुरी छियासी हजार अस्सी योजनमें है। शुभ कर्म करनेवाले व्यक्तियोंको यह धर्मपुरी समीप ही प्रतीत होती है और रौद्रमार्गसे जानेवाले पापियोंको अतिशय दूर। यमपुरीका मार्ग अत्यन्त भयंकर है, कहीं काँटे बिछे हैं और कहीं बालू-ही-बालू है, कहीं तलवारकी धारके समान है, कहीं नुकीले पर्वत हैं, कहीं असह्य कड़ी धूप है, कहीं खाइयाँ और कहीं लोहेकी कीलें हैं। कहीं वृक्षों तथा पर्वतोंसे गिराया जाता हुआ वह पापी व्यक्ति प्रेतोंसे युक्त मार्गमें दुःखित हो यात्रा करता है। कहीं ऊबड़खाबड़, कहीं कँकरीले और कहीं तप्त बालुकामय मार्गोंसे चलना पड़ता है। कहीं अन्धकाराच्छन्न भयंकर कष्टमय मार्गसे बिना किसी आश्रयके जाना पड़ता है। कहीं सींगसे परिव्याप्त मार्गसे, कहीं दावाग्निसे परिपूर्ण मार्गसे, कहीं तप्त पर्वतसे, कहीं हिमाच्छादित मार्गसे और कहीं अग्निमय मार्गसे गुजरना पड़ता है। उस मार्गमें कहीं सिंह, कहीं व्याघ्र, कहीं काटनेवाले भयंकर कीड़े, कहीं भयंकर जोंक, कहीं अजगर, कहीं भयंकर मक्षिकाएँ, कहीं विष वमन करनेवाले सर्प, कहीं विशाल बलोन्मत्त प्रमादी गजसमूह, कहीं भयंकर बिच्छू, कहीं बड़े-बड़े शृंगोंवाले महिष, रौद्र डाकिनियाँ, कराल राक्षस तथा महान् भयंकर व्याधियाँ उसे पीड़ित करती हैं, उन्हें भोगता हुआ पापी व्यक्ति यममार्गमें जाता है। उसपर कभी पाषाणकी वृष्टि होती है, कभी बिजली गिरती है तथा कभी वायुके झंझावातोंमें वह उलझाया जाता है और कहीं अंगारोंकी वृष्टि होती है। ऐसे भयंकर मार्गोंसे पापाचरण करनेवाले भूख-प्याससे व्याकुल मूढ़ पापीको यमदूत यमलोककी ओर ले जाते हैं।

अतः पाप छोड़कर पुण्य-कर्मका आचरण करना चाहिये। पुण्यसे देवत्व प्राप्त होता है और पापसे नरककी प्राप्ति होती है। जो थोड़े समयके लिये भी मनसे भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह कभी भी यमपुरी नहीं जाता। जो इस पृथिवीपर सभी प्रकारसे भगवान् भास्करकी पूजा करते हैं, वे पापसे वैसे ही लिप्त नहीं होते, जैसे कमलपत्र जलसे लिप्त नहीं होता। इसलिये सभी प्रकारसे भुवन-भास्करकी भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिये।

(अध्याय १९०—१९२)

सप्तमी-व्रतमें दन्तधावन-विधि-वर्णन

भगवान् सूर्यने कहा—विनतानन्दन अरुण! अयनकाल, विषुवकाल, संक्रान्ति तथा ग्रहणकालमें सदा भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। सप्तमीमें तो विशेषरूपसे उनकी पूजा करनी चाहिये। सप्तमियाँ सात प्रकारकी कही गयी हैं—अर्कसम्पुटिका-सप्तमी, मरीचि-सप्तमी, निम्ब-सप्तमी, फलसप्तमी, अनोदना-सप्तमी, विजय-सप्तमी तथा सातवीं कामिका-सप्तमी। माघ मास या मार्गशीर्ष मासमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको उपवास ग्रहण करना चाहिये। आर्त व्यक्तिके लिये मास और पक्षका नियम नहीं है। रात बीतनेमें जब आधा प्रहर शेष रहे, तब दन्तधावन करना चाहिये। महुएकी दातुवनसे दन्तधावन करनेपर पुत्र-प्राप्ति, भँगरैयासे दुःखनाश, बदरी (बेर) और बृहती (भटकटैया) से शीघ्र ही रोगमुक्ति, बिल्वसे ऐश्वर्य-प्राप्ति, खैरसे धन-संचय, कदम्बसे शत्रुनाश, अतिमुक्तकसे अर्थप्राप्ति, आटरूषक (अडूसा) से गुरुता प्राप्त होती है। पीपलके दातुनसे यश और जातिमें प्रधानता तथा करवीरसे अचल परिज्ञान प्राप्त होता है, इसमें संदेह नहीं। शिरीषकी दातूनसे विपुल लक्ष्मी और प्रियंगुके दातूनसे परम सौभाग्यकी प्राप्ति होती है।

अभीप्सित अर्थकी सिद्धिके लिये सुखपूर्वक बैठकर वाणीका संयम करके निम्न लिखित मन्त्रसे दातूनके वृक्षकी प्रार्थना कर दातून करे—

वरं त्वामभिजानामि कामदं च वनस्पते।
सिद्धिं प्रयच्छ मे नित्यं दन्तकाष्ठ नमोऽस्तु ते॥

(ब्राह्मपर्व १९३। १३)

'वनस्पते! आप श्रेष्ठ कामनाओंको प्रदान करनेवाले हैं, ऐसा मैं भलीभाँति जानता हूँ। हे दन्तकाष्ठ! मुझे सिद्धि प्राप्त करायें। आपको नमस्कार है।'

इस मन्त्रका तीन बार जप करके दन्तधावन करना चाहिये।

दूसरे दिन पवित्र होकर भगवान् सूर्यको प्रणाम कर यथेष्ट जप करे। तदनन्तर अग्निमें हवन करे। अपराह्न-कालमें मिट्टी, गोबर और जलसे स्नानकर विधिपूर्वक नियमके साथ शुक्ल वस्त्र धारण कर पवित्र हो, देवाधिदेव दिवाकरकी भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा और गायत्रीका जप करे। (अध्याय १९३)

स्वप्न-फल-वर्णन तथा उदक-सप्तमी-व्रत

भगवान् सूर्यने कहा—हे खगश्रेष्ठ! व्रतीको चाहिये कि जप, होम आदि सभी क्रियाओंको विधिपूर्वक सम्पन्न कर देवाधिदेव भगवान् सूर्यका ध्यान करता हुआ भूमिपर शयन करे। स्वप्नमें यदि मनुष्य भगवान् सूर्य, इन्द्रध्वज तथा चन्द्रमाको देखे तो उसे सभी समृद्धियाँ सुलभ होती हैं। शृङ्गार, चँवर, दर्पण, स्वर्णालंकार, रुधिरस्राव तथा केशपातको देखे तो ऐश्वर्यलाभ होता है। स्वप्नमें वृक्षाधिरोपण शीघ्र ऐश्वर्यदायक है। महिषी, सिंही तथा गौका अपने हाथसे दोहन और इनका बन्धन करनेपर राज्यका लाभ होता है। नाभिका स्पर्श करनेपर दुर्बुद्धि होती है। भेड़ एवं सिंहको तथा जलमें उत्पन्न जन्तुको मारकर स्वयं खानेसे, अपने अङ्ग, अस्थि, अग्नि-भक्षण, मदिरा-पान, सुवर्ण, चाँदी और पद्मपत्रके पात्रमें खीर खानेपर उसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। द्यूत या युद्धमें विजय देखना सुखप्रद होता है। अपने शरीरके प्रज्वलन तथा शिरोबन्धन देखनेसे ऐश्वर्य प्राप्त होता है। माला, शुक्ल वस्त्र, अश्व, पशु, पक्षीका लाभ और विष्ठाका अनुलेपन प्रशंसनीय माना गया है। अश्व या रथपर यात्राका स्वप्न देखना शीघ्र ही संततिके आगमनका सूचक है। अनेक सिर और भुजाएँ देखनेपर घरमें लक्ष्मी आती है। वेदाध्ययन देखना श्रेष्ठ है। देव, द्विज, श्रेष्ठ वीर, गुरु, वृद्ध तपस्वी स्वप्नमें मनुष्यको जो कुछ कहें उसे सत्य ही मानना चाहिये[1]। इनका दर्शन एवं आशीर्वाद श्रेष्ठ फलदायक है। पर्वत, अश्व, सिंह, बैल और हाथीपर विशिष्ट पराक्रमके साथ स्वप्नमें जो आरोहण करता है, उसे महान् ऐश्वर्य एवं सुखकी प्राप्ति होती है। ग्रह, तारा, सूर्यका जो स्वप्नमें परिवर्तन करता है और पर्वतका उन्मूलन करता है, उसे पृथ्वीपति होनेका संकेत मिलता है। शरीरसे आँतोंका निकालना, समुद्र

१-देवद्विजश्रेष्ठवीरगुरुवृद्धतपस्विनः ॥ यद्वदन्ति नरं स्वप्ने सत्यमेवेति तद्विदुः। (ब्राह्मपर्व १९४। ११-१२)

एवं नदियोंका पान करना ऐश्वर्य-प्राप्तिका सूचक है। जो स्वप्नमें समुद्रको एवं नदीको साहसके साथ पार करता है, उसे चिरजीवी पुत्र होता है। यदि स्वप्नमें कृमिका भक्षण करना देखता है, तो उसे अर्थकी प्राप्ति होती है। सुन्दर अङ्गोंको देखनेसे लाभ होता है। मङ्गलकारी वस्तुओंसे योग होनेपर आरोग्य और धनकी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

भगवान् भास्कर अज्ञानान्धकारको दूरकर अपनी अचल भक्ति प्रदान करते हैं, उनके विधिपूर्वक पूजन करनेके पश्चात् सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम कर प्रदक्षिणा करनी चाहिये। जो व्यक्ति भगवान् भास्करकी पूजा करता है, वह उत्तम विमानमें बैठकर सूर्यलोकको जाता है। विधिपूर्वक पूजन करनेके पश्चात् उनके यथेष्ट मन्त्रोंका जप तथा हवन करना चाहिये। सप्तमीके दिन भगवान् सूर्यनारायणका विधिपूर्वक पूजन कर केवल आधी अञ्जलि जल पीकर व्रत करनेको उदकसप्तमी कहते हैं, यह सदैव सुख देनेवाली है।

(अध्याय १९४—१९७)

सूर्यनारायणकी महिमा, अर्घ्य प्रदान करनेका फल तथा आदित्य-पूजनकी विधियाँ

महाराज शतानीकने कहा—सुमन्तु मुने! इस लोकमें ऐसे कौन देवता हैं जिनकी पूजा-स्तुति करके सभी मनुष्य शुभ-पुण्य और सुखका अनुभव करते हैं। सभी धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्म कौन है? आपके विचारसे कौन पूजनीय है तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवता किसकी पूजा-अर्चना करते हैं और आदिदेव किस देवताको कहा जाता है?

सुमन्तुजी बोले—राजन्! मैं इस विषयमें भगवान् वेदव्यास और भीष्मपितामहके उस संवादको कह रहा हूँ जो सभी पापोंका नाश करनेवाला तथा सुख प्रदान करनेवाला है, उसे आप सुनें।

एक समय गङ्गाके किनारे वेदव्यासजी बैठे हुए थे। वे अग्निके समान जाज्वल्यमान, तेजमें आदित्यके समान, साक्षात् नाराणतुल्य दिखायी दे रहे थे। भगवान् वेदव्यास महाभारतके कर्ता तथा वेदके अर्थोंको प्रकाशित करनेवाले हैं और ऋषियों तथा राजर्षियोंके आचार्य हैं, कुरुवंशके स्रष्टा हैं, साथ ही मेरे परमपूज्य हैं। इन वेदव्यासजीके पास कुरुश्रेष्ठ महातेजस्वी भीष्मजी आये और उन्हें प्रणाम कर कहने लगे।

भीष्मपितामहने पूछा—हे महामते पराशरनन्दन! आपने सम्पूर्ण वाङ्मयकी व्याख्या मुझसे की है, किंतु मुझे भगवान् भास्करके सम्बन्धमें संशय उत्पन्न हो गया है। सर्वप्रथम भगवान् आदित्यको नमस्कार करनेके पश्चात् ही अन्य देवताओंको नमस्कार किया जाता है। इसमें क्या कारण है? ये भगवान् भास्कर कौन हैं? कहाँसे उत्पन्न हुए हैं? हे द्विजश्रेष्ठ! इस लोकके कल्याणके लिये उस परम तत्त्वको कहिये। मुझे जाननेकी बड़ी ही अभिलाषा है।

व्यासजीने कहा—भीष्म! आप अवश्य ही किंकर्तव्यविमूढ हो गये हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है कि भगवान् भास्करकी स्तुति, पूजन-अर्चन सभी सिद्ध और ब्रह्मादि देवता करते हैं। सभी देवताओंमें आदिदेव भगवान् भास्करको ही कहा जाता है। ये संसार-सागरके अन्धकारको दूरकर सब लोकों और दिशाओंको प्रकाशित करते हैं। ये सभी धर्मोंमें श्रेष्ठ धर्मस्वरूप हैं। ये पूज्यतम हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवता आदिदेव भगवान् आदित्यकी ही पूजा करते हैं। आदित्य ही अदिति और कश्यपके पुत्र हैं। ये आदिकर्ता हैं, इसलिये भी आदित्य कहे जाते हैं। भगवान् आदित्यने ही सम्पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न किया है। देवता, असुर, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, पक्षी आदि तथा इन्द्रादि देवता, ब्रह्मा, दक्ष, कश्यप सभीके आदिकारण भगवान् आदित्य ही हैं। भगवान् आदित्य सभी देवताओंमें श्रेष्ठ और पूजित हैं।

भीष्मपितामहने पूछा—पराशरनन्दन महर्षि व्यासजी! यदि भगवान् सूर्यनारायणका इतना अधिक प्रभाव है तो प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल— इन तीनों कालोंमें राक्षसादि कैसे इन्हें संत्रस्त करते हैं तथा भगवान् आदित्य फिर कैसे चक्रवत् घूमते रहते हैं? हे द्विजोत्तम! राहु उन्हें कैसे ग्रसित करता है?

व्यासजीने कहा—पिशाच, सर्प, डाकिनी, दानव आदि जो क्रोधसे उन्मत्त हो भगवान् सूर्यनारायणपर आक्रमण करते हैं, भगवान् सूर्यनारायण उन्हें प्रताडित करते हैं। यह मुहूर्तादि कालस्वरूप भगवान् सूर्यका ही प्रभाव है। संसारमें धर्म एकमात्र भगवान् सूर्यका आधार लेकर प्रवर्तित होता है। ब्रह्मादि देवता सूर्यमण्डलमें स्थित रहते हैं। भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार

करनेमात्रसे ही सभी देवताओंको नमस्कार प्राप्त हो जाता है। तीनों कालोंमें संध्या करनेवाले ब्राह्मणजन भगवान् आदित्यको ही प्रणाम करते हैं। भगवान् भास्करके बिम्बके नीचे राहु स्थित है। अमृतकी इच्छा करनेवाला राहु विमानस्थ अमृत-घटसे थोड़ा भी अमृत छलकनेपर उस अमृतको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे जब विमानके अति संनिकट पहुँचता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि राहुने सूर्यनारायणको ग्रसित कर लिया है, उसे ही ग्रहण कहा जाता है। आदित्य भगवान्को कोई ग्रसित नहीं कर सकता; क्योंकि वे ही इस चराचर जगत्का विनाश करनेवाले हैं। दिन, रात्रि, मुहूर्त आदि सब आदित्य भगवान्के ही प्रभावसे प्रकाशित होते हैं। दिन, रात्रि, धर्म, अधर्म जो कुछ भी इस संसारमें दृष्टिगोचर हो रहा है, उन सबको भगवान् आदित्य ही उत्पन्न करते हैं। वे ही उसका विनाश भी करते हैं। जो व्यक्ति भगवान् आदित्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, उस व्यक्तिको भगवान् आदित्य शीघ्र ही संतुष्ट होकर वर प्रदान करते हैं तथा बल, वीर्य, सिद्धि, औषधि, धन-धान्य, सुवर्ण, रूप, सौभाग्य, आरोग्य, यश, कीर्ति, पुत्र, पौत्रादि और मोक्ष आदि सब कुछ प्रदान करते हैं, इसमें संदेह नहीं है।

भीष्मने कहा—महात्मन्! अब आप मुझसे सौरधर्मके स्नानकी विधि रहस्यसहित बतलायें। जिससे भगवान् आदित्यकी पूजाकर मनुष्य सभी प्रकारके दोषोंसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

व्यासजी बोले—भीष्म! मैं सौर-स्नानकी संक्षिप्त विधि बतला रहा हूँ, जो सभी प्रकारके पापोंको दूर कर देती है। सर्वप्रथम पवित्र स्थानसे मृत्तिका ग्रहण करे, तदनन्तर उस मृत्तिकाको शरीरमें लगाये। फिर जलको अभिमन्त्रित कर स्नान करे। शङ्ख, तुरही आदिसे ध्वनि करते हुए सूर्यनारायणका ध्यान करना चाहिये। भगवान् सूर्यके **'ह्रां ह्रीं सः'** इस मन्त्रराजसे आचमन करना चाहिये। फिर देवताओं एवं ऋषियोंका तर्पण और स्तुति करनी चाहिये। अपसव्य होकर पितरोंका तर्पण करे। अनन्तर संध्या-वन्दन करे। उसके बाद भगवान् भास्करको अञ्जलिसे जल देना चाहिये। स्नान करनेके बाद त्र्यक्षर-मन्त्र **'ह्रां ह्रीं सः'** अथवा षडक्षर-मन्त्र **'खखोल्काय नमः'** का जप करना चाहिये। जिस मन्त्रराजको पूर्वमें कहा है उस मन्त्रराजसे हृदयादि न्यास करना चाहिये। मन्त्रको हृदयङ्गम कर भगवान् सूर्यनारायणको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। एक ताम्रपात्रमें गन्ध, लाल चन्दन आदिसे सूर्य-मण्डल बनाकर उसमें करवीर (कनेर) आदिके पुष्प, गन्धोदक, रक्तचन्दन, कुश, तिल, चावल आदि स्थापित कर घुटनेको मोड़ उस ताम्र-पात्रको उठाकर सिरसे लगाये और भक्तिपूर्वक **'ह्रां ह्रीं सः'** इस मन्त्रराजसे भगवान् सूर्यनारायणको अर्घ्य प्रदान करे। जो व्यक्ति इस विधिसे भगवान् आदित्यको अर्घ्य निवेदन करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। हजारों संक्रान्तियों, हजारों चन्द्रग्रहणों, हजारों गोदानों तथा पुष्कर एवं कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल केवल सूर्यनारायणको अर्घ्य प्रदान करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। सौर-दीक्षा-विहीन व्यक्ति भी यदि भगवान् आदित्यको संवत्सरपर्यन्त अर्घ्य प्रदान करता है तो उसे भी वही फल प्राप्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। फिर दीक्षाको ग्रहण कर जो विधिपूर्वक अर्घ्य प्रदान करता है, वह व्यक्ति इस संसार-सागरको पारकर भगवान् भास्करमें विलीन हो जाता है।

भीष्मने कहा—ब्रह्मन्! आपने पाप-हरण करनेवाली स्नान-विधि तो बता दी, अब कृपाकर उनकी पूजा-विधि बतायें, जिससे मैं भगवान् सूर्यकी पूजा कर सकूँ।

व्यासजी बोले—भीष्म! अब मैं आदित्य-पूजनकी विधि कह रहा हूँ, आप सुनें। आदित्यपूजकको चाहिये कि स्नानादिसे पवित्र होकर किसी शुद्ध एकान्त स्थानमें प्रसन्न होकर भास्करकी पूजा करे। वह श्रेष्ठ सुन्दर आसनपर पूर्वाभिमुख बैठे। सूर्य-मन्त्रोंसे करन्यास एवं हृदयादि-न्यास करे। इस प्रकार आत्मशुद्धिकर न्यासद्वारा भगवान् सूर्यकी अपनेमें भावना करे। अपनेको भास्कर समझकर स्थण्डिलपर भानुकी स्थापना करके विधिवत् पूजा करे। दक्षिण-पार्श्वमें पुष्पकी टोकरी एवं वाम पार्श्वमें जलसे परिपूर्ण ताम्रपात्र स्थापित करे। पूजाके लिये उपकल्पित सभी द्रव्योंका अर्घ्यपात्रके जलसे प्रोक्षण कर पूजन करे, अनन्तर मन्त्रवेत्ता एकाग्रचित होकर सूर्यमन्त्रोंका जप करे।

भीष्मने कहा—भगवन्! अब आप भगवान् सूर्यकी वैदिक अर्चा-विधि बतलायें।

व्यासजी बोले—भीष्म! आप इस सम्बन्धमें सुरज्येष्ठ

ब्रह्मा तथा विष्णुके मध्य हुए संवादको सुनें। एक बार ब्रह्माजी मेरुपर्वतपर स्थित अपनी मनोवती नामकी सभामें सुखपूर्वक बैठे हुए थे। उसी समय विष्णुभगवान्‌ने प्रणाम कर उनसे कहा—'ब्रह्मन्! आप भगवान् भास्करकी आराधना-विधि बतायें और मण्डलस्थ भगवान् सूर्यनारायणकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये, इसे कहें।'

ब्रह्माने कहा—महाबाहो! आपने बहुत उत्तम बात पूछी है, आप एकाग्रचित्त होकर भगवान् भास्करकी पूजन-विधि सुनिये।

सर्वप्रथम शास्त्रोक्त विधिसे भूमिका विधिवत् शोधनकर केसर आदि गन्धोंसे सात आवरणोंसे युक्त कर्णिकासमन्वित एक अष्टदलकमल बनाये। उसमें दीप्ता आदि सूर्यकी दिव्य अष्ट शक्तियोंको पूर्वादि-क्रमसे ईशानकोणतक स्थापित करे। बीचमें सर्वतोमुखी देवीकी स्थापना करे। दीप्ता सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता और सर्वतोमुखी—ये नौ सूर्यशक्तियाँ हैं। इन शक्तियोंका आवाहनकर पद्मकी कर्णिकाके ऊपर भगवान् भास्करको स्थापित करना चाहिये। '**उदु त्यं जातवेदसं**॰' (यजु॰७।४१) तथा '**अग्निं दूतं**॰' (यजु॰ २२।१७)—ये मन्त्र आवाहन और उपस्थानके कहे गये हैं। '**आ कृष्णेन रजसा**॰' (यजु॰ ३३।४३) तथा '**हꣳ सः शुचिषद्**॰' (यजु॰ १०।२४) इन मन्त्रोंसे भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। '**अपप्ने तारकं**॰' मन्त्रसे दीप्तादेवीकी पूजा करे। '**अदृश्रमस्य केतवो**॰' (यजु॰ ८।४०) मन्त्रसे सूक्ष्मादेवीकी, '**तरणिर्विश्वदर्शतो**॰' (यजु॰ ३३।३६) से जयाकी, '**प्रत्यङ्देवाना**॰' इस मन्त्रसे भद्राकी, '**येना पावक चक्षसा**॰' (यजु॰ ३३।३२) इस मन्त्रसे विभूतिकी, '**विद्यामेषि**॰' इस मन्त्रसे विमलादेवीकी पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकारसे अमोघा, विद्युता तथा सर्वतोमुखी देवियोंकी भी पूजा करनी चाहिये। अनन्तर वैदिक मन्त्रोंसे सप्तावरण-पूजन-पूर्वक मध्यमें भगवान् सूर्यकी पूजा करे। भगवान् सूर्य एक चक्रवाले रथपर बैठकर श्वेत कमलपर स्थित हैं। उनका लाल वर्ण है। वे सर्वाभरणभूषित तथा सभी लक्षणोंसे समन्वित और महातेजस्वी हैं। उनका बिम्ब वर्तुलाकार है। वे अपने हाथोंमें कमल और धनुष लिये हैं। ऐसे उनके स्वरूपका ध्यानकर नित्य श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये।

भगवान् विष्णुने कहा—हे सुरश्रेष्ठ! मण्डलस्थ भगवान् भास्करकी प्रतिमारूपमें किस प्रकारसे पूजा की जाय, उसे आप बतलानेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—हे सुव्रत! आप एकाग्रचित्त-मनसे प्रतिमा-पूजन-विधिको सुनिये। '**इषे त्वो**॰' (यजु॰ १।१) इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यके सिर-प्रदेशका पूजन करना चाहिये। '**अग्निमीळे**॰' (ऋ॰ १।१।१) इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यके दक्षिण हाथकी पूजा करनी चाहिये। '**अग्न आ याहि**॰' (ऋ॰ ६।१६।१०) इस मन्त्रसे सूर्यभगवान्‌के दोनों चरणोंकी पूजा करनी चाहिये। '**आ जिघ्र**॰' (यजु॰ ८।४२) इस मन्त्रसे पुष्पमाला समर्पित करनी चाहिये। '**योगे योगे**॰' (यजु॰११।१४) इस मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये। '**समुद्रं गच्छ**॰' (यजु॰ ६।२१) तथा '**इमं मे गङ्गे**॰' (ऋ॰ १०।७५।५) तथा '**समुद्रज्येष्ठाः**॰' (ऋ॰ ७।४९।१) इन मन्त्रोंसे उन्हें अंगराग लगाये। '**आ प्यायस्व**॰' (यजु॰ १२।११२) इस मन्त्रसे दुग्ध-स्नान, '**दधिक्राव्णो**॰' (यजु॰ २३।३२) इस मन्त्रसे दधिस्नान, '**तेजोऽसि शुक्र**॰' (यजु॰ २२।१) इस मन्त्रसे घृत-स्नान तथा '**या ओषधीः**॰' (यजु॰ १२।७५) इस मन्त्रद्वारा ओषधि-स्नान कराये। इसके बाद '**द्विपदा**॰' (यजु॰ २३।३४) इस मन्त्रसे भगवान्‌का उद्वर्तन करे। फिर '**मा नस्तोके**॰' (यजु॰ १६।१६) इस मन्त्रसे पुनः स्नान कराये। '**विष्णो रराट**॰' (यजु॰ ५।२१) इस मन्त्रसे गन्ध तथा जलसे स्नान कराये। '**स्वर्ण घर्मः**॰' (यजु॰ १८।५०) इस मन्त्रसे पाद्य देना चाहिये। '**इदं विष्णुर्वि चक्रमे**॰' (यजु॰ ५।१५) इस मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। '**वेदोऽसि**॰' (यजु॰ २।२१) इस मन्त्रसे यज्ञोपवीत और '**बृहस्पते**॰' (यजु॰ २६।२३) इस मन्त्रसे वस्त्र-उपवस्त्र आदि भगवान् सूर्यको चढ़ाना चाहिये। इसके अनन्तर पुष्पमाला चढ़ाये। '**धूरसि धूर्व**॰' (यजु॰ १।८) इस मन्त्रसे गुग्गुलसहित धूप दिखाना चाहिये। '**समिद्धो**॰' (यजु॰ २९।१) इस मन्त्रसे रोचना लगाये। '**दीर्घायुस्त**॰' (यजु॰१२।१००) इस मन्त्रसे आलक्त (आलता) लगाये। '**सहस्रशीर्षा**' (यजु॰ ३१।१) इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यके सिरका पूजन करना चाहिये। '**संभावया**॰' इस मन्त्रसे दोनों नेत्रों और '**विश्वतश्चक्षु**॰' (यजु॰ १७।१९) इस मन्त्रसे

भगवान् सूर्यके सम्पूर्ण शरीरका स्पर्श करना चाहिये। '**श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च॰**' (यजु॰ ३१।२२) इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए विधिपूर्वक भगवान् सूर्यनारायणका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजन॰ अर्चन करना चाहिये। (अध्याय १९८—२०२)

भगवान् भास्करके व्योम-पूजनकी विधि तथा आदित्य-माहात्म्य

विष्णु भगवान्‌ने पूछा—हे सुरश्रेष्ठ चतुरानन! अब आप भगवान् आदित्यके व्योम-पूजनकी विधि बतलायें। अष्ट-शृङ्गयुक्त व्योमस्वरूप भगवान् भास्करकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये।

ब्रह्माजीने कहा—महाबाहो! सुवर्ण, चाँदी, ताम्र तथा लोहा आदि अष्ट धातुओंसे एक अष्ट शृङ्गमय व्योम बनाकर उसकी पूजा करनी चाहिये। सर्वप्रथम उसके मध्यमें भगवान् भास्करकी पूजा करनी चाहिये। '**महिषासो॰**' इस मन्त्रसे अनेक प्रकारके पुष्पोंको चढ़ाना चाहिये। '**त्रातारमिन्द्र॰**'(यजु॰ २०।५०) तथा '**उदीरतामवर॰**' (यजु॰ १९।४९) इत्यादि वैदिक मन्त्रोंसे शृङ्गोंकी तथा '**नमोऽस्तु सर्पेभ्यो॰**' (यजु॰ १३।६) इस मन्त्रसे व्योमपीठकी पूजा करनी चाहिये। जो व्यक्ति ग्रहोंके साथ सब पापोंको दूर करनेवाले व्योम-पीठस्थ भगवान् सूर्यको नमस्कार कर उनका पूजन करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

भगवान् भास्करकी पूजा करके गुरुको सुन्दर वस्त्र, जूता, सुवर्णकी अँगूठी, गंध, पुष्प, अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ निवेदित करने चाहिये। जो व्यक्ति इस विधिसे उपवास रखकर भगवान् सूर्यकी पूजा-अर्चना करता है, वह बहुत पुत्रोंवाला, बहुत धनवान् और कीर्तिमान् हो जाता है। भगवान् सूर्यके उत्तरायण तथा दक्षिणायन होनेपर उपवास रखकर जो व्यक्ति उनकी पूजा करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञ करनेका फल, विद्या, कीर्ति और बहुतसे पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय जो व्यक्ति उपवास रखकर भगवान् भास्करकी पूजा-अर्चना आदि करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

इसी प्रकार भगवान् भास्करके रत्नमय व्योमकी प्रतिमा बनाकर उसकी प्रतिष्ठा और वैदिक मन्त्रोंसे विविध उपचारोंद्वारा उसकी पूजा करे। पूजनके अनन्तर ऋग्वेदकी पाँच ऋचाओंसे भगवान् आदित्यकी परास्तुति करे[1]। इसके बाद भास्करको अर्घ्य निवेदित करे। अनन्तर भगवान् सूर्यकी दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा सर्वतोमुखी नामवाली नौ दिव्य शक्तियोंका पूजन करे।

इस विधिसे जो भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह इस लोक और परलोकमें सभी मनःकामनाओंको पूर्ण कर लेता है। पुत्र चाहनेवालेको पुत्र तथा धन चाहनेवालेको धन प्राप्त हो जाता है। कन्यार्थीको कन्या और वेदार्थीको वेद प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति निष्कामभावसे भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, उसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। इतना कहकर ब्रह्माजी शान्त हो गये।

व्यासजीने पुनः कहा—हे भीष्म! अब आप ध्यान करने योग्य ग्रहोंके स्वरूपका तथा भगवान् आदित्यके माहात्म्यका श्रवण करें। भगवान् सूर्यका वर्ण जपाकुसुमके समान लाल है। वे महातेजस्वी श्वेत पद्मपर स्थित हैं। सभी लक्षणोंसे समन्वित हैं। सभी अलंकारोंसे विभूषित हैं। उनके एक मुख है, दो भुजाएँ हैं। रक्त वस्त्र धारण किये हुए वे ग्रहोंके मध्यमें स्थित हैं। जो व्यक्ति तीनों समय एकाग्रचित्त होकर उनके इस रूपका ध्यान करता है, वह शीघ्र ही इस लोकमें धन-धान्य प्राप्त कर लेता है और सभी पापोंसे छूटकर तेजस्वी तथा बलवान् हो जाता है। श्वेत वर्णके चन्द्रमा, रक्त वर्णके मंगल, रक्त तथा श्याम-मिश्रित वर्णके बुध, पीत वर्णके बृहस्पति, शङ्ख तथा दूधके समान श्वेत वर्णके शुक्र, अञ्जनके समान कृष्ण वर्णके शनि, लाजावर्तके समान नील वर्णके राहु और केतु कहे गये हैं। इन ग्रहोंके साथ ग्रहोंके अधिपति भगवान्

१- उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति॥
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति। त आववृत्रन्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते॥
यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः।
(ऋग्वेद १।१६४।४३, ४५—४७,४९)

सूर्यनारायणका जो व्यक्ति ध्यान एवं पूजन करता है, उसे शीघ्र ही महासिद्धि प्राप्त हो जाती है, सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं तथा महादेवत्वकी प्राप्ति हो जाती है।

सूर्यनारायणके समान कोई देवता नहीं और न ही उनके समान कोई गति देनेवाला है। सूर्यके समान न तो ब्रह्मा हैं और न अग्नि। सूर्यके धर्मके समान न कोई धर्म है और न उनके समान कोई धन। सूर्यके अतिरिक्त कोई बन्धु नहीं है और न तो कोई शुभचिन्तक ही है। सूर्यके समान कोई माता नहीं और न तो कोई गुरु ही है। सूर्यके समान न तो कोई तीर्थ है और न उनके समान कोई पवित्र ही है। समस्त लोकों, देवताओं तथा पितरोंमें एक भगवान् सूर्य ही व्याप्त हैं, उनका ही स्तवन, अर्चन तथा पूजन करनेसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणकी आराधना करता है, वह इस भवसागरको पार कर जाता है। भगवान् सूर्यके प्रसन्न हो जानेपर राजा, चोर, ग्रह, सर्प आदि पीड़ा नहीं देते तथा दरिद्रता और सभी दुःखोंसे भी निवृत्ति हो जाती है।

रविवारके दिन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यनारायणकी पूजाकर नक्त व्रत करनेवाला व्यक्ति अमरत्वको प्राप्त करता है। भगवान् मार्तण्डकी प्रीतिके लिये जो संक्रान्तिमें विधिपूर्वक श्राद्ध करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। जो व्यक्ति भास्करकी प्रीतिके लिये उपवास रखकर षष्ठी या सप्तमीके दिन विधिवत् श्राद्ध करता है, वह सभी दोषोंसे निवृत्त होकर सूर्यलोकको प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति सप्तमीके दिन विशेषकर रविवार अथवा ग्रहणके दिन भक्तिपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजा करता है, उसकी सभी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। ग्रहणके दिन भगवान् भास्करका पूजन करना उन्हें अतिप्रिय है। भगवान् आदित्य परमदेव हैं और सभी देवताओंमें पूज्य हैं। उनकी पूजा कर व्यक्ति इच्छित फलको प्राप्त कर लेता है। धन चाहनेवालेको धन, पुत्र चाहनेवालेको पुत्र तथा मोक्षार्थीको मोक्ष प्राप्त हो जाता है और वह अमर हो जाता है।

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! भीष्मसे ऐसा कहकर वेदव्यासजी अपने स्थानको चले गये और भीष्मने भी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यनारायणकी विधि-विधानसे पूजा की। राजन्! आप भी भगवान् भास्करकी पूजा करें, इससे आपको शाश्वत स्थान प्राप्त होगा। (अध्याय २०३—२०७)

सप्त-सप्तमी तथा द्वादश मास-सप्तमी-व्रतोंका वर्णन

शतानीकने कहा—मुने! भगवान् भास्करको अति प्रिय जिन अर्कसम्पुटिका आदि सात सप्तमी-व्रतोंकी आपने पूर्वमें चर्चा की है, उन्हें बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तुजी बोले—महामते! मैं सात सप्तमियोंका वर्णन कर रहा हूँ, उन्हें सुनिये। पहली सप्तमी अर्कसम्पुटिका नामकी है। दूसरी मरिचसप्तमी, तीसरी निम्बसप्तमी, चौथी फलसप्तमी पाँचवीं अनोदनासप्तमी, छठी विजयसप्तमी तथा सातवीं कामिका नामकी सप्तमी है। इनकी संक्षिप्त विधि इस प्रकार है—

उत्तरायण या दक्षिणायनमें, शुक्र पक्षमें, रविवारके दिन ग्रहणमें, पुंलिङ्गवाची नक्षत्रमें—इन सप्तमी-व्रतोंको ग्रहण करना चाहिये। व्रतीको जितेन्द्रिय, पवित्रता-सम्पन्न और ब्रह्मचारी होकर सूर्यकी अर्चनामें रत रहना चाहिये तथा जप-होमादिमें तत्पर रहना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि पञ्चमीके दिन एकभुक्त रहकर षष्ठीके दिन जितेन्द्रिय रहे एवं निन्द्य पदार्थोंका भक्षण न करे। अर्क-सेवनसे पहली सप्तमी, मरिचसे दूसरी सप्तमी तथा निम्बपत्रसे तीसरी सप्तमी व्यतीत करे। फलसप्तमीमें फलोंका भक्षण करना चाहिये। अनोदना-सप्तमीके दिन अन्न भक्षण न करके उपवास करे। विजय-सप्तमीके दिन वायु भक्षण कर उपवास करे। कामिका-सप्तमीको भी हविष्य भोजनकर यथाविधि सम्पन्न करना चाहिये। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन सप्तमी-व्रतोंको करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त कर लेता है।

अर्कसम्पुटिका-व्रतसे सात पीढ़ीतक अचल सम्पत्ति बनी रहती है। मरिच-सप्तमीके अनुष्ठानसे प्रिय पुत्रादिका साथ बना रहता है। निम्बसप्तमीके पालनसे सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है और फल-सप्तमी-व्रतके करनेसे व्रती अनेक पुत्र-पौत्रादिसे युक्त हो जाता है। अनोदना-सप्तमीके व्रतसे धन-धान्य, पशु, सुवर्ण, आरोग्य तथा सुख सदा सुलभ रहते हैं। विजय-सप्तमीका व्रत करनेसे शत्रुगण नष्ट हो जाते हैं। कामिका-सप्तमीका विधिवत् अनुष्ठान करनेसे पुत्रकी

कामना करनेवाला पुत्र, अर्थकी कामना करनेवाला अर्थ, विद्या-प्राप्तिकी कामना करनेवाला विद्या और राज्यकी कामना करनेवाला राज्य प्राप्त करता है। पुरुष हो या स्त्री इस व्रतको विधिपूर्वक सम्पन्न कर परमगतिको प्राप्त कर लेते हैं। उनके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। उनके कुलमें न कोई अंधा होता है, न कुष्ठी, न नपुंसक और न कोई विकलाङ्ग तथा न निर्धन। लोभवश, प्रमादवश या अज्ञानवश यदि व्रत-भङ्ग हो जाय तो तीन दिनतक भोजन न करे और मुण्डन कराकर प्रायश्चित करे। पुनः व्रतके नियमोंको ग्रहण करे।

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! चैत्रादि बारह मासोंकी शुक्ल सप्तमियोंमें गोमय, यावक, सूखे पत्ते, दूध अथवा भिक्षान्न भक्षण कर अथवा एकभुक्त रहकर उपवास करना चाहिये। भगवान् सूर्यकी पूजा कमल-पुष्प, नाना प्रकारके गन्ध, चन्दन, गुग्गुल धूप आदि विविध उपचारोंसे करनी चाहिये तथा इन्हीं उपचारोंसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी भी पूजा कर उन्हें दक्षिणा देकर संतुष्ट करना चाहिये। इससे व्रतीको अपार दक्षिणावाले यज्ञोंका फल प्राप्त होता है और वह सूर्यलोकमें पूजित होता है। चैत्रादि बारह महीनोंमें पूजित होनेवाले भगवान् सूर्यके बारह नाम इस प्रकार हैं—चैत्रमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान्, आषाढ़में दिवाकर, श्रावणमें पर्जन्य, भाद्रपदमें वरुण, आश्विनमें मार्तण्ड, कार्तिकमें भार्गव, मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें पूषा, माघमें भग तथा फाल्गुनमें त्वष्टा।

(अध्याय २०८-२०९)

अर्कसम्पुटिका-सप्तमीव्रत-विधि, सप्तमी-व्रत-माहात्म्यमें कौथुमिका आख्यान

सुमन्तुजी बोले—राजन्! फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको अर्कसप्तमी कहते हैं। इसमें षष्ठीको उपवास रहकर स्नान करके गन्ध, पुष्प, गुग्गुल, अर्क-पुष्प, श्वेत करवीर एवं चन्दनादिसे भगवान् दिवाकरकी पूजा करनी चाहिये। रविकी प्रसन्नताके लिये नैवेद्यमें गुडोदक समर्पित करे। इस प्रकार दिनमें भानुकी पूजा करके रातमें निद्रारहित होकर उनके मन्त्रका जप करे।

शतानीकने पूछा—मुने! भगवान् सूर्यका प्रिय मन्त्र कौन-सा है? उसे बतायें और धूप-दीपका भी निर्देश करें जिससे उस मन्त्रका जप करता हुआ मैं दिवाकरकी पूजा कर सकूँ।

सुमन्तुजीने कहा—हे भरतश्रेष्ठ! मैं इस विधिको संक्षेपसे कह रहा हूँ। व्रतीको चाहिये कि एकाग्रचित होकर षडक्षर-मन्त्रका जप, होम तथा पूजा आदि सभी कर्म सम्पादित करे। सर्वप्रथम यथाशक्ति गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। सौरी गायत्री-मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ भास्कराय विद्महे सहस्ररश्मिं धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।**' इसे भगवान् सूर्यने स्वयं कहा है। यह सौरी गायत्री-मन्त्र परम श्रेष्ठ है। इसका श्रद्धापूर्वक एक बार जप करनेसे ही मानव पवित्र हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। सप्तमीके दिन प्रातःकाल एकाग्रचित्त हो इस मन्त्रका जप करे और भक्तिपूर्वक भास्करकी पूजा करे। राजन्! यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये। धनकी कंजूसी न करे। जो सूर्यके प्रति श्रद्धा-सम्पन्न नहीं है, उन्हें भोजन नहीं कराना चाहिये। शाल्योदन, मूँग, अपूप, गुडसे बने पुए, दूध तथा दहीका भोजन कराना चाहिये। इससे भास्कर तृप्त होते हैं। भोजनके वर्ज्य पदार्थ इस प्रकार हैं—कुलथी, मसूर, सेम तथा बड़ी। उड़द आदि, कड़वा तथा दुर्गन्धयुक्त पदार्थ भी निवेदित नहीं करने चाहिये।

अर्कवृक्षकी '**ॐ खखोल्काय नमः**' से पूजा कर अर्कपल्लवोंको ग्रहण करे। फिर स्नानकर अर्क-पुष्पसे रविकी पूजा करके ब्राह्मणको भोजन कराये और '**अर्को मे प्रीयताम्**' सूर्यदेव मुझपर प्रसन्न हों, ऐसा कहे। तदनन्तर देवताके सम्मुख दाँत और ओठसे स्पर्श किये बिना निम्नलिखित मन्त्रसे अर्कसम्पुटकी प्रार्थना करते हुए जलके साथ पूर्वाभिमुख होकर अर्कपुट निगल जाय।

ॐ अर्कसम्पुट भद्रं ते सुभद्रं मेऽस्तु वै सदा।
ममापि कुरु भद्रं वै प्राशनाद् वित्तदो भव ॥

(ब्राह्मपर्व २१०।७२)

इस मन्त्रका जप करते हुए जो अर्कका ध्यान करता है तथा अर्कसम्पुटका प्राशन करता है, वह श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है।

दाँतसे स्पर्श न किये जानेके कारण अर्कपुट अर्कसम्पुट कहलाता है। जो इस विधिसे वर्षभर सूर्यनारायणकी प्रसन्नताके लिये श्रद्धापूर्वक सप्तमी-व्रत करता है, उस मनुष्यका धन सात पीढ़ीतक अक्षय तथा अचल हो जाता है। हे राजन्! इस व्रतके अनुष्ठानसे सामगान करनेवाले महर्षि कौथुमि कुष्ठरोगसे मुक्त हो गये तथा सिद्धि प्राप्त की। साथ ही बृहद्वल्क, राजा जनक, महर्षि याज्ञवल्क्य तथा कृष्णपुत्र साम्ब—इन सबने भी भगवान् सूर्यकी पूजा करके और इस व्रतके अनुष्ठानसे उनकी साम्यता प्राप्त कर ली। यह अर्क-सप्तमी पवित्र, पापनाशिनी, पुण्यप्रद तथा धन्य है। अपने कल्याणके लिये इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये।

शतानीकने पूछा—मुने! जनक आदिने भगवान् सूर्यकी पूजा करके जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त की, उसे तो मैंने बहुधा सुना है, किंतु महर्षि कौथुमिने किस प्रकार अर्ककी आराधना कर सिद्धि प्राप्त की और वे कैसे कुष्ठ-रोगसे मुक्त हुए, इसका मुझे ज्ञान नहीं है। ये कौथुमि कौन थे, उन्हें कैसे कुष्ठ हुआ? हे द्विजश्रेष्ठ! किस प्रकार उन्होंने देवाधिदेव दिवाकरकी आराधना की? इन सभी बातोंको मुझे संक्षेपमें सुनायें।

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! आपने बहुत अच्छी जिज्ञासा की है। इस विषयको आप श्रवण करें। प्राचीन कालमें हिरण्यनाभ नामके एक विद्वान् ब्राह्मण थे। वे अपने पुत्रके साथ महाराजा जनकके आश्रमपर गये। वहाँ अनेक ब्राह्मणोंके साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। क्रोधवश कौथुमिसे एक ब्राह्मणका वध हो गया। पुत्रके द्वारा विप्रको मारा गया देखकर पिताने कौथुमिका परित्याग कर दिया। सज्जनों तथा कुटुम्बियोंने भी उनका बहिष्कार कर दिया। शोक और दुःखसे दुःखी होकर वे दिव्य देवालयोंमें गये और उन्होंने अनेक तीर्थोंकी यात्राएँ कीं, किंतु ब्रह्महत्यासे मुक्ति न मिल सकी। ब्रह्महत्याके कारण उन्हें भयंकर कुष्ठ नामक व्याधिने ग्रस्त कर लिया। नाक, कान आदि अङ्ग गलकर गिर गये। शरीरसे पीब और रक्त बहने लगा। समस्त पृथ्वीपर घूमते हुए वे पुनः अपने पिताके घर आये। दुःखसे व्याकुलचित्त हो उन्होंने अपने पितासे कहा—'तात! मैं पवित्र तीर्थों और अनेक देवालयोंमें गया, किंतु इस क्रूर ब्रह्महत्यासे मुक्त नहीं हो सका। प्रायश्चित्त करनेपर भी मुझे इससे छुटकारा नहीं मिला है। अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कैसे मैं रोगसे मुक्ति पाऊँ? हे अनघ! अल्प परिश्रम-साध्य जिस कर्मके करनेसे इस ब्रह्महत्यारूपी व्याधिसे मुझे छुटकारा मिले, उस उपायको आप शीघ्र बतायें और मेरा कल्याण करें।'

हिरण्यनाभने कहा—पुत्र! पृथ्वीमें घूमते हुए तुमने जो क्लेश प्राप्त किया है, उसे मैं भलीभाँति जानता हूँ। तुम अनेक तीर्थोंमें गये और प्रायश्चित्त भी किये, परंतु ब्रह्महत्यासे मुक्ति न मिली, अब मैं एक उपाय बताता हूँ, उस उपायसे तुम अनायास ही ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाओगे।

कौथुमिने कहा—विभो! मैं ब्रह्मादि देवोंमें किसकी आराधना करूँ? मैं तो शरीरसे भी विकल हूँ, अतः सभी कर्मोंका यथावत् सम्पादन मुझसे सम्भव नहीं है, फिर किस प्रकार मैं देवताको संतुष्ट कर सकूँगा।

हिरण्यनाभने कहा—ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, वरुण आदि देवताओंने भक्तिपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजा की है और इसी कारण वे स्वर्गलोकमें आनन्दित हो रहे हैं। हे पुत्र! मैं भगवान् सूर्यके समान किसी भी देवताको नहीं जानता हूँ। वे सभी कामनाओंको देनेवाले और माता-पिता तथा सभीके मान्य हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। इसलिये तुम उनके मन्त्रका जप करते हुए तथा सामवेदके मन्त्रोंका गान करते हुए भक्तिपूर्वक उनकी आराधना करो और उनसे सम्बन्धित इतिहास-पुराण आदिका श्रवण करो, इससे तुम्हें शीघ्र ही रोगसे मुक्ति मिलेगी और तुम मोक्ष प्राप्त कर लोगे।

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! सामगान करनेवाले महर्षि कौथुमिने श्रद्धा-समन्वित हो अपने पिताद्वारा निर्दिष्ट सूर्योपासनाकी विधिसे भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी आराधना की। भगवान् भास्करकी कृपासे महर्षि कौथुमि दिव्य मूर्तिमान् हो गये और उन्होंने भगवान् भास्करके दिव्य मण्डलमें प्रवेश किया[1]। (अध्याय २१०-२११)

१-महर्षि कौथुमि एक वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। सामवेद-संहिताकी कौथुमी शाखा अत्यन्त प्रसिद्ध है और इस समय वही प्राप्त है। उसके द्रष्टा ऋषि यही हैं। ये प्राच्य सामग भी कहलाते हैं। शौनकीय चरणव्यूह-ग्रन्थमें सामवेदकी प्रायः एक हजार शाखाओंकी विस्तृत चर्चा है।

मरिच-सप्तमी-व्रत-वर्णन

सुमन्तुजीने कहा—हे वीर ! मैंने तुमको अर्कसम्पुटिका-व्रतकी संक्षिप्त विधि बतलायी। अब मरिच-सप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ, इसमें मरिचका भक्षण किया जाता है। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिको उपवास रहकर सौरधर्मकी विधिके अनुसार भक्तिपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजा करनी चाहिये। **'ॐ वं फट्'** यह महाबलशाली मन्त्र साक्षात् सूर्यस्वरूप ही है। इसका बारंबार स्मरण एवं जप करनेसे मानव एक वर्षमें ही देवेश भगवान् भास्करका दर्शन प्राप्त कर लेता है और अन्तमें व्याधि तथा मृत्युसे मुक्त हो सूर्यलोकको प्राप्त करता है। व्रती आत्मशुद्ध्यर्थ मरिच-सप्तमीके दिन सौर-मन्त्रों एवं मुद्राओंसे हृदयादि अङ्गन्यास कर प्राणायाम आदि करे। भगवान्‌को अर्घ्य प्रदान करे। विविध पुष्पोंको अर्पित करे। स्नान कराये, नैवेद्य अर्पित करे। संयत होकर सूर्यमन्त्रोंका जप करे। व्योममुद्रा दिखाकर प्रदक्षिणा करे, हवन करे और हृदयमुद्रासे भगवान्‌का विसर्जन करे। भगवान्‌के पूजन आदि कर्मोंमें तत्तद् मुद्राओंको दिखाये। मुद्राओंके नाम इस प्रकार हैं—किंकिणी, व्योम, अस्त्र, पद्मिनी, अर्किणी, ज्वालिनी, तेजनी, गभस्तिनी, शंखिनी, सूर्यवक्त्रा, सहस्रकिरणा, उदया, मध्यमा, अस्तमनी, मालिनी, तर्जनी तथा कुम्भमुद्रा। इन मुद्राओंके साथ जो भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, उससे वे प्रसन्न हो जाते हैं। इस विधिसे ब्रह्माने भगवान् सूर्यकी पूजा की थी। राजन् ! तुम भी इस विधिसे भास्करकी पूजा करो। इस विधिसे जो सदा रविकी पूजा करता है, वह भगवान् सूर्यदेवके दिव्य धामको प्राप्त कर लेता है। नृप ! इस विधिसे देवेशकी पूजा कर यथाशक्ति ब्राह्मणको विधिपूर्वक भोजन कराकर सप्तमीके दिन मन्त्रपूर्वक सूर्यका स्मरण करते हुए मौन होकर भोजन करे और भोजनसे पहले मरिचकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

ॐ खखोल्काय स्वाहा। प्रीयतां प्रियसङ्गदो भव स्वाहा ॥

ऐसा करनेसे व्रतीको प्रिय व्यक्तिका समागम उसी क्षण प्राप्त हो जाता है। यह मरिच-सप्तमी प्रियसंगमदायिनी और पुण्यको प्रदान करनेवाली तथा कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली है। एक वर्षतक इस सप्तमी-व्रतका पालन करनेसे पुत्रादिकोंसे वियोग नहीं होता। इसलिये महाबाहो! इस प्रियदायिनी सप्तमीको तुम भी करो। देवराज इन्द्रने इस मरिच-सप्तमीको उपवास कर महाराज्ञी शचीका सङ्ग प्राप्त किया था। महाबलशाली राजा नलने भी इस सप्तमीको उपवास कर दमयन्तीको प्राप्त किया था और श्रीरामने भी इस सप्तमीके दिन उपवास कर भगवती सीताको प्राप्त किया था।

(अध्याय २१२—२१४)

निम्ब-सप्तमी तथा फलसप्तमी-व्रतका वर्णन

सुमन्तुजीने कहा—हे वीर ! अब मैं तृतीय निम्ब-सप्तमी (वैशाख शुक्ला-सप्तमी)की विधि बतला रहा हूँ, आप सुनें। इसमें निम्ब-पत्रका सेवन किया जाता है। यह सप्तमी सभी तरहके व्याधियोंको हरनेवाली है। इस दिन हाथमें शार्ङ्गधनुष, शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये हुए भगवान् सूर्यका ध्यान कर उनकी पूजा करनी चाहिये। भगवान् सूर्यका मूल मन्त्र है—'**ॐ खखोल्काय नमः**'। '**ॐ आदित्याय विद्महे विश्वभागाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।**' यह सूर्यका गायत्री-मन्त्र है।

पूजामें सर्वप्रथम समाहित-चित्त होकर प्रयत्नपूर्वक मन्त्रपूत जलसे पूजाके उपचारोंका प्रोक्षण करे। अपनेमें भगवान् सूर्यकी भावना करके उनका ध्यान करते हुए मन्त्रवित् हृदय आदि अङ्गोंमें मन्त्रका विन्यास करे। सम्मार्जनी मुद्रासे दिशाओंका प्रतिबोधन करे। भूशोधन करना चाहिये। पूजाकी यह विधि सभीके लिये अभीष्ट फल देनेवाली है।

पवित्र स्थानमें कर्णिकायुक्त एक अष्टदल-कमल बनाये, उसमें आवाहिनी मुद्राके द्वारा भगवान् सूर्यका आवाहन करे। वहाँपर मनोहर-स्वरूप खखोल्क भगवान् सूर्यको स्नान कराये। मन्त्रमूर्ति भगवान् सूर्यकी स्थापना और स्नान आदि कर्म मन्त्रोंद्वारा करने चाहिये। आग्नेय दिशामें भगवान् सूर्यके हृदयकी, ईशानकोणमें सिरकी, नैर्ऋत्यकोणमें शिखाकी एवं पूर्वदिशामें दोनों नेत्रोंकी भावना करे। इसके अनन्तर ईशानकोणमें सोम, पूर्व दिशामें मंगल, आग्नेयमें बुध, दक्षिणमें बृहस्पति, नैर्ऋत्य दिशामें शुक्र, पश्चिममें शनि, वायव्यमें केतु और उत्तरमें राहुकी स्थापना करे। कमलकी द्वितीय कक्षामें

भगवान् सूर्यके तेजसे उत्पन्न द्वादश आदित्यों—भग, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, चन्द्र तथा विष्णुको स्थापित करे। पूर्वमें इन्द्र, दक्षिणमें यम, पश्चिममें वरुण, उत्तरमें कुबेर, ईशानमें ईश्वर, अग्निकोणमें अग्निदेवता, नैर्ऋत्यमें पितृदेव, वायव्यमें वायु तथा जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, शेष, वासुकि, रेवती, विनायक, महाश्वेता, राज्ञी, सुवर्चला आदि तथा अन्य देवताओंके समूहको यथास्थान स्थापित करना चाहिये। सिद्धि, वृद्धि, स्मृति, उत्पलमालिनी तथा श्री इनको अपने दक्षिण पार्श्वमें स्थापित करना चाहिये। प्रज्ञावती, विभा, हारीता, बुद्धि, ऋद्धि, विसृष्टि, पौर्णमासी तथा विभावरी आदि देव-शक्तियोंको अपने उत्तर भगवान् सूर्यके समीप स्थापित करना चाहिये।

इस प्रकार भगवान् सूर्य तथा उनके परिकरों एवं देव-शक्तियोंकी स्थापना करनेके अनन्तर मन्त्रपूर्वक धूप, दीप, नैवेद्य, अलंकार, वस्त्र, पुष्प आदि उपचारोंको भगवान् सूर्य तथा उनके अनुगामी देवोंको प्रदान करे। इस विधिसे जो भास्करकी सदा अर्चना करता है, वह सभी कामनाओंको पूर्ण कर सूर्यलोकको प्राप्त करता है। निम्नलिखित मन्त्रद्वारा निम्बकी प्रार्थनाकर उसे भगवान्को निवेदित करके प्राशन करे—

त्वं निम्ब कटुकात्मासि आदित्यनिलयस्तथा।
सर्वरोगहरः शान्तो भव मे प्राशनं सदा॥

'हे निम्ब! तुम भगवान् सूर्यके आश्रयस्थान हो। तुम कटु स्वभाववाले हो, तुम्हारे भक्षण करनेसे मेरे सभी रोग सदाके लिये नष्ट हो जायँ और तुम मेरे लिये शान्तस्वरूप हो जाओ।'

इस मन्त्रसे निम्बका प्राशन कर भगवान् सूर्यके समक्ष पृथ्वीपर बैठकर सूर्यमन्त्रका जप करे। इसके बाद यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा दे। अनन्तर संयत-वाक् हो लवणवर्जित मधुर भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक इस निम्ब-सप्तमीका व्रत करनेवाला व्यक्ति सभी रोगोंसे मुक्त हो सूर्यलोकको जाता है।

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको उपवास कर भगवान् सूर्यकी सौर-विधानसे पूजा करनी चाहिये। पुनः अष्टमीको स्नानकर दिवाकरकी पूजा कर ब्राह्मणोंको खजूर, नारियल, मातुलुङ्ग (बिजौरा) तथा आम्रके फलोंको भगवान्के सम्मुख रखना चाहिये और **'मार्तण्डः प्रीयताम्'** ऐसा कहकर इन्हें ब्राह्मणोंको निवेदित कर दे। यह फल-सप्तमी कहलाती है। **'सर्वे भवन्तु सफला मम कामाः समन्ततः।'** ऐसा कहकर स्वयं भी उन्हीं फलोंका भक्षण करे। इस फल-सप्तमीका एक वर्षतक श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक व्रत करनेसे पुत्र-पौत्रोंकी प्राप्ति होती है[1]।

(अध्याय २१५)

ब्राह्मपर्व-श्रवणका माहात्म्य, पुराण-श्रवणकी विधि, पुराणों तथा पुराणवाचक व्यासकी महिमा

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! भविष्यपुराणके इस प्रथम ब्राह्मपर्वके सुननेसे मानव सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सहस्रों अश्वमेध, वाजपेय एवं राजसूय यज्ञों, सभी तीर्थ-यात्राओं, वेदाभ्यास तथा पृथ्वीदान करनेका फल प्राप्त कर लेता है। इतिहास-पुराणके श्रवणके अतिरिक्त ऐसा कोई साधन नहीं है, जो सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर सके। पुराण-श्रवणका जो फल बतलाया गया है, वही फल पुराणके पाठसे भी होता है, इसमें कोई संदेह नहीं[2]।

१-यहाँ भविष्यपुराणका पाठ कुछ त्रुटित प्रतीत होता है। सात सप्तमी-व्रतोंमेंसे अवशिष्ट अनोदना, विजय तथा कामिका सप्तमीव्रत छूट गये हैं। चतुर्वर्ग-चिन्तामणि (हेमाद्रि)के व्रतखण्डमें भविष्यपुराणके नामसे इन व्रतोंका विस्तारसे वर्णन आया है। वैशाख शुक्ला सप्तमी अनोदना-सप्तमी, माघ शुक्ला सप्तमी विजया-सप्तमी तथा फाल्गुन शुक्ला सप्तमी कामिका-सप्तमी कही गयी है। विजया-सप्तमीमें सूर्यसहस्रनाम स्तोत्र भी पढ़ा गया है। इससे लगता है कि हेमाद्रिके पास भविष्यपुराणकी प्रामाणिक एवं पूर्ण शुद्ध प्रति सुरक्षित थी। पुराणोंकी उपेक्षासे ही इस समयकी प्रतिमें यह अंश खण्डित हो गया है।

२-इतिहासपुराणाभ्यां न त्वन्यत् पावनं नृणाम्। येषां श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥
विधिना राजशार्दूल शृण्वतां यत्फलं किल। यथोक्तं नात्र संदेहः पठतो च विशाम्पते॥ (ब्राह्मपर्व २१६। ३४-३५)

शतानीकने पूछा—भगवन् ! महाभारत, रामायण एवं पुराणोंका श्रवण तथा पठन किस विधानसे करना चाहिये ? पुराण-वाचकके क्या लक्षण हैं ? भगवान् खखोल्कका क्या स्वरूप है ? वाचककी विधिवत् पूजा करनेसे क्या फल होता है ? पर्वकी समाप्तिपर वाचकोंको क्या देना चाहिये ? इसे आप बतानेकी कृपा करें।

सुमन्तुजी बोले—राजन् ! आपने इतिहास-पुराणके सम्बन्धमें अच्छी जिज्ञासा की है। महाबाहो ! इस सम्बन्धमें पूर्वकालमें देवगुरु बृहस्पति तथा ब्रह्माजीके मध्य जो संवाद हुआ था, उसे आप श्रवण करें।

मानव विशेष भक्तिपूर्वक इतिहास और पुराणका श्रवण कर ब्रह्महत्यादि सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। पवित्र होकर प्रातः, सायं तथा रात्रिमें जो पुराणका श्रवण करता है, उस व्यक्तिसे ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश संतुष्ट हो जाते हैं। प्रातःकाल भगवान् ब्रह्मा, सायंकाल विष्णु और रात्रिमें महादेव प्रसन्न होते हैं[1]। राजन् ! अब वाचकके विधानको सुनिये। पवित्र वस्त्र पहनकर शुद्ध होकर प्रदक्षिणापूर्वक जब वाचक आसनपर बैठता है तो वह देवस्वरूप हो जाता है। आसन न बहुत ऊँचा हो, न बहुत नीचा। वाचकके आसनकी सदा वन्दना की जानी चाहिये। वाचकके आसनको व्यासपीठ कहा जाता है। पीठको गुरुका आसन समझना चाहिये। वाचकके आसनपर सुनने-वालेको कभी भी नहीं बैठना चाहिये। देवताओंकी अर्चना करके विशेषरूपसे ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। सभी समागत व्यक्तियोंको साथमें लेकर पुराण-ग्रन्थ वाचकके लिये प्रदान करे। उस ग्रन्थको नतमस्तक हो प्रणाम करे। तब शान्तचित्त होकर श्रवण करे।

ग्रन्थका सूत्र (धागा) वासुकि कहा गया है। ग्रन्थका पत्र भगवान् ब्रह्मा, उसके अक्षर जनार्दन, सूत्र शंकर तथा पंक्तियाँ सभी देवता हैं। सूत्रके मध्यमें अग्नि और सूर्य स्थित रहते हैं। इनके आगे सभी ग्रह तथा दिशाएँ अवस्थित रहती हैं। शंकुको मेरु कहा गया है। रिक्तस्थानको आकाश कहा गया है। ग्रन्थके ऊपर तथा नीचे रहनेवाले दो काष्ठफलक द्यावा-पृथिवीरूपमें सूर्य और चन्द्रमा हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ देवमय है और देवताओंद्वारा पूजित है। इसलिये अपने कल्याणकी कामनासे इतिहास-पुराणादि श्रेष्ठ ग्रन्थोंको अपने घरमें रखना चाहिये, उन्हें नमस्कार करना चाहिये तथा उनकी पूजा करनी चाहिये[2]।

राजन् ! वाचक ग्रन्थको हाथमें ग्रहण कर ब्रह्मा, व्यास, वाल्मीकि, विष्णु, शिव, सूर्य आदिको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके श्रद्धासमन्वित होकर ओजस्वी स्वरमें अक्षरोंका स्पष्ट उच्चारण करते हुए तथा सात स्वरोंसे युक्त यथासमय यथोचित रस एवं भावोंको प्रकट करते हुए ग्रन्थका पाठ करे। इस प्रकार वाचकके मुखसे जो श्रोता नियमतः श्रद्धापूर्वक इतिहास-पुराण और रामचरितको सुनता है, वह सभी फलोंको प्राप्त कर सभी रोगोंसे मुक्त हो जाता है और विपुल पुण्यको प्राप्त कर भगवान्के उत्तम और अद्भुत स्थानको प्राप्त करता है।

श्रोताको चाहिये कि वह स्नानादिसे पवित्र होकर वाचकको प्रणाम करके उसके सम्मुख आसनपर बैठे और वाणीको संयत कर सुसमाहित हो वाचककी बातोंको सुने।

महाबाहो ! व्यासस्वरूप वाचकको नमस्कार करनेपर संशयके बिना अन्य कुछ भी नहीं बोलना चाहिये। कथा-सम्बन्धी धार्मिक शंका या जिज्ञासा उत्पन्न होनेपर वाचकसे नम्रतापूर्वक पूछना चाहिये, क्योंकि व्यासस्वरूप वक्ता उसका गुरु और धर्मबन्धु है। वाचकको भी भलीभाँति उसे समझाना चाहिये, क्योंकि वह गुरु है, इसीलिये सबपर अनुग्रह करना उसका धर्म है। उत्तरके अनन्तर 'तुम्हारा कल्याण हो' यह कहकर पुनः आगेकी कथा सुनानी चाहिये। श्रोताको अपनी वाणीपर नियन्त्रण रखना चाहिये। वाचक ब्राह्मणको ही होना चाहिये। प्रत्येक मासमें पारण करे तथा वाचककी पूजा करे, महीनाके पूर्ण होनेपर वाचकको स्वर्ण प्रदान करे।

१-इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या विशेषतः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्यादिभिर्विभो॥
सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति यः। तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते शंकरस्तथा॥
प्रत्यूषे भगवान् ब्रह्मा दिनान्ते तुष्यते हरिः। महादेवस्तथा रात्रौ शृण्वतां तुष्यते विभुः॥
(ब्राह्मपर्व २१६। ४३—४५)

२-इत्थं देवमयं ह्येतत् पुस्तकं देवपूजितम्। नमस्यं पूजनीयं च गृहे स्थाप्यं विभूतये॥ (ब्राह्मपर्व २१६। ५८)

प्रथम पारणामें वाचककी अपनी शक्तिके अनुसार पूजा करनेपर अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त होता है। कार्तिकसे आरम्भकर आश्विनतक प्रत्येक मासमें एक-एक पारणापर पूजन करनेसे क्रमशः अग्निष्टोम, गोसव, ज्योतिष्टोम, सौत्रामणि, वाजपेय, वैष्णव, माहेश्वर, ब्राह्म, पुण्डरीक, आदित्य, राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। इस प्रकार यज्ञ-फलोंकी प्राप्ति कर वह निःसंदेह उत्तम लोकको प्राप्त करता है।

पर्वकी समाप्तिपर गन्ध, माल्य, विविध वस्त्र आदिसे वाचककी पूजा करनी चाहिये। स्वर्ण, रजत, गाय, काँसेका दोहन-पात्र आदि वाचकको प्रदान कर कथा-श्रवणका फल प्राप्त करना चाहिये। वाचकसे बढ़कर दान देने योग्य सुपात्र और कोई नहीं है, क्योंकि उसकी जिह्वाके अग्रभागपर सभी शास्त्र विराजमान रहते हैं। जो श्रद्धापूर्वक वाचकको भोजन कराता है, उसके पितर सौ वर्षतक तृप्त रहते हैं। जैसे सभी देवोंमें सूर्य श्रेष्ठ हैं वैसे ही ब्राह्मणोंमें वाचक श्रेष्ठ है। वाचक व्यास कहा जाता है। जिस देश, नगर, गाँवमें ऐसा व्यास निवास करता है वह क्षेत्र श्रेष्ठ माना जाता है। वहाँके निवासी धन्य हैं, कृतार्थ हैं, इसमें संदेह नहीं। वाचकको प्रणामकरनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उस फलकी प्राप्ति अन्य कर्मोंसे नहीं होती।

जैसे कुरुक्षेत्रके समान कोई दूसरा तीर्थ नहीं, गङ्गाके समान कोई नदी नहीं, भास्करसे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं, अश्वमेधके समान कोई यज्ञ नहीं, पुत्र-जन्मके तुल्य सुख नहीं, वैसे ही पुराणवाचक व्यासके समान कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता। देवकार्य, पितृकार्य सभी कर्मोंमें यह परम पवित्र है[1]।

राजन्! इस प्रकार मैंने पुराणश्रवणकी विधि तथा वाचकके माहात्म्यको बतलाया। विधिके अनुसार ही पुराणादिका श्रवण एवं पाठ करना चाहिये। स्नान, दान, जप, होम, पितृ-पूजन तथा देवपूजन आदि सभी श्रेष्ठ कर्म विधि-पूर्वक अनुष्ठित होनेपर ही उत्तम फल प्रदान करते हैं।

(अध्याय २१६)

॥ भविष्यपुराणान्तर्गत ब्राह्मपर्व सम्पूर्ण ॥

१-कुरुक्षेत्रसमं तीर्थं न द्वितीयं प्रचक्षते। न नदी गङ्गया तुल्या न देवो भास्कराद्वरः॥
नाश्वमेधसमं पुण्यं न पापं ब्रह्महत्यया। पुत्रजन्मसुखैस्तुल्यं न सुखं विद्यते यथा॥
तथा व्याससमो विप्रो न क्वचित् प्राप्यते नृप। दैवे कर्मणि पित्र्ये च पावनः परमो नृणाम्॥

(ब्राह्मपर्व २१६। १०९—१११)

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

मध्यमपर्व

(प्रथम भाग)

गृहस्थाश्रम एवं धर्मकी महिमा

जयति भुवनदीपो भास्करो लोककर्ता
जयति च शितिदेहः शार्ङ्गधन्वा मुरारिः।
जयति च शशिमौली रुद्रनामाभिधेयो
जयति सकलमौलिर्भानुमांश्चित्रभानुः॥

'संसारकी सृष्टि करनेवाले भुवनके दीपस्वरूप भगवान् भास्करकी जय हो। श्याम शरीरवाले शार्ङ्गधनुर्धारी भगवान् मुरारिकी जय हो। मस्तकपर चन्द्रमा धारण किये हुए भगवान् रुद्रकी जय हो। सभीके मुकुटमणि तेजोमय भगवान् चित्रभानु (सूर्य) की जय हो।'

एक बार पौराणिकोंमें श्रेष्ठ रोमहर्षण सूतजीसे मुनियोंने प्रणामपूर्वक पुराण-संहिताके विषयमें पूछा। सूतजी मुनियोंके वचन सुनकर अपने गुरु सत्यवती-पुत्र महर्षि वेदव्यासको प्रणामकर कहने लगे। मुनियो! मैं जगत्‌के कारण ब्रह्म-स्वरूपको धारण करनेवाले भगवान् हरिको प्रणामकर पापका सर्वथा नाश करनेवाली पुराणकी दिव्य कथा कहता हूँ, जिसके सुननेसे सभी पापकर्म नष्ट हो जाते हैं और परमगति प्राप्त होती है। द्विजगण! भगवान् विष्णुके द्वारा कहा गया भविष्यपुराण अत्यन्त पवित्र एवं आयुष्यप्रद है। अब मैं उसके मध्यम-पर्वका वर्णन करता हूँ, जिसमें देव-प्रतिष्ठा आदि इष्टापूर्त-कर्मोंका वर्णन है। उसे आप सुनें—

इस मध्यमपर्वमें धर्म तथा ब्राह्मणादिकी प्रशंसा, आपद्धर्मका निरूपण, विद्या-माहात्म्य, प्रतिमा-निर्माण, प्रतिमा-स्थापना, प्रतिमाका लक्षण, काल-व्यवस्था, सर्ग-प्रतिसर्ग आदि पुराणका लक्षण, भूगोलका निर्णय, तिथियोंका निरूपण, श्राद्ध, संकल्प, मन्वन्तर, मुमूर्षु, मरणासन्नके कर्म, दानका माहात्म्य, भूत, भविष्य, युग-धर्मानुशासन, उच्च-नीच-निर्णय, प्रायश्चित्त आदि विषयोंका भी समावेश है।

मुनियो! तीनों आश्रमोंका मूल एवं उत्पत्तिका स्थान गृहस्थाश्रम ही है। अन्य आश्रम इसीसे जीवित रहते हैं, अतः गृहस्थाश्रम सबसे श्रेष्ठ है। गार्हस्थ्य-जीवन ही धर्मानुशासित जीवन है। धर्मरहित होनेपर अर्थ और काम उसका परित्याग कर देते हैं। धर्मसे ही अर्थ और काम उत्पन्न होते हैं, मोक्ष भी धर्मसे ही प्राप्त होता है, अतः धर्मका ही आश्रयण करना चाहिये। धर्म, अर्थ और काम यही त्रिवर्ग हैं। प्रकारान्तरसे ये क्रमशः त्रिगुण अर्थात् सत्त्व, रज और तमोगुणात्मक हैं। सात्त्विक अथवा धार्मिक व्यक्ति ही सच्ची उन्नति करते हैं, राजस मध्य स्थानको प्राप्त करते हैं। जघन्यगुण अर्थात् तामस व्यवहारवाले निम्न भूमिको प्राप्त करते हैं। जिस पुरुषमें धर्मसे समन्वित अर्थ और काम व्यवस्थित रहते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर मरनेके अनन्तर मोक्षको प्राप्त करते हैं, इसलिये अर्थ और कामको समन्वित कर धर्मका आश्रय ग्रहण करें। ब्रह्मवादियोंने कहा है कि धर्मसे ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है। स्थावर-जङ्गम अर्थात् सम्पूर्ण चराचर विश्वको धर्म ही धारण करता है। धर्ममें धारण करनेकी जो शक्ति है, वह ब्राह्मी शक्ति है, वह आद्यन्तरहित है। कर्म और ज्ञानसे धर्म प्राप्त होता है—इसमें संशय नहीं। अतः ज्ञानपूर्वक कर्मयोगका आचरण करना चाहिये। प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलकके भेदसे वैदिक कर्म दो प्रकारके हैं। ज्ञानपूर्वक त्याग संन्यास है, संन्यासियों एवं योगियोंके कर्म निवृत्तिपरक हैं और गृहस्थोंके वेद-शास्त्रानुकूल कर्म प्रवृत्तिपरक हैं। अतः प्रवृत्तिके सिद्ध हो जानेपर मोक्षकामीको निवृत्तिका आश्रय लेना चाहिये, नहीं तो पुनः-पुनः संसारमें आना पड़ता है। शम, दम, दया, दान, अलोभ, विषयोंका त्याग, सरलता या निश्छलता, निष्क्रोध, अनसूया, तीर्थयात्रा, सत्य, संतोष, आस्तिकता, श्रद्धा, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजन, विशेषरूपसे ब्राह्मणपूजा, अहिंसा, सत्यवादिता, निन्दाका परित्याग, शुभानुष्ठान, शौचाचार, प्राणियोंपर दया—ये श्रेष्ठ आचरण सभी वर्णोंके लिये सामान्य रूपसे कहे गये हैं। श्रद्धामूलक कर्म ही धर्म कहे गये हैं, धर्म श्रद्धाभावमें ही स्थित है, श्रद्धा ही निष्ठा है, श्रद्धा ही प्रतिष्ठा है और श्रद्धा ही धर्मकी जड़ है। विधिपूर्वक गृहस्थधर्मका

पालन करनेवाले ब्राह्मणोंको प्रजापतिलोक, क्षत्रियोंको इन्द्रलोक, वैश्योंको अमृतलोक और तीनों वर्णोंकी परिचर्या-पूर्वक जीवन व्यतीत करनेवाले शूद्रोंको गन्धर्वलोककी प्राप्ति होती है। (अध्याय १)

सृष्टि तथा सात ऊर्ध्व एवं सात पाताल लोकोंका वर्णन

श्रीसूतजी बोले—मुनियो! अब मैं कल्पके अनुसार सैकड़ों मन्वन्तरोंके अनुगत ईश्वर-सम्बन्धी कालचक्रका वर्णन करता हूँ।

सृष्टिके पूर्व यह सब परम अन्धकार-निमग्न एवं सर्वथा अप्रतिज्ञात-स्वरूप था। उस समय परम कारण, व्यापक एकमात्र रुद्र ही अवस्थित थे। सर्वव्यापक भगवान्‌ने आत्मस्वरूपमें स्थित होकर सर्वप्रथम मनकी सृष्टि की। फिर अहंकारकी सृष्टि की। उससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध नामक पञ्चतन्मात्रा तथा पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति की। इनमेंसे आठ प्रकृति हैं (अर्थात् दूसरेको उत्पन्न करनेवाली हैं)—प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्शकी तन्मात्राएँ। पाँच महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन—ये सोलह इनकी विकृतियाँ हैं। ये किसीकी भी प्रकृति नहीं हैं, क्योंकि इनसे किसीकी उत्पत्ति नहीं होती। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं। कानका शब्द, त्वक्‌का स्पर्श, चक्षुका रूप, जिह्वाका रस, नासिकाका गन्ध है। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानके भेदसे वायुके पाँच प्रकार हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण कहे गये हैं। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है और उससे उत्पन्न सारा चराचर विश्व भी त्रिगुणात्मक है। उस भगवान् वासुदेवके तेजसे ब्रह्मा, विष्णु और शम्भुका आविर्भाव हुआ है। वासुदेव अशरीरी, अजन्मा तथा अयोनिज हैं। उनसे परे कुछ भी नहीं है। वे प्रत्येक कल्पमें जगत् और प्राणियोंकी सृष्टि एवं उपसंहार भी करते हैं।

बहत्तर युगोंका एक मन्वन्तर तथा चौदह मन्वन्तरका एक कल्प होता है। यह कल्प ब्रह्माका एक दिन और रात है। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक और ब्रह्मलोक—ये सात लोक कहे गये हैं। पाताल, वितल, अतल, तल, तलातल, सुतल और रसातल—ये सात पाताल हैं। इनके आदि, मध्य और अन्तमें रुद्र रहते हैं। महेश्वर लीलाके लिये संसारको उत्पन्न करते हैं और संहार भी करते हैं। ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छा करनेवालेकी ऊर्ध्वगति कही गयी है।

ऋषि सर्वदर्शी (परमात्मा) ने सर्वप्रथम प्रकृतिकी सृष्टि की। उस प्रकृतिसे विष्णुके साथ ब्रह्मा उत्पन्न हुए। द्विजश्रेष्ठो! इसके बाद बुद्धिसे नैमित्तिकी सृष्टि उत्पन्न हुई। इस सृष्टिक्रममें स्वयम्भुव ब्रह्माने सर्वप्रथम ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया। अनन्तर क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रकी सृष्टि की। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और दिशाओंकी कल्पना की। लोकालोक, द्वीपों, नदियों, सागरों, तीर्थों, देवस्थानों, मेघगर्जनों, इन्द्रधनुषों, उल्कापातों, केतुओं तथा विद्युत् आदिको उत्पन्न किया। यथासमय ये सभी उसी परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। ध्रुवसे ऊपर एक करोड़ योजन विस्तृत महर्लोक है। ब्राह्मण-श्रेष्ठ वहाँ कल्पान्तपर्यन्त रहते हैं। महर्लोकसे ऊपर दो करोड़ योजन विस्तृत जनलोक है, वहाँ ब्रह्माके पुत्र सनकादि रहते हैं। जनलोकसे ऊपर तीन करोड़ योजनवाला तपोलोक है, वहाँ तापत्रयरहित देवगण रहते हैं। तपोलोकसे ऊपर छः करोड़ योजन विस्तृत सत्यलोक है, जहाँ भृगु, वसिष्ठ, अत्रि, दक्ष, मरीचि आदि प्रजापतियोंका निवास है। जहाँ सनत्कुमार आदि सिद्ध योगिगण निवास करते हैं, वह ब्रह्मलोक कहा जाता है। उस लोकमें विश्वात्मा विश्वतोमुख गुरु ब्रह्मा रहते हैं। आस्तिक ब्रह्मवादी, यतिगण, योगी, तापस, सिद्ध तथा जापक उन परमेष्ठी ब्रह्माजीकी गाथाका गान इस प्रकार करते हैं—'परमपदकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले योगियोंका द्वार यही परमपद लोक है। वहाँ जाकर किसी प्रकारका शोक नहीं होता। वहाँ जानेवाला विष्णु एवं शंकरस्वरूप हो जाता है। करोड़ों सूर्यके समान देदीप्यमान यह स्थान बड़े कष्टसे प्राप्त होता है। ज्वालामालाओंसे परिव्याप्त इस पुरका वर्णन नहीं किया जा सकता।' इस ब्रह्मधाममें नारायणका भी भवन है। माया-सहचर परात्पर श्रीमान् हरि यहाँ शयन करते हैं। इसे ही पुनरावृत्तिसे रहित विष्णुलोक भी कहा जाता है। यहाँ आनेपर कोई भी लौटकर नहीं आता। भगवान्‌के प्रपन्न महात्मागण ही जनार्दनको प्राप्त करते हैं। ब्रह्मासनसे ऊर्ध्व परम ज्योतिर्मय शुभ स्थान है। उसके ऊपर

वह्नि परिव्याप्त है, वहाँ पार्वतीके साथ भगवान् शिव विराजमान रहते हैं। सैकड़ों-हजारों विद्वान् और मनीषियोंद्वारा वे चिन्त्यमान होकर प्रतिष्ठित रहते हैं। वहाँ नियत ब्रह्मवादी द्विजगण ही जाते हैं। महादेवमें सतत ध्यानरत, तापस, ब्रह्मवादी, अहंता-ममताके अध्याससे रहित, काम-क्रोधसे शून्य, ब्रह्मत्व-समन्वित ब्राह्मण ही उनको देख सकते हैं—वही रुद्रलोक है। ये सातों महालोक कहे गये हैं।

द्विजगणो ! पृथ्वीके नीचे महातल आदि पाताललोक हैं। महातल नामक पाताल स्वर्णमय तथा सभी वर्णोंसे अलंकृत है। वह विविध प्रासादों और शुभ देवालयोंसे समन्वित है। वहाँपर भगवान् अनन्त, बुद्धिमान् मुचुकुन्द तथा बलि भी निवास करते हैं। भगवान् शंकरसे सुशोभित रसातल शैलमय है। सुतल पीतवर्ण और वितल मूँगेकी कान्तिवाला है। वितल श्वेत और तल कृष्णवर्ण है। यहाँ वासुकि रहते हैं। कालनेमि, वैनतेय, नमुचि, शङ्कुकर्ण तथा विविध नाग भी यहाँ निवास करते हैं। इनके नीचे रौरव आदि अनेकों नरक हैं, उनमें पापियोंको गिराया जाता है। पातालके नीचे शेष नामक वैष्णवी शरीर है। वहाँ कालाग्नि रुद्रस्वरूप नरसिंह भगवान् लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु नागरूपी अनन्तके नामसे प्रसिद्ध हैं। (अध्याय २-३)

भूगोल एवं ज्योतिश्चक्रका वर्णन

श्रीसूतजी बोले—मुनियो ! अब मैं भूलोकका वर्णन करता हूँ। भूर्लोकमें जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर नामके सात महाद्वीप हैं, जो सात समुद्रोंसे आवृत हैं। एक द्वीपसे दूसरे द्वीप क्रम-क्रमसे ठीक दूने-दूने आकार एवं विस्तारवाले हैं और एक सागरसे दूसरे सागर भी दूने आकारके हैं। क्षीरोद, इक्षुरसोद, क्षारोद, घृतोद, दध्योद, क्षीरसलिल तथा जलोद—ये सात महासागर हैं। यह पृथ्वी पचास करोड़ योजन विस्तृत,समुद्रसे चारों ओरसे घिरी हुई तथा सात द्वीपोंसे समन्वित है। जम्बूद्वीप सभी द्वीपोंके मध्यमें सुशोभित हो रहा है। उसके मध्यमें सोनेकी कान्तिवाला महामेरु पर्वत है। इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। यह महामेरु पर्वत नीचेकी ओर सोलह हजार योजन पृथ्वीमें प्रविष्ट है और ऊपरी भागमें इसका विस्तार बत्तीस हजार योजन है। नीचे (तलहटी)में इसका विस्तार सोलह हजार योजन है। इस प्रकार यह पर्वत पृथ्वीरूप कमलकी कर्णिका (कोष)के समान है। इस मेरु पर्वतके दक्षिणमें हिमवान्, हिमकूट और निषध नामके पर्वत हैं। उत्तरमें नील, श्वेत तथा शृंगी नामके वर्ष-पर्वत हैं। मध्यमें लक्षयोजन प्रमाणवाले दो (निषध और नील) पर्वत हैं। उनसे दूसरे-दूसरे दस-दस हजार योजन कम हैं। (अर्थात् हेमकूट और श्वेत नब्बे हजार योजन तथा हिमवान् और शृंगी अस्सी-अस्सी हजार योजनतक फैले हुए हैं।) वे सभी दो-दो हजार योजन लंबे और इतने ही चौड़े हैं।

द्विजो ! मेरुके दक्षिण भागमें भारतवर्ष है, अनन्तर किंपुरुषवर्ष और हरिवर्ष ये मेरु पर्वतके दक्षिणमें हैं। उत्तरमें चम्पक, अश्व, हिरण्मय तथा उत्तरकुरुवर्ष हैं। ये सब भारतवर्षके समान ही हैं। इनमेंसे प्रत्येकका विस्तार नौ सहस्र योजन है, इनके मध्यमें इलावृतवर्ष है और उसके मध्यमें उन्नत मेरु स्थित है। मेरुके चारों ओर नौ सहस्र योजन विस्तृत इलावृतवर्ष है। महाभाग ! इसके चारों ओर चार पर्वत हैं। ये चारों पर्वत मेरुकी कीलें हैं, जो दस सहस्र योजन परिमाणमें ऊँची हैं। इनमेंसे पूर्वमें मन्दर, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विपुल और उत्तरमें सुपार्श्व है। इनपर कदंब, जम्बू, पीपल और वट-वृक्ष हैं। महर्षिगण ! जम्बूद्वीप नाम होनेका कारण महाजम्बू वृक्ष भी यहाँ है, उसके फल महान् गजराजके समान बड़े होते हैं। जब वे पर्वतपर गिरते हैं तो फटकर सब ओर फैल जाते हैं। उसीके रससे जम्बू नामकी प्रसिद्ध नदी वहाँ बहती है, जिसका जल वहाँके रहनेवाले पीते हैं। उस नदीके जलका पान करनेसे वहाँके निवासियोंको पसीना, दुर्गन्ध, बुढ़ापा और इन्द्रिय-क्षय नहीं होता। वहाँके निवासी शुद्ध हृदयवाले होते हैं। उस नदीके किनारेकी मिट्टी उस रससे मिलकर मन्द-मन्द वायुके द्वारा सुखाये जानेपर 'जाम्बूनद' नामक सुवर्ण बन जाती है, जो सिद्ध पुरुषोंका भूषण है।

मेरुके पास (पूर्वमें) भद्राश्ववर्ष और पश्चिममें केतुमालवर्ष है। इन दो वर्षोंके मध्यमें इलावृतवर्ष है। विप्रश्रेष्ठ ! मेरुके ऊपर ब्रह्माका उत्तम स्थान है। उसके ऊपर इन्द्रका स्थान है और उसके ऊपर शंकरका स्थान है। उसके

ऊपर वैष्णवलोक तथा उससे ऊपर दुर्गालोक है। इसके ऊपर सुवर्णमय, निराकार दिव्य ज्योतिर्मय स्थान है। उसके भी ऊपर भक्तोंका स्थान है, वहाँ भगवान् सूर्य रहते हैं। ये परमेश्वर भगवान् सूर्य ज्योतिर्मय चक्रके मध्यमें निश्चल रूपसे स्थित हैं। ये मेरुके ऊपर राशिचक्रमें भ्रमण करते हैं। भगवान् सूर्यका रथ-चक्र मेरु पर्वतकी नाभिमें रात-दिन वायुके द्वारा भ्रमण कराया जाता हुआ ध्रुवका आश्रय लेकर प्रतिष्ठित है। दिक्पाल आदि तथा ग्रह वहाँ दक्षिणसे उत्तर मार्गकी ओर प्रतिमास चलते रहते हैं। ह्रास और वृद्धिके क्रमसे रविके द्वारा जब चान्द्रमास लङ्घित होता है, तब उसे मलमास कहा जाता है[1]। सूर्य, सोम, बुध, चन्द्र और शुक्र शीघ्रगामी ग्रह हैं। दक्षिणायन मार्गसे सूर्य गतिमान् होनेपर सभी ग्रहोंके नीचे चलते हैं। विस्तीर्ण मण्डल कर उसके ऊपर चन्द्रमा गतिशील रहता है। सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल सोमसे ऊपर चलता है। नक्षत्रोंके ऊपर बुध और बुधसे ऊपर शुक्र, शुक्रसे ऊपर मंगल और उससे ऊपर बृहस्पति तथा बृहस्पतिसे ऊपर शनि, शनिके ऊपर सप्तर्षिमण्डल और सप्तर्षिमण्डलके ऊपर ध्रुव स्थित है।

(अध्याय ४)

ब्राह्मणोंकी महिमा तथा छब्बीस दोषोंका वर्णन

श्रीसूतजी बोले—हे द्विजोत्तम! तीनों वर्णोंमें ब्राह्मण जन्मसे प्रभु हैं। हव्य और कव्य सभीकी रक्षाके लिये तपस्याके द्वारा ब्राह्मणकी प्रथम सृष्टि की गयी है। देवगण इन्हींके मुखसे हव्य और पितृगण कव्य स्वीकार करते हैं। अतः इनसे श्रेष्ठ कौन हो सकता है। ब्राह्मण जन्मसे ही श्रेष्ठ हैं और सभीसे पूजनीय हैं। जिसके गर्भाधान आदि अड़तालीस संस्कार शास्त्रविधिसे सम्पन्न होते हैं, वही सच्चा ब्राह्मण है। द्विजकी पूजाकर देवगण स्वर्गफल भोगनेका लाभ प्राप्त करते हैं। अन्य मनुष्य भी ब्राह्मणकी पूजाकर देवत्वको प्राप्त करते हैं। जिसपर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं। वेद भी ब्राह्मणोंके मुखमें संनिहित रहते हैं। सभी विषयोंका ज्ञान होनेके कारण ब्राह्मण ही देवताओंकी पूजा, पितृकार्य, यज्ञ, विवाह, वह्निकार्य, शान्तिकर्म, स्वस्त्ययन आदिके सम्पादनमें प्रशस्त है। ब्राह्मणके बिना देवकार्य, पितृकार्य तथा यज्ञ-कर्मोंमें दान, होम और बलि ये सभी निष्फल होते हैं।

ब्राह्मणको देखकर श्रद्धापूर्वक अभिवादन करना चाहिये, उसके द्वारा कहे गये **'दीर्घायुर्भव'** शब्दसे मनुष्य चिरजीवी होता है। द्विजश्रेष्ठ! ब्राह्मणकी पूजासे आयु, कीर्ति, विद्या और धनकी वृद्धि होती है। जहाँ जलसे विप्रोंका पाद-प्रक्षालन नहीं किया जाता, वेद-शास्त्रोंका उच्चारण नहीं होता और जहाँ स्वाहा, स्वधा और स्वस्तिकी ध्वनि नहीं होती ऐसा गृह श्मशानके समान है[2]।

विद्वानोंने नरकगामी मनुष्योंके छब्बीस दोष बतलाये हैं, जिन्हें त्यागकर शुद्धतापूर्वक निवास करना चाहिये—(१) अधम, (२) विषम, (३) पशु, (४) पिशुन, (५) कृपण, (६) पापिष्ठ, (७) नष्ट, (८) रुष्ट, (९) दुष्ट, (१०) पुष्ट, (११) हृष्ट, (१२) काण, (१३) अन्ध, (१४) खण्ड, (१५) चण्ड, (१६) कुष्ठ, (१७) दत्तापहारक, (१८) वक्ता, (१९) कदर्य, (२०) दण्ड, (२१) नीच, (२२) खल, (२३) वाचाल, (२४) चपल, (२५) मलीमस तथा (२६) स्तेयी।

उपर्युक्त छब्बीस दोषोंके भी अनेक भेद-प्रभेद बतलाये गये हैं। विप्रेन्द्र! इन (छब्बीस) दोषोंका विवरण संक्षेपमें इस प्रकार है—

१. गुरु तथा देवताके सम्मुख जूता और छाता धारण कर जानेवाले, गुरुके सम्मुख उच्च आसनपर बैठनेवाले, यानपर चढ़कर तीर्थ-यात्रा करनेवाले तथा तीर्थमें ग्राम्य धर्मका आचरण करनेवाले—ये सभी अधम-संज्ञक दोषयुक्त व्यक्ति कहे गये हैं। २. प्रकटमें प्रिय और मधुर वाणी बोलनेवाले पर

१-रविणा लङ्घितो मासश्चान्द्रः ख्यातो मलिम्लुचः। (मध्यमपर्व ४। २७)
प्रकारान्तरसे यह श्लोक ज्योतिषके 'संक्रान्तिरहितो मासो मलमास उदाहृतः।' इसी वचनके भावका द्योतक है।

२-न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रप्रतिगर्जितानि। स्वाहास्वधास्वस्तिविवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि॥
(मध्यमपर्व १।५।२२)

हृदयमें हालाहल विष धारण करनेवाले, कहते कुछ और हैं तथा आचरण कुछ और ही करते हैं—ये दोनों विषम-संज्ञक दोषयुक्त व्यक्ति कहे जाते हैं। ३. मोक्षकी चिन्ता छोड़कर सांसारिक चिन्ताओंमें श्रम करनेवाले, हरिकी सेवासे रहित, प्रयागमें रहते हुए भी अन्यत्र स्नान करनेवाले, प्रत्यक्ष देवको छोड़कर अदृष्टकी सेवा करनेवाले तथा शास्त्रोंके सार-तत्त्वको न जाननेवाले—ये सभी पशु-संज्ञक दोषयुक्त व्यक्ति हैं। ४. बलसे अथवा छल-छद्मसे या मिथ्या प्रेमका प्रदर्शन कर ठगनेवाले व्यक्तिको पिशुन दोषयुक्त कहा गया है। ५. देव-सम्बन्धी और पितृ-सम्बन्धी कर्मोंमें मधुर अन्नकी व्यवस्था रहते हुए भी म्लान और तिक्त अन्नका भोजन करानेवाला दुर्बुद्धि मानव कृपण है, उसे न तो स्वर्ग मिलता है और न मोक्ष ही। जो अप्रसन्न मनसे कुत्सित वस्तुका दान करता एवं क्रोधके साथ देवता आदिकी पूजा करता है, वह सभी धर्मोंसे बहिष्कृत कृपण कहा जाता है। निर्दुष्ट होते हुए भी शुभका परित्याग तथा शुभ शरीरका विक्रय करनेवाला कृपण कहलाता है। ६. माता-पिता और गुरुका त्याग करनेवाला, पवित्राचार-रहित, पिताके सम्मुख निःसंकोच भोजन करनेवाला, जीवित पिता-माताका परित्याग करनेवाला, उनकी कभी भी सेवा न करनेवाला तथा होम-यज्ञादिका लोप करनेवाला पापिष्ठ कहलाता है। ७. साधु आचरणका परित्याग कर झूठी सेवाका प्रदर्शन करनेवाले, वेश्यागामी, देव-धनके द्वारा जीवन-यापन करनेवाले, भार्याके व्यभिचारद्वारा प्राप्त धनसे जीवन-यापन करनेवाले या कन्याको बेचकर अथवा स्त्रीके धनसे जीवन-यापन करनेवाले—ये सब नष्ट-संज्ञक व्यक्ति हैं—ये स्वर्ग एवं मोक्षके अधिकारी नहीं हैं। ८. जिसका मन सदा क्रुद्ध रहता है, अपनी हीनता देखकर जो क्रोध करता है, जिसकी भौंहें कुटिल हैं तथा जो क्रुद्ध और रुष्ट स्वभाववाला है—ऐसे ये पाँच प्रकारके व्यक्ति रुष्ट कहे गये हैं। ९. अकार्यमें या निन्दित आचारमें ही जीवन व्यतीत करनेवाला, धर्मकार्यमें अस्थिर, निद्रालु, दुर्व्यसनमें आसक्त, मद्यपायी, स्त्री-सेवी, सदैव दुष्टोंके साथ वार्तालाप करनेवाला—ऐसे सात प्रकारके व्यक्ति दुष्ट कहे गये हैं। १०. अकेले ही मधुर-मिष्टान्न भक्षण करनेवाले, वञ्चक, सज्जनोंके निन्दक, शूकरके समान वृत्तिवाले—ये सब पुष्ट संज्ञक व्यक्ति कहे जाते हैं। ११. जो निगम (वेद), आगम (तन्त्र) का अध्ययन नहीं करता है और न इन्हें सुनता ही है, वह पापात्मा दुष्ट कहा जाता है। १२-१३. श्रुति और स्मृति ब्राह्मणोंके ये दो नेत्र हैं। एकसे रहित व्यक्ति काना और दोनोंसे हीन अन्धा कहा जाता है[1]। १४. अपने सहोदरसे विवाद करनेवाला, माता-पिताके लिये अप्रिय वचन बोलनेवाला खण्ड कहा जाता है। १५. शास्त्रकी निन्दा करनेवाला, चुगलखोर, राजगामी, शूद्रसेवक, शूद्रकी पत्नीसे अनाचरण करनेवाला, शूद्रके घरपर पके हुए अन्नको एक बार भी खानेवाला या शूद्रके घरपर पाँच दिनोंतक निवास करनेवाला व्यक्ति चण्ड दोषवाला कहा जाता है। १६. आठ प्रकारके कुष्ठोंसे समन्वित, त्रिकुष्ठी, शास्त्रमें निन्दित व्यक्तियोंके साथ वार्तालाप करनेवाला अधम व्यक्ति कुष्ठ-दोषयुक्त कहा जाता है। १७. कीटके समान भ्रमण करनेवाला, कुत्सित-दोषसे युक्त व्यापार करनेवाला दत्तापहारक कहा गया है। १८. कुपण्डित एवं अज्ञानी होते हुए भी धर्मका उपदेश देनेवाला वक्ता है। १९. गुरुजनोंकी वृत्तिको हरण करनेकी चेष्टा करनेवाला तथा काशी-निवासी व्यक्ति यदि बहुत दिन काशीको छोड़कर अन्यत्र निवास करता है, वह कदर्य (कंजूस) है। २०. मिथ्या क्रोधका प्रदर्शन करनेवाला तथा राजा न होते हुए भी दण्ड-विधान करनेवाला व्यक्ति दण्ड (उदण्ड) कहा जाता है। २१. ब्राह्मण, राजा और देव-सम्बन्धी धनका हरण कर, उस धनसे अन्य देवता या ब्राह्मणोंको संतुष्ट करनेवाला या उस धनका भोजन या अन्नको देनेवाला व्यक्ति खरके समान नीच है, जो अक्षर-अभ्यासमें तत्पर व्यक्ति केवल पढ़ता है, किंतु समझता नहीं, व्याकरण-शास्त्रशून्य व्यक्ति पशु है, जो गुरु और देवताके आगे कहता कुछ है और करता कुछ और है, अनाचारी-दुराचारी है वह नीच कहा जाता है। २२. गुणवान् एवं सज्जनोंमें जो दोषका अन्वेषण करता है वह व्यक्ति खल कहलाता है। २३. भाग्यहीन व्यक्तिसे परिहासयुक्त वचन बोलनेवाला तथा चाण्डालोंके साथ निर्लज्ज होकर वार्तालाप करनेवाला वाचाल कहा जाता है। २४. पक्षियोंके पालनेमें तत्पर, बिल्लीके द्वारा आनीत भक्ष्यको बाँटनेके बहाने बंदरकी भाँति स्वयं भक्षण

---

[1] १-श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे विनिर्मिते। एकेन विकलः काणो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः॥ (मध्यमपर्व, १।५।५७)

करनेवाला, व्यर्थमें तृणका छेदक, मिट्टीके ढेलेको व्यर्थमें भेदन करनेवाला, मांस भक्षण करनेवाला और अन्यकी स्त्रीमें आसक्त रहनेवाला व्यक्ति चपल कहलाता है। २५. तैल, उबटन आदि न लगानेवाला, गन्ध और चन्दनसे शून्य, नित्यकर्मको न करनेवाला व्यक्ति मलीमस कहलाता है। २६. अन्यायसे अन्यके घरका धन ले लेनेवाला तथा अन्यायसे धन कमानेवाला, शास्त्र-निषिद्ध धनोंको ग्रहण करनेवाला, देव-पुस्तक, रत्न, मणि-मुक्ता, अश्व, गौ, भूमि तथा स्वर्णका हरण करनेवाला स्तेयी (चोर) कहा जाता है। साथ ही देव-चिन्तन तथा परस्पर कल्याण-चिन्तन न करनेवाले, गुरु तथा माता-पिताका पोषण न करनेवाले और उनके प्रति पालनीय कर्तव्यका आचरण न करनेवाले एवं उपकारी व्यक्तिके साथ समुचित व्यवहार न करनेवाले—ये सभी स्तेयी हैं। इन सभी दोषोंसे युक्त व्यक्ति रक्तपूर्ण नरकमें निवास करते हैं। इनका सम्यक् ज्ञान सम्पन्न हो जानेपर मनुष्य देवत्वको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय ५)

माता, पिता एवं गुरुकी महिमा

श्रीसूतजी बोले—द्विजश्रेष्ठ! चारों वर्णोंके लिये पिता ही सबसे बड़ा अपना सहायक है। पिताके समान अन्य कोई अपना बन्धु नहीं है, ऐसा वेदोंका कथन है। माता-पिता और गुरु—ये तीनों पथप्रदर्शक हैं, पर इनमें माता ही सर्वोपरि है। भाइयोंमें जो क्रमशः बड़े हैं, वे क्रम-क्रमसे ही विशेष आदरके पात्र हैं। इन्हें द्वादशी, अमावास्या तथा संक्रान्तिके दिन यथारुचि मणियुक्त वस्त्र दक्षिणाके रूपमें देना चाहिये, दक्षिणायन और उत्तरायणमें, विषुव संक्रान्तिमें तथा चन्द्र-सूर्य-ग्रहणके समय यथाशक्ति इन्हें भोजन कराना चाहिये। अनन्तर इन मन्त्रोंसे[1] इनकी चरण-वन्दना करनी चाहिये, क्योंकि विधिपूर्वक वन्दन करनेसे ही सभी तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है। स्वर्ग और अपवर्ग-रूपी फलको प्रदान करनेवाले एक आद्य ब्रह्मस्वरूप पिताको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनकी प्रसन्नतासे संसार सुन्दर रूपमें दिखायी देता है, उन पिताका मैं तिलयुक्त जलसे तर्पण करता हूँ। पिता ही जन्म देता है, पिता ही पालन करता है, पितृगण ब्रह्मस्वरूप हैं, उन्हें नित्य पुनः-पुनः नमस्कार है। हे पितः! आपके अनुग्रहसे लोकधर्म प्रवर्तित होता है, आप साक्षात् ब्रह्मरूप हैं, आपको नमस्कार है।

जो अपने उदररूपी विवरमें रखकर स्वयं उसकी सभी प्रकारसे रक्षा करती है, उन परा प्रकृतिस्वरूपा जननीदेवीको नमस्कार है। मातः! आपने बड़े कष्टसे मुझे अपने उदर-प्रदेशमें धारण किया, आपके अनुग्रहसे मुझे यह संसार देखनेको मिला, आपको बार-बार नमस्कार है। पृथिवीपर जितने तीर्थ और सागर आदि हैं उन सबकी स्वरूपभूता आपको अपनी कल्याण-प्राप्तिके लिये मैं नमस्कार करता हूँ। जिन गुरुदेवके प्रसादसे मैंने यशस्करी विद्या प्राप्त की है, उन भवसागरके सेतु-स्वरूप शिवरूप गुरुदेवको मेरा नमस्कार है। अग्रजन्मन्! वेद और वेदाङ्ग-शास्त्रोंके तत्त्व आपमें प्रतिष्ठित हैं। आप सभी प्राणियोंके आधार हैं, आपको मेरा नमस्कार है। ब्राह्मण सम्पूर्ण संसारके चलते-फिरते परम पावन तीर्थस्वरूप हैं। अतः हे विष्णुरूपी भूदेव! आप मेरा पाप नष्ट करें, आपको मेरा नमस्कार है।

१-स्वर्गापवर्गप्रदमेकमाद्यं ब्रह्मस्वरूपं पितरं नमामि। यतो जगत् पश्यति चारुरूपं तं तर्पयामः सलिलैस्तिलैर्युतैः॥
पितरो जनयन्तीह पितरः पालयन्ति च। पितरो ब्रह्मरूपा हि तेभ्यो नित्यं नमो नमः॥
यस्माद्विजयते लोकस्तस्माद्धर्मः प्रवर्तते। नमस्तुभ्यं पितः साक्षाद्ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते॥
या कुक्षिविवरे कृत्वा स्वयं रक्षति सर्वतः। नमामि जननीं देवीं परां प्रकृतिरूपिणीम्॥
कृच्छ्रेण महता देव्या धारितोऽहं यथोदरे। त्वत्प्रसादाज्जगद्दृष्टं मातर्नित्यं नमोऽस्तु ते॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सागरादीनि सर्वशः। वसन्ति यत्र तां नौमि मातरं भूतिहेतवे॥
गुरुदेवप्रसादेन लब्धा विद्या यशस्करी। शिवरूप नमस्तस्मै संसारार्णवसेतवे॥
वेदवेदाङ्गशास्त्राणां तत्त्वं यत्र प्रतिष्ठितम्। आधारः सर्वभूतानामग्रजन्मन् नमोऽस्तु ते॥
ब्राह्मणो जगतां तीर्थं पावनं परमं यतः। भूदेव हर मे पापं विष्णुरूपिन् नमोऽस्तु ते॥

(मध्यमपर्व, १।६।६—१४)

द्विजो ! जैसे पिता श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार पिताके बड़े-छोटे भाई और अपने बड़े भाई भी पिताके समान ही मान्य एवं पूज्य हैं। आचार्य ब्रह्माकी, पिता प्रजापतिकी, माता पृथ्वीकी और भाई अपनी ही मूर्ति हैं। पिता मेरुस्वरूप एवं वसिष्ठ-स्वरूप सनातन धर्ममूर्ति हैं। ये ही प्रत्यक्ष देवता हैं, अतः इनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। इसी प्रकार पितामह एवं पितामही (दादा-दादी) के भी पूजन-वन्दन, रक्षण, पालन और सेवनकी अत्यन्त महिमा है। इनकी सेवाके पुण्योंकी तुलनामें कोई नहीं है, क्योंकि ये माता-पिताके भी परम पूज्य हैं। (अध्याय ६)

पुराण-श्रवणकी विधि तथा पुराण-वाचककी महिमा

श्रीसूतजी बोले—ब्राह्मणो ! पूर्वकालमें महातेजस्वी ब्रह्माजीने पुराण-श्रवणकी जिस विधिको मुझसे कहा था, उसे मैं आपको सुना रहा हूँ, आप सुनें।

इतिहास-पुराणोंके भक्तिपूर्वक सुननेसे ब्रह्महत्या आदि सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है, जो प्रातः-सायं तथा रात्रिमें पवित्र होकर पुराणोंका श्रवण करता है, उसपर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर संतुष्ट हो जाते हैं[1]। प्रातःकाल इसके पढ़ने और सुननेवालेसे ब्रह्माजी प्रसन्न होते हैं तथा सायंकालमें भगवान् विष्णु और रातमें भगवान् शंकर संतुष्ट होते हैं। पुराण-श्रवण करनेवालेको शुक्ल वस्त्र धारण कर कृष्ण-मृगचर्म तथा कुशके आसनपर बैठना चाहिये। आसन न अधिक ऊँचा हो और न अधिक नीचा। पहले देवता और गुरुकी तीन प्रदक्षिणा करे, तदनन्तर दिक्पालोंको नमस्कार करे। फिर ओंकारमें अधिष्ठित देवताओंको नमस्कार करे एवं शाश्वत धर्ममें अधिष्ठित धर्मशास्त्र-ग्रन्थोंको भी नमस्कार करे।

श्रोताका मुख दक्षिण दिशाकी ओर और वाचकका मुख उत्तरकी ओर हो। पुराण और महाभारत कथाकी यही विधि कही गयी है। हरिवंश, रामायण और धर्मशास्त्रके श्रवणकी इससे विपरीत विधि कही गयी है। अतः निर्दिष्ट विधिसे सुनना या पढ़ना चाहिये। देवालय या तीर्थोंमें इतिहास-पुराणके वाचनके समय सर्वप्रथम उस स्थान और उस तीर्थके माहात्म्यका वर्णन करना चाहिये। अनन्तर पुराणादिका वाचन करना चाहिये। माहात्म्यके श्रवणसे गोदानका फल मिलता है। गुरुकी आज्ञासे माता-पिताका अभिवादन करना चाहिये। ये वेदके समान, सर्वधर्ममय तथा सर्वज्ञानमय हैं। अतः द्विजश्रेष्ठ ! माता-पिताकी सेवासे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है।

पुराणादि पुस्तकोंका हरण करनेवाला नरकको प्राप्त होता है। वेदादि ग्रन्थों तथा तान्त्रिक मन्त्रोंको स्वयं लिखकर उनका वाचन न करे। वाचकोंको चाहिये कि वेदमन्त्रोंका विपरीत अर्थ न बतलायें और न वेदमन्त्रोंका अशुद्ध पाठ करें। क्योंकि ये दोनों अत्यन्त पवित्र हैं, ऐसा करनेपर उन्हें पावमानी ऋचाओंका सौ बार जप करना चाहिये। पुराणादिके प्रारम्भ, मध्य और अवसानमें तथा मन्त्रमें प्रणवका उच्चारण करना चाहिये।

देवनिर्मित पुस्तकको त्रिदेव-स्वरूप समझकर गन्ध-पुष्पादिसे उसकी पूजा करनी चाहिये। ग्रन्थके बाँधनेवाले (धागा) सूत्रको नागराज वासुकिका स्वरूप समझना चाहिये। इनका सम्मान न करनेपर दोष होता है। अतः उसका कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिये। ग्रन्थके पत्रोंको भगवान् ब्रह्मा, अक्षरोंको जनार्दन, अक्षरोंमें लगी मात्राओंको अव्यय प्रकृति, लिपिको महेश तथा लिपिकी मात्राओंको सरस्वती समझना चाहिये।

पुराण-वाचकको चाहिये कि पुराण-संहिताओंमें परिगणित सभी व्यास, जैमिनि आदि महर्षियों तथा शंकर, विष्णु आदि देवताओंको आदि, मध्य और अवसानमें नमस्कार करे। इनका स्मरण कर धर्मशास्त्रार्थवेत्ता विप्रको पुराणादिका एकाग्रचित्त हो पाठ करना चाहिये। वाचकको स्पष्टाक्षरोंमें उच्चारण करते हुए सुन्दर ध्वनिमें सभी प्रकरणोंके तात्त्विक अर्थोंको स्पष्ट बतलाना चाहिये। पुराणादि-धर्मसंहिताके श्रवणसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र विशेषतः अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करते हैं एवं सभी कामनाओंको भी प्राप्त कर लेते हैं तथा सभी पापोंसे मुक्त

१-इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या द्विजोत्तमाः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्याशतं च यत्॥
सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति यः। तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते शङ्करस्तथा॥ (मध्यमपर्व, १।७।३-४)

होकर बहुत-से पुण्योंकी प्राप्ति कर लेते हैं।

जो वाचक सदा सम्पूर्ण ग्रन्थके अर्थ एवं तात्पर्यको सम्यक् रूपसे जानता है, वही उपदेश करनेके योग्य है और वही विप्र व्यास कहा जाता है। ऐसे वाचक विप्र जिस नगर या ग्राममें रहते हैं, वह पुण्यक्षेत्र कहा जाता है। वहाँके निवासी धन्य तथा सफल-आत्मा हैं, कृतार्थ हैं एवं उनके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

जैसे सूर्यरहित दिन, चन्द्रशून्य रात्रि, बालकोंसे शून्य गृह तथा सूर्यके बिना ग्रहोंकी शोभा नहीं होती, वैसे ही व्याससे रहित सभाकी भी शोभा नहीं होती।

श्रीसूतजी बोले—द्विजोत्तम! गुरुको चाहिये कि अध्यात्मविषयक पुराणका अध्यापन ज्ञानी, धार्मिक, पवित्र, भक्त, शान्त, वैष्णव, क्रोधरहित तथा जितेन्द्रिय शिष्यको कराये। अन्यायसे धनार्जन करनेवाले, निर्भय, दाम्भिक, द्वेषी, निरर्थक और मन्थर गतिवाले एवं सेवारहित, यज्ञ न करनेवाले, पुरुषत्वहीन, कठोर, क्रुद्ध, कृपण, व्यसनी तथा निन्दक शिष्यको दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। पुत्र-पौत्र आदिके अतिरिक्त नम्र व्यक्तिको भी विद्या देनी चाहिये। विद्याको अपने साथ लेकर मर जाना अच्छा है, किंतु अनधिकारी व्यक्तिको विद्या नहीं देनी चाहिये। विद्या कहती है कि मुझे भक्तिहीन, दुर्जन तथा दुष्टात्मा व्यक्तिको प्रदान मत करो, मुझे अप्रमादी, पवित्र, ब्रह्मचारी, सार्थक तथा विधिज्ञ सज्जनको ही दो। यदि निषिद्ध व्यक्तिको श्रेष्ठ विद्याधन दिया जाता है तो दाता और ग्रहणकर्ता—इन दोनोंमेंसे एक स्वल्प समयमें ही यमपुरी चला जाता है। पढ़नेवालेको चाहिये कि वह आध्यात्मिक, वैदिक, अलौकिक विद्या पढ़ानेवालेको प्रथम सादर प्रणाम कर अध्ययन करे। कर्मकाण्डका अध्ययन बिना ज्योतिषज्ञानके नहीं करना चाहिये। जो विषय शास्त्रोंमें नहीं कहे गये हैं और जो म्लेच्छोंद्वारा कथित हैं, उनका कभी भी अभ्यास नहीं करना चाहिये। जो स्वयं धर्माचरण कर धर्मका उपदेश करता है, वही ज्ञान देनेवाला पिता एवं गुरु-स्वरूप है तथा ऐसे ज्ञानदाताका ही धर्म प्रवर्तित होता है।

(अध्याय ७-८)

पूर्त-कर्म-निरूपण

सूतजीने कहा—ब्राह्मणो! युगान्तरमें ब्रह्माने जिस अन्तर्वेदि और बहिर्वेदिकी बात बतलायी है, वह द्वापर और कलियुगके लिये अत्यन्त उत्तम मानी गयी है। जो कर्म ज्ञानसाध्य है, उसे अन्तर्वेदिकर्म कहते हैं। देवताकी स्थापना और पूजा बहिर्वेदि (पूर्त) कर्म है। वह बहिर्वेदि-कर्म दो प्रकारका है—कुआँ, पोखरा, तालाब आदि खुदवाना और ब्राह्मणोंको संतुष्ट करना तथा गुरुजनोंकी सेवा।

निष्कामभावपूर्वक किये गये कर्म तथा व्यसनपूर्वक किया गया हरिस्मरणादि श्रेष्ठ कर्म अन्तर्वेदि-कर्मोंके अन्तर्गत आते हैं, इनके अतिरिक्त अन्य कर्म बहिर्वेदि-कर्म कहलाते हैं। धर्मका कारण राजा होता है, इसलिये राजाको धर्मका पालन करना चाहिये और राजाका आश्रय लेकर प्रजाको भी बहिर्वेदि (पूर्त) कर्मोंका पालन करना चाहिये। यों तो बहिर्वेदि (पूर्त) कर्म सतासी प्रकारके कहे गये हैं, फिर भी इनमें तीन प्रधान हैं—देवताका स्थापन, प्रासाद और तडाग आदिका निर्माण। इसके अतिरिक्त गुरुजनोंकी पूजापूर्वक पितृपूजा, देवताओंका अधिवासन और उनकी प्रतिष्ठा, देवता-प्रतिमा-निर्माण तथा वृक्षारोपण आदि भी पूर्त-कर्म हैं।

देवताओंकी प्रतिष्ठा उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ-भेदसे तीन प्रकारकी होती है। प्रतिष्ठामें पूजा, हवन तथा दान आदि ये तीन कर्म प्रधान हैं। तीन दिनोंमें सम्पन्न होनेवाले प्रतिष्ठा-विधानोंमें अट्ठाईस देवताओंकी पूजा तथा जापकरूपमें सोलह ब्राह्मण रखकर प्रतिष्ठा करानी चाहिये। प्रतिष्ठाकी यह उत्तम विधि कही गयी है। ऐसा करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। मध्यम प्रतिष्ठा-विधिमें यजन करनेवाले चार विद्वान् ब्राह्मण तथा तेईस देवता होते हैं। इसमें नवग्रह, दिक्पाल, वरुण, पृथ्वी, शिव आदि देवताओंकी एक दिनमें ही पूजा सम्पन्न कर देवताकी प्रतिष्ठा की जाती है। जो मात्र गणपति, ग्रह-दिक्पाल-वरुण और शिवकी अर्चना कर प्रतिष्ठा-विधान किया जाता है, वह कनिष्ठ विधि है। क्षुद्र देवताओंकी भी प्रतिमाएँ नाना प्रकारके वृक्षोंकी लकड़ियोंसे बनायी जाती हैं।

नवीन तालाब, बावली, कुण्ड और जल-पौसरा आदिका

निर्माण कर संस्कार-कार्यके लिये गणेशादि-देवपूजन तथा हवनादि कार्य करने चाहिये। तदनन्तर उनमें वापी, पुष्करिणी (नदी) आदिका पवित्र जल तथा गङ्गाजल डालना चाहिये।

एकसठ हाथका प्रासाद उत्तम तथा इससे आधे प्रमाणका मध्यम और इसके आधे प्रमाणसे निर्मित प्रासाद कनिष्ठ माना जाता है। ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवालेको देवताओंकी प्रतिमाके मानसे प्रासादका निर्माण करना चाहिये। नूतन तडागका निर्माण करनेवाला अथवा जीर्ण तडागका नवीन रूपमें निर्माण करनेवाला व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कुलका उद्धार कर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वापी, कूप, तालाब, बगीचा तथा जलके निर्गम-स्थानको जो व्यक्ति बार-बार स्वच्छ या संस्कृत करता है, वह मुक्तिरूप उत्तम फल प्राप्त करता है। जहाँ विप्रों एवं देवताओंका निवास हो, उनके मध्यवर्ती स्थानमें वापी, तालाब आदिका निर्माण मानवोंको करना चाहिये। नदीके तटपर और श्मशानके समीप उनका निर्माण न करे। जो मनुष्य वापी, मन्दिर आदिकी प्रतिष्ठा नहीं करता, उसे अनिष्टका भय होता है तथा वह पापका भागी भी होता है। अतः जनसंकुल गाँवोंके समीप बड़े तालाब, मन्दिर, कूप आदिका निर्माण कर उनकी प्रतिष्ठा शास्त्रविधिसे करनी चाहिये। उनके शास्त्रीय विधिसे प्रतिष्ठित होनेपर उत्तम फल प्राप्त होते हैं। अतएव प्रयत्नपूर्वक मनुष्य न्यायोपार्जित धनसे शुभ मुहूर्तमें शक्तिके अनुसार श्रद्धापूर्वक प्रतिष्ठा करे। भगवान्‌के कनिष्ठ, मध्यम या श्रेष्ठ मन्दिरको बनानेवाला व्यक्ति विष्णुलोकको प्राप्त होता है और क्रमिक मुक्तिको प्राप्त करता है। जो व्यक्ति गिरे हुए या गिर रहे अर्थात् जीर्ण मन्दिरका रक्षण करता है, वह समस्त पुण्योंका फल प्राप्त करता है। जो व्यक्ति विष्णु, शिव, सूर्य, ब्रह्मा, दुर्गा तथा लक्ष्मीनारायण आदिके मन्दिरोंका निर्माण कराता है, वह अपने कुलका उद्धार कर कोटि कल्पतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। उसके बाद वहाँसे मृत्युलोकमें आकर राजा या पूज्यतम धनी होता है। जो भगवती त्रिपुरसुन्दरीके मन्दिरमें अनेक देवताओंकी स्थापना करता है, वह सम्पूर्ण विश्वमें स्मरणीय हो जाता है और स्वर्गलोकमें सदा पूजित होता है। जलकी महिमा अपरम्पार है। परोपकार या देव-कार्यमें एक दिन भी किया गया जलका उपयोग मातृकुल, पितृकुल, भार्याकुल तथा आचार्यकुलकी अनेक पीढ़ियोंको तार देता है। उसका स्वयंका भी उद्धार हो जाता है। अविमुक्त दशार्णव तीर्थमें देवार्चन करनेसे अपना उद्धार होता है तथा अपने पितृ-मातृ आदि कुलोंको भी वह तार देता है। जलके ऊपर तथा प्रासाद (देवालय)-के ऊपर रहनेके लिये घर नहीं बनवाना चाहिये। प्रतिष्ठित अथवा अप्रतिष्ठित शिवलिङ्गको कभी उखाड़ना नहीं चाहिये। इसी प्रकार अन्य देव-प्रतिमाओं और पूजित देववृक्षोंको चालित नहीं करना चाहिये। उसे चालित करनेवाले व्यक्तिको रौरव नरककी प्राप्ति होती है, परंतु यदि नगर या ग्राम उजड़ गये हों, अपना स्थान किसी कारण छोड़ना पड़े या विप्लव मचा हो तो उसकी पुनः प्रतिष्ठा बिना विचारके करनी चाहिये।

शुभ मुहूर्तके अभावमें देवमन्दिर तथा देववृक्ष आदि स्थापित नहीं करने चाहिये। बादमें उन्हें हटानेपर ब्रह्महत्याका दोष लगता है। देवताओंके मन्दिरके सामने पुष्करिणी आदि बनाने चाहिये। पुष्करिणी बनानेवाला अनन्त फल प्राप्तकर ब्रह्मलोकसे पुनः नीचे नहीं आता।

(अध्याय ९)

प्रासाद, उद्यान आदिके निर्माणमें भूमि-परीक्षण तथा वृक्षारोपणकी महिमा

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! देवमन्दिर, तडाग आदिके निर्माण करनेमें सबसे पहले प्रमाणानुसार गृहीत की गयी भूमिका संशोधन कर दस हाथ अथवा पाँच हाथके प्रमाणमें बैलोंसे उसे जुतवाना चाहिये। देवमन्दिरके लिये गृहीत भूमिको सफेद बैलोंसे तथा कूप, बगीचे आदिके लिये काले बैलोंसे जुतवाये। यदि वह भूमि ग्रह-यागके लिये हो तो उसे जुतवानेकी आवश्यकता नहीं, मात्र उसे स्वच्छ कर लेना चाहिये। उस पूर्वोक्त स्थानको तीन दिन जुतवाना चाहिये। फिर उसमें पाँच प्रकारके धान्य बोने चाहिये। देवपक्षमें तथा उद्यानके लिये सात प्रकारके धान्य वपन करने चाहिये। मूँग, उड़द, धान, तिल, साँवा—ये पाँच व्रीहिगण हैं। मसूर और मटर या चना मिलानेसे सात व्रीहिगण होते हैं। (यदि ये बीज तीन, पाँच या सात रातोंमें अङ्कुरित हो जाते हैं तो उनके फल इस प्रकार जानने चाहिये—तीन रातवाली भूमि उत्तम, पाँच

रातवाली भूमि मध्यम तथा सात रातवाली भूमि कनिष्ठ है। कनिष्ठ भूमिको सर्वथा त्याग देना चाहिये।) श्वेत, लाल, पीली और काली—इन चार वर्णोंवाली पृथ्वी क्रमशः ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लिये प्रशंसित मानी गयी है। प्रासाद आदिके निर्माणमें पहले भूमिकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। उसकी एक विधि इस प्रकार है—अरत्निमात्र (लगभग एक हाथ लंबा) बिल्वकाष्ठको बारह अंगुलके गड्ढेमें गाड़कर, उसके भूमिसे ऊपरवाले भागमें चारों ओर चार लकड़ियाँ लगाकर उन्हें ऊनसे लपेटकर तेलसे भिगो ले। इन्हें चार बत्तियोंके रूपमें दीपककी भाँति प्रज्वलित करे। पूर्व तथा पश्चिमकी ओर बत्ती जलती रहे तो शुभ तथा दक्षिण एवं उत्तरकी ओरकी जलती रहे तो अशुभ माना गया है। यदि चारों बत्तियाँ बुझ जायँ या मन्द हो जायँ तो विपत्तिकारक है[1]। इस प्रकार सम्यक्-रूपसे भूमिकी परीक्षाकर उस भूमिको सूत्रसे आवेष्टित तथा कीलित कर वास्तुका पूजन करे। तदनन्तर वास्तुबलि देकर भूमि खोदनेवाले खनित्रकी भी पूजा करे। वास्तुके मध्यमें एक हाथके पैमानेमें भूमिको घी, मधु, स्वर्णमिश्रित जल तथा रत्नमिश्रित जलसे ईशानाभिमुख होकर लीप दे, फिर खोदते समय **'आ ब्रह्मन्०'**[2] इस मन्त्रका उच्चारण करे। जो वास्तुदेवताका बिना पूजन किये प्रासाद, तडाग आदिका निर्माण करता है, यमराज उसका आधा पुण्य नष्ट कर देते हैं।

अतः प्रासाद, आराम, उद्यान, महाकूप, गृहनिर्माणमें पहले वास्तुदेवताका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। जहाँ स्तम्भकी आवश्यकता हो वहाँ साल, खैर, पलास, केसर, बेल तथा बकुल—इन वृक्षोंसे निर्मित यूप कलियुगमें प्रशस्त माने गये हैं। यदि वापी, कूप आदिका विधिहीन खनन एवं आम्र आदि वृक्षोंका विधिहीन रोपण करे, तो उसे कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता, अपितु केवल अधोगति ही मिलती है। नदीके किनारे, श्मशान तथा अपने घरसे दक्षिणकी ओर तुलसीवृक्षका रोपण न करे, अन्यथा यम-यातना भोगनी पड़ती है। विधि-पूर्वक वृक्षोंका रोपण करनेसे उसके पत्र, पुष्प तथा फलके रज-रेणुओं आदिका समागम उसके पितरोंको प्रतिदिन तृप्त करता है।

जो व्यक्ति छाया, फूल और फल देनेवाले वृक्षोंका रोपण करता है या मार्गमें तथा देवालयमें वृक्षोंको लगाता है, वह अपने पितरोंको बड़े-बड़े पापोंसे तारता है और रोपणकर्ता इस मनुष्य-लोकमें महती कीर्ति तथा शुभ परिणामको प्राप्त करता है तथा अतीत और अनागत पितरोंको स्वर्गमें जाकर भी तारता ही रहता है। अतः द्विजगण! वृक्ष लगाना अत्यन्त शुभ-दायक है। जिसको पुत्र नहीं है, उसके लिये वृक्ष ही पुत्र है, वृक्षारोपणकर्ताके लौकिक-पारलौकिक कर्म वृक्ष ही करते रहते हैं तथा स्वर्ग प्रदान करते हैं। यदि कोई अश्वत्थ वृक्षका आरोपण करता है तो वही उसके लिये एक लाख पुत्रोंसे भी बढ़कर है। अतएव अपनी सद्गतिके लिये कम-से-कम एक या दो या तीन अश्वत्थ-वृक्ष लगाना ही चाहिये। हजार, लाख, करोड़ जो भी मुक्तिके साधन हैं, उनमें एक अश्वत्थ-वृक्ष लगानेकी बराबरी नहीं कर सकते।

अशोक-वृक्ष लगानेसे कभी शोक नहीं होता, प्लक्ष (पाकड़) वृक्ष उत्तम स्त्री प्रदान करवाता है, ज्ञानरूपी फल भी देता है। बिल्ववृक्ष दीर्घ आयुष्य प्रदान करता है। जामुनका वृक्ष धन देता है, तेंदूका वृक्ष कुलवृद्धि कराता है। दाडिम (अनार) का वृक्ष स्त्री-सुख प्राप्त कराता है। बकुल पाप-नाशक, वंजुल (तिनिश) बल-बुद्धिप्रद है। धातकी (धव) स्वर्ग प्रदान करता है। वटवृक्ष मोक्षप्रद, आम्रवृक्ष अभीष्ट कामनाप्रद और गुवाक (सुपारी) का वृक्ष सिद्धिप्रद है। बल्वल, मधूक (महुआ) तथा अर्जुन-वृक्ष सब प्रकारका अन्न प्रदान करता है। कदम्ब-वृक्षसे विपुल लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। तिंतिडी (इमली) का वृक्ष धर्मदूषक माना गया है।

१-भूमि-परीक्षा, वास्तु-विधान तथा प्रासाद आदिकी प्रतिष्ठा आदिपर विस्तृत विचार समराङ्गणसूत्रधार, वास्तुराजवल्लभ, बृहत्संहिता, शिल्परत्न, गृहरत्नभूषण आदि ग्रन्थोंमें हुआ है। मत्स्य, अग्नि तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें भी इसकी चर्चा आयी है। इस विद्याका संक्षिप्त उल्लेख ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, श्रौतसूत्रों एवं मनुस्मृति ३।८९ आदिमें भी है। वास्तुविद्याके मुख्य प्रवर्तक एवं ज्ञाता विश्वकर्मा और मय दानव हैं।

२-आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

(यजु० २२।२२)

शमी-वृक्ष रोग-नाशक है। केशरसे शत्रुओंका विनाश होता है। श्वेत वट धनप्रदाता, पनस (कटहल) वृक्ष मन्द बुद्धिकारक है। मर्कटी (केंवाच) एवं कदम-वृक्षके लगानेसे संततिका क्षय होता है।

शीशम, अर्जुन, जयन्ती, करवीर, बेल तथा पलाश-वृक्षोंके आरोपणसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। विधिपूर्वक वृक्षका रोपण करनेसे स्वर्ग-सुख प्राप्त होता है और रोपणकर्ताके तीन जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। सौ वृक्षोंका रोपण करनेवाला ब्रह्मा-रूप और हजार वृक्षोंका रोपण करनेवाला विष्णुरूप बन जाता है। वृक्षके आरोपणमें वैशाख मास श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ अशुभ है। आषाढ़, श्रावण तथा भाद्रपद ये भी श्रेष्ठ हैं। आश्विन, कार्तिकमें वृक्ष लगानेसे विनाश या क्षय होता है। श्वेत तुलसी प्रशस्त मानी गयी है। अश्वत्थ, वटवृक्ष और श्रीवृक्षका छेदन करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मघाती कहलाता है। वृक्षच्छेदी व्यक्ति मूक और सैकड़ों व्याधियोंसे युक्त होता है। तिंतिडीके बीजोंको इक्षुदण्डसे पीसकर उसे जलमें मिलाकर सींचनेसे अशोकको तथा नारियलके जल एवं शहद-जलसे सींचनेसे आम्रवृक्षकी वृद्धि होती है। अश्वत्थ-वृक्षके मूलसे दस हाथ चारों ओरका क्षेत्र पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र माना गया है और उसकी छाया जहाँतक पहुँचती है तथा अश्वत्थ-वृक्षके संसर्गसे बहनेवाला जल जहाँतक पहुँचता है, वह क्षेत्र गङ्गाके समान पवित्र माना गया है।

सूतजी पुनः बोले—विप्रश्रेष्ठ! तान्त्रिक पद्धतिके अनुसार सभी प्रतिष्ठादि कार्योंमें शुद्ध दिन ही लेना चाहिये। वृक्षोंके उद्यानमें कुआँ अवश्य बनवाना चाहिये। तुलसी-वनमें कोई याग नहीं करना चाहिये। तालाब, बड़े बाग तथा देवस्थानके मध्य सेतु नहीं बनवाना चाहिये। परंतु देवस्थानमें तडाग बनवाना चाहिये। शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठामें अन्य देवोंकी स्थापना नहीं करनी चाहिये। इसमें देश-काल (और शैवागमों) की मर्यादाके अनुसार आचरण करना चाहिये। उनके विपरीत आचरण करनेपर आयुका ह्रास होता है। द्विजगण! तालाब, पुष्करिणी तथा उद्यान आदिका जो परिमाण बताया गया हो, यदि उससे कम पैमानेपर ये बनाये जायँ तो दोष है, किंतु दस हाथके परिणाममें हों तो कोई दोष नहीं है। यदि वे दो हजार हाथोंसे अधिक प्रमाणमें बनाये गये हों तो उनकी प्रतिष्ठा विधिपूर्वक अवश्य करनी चाहिये। (अध्याय १०-११)

देव-प्रतिमा-निर्माण-विधि

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! अब मैं प्रतिमाका शास्त्रसम्मत लक्षण कहता हूँ। उत्तम लक्षणोंसे रहित प्रतिमाका पूजन नहीं करना चाहिये। पाषाण, काष्ठ, मृत्तिका, रत्न, ताम्र एवं अन्य धातु—इनमेंसे किसीकी भी प्रतिमा बनायी जा सकती है[1]। उनके पूजनसे सभी अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं। मन्दिरके मापके अनुसार शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न प्रतिमा बनवानी चाहिये। घरमें आठ अङ्गुलसे अधिक ऊँची मूर्तिका पूजन नहीं करना चाहिये। देवालयके द्वारकी जो ऊँचाई हो उसे आठ भागोंमें विभक्त कर तीन भागके मापमें पिण्डिका तथा दो भागके मापमें देव-प्रतिमा बनाये। चौरासी अङ्गुल (साढ़े तीन हाथ) की प्रतिमा वृद्धि करनेवाली होती है। प्रतिमाके मुखकी लंबाई बारह अङ्गुल होनी चाहिये। मुखके तीन भागके प्रमाणमें चिबुक, ललाट तथा नासिका होनी चाहिये। नासिकाके बराबर ही कान और ग्रीवा बनानी चाहिये। नेत्र दो अङ्गुल-प्रमाणके बनाने चाहिये। नेत्रके मानके तीसरे भागमें आँखकी तारिका बनानी चाहिये। तारिकाके तृतीय भागमें सुन्दर दृष्टि बनानी चाहिये। ललाट, मस्तक तथा ग्रीवा—ये तीनों बराबर मापके हों। सिरका विस्तार बत्तीस अङ्गुल होना चाहिये। नासिका, मुख और ग्रीवासे हृदय एक सीधमें होना चाहिये। मूर्तिकी जितनी ऊँचाई हो उसके आधेमें कटि-प्रदेश बनाना चाहिये। दोनों बाहु, जंघा तथा ऊरु परस्पर समान हों। टखने चार अङ्गुल ऊँचे बनाने चाहिये। पैरके अँगूठे तीन

१-मत्स्यपुराणमें प्रतिमा-निर्माणके लिये निम्न वस्तुओंको ग्राह्य बतलाया है—

सौवर्णी राजती वापि ताम्री रत्नमयी तथा। शैली दारुमयी चापि लौहसीसमयी तथा॥
रीतिकाधातुयुक्ता वा ताम्रकांस्यमयी तथा। शुभदारुमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते॥ (२५८। २०-२१)

सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, रत्न, पत्थर, देवदारु, लोहा-सीसा, पीतल और काँसा-मिश्रित अथवा शुभ काष्ठोंकी बनी हुई देवप्रतिमा प्रशस्त मानी गयी है।

अङ्गुलके हों और उसका विस्तार छः अङ्गुलका हो। अँगूठेके बराबर ही तर्जनी होनी चाहिये। शेष अङ्गुलियाँ क्रमशः छोटी हों तथा सभी अङ्गुलियाँ नखयुक्त बनाये। पैरकी लंबाई चौदह अङ्गुलमें बनानी चाहिये। अधर, ओष्ठ, वक्षःस्थल, भ्रू, ललाट, गण्डस्थल तथा कपोल भरे-पूरे सुडौल सुन्दर तथा मांसल बनाने चाहिये, जिससे प्रतिमा देखनेमें सुन्दर मालूम हो। नेत्र विशाल, फैले हुए तथा लालिमा लिये हुए बनाने चाहिये।

इस प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न प्रतिमा शुभ और पूज्य मानी गयी है। प्रतिमाके मस्तकमें मुकुट, कण्ठमें हार, बाहुओंमें कटक और अंगद पहनाने चाहिये। मूर्ति सर्वाङ्ग-सुन्दर, आकर्षक तथा तत्तत् अङ्गोंके आभूषणोंसे अलंकृत होनी चाहिये। भगवान्‌की प्रतिमामें देवकलाओंका आधान होनेपर भगवत्प्रतिमा प्रत्येकको अपनी ओर बरबस आकृष्ट कर लेती है और अभीष्ट वस्तुका लाभ कराती है।

जिसका मुखमण्डल दिव्य प्रभासे जगमगा रहा हो, कानोंमें चित्र-विचित्र मणियोंके सुन्दर कुण्डल तथा हाथोंमें कनक-मालाएँ और मस्तकपर सुन्दर केश सुशोभित हों, ऐसी भक्तोंको वर देनेवाली, स्नेहसे परिपूर्ण, भगवतीकी सौम्य कैशोरी प्रतिमाका निर्माण कराये। भगवती विधिपूर्वक अर्चना करनेपर प्रसन्न होती हैं और उपासकोंके मनोरथोंको पूर्ण करती हैं।

नव ताल (साढ़े चार हाथ) की विष्णुकी प्रतिमा बनवानी चाहिये। तीन तालकी वासुदेवकी, पाँच तालकी नृसिंह तथा हयग्रीवकी, आठ तालकी नारायणकी, पाँच तालकी महेशकी, नव तालकी भगवती दुर्गाकी, तीन-तीन तालकी लक्ष्मी और सरस्वतीकी तथा सात तालकी भगवान् सूर्यकी प्रतिमा बनवानेका विधान है।

भगवान्‌की मूर्तिकी स्थापना तीर्थ, पर्वत, तालाब आदिके समीप करनी चाहिये अथवा नगरके मध्यभागमें या जहाँ ब्राह्मणोंका समूह हो, वहाँ करनी चाहिये। इनमें भी अविमुक्त आदि सिद्ध क्षेत्रोंमें प्रतिष्ठा करनेवालेके पूर्वापर अनन्त कुलोंका उद्धार हो जाता है। कलियुगमें चन्दन, अगरु, बिल्व, श्रीपर्णिक तथा पद्मकाष्ठ आदि काष्ठोंके अभावमें मृण्मयी मूर्ति बनवानी चाहिये। (अध्याय १२)

कुण्ड-निर्माण एवं उनके संस्कारकी विधि और ग्रह-शान्तिका माहात्म्य

सूतजी बोले—द्विजश्रेष्ठ ! अब मैं यज्ञकुण्डोंके निर्माण एवं उनके संस्कारकी संक्षिप्त विधि बतला रहा हूँ। कुण्ड दस प्रकारके होते हैं—(१) चौकोर, (२) वृत्त, (३) पद्म, (४) अर्धचन्द्र, (५) योनिकी आकृतिका, (६) चन्द्राकार, (७) पञ्चकोण, (८) सप्तकोण (९) अष्टकोण और (१०) नौ कोणोंवाला।

सबसे पहले भूमिका संशोधन कर भूमिपर पड़े हुए तृण, केश आदि हटा देने चाहिये। फिर उस भूमिपर भस्म और अंगारे घुमाकर भूमि-शुद्धि करनी चाहिये, तदनन्तर उस भूमिपर जल-सिंचनकर बीजारोपण करे और सात दिनके बाद कुण्ड-निर्माणके लिये खनन करना चाहिये। तत्पश्चात् अभीष्ट उपर्युक्त दस कुण्डोंमेंसे किसीका निर्माण करना चाहिये। कुण्ड-निर्माणार्थ विधिवत् नाप-जोखके लिये सूत्रका उपयोग करे। कामना-भेदसे कुण्ड भी अनेक आकारके होते हैं। कुण्डके अनुरूप ही मेखला भी बनायी जाती है। यज्ञोंमें आहुतियोंकी संख्याका भी अलग-अलग विधान है। विधि-प्रमाणके अनुसार आहुति देनी चाहिये। मानरहित हवन करनेसे कोई फल नहीं मिलता। अतः बुद्धिमान् मनुष्यको मानका पूर्ण ज्ञान रखकर ही कुण्डका विधिवत् निर्माण कर यज्ञानुष्ठान करना चाहिये।

जिस यज्ञका जितना मान होता है, उसी मानकी ही योजना करनी चाहिये। पचास आहुतियोंका मान सामान्य है, इसके बाद सौ, हजार, अयुत, लक्ष और कोटि होम भी होते हैं। बड़े-बड़े यज्ञ सम्पत्ति रहनेपर हो सकते हैं या राजा-महाराजा कर सकते हैं। मनुष्य अपने-अपने प्राक्तन कर्मके अनुसार सुख-दुःखका उपभोग करता है तथा शुभाशुभ-फल ग्रहोंके अनुसार भोगता है। अतः शान्ति-पुष्टि-कर्ममें ग्रहोंकी शान्ति प्रयत्नपूर्वक परम भक्तिसे करनी चाहिये। दिव्य, अन्तरिक्ष और पृथिवी-सम्बन्धी बड़े-बड़े अद्भुत उत्पातोंके होनेपर शुभाशुभ फल देनेवाली ग्रह-शान्ति करनी चाहिये। इन अवसरोंपर अयुत होम करना चाहिये। काम्य-कर्म या शान्ति-पुष्टिके लिये ग्रहोंका भक्तिपूर्वक नित्य

पूजन एवं हवन करना चाहिये। कलिमें ग्रहोंके लिये लक्ष एवं कोटि होमका विधान है। गृहस्थको आभिचारिक कर्म नहीं करना चाहिये।

कुण्डोंका शास्त्रानुसार संस्कार करना चाहिये। बिना संस्कार किये होम करनेपर अर्थ-हानि होती है। अतः संस्कार करके होमादि क्रियाएँ करनी चाहिये।

कुण्डोंके स्थानका ओंकारपूर्वक अवेक्षण, कुशके जलसे प्रोक्षण, त्रिशूलीकरण तथा सूत्रसे आवेष्टित करना, कीलित करना, अग्निजिह्वाकी भावना करना एवं अग्न्याहरण आदि अठारह संस्कार होते हैं। शूद्रके घरसे अग्नि कभी न लाये। स्त्रीके द्वारा भी अग्नि नहीं मँगवानी चाहिये। शुद्ध एवं पवित्र व्यक्तिद्वारा अग्नि ग्रहण करना चाहिये। तदनन्तर अग्निका संस्कार करे और उसे अपने अभिमुख रखे। अग्नि-बीज (रं) और शिव-बीज (शं) से उसका प्रोक्षण करे और शिव-शक्तिका ध्यान करे, इससे अभीष्ट सिद्धिकी प्राप्ति होती है। उसके बाद वायुके सहारे अग्नि प्रज्वलित करे। देवी भगवतीका और भगवान्‌का अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय आदिसे पूजन करे। अग्नि-पूजनमें इस मन्त्रका उपयोग करे—

'पितृपिङ्गल दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा'

यज्ञदत्तमुनिने अग्निकी तीन जिह्वाएँ बतलायी हैं—हिरण्या, कनका तथा कृष्णा[1]। समिधा-भेदसे जिन जिह्वा-भेदोंका वर्णन है, उनका उन्हींमें विनियोग करना चाहिये। बहुरूपा, अतिरूपा और सात्विका—इनका योग-कर्ममें विनियोग होता है। आज्यहोममें हिरण्या, त्रिमधु (दूध, चीनी और मधु—इन तीनोंके समाहार) से हवन करनेपर कर्णिका, शुद्ध क्षीरसे हवन करनेपर रक्ता, नैत्यिक कर्ममें प्रभा, पुष्पहोममें बहुरूपा, अन्न और पायससे हवन करनेमें कृष्णा, इक्षुहोममें पद्मरागा, पद्महोममें सुवर्णा और लोहिता, बिल्वपत्रसे हवन करनेपर श्वेता, तिल-होममें धूमिनी, काष्ठ होममें करालिका, पितृहोममें लोहितास्या, देवहोममें मनोजवा नामकी अग्निज्वाला कही गयी है। जिन-जिन समिधाओंसे हवन किया जाता है, उन-उन समिधाओंमें 'वैश्वानर' नामक अग्निदेव स्थित रहते हैं।

अग्निके मुखमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक आहुति पड़नेपर अग्नि देवता सभी प्रकारका अभ्युदय करते हैं। मुखके अतिरिक्त शेष स्थानोंपर आहुति देनेसे अनिष्ट फल होता है। अग्निकी जिह्वाएँ विशेषरूपसे घृताहुतिमें हिरण्या एवं अन्यान्य आहुतियोंमें गगना, वक्रा, कृष्णाभा, सुप्रभा, बहुरूपा तथा अति-रूपिका नामसे प्रसिद्ध हैं। कुण्डके उदरमें अर्थात् मध्यमें आहुतियाँ देनी चाहिये। इधर-उधर नहीं देनी चाहिये। चन्दन, अगरु, कपूर, पाटला तथा यूथिका (जूही) के समान अग्निसे प्रादुर्भूत गन्ध सभी प्रकारका कल्याणकारक होता है।

यदि अग्निकी ज्वाला छिन्न-वृत्त-रूपमें उठती हो तो मृत्युभय होता है और धनका क्षय होता है। अग्नि बुझ जाने तथा अत्यधिक धुआँ होनेपर भी महान् अनिष्ट होता है। ऐसी स्थितियोंमें प्रायश्चित्त करना चाहिये। पहले अट्ठाईस आहुतियाँ देकर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। अनन्तर घीसे मूल मन्त्रद्वारा पचीस आहुतियाँ देनी चाहिये। तीनों कालोंमें महास्नान करे तथा श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करे। (अध्याय १३—१५)

अग्नि-पूजन-विधि

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! नित्य-नैमित्तिक यागादिकी समाप्तिमें हवन हो जानेपर भगवान् अग्निदेवकी षोडश उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये। अग्निको वायुद्वारा प्रदीप्त कर पीठस्थ देवताओंकी पूजा कर हाथमें लाल फूल ले निम्न मन्त्र पढ़कर ध्यान करे—

इष्टं शक्तिस्वस्तिकाभीतिमुच्चैर्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं वरान्तम्।
हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद्वह्निं बद्धमौलिं जटाभिः॥

(मध्यमपर्व १। १६। ३)

'भगवान् अग्निदेवता अपने हाथोंमें उत्तम इष्ट (यज्ञपात्र), शक्ति, स्वस्तिक और अभय-मुद्रा धारण किये हैं, देदीप्यमान सुवर्ण-सदृश उनका स्वरूप है, कमलके ऊपर विराजमान हैं, तीन नेत्र हैं तथा वे जटाओं और मुकुटसे सुशोभित हैं।'

मण्डपके पूर्व आदि द्वारदेशोंमें कामदेव, इन्द्र, वराह तथा कार्तिकेयको आवाहित कर स्थापित करे। तदनन्तर आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा गन्धादि उपचारोंसे पूजन कर आठ मुद्राएँ प्रदर्शित करे। फिर सुवर्ण-वर्णवाले निर्मल, प्रज्वलित,

[1] १-प्रकारान्तरसे विश्वमूर्ति, स्फुलिङ्गिनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहितास्या, करालास्या तथा काली—ये भी सात प्रकारकी अग्निजिह्वाएँ कही गयी हैं।

सर्वतोमुख, महाजिह्व तथा महोदर भगवान् अग्निदेवकी आकाश-रूपमें पूजा करे। अग्निकी जिह्वाओंका भी ध्यान करे। इसके बाद भगवान् अग्निदेवका विविध उपचारोंसे पूजन करे[१]।

(अध्याय १६)

१-सर्वप्रथम निम्नलिखित मन्त्रसे तीन पुष्पगुच्छोंद्वारा अग्निदेवको आसन प्रदान करे—

आसन-मन्त्र—त्वमादिः सर्वभूतानां संसारार्णवतारकः। परमज्योतीरूपस्त्वमासनं सफलीकुरु॥

संसार-रूपी सागरसे उद्धार करनेवाले, सम्पूर्ण प्राणियोंमें आदि, परम ज्योतिः-स्वरूप हे अग्निदेव! आप इस आसनको ग्रहण कर मुझे सफल बनायें। अनन्तर करबद्ध प्रार्थना करे—

प्रार्थना-मन्त्र—वैश्वानर नमस्तेऽस्तु नमस्ते हव्यवाहन। स्वागतं ते सुरश्रेष्ठ शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते॥

हे हव्यवाहन वैश्वानर देव! आप देवताओंमें श्रेष्ठ हैं, आपका स्वागत है, आपको नमस्कार है, आप शान्ति प्रदान करें।

पाद्य-मन्त्र—नमस्ते भगवन् देव आपोनारायणात्मक। सर्वलोकहितार्थाय पाद्यं च प्रतिगृह्यताम्॥

नर-नारायणस्वरूप हे भगवान् वैश्वानरदेव! आपको नमस्कार है। आप समस्त संसारके हितके लिये इस पाद्य-जलको ग्रहण करें।

अर्घ्य-मन्त्र—नारायण परं धाम ज्योतीरूप सनातन। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं विश्वरूप नमोऽस्तु ते॥

हे विश्वरूप! आप ज्योतीरूप हैं, आप ही सनातन, परम धाम एवं नारायण हैं, आपको नमस्कार है, आप मेरे द्वारा दिये गये इस अर्घ्यको ग्रहण करें।

आचमनीय मन्त्र—जगदादित्यरूपेण प्रकाशयति यः सदा। तस्मै प्रकाशरूपाय नमस्ते जातवेदसे॥

जो आदित्यरूपसे सम्पूर्ण संसारको नित्य प्रकाशित करते रहते हैं, ऐसे उन जातवेदा तथा प्रकाशस्वरूप भगवान् वैश्वानरको नमस्कार है। हे अग्निदेव! इस आचमनीय जलको आप ग्रहण करें।

स्नानीय मन्त्र—धनञ्जय नमस्तेऽस्तु सर्वपापप्रणाशन। स्नानीयं ते मया दत्तं सर्वकामार्थसिद्धये॥

सभी पापोंका नाश करनेवाले हे धनञ्जयदेव! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये मेरे द्वारा दिये गये इस स्नानीय जलको आप ग्रहण करें।

अङ्गप्रोक्षण एवं वस्त्र-मन्त्र—हुताशन महाबाहो देवदेव सनातन। शरणं ते प्रगच्छामि देहि मे परमं पदम्॥

हे देवदेव सनातन महाबाहु हुताशन! मैं आपकी शरण हूँ, मुझे आप परम पद प्रदान करें (मेरे द्वारा प्रदत्त इस अङ्गप्रोक्षण एवं वस्त्रको आप स्वीकार करें)।

अलंकार-मन्त्र—ज्योतिषां ज्योतीरूपस्त्वमनादिनिधनाच्युत। मया दत्तमलंकारमलंकुरु नमोऽस्तु ते॥

अपने स्थानसे कभी च्युत न होनेवाले हे अग्निदेव! आपका न आदि है न अन्त। आप ज्योतियोंके परमज्योतीरूप हैं, आपको मेरा नमस्कार है। मेरे दिये गये इस अलंकारको आप अलंकृत करें।

गन्ध-मन्त्र—देवींदेवा मुदं यान्ति यस्य सम्यक्समागमात्। सर्वदोषोपशान्त्यर्थं गन्धोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

हे देव! आपके सम्यक् संनिधानसे सभी देवी-देवता प्रसन्न हो जाते हैं। सम्पूर्ण दोषोंकी शान्तिके लिये मेरे द्वारा दिये गये इस गन्धको आप ग्रहण करें।

पुष्प-मन्त्र—विष्णुस्त्वं हि ब्रह्मा च ज्योतिषां गतिरीश्वर। गृहाण पुष्पं देवेश सानुलेपं जगद् भवेत्॥

हे देवेश! आप ही ब्रह्मा, विष्णु तथा ज्योतियोंकी गति हैं और आप ही ईश्वर हैं। आप इस पुष्पको ग्रहण करें, जिससे सारा संसार पुष्पगन्धसे सुवासित हो जाय।

धूप-मन्त्र—देवतानां पितॄणां च सुखमेकं सनातनम्। धूपोऽयं देवदेवेश गृह्यतां मे धनञ्जय॥

हे देवदेवेश धनञ्जय! आप देवताओं और पितरोंके सुख प्राप्त करनेमें एकमात्र सनातन आधार हैं। आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस धूपको ग्रहण करें।

दीप-मन्त्र—त्वमेकः सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च। परमात्मा पराकारः प्रदीपः प्रतिगृह्यताम्॥

परमात्मन्! आप सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंमें व्याप्त हैं। आपकी आकृति परम उत्कृष्ट है। आप इस दीपकको ग्रहण करें।

नैवेद्य-मन्त्र—नमोऽस्तु यज्ञपतये प्रभवे जातवेदसे। सर्वलोकहितार्थाय नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥

हे यज्ञपति जातवेदा! आप शक्तिशाली हैं तथा समस्त संसारका कल्याण करनेवाले हैं, आपको मेरा नमस्कार है। मेरे द्वारा प्रदत्त इस नैवेद्यको आप ग्रहण करें। परम अन्नस्वरूप मधु भी नैवेद्यके रूपमें निवेदित करे तथा यज्ञसूत्र भी अर्पित करे। अन्तमें समस्त कर्म भगवान् अग्निदेवको निवेदित कर दे—

हुताशन नमस्तुभ्यं नमस्ते रुक्मवाहन। लोकनाथ नमस्तेऽस्तु नमस्ते जातवेदसे॥

हे हुताशनदेव! आपको नमस्कार है, रुक्मवाहन लोकनाथ! आपको नमस्कार है, हे जातवेदा! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।

विविध कर्मोंमें अग्निके नाम तथा होम-द्रव्योंका वर्णन

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! अब मैं शास्त्रसम्मत-विधिके अनुसार किये गये विविध यज्ञोंमें अग्निके नामोंका वर्णन करता हूँ। शतार्ध-होममें पाँच सौ संख्यातककी आहुतिवाले यज्ञोंमें अग्निको काश्यप कहा गया है। इसी प्रकार आज्य-होममें विष्णु, तिल-यागमें वनस्पति, सहस्र-यागमें ब्राह्मण, अयुत-यागमें हरि, लक्ष-होममें वह्नि, कोटि-होममें हुताशन, शान्तिक कर्मोंमें वरुण, मारण-कर्ममें अरुण, नित्य-होममें अनल, प्रायश्चित्तमें हुताशन तथा अन्न-यज्ञमें लोहित नाम कहा गया है। देवप्रतिष्ठामें लोहित, वास्तुयाग, मण्डप तथा पद्मक-यागमें प्रजापति, प्रपा-यागमें नाग, महादानमें हविर्भुक्, गोदानमें रुद्र, कन्यादानमें योजक तथा तुला-पुरुष-दानमें धातारूपसे अग्निदेव स्थित रहते हैं। इसी प्रकार वृषोत्सर्गमें अग्निका सूर्य, वैश्वदेव-कर्ममें पावक, दीक्षा-ग्रहणमें जनार्दन, उत्पीडनमें काल, शवदाहमें क्रव्य, पर्णदाहमें यम, अस्थिदाहमें शिखण्डिक, गर्भाधानमें मरुत्, सीमन्तमें पिङ्गल, पुंसवनमें इन्द्र, नामकरणमें पार्थिव, निष्क्रमणमें हाटक, प्राशनमें शुचि, चूडाकरणमें षडानन, व्रतोपदेशमें समुद्भव, उपनयनमें वीतिहोत्र, समावर्तनमें धनञ्जय, उदरमें जठर, समुद्रमें वडवानल, शिखामें विभु तथा स्वरादि शब्दोंमें सरीसृप नाम है। अश्वाग्निका मन्थर, रथाग्निका जातवेदस्, गजाग्निका मन्दर, सूर्याग्निका विन्ध्य, तोयाग्निका वरुण, ब्राह्मणाग्निका हविर्भुक्, पर्वताग्निका नाम क्रतुभुक् है। दावाग्निको सूर्य कहा जाता है। दीपाग्निका नाम पावक, गृह्याग्निका धरणीपति, घृताग्निका नल और सूतिकाग्निका नाम राक्षस है।

जिन द्रव्योंका होममें उपयोग किया जाता है, उनका निश्चित प्रमाण होता है। प्रमाणके बिना किया गया द्रव्योंका होम फलदायक नहीं होता। अतः शास्त्रके अनुसार प्रमाणका परिज्ञान कर लेना चाहिये। घी, दूध, पञ्चगव्य, दधि, मधु, लाजा, गुड़, ईख, पत्र-पुष्प, सुपारी, समिध्, व्रीहि, डंठलके साथ जपापुष्प और केसर, कमल, जीवन्ती, मातुलुङ्ग (बिजौरा नींबू), नारियल, कूष्माण्ड, ककड़ी, गुरुच, तिंदुक, तीन पत्तोंवाली दूब आदि अनेक होम-द्रव्य कहे गये हैं। भूर्जपत्र, शमी तथा समिधा प्रादेशमात्रके होने चाहिये। बिल्वपत्र तीन पत्रयुक्त, किंतु छिन्न-भिन्न नहीं होना चाहिये। इनमें शास्त्र-निर्दिष्ट प्रमाणसे न्यूनता या अधिकता नहीं होनी चाहिये। अभीष्ट-प्राप्तिके निमित्त किये जानेवाले शान्तिकर्म शास्त्रोक्त रीतिसे सम्पन्न होने चाहिये।

(अध्याय १७-१८)

यज्ञ-पात्रोंका स्वरूप और पूर्णाहुतिकी विधि

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! यज्ञक्रियाके उपयोगमें आनेवाली स्रुवाके निर्माणमें—श्रीपर्णी, शिंशपा, क्षीरी (दूधवाले वृक्ष) बिल्व और खदिरके काष्ठ प्रशस्त माने गये हैं। याग-क्रियामें इनसे बने स्रुवाके उपयोगसे सिद्धि प्राप्त होती है। देव-प्रतिष्ठामें आँवला, खदिर और केसरके वृक्षको भी स्रुवाके लिये शास्त्रज्ञोंने उत्तम कहा है। स्रुवा प्रतिष्ठाकार्यमें, सम्प्राशन तथा संस्कार-कर्ममें और यज्ञादिकार्योंमें प्रयुक्त होता है। स्रुवाके निर्माणमें बिल्व-काष्ठ ग्रहण करना चाहिये, परंतु उसके ग्रहणके समय रिक्ता आदि तिथियाँ न हों। उस काष्ठको ग्रहण करनेवाला व्यक्ति पहले उपवास करे और मद्य, मांस आदि सभी वस्तुओंका परित्याग कर दे, स्त्री-सम्पर्कसे भी दूर रहे। एक काष्ठसे स्रुवा और स्रुक् दोनोंका निर्माण किया जा सकता है। इनका निर्माण शास्त्रोक्त विधिके अनुसार करना चाहिये। दर्वी अर्थात् करछुलका निर्माण स्वर्ण या ताँबेसे किया जाना चाहिये। यदि काष्ठसे करछुल बनानी हो तो गंभारी वृक्ष, तेंदूका वृक्ष और दूधवाले वृक्षके काष्ठसे बारह अङ्गुलकी बनानी चाहिये। उसका नीचेका मण्डल दो अङ्गुलका होना चाहिये। यज्ञ-साधनमें यह उपयोगी है। ताँबेकी करछुल चालीस तोले, प्रायः आधा किलोकी होती है और उसका मण्डल पाँच अंगुलका तथा लंबाई आठ हाथकी होती है। यही दर्वी (करछुल) पायस-निर्माणमें उपयोगी है। आज्य-शोधनके लिये दस तोलेकी ताम्रमयी करछुल होती है। इसके अभावमें पीपलके काष्ठसे सोलह अङ्गुलके मापमें दर्वी (करछुल) बनाये। आज्य-स्थाली ताँबेकी या मिट्टीकी भी हो सकती है।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! अब मैं पूर्णाहुतिकी विधि

बतला रहा हूँ, इसके अनुष्ठानसे यज्ञ पूर्ण होता है। अतएव पूर्णाहुति विधिपूर्वक करनी चाहिये। पूर्णाहुतिके बाद यज्ञमें आवाहित किये गये देवताओंको अर्घ्य देना चाहिये।

यदि यज्ञ अपूर्ण रहे तो यजमान श्रीविहीन हो जाता है और यज्ञ पूर्ण फलप्रद नहीं होता। स्रुवामें चरु रखकर भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये। यज्ञ सम्पन्न हो जानेपर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। तदनन्तर यजमान घरमें प्रवेश कर कुल-देवताओंकी प्रार्थना करे। प्रतिष्ठा-यागमें पूर्णाहुतिके समय **'सप्त ते॰'** (यजु॰ १७।७९), **'देहि मे॰'** (यजु॰ ३।५०), **'पूर्णा दर्वि॰'** (यजु॰ ३।४९) तथा **'पुनन्तु॰'** (यजु॰ १९।३९) इन मन्त्रोंका पाठ करे तथा नित्य-नैमित्तिक यागमें **'पुनन्तु॰'** **'पूर्णा दर्वि॰'**, **'सप्त ते॰'** तथा **'देहि मे'**—का पाठ करे। विद्वानोंको इनमें अपने कुल-परम्पराका भी विचार करना चाहिये। पूर्णाहुति खड़ा होकर सम्पन्न करना चाहिये, बैठकर नहीं। ग्रहहोम तथा शतहोममें एक पूर्णाहुति देनी चाहिये। सहस्रयागमें दो, अयुत-होममें चार, सहस्र पुष्पहोममें एक, मृदु पुष्प-होममें एक, शत इक्षु-होममें दो, गर्भाधान, अन्नप्राशन, सीमन्तोन्नयन संस्कारोंमें और प्रायश्चित्तादि कर्म तथा नैमित्तिक वैश्वदेव-यागमें एक पूर्णाहुति देनेका विधान है।

मन्त्रोच्चारणमें ऋषि-छन्द, विनियोगादिका प्रयोग करना चाहिये। यदि इनका प्रयोग न किया जाय तो फल-प्राप्तिमें न्यूनता होती है। **'सप्त ते॰'** इस ब्राह्मण-मन्त्रके कौण्डिन्य ऋषि, जगती छन्द और अग्नि देवता हैं। **'देहि मे॰'** इस मन्त्रके प्रजापति ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और प्रजापति देवता हैं। **'पूर्णा दर्वि॰'** इस मन्त्रके शतक्रतु ऋषि, अनुष्टुप् छन्द एवं अग्नि देवता हैं। **'पुनन्तु॰'** इस मन्त्रके पवन ऋषि, जगती छन्द तथा देवता अग्नि हैं।

इस रीतिसे तत्-तत् मन्त्रोंके उच्चारणके समय ऋषि, छन्द एवं देवताका स्मरण करना चाहिये। जप-कालमें मन्त्रोंकी संख्या अवश्य पूरी करनी चाहिये। निर्दिष्ट संख्याके बिना किया गया जप फलदायी नहीं होता। अयुत-होम, लक्ष-होम और कोटि-होममें जिन ऋत्विक् ब्राह्मणोंका वरण किया जाय, वे शान्त एवं काम-क्रोधरहित हों। ऋत्विजोंकी संख्या अभीष्ट होमानुसार करनी चाहिये। प्रयत्नपूर्वक उनकी पूजाकर एवं दक्षिणा प्रदान कर उन्हें संतुष्ट करना चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक याग-कर्म करनेवाला व्यक्ति वसु, आदित्य और मरुद्‌गणोंके द्वारा शिवलोकमें पूजित होता है तथा अनेक कल्पोंतक वहाँ निवास कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है। जो किसी कामनाके बिना अर्थात् निष्काम-भावपूर्वक ईश्वरार्पण-बुद्धिसे लक्ष-होम करता है, वह अपने अभीष्टको प्राप्त कर परमपद प्राप्त कर लेता है। पुत्रार्थी पुत्र, धनार्थी धन, भार्यार्थी भार्या और कुमारी शुभ पतिको प्राप्त करती है। राज्यभ्रष्ट राज्य तथा लक्ष्मीकी कामनावाला व्यक्ति अतुल ऐश्वर्य प्राप्त करता है। जो व्यक्ति निष्कामभावपूर्वक कोटि-होम करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। ब्रह्माने स्वयं बतलाया है कि कोटि-होम लक्ष-होमसे सौ गुना श्रेष्ठ है। ऋत्विज् ब्राह्मणोंके अभावमें आचार्य भी होता बन सकता है। आसनोंमें कुशासन प्रशस्त माना गया है।

देवता पद्मासनपर स्थित रहते हैं और वास भी करते हैं, अतः पद्मासनस्थ होकर ही अर्चना करनी चाहिये। **'देवो भूत्वा देवान् यजेत'** इस न्यायके अनुसार पद्मासनस्थ देवताओंका अर्चन पद्मासनस्थ होकर ही करना चाहिये। यदि ऐसा न किया जाय तो सम्पूर्ण फल यक्षिणी हरण कर लेती है।

(अध्याय १९—२१)

॥ प्रथम भाग सम्पूर्ण ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

मध्यमपर्व

(द्वितीय भाग)

यज्ञादि कर्मोंके मण्डल-निर्माणका विधान तथा क्रौञ्चादि पक्षियोंके दर्शनका फल

सूतजीने कहा—ब्राह्मणगण! अब मैं आपलोगोंसे पुराणोंमें वर्णित मण्डल-निर्माणके विषयमें कहूँगा। बुद्धिमान् व्यक्ति हाथसे नापकर मण्डलका माप निश्चित करे। फिर उसे तत्तत् स्थानोंमें विधि-विहित लाल आदि रंग भरे। उनमें देवताओंके अस्त्र-विशेष बाहर, मध्य और कोणमें लिखकर प्रदर्शित करे। शम्भु, गौरी, ब्रह्मा, राम और कृष्ण आदिका अनुक्रमसे निर्देश करे। फिर सीमा-रेखाको एक अङ्गुल ऊँचा उन-उन अर्ध-भागोंसे युक्त करे। शिव और विष्णुके महायागमें शम्भुसे प्रारम्भ कर देवताओंकी परिकल्पना—ध्यान करे। प्रतिष्ठामें रामपर्यन्त, जलाशयमें कृष्णपर्यन्त और दुर्गायागमें ब्रह्मादिकी परिकल्पना करे। मण्डलका निर्माण अधम ब्राह्मण एवं शूद्र न करे। सूतजीने पुनः कहा—अब मैं क्रौञ्चका स्वरूप बतलाता हूँ। सभी शास्त्रोंमें उसका उल्लेख मिलता है जो गोपनीय है। यह क्रौञ्च (पक्षी-विशेष)-महाक्रौञ्च, मध्य-क्रौञ्च और कनिष्ठ-क्रौञ्च-भेदसे तीन प्रकारका वर्णित है। इसका दर्शन सैकड़ों जन्मोंमें किये गये पापोंको नष्ट करता है। मयूर, वृषभ, सिंह, क्रौञ्च और कपिको घरमें, खेतमें और वृक्षपर भूलसे भी देख ले तो उसको नमस्कार करे, ऐसा करनेसे दर्शकके सैकड़ों ब्रह्महत्याजनित पाप नष्ट हो जाते हैं। उनके पोषणसे कीर्ति मिलती है और दर्शनसे धन तथा आयु बढ़ती है। मयूर ब्रह्माका, वृषभ सदाशिवका, सिंह दुर्गाका, क्रौञ्च नारायणका, बाघ त्रिपुरसुन्दरी-लक्ष्मीका रूप है। स्नानकर यदि प्रतिदिन इनका दर्शन किया जाय तो ग्रहदोष मिट जाता है। इसलिये प्रयत्नपूर्वक इनका पोषण करना चाहिये। सभी यज्ञोंमें सर्वतोभद्रमण्डल सभी प्रकारकी पुष्टि प्रदान करता है। सर्वशक्तिमान् ईश्वरने साधकोंके हितके लिये उसका प्रकाश किया है। सम्पूर्ण स्मार्त-यागोंमें सर्वतोभद्रमण्डलका विशेष रूपसे निर्माण किया जाता है और तत्-तत् स्थानोंमें तत्-तत् रंगोंसे पूरित किया जाता है।

(अध्याय १-२)

यज्ञादि कर्ममें दक्षिणाका माहात्म्य, विभिन्न कर्मोंमें पारिश्रमिक व्यवस्था और कलश-स्थापनका वर्णन

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! शास्त्रविहित यज्ञादि कार्य दक्षिणारहित एवं परिमाणविहीन कभी नहीं करना चाहिये। ऐसा यज्ञ कभी सफल नहीं होता। जिस यज्ञका जो माप बतलाया गया है, उसीके अनुसार विधान करना चाहिये। मानरहित यज्ञ करनेवाले व्यक्ति नरकमें जाते हैं। आचार्य, होता, ब्रह्मा तथा जितने भी सहयोगी हों, वे सभी विधिज्ञ हों।

अस्सी वराटों (कौड़ियों) का एक पण होता है। सोलह पणोंका एक पुराण कहा जाता है, सात पुराणोंकी एक रजतमुद्रा तथा आठ रजतमुद्राओंकी एक स्वर्णमुद्रा कही जाती है, जो यज्ञ आदिमें दक्षिणा दी जाती है। बड़े उद्यानोंकी प्रतिष्ठा-यज्ञमें दो स्वर्णमुद्राएँ, कूपोत्सर्गमें आधी स्वर्णमुद्रा (निष्क), तुलसी एवं आमलकी-यागमें एक स्वर्णमुद्रा (निष्क) दक्षिणा- रूपमें विहित है। लक्ष-होममें चार स्वर्ण-मुद्रा, कोटि-होम, देव-प्रतिष्ठा तथा प्रासादके उत्सर्गमें अठारह स्वर्ण-मुद्राएँ दक्षिणारूपमें देनेका विधान है। तड़ाग तथा पुष्करिणी-यागमें आधी-आधी स्वर्णमुद्रा देनी चाहिये। महादान, दीक्षा, वृषोत्सर्ग तथा गया-श्राद्धमें अपने विभवके अनुसार दक्षिणा देनी चाहिये। महाभारतके श्रवणमें अस्सी रत्ती तथा ग्रहयाग, प्रतिष्ठाकर्म, लक्षहोम, अयुत-होम तथा कोटिहोममें सौ-सौ रत्ती सुवर्ण देना चाहिये। इसी प्रकार शास्त्रोंमें निर्दिष्ट सत्पात्र व्यक्तिको ही दान देना चाहिये, अपात्रको नहीं। यज्ञ, होममें द्रव्य, काष्ठ, घृत आदिके लिये शास्त्र-निर्दिष्ट विधिका ही अनुसरण करना चाहिये। यज्ञ, दान तथा व्रतादि कर्मोंमें दक्षिणा (तत्काल) देनी चाहिये। बिना दक्षिणाके ये कार्य नहीं करने चाहिये। ब्राह्मणोंका जब वरण किया जाय तब उन्हें रत्न, सुवर्ण, चाँदी आदि दक्षिणारूपमें देना चाहिये। वस्त्र एवं

भूमि-दान भी विहित हैं। अन्यान्य दानों एवं यज्ञोंमें दक्षिणा एवं द्रव्योंका अलग-अलग विधान है। विधानके अनुसार नियत दक्षिणा देनेमें असमर्थ होनेपर यज्ञ-कार्यकी सिद्धिके लिये देव-प्रतिमा, पुस्तक, रत्न, गाय, धान्य, तिल, रुद्राक्ष, फल एवं पुष्प आदि भी दिये जा सकते हैं। सूतजी पुनः बोले—ब्राह्मणो ! अब मैं पूर्णपात्रका स्वरूप बतलाता हूँ। उसे सुनें। काम्य-होममें एक मुष्टिके पूर्णपात्रका विधान है। आठ मुट्ठी अन्नको एक **कुञ्चिका** कहते हैं। इसी प्रमाणसे पूर्णपात्रोंका निर्माण करना चाहिये। उन पात्रोंको अलग कर द्वार-प्रदेशमें स्थापित करे।

कुण्ड और कुड्मलोंके निर्माणके पारिश्रमिक इस प्रकार हैं—चौकोर कुण्डके लिये रौप्यादि, सर्वतोभद्रकुण्डके लिये दो रौप्य, महासिंहासनके लिये पाँच रौप्य, सहस्रार तथा मेरुपृष्ठ-कुण्डके लिये एक बैल तथा चार रौप्य, महाकुण्डके निर्माणमें द्विगुणित स्वर्णपाद, वृत्तकुण्डके लिये एक रौप्य, पद्मकुण्डके लिये वृषभ, अर्धचन्द्र-कुण्डके लिये एक रौप्य, योनिकुण्डके निर्माणमें एक धेनु तथा चार माशा स्वर्ण, शैवयागमें तथा उद्यापनमें एक माशा स्वर्ण, इष्टिकाकरणमें प्रतिदिन दो पण पारिश्रमिक देना चाहिये। खण्ड-कुण्ड-(अर्ध गोलाकार-) निर्माताको दस वराट (एक वराट बराबर अस्सी कौड़ी), इससे बड़े कुण्डके निर्माणमें एक काकिणी (माशेका चौथाई भाग), सात हाथके कुण्ड-निर्माणमें एक पण, बृहत्कूपके निर्माणमें प्रतिदिन दो पण, गृह-निर्माणमें प्रतिदिन एक रत्ती सोना, कोष्ठ बनवाना हो तो आधा पण, रंगसे रँगानेमें एक पण, वृक्षोंके रोपणमें प्रतिदिन डेढ़ पण पारिश्रमिक देना चाहिये। इसी तरह पृथक् कर्मोंमें अनेक रीतिसे पारिश्रमिकका विधान किया गया है। यदि नापित सिरसे मुण्डन करे तो उसे दस काकिणी देनी चाहिये। स्त्रियोंके नख आदिके रञ्जनके लिये काकिणीके साथ पण भी देना चाहिये। धानके रोपणमें एक दिनका एक पण पारिश्रमिक होता है। तैल और क्षारसे वर्जित वस्त्रकी धुलाईके लिये एक पण पारिश्रमिक देना चाहिये। इसमें वस्त्रकी लंबाईके अनुसार कुछ वृद्धि भी की जा सकती है। मिट्टीके खोदनेमें, कुदाल चलानेमें, इक्षु-दण्डके निष्पीडन तथा सहस्र पुष्प-चयनमें दस-दस काकिणी पारिश्रमिक देना चाहिये। छोटी माला बनानेमें एक काकिणी, बड़ी माला बनानेमें दो काकिणी देना चाहिये। दीपकका आधार काँसे या पीतलका होना चाहिये। इन दोनोंके अभावमें मिट्टीका भी आधार बनाया जा सकता है[1]।

सूतजी पुनः बोले—ब्राह्मणो ! अब मैं कलशोंके विषयमें निश्चित मत प्रकट करता हूँ, जिसका उपयोग करनेसे मङ्गल होता है और यात्रामें सिद्धि प्राप्त होती है। कलशमें सात अङ्ग अथवा पाँच अङ्ग होते हैं। कलशमें केवल जल भरनेसे ही सिद्धि नहीं होती, इसमें अक्षत और पुष्पोंसे देवताओंका आवाहन कर उनका पूजन भी करना चाहिये—ऐसा न करनेसे पूजन निष्फल हो जाता है। वट, अश्वत्थ, धव-वृक्ष और बिल्व-वृक्षके पल्लवोंको कलशके ऊपर रखे[2]। कलश सोना, चाँदी, ताँबा या मृत्तिकाके बनाये जाते हैं। कलशका निर्माण अपनी सामर्थ्यके अनुसार करे। कलश अभेद्य, निश्छिद्र, नवीन, सुन्दर एवं जलसे पूरित होना चाहिये। कलशके निर्माणके विषयमें भी निश्चित प्रमाण बतलाया गया है। बिना मानके बना हुआ कलश उपयुक्त नहीं माना गया है। जहाँ देवताओंका आवाहन-पूजन किया जाय, उन्हींकी संनिधिमें कलशकी स्थापना करनी चाहिये। व्यतिक्रम करनेपर फलका अपहरण राक्षस कर लेते हैं। स्वस्तिक बनाकर उसके ऊपर निर्दिष्ट विधिसे कलश स्थापित कर वरुणादि देवताओंका आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिये।

(अध्याय ३—५)

१-भविष्यपुराणका यह अध्याय इतिहासकी दृष्टिसे बड़े महत्त्वका है। केवल कौटिल्य अर्थशास्त्र और शुक्रनीतिसे ही भारतकी प्राचीन मुद्राओं एवं पारिश्रमिकका पता चलता है। अन्य किसी पुराण या धार्मिक ग्रन्थोंमें इनका कोई संकेत नहीं किया गया है। गीताप्रेससे प्रकाशित 'मार्क्सवाद और रामराज्य' पुस्तकके पारिश्रमिकवाले प्रकरणमें इसपर पूरा विचार किया गया है तथा 'कल्याण' सन् १९६४ ई०के अङ्कमें भी इसपर विचार प्रकट किया गया है।

२-प्रचलित परम्परामें आम, पीपल, बरगद, प्लक्ष (पाकड़) तथा उदुम्बर (गूलर)—ये पञ्च-पल्लव कहे गये हैं।

चतुर्विध मास-व्यवस्था एवं मलमास-वर्णन

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! अब मैं (विभिन्न प्रकारके) मासोंका वर्णन करता हूँ। मास चार प्रकारके होते हैं— चान्द्र, सौर, सावन तथा नाक्षत्र। शुक्ल प्रतिपदासे लेकर अमावास्यातकका मास चान्द्र-मास कहा जाता है। सूर्यकी एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्तिमें प्रवेश करनेका समय सौर-मास कहलाता है। पूरे तीस दिनोंका सावन-मास होता है। अश्विनीसे लेकर रेवतीपर्यन्त नाक्षत्र-मास होता है। सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदयतक जो दिन होता है, उसे सावन-दिन कहते हैं। एक तिथिमें चन्द्रमा जितना भोग करता है, वह चान्द्र-दिवस कहलाता है। राशिके तीसवें भागको सौर-दिन कहते हैं। दिन-रातको मिलाकर अहोरात्र होता है। किसी भी तिथिको लेकर तीस दिन बाद आनेवाली तिथितकका समय सावन-मास होता है। प्रायश्चित्त, अन्नप्राशन तथा मन्त्रोपासनामें, राजाके कर-ग्रहणमें, व्यवहारमें, यज्ञमें तथा दिनकी गणना आदिमें सावन-मास ग्राह्य है। सौर-मास विवाहादि-संस्कार, यज्ञ-व्रत आदि सत्कर्म तथा स्नानादिमें ग्राह्य है। चान्द्र-मास पार्वण, अष्टकाश्राद्ध, साधारण श्राद्ध, धार्मिक कार्यों आदिके लिये उपयुक्त है। चैत्र आदि मासोंमें तिथिको लेकर जो कर्म विहित हैं, वे चान्द्र-माससे करने चाहिये। सोम या पितृगणोंके कार्य आदिमें नाक्षत्र-मास प्रशस्त माना गया है। चित्रा नक्षत्रके योगसे चैत्री पूर्णिमा होती है, उससे उपलक्षित मास चैत्र कहा जाता है। चैत्र आदि जो बारह चान्द्र-मास हैं, वे तत्-तत् नक्षत्रके योगसे तत्-तत् नामवाले होते हैं।

जिस महीनेमें पूर्णिमाका योग न हो, वह प्रजा, पशु आदिके लिये अहितकर होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों नित्य तिथिका भोग करते हैं। जिन तीस दिनोंमें संक्रमण न हो, वह मलिम्लुच, मलमास या अधिक मास (पुरुषोत्तम मास) कहलाता है, उसमें सूर्यकी कोई संक्रान्ति नहीं होती। प्रायः अढ़ाई वर्ष (बत्तीस मास) के बाद यह मास आता है। इस महीनेमें सभी तरहकी प्रेत-क्रियाएँ तथा सपिण्डन-क्रियाएँ की जा सकती हैं। परंतु यज्ञ, विवाहादि कार्य नहीं होते। इसमें तीर्थस्नान, देव-दर्शन, व्रत-उपवास आदि, सीमन्तोन्नयन, ऋतुशान्ति, पुंसवन और पुत्र आदिका मुख-दर्शन किया जा सकता है। इसी तरह शुक्रास्तमें भी ये क्रियाएँ की जा सकती हैं। राज्याभिषेक भी मलमासमें हो सकता है। व्रतारम्भ, प्रतिष्ठा, चूडाकर्म, उपनयन, मन्त्रोपासना, विवाह, नूतन-गृह-निर्माण, गृह-प्रवेश, गौ आदिका ग्रहण, आश्रमान्तरमें प्रवेश, तीर्थ-यात्रा, अभिषेक-कर्म, वृषोत्सर्ग, कन्याका द्विरागमन तथा यज्ञ-यागादि—इन सबका मलमासमें निषेध है। इसी तरह शुक्रास्त एवं उसके वार्धक्य और बाल्यत्वमें भी इनका निषेध है। गुरुके अस्त एवं सूर्यके सिंह राशिमें स्थित होनेपर अधिक मासमें जो निषिद्ध कर्म हैं, उन्हें नहीं करना चाहिये। कर्क राशिमें सूर्यके आनेपर भगवान् शयन करते हैं और उनके तुलाराशिमें आनेपर निद्राका त्याग करते हैं। (अध्याय ६)

काल-विभाग, तिथि-निर्णय एवं वर्षभरके विशेष पर्वों तथा तिथियोंके पुण्यप्रद कृत्य

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! देव-कर्म या पैतृक-कर्म कालके आधारपर ही सम्पन्न होते हैं और कर्म भी नियत समयपर किये जानेपर पूर्णरूपेण फलप्रद होते हैं। समयके बिना की गयी क्रियाओंका फल तीनों कालों तथा लोकोंमें भी प्राप्त नहीं होता। अतः मैं कालके विभागोंका वर्णन करता हूँ।

यद्यपि काल अमूर्तरूपमें एक तथा भगवान्‌का ही अन्यतम स्वरूप है तथापि उपाधियोंके भेदसे वह दीर्घ, लघु आदि अनेक रूपोंमें विभक्त है। तिथि, नक्षत्र, वार तथा रात्रिका सम्बन्ध आदि जो कुछ है, वे सभी कालके ही अङ्ग हैं और पक्ष, मास आदि रूपसे वर्षान्तरोंमें भी आते-जाते रहते हैं तथा वे ही सब कर्मोंके साधन हैं। समयके बिना कोई भी स्वतन्त्ररूपसे कर्म करनेमें समर्थ नहीं। धर्म या अधर्मका मुख्य द्वार काल ही है। तिथि आदि काल-विशेषोंमें निषिद्ध और विहित कर्म बताये गये हैं। विहित कर्मोंका पालन करनेवाला स्वर्ग प्राप्त करता है और विहितका त्यागकर निषिद्ध कर्म करनेसे अधोगति प्राप्त करता है। पूर्वाह्णव्यापिनी तिथिमें वैदिक क्रियाएँ करनी चाहिये। एकोद्दिष्ट श्राद्ध मध्याह्नव्यापिनी तिथिमें और पार्वण-श्राद्ध अपराह्ण-व्यापिनी तिथिमें करना चाहिये। वृद्धिश्राद्ध आदि

प्रातःकालमें करने चाहिये। ब्रह्माजीने देवताओंके लिये तिथियोंके साथ पूर्वाह्णकाल दिया है और पितरोंको अपराह्ण। पूर्वाह्णमें देवताओंका अर्चन करना चाहिये।

तिथियाँ तीन प्रकारकी होती हैं—खर्वा, दर्पा और हिंस्रा। लक्षित होनेवाली खर्वा, तिथिवृद्धि दर्पा तथा तिथिहानि हिंस्रा कही जाती है। इनमें खर्वा और दर्पा आगेकी लेनी चाहिये और हिंस्रा (क्षय-तिथि) पूर्वमें लेनी चाहिये। शुक्ल पक्षमें परा लेनी चाहिये और कृष्ण पक्षमें पूर्वा। भगवान् सूर्य जिस तिथिको प्राप्त कर उदित होते हैं, वह तिथि स्नान-दान आदि कृत्योंमें उचित है। यदि अस्त-समयमें भगवान् सूर्य दस घटीपर्यन्त रहते हैं तो वह तिथि रात-दिन समझनी चाहिये। शुक्ल पक्ष अथवा कृष्ण पक्षमें खर्वा या दर्पा तिथिके अस्तपर्यन्त सूर्य रहे तो पितृकार्यमें वही तिथि ग्राह्य है। दो दिनमें मध्याह्नकालव्यापिनी तिथि होनेपर अस्तपर्यन्त रहनेवाली प्रथम तिथि श्राद्ध आदिमें विहित है। द्वितीया तृतीयासे तथा चतुर्थी पञ्चमीसे युक्त हों तो ये तिथियाँ पुण्यप्रद मानी गयी हैं और उसके विपरीत होनेपर पुण्यका ह्रास करती हैं। षष्ठी पञ्चमीसे एवं अष्टमी सप्तमीसे विद्ध हो तथा दशमी से एकादशी, त्रयोदशीसे चतुर्दशी और चतुर्दशीसे अमावास्या विद्ध हो तो उनमें उपवास नहीं करना चाहिये, अन्यथा पुत्र, कलत्र और धनका ह्रास होता है। पुत्र-भार्यादिसे रहित व्यक्ति-का यज्ञमें अधिकार नहीं है। जिस तिथिको लेकर सूर्य उदित होते हैं, वह तिथि स्नान, अध्ययन और दानके लिये श्रेष्ठ समझनी चाहिये। कृष्ण पक्षमें जिस तिथिमें सूर्य अस्त होते हैं, वह स्नान, दान आदि कर्मोंमें पितरोंके लिये उत्तम मानी जाती है।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं ब्रह्माजीद्वारा बतलायी गयी श्रेष्ठ तिथियोंका वर्णन करता हूँ। आश्विन, कार्तिक, माघ और चैत्र इन महीनोंमें स्नान, दान और भगवान् शिव तथा विष्णुका पूजन दस गुना फलप्रद होता है। प्रतिपदा तिथिमें अग्निदेवका यजन और हवन करनेसे सभी तरहके धान्य और ईप्सित धन प्राप्त होते हैं। यदि शुक्ल पक्षमें द्वितीया तिथि बृहस्पतिवारसे युक्त हो तो उस तिथिमें विधिपूर्वक भगवान् अग्निदेवका पूजन और नक्तव्रत करनेसे इच्छित ऐश्वर्य प्राप्त होता है। मिथुन (आषाढ़) और कर्क (श्रावण) राशिके सूर्यमें जो द्वितीया आये, उसमें उपवास करके भगवान् विष्णुका पूजन करनेवाली स्त्री कभी विधवा नहीं होती। अशून्य-शयन द्वितीया (श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीया तिथि)को गन्ध, पुष्प, वस्त्र तथा विविध नैवेद्योंसे भगवान् लक्ष्मीनारायणकी पूजा करनी चाहिये। (इस व्रतसे पति-पत्नीका परस्पर वियोग नहीं होता।) वैशाख शुक्ल पक्षकी तृतीयामें गङ्गाजीमें स्नान करनेवाला सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वैशाख मासकी तृतीया स्वाती नक्षत्र और माघकी तृतीया रोहिणीयुक्त हो तथा आश्विन-तृतीया वृषराशिसे युक्त हो तो उसमें जो भी दान दिया जाता है, वह अक्षय होता है। विशेषरूपसे इनमें हविष्यान्न एवं मोदक देनेसे अधिक लाभ होता है तथा गुड़ और कर्पूरसे युक्त जलदान करनेवालेकी विद्वान् पुरुष अधिक प्रशंसा करते हैं, वह मनुष्य ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। यदि बुधवार और श्रवणसे युक्त तृतीया हो तो उसमें स्नान और उपवास करनेसे अनन्त फल प्राप्त होता है। भरणी नक्षत्रयुक्त चतुर्थीमें यमदेवताकी उपासना करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति मिलती है। भाद्रपदकी शुक्ला चतुर्थी शिवलोकमें पूजित है। कार्तिक और माघ मासके ग्रहणोंमें स्नान, जप, तप, दान, उपवास और श्राद्ध करनेसे अनन्त फल मिलता है। चतुर्थीमें सम्पूर्ण विघ्नोंके नाश तथा इच्छा-पूर्तिके लिये भगवान् गणेशकी पूजा मोदक आदिसे भक्तिपूर्वक करनी चाहिये।

श्रावण मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीमें द्वार-देशके दोनों ओर गोमयसे नागोंकी रचनाकर दूध, दही, सिंदूर, चन्दन, गङ्गाजल एवं सुगन्धित द्रव्योंसे नागोंका पूजन करना चाहिये। नागोंका पूजन करनेवालोंके कुलमें निर्भयता रहती है एवं प्राणोंकी रक्षा भी होती है। श्रावण कृष्ण पञ्चमीको घरके आँगनमें नीमके पत्तोंसे मनसा देवीकी पूजा करनेसे कभी सर्पभय नहीं होता। भाद्रपदकी षष्ठीमें स्नान, दान आदि करनेसे अनन्त पुण्य होता है। विप्रगणो! माघ और कार्तिककी षष्ठीमें व्रत करनेसे इहलोक और परलोकमें असीम कीर्ति प्राप्त होती है। शुक्ल पक्षकी सप्तमीमें यदि संक्रान्ति पड़े तो उसका नाम महाजया या सूर्यप्रिया होती है। भाद्रपदकी सप्तमी अपराजिता है। शुक्ल या कृष्ण पक्षकी षष्ठी या सप्तमी रविवारसे युक्त हो तो वह ललिता नामकी तिथि पुत्र-पौत्रोंकी वृद्धि करनेवाली और महान् पुण्यदायिनी है।

आश्विन एवं कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीमें

अष्टादशभुजाका पूजन करना चाहिये। आषाढ़ और श्रावण मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीमें चण्डिकादेवीका प्रातःकाल स्नान करके अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजन कर रात्रिमें अभिषेक करना चाहिये। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीमें अशोक-पुष्पसे मृण्मयी भगवती देवीका अर्चन करनेसे सम्पूर्ण शोक निवृत्त हो जाते हैं। श्रावण मासमें अथवा सिंह-संक्रान्तिमें रोहिणीयुक्त अष्टमी हो तो उसकी अत्यन्त प्रशंसा की गयी है। प्रतिमासकी नवमीमें देवीकी पूजा करनी चाहिये। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी दशमीको शुद्ध आहारपूर्वक रहनेवाले ब्रह्मलोकमें जाते हैं। ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी दशमी गङ्गादशहरा कहलाती है। आश्विनकी दशमी विजया और कार्तिककी दशमी महापुण्या कहलाती है।

एकादशी-व्रत करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इस व्रतमें दशमीको जितेन्द्रिय होकर एक ही बार भोजन करना चाहिये। दूसरे दिन एकादशीमें उपवास कर द्वादशीमें पारणा करनी चाहिये। द्वादशी तिथि द्वादश पापोंका हरण करती है। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीमें अनेक पुष्पादि सामग्रियोंसे कामदेवकी पूजा करे। इसे अनङ्ग-त्रयोदशी कहा जाता है। चैत्र मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमी शनिवार या शतभिषा नक्षत्रसे युक्त हो तो गङ्गामें स्नान करनेसे सैकड़ों सूर्यग्रहणका फल प्राप्त होता है। इसी मासके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी यदि शनिवार या शतभिषासे युक्त हो तो वह महावारुणी-पर्व कहलाता है। इसमें किया गया स्नान, दान एवं श्राद्ध अक्षय होता है। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी दम्भभंजिनी कही जाती है। इस दिन धतूरेकी जड़में कामदेवका अर्चन करना चाहिये, इससे उत्तम स्थान प्राप्त होता है। अनन्त-चतुर्दशीका व्रत सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। इसे भक्तिपूर्वक करनेसे मनुष्य अनन्त सुख प्राप्त करता है। प्रेत-चतुर्दशी (यम-चतुर्दशी) को तपस्वी ब्राह्मणोंको भोजन और दान देनेसे मनुष्य यमलोकमें नहीं जाता। फाल्गुन मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी शिवरात्रिके नामसे प्रसिद्ध है और वह सम्पूर्ण अभिलाषाओंकी पूर्ति करनेवाली है। इस दिन चारों पहरोंमें स्नान करके भक्तिपूर्वक शिवजीकी आराधना करनी चाहिये। चैत्र मासकी पूर्णिमा चित्रा नक्षत्र तथा गुरुवारसे युक्त हो तो वह महाचैत्री कही जाती है। वह अनन्त पुण्य प्रदान करनेवाली है। इसी प्रकार विशाखादि नक्षत्रसे युक्त वैशाखी, महाज्येष्ठी आदि बारह पूर्णिमाएँ होती हैं। इनमें किये गये स्नान, दान, जप, नियम आदि सत्कर्म अक्षय होते हैं और व्रतीके पितर संतृप्त होकर अक्षय विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं। हरिद्वारमें महावैशाखीका पर्व विशेष पुण्य प्रदान करता है। इसी प्रकार शालग्राम-क्षेत्रमें महाचैत्री, पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें महाज्येष्ठी, शुक्लल-क्षेत्रमें महाषाढ़ी, केदारमें महाश्रावणी, बदरिकाक्षेत्रमें महाभाद्री, पुष्कर तथा कान्यकुब्जमें महाकार्तिकी, अयोध्यामें महामार्गशीर्षी तथा महापौषी, प्रयागमें महामाघी तथा नैमिषारण्यमें महाफाल्गुनी पूर्णिमा विशेष फल देनेवाली है। इन पर्वोंमें जो भी शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं, वे अक्षय हो जाते हैं। आश्विनकी पूर्णिमा कौमुदी कही गयी है, इसमें चन्द्रोदय-कालमें विधिपूर्वक लक्ष्मीकी पूजा करनी चाहिये। प्रत्येक अमावास्याको तर्पण और श्राद्धकर्म अवश्य करना चाहिये। कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी अमावास्यामें प्रदोषके समय लक्ष्मीका सविधि पूजन कर उनकी प्रीतिके लिये दीपोंको प्रज्वलित करना चाहिये एवं नदीतीर, पर्वत, गोष्ठ, श्मशान, वृक्षमूल, चौराहा, अपने घरमें और चत्वरमें दीपोंको सजाना चाहिये। (अध्याय ७-८)

गोत्र-प्रवर आदिके ज्ञानकी आवश्यकता

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! गोत्र-प्रवरकी परम्पराको जानना अत्यन्त आवश्यक होता है, इसलिये अपने-अपने गोत्र या प्रवरको पिता, आचार्य तथा शास्त्रद्वारा जानना चाहिये। गोत्र-प्रवरको जाने बिना किया गया कर्म विपरीत फलदायी होता है। कश्यप, वसिष्ठ, विश्वामित्र, आङ्गिरस, च्यवन, मौकुल्य, वत्स, कात्यायन, अगस्त्य आदि अनेक गोत्रप्रवर्तक ऋषि हैं। गोत्रोंमें एक, दो, तीन, पाँच आदि प्रवर होते हैं। समान गोत्रमें विवाहादि सम्बन्धोंका निषेध है। अपने गोत्र-प्रवरादिका ज्ञान शास्त्रान्तरोंसे कर लेना चाहिये।[1]

वास्तवमें देखा जाय तो सारा जगत् महामुनि कश्यपसे

[1] १-गोत्र-प्रवर-निर्णयपर 'गोत्र-प्रवर-निबन्ध-कदम्ब' आदि कई स्वतन्त्र निबन्ध ग्रन्थ हैं। मत्स्यपुराणके अध्याय १९५-२०५ तकमें विस्तारसे यह विषय आया है तथा स्कन्दपुराणके माहेश्वर-खण्ड एवं ब्रह्मखण्डमें भी इसपर विचार किया गया है।

उत्पन्न हुआ है। अतः जिन्हें अपने गोत्र और प्रवरका ज्ञान नहीं है, उन्हें अपने पिताजीसे ज्ञात कर लेना चाहिये। यदि उन्हें मालूम न हो तो स्वयंको काश्यप[1]गोत्रीय मानकर उनका प्रवर लगाकर शास्त्रानुसार कर्म करना चाहिये। (अध्याय ९)

वास्तु-मण्डलके निर्माण एवं वास्तु-पूजनकी संक्षिप्त विधि[2]

सूतजी कहते हैं— ब्राह्मणो ! अब मैं वास्तु-मण्डलका संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ। पहले भूमिपर अङ्कुरोंका रोपण करके भूमिकी परीक्षा कर ले। तदनन्तर उत्तम भूमिके मध्यमें वास्तु-मण्डलका निर्माण करे। वास्तु-मण्डलके देवता पैंतालीस हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) शिखी, (२) पर्जन्य, (३) जयन्त, (४) कुलिशायुध, (५) सूर्य, (६) सत्य, (७) वृष, (८) आकाश, (९) वायु, (१०) पूषा, (११) वितथ, (१२) गुहा, (१३) यम, (१४) गन्धर्व, (१५) मृगराज, (१६) मृग, (१७) पितृगण, (१८) दौवारिक, (१९) सुग्रीव, (२०) पुष्पदन्त, (२१) वरुण, (२२) असुर, (२३) पशु, (२४) पाश, (२५) रोग, (२६) अहि, (२७) मोक्ष, (२८) भल्लाट, (२९) सोम, (३०) सर्प, (३१) अदिति, (३२) दिति, (३३) अप्, (३४) सावित्र, (३५) जय, (३६) रुद्र, (३७) अर्यमा, (३८) सविता, (३९) विवस्वान्, (४०) विबुधाधिप, (४१) मित्र, (४२) राजयक्ष्मा, (४३) पृथ्वीधर, (४४) आपवत्स तथा (४५) ब्रह्मा।

इन पैंतालीस देवताओंके साथ ही वास्तु-मण्डलके बाहर ईशानकोणमें चरकी, अग्निकोणमें विदारी, नैर्ऋत्यकोणमें पूतना तथा वायव्यकोणमें पापराक्षसीकी स्थापना करनी चाहिये। मण्डलके पूर्व दिशामें स्कन्द, दक्षिणमें अर्यमा, पश्चिममें जृम्भक तथा उत्तरमें पिलिपिच्छकी स्थापना करनी चाहिये। इस प्रकार वास्तु-मण्डलमें तिरपन देवी-देवताओंकी स्थापना होती है। इन सभीका अलग-अलग मन्त्रोंसे पूजन करना चाहिये। मण्डलके बाहर ही पूर्वादि दस दिशाओंमें दस दिक्पाल देवताओं—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा तथा अनन्तकी भी यथास्थान पूजा कर उन्हें बलि (नैवेद्य) निवेदित करनी चाहिये। वास्तु-मण्डलकी रेखाएँ श्वेत वर्णसे तथा मध्यमें कमल लाल वर्णसे अनुरञ्जित करना चाहिये। शिखी आदि पैंतालीस देवताओंके कोष्ठकोंको रक्तादि रंगोंसे अनुरञ्जित करना चाहिये। गृह, देवमन्दिर, महाकूप आदिके निर्माणमें तथा देव-प्रतिष्ठा आदिमें वास्तु-मण्डलका निर्माणकर वास्तुमण्डलस्थ देवताओंका आवाहनकर उनका पूजन आदि करना चाहिये। पवित्र स्थानपर लिपी-पुती डेढ़

१-सबके लिये एकमात्र परमात्मा ही परमकल्याणार्थ ध्येय-ज्ञेय है और कश्यपनन्दन सूर्यके रूपमें वे प्रत्यक्षरूपसे संसारका पालन, संचालन—उष्मा तथा प्रकाशके रूपमें, फिर वायु—प्राणके रूपमें समस्त प्राणियोंके जीवन बने हैं। इसलिये सभी वैष्णव और संन्यासी अपनेको अच्युत-गोत्रीय ही मानते हैं। प्राचीन परम्पराके अनुसार वेदाध्ययनमें वैदिक शाखा, सूत्र, ऋषि, गोत्र और प्रवरका ज्ञान आवश्यक था। यह विषय आश्वलायन गृह्यसूत्रमें भी निर्दिष्ट है।

२-जिस भूमिपर मनुष्यादि प्राणी निवास करते हैं, उसे वास्तु कहा जाता है। इसके गृह, देवप्रासाद, ग्राम, नगर, पुर, दुर्ग आदि अनेक भेद हैं। इसपर वास्तुराजवल्लभ, समराङ्गणसूत्रधार, बृहत्संहिता, शिल्परत्न, गृहरत्नभूषण, हयशीर्षपाञ्चरात्र तथा कपिल-पाञ्चरात्र आदि ग्रन्थोंमें पूर्ण विचार किया गया है। पुराणोंमें मत्स्य, अग्नि तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें भी यह महत्वपूर्ण विषय आया है। 'कल्याण' के देवताङ्कमें भी वास्तु-चक्रादिके विषयमें सामग्री संकलित की गयी है। वास्तुके आविर्भावके विषयमें मत्स्यपुराणमें आया है कि अन्धकासुरके वधके समय भगवान् शंकरके ललाटसे जो स्वेदबिन्दु गिरे उनसे एक भयंकर आकृतिवाला पुरुष प्रकट हुआ। जब वह त्रिलोकीका भक्षण करनेके लिये उद्यत हुआ, तब शंकर आदि देवताओंने उसे पृथ्वीपर सुलाकर वास्तुदेवता (वास्तुपुरुष) के रूपमें प्रतिष्ठित किया और उसके शरीरमें सभी देवताओंने वास किया। इसीलिये वह वास्तुदेवता कहलाया। देवताओंने उसे पूजित होनेका वर भी प्रदान किया। वास्तुदेवताकी पूजाके लिये वास्तुप्रतिमा तथा वास्तुचक्र बनाया जाता है। वास्तुचक्र प्रायः ४९ से लेकर एक सहस्र पदात्मक होता है। भिन्न-भिन्न अवसरोंपर भिन्न-भिन्न वास्तुचक्रोंका निर्माणकर उनमें देवताओंका आवाहन, स्थापन एवं पूजन किया जाता है। चौसठ पदात्मक तथा इक्यासी पदात्मक वास्तुचक्रके पूजनकी परम्परा विशेषरूपसे प्रचलित है। इन सभी वास्तुचक्रके भेदोंमें प्रायः इन्द्रादि दस दिक्पालोंके साथ शिखी आदि पैंतालीस देवताओंका पूजन किया जाता है तथा उन्हें पायसात्र बलि प्रदान की जाती है। वास्तुकलशमें वास्तुदेवता (वास्तोष्पति) की पूजाकर उनसे सर्वविध शान्ति एवं कल्याणकी प्रार्थना की जाती है।

हाथके प्रमाणकी भूमिपर पूर्वसे पश्चिम तथा उत्तरसे दक्षिण दस-दस रेखाएँ खींचे। इससे इक्यासी कोष्ठकके वास्तुपद-चक्रका निर्माण होगा। इसी प्रकार ९-९ रेखाएँ खींचनेसे चौसठ पदका वास्तुचक्र बनता है।

वास्तुमण्डलमें जिन देवताओंका उल्लेख किया गया है, उनका ध्यान और पूजन अलग-अलग मन्त्रसे किया जाता है। उल्लिखित देवताओंकी तुष्टिके लिये विधिके अनुसार स्थापना तथा पूजा करके हवन-कार्य सम्पन्न करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणोंको सुवर्ण आदि दक्षिणा देकर संतुष्ट करना चाहिये।

वास्तु-यागादिमें एक विस्तृत मण्डलके अन्तर्गत योनि तथा मेखलाओंसे समन्वित एक कुण्ड तथा वास्तु-वेदीका विधिके अनुसार निर्माण करना चाहिये। मण्डलके ईशानकोणमें कलश स्थापित कर गणेशजीका एवं कुण्डके मध्यमें विष्णु, दिक्पाल और ब्रह्मा आदिका तत्तद् मन्त्रोंसे पूजन करना चाहिये। प्राणायाम करके भूतशुद्धि करे। तदनन्तर वास्तुपुरुषका ध्यान इस प्रकार करे—वास्तुदेवता श्वेत वर्णके चार भुजावाले शान्तस्वरूप और कुण्डलोंसे अलंकृत हैं। हाथमें पुस्तक, अक्षमाला, वरद एवं अभय-मुद्रा धारण किये हुए हैं। पितरों और वैश्वानरसे युक्त हैं तथा कुटिल भ्रूसे सुशोभित हैं। उनका मुख भयंकर है। हाथ आजानुपर्यन्त लंबे हैं।[1] ऐसे वास्तुपुरुषका विधिके अनुसार पूजनकर उन्हें स्नान कराये। '**वास्तोष्पते॰**' यह वास्तुदेवताके पूजनका मुख्य मन्त्र है[2]। पूजाकी जितनी सामग्री है, उसे प्रोक्षणद्वारा शुद्ध कर ले। आसनकी शुद्धि कर गणेश, सूर्य, इन्द्र और आधारशक्तिरूप पृथ्वी तथा ब्रह्माका पूजन करे। तदनन्तर हाथमें श्वेत चन्दनयुक्त श्वेत पुष्प लेकर विष्णुरूप वास्तुपुरुषका ध्यान कर उन्हें आसन, पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क आदि प्रदान करे और विविध उपचारोंसे उनकी पूजा करे।

विद्वान् ब्राह्मणको चाहिये कि कुण्ड और वास्तुवेदीके मध्यमें कलशकी स्थापना करे। कलशमें पर्वतके शिखर, गजशाला, वल्मीक, नदीसंगम, राजद्वार, चौराहे तथा कुशके मूलकी—यह सात प्रकारकी मिट्टी छोड़े। साथ ही उसमें इन्द्रवल्ली (पारिजात), विष्णुक्रान्ता (कृष्ण शङ्खपुष्पी), अमृती (आमलकी), त्रपुष (खीरा), मालती, चंपक तथा ऊर्वारुक (ककड़ी)—इन वनस्पतियोंको छोड़े। पारिभद्र (नीम)के पत्रोंसे कलशके कण्ठका परिवेष्टन करे और कलशके मुखमें फणाकाररूपमें पञ्चपल्लवोंकी स्थापना करे। उसके ऊपर श्रीफल, बीजपूर, नारिकेल, दाड़िम, धात्री तथा जम्बूफल रखे। कलशमें सुवर्णादि पञ्चरत्न छोड़े। गन्ध-पुष्पादि पञ्चोपचारोंसे कलशका पूजन करे। कलशमें वरुणका आवाहन करे। कलशका स्पर्श करते हुए उसमें समस्त समुद्रों, तीर्थों, गङ्गादि नदियों तथा पवित्र जलाशयों आदिके पवित्र जलकी भावना कर, उनका आवाहन करे। कलश-स्थापनके अनन्तर तिल, चावल, मध्वाज्य तथा दही, दूध आदिसे यथाविधि वास्तु-होम करे। वास्तु-हवनके समय वास्तु-देवताके मन्त्रका जप करे। अनन्तर वास्तु-मण्डलके समस्त देवताओंको पायसान्न, कृशरान्न आदि पृथक्-पृथक् क्रमशः बलि निवेदित करे। सभी देवताओंको उन्हींके अनुरूप पताका भी प्रदान करे। अपनी सामर्थ्यके अनुसार मन्त्र-जप और वास्तुपुरुषस्तवका पाठ करे[3]। भगवान् शंकरने भगवान्

१-श्वेतं चतुर्भुजं शान्तं कुण्डलाद्यैरलंकृतम्। पुस्तकं चाक्षमालां च वराभयकरं परम्॥
पितृवैश्वानरोपेतं कुटिलभ्रूपशोभितम्। करालवदनं चैव आजानुकरलम्बितम्॥ (मध्यमपर्व २। ११। ११-१२)

२-पूरा मन्त्र इस प्रकार है—

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवानः। यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥
(ऋ॰ ७। ५४। १)

हे वास्तुदेव! हम आपके सच्चे उपासक हैं, इसपर आप पूर्ण विश्वास करें और हमारी स्तुति-प्रार्थनाओंको सुनकर हम सभी उपासकोंको आधि-व्याधिमुक्त कर दें और जो हम अपने धन-ऐश्वर्यकी कामना करते हैं, आप उसे भी परिपूर्ण कर दें, साथ ही इस वास्तुक्षेत्र या गृहमें निवास करनेवाले हमारे स्त्री-पुत्रादि-परिवार-परिजनोंके लिये कल्याणकारक हों तथा हमारे अधीनस्थ गौ, अश्वादि सभी चतुष्पद प्राणियोंका भी कल्याण करें।

३-भगवान् शंकरके द्वारा की गयी 'महास्तव' नामकी विष्णु-स्तुति इस प्रकार है—

विष्णुर्जिष्णुर्विभुर्यज्ञो यज्ञियो यज्ञपालकः। नारायणो नरो हंसो विष्वक्सेनो हुताशनः॥
यज्ञेशः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरार्चितः। आदिदेवो जगत्कर्ता मण्डलेशो महीधरः॥

विष्णुस्वरूप वास्तोष्पतिकी इस स्तुतिको कहा है। इसका जो प्रयत्नपूर्वक निरन्तर पाठ करता है, उसे अमरता प्राप्त हो जाती है और जो हत्कमलके मध्य निवास करनेवाले भगवान् अच्युत-विष्णुका ध्यान करता है, वह वैष्णवी सिद्धि प्राप्त करता है। यज्ञकर्मकी पूर्णतामें आचार्यको पयस्विनी गौ तथा सुवर्ण दक्षिणामें दे, अन्य ब्राह्मणोंको भी सुवर्ण प्रदान करे। प्राजापत्य और स्विष्टकृत् हवन करे। आचार्य और ऋत्विज् मिलकर यजमानपर कलशके जलसे अभिषेक करें। पूर्णाहुति देकर भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर यजमान घरमें प्रवेश करे, अनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराये। दीन, अन्ध और कृपणोंका अपनी शक्तिके अनुसार सम्मान करे। फिर अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ स्वयं भोजन करे। उस दिन भोजनमें दूध, कसैले पदार्थ, भुने हुए शाक तथा करेला आदि निषिद्ध पदार्थोंका उपयोग न करे। शाल्यन्न, मूली, कटहल, आम, मधु, घी, गुड़, सेंधा नमकके साथ मातुलुङ्ग (बिजौरा नींबू), बदरीफल, धात्रीफल एवं तिल और मरिच आदिसे बने पदार्थ भोजनमें प्रशस्त कहे गये हैं।

(अध्याय १०—१३)

कुशकण्डिका-विधान तथा अग्नि-जिह्वाओंके नाम

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं याग-विशेषोंमें स्वगृह्याग्नि-विधि कह रहा हूँ। अपनी वेदादि शाखाके अनुकूल ही गृह्याग्नि-विधि करनी चाहिये। दूसरेकी शाखाके विधानसे याग-विशेषोंका अनुष्ठान करनेपर भयकी प्राप्ति होती है और कीर्तिका नाश होता है। पुत्र, कन्या और आगे उत्पन्न होनेवाले पुत्रादि गृह्यनामसे कहे जाते हैं। यजमानके जितने दायाद होते हैं, वे सब गृह्यनामसे कहे जाते हैं। उनके संस्कार, याग और शान्तिकर्म-क्रियाओंमें अपने गृह्याग्निसे ही अनुष्ठान करना चाहिये। आचार्यद्वारा विहित कल्पको दक्षस्मृतिमें कहा गया है। आचार्य इन कर्मोंमें तीन कुशाओंका परिग्रहण करता है। जिस मन्त्रसे कुशा ग्रहण करता है, उसके ऋषि दक्ष, जगती छन्द और विष्णु देवता हैं। पृथ्वीके शोधनमें '**भूरसि॰**' (यजु॰ १३। १८) इस मन्त्रका विनियोग करे। इस मन्त्रके ऋषि सुवर्ण हैं, गायत्री और जगती छन्द तथा सूर्य देवता हैं। अनन्तर उन तीन कुशाओंको तर्जनी तथा अँगूठेसे पकड़कर ईशानकोणसे लेकर दक्षिण होते हुए ईशानकोणतक वलयाकृतिमें घुमाये तथा उनसे भूमिका मार्जन करे। यही **परिसमूहन**-क्रिया है। '**मा नस्तोके॰**' (यजु॰ १६। १६) इस मन्त्रके द्वारा गोमयसे भूमिका **उपलेपन** करे। तदनन्तर (खैरकी लकड़ीसे बने स्फ्यके द्वारा) **रेखाकरण** करे। पूरबसे पश्चिमकी ओर तीन रेखाएँ खींचे। पहली रेखा दक्षिणकी ओर अनन्तर उत्तरकी ओर बढ़े। इसके विपरीत करनेपर अमङ्गल होता है। इसके बाद अङ्गुष्ठ तथा अनामिकासे उन तीनों रेखाओंसे मिट्टी निकाले, इसे **उद्धरण** कहा जाता है। इस समय '**मित्रावरुणाभ्यां॰**' (यजु॰ ७। २३) इत्यादि मन्त्रोंका स्मरण करे। अनन्तर कुशपुष्पोदक अथवा पञ्चगव्य या पञ्चरत्नोदक अथवा पञ्चपल्लवोंके जलसे **अभ्युक्षण** (अभिसिञ्चन) करे। अनन्तर कर्मसाधनभूत लौकिक स्मार्त अथवा श्रौताग्निका आनयन करे और अपने सामने स्थापित करे। इस क्रियामें '**मे गृह्णामि॰**' इस मन्त्रका पाठ करे। '**क्रव्यादमग्निं॰**' (यजु॰ ३५। १९) इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए लायी गयी अग्निमेंसे कुछ आग दक्षिण दिशाकी ओर फेंक दे, यह '**क्रव्यादाग्नि**' कही गयी है। क्रव्यादाग्निका ग्रहण न करे। '**संसरक्ष॰**' इस मन्त्रसे उस अग्निका आवाहन करे। तदनन्तर

पद्मनाभो हृषीकेशो दाता दामोदरो हरिः। त्रिविक्रमस्त्रिलोकेशो ब्रह्मणः प्रीतिवर्धनः॥
भक्तप्रियोऽच्युतः सत्यः सत्यवाक्यो ध्रुवः शुचिः। संन्यासी शास्त्रतत्त्वज्ञश्चिपञ्चाशद्गुणात्मकः॥
विद्वारी विनयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतप्रभः। यज्ञस्त्वं हि वषट्कारस्त्वमोंकारस्त्वमग्रयः॥
त्वं स्वधा त्वं हि स्वाहा त्वं सुधा च पुरुषोत्तमः।
नमो देवादिदेवाय विष्णवे शाश्वताय च। अनन्तायाप्रमेयाय नमस्ते गरुडध्वज॥
ब्रह्मस्तवमिमं प्रोक्तं महादेवेन भाषितम्। प्रयत्नाद् यः पठेन्नित्यममृतत्वं स गच्छति॥
ध्यायन्ति ये नित्यमनन्तमच्युतं हृत्पद्ममध्ये स्वयमाव्यवस्थितम्।
उपासकानां प्रभुमेकमीश्वरं ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम्॥ (मध्यमपर्व २। १२। १५६—१६३)

'वैश्वानर॰' (यजु॰ २६।७) इस मन्त्रसे कुण्ड आदिमें अग्नि-स्थापन करे। **'चत्वारि॰'** इस मन्त्रसे अग्निकी प्रदक्षिणा करे तथा अग्निदेवको नमस्कार करे। अग्निके दक्षिणमें वरण किये गये ब्रह्माको कुशके आसनपर **'ब्रह्मन् इह उपविश्यताम्'** कहकर बैठाये। उस समय **'ब्रह्म जज्ञानं॰'** (यजु॰ १३।३) तथा **'दोग्ध्री धेनुः॰'** इन दो मन्त्रोंका पाठ करे। अग्निके उत्तरभागमें प्रणीता-पात्रको स्थापित करे। **'इमं मे वरुण॰'** (यजु॰ २१।१) इस मन्त्रसे प्रणीता-पात्रको जलसे भर दे। इसके अनन्तर कुण्डके चारों ओर कुश-परिस्तरण करे और काष्ठ (समिधा), व्रीहि, अन्न, तिल, अपूप, भृङ्गराज, फल, दही, दूध, पनस, नारिकेल, मोदक आदि यज्ञ-सम्बन्धी प्रयोज्य पदार्थोंको यथास्थान स्थापित करे। विकंकतवृक्षकी लकड़ीसे बनी स्रुवा तथा शमी, शमीपत्र, चरुस्थाली आदि भी स्थापित करे। प्रणीता-पात्रका स्पर्श होम-कालमें नहीं करना चाहिये। स्नान-कुम्भको यज्ञपर्यन्त स्थिर रखना चाहिये। प्रादेशमात्रके दो पवित्रक बनाकर प्रोक्षणी-पात्रमें स्थापित करे। प्रणीता-पात्रके जलसे प्रोक्षणी-पात्रमें तीन बार जल डाले। प्रोक्षणी-पात्रको बायें हाथमें रखकर मध्यमा तथा अङ्गुष्ठसे पवित्रक ग्रहण कर **'पवित्रं ते॰'** (ऋ॰ ९।८३।१) इस मन्त्रसे तीन बार जल छिड़के, स्थापित पदार्थोंका प्रोक्षण करे और प्रोक्षणी-पात्रको प्रणीता-पात्रके दक्षिण-भागमें यथास्थान रख दे। प्रादेशमात्रके अन्तरमें आज्यस्थाली रखे। घीको अग्निमें तपाये, घीमेंसे अपद्रव्योंका निरसन करे। इसके बाद पर्यग्निकरण करे। एक जलते हुए आगके अंगारेको लेकर आज्यस्थाली और चरुस्थालीके ऊपर भ्रमण कराये। इस समय **'कुलायिनी॰'** (यजु॰ १४।२) इस मन्त्रका पाठ करे। अनन्तर स्रुवाको दायें हाथमें ग्रहण कर अग्निपर तपाये। सम्मार्जन-कुशाओंसे स्रुवाको मूलसे अग्रभागकी ओर सम्मार्जित करे। इसके बाद प्रणीताके जलसे तीन बार प्रोक्षण करे। पुनः स्रुवाको आगपर तपाये और प्रोक्षणीके उत्तरकी ओर रख दे। आज्यपात्रको सामने रख ले। पवित्रीसे घीका तीन बार उत्प्लवन कर ले। पवित्रीसे ईशानसे आरम्भकर दक्षिणावर्त होते हुए ईशानपर्यन्त पर्युक्षण करे। अनन्तर अग्निदेवका इस प्रकार ध्यान करे—'अग्नि देवताका रक्त वर्ण है, उनके तीन मुख हैं, वे अपने बायें हाथमें कमण्डलु तथा दाहिने हाथमें स्रुवा ग्रहण किये हुए हैं।' ध्यानके अनन्तर स्रुवा लेकर हवन करे।

इस प्रकार स्वगृह्योक्त विधिके द्वारा ब्रह्मा तथा ऋत्विजोंका वरण करना चाहिये। कुशकण्डिका-कर्म करके अग्निका पूजन करे। आघार, आज्यभाग, महाव्याहृति, प्रायश्चित्त, प्राजापत्य तथा स्विष्टकृत् हवन करे। प्रजापति और इन्द्रके निमित्त दी गयी आहुतियाँ आघारसंज्ञक हैं। अग्नि और सोमके निमित्त दी जानेवाली आहुतियाँ आज्यभाग कहलाती हैं। **'भूर्भुवः स्वः'**— ये तीन महाव्याहृतियाँ हैं। **'अयाश्चाग्ने॰'** इत्यादि पाँच मन्त्र प्रायश्चित्त-संज्ञक हैं। एक प्राजापत्य आहुति तथा एक स्विष्टकृत् आहुति—इस प्रकार होममें चौदह आहुतियाँ नित्य-संज्ञक हैं। इस प्रकार चतुर्दश आहुत्यात्मक हवन कर कर्म-निमित्तक देवताको उद्देश्यकर प्रधान हवन करना चाहिये। अग्निकी सात जिह्वाएँ कही गयी हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) हिरण्या, (२) कनका, (३) रक्ता, (४) आरक्ता, (५) सुप्रभा, (६) बहुरूपा तथा (७) सती। इन जिह्वा-देवियोंके ध्यान करनेसे सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय १४—१६)

अधिवासनकर्म एवं यज्ञकर्ममें उपयोज्य उत्तम ब्राह्मण तथा धर्मदेवताका स्वरूप

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! देव-प्रतिष्ठाके पहले दिन देवताओंका अधिवासन करना चाहिये और विधिके अनुसार अधिवासनके पदार्थ—धान्य आदिकी प्रतिष्ठाकर यूप आदिको भी स्थापित कर लेना चाहिये। कलशके ऊपर गणेशजीकी स्थापना कर दिक्पाल और ग्रहोंका पूजन करना चाहिये। तड़ाग तथा उद्यानकी प्रतिष्ठामें प्रधानरूपसे ब्रह्माकी, शान्ति-यागमें तथा प्रपायागमें वरुणकी, शैव-प्रतिष्ठामें शिवकी और सोम, सूर्य तथा विष्णु एवं अन्य देवताओंका भी पाद्य-अर्घ्य आदिसे अर्चन करना चाहिये। **'द्रुपदादिव॰'** (यजु॰ २०।२०) इस मन्त्रसे पहले प्रतिमाको स्नान कराये। स्नानके अनन्तर मन्त्रोंद्वारा गन्ध, फूल, फल, दूर्वा, सिंदूर, चन्दन, सुगन्धित तैल, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, वस्त्र आदि उपचारोंसे पूजन करे। मण्डपके अंदर प्रधान देवताका आवाहन करे और उसीमें अधिवासन करे। सुरक्षा-कर्मियोंद्वारा उस स्थानकी

सुरक्षा करवाये। तदनन्तर आचार्य, यजमान और ऋत्विक् मधुर पदार्थोंका भोजन करें। बिना अधिवासन-कर्म सम्पन्न किये देवप्रतिष्ठाका कोई फल नहीं होता। नित्य, नैमित्तिक अथवा काम्य कर्मोंमें विधिके अनुसार कुण्ड-मण्डपकी रचनाकर हवन-कार्य करना चाहिये।

ब्राह्मणो! यज्ञकार्यमें अनुष्ठानके प्रमाणसे आठ होता, आठ द्वारपाल और आठ याजक ब्राह्मण होने चाहिये। ये सभी ब्राह्मण शुद्ध, पवित्र तथा उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न वेदमन्त्रोंमें पारङ्गत होने चाहिये। एक जप करनेवाले जापकका भी वरण करना चाहिये। ब्राह्मणोंकी गन्ध, माल्य, वस्त्र तथा दक्षिणा आदिके द्वारा विधिके अनुसार पूजा करनी चाहिये। उत्तम सर्वलक्षणसम्पन्न तथा विद्वान् ब्राह्मण न मिलनेपर किये गये यज्ञका उत्तम फल प्राप्त नहीं होता। ब्राह्मण वरणके समय गोत्र और नामका निर्देश करे। तुलापुरुषके दानमें, स्वर्ण-पर्वतके दानमें, वृषोत्सर्गमें एवं कन्यादानमें गोत्रके साथ प्रवरका भी उच्चारण करना चाहिये। मृत भार्यावाला, कृपण, शूद्रके घरमें निवास करनेवाला, बौना, वृषलीपति, बन्धुद्वेषी, गुरुद्वेषी, स्त्रीद्वेषी, हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग, भग्नदन्त, दाम्भिक, प्रतिग्राही, कुनखी, व्यभिचारी, कुष्ठी, निद्रालु, व्यसनी, अदीक्षित, महाव्रणी, अपुत्र तथा केवल अपना ही भरण-पोषण करनेवाला—ये सब यज्ञके पात्र नहीं हैं। ब्राह्मणोंके वरण एवं पूजनके मन्त्रोंके भाव इस प्रकार हैं— आचार्यदेव! आप ब्रह्माकी मूर्ति हैं। इस संसारसे मेरी रक्षा करें। गुरो! आपके प्रसादसे ही यह यज्ञ करनेका सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ है। चिरकालतक मेरी कीर्ति बनी रहे। आप मुझपर प्रसन्न होवें, जिससे मैं यह कार्य सिद्ध कर सकूँ। आप सब भूतोंके आदि हैं, संसाररूपी समुद्रसे पार करानेवाले हैं। ज्ञानरूपी अमृतके आप आचार्य हैं। आप यजुर्वेदस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। ऋत्विज्‌गणो! आप षडङ्ग वेदोंके ज्ञाता हैं, आप हमारे लिये मोक्षप्रद हों। मण्डलमें प्रवेश करके उन ब्राह्मणोंको अपने-अपने स्थानोंपर क्रमशः आदरसे बैठाये। वेदीके पश्चिम भागमें आचार्यको बैठाये, कुण्डके अग्र-भागमें ब्रह्माको बैठाये। होता, द्वारपाल आदिको भी यथास्थान आसन दे। यजमान उन आचार्य आदिको सम्बोधित कर प्रार्थना करे कि आप सब नारायणस्वरूप हैं। मेरे यज्ञको सफल बनावें। यजुर्वेदके तत्त्वार्थको जाननेवाले ब्रह्मरूप आचार्य! आपको प्रणाम है। आप सम्पूर्ण यज्ञकर्मके साक्षीभूत हैं। ऋग्वेदार्थको जाननेवाले इन्द्ररूप ब्रह्मन्! आपको नमस्कार है। इस यज्ञकर्मकी सिद्धिके लिये ज्ञानरूपी मङ्गलमूर्ति भगवान् शिवको नमस्कार है। आप सभी दिशाओं-विदिशाओंसे इस यज्ञकी रक्षा करें। दिक्पालरूपी ब्राह्मणोंको नमस्कार है।

व्रत, देवार्चन तथा यागादि कर्म संकल्पपूर्वक करने चाहिये। काम संकल्पमूलक और यज्ञ संकल्पसम्भूत हैं। संकल्पके बिना जो धर्माचरण करता है, वह कोई फल नहीं प्राप्त कर सकता। गङ्गा, सूर्य, चन्द्र, द्यौ, भूमि, रात्रि, दिन, सूर्य, सोम, यम, काल, पञ्च महाभूत—ये सब शुभाशुभ-कर्मके साक्षी हैं[1]। अतएव विचारवान् मनुष्यको अशुभ कर्मोंसे विरत हो धर्मका आचरण करना चाहिये। धर्मदेव शुभ शरीरवाले एवं श्वेतवस्त्र धारण करते हैं। वृषस्वरूप ये धर्मदेव अपने दोनों हाथोंमें वरद और अभय-मुद्रा धारण किये हैं। ये सभी प्राणियोंको सुख देते हैं और सज्जनोंके लिये एकमात्र मोक्षके कारण हैं। इस प्रकारके स्वरूपवाले भगवान् धर्मदेव सत्पुरुषोंके लिये कल्याणकारी हों तथा सदा सबकी रक्षा करें[2]। (अध्याय १७-१८)

प्रतिष्ठा-मुहूर्त एवं जलाशय आदिकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं— ब्राह्मणो! ऋषियोंने देवता आदिकी प्रतिष्ठामें माघ, फाल्गुन आदि छः मास नियत किये हैं। जबतक भगवान् विष्णु शयन नहीं करते, तबतक प्रतिष्ठा आदि कार्य करने चाहिये। शुक्र, गुरु, बुध, सोम—ये चार वार शुभ

१-गङ्गा चादित्यचन्द्रौ च द्यौर्भूमी रात्रिवासरौ॥
सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च। एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः॥ (मध्यमपर्व २। १८। ४३-४४)

२-धर्मः शुभ्रवपुः सिताम्बरधरः कार्योऽर्थदिशो वृषो हस्ताभ्यामभयं वरं च सततं रूपं परं यो दधत्।
सर्वप्राणिसुखावहः कृतधियां मोक्षैकहेतुः सदा सोऽयं पातु जगन्ति चैव सततं भूयात् सतां भूतये॥ (मध्यमपर्व २। १८। ४६)

है। जिस लग्नमें शुभ ग्रह स्थित हों एवं शुभ ग्रहोंकी दृष्टि पड़ती हो, उस लग्नमें प्रतिष्ठा करनी चाहिये। तिथियोंमें द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी तथा पूर्णिमा तिथियाँ उत्तम हैं। प्राण-प्रतिष्ठा एवं जलाशय आदि कार्य प्रशस्त शुभ मुहूर्तमें ही करने चाहिये। देवप्रतिष्ठा और बड़े यागोंमें सोलह हाथका एवं चार द्वारोंसे युक्त मण्डपका निर्माण करके उसके दिशा-विदिशाओंमें शुभ्र ध्वजाएँ फहरानी चाहिये। पाकड़, गूलर, पीपल तथा बरगदके तोरण चारों द्वारोंपर पूर्वादि क्रमसे बनाये। मण्डपको मालाओं आदिसे अलंकृत करे। दिक्पालोंकी पताकाएँ उनके वर्णोंके अनुसार बनवानी चाहिये। मध्यमें नीलवर्णकी पताका लगानी चाहिये। ध्वज-दण्ड यदि दस हाथका हो तो पताका पाँच हाथकी बनवानी चाहिये। मण्डपके द्वारोंपर कदली-स्तम्भ रखना चाहिये तथा मण्डपको सुसज्जित करना चाहिये। मण्डपके मध्यमें एवं कोणोंमें वेदियोंकी रचना करनी चाहिये। योनि और मेखला-मण्डित कुण्डका तथा वेदीपर सर्वतोभद्र-चक्रका निर्माण करना चाहिये। कुण्डके ईशान-भागमें कलशकी स्थापना कर उसे माला आदिसे अलंकृत करना चाहिये।

यजमान पञ्चदेव एवं यज्ञेश्वर नारायणको नमस्कार कर प्रतिष्ठा आदि क्रियाका संकल्प करके ब्राह्मणोंसे इस प्रकार अनुज्ञा प्राप्त करे—'मैं इस पुण्य देशमें शास्त्रोक्त-विधिसे जलाशय आदिकी प्रतिष्ठा करूँगा। आप सभी मुझे इसके लिये आज्ञा प्रदान करें।' ऐसा कहकर मातृ-श्राद्ध एवं वृद्धि-श्राद्ध सम्पन्न करे। भेरी आदिके मङ्गलमय वाद्योंके साथ मण्डपमें षोडशाक्षर ***'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।'*** आदि मन्त्र लिखे एवं इन्द्रादि दिक्पाल देवताओं तथा उनके आयुधों आदिका भी यथास्थान चित्रण करे। फिर आचार्य और ब्रह्माका वरण करे। वरणके अनन्तर आचार्य तथा ब्रह्मा यजमानसे प्रसन्न हो उसके सर्वविध कल्याणकी कामना करके **'स्वस्ति'** ऐसा कहे। अनन्तर सपत्नीक यजमानको सर्वौषधियोंसे **'आपो हि ष्ठा०'** (यजु० ११। ५०) इस मन्त्रद्वारा ब्रह्मा, ऋत्विक् आदि स्नान करायें। यव, गोधूम, नीवार, तिल, साँवा, शालि, प्रियंगु और व्रीहि—ये आठ सर्वौषधि कहे गये हैं। आचार्यादिद्वारा अनुज्ञात सपत्नीक यजमान शुक्ल वस्त्र तथा चन्दन आदि धारणकर पुरोहितको आगेकर मङ्गल-घोषके साथ पुत्र-पौत्रादिसहित पश्चिमद्वारसे यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश करे। वहाँ वेदीकी प्रदक्षिणा कर नमस्कार करे। ब्राह्मणकी आज्ञाके अनुसार यजमान निश्चित आसनपर बैठे। ब्राह्मणलोग स्वस्तिवाचन करें। अनन्तर यजमान पाँच देवोंका पूजन करे। फिर सरसों आदिसे विघ्नकर्ता भूतोंका अपसर्पण कराये। यजमान अपने बैठनेके आसनका पुष्प-चन्दनसे अर्चन करे। अनन्तर भूमिका हाथसे स्पर्शकर इस प्रकार कहे— 'पृथ्वीमाता ! तुमने लोकोंको धारण किया है और तुम्हें विष्णुने धारण किया है। तुम मुझे धारण करो और मेरे आसनको पवित्र करो[1]।' फिर सूर्यको अर्घ्य देकर गुरुको हाथ जोड़कर प्रणाम करे। हृदयकमलमें इष्ट देवताका ध्यानकर तीन प्राणायाम करे। ईशान दिशामें कलशके ऊपर विघ्नराज गणेशजीकी गन्ध, पुष्प, वस्त्र तथा विविध नैवेद्य आदिसे **'गणानां त्वा०'** (यजु० २३। १९) मन्त्रसे पूजन करे। अनन्तर **'आ ब्रह्मन्०'** (यजु० २२। २२) इस मन्त्रसे ब्रह्माजीकी, **'तद्विष्णोः०'** (यजु० ६। ५) इस मन्त्रसे भगवान् विष्णुकी पूजा करे। फिर वेदीके चारों ओर सभी देवताओंको स्व-स्व स्थानपर स्थापित कर उनका पूजन करे। इसके बाद **'राजाधिराजाय प्रसह्य०'** इस मन्त्रसे भूशुद्धि कर श्वेत पद्मासनपर विराजमान, शुद्धस्फटिक तथा शङ्ख, कुन्द एवं इन्दुके समान उज्ज्वल वर्ण, किरीट-कुण्डलधारी, श्वेत कमल, श्वेत माला और श्वेत वस्त्रसे अलंकृत, श्वेत गन्धसे अनुलिप्त, हाथमें पाश लिये हुए, सिद्ध, गन्धर्वों तथा देवताओंसे स्तूयमान, नागलोककी शोभारूप, मकर, ग्राह, कूर्म आदि नाना जलचरोंसे आवृत, जलशायी भगवान् वरुणदेवका ध्यान करे। ध्यानके अनन्तर पञ्चाङ्गन्यास करे। अर्घस्थापन कर मूलमन्त्रका जप करे तथा उस जलसे आसन, यज्ञ-सामग्री आदिका प्रोक्षण करे। फिर भगवान् सूर्यको अर्घ्य दे। अनन्तर ईशानकोणमें भगवान् गणेश, अग्निकोणमें गुरुपादुका तथा

१-पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ॥
त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रमासनं कुरु ।
(मध्यमपर्व २। २०। २३-२४)

अन्य देवताओंका यथाक्रम पूजन करे। मण्डलके मध्यमें शक्ति, सागर, अनन्त, पृथ्वी, आधारशक्ति, कूर्म, सुमेरु तथा मन्दर और पञ्चतत्त्वोंका साङ्गोपाङ्ग पूजन करे। पूर्व दिशामें कलशके ऊपर श्वेत अक्षत और पुष्प लेकर भगवान् वरुणदेवका आवाहन करे। वरुणको आठ मुद्रा दिखाये। गायत्रीसे स्नान कराये तथा पाद्य, अर्घ्य, पुष्पाञ्जलि आदि उपचारोंसे वरुणका पूजन करे। ग्रहों, लोकपालों, दस दिक्पालों तथा पीठपर ब्रह्मा, शिव, गणेश और पृथ्वीका गन्ध, चन्दन आदिसे पूजन करे। पीठके ईशानादि कोणोंमें कमला, अम्बिका, विश्वकर्मा, सरस्वती तथा पूर्वादि द्वारोंमें उनचास मरुद्गणोंका पूजन करे। पीठके बाहर पिशाच, राक्षस, भूत, बेताल आदिकी पूजा करे। कलशपर सूर्यादि नवग्रहोंका आवाहन एवं ध्यानकर पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य एवं बलि आदिद्वारा मन्त्रपूर्वक उनकी पूजा करे और उनकी पताकाएँ उन्हें निवेदित करे। विधिपूर्वक सभी देवताओंका पूजनकर शतरुद्रियका पाठ करना चाहिये। हवन करनेके समय वारुणसूक्त, रात्रिसूक्त, रौद्रसूक्त, पवमानसूक्त, पुरुषसूक्त, शाक्तसूक्त, अग्निसूक्त, सौरसूक्त, ज्येष्ठसाम, वामदेवसाम, रथन्तरसाम तथा रक्षोघ्न आदि सूक्तोंका पाठ करना चाहिये। अपने गृह्योक्त-विधिसे कुण्डोंमें अग्नि प्रदीप्त कर हवन करना चाहिये। जिस देवका यज्ञ होता है अथवा जिस देवताकी प्रतिष्ठा हो उसे प्रथम आहुतियाँ देनी चाहिये। अनन्तर तिल, आज्य, पायस, पत्र, पुष्प, अक्षत तथा समिधा आदिसे अन्य देवताओंके मन्त्रोंसे उन्हें आहुतियाँ देनी चाहिये।

पञ्चदिवसात्मक प्रतिष्ठायागमें प्रथम दिन देवताओंका आवाहन एवं स्थापन करना चाहिये। दूसरे दिन पूजन और हवन, तीसरे दिन बलि-प्रदान, चौथे दिन चतुर्थीकर्म और पाँचवें दिन नीराजन करना चाहिये। नित्यकर्म करनेके अनन्तर ही नैमित्तिक कर्म करने चाहिये। इसीसे कर्मफलकी प्राप्ति होती है।

दूसरे दिन प्रातःकाल सर्वप्रथम प्रतिष्ठाप्य देवताका सर्वौषधिमिश्रित जलसे ब्राह्मणोंद्वारा वेदमन्त्रोंके पाठपूर्वक महास्नान तथा मन्त्राभिषेक कराये, तदनन्तर चन्दन आदिसे उसे अनुलिप्त करे। तत्पश्चात् आचार्य आदिकी पूजाकर उन्हें अलंकृत कर गोदान करे। फिर मङ्गल-घोषपूर्वक तालाबमें जल छोड़नेके लिये संकल्प करे। इसके बाद उस तालाबके जलमें नागयुक्त वरुण, मकर, कच्छप आदिकी अलंकृत प्रतिमाएँ छोड़े। वरुणदेवकी विशेषरूपसे पूजा कर उन्हें अर्घ्य निवेदित करे। पुनः उसी तालाबके जल, सप्तमृत्तिका-मिश्रित जल, तीर्थ-जल, पञ्चामृत, कुशोदक तथा पुष्पजल आदिसे वरुणदेवको स्नान कराकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि प्रदान करे। सभी देवताओंको बलि प्रदान करे। मङ्गलघोषके साथ नीराजन कर प्रदक्षिणा करे। एक वेदीपर भगवान् वरुण तथा पुष्करिणीदेवीकी यथाशक्ति स्वर्ण आदिकी प्रतिमा बनाकर भगवान् वरुणदेवके साथ देवी पुष्करिणीका विवाह कराकर उन्हें वरुणदेवके लिये निवेदित कर दे। एक काष्ठका यूप जो यजमानकी ऊँचाईके बराबर हो, उसे अलंकृत कर तड़ागके ईशान दिशामें मन्त्रपूर्वक गाड़कर स्थिर कर दे। प्रासादके ईशानकोणमें, प्रपाके दक्षिण भागमें तथा आवासके मध्यमें यूप गाड़ना चाहिये। इसके अनन्तर दिक्पालोंको बलि प्रदान करे। ब्राह्मणोंको भोजन एवं दक्षिणा प्रदान करे।

उस तड़ागके जलके मध्यमें '**जलमातृभ्यो नमः**' ऐसा कहकर जलमातृकाओंका पूजन करे और मातृकाओंसे प्रार्थना करे कि मातृका देवियो ! तीनों लोकोंके चराचर प्राणियोंकी संतृप्तिके लिये यह जल मेरे द्वारा छोड़ा गया है, यह जल संसारके लिये आनन्ददायक हो। इस जलाशयकी आपलोग रक्षा करें। ऐसी ही मङ्गल-प्रार्थना भगवान् वरुणदेवसे भी करे। अनन्तर वरुणदेवको बिम्ब, पद्म तथा नागमुद्राएँ दिखाये। ब्राह्मणोंको उस जलाशयका जल भी दक्षिणाके रूपमें प्रदान करे। अनन्तर तर्पण कर अग्निकी प्रार्थना करे। स्वयं भी उस जलका पान करे। पितरोंको अर्घ्य प्रदान करे। अनन्तर पुनः वरुणदेवकी प्रार्थना कर, जलाशयकी प्रदक्षिणा करे। फिर ब्राह्मणोंद्वारा वेद-ध्वनियोंके उच्चारणपूर्वक यजमान अपने घरमें प्रवेश करे और ब्राह्मणों, दीनों, अन्धों, कृपणों तथा कुमारिकाओंको भोजन कराकर संतुष्ट करे तथा भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। (अध्याय १९—२१)

॥ मध्यमपर्व, द्वितीय भाग सम्पूर्ण ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

मध्यमपर्व

(तृतीय भाग)

उद्यान-प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! उद्यान आदिकी प्रतिष्ठामें जो कुछ विशेष विधि है, अब उसे बता रहा हूँ, आपलोग सुनें। सर्वप्रथम एक चौकोर मण्डलकी रचना कर उसपर अष्टदल कमल बनाये। मण्डलके ईशानकोणमें कलशकी स्थापनाकर उसपर भगवान् गणनाथ और वरुणदेवकी पूजा करे। तदनन्तर मध्यम कलशमें सूर्यादि ग्रहोंका पूजन करे। फिर पश्चिमादि द्वारदेशोंमें ब्रह्मा और अनन्त तथा मध्यमें वरुणकी पूजा करे। जलपूरित कलशमें भगवान् वरुणका आवाहन करते हुए कहे—'वरुणदेव ! मैं आपका आवाहन करता हूँ। विभो ! आप हमें स्वर्ग प्रदान करें।' तदनन्तर पूर्वभागमें मन्दरगिरिकी स्थापना कर तोरणपर विष्वक्सेनकी पूजा करे और कर्णिका-देशमें भगवान् वासुदेवका पूजन करे। भगवान् वासुदेव शुद्ध स्फटिकके सदृश हैं। वे अपने चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स-चिह्न और कौस्तुभमणि सुशोभित है तथा मस्तक सुन्दर मुकुटसे अलंकृत है। उनके दक्षिण भागमें भगवती कमला, वाम भागमें पुष्टिदेवी विराजमान हैं। सुर, असुर, सिद्ध, किन्नर, यक्ष आदि उनकी स्तुति करते हैं। '**विष्णो रराट**॰' (यजु॰ ५।२१) इस मन्त्रसे भगवान् विष्णुकी पूजा करे। उनके साथमें संकर्षणादि-व्यूह और विमला आदि शक्तियोंकी धूप, दीप आदि उपचारोंसे अर्चना कर प्रार्थना करे। उनके सामने घीका दीप जलाये और गुग्गुलका धूप प्रदान कर घृतमिश्रित खीरका नैवेद्य लगाये। कर्णिकाके दक्षिणकी ओर कमलके ऊपर स्थित सोमका ध्यान करे। उनका वर्ण शुक्ल है, वे शान्त-स्वरूप हैं, वे अपने हाथोंमें वरद और अभय-मुद्रा धारण किये हैं एवं केयूरादि धारण करनेके कारण अत्यन्त शोभित हैं। '**इमं देवा**॰' (यजु॰ ९।४०) इस मन्त्रसे इनकी पूजा कर इन्हें घृतमिश्रित भातका नैवेद्य अर्पण करे। पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र, जयन्त, आकाश, वरुण, अग्नि, ईशान, तत्पुरुष तथा वायुकी पूजा करे। कर्णिकाके वाम भागमें शुक्ल वर्णवाले महादेवका '**त्र्यम्बकं**॰' (यजु॰ ३।६०) इस मन्त्रसे पूजन कर नैवेद्य आदि प्रदान करे। भगवान् वासुदेवके लिये हविष्यसे आठ, सोमके लिये अट्ठाईस तथा शिवके लिये दो खीरकी आहुतियाँ दे। गणेशजीको घीकी एक आहुति दे। ब्रह्मा एवं वरुणके लिये एक-एक आहुति और ग्रहों एवं दिक्पालोंके लिये विहित समिधाओं तथा घीसे एक-एक आहुतियाँ दे।

अग्निकी सात जिह्वाओं—कराली, धूमली, श्वेता, लोहिता, स्वर्णप्रभा, अतिरक्ता और पद्मरागाको भी मन्त्रोंसे घृत एवं मधुमिश्रित हविष्यद्वारा एक-एक आहुति प्रदान करे। इसी प्रकार अग्नि, सोम, इन्द्र, पृथ्वी और अन्तरिक्षके निमित्त मधु और क्षीर-युक्त यवोंसे एक-एक आहुतियाँ प्रदान करे। फिर गन्ध-पुष्पादिसे उनकी पृथक्-पृथक् पूजा करके रुद्रसूक्त तथा सौरसूक्तका जप करे। अनन्तर यूपको भलीभाँति स्नान कराकर और उसका मार्जनकर उसे उद्यानके मध्य भागमें गाड़ दे। यूपके प्रान्त-भागमें सोम तथा वनस्पतिके लिये ध्वजाओंको लगा दे। '**कोऽदात्कस्मा**॰' (यजु॰ ७।४८) इस मन्त्रसे वृक्षोंका कर्णवेध संस्कार करे। एक तीखी सूईसे वृक्षके दक्षिण तथा वाम भागके दो पत्तोंका छेदन करे। नवग्रहोंकी तृप्तिके लिये लड्डू आदिका भोग लगाये तथा बालक और कुमारियोंको मालपूआ खिलाये। रंजित सूत्रोंसे उद्यानके वृक्षोंको आवेष्टित करे। उन वृक्षोंको जलादिका प्राशन कराये और यह प्रार्थना-मन्त्र पढ़े—

वृक्षाग्रात् पतितस्यापि आरोहात् पतितस्य च।
मरणे वास्ति भङ्गे वा कर्ता पापैर्न लिप्यते॥

(मध्यमपर्व ३।१।३१)

तात्पर्य यह कि विधिपूर्वक उद्यान आदिमें लगाये गये वृक्षके ऊपरसे यदि कोई गिर जाय, गिरकर मर जाय या अस्थि टूट जाय तो उस पापका भागी वृक्ष लगानेवाला नहीं होता।

उद्यानके निमित्त पूजा आदि कर्म करानेवाले आचार्यको स्वर्ण, धान, गाय तथा दक्षिणा प्रदान कर उनकी प्रदक्षिणा करे। ऋत्विक्‌को भी स्वर्ण, रजत आदि दक्षिणामें दे। ब्रह्माको

भी दक्षिणा देकर संतुष्ट करे एवं अन्य सदस्योंको भी प्रसन्न करे। अनन्तर यजमान स्थापित अधिकलशके जलसे स्नान करे। सूर्यास्तसे पूर्व ही पूर्णाहुति सम्पन्न करे। सम्पूर्ण कार्य पूर्णकर अपने घर जाय और विप्रोंके द्वारा वहाँ बल, काम, हयग्रीव, माधव, पुरुषोत्तम, वासुदेव, धनाध्यक्ष और नारायण—इन सबका विधिवत् स्मरण कर पूजन कराये और पञ्चगव्यमिश्रित दधि-भातका नैवेद्य समर्पित करे।

बल आदि देवताओंकी पूजा करनेके पश्चात् दक्षिणकी ओर '**स्योना पृथिवी०**' (यजु० ३५।२१) इस मन्त्रसे पृथ्वीदेवीका पूजन करे। मधुमिश्रित पायसात्रका नैवेद्य अर्पित करे। पृथ्वीदेवी शुद्ध काञ्चन वर्णकी आभासे युक्त हैं। हाथमें वरद और अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं। सम्पूर्ण अलंकारोंसे अलंकृत हैं। घरके वाम भागमें विश्वकर्माका यजन करे। '**विश्वकर्मन्०**' (ऋ० १०।८१।६) यह मन्त्र उनके पूजनमें विनियुक्त है। भगवान् विश्वकर्माका वर्ण शुद्ध स्फटिकके समान है, ये शूल और टंकको धारण करनेवाले हैं तथा शान्तस्वरूप हैं। इन्हें मधु और पिष्टककी बलि दे। अनन्तर कौष्माण्डसूक्त तथा पुरुषसूक्तका पाठ करे। इसी पृथ्वी-होम-कर्ममें मधु और पायस-युक्त हविष्यसे आठ आहुतियाँ दे तथा अन्य देवताओंको एक-एक आहुति दे।

उद्यानके चारों ओर अथवा बीच-बीचमें उद्यानकी रक्षाके लिये मेड़ोंका निर्माण करे, जिन्हें धर्मसेतु कहा जाता है। उद्यानकी दृढ़ताके लिये विशेष प्रबन्ध करे। धर्मसेतुका निर्माण कर उनसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

पिच्छिले पतितानां च उच्छ्रितेनाङ्गसंगतः ॥
प्रतिष्ठिते धर्मसेतौ धर्मो मे स्यात्र पातकम्।
ये चात्र प्राणिनः सन्ति रक्षां कुर्वन्ति सेतवः।
वेदागमेन यत्पुण्यं तथैव हि समर्पितम् ॥

(मध्यमपर्व ३।१।४४—४६)

तात्पर्य यह कि यदि कोई व्यक्ति इस धर्मसेतु (मेड़) पर चलते समय गिर जाय, फिसल जाय तो इस धर्मसेतुके निर्माणका कोई पाप मुझे न लगे। क्योंकि इस धर्मसेतुका निर्माण मैंने धर्मकी अभिवृद्धिके लिये ही किया है। इस स्थानपर आनेवाले प्राणियोंकी ये धर्मसेतु रक्षा करते हैं। वेदाध्ययन आदिसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य इस धर्म-सेतुके निर्माण करनेपर प्राप्त होता है। (अध्याय १)

गोचर-भूमिके उत्सर्ग तथा लघु उद्यानोंकी प्रतिष्ठा-विधि

[भारतमें पहले सभी ग्राम-नगरोंकी सभी दिशाओंमें कुछ दूरतक गोचर-भूमि रहती थी। उसमें गायें स्वच्छन्द-रूपसे चरती थीं और वह भूमि सर्वसामान्यके भी घूमने-फिरनेके उपयोगमें आती थी। छोटे-छोटे बालक भी उसमें क्रीड़ा करते थे। यह प्रथा अभी कुछ दिनों पहलेतक थी, पर अब वह सर्वथा लुप्त हो गयी है, इससे गो-धनकी बड़ी हानि हुई है। जिसका फल प्रकृति अनावृष्टि, भीषण महर्घता (महँगी), दुष्कालकी स्थिति, भूकम्प, महायुद्ध और सर्वत्र निर्दोष लोगोंकी हत्याके रूपमें परोक्ष तथा प्रत्यक्ष-रूपसे दे रही है। इसकी निवृत्तिका एकमात्र समाधान है प्राचीन पुराणोक्त सदाचार, गो-सेवा और आस्तिकतापूर्ण आध्यात्मिक दृष्टिका पुनः अनुसंधान और अनुसरण करना। भला, आजकी दशासे, जहाँ किसीको भी किसी भी स्थितिमें तनिक भी शान्ति नहीं है, इससे अधिक और चिन्ताकी बात क्या हो सकती है! इस दृष्टिसे यह अध्याय विशेष महत्त्वका है और सभी पाठकोंको अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक अपने-अपने ग्राम-नगरोंके चतुर्दिक् गोचरका या गो-प्रचार-भूमिका उत्सर्ग कर गो-संरक्षणमें हाथ बँटाना चाहिये।—सम्पादक]

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं गोचर-भूमिके विषयमें बता रहा हूँ, आप सुनें। गोचर-भूमिके उत्सर्ग-कर्ममें सर्वप्रथम लक्ष्मीके साथ भगवान् विष्णुकी विधिके अनुसार पूजा करनी चाहिये। इसी तरह ब्रह्मा, रुद्र, करालिका, वराह, सोम, सूर्य और महादेवजीका क्रमशः विविध उपचारोंसे पूजन करे। हवन-कर्ममें लक्ष्मीनारायणको तीन-तीन आहुतियाँ घीसे दे। क्षेत्रपालोंको मधुमिश्रित एक-एक लाजाहुति दे। गोचरभूमिका उत्सर्ग करके विधानके अनुसार यूपकी स्थापना करे तथा उसकी अर्चना करे। वह यूप तीन हाथका ऊँचा और नागफणोंसे युक्त होना चाहिये। उसे एक हाथसे भूमिके मध्यमें गाड़ना चाहिये। अनन्तर '**विश्वेषा०**' (ऋ० १०।२।६) इस मन्त्रका उच्चारण करे और '**नागाधिपतये नमः**', '**अच्युताय**

नमः' तथा '**भौमाय नमः**' कहकर यूपके लिये लाजा निवेदित करे। '**मयि गृह्णाम्य०**' (यजु० १३।१)इस मन्त्रसे रुद्रमूर्ति-स्वरूप उस यूपकी पञ्चोपचार-पूजा करे। आचार्यको अन्न, वस्त्र और दक्षिणा दे तथा होता एवं अन्य ऋत्विजोंको भी अभीष्ट दक्षिणा दे। इसके बाद उस गोचरभूमिमें रत्न छोड़कर इस मन्त्रको पढ़ते हुए गोचरभूमिका उत्सर्ग कर दे—

शिवलोकस्तथा गावः सर्वदेवसुपूजिताः ॥
गोभ्य एषा मया भूमिः सम्प्रदत्ता शुभार्थिना ।

(मध्यमपर्व ३।२।१२-१३)

'शिवलोकस्वरूप यह गोचरभूमि, गोलोक तथा गौएँ सभी देवताओंद्वारा पूजित हैं, इसलिये कल्याणकी कामनासे मैंने यह भूमि गौओंके लिये प्रदान कर दी है।'

इस प्रकार जो समाहित-चित्त होकर गौओंके लिये गोचरभूमि समर्पित करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है। गोचरभूमिमें जितनी संख्यामें तृण, गुल्म उगते हैं, उतने हजारों वर्षोतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। गोचरभूमिकी सीमा भी निश्चित करनी चाहिये। उस भूमिकी रक्षाके लिये पूर्वमें वृक्षोंका रोपण करे। दक्षिणमें सेतु (मेड़) बनाये। पश्चिममें कँटीले वृक्ष लगाये और उत्तरमें कूपका निर्माण करे। ऐसा करनेसे कोई भी गोचरभूमिकी सीमाका लङ्घन नहीं कर सकेगा। उस भूमिको जलधारा और घाससे परिपूर्ण करे। नगर या ग्रामके दक्षिण दिशामें गोचरभूमि छोड़नी चाहिये। जो व्यक्ति किसी अन्य प्रयोजनसे गोचरभूमिको जोतता, खोदता या नष्ट करता है, वह अपने कुलोंको पातकी बनाता है और अनेक ब्रह्म-हत्याओंसे आक्रान्त हो जाता है।

जो भलीभाँति दक्षिणाके साथ गोचर्म-भूमिका[1] दान करता है, वह उस भूमिमें जितने तृण हैं, उतने समयतक स्वर्ग और विष्णुलोकसे च्युत नहीं होता। गोचर-भूमि छोड़नेके बाद ब्राह्मणोंको संतुष्ट करे। वृषोत्सर्गमें जो भूमि-दान करता है, वह प्रेतयोनिको प्राप्त नहीं होता। गोचर-भूमिके उत्सर्गके समय जो मण्डप बनाया जाता है, उसमें भगवान् वासुदेव और सूर्यका पूजन तथा तिल, गुड़की आठ-आठ आहुतियोंसे हवन करना चाहिये। '**देहि मे०**' (यजु० ३।५०) इस मन्त्रसे मण्डपके ऊपर चार शुक्ल घट स्थापित करे। अनन्तर सौर-सूक्त और वैष्णव-सूक्तका पाठ करे। आठ वटपत्रोंपर आठ दिक्पाल देवताओंके चित्र या प्रतिमा बनाकर उन्हें पूर्वादि आठ दिशाओंमें स्थापित करे और पूर्वादि दिशाओंके अधिपतियों—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति आदिसे गोचरभूमिकी रक्षाके लिये प्रार्थना करे। प्रार्थनाके बाद चारों वर्णोंकी, मृग एवं पक्षियोंकी अवस्थितिके लिये विशेषरूपसे भगवान् वासुदेवकी प्रसन्नताके लिये गोचरभूमिका उत्सर्जन करना चाहिये। गोचरभूमिके नष्ट-भ्रष्ट हो जानेपर, घासके जीर्ण हो जानेपर तथा पुनः घास उगानेके लिये पूर्ववत् प्रतिष्ठा करनी चाहिये, जिससे गोचरभूमि अक्षय बनी रहे। प्रतिष्ठाकार्यके निमित्त भूमिके खोदने आदिमें कोई जीव-जन्तु मर जाय तो उससे मुझे पाप न लगे, प्रत्युत धर्म ही हो और इस गोचरभूमिमें निवास करनेवाले मनुष्यों, पशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओंका आपके अनुग्रहसे निरन्तर कल्याण हो ऐसी भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये। अनन्तर गोचरभूमिको त्रिगुणित पवित्र धागेद्वारा सात बार आवेष्टित कर दे। आवेष्टनके समय '**सुत्रामाणं पृथिवीं०**' (ऋ० १०।६३।१०) इस ऋचाका पाठ करे। अनन्तर आचार्यको दक्षिणा दे। मण्डपमें ब्राह्मणोंको भोजन कराये। दीन, अन्ध एवं कृपणोंको संतुष्ट करे। इसके बाद मङ्गल-ध्वनिके साथ अपने घरमें प्रवेश करे। इसी प्रकार तालाब, कुआँ, कूप आदिकी भी प्रतिष्ठा करनी चाहिये, विशेषरूपसे उसमें वरुणदेवकी और नागोंकी पूजा करनी चाहिये।

ब्राह्मणो! अब मैं छोटे एवं साधारण उद्यानोंकी प्रतिष्ठाके विषयमें बता रहा हूँ। इसमें मण्डल नहीं बनाना चाहिये। बल्कि शुभ स्थानमें दो हाथके स्थण्डिलपर कलश स्थापित करना चाहिये। उसपर भगवान् विष्णु और सोमकी अर्चना करनी चाहिये। केवल आचार्यका वरण करे। सूत्रसे वृक्षोंको आवेष्टित कर पुष्प-मालाओंसे अलंकृत करे। अनन्तर जलधारासे वृक्षोंको सींचे। पाँच ब्राह्मणोंको भोजन कराये।

१-गवां शतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितः। तद्गोचर्मेति विख्यातं दत्तं सर्वाघनाशनम् ॥

जिस गोचर-भूमिमें सौ गायें और एक बैल स्वतन्त्र रूपसे विचरण करते हों, वह भूमि गोचर्म-भूमि कहलाती है। ऐसी भूमिका दान करनेसे सभी पापोंका नाश होता है। अन्य बृहस्पति, वृद्धहारीत, शातातप आदि स्मृतियोंके मतसे प्रायः ३,००० हाथ लंबी-चौड़ी भूमिकी संज्ञा गोचर्म है।

वृक्षोंका कर्णवेध संस्कार करे और संकल्पपूर्वक उनका उत्सर्जन कर दे। मध्य देशमें यूप स्थापित करे और दिशा-विदिशाओं तथा मध्य देशमें कदली-वृक्षका रोपण करे और विधानपूर्वक घीसे होम करे। फिर स्विष्टकृत् हवन कर पूर्णाहुति दे। वृक्षके मूलमें धर्म, पृथ्वी, दिशा, दिक्पाल और यक्षकी पूजा करे तथा आचार्यको संतुष्ट करे। दक्षिणामें गाय दे। सब कार्य विधानके अनुसार परिपूर्ण कर भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। (अध्याय २-३)

अश्वत्थ, पुष्करिणी तथा जलाशयके प्रतिष्ठाकी विधि

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! अश्वत्थ-वृक्षकी प्रतिष्ठा करनी हो तो उसकी जड़के पास दो हाथ लम्बी-चौड़ी एक वेदीका निर्माण कर चन्दन आदिसे प्रोक्षित करे। उसपर कमलकी रचना कर अर्घ्य प्रदान करे। प्रथम दिनकी रात्रिमें **'तद्विष्णोः॰'** (यजु॰ ६।५) इस मन्त्रद्वारा कलश-स्थापन कर गन्ध, चन्दन, दूर्वा तथा अक्षत समर्पण करे। चन्दन-लिप्त श्वेत सूत्रोंसे कलशोंको आवेष्टित करे। प्रथम कलशके ऊपर गणेशजीका, दूसरे कलशपर ब्रह्माजीका पूजन करे। दिशाओंमें दिक्पाल और वृक्षके मूलमें नवग्रहोंका पूजन-अर्चन करे। वृक्षके मूलमें विष्णु, मध्यमें शंकर तथा आगे ब्रह्माकी पूजा कर हवन करे। पिष्टकान्न-बलि दे। आचार्यको दक्षिणा देकर वृक्षको जलधारासे सींचे, उसकी प्रदक्षिणा करे और भगवान् सूर्यको अर्घ्य निवेदित कर घर आ जाय।

बावली आदिकी प्रतिष्ठामें प्रथम भूतशुद्धि करके सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। तदनन्तर गणेश, गुरुपादुका, जय और भद्रका समाहित होकर पूजन करे। मण्डलके मध्यमें आधार-शक्ति, अनन्त तथा कूर्मकी पूजा करे। चन्द्र, सूर्य आदिका भी मण्डलमें पूजन करे। दूसरे पात्रमें पुष्पादि उपचारोंसे भगवान् वरुणका पूजन करे। कमलके पूर्वादि पत्रोंमें इन्द्रादि दिक्पालोंकी, उनके आयुधोंकी तथा मध्यमें ब्रह्माकी पूजा करे। **'भूर्भुवः स्वः'** इन तत्त्वोंकी भी पूजा करे। मण्डलके उत्तर भागमें नागरूप अनन्तकी पूजा करे। इसके बाद हवन करे। प्रथम आहुति वरुणदेवको दे फिर दिक्पालों, नारायण, शिव, दुर्गा, गणेश, ग्रहों और ब्रह्माको प्रदान करे। स्विष्टकृत् हवन करके बलि प्रदान करे। एक अष्टदल कमलके ऊपर वरुणकी रजत-प्रतिमा स्थापित करे और पुष्करिणी (बावली) की प्रतिमा स्वर्णकी बनाये और उसका पूजनकर जलाशयमें छोड़ दे। जलाशयके मध्यमें नौका आरोपित करे। जलाशयके बीचमें ऋत्विक् होम करे। शेषनागकी मूर्ति भी जलाशयमें छोड़ दे। सम्पूर्ण कार्योंको सम्पन्न कर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। जलाशयमें मकर, ग्राह, मीन, कूर्म एवं अन्य जलचर प्राणी तथा कमल, शैवाल आदि भी छोड़े। अनन्तर जलाशयकी प्रदक्षिणा करे। लावा और सीपी भी छोड़े। दूधकी धारा भी दे। पुष्करिणीको चारों ओरसे रक्तसूत्रसे आवेष्टित करे। दीनोंको संतुष्ट कर घरमें प्रवेश करे।

ब्राह्मणो! अब मैं नलिनी (जिस तालाबमें कमल हो), वापी तथा ह्रद (गहरे जलाशय) की प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि बतला रहा हूँ। इन सबकी प्रतिष्ठा करनेके पहले दिन भगवान् वरुणदेवकी सुवर्ण-प्रतिमा बनाकर **'आपो हि ष्ठा॰'** (यजु॰११।५०) इस मन्त्रसे उसका जलाधिवास करे, अनन्तर एक सौ कमल-पुष्पोंसे प्रतिमाका पुष्पाधिवास करे। तत्पश्चात् मण्डलमें आकर पूर्वमुख बैठे और कलशपर गणेश, वरुण, शंकर, ब्रह्मा, विष्णु एवं सूर्यकी पूजा करे। वरुणके लिये घी और पायसकी आहुति दे। अन्य देवताओंको स्रुवाद्वारा एक-एक आहुति प्रदान कर पायस-बलि दे। फिर नलिनी-वापी आदिका संकल्पपूर्वक उत्सर्जन कर दे। मध्यमें यूपकी स्थापना करे। तदनन्तर गोदान दे और दक्षिणा प्रदान करे। पूर्णाहुतिके अनन्तर भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे और अपने घरमें प्रवेश करे।

द्विजो! अब मैं वृक्षोंके प्रतिष्ठा-विधानका वर्णन करता हूँ। वृक्षकी स्थापना कर सूत्रसे परिवेष्टित करे, फिर उसके पश्चिम भागमें कलश-स्थापना करे। कलशमें ब्रह्मा, सोम, विष्णु और वनस्पतिका पूजन करे। अनन्तर तिल और यवसे आठ-आठ आहुतियाँ दे। कदली-वृक्ष तथा यूपका उत्सर्जन करे, फिर लगाये गये वृक्षके मूलमें धर्म, पृथ्वी, दिशा, दिक्पाल एवं यक्षकी पूजा करे तथा आचार्यको संतुष्ट करे। आचार्यको गोदान दे, दक्षिणा प्रदान करे। वृक्ष-पूजनके बाद भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। (अध्याय ४—८)

वट, बिल्व तथा पूगीफल आदि वृक्ष-युक्त उद्यानकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! वट-वृक्षकी प्रतिष्ठामें वृक्षके दक्षिण दिशामें उसकी जड़के पास तीन हाथकी एक वेदी बनाये और उसपर तीन कलश स्थापित करे। उन कलशोंपर क्रमशः गणेश, शिव तथा विष्णुकी पूजा कर चरुसे होम करे। वट-वृक्षको त्रिगुणित रक्त सूत्रोंसे आवेष्टित करे। बलिमें यव-क्षीर प्रदान करे और यूपस्तम्भ आरोपित करे। वट-वृक्षके मूलमें यक्ष, नाग, गन्धर्व, सिद्ध और मरुद्गणोंकी पूजा करे। इस प्रकार सम्पूर्ण क्रियाएँ विधिके अनुसार पूर्ण करे।

बिल्ववृक्षकी प्रतिष्ठामें पहले दिन वृक्षका अधिवासन करे। '**त्र्यम्बकं॰**' (यजु॰ ३।६०) इस मन्त्रसे वृक्षको पवित्र स्थानपर स्थापित कर '**सुनावमा॰**'(यजु॰ २१।७) इस मन्त्रसे गन्धोदकद्वारा उसे स्नान कराये। '**मे गृह्णामि॰**' इस मन्त्रसे वृक्षपर अक्षत चढ़ाये। '**कया नश्चित्र॰**' (यजु॰ २७।३९) इस मन्त्रसे धूप, वस्त्र तथा माला चढ़ाये। तदनन्तर रुद्र, विष्णु, दुर्गा और धनेश्वर—कुबेरका पूजन करे। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर शास्त्रानुसार नित्यक्रियासे निवृत्त होकर घरमें सात ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराये। फिर बिल्वके मूलप्रदेशमें दो हाथकी वर्तुलाकार वेदीका निर्माण करे। उसको गेरु तथा सुन्दर पुष्प-चूर्णादिसे रञ्जितकर उसपर अष्टदल-कमलकी रचना करे। वृक्षको लाल सूत्रसे पाँच, सात या नौ बार वेष्टित करे। वृक्ष-मूलमें उत्तराभिमुख होकर व्रीहि रोपे तथा शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणेश, शेष, अनन्त, इन्द्र, वनपाल, सोम, सूर्य तथा पृथ्वी—इनका क्रमशः पूजन करे। तिल और अक्षतसे हवन करे तथा घी एवं भातका नैवेद्य दे। यक्षोंके लिये उड़द और भातका भोग लगाये। ग्रहोंकी तुष्टिके लिये बाँसके पात्रपर नैवेद्य दे। बिल्व-वृक्षको दक्षिण दिशासे दूधकी धारा प्रदान करे। यूपका आरोपण करे, वृक्षका कर्णवेध-संस्कार करे और भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे।

यदि सौ हाथकी लंबाई-चौड़ाईका उद्यान हो, जिसमें सुपारी या आम्र आदिके फलदायक वृक्ष लगे हों तो ऐसे उद्यानकी प्रतिष्ठामें वास्तुमण्डलकी रचनाकर वास्तु आदि देवताओंका पूजन करके यजन-कर्म करे। विशेषरूपसे विष्णु एवं प्रजापति आदि देवताओंका पूजन करे। हवनके अन्तमें ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे।

(अध्याय ९—११)

मण्डप, महायूप और पौंसले आदिकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—द्विजगणो! अब मैं यागादिके निमित्त निर्मित होनेवाले मण्डपोंकी प्रतिष्ठा-विधि बतलाता हूँ। वह मण्डप शिलामय हो या काष्ठमय अथवा तृण-पत्रादिसे निर्मित हो। ऐसी स्थितिमें अधिवासनके प्रारम्भमें शुभ-लग्न-मुहूर्तमें घट-स्थापन करे। उस कलशपर सूर्य, सोम और विष्णुकी अर्चना करे। '**आपो हि ष्ठा॰**' (यजु॰ ११।५०) इस मन्त्रद्वारा कुशोदकसे तथा '**आप्यायस्व॰**' (यजु॰ १२।११४) इस मन्त्रद्वारा सुगन्ध-जलसे प्रोक्षण करे। '**गन्धद्वारा॰**' (श्रीसूक्त ९) इस ऋचासे चन्दन, सिन्दूर, आलक्त और अञ्जन समर्पण करे। फिर दूसरे दिन प्रातः वृद्धि-श्राद्ध करे। शुभ लक्षणवाले मण्डपमें दिक्पालोंकी स्थापना करे। मध्यमें वेदीके ऊपर मण्डल चित्रित करे। उसमें सूर्य, सोम, विष्णुकी तथा कलशपर गणेश, नवग्रह आदिकी पूजा करे। सूर्यके लिये १०८ बार पायस-होम करे। विष्णु और सोमका उद्देश्य कर बारह आहुतियाँ एवं पायस-बलि दे। वास्तु-देवताका पूजन करे और उनको अर्घ्य देकर विधिवत् आहुति प्रदान करे, फिर उस मण्डलको संकल्पपूर्वक योग्य ब्राह्मणके लिये समर्पित कर दे। उसे विधिवत् दक्षिणा दे और सूर्यके लिये अर्घ्य प्रदान करे। तृण-मण्डपमें विशेषरूपसे वासुदेवके साथ भगवान् सूर्यकी पूजा करे। एक घटके ऊपर वरदायक भगवान् गणेशजीकी पूजा कर विसर्जन करे। ईशानकोणमें यूप स्थापित कर सभी दिशाओंमें ध्वजा फहराये।

ब्राह्मणो! अब मैं चार हाथसे लेकर सोलह हाथके प्रमाणमें निर्मित महायूपकी एवं पौंसला तथा कुएँ आदिकी प्रतिष्ठा-विधि बतला रहा हूँ। इनकी प्रतिष्ठामें गर्ग-त्रिरात्र यज्ञ करना चाहिये। पौंसलेके पश्चिम भागमें श्वेत कुम्भपर भगवान् वरुणको स्थापित कर 'गायत्री' मन्त्र तथा '**आपो हि ष्ठा॰**' (यजु॰ ११।५०) इन मन्त्रोंसे उन्हें स्नान कराना चाहिये।

उसके बाद गन्ध, तेल, पुष्प और धूप आदिसे मन्त्रपूर्वक उनकी अर्चना कर उन्हें वस्त्र, नैवेद्य, दीप तथा चन्दन आदि निवेदित करना चाहिये। प्रतिष्ठाके अन्तमें श्राद्ध कर एक ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराना चाहिये। आठ हाथका एक मण्डप बनाकर उसमें कलशकी स्थापना करे। उसपर नारायणके साथ वरुण, शिव, पृथ्वी आदिका तत्-तत् मन्त्रोंसे पूजन करे, उसके बाद स्थालीपाक-विधानसे हवनके लिये कुशकण्डिका करे। भगवान् वरुणका पूजन कर स्रुवाद्वारा उन्हें **'वरुणस्य॰'** (यजु॰ ४।३६) इत्यादि मन्त्रोंसे दस आहुतियाँ प्रदान करे। अन्य देवताओंके लिये क्रमशः एक-एक आहुति दे। उसके बाद स्विष्टकृत् हवन करे और अग्निकी सप्तजिह्वाओंके नामसे चरुका हवन करे। तदनन्तर सभीको नैवेद्य और बलि प्रदान करे। इसके पश्चात् संकल्प-वाक्य पढ़कर कूपका उत्सर्जन कर दे। ब्राह्मणोंको पयस्विनी गाय एवं दक्षिणा प्रदान करे। यदि छोटे कूपकी प्रतिष्ठा करनी हो तो गणेश तथा वरुणदेवताकी कलशके ऊपर विधिवत् पूजा करनी चाहिये। लाल सूत्रसे कलशको वेष्टित करना चाहिये। यूप स्थापित करनेके पश्चात् संकल्पपूर्वक कूपका उत्सर्जन करना चाहिये। ब्राह्मणोंको विधिवत् सम्मानपूर्वक दक्षिणा देनी चाहिये। (अध्याय १२-१३)

पुष्पवाटिका तथा तुलसीकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! पुष्पवाटिकाकी प्रतिष्ठामें तीन हाथकी एक वेदीका निर्माण कर उसपर घटकी स्थापना करे। पुष्पाधिवाससे एक दिन पूर्व ब्राह्मण-भोजन कराये। कलशपर गणेश, सूर्य, सोम, अग्निदेव तथा नारायणका आवाहन कर पूजन करे। वेदीपर मधु तथा पायससे हवन करे। ईशानकोणमें विधिवत् यूपका समारोपण कर उसके मूलमें गुरुवारके दिन गेहुँओंका रोपण कर उन्हें सींचे। वाटिकाको रक्त सूत्रसे आवेष्टित करे। वाटिकाके पुष्प-वृक्षोंका कर्णवेध कराकर उन्हें कुशोदकसे स्नान कराये और ब्राह्मणोंको धान्य, यव और गेहूँ दक्षिणारूपमें प्रदान करे और वाटिकाको जलधारासे सींचे।

तुलसीकी प्रतिष्ठा ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें विधिपूर्वक करनी चाहिये। प्रतिष्ठाके लिये शुद्ध दिन अथवा एकादशी तिथि होनी चाहिये। रात्रिमें घटकी स्थापना कर विष्णु, शिव, सोम, ब्रह्मा तथा इन्द्रका पूजन करे। गायत्री-मन्त्र तथा पूर्वोक्त देवताओंके मन्त्रोंद्वारा उन्हें स्नान कराये। **'कया नश्चित्र॰'** (यजु॰ २७।३९) इस मन्त्रसे गन्ध, **'अ॒ꣳशुना॰'** (यजु॰ २०।२७) इस मन्त्रसे इत्र, **'त्वां गन्धर्वा॰'** (यजु॰ १२।९८) तथा **'मा नस्तोके॰'** (यजु॰ १६।१६) आदि मन्त्रोंसे पुष्प, **'श्रीश्च ते॰'** (यजु॰ ३१।२२) तथा **'वैश्वदेवी॰'** (यजु॰ १९।४४) इन मन्त्रोंसे दूर्वा, **'रूपेण वो॰'** (यजु॰ ७।४५) इस मन्त्रसे दर्पण और **'याः फलिनीर्या॰'** (यजु॰ १२।८९) इस मन्त्रसे फल अर्पण करे तथा **'समिद्धो॰'** (यजु॰ २९।१) इस मन्त्रसे अञ्जन लगाये। तुलसीको पीले सूत्रसे आवेष्टित कर उसके चारों ओर दूध और जलकी धारा दे। कलश तथा तुलसीको वस्त्रसे भलीभाँति आच्छादित कर घर आ जाय। दूसरे दिन **'तद्विष्णोः॰'** (यजु॰ ६।५) इस मन्त्रसे सुहागिनी स्त्रियोंद्वारा मङ्गल-गानपूर्वक उसे स्नान कराये। मातृ-पूजापूर्वक वृद्धि-श्राद्ध करे। गन्ध आदि पदार्थोंद्वारा आचार्य, होता और ब्रह्मा आदिका वरण करे। दस हाथके मण्डपमें गोलाकार वेदीका निर्माण करे और वहाँ भगवान् नारायणका पूजन करे। वेदीके मध्य ग्रह, लोकपाल, सूर्य और मरुद्गणोंकी पूजा करे। कलशके चारों ओर रुद्र और वसुओंका पूजन करे। कुश-कण्डिका करके, तिल-यवसे हवन करे। विष्णुको उद्दिष्ट कर १०८ आहुतियाँ दे। अन्य देवताओंको यथाशक्ति आहुति प्रदान करे। यूप स्थापित कर चरुकी बलि दे। चतुर्दिक् कदली-स्तम्भ स्थापित कर ध्वजाएँ फहराये। दक्षिणामें स्वर्ण, तिल-धान्य एवं पयस्विनी गाय प्रदान करे। तुलसीको क्षीरधारा दे।

कुछ ऐसे भी वृक्ष हैं, जिनकी प्रतिष्ठा नहीं होती। जैसे—जयन्ती, सोमवृक्ष, सोमवट, पनस (कटहल), कदम्ब, निम्ब, कनकपाटला, शाल्मलि, निम्बक, बिम्ब, अशोक आदि। इनके अतिरिक्त भद्रक, शमीकोण, चंडातक, बक तथा खदिर आदि वृक्षोंकी प्रतिष्ठा तो करनी चाहिये, किंतु इनका कर्णवेध-संस्कार नहीं करना चाहिये।

(अध्याय १४—१७)

एकाह-प्रतिष्ठा तथा काली आदि देवियोंकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजीने कहा—ब्राह्मणो! कलियुगमें अल्प सामर्थ्यवान् व्यक्ति देवता आदिकी प्रतिष्ठा एक दिनमें भी कर सकता है। जिस दिन प्रतिष्ठा करनी हो उसी दिन विद्वान् ब्राह्मण घृताधिवास कराये। जब सूर्य भगवान् उत्तरायणके हों, तब प्रतिष्ठादि कार्य करने चाहिये। शरत्काल व्यतीत हो जानेपर वसन्त ऋतुमें यज्ञका आरम्भ करना चाहिये। नारायण आदि मूर्तियोंके बत्तीस भेद हैं। गजानन आदि देवताओंकी प्रतिष्ठा विहित कालमें ही करनी चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्य नित्य-क्रियासे निवृत्त होकर आभ्युदयिक कर्म करे। अनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। फिर यज्ञ-गृहमें प्रवेश करे। वहाँ प्रत्येक कुम्भके ऊपर भगवान् गणेश, नवग्रह तथा दिक्पालोंका विधिवत् पूजन करे। वेदीपर भगवान् विष्णु और उनके परिवारका पूजन करे। सर्वप्रथम भगवान् विष्णुको विभिन्न तीर्थ, समुद्र, नदियों आदिके जल, पञ्चामृत, पञ्चगव्य, सप्त-मृत्तिकामिश्रित जल, तिलके तेल, कषाय-द्रव्य और पुष्पोदकसे स्नान कराये। तुलसी, आम्र, शमी, कमल तथा करवीरके पत्र-पुष्पोंसे उनकी पूजा करे। इसके बाद मूर्तिमें प्राण-प्रतिष्ठा सम्पन्न करे। तत्पश्चात् विधिपूर्वक हवन करे। ब्राह्मणोंको दक्षिणाद्वारा संतुष्टकर पूर्णाहुति प्रदान करे।

ब्राह्मणो! अब मैं काली आदि महाशक्तियोंकी प्रतिष्ठा एवं अधिवासनकी संक्षिप्त विधि बतला रहा हूँ। प्रतिष्ठाके पूर्व दिन देवीकी प्रतिमाका अधिवासन कर आभ्युदयिक श्राद्ध करे। सर्वप्रथम भगवतीकी प्रतिमाको कमलयुक्त जलसे, फिर पञ्चगव्यसे स्नान कराये। कुम्भके ऊपर भगवती दुर्गाकी अर्चना करे। तदनन्तर मूर्तिकी प्राण-प्रतिष्ठा करे। बिल्व-पत्र और बिल्व-फलोंसे सौ आहुतियाँ दे। दक्षिणामें सुवर्ण प्रदान करे। भगवती कालिका और ताराकी प्रतिमाओंका अलग-अलग अर्चन करे। भगवतीको नाना प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंसे तीन दिनतक स्नान कराये और नैवेद्य अर्पण करे। तन्त्रिके कलशपर तीन दिनतक प्रातःकालमें देवीकी अर्चना करे फिर कन्याओंद्वारा सुगन्धित जलसे भगवतीको स्नान कराये। आठवें दिन भी रात्रिमें विशेष पूजन करे एवं पायस-होम करे।

आगमोंके अनुसार शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठामें तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराये और विशेषरूपसे भगवान्‌की प्रतिमाका अधिवासन करे। नित्य-क्रिया करके आभ्युदयिक श्राद्ध करे। दूसरे दिन प्रातः आचार्यका वरण करे। विधिके अनुसार प्रतिमाको स्नान कराकर शिवलिङ्गका परिवारके साथ पूजन करे। विधिपूर्वक तिलमयी या स्वर्णमयी अथवा साक्षात् गौका दान करे। हवनकी समाप्तिपर शुद्ध घृतसे वसुधारा प्रदान करे। इसी तरह सूर्य, गणेश, ब्रह्मा आदि देवताओं तथा वाराही एवं त्रिपुरादेवी और भुवनेश्वरी, महामाया, अम्बिका, कामाक्षी, इन्द्राक्षी तथा अपराजिता आदि महाशक्तियोंकी प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा भी विधिपूर्वक करनी चाहिये और रात्रि-जागरण कर महान् उत्सव करना चाहिये। देवीकी प्रतिष्ठामें कुमारी-पूजन भी करना चाहिये।

(अध्याय १८-१९)

दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्षजन्य उत्पात तथा उनकी शान्तिके उपाय[1]

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं विविध प्रकारके अपशकुनों, उत्पातों एवं उनके फलोंका वर्णन कर रहा हूँ। आपलोग सावधान होकर सुनें। जिस व्यक्तिकी लग्न-कुण्डली अथवा गोचरमें पाप-ग्रहोंका योग हो तो उसकी शान्ति करानी चाहिये। दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम—ये तीन प्रकारके उत्पात होते हैं। ग्रह, नक्षत्र आदिसे जो अनिष्टकी आशंका होती है वह दिव्य उत्पात कहलाता है। उल्कापात, दिशाओंका दाह (मण्डलोंका उदय, सूर्य-चन्द्रके इर्द-गिर्द पड़नेवाले घेरेका दिखायी देना), आकाशमें गन्धर्वनगरका दर्शन, खण्डवृष्टि, अनावृष्टि या अतिवृष्टि आदि अन्तरिक्षजन्य उत्पात हैं। जलाशयों, वृक्षों, पर्वतों तथा पृथ्वीसे प्रकट होनेवाले भूकम्प आदि उत्पात भौम उत्पात कहलाते हैं। अन्तरिक्ष एवं दिव्य उत्पातोंका प्रभाव एक सप्ताहतक रहता है। इसकी शान्तिके लिये तत्काल उपाय करना चाहिये अन्यथा वे बहुत कालतक

१-इन उत्पातोंका तथा इनकी शान्तियोंका विस्तृत विधान आथर्वण शान्तिकल्प एवं अथर्वपरिशिष्टादिमें दिया गया है। मत्स्यपुराणके २२८ से २३८ तकके अध्यायोंमें भी यह विषय विवेचित है।

प्रभावी रहते हैं। देवताओंका हँसना, रुधिर-स्राव होना, अकस्मात् बिजली एवं वज्रका गिरना, हिंसा और निर्दयताका बढ़ना, सर्पोंका आरोहण करना—ये सब दैव दुर्निमित्त हैं। मेघसे उत्पन्न वृष्टि केवल शिलातलपर ही गिरे तो एक सप्ताहके अंदर उत्पन्न प्राणी नष्ट हो जाते हैं। एक राशिपर शनि, मंगल और सूर्य—ये पापग्रह स्थित हो जायँ और पृथ्वी अकस्मात् धुएँसे ढकी दीखे तो भारी जनसंहारकी सम्भावना होती है। यदि बृहस्पति अपनी राशिका अतिचार[1] करे और शनि वहाँ स्थित न हो तो राज्य-नष्ट होनेकी सम्भावना रहती है। यदि सूर्य कुछ समयतक न दिखायी दे और दिशाओंमें दाह होने लगे, धूमकेतु दिखायी दे और बार-बार भूकम्प होता हो तथा राजाके जन्म-दिनमें इन्द्रधनुष दिखायी पड़े तो वह उसके लिये भारी दुर्निमित्त है। भयंकर आँधी-तूफान आ जाय, ग्रहोंका आपसमें युद्ध दिखलायी दे, तीन महीनेमें ही दूसरा ग्रहण लग जाय अथवा उल्कापात हो, आकाश और भूमिपर मेढ़क दौड़ने लगें, हल्दीके समान पीली वृष्टि हो, पत्थरोंमें सिंह और बिल्लीकी आकृति दिखलायी पड़े तो राष्ट्रमें दुर्भिक्ष और राजाका विनाश होता है। चैत्रमें अथवा कुम्भके सूर्यमें (फाल्गुन मासमें) नदीका वेग अकस्मात् बहुत बढ़ जाय तो राष्ट्रमें विप्लव होता है। ये सब सूर्यजन्य अद्भुत उत्पात हैं। हवन आदिद्वारा इनकी शान्ति करानी चाहिये। '**आ कृष्णेन०**' (यजु० ३३।४३) इस सूर्यमन्त्रद्वारा हवन कराना चाहिये। धान्यादिका निस्सार हो जाना, गौओंका निस्तेज हो जाना, कुओंका जल सहसा सूख जाना—ये सब भी सूर्यजनित उत्पात हैं, इनकी शान्तिके लिये कमल-पुष्पोंसे एक सहस्र आहुतियाँ देनी चाहिये। विकृत पक्षी, पांडुवर्ण कपोत, श्वेत उल्लू, काला कौआ और कराकुल पक्षी यदि घरमें गिरें तो उस घरमें महान् उत्पात मच जाता है। गलेकी मालाएँ आपसमें टकराने लगें, सद्यः उत्पन्न बालकको दाँत हो, देवताओंकी मूर्तियाँ हँसती हों, मूर्तियोंमें पसीना दीख पड़े और घड़ेमें अथवा घरमें सर्प और मण्डूकका प्रसव हो जाय तो उस घरकी गृहिणी छः मासके अंदर नष्ट हो जाती है। घरपर या वृक्षपर बिजली कड़कड़ाकर गिरने और आगकी ज्वालाएँ दिखायी देनेपर महान् उत्पात होता है। इन सबकी शान्तिके लिये रविवारके दिन भगवान् सूर्यकी प्रसन्नता-हेतु उनकी पूजा करे। तिल एवं पायसकी दस हजार आहुतियाँ प्रदान करे। गो-दान करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। इससे शीघ्र शान्ति होती है। अचानक ध्वज, चामर, छत्र तथा सिंहासनसे विभूषित रथपर राजाका दिखलायी देना तथा स्त्री-पुरुषोंकी लड़ाई ये भी महान् उत्पात हैं। पृथ्वीका काँपना, पहाड़ोंका टकराना, कोयल और उल्लूका रोना आदि सुनायी पड़े तो राजा, मन्त्री, राजपुत्र, हाथी आदि विनष्ट होते हैं।

ताड़ एवं सुपारीके वृक्ष एक साथ उत्पन्न हो जायँ तो उस घरमें रहनेवालोंपर विपत्तिकी सम्भावना होती है। दूसरे वृक्षोंमें अन्य वृक्षोंके फूल-फल लगे हुए दीखें तो ये सोमग्रहजन्य उत्पात हैं। इसकी शान्तिके लिये सोमवारके दिन सोमके निमित्त दधि, मधु, घृत तथा पलाश आदिसे '**इमं देवा०**' (यजु० ९।४०) इस मन्त्रसे एक हजार आहुतियाँ दे और चरुसे भी हवन करे।

उड़द और जौकी ढेरियाँ सहसा लुप्त हो जायँ, दही, दूध, घी और पात्रोंमें रुधिर दिखलायी पड़े, एकाएक घरमें आग-जैसा लगना दिखायी दे, बिना बादलके ही बिजली चमकने लगे, घरके सभी पशु तथा मनुष्य रुग्ण-से दिखायी पड़ें, तो मङ्गल ग्रहसे उत्पन्न उत्पात समझने चाहिये। इनसे राजा, अमात्य तथा घरके स्वामियोंका विनाश होता है। ऐसे भयंकर उपद्रवोंको देखकर मङ्गलकी शान्तिके लिये दही, मधु, घीसे युक्त खैर और गूलरकी समिधासे '**अग्निर्मूर्धा०**' (यजु० ३।१२) इस मन्त्रसे दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये। तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणामें लाल वस्तुएँ देनी चाहिये तथा सोने या ताँबेकी मङ्गलकी प्रतिमा बनाकर दानमें देनी चाहिये। इससे शान्ति होती है।

गौएँ यदि घरमें पूँछ उठाकर स्वयं दौड़ने लगें और कुत्ते तथा सूअर घरपर चढ़ने लगें तो उस घरकी स्त्रियोंको भीषण क्लेशकी आशंका होती है। गृहस्वामीका पूर्णतः मिथ्यावादी होना तथा राजाका वाद-विवादमें फँसना, घरमें गौओंका चिल्लाना, पृथ्वीका हिलना, घरमें मेढ़क तथा साँपका जन्म लेना—ये सभी उत्पात बुधग्रहजन्य हैं। इसमें राज्य तथा घरके नष्ट होनेकी सम्भावना होती है। इन उत्पातोंकी शान्तिके

१-एक राशिका भोगकाल समाप्त हुए बिना तीव्रगतिसे आगे चला जाना। यह स्थिति केवल मंगलसे लेकर शनितकके ग्रहोंकी होती है।

लिये बुधवारके दिन बुध ग्रहके उद्देश्यसे दही, मधु, घी तथा अपामार्गकी समिधा एवं चरुसे '**उद्बुध्यस्व॰**' (यजु॰ १५। ५४) इस मन्त्रद्वारा दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये। बुधकी सुवर्णकी प्रतिमा तथा पयस्विनी गाय ब्राह्मणको दानमें देनी चाहिये।

पशुओंका असमयमें समागम और उनसे यमल संततियोंकी उत्पत्ति, जौ, व्रीहि आदिका सहसा लुप्त हो जाना, गृहस्तम्भका सहसा टूटना, आँगनमें बिल्ली तथा मेढकका नखोंसे जमीन कुरेदना और इनका घरपर चढ़ना, ये सभी दोष जहाँ दिखायी दें, वहाँ छः महीनेके भीतर ही घरका विनाश होता है—कोई प्राणी मर जाता है या कुटुम्बमें कलह होता है तथा अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। बिल्व-वृक्षपर गृध्र और गृध्रीका एक साथ दिखलायी देना राजाके लिये विभ्रमकारक तथा प्रासादके लिये हानिकारक होता है। इस दोषसे अमात्यवर्ग राजाके विपरीत हो जाता है। ये सभी बृहस्पतिजनित दोष हैं। इनकी शान्तिके लिये बृहस्पतिके निमित्त शान्ति-होम करना चाहिये तथा पयस्विनी गाय एवं स्वर्णकी बृहस्पतिकी प्रतिमाका दान करना चाहिये।

राक्षसद्वारा घड़ेका जल पीनेका आभास होना; सिंह, शर्करा, तेल, चाँदी, ताण्डवनृत्य, उड़द-भात, धान्य आदिका आभास होना; घरमें ताँबा, काँसा, लोहा, सीसा तथा पीतल आदिका रखा दिखायी देनेका आभास होना; ऐसे उत्पातपर धनके नाश होनेकी सम्भावना रहती है और अनेक व्याधियाँ होती हैं, राजा भयंकर उपद्रव तथा बन्धनमें पड़ जाता है। गौ, अश्व तथा सेवकोंका विनाश होता है। दन्तपंक्तिको छोड़कर दाँतोंके ऊपर दाँतोंका निकलना, शलाकाके समान दाँत निकलना—ये भी दोषकारक हैं। बर्तनोंमें, घड़ोंमें यदि बादलके गरजनेकी आवाज सुनायी दे तो गृहस्वामीपर विपत्तिकी सम्भावना होती है—ये शुक्रग्रहजनित दोष हैं। इनकी शान्तिके लिये शुक्रवारके दिन दही, मधु, घृतयुक्त शमीपत्रसे हवन करे तथा दो सफेद वस्त्र, पयस्विनी श्वेत गौ, और सुवर्णकी शुक्रकी प्रतिमाका दान करना चाहिये।

मन्दिरकी जमीन यदि रक्त वर्णकी अथवा पुष्पित दिखलायी दे तो वहाँ भी उत्पातकी सम्भावना होती है। आकाशमें जलती हुई आग दिखायी दे तो स्त्री-पुरुषोंकी हानि और राष्ट्रमें विप्लवकी सम्भावना होती है। सभी ओषधियाँ और सस्य रसविहीन हो जायँ; हाथी, घोड़े, मतवाले होकर हिंसक हो जायँ; राजाके लिये नगर तथा गाँवमें सभी शत्रु हो जायँ; गौ, महिष आदि पशु अनायास उत्पात मचाने लगें; घरके दरवाजेमें गोह और शंखिनी प्रवेश करे तो अशुभ समझना चाहिये; इससे राज-पीड़ा और धन-हानि होती है। ये सभी उत्पात शनिग्रहजनित समझने चाहिये। इनकी शान्तिके लिये विविध सस्यों तथा समिधाओंसे शनिवारके दिन '**शं नो देवी॰**' (यजु॰ ३६। १२) इस मन्त्रसे दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये और चरुसे भी हवन करना चाहिये। नीली सवत्सा पयस्विनी गाय, दो वस्त्र, सोना, चाँदी, शनिकी प्रतिमा आदि दक्षिणामें ब्राह्मणको देनी चाहिये।

बादलके गरजे बिना लाल-पीली शिलावृष्टिका दिखलायी देना, बिना हवाके वृक्षका हिलना-डुलना दिखलायी देना, इन्द्रध्वज तथा इन्द्रधनुषका गिरना, दिनमें सियारोंका तथा रात्रिमें उलूकका रोना, एक बैलका दूसरे बैलके ककुद्पर मुँह रखकर रँभाना, ऐसे दोष होनेपर देशमें पापकी वृद्धि होती है तथा राजा राज्य एवं धर्मसे च्युत हो जाता है। गौ और ब्राह्मणमें परस्पर द्वन्द्व मच जाता है, वाहन नष्ट हो जाते हैं। यदि आकाशमें ध्वजकी छाया दिखलायी पड़े तो राष्ट्रमें महान् विप्लव होता है। यदि जलमें जलती हुई आग दिखलायी दे और सिर अथवा शरीरपर बिजली गिर जाय तो उसका जीवन दुर्लभ हो जाता है। दरवाजेके किनारेपर अथवा स्तम्भपर अग्नि अथवा धूम दिखलायी दे तो मृत्युका भय होता है। आकाशमें वज्राघात, अग्निकी ज्वालाके मध्य धुआँ, नगरके मध्य किसी अनहोनी घटनाका दिखलायी देना, शव ले जाते समय उस शवका उठकर बैठ जाना; स्थापित लिङ्गका गमन करना; भूकम्प, आँधी-तूफान, उल्कापात होना; बिना समय वृक्षोंमें फल-फूल लगना—ये सभी उत्पात राहुजन्य हैं। इनकी शान्तिके लिये दही, मधु, घी, दूब, अक्षत आदिसे '**कया नश्चित्र॰**' (यजु॰ २७। ३९) इस मन्त्रद्वारा रविवारके दिन दस हजार आहुतियाँ राहुके लिये दे, चरुसे भी हवन करे। पयस्विनी कपिला गौ, अतसी, तिल, शंख और युग्मवस्त्र ब्राह्मणको दानमें दे। वारुणहोम भी करे। इससे सारे दोष-पाप नष्ट हो जाते हैं।

यदि जम्बूक, गृध्र, कौए आदि भीषण ध्वनि करते हों तथा भयंकर नृत्य करते हों तो मृत्युकी आशंका होती है, जलती हुई आगके समान धूमकेतुका दिखलायी पड़ना, जमीनका खिसकना मालूम होना—ऐसी स्थितिमें राजा पीड़ित होता है, राज्यमें अकाल पड़ता है तथा अनेक प्रकारके अनिष्ट होते हैं। इनकी शान्तिके लिये स्वर्णछत्रयुक्त सात घोड़ोंसे युक्त सूर्यमण्डप बनाकर ब्राह्मणको दान करे। बिल्वपत्र भी दे, ऐन्द्र मन्त्रसे हवन करे। यदि अकस्मात् शाल, ताल, अक्ष, खदिर, कमल आदि घरके अंदर ही उत्पन्न हों तो ये सभी केतुग्रहजन्य दोष हैं। इनकी शान्तिके लिये '**त्र्यम्बकं॰**' (यजु॰ ३। ६०) इस मन्त्रसे दही, मधु, घृतसे दस हजार आहुतियाँ दे तथा चरु भी प्रदान करे। नीली सवत्सा पयस्विनी गाय, वस्त्र, केतुकी प्रतिमा आदि ब्राह्मणको दान करे।

दक्षिण दिशामें अपनी छाया अपने पैरके एकदम समीप आ जाय और छायामें दो या पाँच सिर दिखलायी दें अथवा छिन्न-भिन्न रूपमें सिर दिखलायी दे तो देखनेवालेकी सप्ताहके भीतर ही मृत्युकी आशंका होती है। कौआ, बिल्ली, तोता तथा कपोतका मैथुन दिखलायी दे तो ये दुर्निमित्त राहुजन्य उत्पात हैं। इनकी शान्तिके लिये शनिवारके दिन शनिके निमित्त दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये। अर्क-पुष्पसे शनिकी पूजा करे तथा चरुसे सौ बार आहुति दे। वाम और दक्षिणके क्रमसे यदि बाहु, पैर तथा आँखमें स्पन्दन हो तो इससे मृत्युका भय होता है। यह सोमग्रहजनित दुर्निमित्त है। पुस्तक, यज्ञोपवीत, चरु तथा इन्द्र-ध्वजमें आग लग जाय तो यह सूर्यजन्य दुर्निमित्त है। इसकी शान्तिके लिये सूर्यके निमित्त त्रिमधुयुक्त कनेरके पुष्पोंसे आहुतियाँ देनी चाहिये। जिन ग्रहोंका दुर्निमित्त दिखलायी दे, उसकी शान्तिके लिये ग्रहों तथा उसके अधिदेवता और प्रत्यधिदेवताके निमित्त भी विधिपूर्वक पूजन-हवन-स्तवन, दान आदि करना चाहिये। विधिके अनुसार क्रिया न करनेसे दोष होता है। अतः ये सभी शान्त्यादि-कर्म शास्त्रोक्त विधानके अनुसार ही करने चाहिये। इससे शान्ति प्राप्त होती है और सर्वविध कल्याण-मङ्गल होता है।

(अध्याय २०)

॥ मध्यमपर्व, तृतीय भाग सम्पूर्ण ॥

॥ भविष्यपुराणान्तर्गत मध्यमपर्व सम्पूर्ण ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

प्रतिसर्गपर्व

(प्रथम खण्ड)

*[वास्तवमें भविष्यपुराणके भविष्य नामकी सार्थकता प्रतिसर्गपर्वमें ही चरितार्थ हुई दीखती है। वंशानुकीर्तन सभी पुराणोंका मुख्य लक्षण है—**'वंशानुकीर्तनं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्।'** यह विषय सभी पुराणोंमें प्राप्त होता है। भविष्यपुराणमें तो कई स्थानोंपर आया है, पर प्रतिसर्गपर्वने आधुनिक इतिहासका मार्ग प्रशस्त कर दिया है। अरबी-फारसी और उर्दूमें इतिहासको तवारीख (तारीख) कहते हैं। सभी घटनाओंका उल्लेख तारीख (तिथि, वर्ष) क्रमपूर्वक हुआ है। अंग्रेजीमें भी इतिहासका सही नाम 'क्रानिकिल्स' है। भारतीय दृष्टिमें कालका प्रवाह अनन्त है। एक सृष्टिके बाद दूसरी सृष्टिमें कल्प-महाकल्प लगे हुए हैं—जैसे—**'इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥'** इसलिये किसी एक कल्पका ही वर्णन एक पुराणमें सम्भव होता है। प्रतिसर्गपर्व अपनेको वाराह-कल्पमें वैवस्वत मन्वन्तरका ही इतिहास-निर्देशक बतला रहा है और बड़ी सावधानीसे सत्ययुग, त्रेतायुग आदिके दीर्घायु राजाओंके राज्य आदिका उल्लेख कर रहा है। बादमें कलियुगी राजाओंके वंशका भी वर्णन करता है। प्रस्तुत विवरणमें नामोंकी विशेष शुद्धिके लिये वाल्मीकीय रामायण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, श्रीमद्भागवतके साथ अन्य ग्रन्थों एवं ऐतिहासिक पौराणिक कोषोंसे भी सहायता ली गयी है।—**सम्पादक**]*

सत्ययुगके राजवंशका वर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

'भगवान् नर-नारायणके अवतारस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके सखा नरश्रेष्ठ अर्जुन, उनकी लीलाओंको प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उनके चरित्रोंका वर्णन करनेवाले वेदव्यासको नमस्कार कर अष्टादश पुराण, रामायण और महाभारत आदि जय नामसे व्यपदिष्ट ग्रन्थोंका वाचन करना चाहिये।'

महामुनि आचार्य शौनकजीने पूछा—मुने! ब्रह्माकी आयुके उत्तरार्धमें भविष्य नामके महाकल्पमें प्रथम वर्षके तीसरे दिन वैवस्वत नामक मन्वन्तरके अट्ठाईसवें सत्ययुगमें कौन-कौन राजा हुए? आप उनके चरित्र तथा राज्यकालका वर्णन करें।

सूतजी बोले—श्वेतवाराहकल्पमें ब्रह्माके वर्षके तीसरे दिन सातवें मुहूर्तके प्रारम्भ होनेपर महाराज वैवस्वत मनु उत्पन्न हुए। उन्होंने सरयू नदीके तटपर दिव्य सौ वर्षोंतक तपस्या की और उनकी छींकसे उनके पुत्ररूपमें राजा इक्ष्वाकुका जन्म हुआ।

ब्रह्माके वरदानसे उन्होंने दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति की। राजा इक्ष्वाकु भगवान् विष्णुके परम भक्त थे। उन्हींकी कृपासे उन्होंने छत्तीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र विकुक्षि हुए, अपने पिता इक्ष्वाकुसे सौ वर्ष कम अर्थात् पैंतीस हजार नौ सौ वर्षोंतक राज्य करके वे स्वर्ग पधार गये। उनके पुत्र रिपुञ्जय हुए और उन्होंने भी पिता विकुक्षिसे सौ वर्ष कम अर्थात् पैंतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र ककुत्स्थ हुए। उन्होंने पैंतीस हजार सात सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र अनेना हुए, उन्होंने पैंतीस हजार छः सौ वर्षोंतक राज्य किया। अनेनाके पुत्र पृथु नामसे विख्यात हुए। उन्होंने पैंतीस हजार पाँच सौ वर्षोंतक राज्य किया और उनके पुत्र विष्वगश्व हुए, उन्होंने पैंतीस हजार चार सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र अद्रि हुए, उन्होंने पैंतीस हजार तीन सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र भद्राश्व हुए, जिन्होंने पैंतीस हजार दो सौ वर्षोंतक राज्य किया। राजा भद्राश्वके पुत्र युवनाश्व हुए, उन्होंने पैंतीस हजार एक सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र श्रावस्त हुए। (इन्होंने श्रावस्ती नामकी नगरी बसायी थी।) उस समय सत्ययुगमें समग्र भारतवर्षमें धर्म अपने तप,

शौच, दया तथा सत्य चारों चरणोंसे[1] विद्यमान था। इन सभी इक्ष्वाकुवंशी राजाओंने उदयाचलसे अस्ताचलपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वीपर नीति एवं धर्मपूर्वक राज्य किया। महाराज श्रावस्तने पैंतीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र बृहदश्व हुए, उन्होंने चौंतीस हजार नौ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र कुवलयाश्व हुए, उन्होंने चौंतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया।

महाराज कुवलयाश्वके पुत्र दृढाश्व हुए, जिन्होंने अपने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् तैंतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र निकुम्भक हुए, उन्होंने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् बत्तीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र संकटाश्व हुए, उन्होंने एक हजार वर्ष कम अर्थात् इकतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र प्रसेनजित् हुए, उन्होंने तीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। इसके बाद रवणाश्व हुए, उन्होंने उनतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र मान्धाता हुए, उन्होंने अपने पितासे एक सौ वर्ष कम अर्थात् उनतीस हजार सात सौ वर्षोंतक राज्य किया। महाराज मान्धाताके पुत्र पुरुकुत्स हुए, उन्होंने उनतीस हजार छः सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र त्रिशदश्व हुए, उनके रथमें तीस श्रेष्ठ घोड़े जुते रहते थे, इसीलिये वे त्रिंशदश्वके नामसे विख्यात हुए। राजा त्रिंशदश्वके पुत्र अनरण्य हुए, उन्होंने अट्ठाईस हजार वर्षोंतक शासन किया। महाराज अनरण्यके पुत्र पृषदश्व हुए, वे छः हजार वर्षोंतक राज्य करके अन्तमें पितृलोकको चले गये। अनन्तर हर्यश्वनामके राजा हुए, उन्होंने राजा पृषदश्वसे एक हजार वर्ष कम अर्थात् पाँच हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र वसुमान् हुए, उन्होंने उनसे एक हजार वर्ष कम अर्थात् चार हजार वर्षोंतक राज्य किया। तदनन्तर उनको त्रिधन्वा नामका पुत्र हुआ, उसने अपने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् तीन हजार वर्षोंतक राज्य किया। तबतक भारतमें सत्ययुगका द्वितीय पाद समाप्त हो गया।

महाराज त्रिधन्वाके पुत्र त्र्य्यारुणि हुए, वे अपने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् दो हजार वर्षोंतक राज्य करके स्वर्ग चले गये। उनके पुत्र त्रिशंकु हुए और उन्होंने मात्र एक हजार वर्ष राज्य किया। छद्मके कारण राजा त्रिशंकु हीनताको प्राप्त हुए। उनके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए, इन्होंने बीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र रोहित हुए, उन्होंने पिताके समान ही राज्य किया। उनके पुत्रका नाम हारीत था। राजा हारीतने भी पिताके समान ही दीर्घकालतक राज्य किया। उनके पुत्र चंचुभूप हुए। पिताके तुल्य वर्षोंतक उन्होंने राज्य किया। उनके पुत्र विजय हुए। इन्होंने भी पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र रुरुक हुए, उन्होंने भी पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। ये सभी राजा विष्णुभक्त थे एवं इनकी सेना बहुत विशाल थी। उनके राज्यमें मणि-स्वर्णकी समृद्धि तथा प्रचुर धन-सम्पत्ति सभीको सुलभ थी। उस समय सत्ययुगका पूर्ण धर्म विद्यमान था।

सत्ययुगके तृतीय चरणके मध्यमें राजा रुरुकके पुत्र महाराज सगर हुए। वे शिवभक्त तथा सदाचार-सम्पन्न थे। उनके (एक रानीसे उत्पन्न साठ हजार) पुत्र सागर नामसे प्रसिद्ध हुए। मुनियोंने तीस हजार वर्षोंतक उनका राज्य-काल माना है। (कपिल मुनिके शापसे) सगर-पुत्र नष्ट हो गये। दूसरी रानीसे असमंजस नामका एक पुत्र हुआ। उनके पुत्र अंशुमान् हुए। उनके दिलीप और दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए, जिनके द्वारा पृथ्वीपर लायी गयी गङ्गा भागीरथी नामसे प्रसिद्ध हुई। भगीरथके पुत्र श्रुतसेन हुए। महाराज सगरसे श्रुतसेनतक सभी राजा शैव थे। श्रुतसेनके पुत्र नाभाग तथा नाभागके पुत्र राजा अम्बरीष अत्यन्त प्रसिद्ध विष्णुभक्त हुए, जिनकी रक्षामें सुदर्शनचक्र रात-दिन नियुक्त रहता था। तबतक भारतमें सत्ययुगका तीसरा चरण समाप्त हो चुका था।

सत्ययुगके चतुर्थ चरणमें महाराज अम्बरीषके पुत्र सिन्धुद्वीप हुए, उनके पुत्र अयुताश्व, अयुताश्वके पुत्र ऋतुपर्ण, उनके पुत्र सर्वकाम तथा उनके पुत्र कल्माषपाद हुए। कल्माषपादके पुत्र सुदासको वसिष्ठजीके आशीर्वादसे मदयन्तीसे उत्पन्न अश्मक (सौदास) नामका पुत्र प्राप्त हुआ। सौदासतकके ये सात राजा वैष्णव कहे गये हैं। गुरुके शापसे सौदासने अङ्गोंसहित अपना सम्पूर्ण राज्य गुरुको समर्पित कर

१-मनुस्मृति (१।८६)में तप, ज्ञान, यज्ञ तथा दान—ये धर्मके चार पाद बताये गये हैं।

दिया। गोकर्ण लिङ्ग-भक्त शैव कहा जाता है। राजा अश्मकके पुत्र हरिवर्मा साधुओंके पूजक थे। उनके पुत्र दशरथ (प्रथम) हुए, उनके पुत्र दिलीप (प्रथम) हुए, उनके पुत्र विश्वसह हुए, उन्होंने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके अधर्म-आचरणके कारण उस समय सौ वर्षोंतक भयंकर अनावृष्टि हुई, जिससे उनका राज्य विनष्ट हो गया और रानीके आग्रह करनेपर महर्षि वसिष्ठने यज्ञकर यज्ञके द्वारा खट्वाङ्ग नामक पुत्र उत्पन्न किया। राजा खट्वाङ्गने शस्त्र धारण कर इन्द्रकी सहायतासे तीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। तदनन्तर देवताओंसे वर प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की। उनके पुत्र दीर्घबाहु हुए, उन्होंने बीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र सुदर्शन हुए। महामनीषी सुदर्शनने राजा काशीराजकी पुत्रीसे विवाह कर देवीके प्रसादसे राजाओंको जीतकर धर्मपूर्वक सम्पूर्ण भरतखण्डपर पाँच हजार वर्षोंतक राज्य किया।

एक दिन स्वप्नमें महाकालीने राजा सुदर्शनसे कहा—'वत्स ! तुम अपनी पत्नीके साथ तथा महर्षि वसिष्ठ आदिसे समन्वित होकर हिमालयपर जाकर निवास करो; क्योंकि शीघ्र ही भीषण झंझावातके प्रभावसे भरतखण्डका प्रायः क्षय हो जायगा। पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओंके अनेक उपद्वीप झंझावातोंके कारण समुद्रके गर्तमें विलीन-से हो गये हैं। भारतवर्षमें भी आजके सातवें दिन भीषण झंझावात आयेगा।' स्वप्नमें भगवतीद्वारा प्रलयका निर्देश पाकर महाराज सुदर्शन प्रधान राजाओं, वैश्यों तथा ब्राह्मणों और अपने परिकरोंके साथ हिमालयपर चले गये और भारतका बड़ा-सा भूभाग समुद्री-तूफान आदिके प्रभावसे नष्ट हो गया। सम्पूर्ण प्राणी विनष्ट हो गये और सारी पृथ्वी जलमग्न हो गयी। पुनः कुछ समयके अनन्तर भूमि स्थलरूपमें दिखलायी देने लगी।

(अध्याय १)

त्रेतायुगके सूर्य एवं चन्द्र-राजवंशोंका वर्णन

सूतजी बोले—महामुने ! वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिमें बृहस्पतिवारके दिन महाराज सुदर्शन अपने परिकरोंके साथ हिमालयपर्वतसे पुनः अयोध्या लौट आये। मायादेवीके प्रभावसे अयोध्यापुरी पुनः विविध अन्न-धनसे परिपूर्ण एवं समृद्धिसम्पन्न हो गयी। महाराज सुदर्शनने[1] दस हजार वर्षोंतक राज्यकर नित्यलोकको प्राप्त किया। उनके पुत्र दिलीप (द्वितीय) हुए, उन्हें नन्दिनी गौके वरदानसे श्रेष्ठ रघु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा दिलीपने दस हजार वर्षोंतक भलीभाँति राज्य किया। दिलीपके बाद पिताके ही समान महाराज रघुने भी राज्य किया। भृगुनन्दन ! त्रेतामें ये सूर्यवंशी क्षत्रिय रघुवंशी नामसे प्रसिद्ध हुए। ब्राह्मणके वरदानसे उनके अज नामक पुत्र हुआ, उन्होंने भी पिताके समान ही राज्य किया। उनके पुत्र महाराज दशरथ (द्वितीय) हुए, दशरथके पुत्ररूपमें (भगवान् विष्णुके अवतार) स्वयं राम उत्पन्न हुए। उन्होंने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया। श्रीरामके पुत्र कुशने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। कुशके पुत्र अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके पुत्र नल[2] हुए, जो शक्तिके परम उपासक थे। नलके पुत्र नभ, नभके पुत्र पुण्डरीक, उनके पुत्र क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाके देवानीक और देवानीकके पुत्र अहीनग तथा अहीनगके पुत्र कुरु हुए। इन्होंने त्रेतामें सौ योजन विस्तारका कुरुक्षेत्र बनाया। कुरुके पुत्र पारियात्र, उनके बलस्थल, बलस्थलके पुत्र उक्थ, उनके वज्रनाभि, वज्रनाभिके पुत्र शङ्खनाभि और उनके व्युत्थनाभि हुए। व्युत्थनाभिके पुत्र विश्वपाल, उनके स्वर्णनाभि और स्वर्णनाभिके पुत्र पुष्पसेन हुए। पुष्पसेनके पुत्र ध्रुवसन्धि तथा ध्रुवसन्धिके पुत्र अपवर्मा हुए। अपवर्माके पुत्र शीघ्रगन्ता, शीघ्रगन्ताके पुत्र मरुपाल और उनके पुत्र प्रसुश्रुत हुए। प्रसुश्रुतके पुत्र सुसंधि हुए। उन्होंने पृथ्वीके एक छोरसे दूसरे छोरतक राज्य किया। उनके पुत्र अमर्षण हुए। उन्होंने पिताके समान राज्य किया। उनके पुत्र महाश्व, महाश्वके पुत्र बृहद्बल और इनके पुत्र बृहद्दैशान हुए। बृहद्दैशानके पुत्र मुरुक्षेप, उनके वत्सपाल और उनके पुत्र वत्सव्यूह हुए। वत्सव्यूहके पुत्र राजा

१-राजा सुदर्शनकी विस्तृत कथा देवीभागवतके तृतीय स्कन्धमें प्राप्त होती है।

२-ये नल दमयन्तीके पति अत्यन्त प्रसिद्ध महाराज नलसे भिन्न हैं।

प्रतिव्योम हुए। उनके पुत्र देवकर और उनके पुत्र सहदेव हुए। सहदेवके पुत्र बृहदश्व, उनके भानुरत्न तथा भानुरत्नके सुप्रतीक हुए। उनके मरुदेव[1] और मरुदेवके पुत्र सुनक्षत्र हुए। सुनक्षत्रके पुत्र केशीनर, उनके पुत्र अन्तरिक्ष और अन्तरिक्षके पुत्र सुवर्णाङ्ग हुए। सुवर्णाङ्गके पुत्र अमित्रजित्, उनके पुत्र बृहद्राज और बृहद्राजके पुत्र धर्मराज हुए। धर्मराजके पुत्र कृतञ्जय और उनके पुत्र रणञ्जय हुए। रणञ्जयके पुत्र सञ्जय, उनके पुत्र शाक्यवर्धन और शाक्यवर्धनके पुत्र क्रोधदान हुए। क्रोधदानके पुत्र अतुलविक्रम, उनके पुत्र प्रसेनजित् और प्रसेनजित्के पुत्र शूद्रक हुए। शूद्रकके पुत्र सुरथ हुए। ये सभी महाराज रघुके वंशज तथा देवीकी आराधनामें रत रहते थे। यज्ञ-यागादिमें तत्पर रहकर अन्तमें इन सभी राजाओंने स्वर्गलोक प्राप्त किया। जो बुद्धके वंशज हुए, वे सब पूर्ण शुद्ध क्षत्रिय नहीं थे।

त्रेतायुगके तृतीय चरणके प्रारम्भसे नवीनता आ गयी। देवराज इन्द्रने रोहिणी-पति चन्द्रमाको पृथ्वीपर भेजा। चन्द्रमाने तीर्थराज प्रयागको अपनी राजधानी बनाया। वे भगवान् विष्णु तथा भगवान् शिवकी आराधनामें तत्पर रहे। भगवती महामायाकी प्रसन्नताके लिये उन्होंने सौ यज्ञ किये और अट्ठारह हजार वर्षोंतक राज्यकर वे पुनः स्वर्गलोक चले गये। चन्द्रमाके पुत्र बुध हुए। बुधका विवाह इलाके साथ विधिपूर्वक हुआ, जिससे पुरूरवाकी उत्पत्ति हुई। राजा पुरूरवाने चौदह हजार वर्षोंतक पृथ्वीपर शासन किया। उनको भगवान् विष्णुकी आराधनामें तत्पर रहनेवाला आयु नामका एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ। महाराज आयु छत्तीस हजार वर्षोंतक राज्यकर गन्धर्वलोकको प्राप्त करके पुनः स्वर्गमें देवताके समान आनन्द भोग रहे हैं। आयुके पुत्र हुए नहुष, जिन्होंने अपने पिताके समान ही धर्मपूर्वक पृथ्वीपर राज्य किया। तदनन्तर उन्होंने इन्द्रत्वको प्राप्तकर तीनों लोकोंको अपने अधीन कर लिया। फिर बादमें महर्षि दुर्वासाके शापसे[2] राजा नहुष अजगर हो गये। इनके पुत्र ययाति हुए। ययातिके पाँच पुत्र हुए, जिनमेंसे तीन पुत्र म्लेच्छ देशोंके शासक हो गये[3]। शेष दो पुत्रोंने आर्यत्वको प्राप्त किया। उनमें यदु ज्येष्ठ थे और पुरु कनिष्ठ। उन्होंने तपोबल तथा भगवान् विष्णुके प्रसादसे एक लाख वर्षोंतक राज्य किया, अनन्तर वे वैकुण्ठ चले गये।

यदुके पुत्र क्रोष्टुने साठ हजार वर्षोंतक राज्य किया। क्रोष्टुके पुत्र वृजिनघ्न हुए, उन्होंने बीस हजार वर्षोंतक पृथ्वीपर शासन किया; उनको स्वाहार्चन नामका एक पुत्र हुआ। उनके पुत्र चित्ररथ हुए और उनके अरविन्द हुए। अरविन्दको विष्णुभक्तिपरायण श्रवस् नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उनके तामस हुए, तामसके उशन नामका पुत्र हुआ। उनके पुत्र शीतांशुक हुए तथा शीतांशुकके पुत्र कमलांशु हुए। उनके पुत्र पारावत हुए, उन्हें ज्यामघ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्यामघके पुत्र विदर्भ हुए। उनको क्रथ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उनके पुत्र कुन्तिभोज हुए। कुन्तिभोजने पातालमें निवास करनेवाली पुरु दैत्यकी पुत्रीसे विवाह किया, जिससे वृषपर्वण नामका पुत्र हुआ। उनके पुत्र मायाविद्य हुए, जो देवीके भक्त थे। उन्होंने प्रयागके प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) में दस हजार वर्षोंतक राज्य किया फिर वे स्वर्ग सिधार गये। मायाविद्यके पुत्र जनमेजय (प्रथम) हुए और उनका पुत्र प्रचिन्वान् हुआ। प्रचिन्वान्के पुत्र प्रवीर हुए। उनके पुत्र नभस्य हुए, नभस्यके पुत्र भवद और उनके सुद्युम्न नामका पुत्र हुआ। सुद्युम्नके पुत्र बाहुगर, उनके पुत्र संयाति और संयातिके पुत्र धनयाति हुए। धनयातिके पुत्र ऐन्द्राश्व, उनके पुत्र रन्तीनर और रन्तीनरके पुत्र सुतपा हुए। सुतपाके पुत्र संवरण हुए, जिन्होंने हिमालय पर्वतपर तपस्या करनेकी इच्छा की और सौ वर्षोंतक तपस्या करनेपर भगवान् सूर्यने अपनी तपती नामकी कन्यासे इनका विवाह कर दिया। संतुष्ट होकर राजा संवरण सूर्यलोक चले गये। तदनन्तर कालके प्रभावसे त्रेतायुगका अन्त समय उपस्थित हो गया, जिससे चारों समुद्र उमड़ आये और प्रलयका दृश्य उपस्थित हो गया। दो वर्षोंतक पृथ्वी

१-अन्य सभी पुराणोंमें सूर्यवंशका यहींतक वर्णन है। पुराणोंके अनुसार मरु देवापिके साथ कलाप ग्राममें निवासकर साधना कर रहे हैं, किंतु इस पुराणके अनुसार सूर्यवंशका वर्णन सुदूर आगेतक हुआ है, जो प्रायः कलियुगतक पहुँच जाता है।

२-महाभारत आदिमें ये अगस्त्य ऋषिके शापसे अजगर हुए थे।

३-इनका पूरा विवरण मत्स्यपुराणके प्रारम्भिक अध्यायोंमें प्राप्त होता है।

पर्वतोंसहित समुद्रमें विलीन रही। झंझावातोंके प्रभावसे समुद्र सूख गया, फिर महर्षि अगस्त्यके तेजसे भूमि स्थलीभूत होकर दीखने लगी और पाँच वर्षोंके अंदर पृथ्वी वृक्ष, दूर्वा आदिसे सम्पन्न हो गयी। भगवान् सूर्यदेवकी आज्ञासे महाराज संवरण महारानी तपती, महर्षि वसिष्ठ और तीनों वर्णोंके लोगोंके साथ पुनः पृथ्वीपर आ गये। (अध्याय २)

द्वापर युगके चन्द्रवंशीय राजाओंका वृत्तान्त

महर्षि शौनकने पूछा—लोमहर्षणजी! आप यह बताइये कि महाराज संवरण[1] किस समय पृथ्वीपर आये और उन्होंने कितने समयतक राज्य किया तथा द्वापरमें कौन-कौन राजा हुए, यह सब भी बतायें।

सूतजी बोले—महर्षे! महाराज संवरण भाद्रपदके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी तिथिको शुक्रवारके दिन मुनियोंके साथ प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) में आये। विश्वकर्माने वहाँ एक ऐसे विशाल प्रासादका निर्माण किया, जो ऊँचाईमें आधा कोस या डेढ़ किलोमीटरके लगभग था। महाराज संवरणने पाँच योजन या बीस कोसके क्षेत्रमें प्रतिष्ठानपुरको अत्यन्त सुन्दरता एवं स्वच्छतापूर्वक बसाया। एक ही समयमें (चन्द्रमाके पुत्र) बुधके वंशमें उत्पन्न प्रसेन और यदुवंशीय राजा सात्वत शूरसेन मधुरा (मथुरा) के शासक हुए। म्लेच्छवंशीय श्मश्रुपाल (दाढ़ी रखनेवाला) मरुदेश (अरब, ईरान और ईराक) के शासक हुए। क्रमशः प्रजाओंके साथ राजाओंकी संख्या बढ़ती गयी। राजा संवरणने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। इसके बाद उनके पुत्र अर्चाज्ञ हुए, उन्होंने भी दस हजार वर्षोंतक शासन किया। उनके पुत्र सूर्यजापीने पिताके शासनकालके आधे समयतक राज्य किया। उनके पुत्र सौरयज्ञपरायण सूर्ययज्ञ हुए। उनके पुत्र आदित्यवर्धन, आदित्यवर्धनके पुत्र द्वादशात्मा और उनके पुत्र दिवाकर हुए। इन्होंने भी प्रायः अपने पितासे कुछ कम ही दिनोंतक राज्य किया। दिवाकरके पुत्र प्रभाकर और प्रभाकरके पुत्र भास्वदात्मा हुए। भास्वदात्माके पुत्र विवस्वज्ज्ञ, उनके पुत्र हरिदश्वार्चन और उनके पुत्र वैकर्तन हुए। वैकर्तनके पुत्र अर्केष्टिमान्, उनके पुत्र मार्तण्डवत्सल और मार्तण्डवत्सलके पुत्र मिहिरार्थ तथा उनके अरुणपोषण हुए। अरुणपोषणके पुत्र द्युमणि, द्युमणिके पुत्र तरणियज्ञ और उनके पुत्र मैत्रेष्टिवर्धन हुए। मैत्रेष्टिवर्धनके पुत्र चित्रभानुर्जक, उनके वैरोचन और वैरोचनके पुत्र हंसन्यायी हुए। उनके पुत्र वेदप्रवर्धन, वेदप्रवर्धनके पुत्र सावित्र और इनके पुत्र धनपाल हुए। धनपालके पुत्र म्लेच्छहन्ता, म्लेच्छहन्ताके आनन्दवर्धन, इनके धर्मपाल और धर्मपालके पुत्र ब्रह्मभक्त हुए। उनके पुत्र ब्रह्मेष्टिवर्धन, उनके पुत्र आत्मप्रपूजक हुए और उनके परमेष्ठी नामक पुत्र हुए। परमेष्ठीके पुत्र हैरण्यवर्धन, उनके धातृयाजी, उनके विधातृप्रपूजक और उनके पुत्र द्रुहिणक्रतु हुए। द्रुहिणक्रतुके पुत्र वैरंच्य, उनके पुत्र कमलासन और कमलासनके पुत्र शमवर्ती हुए। शमवर्तीके पुत्र श्राद्धदेव और उनके पितृवर्धन, उनके सोमदत्त और सोमदत्तके पुत्र सौमदत्ति हुए। सौमदत्तिके पुत्र सोमवर्धन, उनके अवतंस, अवतंसके पुत्र प्रतंस और प्रतंसके पुत्र परातंस हुए। परातंसके पुत्र अयतंस, उनके पुत्र समातंस, उनके पुत्र अनुतंस और अनुतंसके पुत्र अधितंस हुए। अधितंसके अभितंस, उनके पुत्र समुत्तंस, उनके तंस और तंसके पुत्र दुष्यन्त हुए।

महाराज दुष्यन्तकी पत्नी शकुन्तलासे भरत नामके पुत्र हुए, जो सदा सूर्यदेवकी पूजामें तत्पर रहते थे। महाराज भरतने महामाया भगवतीकी कृपासे सम्पूर्ण पृथ्वीपर छत्तीस हजार वर्षोंतक चक्रवर्ती सम्राट्के रूपमें राज्य किया और उनके पुत्र महाबल हुए। महाबलके पुत्र भरद्वाज हुए। भरद्वाजके पुत्र मन्युमान् हुए, जिन्होंने अट्ठारह हजार वर्षोंतक पृथ्वीपर शासन किया। उनके पुत्र बृहत्क्षेत्र, उनके पुत्र सुहोत्र और सुहोत्रके पुत्र वीतिहोत्र हुए, इन्होंने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। वीतिहोत्रके पुत्र यज्ञहोत्र, यज्ञहोत्रके पुत्र शक्रहोत्र हुए। इन्द्रदेवने प्रसन्न होकर इन्हें स्वर्ग प्रदान किया। उस समय अयोध्यामें महाबली प्रतापेन्द्र नामक राजा हुए, उन्होंने दस हजार वर्षोंतक भारतपर शासन किया। इनके पुत्र मण्डलीक हुए। मण्डलीकके पुत्र विजयेन्द्र, विजयेन्द्रके पुत्र धनुर्दीप्त हुए।

महाराज शक्रहोत्र इन्द्रकी आज्ञासे घृताचीके साथ पुनः

१-इनकी विस्तृत कथा महाभारतके आदिपर्व (अ० ९४) में विस्तारसे, किंतु १७२ तक प्रायः आती रही है।

भूतलपर आये और उन्होंने राजा धनुर्दीसको जीतकर पृथ्वीपर शासन किया। शक्रहोत्रके घृताचीसे हस्ती नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। हस्तीने ऐरावत हाथीके पीठपर आरूढ़ होकर पश्चिममें अपने नामसे हस्तिना नामक नगरीका निर्माण किया। यह दस योजन विस्तृत है तथा स्वर्गङ्गाके तटपर अवस्थित है। वहाँ उन्होंने दस हजार वर्षोंतक निवासकर राज्य किया। महाराज हस्तीके पुत्र अजमीढ, अजमीढके पुत्र रक्षपाल, रक्षपालके पुत्र सुशम्यर्ण और उनके पुत्र कुरु हुए। इन्द्रके वरदानसे वे सदेह स्वर्ग चले गये।

उस समय मथुरामें सात्वत-वंशमें वृष्णि नामके एक महाबली राजा हुए। उन्होंने भगवान् विष्णुके वरदानसे पाँच हजार वर्षोंतक सम्पूर्ण राज्यको अपने अधीन रखा। राजा वृष्णिके पुत्र निरावृति हुए, निरावृतिके पुत्र दशारी, दशारीके पुत्र वियामुन और वियामुनके पुत्र जीमूत और इनके पुत्र विकृति हुए। विकृतिके पुत्र भीमरथ, उनके पुत्र नवरथ और नवरथके दशरथ हुए। उनके पुत्र शकुनि, उनके कुशुम्भ और कुशुम्भके पुत्र देवरथ हुए। देवरथके पुत्र देवक्षेत्र, उनके पुत्र मधु और मधुके पुत्र नवरथ और उनके कुरुवत्स हुए। इन सभी लोगोंने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। कुरुवत्सके पुत्र अनुरथ, उनके पुरुहोत्र और पुरुहोत्रके पुत्र विचित्राङ्ग हुए, उनके सात्वतवान् और उनके पुत्र भजमान हुए। उनके पुत्र विदूरथ, उनके सुरभक्त और सुरभक्तके सुमना हुए। इन सभीने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। सुमनाके पुत्र ततिक्षेत्र, उनके स्वायम्भुव, उनके हरिदीपक और हरिदीपकके देवमेधा हुए। इन सभीने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। देवमेधाके पुत्र सुरपाल हुए।

द्वापरके तृतीय चरणके समाप्त होनेपर देवराज इन्द्रकी आज्ञासे आयी सुकेशी नामकी अप्सराके स्वामी कुरु राजा हुए। इन्होंने कुरुक्षेत्रका निर्माण किया जो बीस योजन विस्तृत है। विद्वानोंने उसे पुण्यक्षेत्र बताया है। महाराज कुरुने बारह हजार वर्षोंतक राज्य किया। इनके पुत्र जह्नु, जह्नुके सुरथ और सुरथके पुत्र विदूरथ हुए। विदूरथके पुत्र सार्वभौम, इनके जयसेन और उनके पुत्र अर्णव हुए। महाराज अर्णवका शासन-क्षेत्र चारों समुद्रतक था और इन्होंने अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। अर्णवके पुत्र अयुतायु हुए, जिन्होंने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। अयुतायुके पुत्र अक्रोधन, उनके ऋक्ष, उनके पुत्र भीमसेन और भीमसेनके पुत्र दिलीप हुए। इन सभी राजाओंने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। दिलीपके पुत्र प्रतीप हुए, इन्होंने पाँच हजार वर्षोंतक शासन किया। प्रतीपके पुत्र शन्तनु हुए और उन्होंने एक हजार वर्षोंतक राज्य किया, उन्हें विचित्रवीर्य नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जिन्होंने दो सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र पाण्डु हुए, उन्होंने पाँच सौ वर्षोंतक राज्य किया, उनके पुत्र युधिष्ठिर हुए, उन्होंने पचास वर्षोंतक राज्य किया। सुयोधन (दुर्योधन) ने साठ वर्षोंतक राज्य किया और कुरुक्षेत्रमें (युधिष्ठिरके भाई भीमसेन)के द्वारा उसकी मृत्यु हुई।

प्राचीन कालमें दैत्योंका देवताओंद्वारा भारी संहार हुआ था। वे ही सब दैत्य शन्तनुके राज्यमें पुनः भूलोकमें उत्पन्न हुए। दुर्योधनकी विशाल सेनाके भारसे परिव्याप्त वसुन्धरा इन्द्रकी शरणमें गयी, तब भगवान् श्रीहरिका अवतार हुआ। सौरि वसुदेवके द्वारा देवकीके गर्भसे उन्होंने अवतार लिया। वे एक सौ पैंतीस वर्षोंतक[1] पृथ्वीपर रहकर उसके बाद गोलोक चले गये। भगवान् श्रीकृष्णका अवतार द्वापरके चतुर्थ चरणके अन्तमें हुआ था।

इसके बाद हस्तिनापुरमें अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्‌ने राज्य किया। परीक्षित्‌के राज्य करनेके बाद उनके पुत्र जनमेजयने राज्य किया। तदनन्तर उनके पुत्र महाराज शतानीक पृथ्वीके शासक हुए। उनके पुत्र यज्ञदत्त (सहस्रानीक) हुए। उनके पुत्र निश्चक्र[2] (निचक्नु) हुए। उनके पुत्र उष्ट्र (उष्ण)पाल हुए। उनके पुत्र चित्ररथ और चित्ररथके पुत्र धृतिमान् और उनके पुत्र सुषेण हुए, सुषेणके पुत्र सुनीथ, उनके मखपाल, उनके चक्षु

१-विभिन्न पुराणोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी स्थितिकालका उल्लेख कुछ अन्तरसे प्राप्त होता है, विशेषकर महाभारत, भागवत, हरिवंश, विष्णुपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण और गर्गसंहितामें भी उनका विस्तृत चरित्र प्राप्त होता है। अधिकांश स्थलोंपर उनका स्थितिकाल एक सौ पचीस वर्ष ही निर्दिष्ट है।

२-इनके शासनकालमें ही गङ्गा हस्तिनापुरके अधिकांश भागको बहा ले गयीं। अतः इन्होंने कौशाम्बीको राजधानी बनाया, जो प्रयागसे चार योजन पश्चिम थी। (विष्णुपुराण ४। २१)

और चक्षुके पुत्र सुखवन्त (सुखावल) हुए। सुखवन्तके पुत्र पारिप्लव हुए। पारिप्लवके पुत्र सुनय, सुनयके पुत्र मेधावी, उनके नृपञ्जय और उनके पुत्र मृदु हुए। मृदुके पुत्र तिग्मज्योति, उनके बृहद्रथ और उनके पुत्र वसुदान हुए। इनके पुत्र शतानीक हुए, उनके पुत्र उदयन, उदयनके अहीनर, अहीनरके निरमित्र तथा निरमित्रके पुत्र क्षेमक हुए। महाराज क्षेमक राज्य छोड़कर कलापग्राम चले गये। उनकी मृत्यु म्लेच्छोंके द्वारा हुई। नारदजीके उपदेश एवं सत्प्रयाससे उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम प्रद्योत हुआ। राजा प्रद्योतने म्लेच्छ-यज्ञ किया, जिसमें म्लेच्छोंका विनाश हुआ। (अध्याय ३)

म्लेच्छवंशीय राजाओंका वर्णन तथा म्लेच्छ-भाषा आदिका संक्षिप्त परिचय

शौनकने पूछा—त्रिकालज्ञ महामुने! उस प्रद्योतने कैसे म्लेच्छ-यज्ञ किया? मुझे यह सब बतलायें।

श्रीसूतजीने कहा—महामुने! किसी समय क्षेमकके पुत्र प्रद्योत हस्तिनापुरमें विराजमान थे। उस समय नारदजी वहाँ आये। उनको देखकर प्रसन्न हो राजा प्रद्योतने विधिवत् उनकी पूजा की। सुखपूर्वक बैठे हुए मुनिने राजा प्रद्योतसे कहा—'म्लेच्छोंके द्वारा मारे गये तुम्हारे पिता यमलोकको चले गये हैं। म्लेच्छ-यज्ञके प्रभावसे उनकी नरकसे मुक्ति होगी और उन्हें स्वर्गीय गति प्राप्त होगी। अतः तुम म्लेच्छ-यज्ञ करो।' यह सुनकर राजा प्रद्योतकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। तब उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर कुरुक्षेत्रमें म्लेच्छ-यज्ञको तत्काल आरम्भ करा दिया। सोलह योजनमें चतुष्कोण यज्ञ-कुण्डका निर्माणकर देवताओंका आवाहनकर उस राजाने म्लेच्छोंका हनन किया। ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर अभिषेक कराया। इस यज्ञके प्रभावसे उनके पिता क्षेमक स्वर्गलोक चले गये। तभीसे राजा प्रद्योत सर्वत्र पृथ्वीपर म्लेच्छहन्ता (म्लेच्छोंको मारनेवाले) नामसे प्रसिद्ध हो गये। उनका पुत्र वेदवान् नामसे प्रसिद्ध हुआ।

म्लेच्छरूपमें स्वयं कलिने ही राज्य किया था। अनन्तर कलिने अपनी पत्नीके साथ नारायणकी पूजाकर दिव्य स्तुति की; स्तुतिसे प्रसन्न होकर नारायण प्रकट हो गये। कलिने उनसे कहा—'हे नाथ! राजा वेदवान्‌के पिता प्रद्योतने मेरे स्थानका विनाश कर दिया है और मेरे प्रिय म्लेच्छोंको नष्ट कर दिया है।'

भगवान्‌ने कहा—कले! कई कारणोंसे अन्य युगोंकी अपेक्षा तुम श्रेष्ठ हो। अनेक रूपोंको धारणकर मैं तुम्हारी इच्छाको पूर्ण करूँगा। आदम नामका पुरुष और हव्यवती (हौवा) नामकी पत्नीसे म्लेच्छवंशोंकी वृद्धि करनेवाले उत्पन्न होंगे। यह कहकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये और कलियुगको इससे बहुत आनन्द हुआ। उसने नीलाचल पर्वतपर आकर कुछ दिनोंतक निवास किया।

राजा वेदवान्‌को सुनन्द नामका पुत्र हुआ और बिना संततिके ही वह मृत्युको प्राप्त हुआ। इसके बाद आर्यावर्त देश सभी प्रकार क्षीण हो गया और धीरे-धीरे म्लेच्छोंका बल बढ़ने लगा। तब नैमिषारण्यनिवासी अठासी हजार ऋषि-मुनि हिमालयपर चले गये और वे बदरी-क्षेत्रमें आकर भगवान् विष्णुकी कथा-वार्तामें संलग्न हो गये।

सूतजीने पुनः कहा—मुने! द्वापर युगके सोलह हजार वर्ष शेष कालमें आर्य-देशकी भूमि अनेक कीर्तियोंसे समन्वित रही; पर इतने समयमें कहीं शूद्र और कहीं वर्णसंकर राजा भी हुए। आठ हजार दो सौ दो वर्ष द्वापर युगके शेष रह जानेपर यह भूमि म्लेच्छ देशके राजाओंके प्रभावमें आने लग गयी। म्लेच्छोंका आदि पुरुष आदम, उसकी स्त्री हव्यवती (हौवा) दोनों इन्द्रियोंका दमनकर ध्यानपरायण रहते थे। ईश्वरने प्रदान नगरके पूर्वभागमें चार कोसवाला एक रमणीय महावनका निर्माण किया। पापवृक्षके नीचे जाकर कलियुग सर्परूप धारणकर हौवाके पास आया। उस धूर्त कलिने हौवाको धोखा देकर गूलरके पत्तोंमें लपेटकर दूषित वायुयुक्त फल उसे खिला दिया, जिससे विष्णुकी आज्ञा भंग हो गयी। इससे अनेक पुत्र हुए, जो सभी म्लेच्छ कहलाये। आदम पत्नीके साथ स्वर्ग चला गया। उसका श्वेत नामसे विख्यात श्रेष्ठ पुत्र हुआ, जिसकी एक सौ बारह वर्षकी आयु कही गयी है। उसका पुत्र अनुह हुआ, जिसने अपने पितासे कुछ कम ही वर्ष शासन किया। उसका पुत्र कीनाश था, जिसने पितामहके समान राज्य किया। महल्लल नामका उसका पुत्र हुआ, उसका पुत्र मानगर हुआ। उसको विरद नामका पुत्र हुआ और अपने नामसे नगर बसाया। उसका पुत्र विष्णुभक्तिपरायण हनूक हुआ। फलोंका

हवन कर उसने अध्यात्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त किया। म्लेच्छधर्मपरायण वह सशरीर स्वर्ग चला गया। इसने द्विजोंके आचार-विचारका पालन किया और देवपूजा भी की, फिर भी वह विद्वानोंके द्वारा म्लेच्छ ही कहा गया। मुनियोंके द्वारा विष्णुभक्ति, अग्निपूजा, अहिंसा, तपस्या और इन्द्रियदमन—ये म्लेच्छोंके धर्म कहे गये हैं। हनूकका पुत्र मतोच्छिल हुआ। उसका पुत्र लोमक हुआ, अन्तमें उसने स्वर्ग प्राप्त किया। तदनन्तर उसका न्यूह नामका पुत्र हुआ, न्यूहके सीम, शम और भाव—ये तीन पुत्र हुए। न्यूह आत्मध्यान-परायण तथा विष्णुभक्त था। किसी समय उसने स्वप्नमें विष्णुका दर्शन प्राप्त किया और उन्होंने न्यूहसे कहा—'वत्स! सुनो, आजसे सातवें दिन प्रलय होगा। हे भक्तश्रेष्ठ ! तुम सभी लोगोंके साथ नावपर चढ़कर अपने जीवनकी रक्षा करना। फिर तुम बहुत विख्यात व्यक्ति बन जाओगे। भगवान्‌की बात मानकर उसने एक सुदृढ़ नौकाका निर्माण कराया, जो तीन सौ हाथ लम्बी, पचास हाथ चौड़ी और तीस हाथ ऊँची थी और सभी जीवोंसे समन्वित थी। विष्णुके ध्यानमें तत्पर होता हुआ वह अपने वंशजोंके साथ उस नावपर चढ़ गया। इसी बीच इन्द्रदेवने चालीस दिनोंतक लगातार मेघोंसे मूसलधार वृष्टि करायी। सम्पूर्ण भारत सागरोंके जलसे प्लावित हो गया। चारों सागर मिल गये, पृथ्वी डूब गयी, पर हिमालय पर्वतका बदरी-क्षेत्र पानीसे ऊपर ही रहा, वह नहीं डूब पाया। अट्ठासी हजार ब्रह्मवादी मुनिगण, अपने शिष्योंके साथ वहीं स्थिर और सुरक्षित रहे। न्यूह भी अपनी नौकाके साथ वहीं आकर बच गये। संसारके शेष सभी प्राणी विनष्ट हो गये। उस समय मुनियोंने विष्णुमायाकी स्तुति की।

मुनियोंने कहा—'महाकालीको नमस्कार है, माता देवकीको नमस्कार है, विष्णुपत्नी महालक्ष्मीको, राधादेवीको और रेवती, पुष्पवती तथा स्वर्णवतीको नमस्कार है। कामाक्षी, माया और माताको नमस्कार है। महावायुके प्रभावसे-मेघोंके भयंकर शब्दसे एवं उग्र जलकी धाराओंसे दारुण भय उत्पन्न हो गया है। भैरवि ! तुम इस भयसे हम किंकरोंकी रक्षा करो।' देवीने प्रसन्न होकर जलकी वृद्धिको तुरंत शान्त कर दिया। हिमालयकी प्रान्तवर्ती शिषिना नामकी भूमि एक वर्षमें जलके हट जानेपर स्थलके रूपमें दीखने लगी। न्यूह अपने वंशजोंके साथ उस भूमिपर आकर निवास करने लगा।

शौनकने कहा—मुनीश्वर ! प्रलयके बाद इस समय जो कुछ वर्तमान है, उसे अपनी दिव्य दृष्टिके प्रभावसे जानकर बतलायें।

सूतजी बोले—शौनक ! न्यूह नामका पूर्वनिर्दिष्ट म्लेच्छ राजा भगवान् विष्णुकी भक्तिमें लीन रहने लगा, इससे भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर उसके वंशकी वृद्धि की। उसने वेद-वाक्य और संस्कृतसे बहिर्भूत म्लेच्छ-भाषाका विस्तार किया और कलिकी वृद्धिके लिये ब्राह्मी* भाषाको अपशब्दवाली भाषा बनाया और उसने अपने तीन पुत्रों—सीम, शम तथा भावके नाम क्रमशः सिम, हाम तथा याकूत रख दिये। याकूतके सात पुत्र हुए—जुम्र, माजूज, मादी, यूनान, तुवलोम, सक तथा तीरास। इन्हींके नामपर अलग-अलग देश प्रसिद्ध हुए। जुम्रके दस पुत्र हुए। उनके नामोंसे भी देश प्रसिद्ध हुए। यूनानकी अलग-अलग संतानें इलीश, तरलीश, कित्ती और हूदा—इन चार नामोंसे प्रसिद्ध हुईं तथा उनके नामसे भी अलग-अलग देश बसे। न्यूहके द्वितीय पुत्र हाम (शम) से चार पुत्र कहे गये हैं—कुश, मिश्र, कूज, कनआँ। इनके नामपर भी देश प्रसिद्ध हैं। कुशके छः पुत्र हुए—सबा, हवील, सर्वत, उरगम, सवतिका और महाबली निमरूह। इनकी भी कलन, सिना, रोरक, अकद, बाबुन और रसनादेशक आदि संतानें हुईं। इतनी बातें ऋषियोंको सुनाकर सूतजी समाधिस्थ हो गये।

बहुत वर्षोंके बाद उनकी समाधि खुली और वे कहने लगे—'ऋषियो ! अब मैं न्यूहके ज्येष्ठ पुत्र राजा सिमके वंशका वर्णन करता हूँ, म्लेच्छ-राजा सिमने पाँच सौ वर्षोंतक भलीभाँति राज्य किया। अर्कन्सद उसका पुत्र था, जिसने चार सौ चौंतीस वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र सिंहल हुआ, उसने भी चार सौ साठ वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र इब्र हुआ, उसने पिताके समान ही राज्य किया। उसका पुत्र फलज हुआ, जिसने दो सौ चालीस वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र

* ब्राह्मीको लिपियोंका मूल माना गया है। राजा न्यूहके हृदयमें स्वयं प्रविष्ट होकर भगवान् विष्णुने उसकी बुद्धिको प्रेरित किया, इसलिये उसने अपनी लिपिको उलटी गतिसे दाहिनेसे बायीं ओर प्रकाशित किया, जो उर्दू, अरबी, फारसी और हिब्रूकी लेखन-प्रक्रियामें देखी जाती है।

रुऊ हुआ, उसने दो सौ सैंतीस वर्षोंतक राज्य किया। उसके जूज नामक पुत्र हुआ, पिताके समान ही उसने राज्य किया। उसका पुत्र नहूर हुआ, उसने एक सौ साठ वर्षोंतक राज्य किया। हे राजन्! अनेक शत्रुओंका भी उसने विनाश किया। नहूरका पुत्र ताहर हुआ, पिताके समान उसने राज्य किया। उसके अविराम, नहूर और हारन—ये तीन पुत्र हुए।

हे मुने! इस प्रकार मैंने नाममात्रसे म्लेच्छ राजाओंके वंशोंका वर्णन किया। सरस्वतीके शापसे ये राजा म्लेच्छ-भाषा-भाषी हो गये और आचारमें अधम सिद्ध हुए। कलियुगमें इनकी संख्याकी विशेष वृद्धि हुई, किंतु मैंने संक्षेपमें ही इन वंशोंका वर्णन किया। संस्कृत भाषा भारतवर्षमें ही किसी तरह बची रही[1]। अन्य भागोंमें म्लेच्छ भाषा ही आनन्द देनेवाली हुई।

सूतजी पुनः बोले—भार्गवतनय महामुने शौनक! तीन सहस्र वर्ष कलियुगके बीत जानेपर अवन्ती नगरीमें शङ्ख नामका एक राजा हुआ और म्लेच्छ देशमें शकोंका राजा राज्य करता था। इनकी अभिवृद्धिका कारण सुनो। दो हजार वर्ष कलियुगके बीत जानेपर म्लेच्छवंशकी अधिक वृद्धि हुई और विश्वके अधिकांश भागकी भूमि म्लेच्छमयी हो गयी तथा भाँति-भाँतिके मत चल पड़े। सरस्वतीका तट ब्रह्मावर्त-क्षेत्र ही शुद्ध बचा था। मूशा नामका व्यक्ति म्लेच्छोंका आचार्य और पूर्व-पुरुष था। उसने अपने मतको सारे संसारमें फैलाया। कलियुगके आनेसे भारतमें देवपूजा और वेदभाषा प्रायः नष्ट हो गयी। भारतमें भी धीरे-धीरे प्राकृत और म्लेच्छ-भाषाका प्रचार प्रारम्भ हुआ। व्रजभाषा और महाराष्ट्री—ये प्राकृतके मुख्य भेद हैं। यावनी और गुरुण्डिका (अंग्रेजी) म्लेच्छ भाषाके मुख्य भेद हैं। इन भाषाओंके और भी चार लाख सूक्ष्म भेद हैं। प्राकृतमें पानीयको पानी और बुभुक्षाको भूख कहा जाता है। इसी तरहसे म्लेच्छ भाषामें पितृको पैतर-फादर और भ्रातृको बादर-ब्रदर कहते हैं। इसी प्रकार आहुतिको आजु, जानुको जैनु, रविवारको संडे, फाल्गुनको फरवरी और षष्टिको सिक्सटी कहते हैं। भारतमें अयोध्या, मथुरा, काशी आदि पवित्र सात पुरियाँ हैं, उनमें भी अब हिंसा होने लग गयी है। डाकू, शबर, भिल्ल तथा मूर्ख व्यक्ति भी आर्यदेश—भारतवर्षमें भर गये हैं। म्लेच्छदेशमें म्लेच्छ-धर्मको माननेवाले सुखसे रहते हैं। यही कलियुगकी विशेषता है। भारत और इसके द्वीपोंमें म्लेच्छोंका राज्य रहेगा, ऐसा समझकर हे मुनिश्रेष्ठ! आपलोग हरिका भजन करें। (अध्याय ४-५)

काश्यपके उपाध्याय, दीक्षित आदि दस पुत्रोंका नामोल्लेख, मगधके राजवंश और बौद्ध राजाओंका तथा चौहान और परमार आदि राजवंशोंका वर्णन

शौनकजीने पूछा—महाराज! ब्रह्मावर्तमें[2] म्लेच्छगण क्यों नहीं आ सके, इसका कारण बतायें।

सूतजी बोले—मुने! सरस्वतीके प्रभावसे वे सब वहाँ नहीं आ सके। वहाँ काश्यप नामके एक ब्राह्मण रहते थे। वे कलिके हजार वर्ष बीतनेपर देवताओंकी आज्ञासे स्वर्गलोकसे ब्रह्मावर्तमें आये। उनकी धर्म-पत्नीका नाम था आर्यावती। उससे काश्यपके दस पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम इस प्रकार हैं—उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्ड्य तथा चतुर्वेदी। ये अपने नामके अनुरूप गुणवाले थे। उनके पिता काश्यप, जो सभी ज्ञानोंसे समन्वित और सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञाता थे, उनके बीच रहकर उन्हें ज्ञान देते रहते थे। काश्यपने काश्मीरमें जाकर जगज्जननी सरस्वतीको रक्तपुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य तथा पुष्पाञ्जलिके द्वारा संतुष्ट किया। देवीकी स्तुति करते हुए

१-पहले संस्कृतका सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार था। बालीद्वीपमें अब भी इसका पूरा प्रचार है तथा सुमात्रा, जावा, जापान आदिमें कुछ अंशोंमें इसका प्रचार है। बोर्नियो, इंडोनेशिया, कम्बोडिया और चीनमें भी इसका बहुत पहले प्रचार था। बीचमें संस्कृतकी बहुत उपेक्षा हुई, पर जर्मन, रूस और ब्रिटेनके निवासियोंके सत्प्रयाससे अब पुनः इसका सभी विश्वविद्यालयोंमें अध्यापन होने लगा है। यों कहना चाहिये कि भारतमें ही इसकी उपेक्षा हो रही है। पाश्चात्योंकी वैज्ञानिक उन्नतिमें संस्कृतका ही मुख्य योगदान रहा है। यूरोपकी गोथ-भाषा संस्कृतसे बहुत मिलती थी। सभी सभ्य भाषाओंके व्याकरणोंपर संस्कृतके व्याकरणका बहुत प्रभाव है। मोनियरविलियम तथा राजटर्नरने अपने-अपने कोशोंमें इसके अनेक अद्भुत उदाहरण उपस्थित किये हैं।

२-ब्रह्मावर्त मुख्यरूपसे गङ्गाका उत्तरी भाग है, जो बिजनौरसे लेकर प्रयागतक और उसमें नैमिषारण्यतक फैला है।

काश्यपने कहा—'मातः ! शंकरप्रिये ! मुझपर आपकी करुणा क्यों नहीं होती ? देवि ! आप सारे संसारकी माता हैं, फिर मुझे जगत्‌से बाहर क्यों मानती हैं ? देवि ! देवताओंके लिये धर्मद्रोहियोंको आप क्यों नहीं मारती हैं ? म्लेच्छोंको मोहित कीजिये और उत्तम संस्कृत भाषाका विस्तार कीजिये। अम्ब ! आप अनेक रूपोंको धारण करनेवाली हैं, हुंकारस्वरूपा हैं, आपने धूम्रलोचनको मारा है। दुर्गारूपमें आपने भयंकर दैत्योंको मारकर जगत्‌में सुख प्रदान किया है। मातः ! आप दम्भ, मोह तथा भयंकर गर्वका नाशकर सुख प्रदान करें और दुष्टोंका नाश करें तथा संसारमें ज्ञान प्रदान करें।'

इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर सरस्वतीदेवीने उन काश्यप मुनिके मनमें निवासकर उन्हें ज्ञान प्रदान किया। वे मुनि मिश्र देशमें चले गये और उन्होंने वहाँ म्लेच्छोंको मोहित कर उन्हें द्विजन्मा बना लिया। सरस्वतीके अनुग्रहसे उन लोगोंके साथ सदा मुनिवृत्तिमें तत्पर मुनिश्रेष्ठ काश्यपने आर्यदेशमें निवास किया। उन आर्योंकी देवीके वरदानसे बहुत वृद्धि हुई। काश्यप मुनिका राज्यकाल एक सौ बीस वर्षतक रहा। राज्यपुत्र नामक देशमें आठ हजार शूद्र हुए। उनके राजा आर्य पृथु हुए। उनसे ही मागधकी उत्पत्ति हुई। मागध नामके पुत्रका अभिषेककर पृथु चले गये। यह सुनकर भृगुश्रेष्ठ शौनक आदि ऋषि प्रसन्न हो गये। फिर वे पौराणिक सूतको नमस्कार कर विष्णुके ध्यानमें तत्पर हो गये। चार वर्षतक ध्यानमें रहकर वे उठे और नित्य-नैमित्तिक क्रियाओंको सम्पन्न कर पुनः सूतजीके पास गये और बोले—'लोमहर्षणजी ! अब आप मागध राजाओंका वर्णन करें। किन मागधोंने कलियुगमें राज्य किया, हे व्यासशिष्य ! आप हमें यह बतायें।'

सूतजीने कहा—मगध-प्रदेशमें काश्यपपुत्र मागधने पितासे प्राप्त राज्यका भार वहन किया। उन्होंने आर्यदेशको अलग कर दिया। पाञ्चाल (पंजाब) से पूर्वका देश मगध[1] देश कहा जाता है। मगधकी आग्नेय दिशामें कलिंग (उड़ीसा), दक्षिणमें अवन्तिदेश, नैर्ऋत्यमें आनर्त (गुजरात), पश्चिममें सिन्धुदेश, वायव्य दिशामें कैकय देश, उत्तरमें मद्रदेश और ईशानमें कुलिन्द देश है। इस प्रकार आर्यदेशका उन्होंने भेद किया। इस देशका नामकरण महात्मा मागधके पुत्रने किया था। अनन्तर राजाने यज्ञके द्वारा बलरामजीको प्रसन्न किया, इसके फलस्वरूप बलभद्रके अंशसे शिशुनागका जन्म हुआ, उसने सौ वर्षतक राज्य किया। उसे काकवर्मा नामका पुत्र हुआ, उसने नब्बे वर्षतक राज्य किया। उसे क्षेमधर्मा नामका पुत्र हुआ, उसने अस्सी वर्ष राज्य किया। उसका पुत्र क्षेत्रौजा हुआ, उसने सत्तर वर्षतक राज्य किया। उसके वेदमिश्र नामक पुत्र हुआ, उसने साठ वर्षतक शासन किया। उसे अजातरिपु (अजातशत्रु) नामक पुत्र हुआ, उसने पचास वर्षतक राज्य किया। उसका पुत्र दर्भक हुआ, उसने चालीस वर्षतक राज्य किया। उसे उदयाश्व[2] नामका पुत्र हुआ, उसने तीस वर्षतक शासन किया। उसका पुत्र नन्दवर्धन हुआ, उसने बीस वर्षतक शासन किया। नन्दवर्धनका पुत्र नन्द हुआ, उसने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। नन्दके प्रनन्द हुआ, जिसने दस वर्ष राज्य किया। उससे परानन्द हुआ, उसने अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक ही राज्य किया। उससे समानन्द हुआ, उसने बीस वर्ष राज्य किया। उससे प्रियानन्द हुआ, उसने भी पिताके समान वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र देवानन्द हुआ, उसने भी पिताके समान राज्य किया। देवानन्दका पुत्र यज्ञभंग हुआ, उसने अपने पिताके आधे वर्षोंतक (दस वर्ष) राज्य किया। उसका पुत्र मौर्यानन्द और उसका पुत्र महानन्द हुआ। दोनोंने अपने-अपने पिताके समान वर्षोंतक राज्य किया।

इसी समय कलिने हरिका स्मरण किया। अनन्तर प्रसिद्ध गौतम नामक देवताकी काश्यपसे उत्पत्ति हुई। उसने बौद्धधर्मको संस्कृतकर पट्टण नगर (कपिलवस्तु) में प्रचार किया और दस वर्षतक राज्य किया[3]। उससे शाक्यमुनिका जन्म हुआ, उसने भी बीस वर्षतक राज्य किया। उससे

१-यहाँसे लेकर आगे उदयाश्वतक मगधके राजवंशका वर्णन है, जिनकी राजधानी राजगृह थी।

२-इसीने राजगृहसे हटाकर राजधानी गङ्गाके किनारे बसायी और उसका नाम पाटलिपुत्र या पटना पड़ा। इसके आगेके राजागण पटनासे ही भारतका शासन करते थे।

३-यहाँसे आगे अब लिच्छवि राज्यवंशका वर्णन है, जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी।

शुद्धोदन नामक पुत्र हुआ, उसने तीस वर्षतक शासन किया। उससे शाक्यसिंहका जन्म हुआ। कलियुगके दो हजार वर्ष व्यतीत हो जानेके बाद शताब्दिमें उसने शासन किया। कलिके प्रथम चरणमें वेदमार्गको उसने विनष्ट कर दिया और साठ वर्षतक उसने राज्य किया। उस समय प्रायः सभी बौद्ध हो गये। विष्णुस्वरूप उसके राजा होनेपर जैसा राजा था, वैसी ही प्रजा हो गयी, क्योंकि विष्णुकी शक्तिके अनुसार ही जगत्में धर्मकी प्रवृत्ति होती है। जो मनुष्य मायापति हरिकी शरणमें जाते हैं, वे उनकी कृपाके प्रभावसे मोक्षके भागी हो जाते हैं। शाक्यसिंहका पुत्र बुद्धसिंह हुआ, उसने तीस वर्ष राज्य किया। उसका पुत्र (शिष्य) चन्द्रगुप्त[1] हुआ, जिसने पारसीदेशके राजा सुलूव (सेल्यूकस) की पुत्रीके साथ विवाह कर यवन-सम्बन्धी बौद्धधर्मका प्रचार किया। उसने साठ वर्षतक शासन किया। चन्द्रगुप्तका पुत्र बिन्दुसार (बिम्बसार) हुआ। उसने भी पिताके समान राज्य किया। उसका पुत्र अशोक हुआ। उसी समय कान्यकुब्ज देशका एक ब्राह्मण आबू पर्वतपर चला गया और वहाँ उसने विधिपूर्वक ब्रह्महोत्र सम्पन्न किया। वेदमन्त्रोंके प्रभावसे यज्ञकुण्डसे चार क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई—प्रमर—परमार (सामवेदी), चपहानि—चौहान (कृष्णयजुर्वेदी) त्रिवेदी—गहरवार (शुक्ल यजुर्वेदी) और परिहारक (अथर्ववेदी) क्षत्रिय थे। वे सब ऐरावत-कुलमें उत्पन्न गजोंपर आरूढ़ होते थे। इन लोगोंने अशोकके वंशजोंको अपने अधीन कर भारतवर्षके सभी बौद्धोंको नष्ट कर दिया।

अवन्तमें प्रमर—परमार राजा हुआ। उसने चार योजन विस्तृत अम्बावती नामक पुरीमें स्थित होकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया। (अध्याय ६)

महाराज विक्रमादित्यके चरित्रका उपक्रम

सूतजी बोले—शौनक! चित्रकूट पर्वतके आस-पासके क्षेत्र (प्रायः आजके पूरे बुन्देलखण्ड एवं बघेलखण्ड)में परिहार नामका एक राजा हुआ। उसने रमणीय कलिंजर नगरमें रहकर अपने पराक्रमसे बौद्धोंको परास्त कर पूरी प्रतिष्ठा प्राप्त की। राजपूतानेके क्षेत्र (दिल्ली नगर)में चपहानि—चौहान नामक राजा हुआ। उसने अति सुन्दर अजमेर नगरमें रहकर सुखपूर्वक राज्य किया। उसके राज्यमें चारों वर्ण स्थित थे। आनर्त (गुजरात) देशमें शुक्ल नामक राजा हुआ, उसने द्वारकाको राजधानी बनाया।

शौनकजीने कहा—हे महाभाग! अब आप अग्निवंशी राजाओंका वर्णन करें।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! इस समय मैं योगनिद्राके वशमें हो गया हूँ। अब आपलोग भी भगवान्‌का ध्यान करें। अब मैं थोड़ा विश्राम करूँगा। यह सुनकर मुनिगण भगवान् विष्णुके ध्यानमें लीन हो गये। लम्बे अन्तरालके बाद ध्यानसे उठकर सूतजी पुनः बोले—महामुने! कलियुगके सैंतीस सौ दस वर्ष व्यतीत होनेपर प्रमर नामक राजाने राज्य करना प्रारम्भ किया। उन्हें महामद (मुहम्मद) नामक पुत्र हुआ, जिसने पिताके शासन-कालके आधे समयतक राज्य किया। उसे देवापि नामक पुत्र हुआ, उसने भी पिताके ही तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। उसे देवदूत नामक पुत्र हुआ, उसके गन्धर्वसेन नामक पुत्र हुआ, जिसने पचास वर्षतक राज्य किया। वह अपने पुत्र शङ्खका अभिषेक कर वन चला गया। शङ्खने तीस वर्षतक राज्यभार सँभाला। उसी समय देवराज इन्द्रने वीरमती नामक एक देवाङ्गनाको पृथ्वीपर भेजा। शङ्खने वीरमतीसे गन्धर्वसेन नामक पुत्ररत्नको प्राप्त किया। पुत्रके जन्म-समयमें आकाशसे पुष्पवृष्टि हुई और देवताओंने दुंदुभी बजायी। सुखप्रद शीतल-मन्द वायु बहने लगी। इसी समय अपने शिष्योंसहित शिवदृष्टि नामके एक ब्राह्मण तपस्याके लिये वनमें गये और शिवकी आराधनासे वे शिवस्वरूप हो गये।

तीन हजार वर्ष पूर्ण होनेपर जब कलियुगका आगमन हुआ, तब शकोंके विनाश और आर्यधर्मकी अभिवृद्धिके लिये वे ही शिवदृष्टि गुह्यकोंकी निवासभूमि कैलाससे भगवान् शंकरकी आज्ञा पाकर पृथ्वीपर विक्रमादित्य नामसे प्रसिद्ध

१-अब यहाँसे फिर पाटलिपुत्रके राजवंशका वर्णन प्रारम्भ हुआ और यह चन्द्रगुप्त ही मौर्यवंशका पहला राजा था। जिसने भारतके साथ अन्य देशोंपर अधिकार किया था, जिन्हें बादमें अशोकने बौद्ध देश बना डाला। उन दिनों वे सभी देश भारतके ही उपनिवेश थे। जिसका यहाँ आगे वर्णन है। चन्द्रगुप्तने ही सेल्यूकसकी पुत्रीसे शादी की थी।

हुए। वे अपने माता-पिताको आनन्द देनेवाले थे। वे बचपनसे ही महान् बुद्धिमान् थे। बुद्धिविशारद विक्रमादित्य पाँच वर्षकी ही बाल्यावस्थामें तप करने वनमें चले गये। बारह वर्षोंतक प्रयत्नपूर्वक तपस्या कर वे ऐश्वर्य-सम्पन्न हो गये। उन्होंने अम्बावती नामक दिव्य नगरीमें आकर बत्तीस मूर्तियोंसे समन्वित, भगवान् शिवद्वारा अभिरक्षित रमणीय और दिव्य सिंहासनको सुशोभित किया। भगवती पार्वतीके द्वारा प्रेषित एक वैताल उनकी रक्षामें सदा तत्पर रहता था। उस वीर राजाने महाकालेश्वरमें जाकर देवाधिदेव महादेवकी पूजा की और अनेक व्यूहोंसे परिपूर्ण धर्म-सभाका निर्माण किया। जिसमें विविध मणियोंसे विभूषित अनेक धातुओंके स्तम्भ थे। शौनकजी! उसने अनेक लताओंसे पूर्ण, पुष्पान्वित स्थानपर अपने दिव्य सिंहासनको स्थापित किया। उसने वेद-वेदाङ्ग-पारंगत मुख्य ब्राह्मणोंको बुलाकर विधिवत् उनकी पूजाकर उनसे अनेक धर्म-गाथाएँ सुनीं। इसी समय वैताल नामक देवता ब्राह्मणका रूप धारण कर 'आपकी जय हो', इस प्रकार कहता हुआ वहाँ आया और उनका अभिवादन कर आसनपर बैठ गया। उस वैतालने राजासे कहा—'राजन्! यदि आपको सुननेकी इच्छा हो तो मैं आपको इतिहाससे परिपूर्ण एक रोचक आख्यान सुनाता हूँ[1], इसे आप सुनें। (अध्याय ७)

॥ प्रतिसर्गपर्व, प्रथम खण्ड सम्पूर्ण ॥

१-भारतवर्षमें विक्रमादित्य अत्यन्त प्रसिद्ध दानी, परोपकारी और सर्वाङ्ग-सदाचारी राजा हुए हैं। स्कन्द आदि पुराणों, बृहत्कथा और द्वात्रिंशत्पुत्तलिका, सिंहासनबत्तीसी, कथासरित्सागर, पुरुष-परीक्षा आदि ग्रन्थोंमें इनका चरित्र वर्णित है। अब इधर कैम्ब्रिजके इतिहासके दूसरे भागमें इनका चरित्र आया है। वैसे स्मिथ और रिफिन्सटन आदिने अनेक विक्रमादित्योंकी चर्चा की है, पर ये महाराज विक्रमादित्य उज्जयिनीके राजा थे और कालिदास, अमरसिंह, वराहमिहिर, वैद्यराज धन्वन्तरि, घटकर्पर आदि नवरत्न इनकी ही राजसभाकी दिव्य विद्वद्विभूतियाँ थीं। जिनकी आगे-पीछे कोई उपमा नहीं है। राजा भोजसे लेकर बादशाह अकबरतक सभीने अपनी सभाको वैसे ही नवरत्नोंसे अलंकृत करनेका प्रयत्न किया था।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

प्रतिसर्गपर्व

(द्वितीय खण्ड)

स्वामी एवं सेवककी परस्पर भक्तिका आदर्श *

(राजा रूपसेन तथा वीरवरकी कथा)

सूतजी बोले—महामुने ! एक बार रुद्रकिंकर वैतालने सर्वप्रथम भगवान् शंकरका ध्यान किया और फिर महाराज विक्रमादित्यसे इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया—

राजन् ! अब आप एक मनोहर कथा सुनें। प्राचीन कालमें सर्वसमृद्धिपूर्ण वर्धमान नामक नगरमें रूपसेन नामका एक धर्मात्मा राजा रहता था। उसकी पतिव्रता रानीका नाम विद्युन्माला था। एक दिन राजाके दरबारमें वीरवर नामका एक क्षत्रिय गुणी व्यक्ति अपनी पत्नी, कन्या एवं पुत्रके साथ वृत्तिके लिये उपस्थित हुआ। राजाने उसकी विनयपूर्ण बातोंको सुनकर प्रतिदिन एक सहस्र स्वर्णमुद्रा वेतन निर्धारित कर महलके सिंहद्वारपर रक्षकके रूपमें उसकी नियुक्ति कर ली। कुछ दिन बाद राजाने अपने गुप्तचरोंसे जब उसकी आर्थिक स्थितिका पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि वह अपना अधिकांश द्रव्य यज्ञ, तीर्थ, शिव तथा विष्णुके मन्दिरोंमें आराधनादि कार्योंमें तथा साधु, ब्राह्मण एवं अनाथोंमें वितरित कर अत्यल्प शेषसे अपने परिजनोंका पालन करता है। इससे प्रसन्न होकर राजाने उसकी स्थायी नियुक्ति कर दी।

एक दिन जब आधी रातमें मूसलाधार वृष्टि, बादलोंकी गरज, बिजलीकी चमक एवं झंझावातसे रात्रिकी विभीषिका सीमा पार कर रही थी, उसी समय श्मशानसे किसी नारीकी करुणक्रन्दन-ध्वनि राजाके कानोंमें पड़ी। राजाने सिंहद्वारपर उपस्थित वीरवरसे इस रुदन-ध्वनिका पता लगानेके लिये कहा। जब वीरवर तलवार लेकर चला, तब राजा भी उसके भयकी आशंका तथा उसके सहयोगके लिये एक तलवार लेकर गुप्तरूपसे स्वयं उसके पीछे लग गया। वीरवरने श्मशानमें पहुँचकर एक स्त्रीको वहाँ रोते देखा और उससे जब इसका कारण पूछा, तब उसने कहा कि 'मैं इस राज्यकी लक्ष्मी—राष्ट्रलक्ष्मी हूँ—इसी मासके अन्तमें राजा रूपसेनकी मृत्यु हो जायगी। राजाकी मृत्यु हो जानेपर मैं अनाथ होकर कहाँ जाऊँगी'—इसी चिन्तासे मैं रो रही हूँ।

स्वामिभक्त वीरवरने राजाके दीर्घायु होनेका उससे उपाय पूछा। इसपर वह देवी बोली—'यदि तुम अपने पुत्रकी बलि चण्डिकादेवीके सामने दे सको तो राजाके आयुकी रक्षा हो सकती है।' फिर क्या था, वीरवर उलटे पाँव घर लौट आया और अपनी पत्नी, पुत्र तथा लड़कीको जगाकर उनकी सम्मति लेकर उनके साथ चण्डिकाके मन्दिरमें जा पहुँचा। राजा भी गुप्तरूपसे उसके पीछे-पीछे सर्वत्र चलता रहा। वीरवरने देवीकी प्रार्थना कर अपने स्वामीकी आयु बढ़ानेके लिये अपने पुत्रकी बलि चढ़ा दी। भाईका कटा सिर देखकर दुःखसे उसकी बहिनका हृदय विदीर्ण हो गया—वह मर गयी और इसी शोकमें उसकी माता भी चल बसी। वीरवर इन तीनोंका दाह-संस्कार कर स्वयं भी राजाकी आयुकी वृद्धिके लिये बलि चढ़ गया।

राजा छिपकर यह सब देख रहा था। उसने देवीकी प्रार्थना कर अपने जीवनको व्यर्थ बताते हुए अपना सिर काटनेके लिये ज्यों ही तलवार खींची, त्यों ही देवीने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—'राजन् ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारी आयु तो सुरक्षित हो ही गयी, अब तुम अपनी इच्छानुसार वर माँग लो।' राजाने देवीसे परिजनोंसहित वीरवरको जिलानेकी प्रार्थना की। 'तथास्तु' कहकर देवी अन्तर्धान हो गयी। राजा प्रसन्न होकर चुपके-से वहाँसे चलकर अपने महलमें आकर लेट गया। इधर वीरवर भी चकित होता हुआ और देवीकी कृपा मानता हुआ अपने पुनर्जीवित परिवारको घरपर छोड़कर राजप्रासादके सिंहद्वारपर

---

* भारतवर्षमें प्राचीन कालसे 'वैताल-पञ्चविंशतिका' या 'वैतालपचीसी'की कथाएँ, जो विक्रम-वैताल-संवादके रूपमें लोकमें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, उनका मूल भविष्यपुराण ही प्रतीत होता है। ये कथाएँ स्त्री-पुरुषोंके अमर्यादित एवं अनैतिक आकर्षणसे सम्मिलित होते हुए भी लोक-व्यवहारकी दृष्टिसे शिक्षाप्रद भी हैं। अतः उनमेंसे कुछ कथाएँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

आकर खड़ा हो गया।

अनन्तर राजाने वीरवरको बुलाकर रातमें रोनेवाली नारीके रुदनका कारण पूछा, तो वीरवरने कहा—'राजन्! वह तो कोई चुड़ैल थी, मुझे देखते ही वह अदृश्य हो गयी। चिन्ताकी कोई बात नहीं है।' वीरवरकी स्वामिभक्ति और धीरताको देखकर राजा रूपसेन अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने अपनी कन्याका विवाह वीरवरके पुत्रसे कर दिया तथा उसे अपना मित्र बना लिया। इतनी कथा कहकर वैताल शान्त हो गया। वैतालने राजा विक्रमसे फिर पूछा—'राजन्! इस कथामें परस्पर सबने एक दूसरेके लिये स्नेहवश अपने प्राणोंका उत्सर्ग किया, पर सबसे अधिक स्नेह और त्याग किसका था? यह आप बताइये।'

राजा बोले—यद्यपि सभीने अपने-अपने कर्तव्यका अद्भुत आदर्श उपस्थित किया, फिर भी राजाका स्नेह ही सबसे अधिक मान्य प्रतीत होता है, क्योंकि वीरवर राजसेवक था, उसे अपनी सेवाके प्रतिफलमें स्वर्णमुद्राएँ मिलती थीं, अतः उसने स्वर्णप्राप्तिकी दृष्टिसे अपना उत्सर्ग किया, वीरवरकी पत्नी पतिव्रता थी, धर्मस्नेही थी, इसलिये उसने अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। बहिनका अपने भाईमें प्रेम था, पुत्रका अपने पितामें स्नेह था, यह तो स्वभाववश होता ही है, किंतु राजा रूपसेनने महान् स्नेहका आदर्श उपस्थित किया, जो कि वे एक सामान्य सेवकके लिये भी अपना प्राणोत्सर्ग करनेको उद्यत हो गये, अतः उन्हींका स्नेहमय त्याग महान् त्याग है।

ब्राह्मण-पुत्री महादेवीकी कथा

वैतालने कहा—राजन्! उज्जयिनी नामकी नगरीमें चन्द्रवंशमें उत्पन्न महाबल नामसे विख्यात अत्यन्त बुद्धिमान् तथा वेदादि-शास्त्रोंका ज्ञाता एक राजा निवास करता था। उसका स्वामिभक्त हरिदास नामका एक दूत था। हरिदासकी पत्नी भक्तिमाला साधु पुरुषोंकी सेवामें तत्पर रहती थी। भक्तिमालाको सभी विद्याओंमें पारंगत कमलके समान नेत्रवाली अत्यन्त रूपवती एक कन्या उत्पन्न हुई, उसका नाम था महादेवी। एक दिन महादेवीने अपने पिता हरिदाससे कहा—'तात! आप मुझे ऐसे योग्य पुरुषको दीजियेगा, जो गुणोंमें मुझसे भी अधिक हो, अन्य किसीको नहीं।' अपनी पुत्रीकी बात सुनकर हरिदास बड़ा प्रसन्न हुआ और 'ऐसा ही होगा'—कहकर हरिदास राजसभामें आया और उसने राजाका अभिनन्दन किया। तदनन्तर राजाने कहा—'हरिदास! तुम मेरे ससुर तैलंग देशके राजा हरिश्चन्द्रके पास जाओ और उनका कुशल-समाचार जानकर शीघ्र ही मुझे बताओ।' हरिदास आज्ञा पाकर राजा हरिश्चन्द्रके पास गया और उसने उन्हें अपने स्वामी महाबलका कुशल-समाचार बतलाया। सारा कुशल-समाचार जानकर राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने हरिदाससे पूछा—'प्रभो! आप विद्वान् हैं, मुझे यह बतायें कि कलिका आगमन हो गया, यह कैसे मालूम होगा?

हरिदासने कहा—राजन्! जब वेदोंकी मर्यादाएँ नष्ट हो जायँ और वेदोक्त धर्म विपरीत दिखलायी देने लगें, तब कलिका आगमन समझना चाहिये, साथ ही कलिके प्रिय म्लेच्छगण कहे गये हैं। अधर्म ही जिसका मित्र है, ऐसे कलिके द्वारा सभी देवताओंको अपमानित किया गया हो, तब कलिका आगमन समझना चाहिये। राजन्! पापकी स्त्रीका नाम है मृषा (असत्य), उसका पुत्र दुःख कहा गया है। दुःखकी स्त्री है दुर्गति, जो कलियुगमें घर-घरमें व्याप्त रहेगी। सभी राजा क्रोधके वशीभूत हो जायँगे तथा सभी ब्राह्मण कामके दास हो जायँगे। धनिक-वर्ग लोभके वशीभूत हो जायगा तथा शूद्रजन महत्त्वको प्राप्त करेंगे। स्त्रियाँ लज्जासे रहित होंगी और सेवक स्वामीके ही प्राण हरण करनेवाले होंगे। पृथ्वी निष्फल (सत्त्वशून्य) हो जायगी। ऐसी स्थितिमें समझना चाहिये कि कलिका आगमन हो गया है, किंतु कलियुगमें जो मनुष्य भगवान् श्रीहरिकी शरणमें जायँगे, वे ही आनन्दसे रह पायेंगे, अन्य कोई नहीं।

यह सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे बहुत-सी दक्षिणा देकर विदा किया तथा राजा महाबलको सम्पूर्ण समाचार देकर अपने महलमें चला आया और वह विप्र भी अपने शिविरमें आ गया। उसी समय एक बुद्धिकोविद नामक बुद्धिमान् ब्राह्मण वहाँ आया और उसने अपनी विशिष्ट विद्याओंका हरिदासके सामने प्रदर्शन किया—उस ब्राह्मणने मन्त्र जपकर देवीकी आराधना की और एक

महान् आश्चर्यजनक शीघ्रग नामक विमान प्रकटकर हरिदासको दिखलाया। उसकी विद्याओंसे मुग्ध होकर हरिदासने उसे अपनी कन्याके योग्य समझकर उसका वरण कर लिया।

हरिदासका पुत्र था मुकुन्द। वह विद्याध्ययनके लिये अपने गुरुके यहाँ गया था, जब वह अपने गुरुसे विद्याओंको पढ़ चुका तो गुरुदक्षिणाके लिये प्रार्थना करने लगा। गुरुने उससे कहा—'अरे मुकुन्द! सुनो, तुम गुरुदक्षिणाके रूपमें अपनी बहिन महादेवी मेरे दैवज्ञ पुत्र धीमान्‌को समर्पित कर दो।' 'ठीक है'—ऐसा कहकर मुकुन्द अपने घर आ गया।

इधर हरिदासकी पत्नी भक्तिमालाने द्रौणिशिष्य वामन नामक एक विप्रका जो शब्दवेधी बाण चलानेमें कुशल एवं शस्त्रविद्याका ज्ञाता था, उसकी विद्यासे प्रभावित होकर अपनी कन्याके लिये दक्षिणा, ताम्बूल आदिके द्वारा पूजित कर उसका वरण कर लिया।

समय आनेपर पिता, पुत्र तथा माताद्वारा वरण किये गये तीनों गुणवान् ब्राह्मण महादेवी नामवाली उस कन्याको प्राप्त करनेके लिये हरिदासके यहाँ आ पहुँचे। इसी बीच एक राक्षस अपनी मायासे उस कन्या महादेवीका हरण कर विन्ध्यपर्वतपर चला गया। यह समाचार जानकर ये तीनों कन्यार्थी दुःखी होकर रोने लगे। जब उनमेंसे गुरुपुत्र धीमान् नामक दैवज्ञ विद्वान् ब्राह्मणसे कन्याका पता पूछा गया तो उसने बतलाया कि वह कन्या विन्ध्यपर्वतपर राक्षसद्वारा हरण कर ले जायी गयी है। तदनन्तर उस कन्याकी प्राप्तिके लिये द्वितीय बुद्धिकोविद नामक ब्राह्मणने अपने द्वारा बनाये गये आकाशचारी विमानपर उन दोनों विप्रोंको बैठाकर विन्ध्यपर्वतपर पहुँचाया। तब शब्दवेधी बाणोंको चलानेमें निपुण वामन नामक तीसरे ब्राह्मणने धनुषपर बाणका संधान किया और बाणसे उस राक्षसको मार डाला। वे तीनों कन्या महादेवीको प्राप्त कर उसी विमानमें बैठकर उज्जयिनीमें वापस लौट आये।

वहाँ पहुँचकर तीनों ब्राह्मण अपने-अपने कार्यका महत्त्व बताते हुए कन्याके वास्तविक अधिकारी होनेके लिये परस्परमें विवाद करने लगे, यह निर्णय नहीं हो सका कि कन्याका विवाह किसके साथ हो।

वैतालने राजा विक्रमसे पूछा—राजन्! आप बतलायें कि इन तीनोंमें विवाहका अर्थात् कन्या प्राप्त करनेका अधिकारी कौन है?

राजा विक्रमादित्यने कहा—जिस विद्वान् गुरुके पुत्र ज्योतिषी ब्राह्मणने कन्याका यह पता बताया कि वह राक्षसद्वारा चुराकर विन्ध्यपर्वतपर पहुँचायी गयी है, वह ब्राह्मण कन्याके लिये पितृतुल्य है और जिस दूसरे ब्राह्मण बुद्धिकोविदने अपने मन्त्रबलद्वारा उत्पन्न विमानसे महादेवी नामकी कन्याको यहाँ पहुँचाया, वह भाईके समान है, किंतु जिस वामन नामक ब्राह्मण युवकने शब्दवेधी बाणोंसे राक्षसके साथ युद्ध कर उसे मार गिराया, वही वीर ब्राह्मण इस कन्याको प्राप्त करनेका योग्य अधिकारी है।

समान-वर्णमें विवाह-सम्बन्धका औचित्य
(त्रिलोकसुन्दरीकी कथा)

वैताल पुनः बोला—राजन्! अब मैं एक दूसरी कथा सुनाता हूँ। चम्पापुरी (भागलपुर) नामकी एक प्रसिद्ध नगरी थी, वहाँ चम्पकेश नामका एक बलवान् और धनुर्धारी राजा रहता था। उसकी रानीका नाम था सुलोचना। उसके त्रिलोकसुन्दरी नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका मुख चन्द्रमाके समान, भौंहें धनुषकी प्रत्यञ्चाके समान, नेत्र मृगके समान तथा शब्द कोकिलके समान थे। राजन्! उस बालासे देवता भी विवाह करना चाहते थे, अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या? उसके स्वयंवरमें लोकविश्रुत सभी राजा तथा देवराज इन्द्र, वरुण, कुबेर, धर्मराज और यम आदि देवता भी मनुष्यका शरीर धारण करके आये। उनमेंसे इन्द्रदत्तने कन्याके पिता राजा चम्पकसे कहा—'राजन्! मैं सभी शास्त्रोंमें कुशल हूँ, रूपवान् एवं मनोरम हूँ, अतः आप अपनी पुत्रीको मुझे समर्पित कर दें।' दूसरे धर्मदत्तने कहा—'राजन्! मैं धनुर्विद्यामें कुशल एवं मनोरम हूँ, आप अपनी कन्या मुझे समर्पित करें।' तीसरेने कहा—'राजन्! मेरा नाम धनपाल है, मैं सभी प्राणियोंकी भाषा जानता हूँ, मैं गुणवान् और रूपवान् भी हूँ। आप अपनी कन्या मुझे समर्पित कर सुखी होइये।'

चौथेने कहा—'राजन्! मैं सर्वकला-विशारद हूँ, प्रतिदिन अपने उद्योगसे पाँच रत्न प्राप्त करता हूँ, उनमेंसे पुण्यके लिये एक रत्न, होमके लिये द्वितीय रत्न, आत्माके लिये तृतीय रत्न, पत्नीके लिये चतुर्थ रत्न तथा शेष अन्तिम रत्न भोजनके लिये व्यय करता हूँ। अतः आप अपनी कन्या मुझ सर्वकला-विशारदको प्रदान करें।'

यह सुनकर राजा आश्चर्यमें पड़ गया कि अपनी कन्या मैं किसे दूँ। वह कुछ निश्चय नहीं कर पाया। अन्तमें उसने सारी बातें कन्याको बतायीं और उससे पूछा कि तुम्हें इनमेंसे कौन-सा वर अभीष्ट है, पर कन्या त्रिलोकसुन्दरीने लज्जावश कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

वैतालने पूछा—राजन्! अब आप बतायें कि उस कन्याके योग्य वर इनमेंसे कौन था?

राजा बोला—रुद्रकिंकर! यह रूपवती कन्या त्रिलोक-सुन्दरी धर्मदत्तके योग्य है; क्योंकि इन्द्रदत्त वेदादि शास्त्रोंका ज्ञाता है, अतः वर्णसे वह द्विज कहा जायगा। भाषा जाननेवाला तथा धन-धान्यका विस्तार करनेवाला धनपाल वणिक् कहा जायगा। तृतीय जो कलाविद् है और रत्नोंका व्यापार करता है, वह शूद्र कहलायेगा। वैताल! सवर्णके लिये ही कन्या योग्य होती है, अतः धनुर्वेद-शास्त्रमें जो निपुण धर्मदत्त है, वह वर्णसे क्षत्रिय कहलायेगा, इसलिये उस क्षत्रिय कन्याका विवाह धर्मदत्तके साथ ही किया जाना चाहिये।

विषयी राजा राज्यके विनाशका कारण बनता है
(राजा धर्मवल्लभ और मन्त्री सत्यप्रकाशकी कथा)

वैतालने पुनः राजासे कहा—राजन्! प्राचीन कालमें रमणीय पुण्यपुर (पूना) नगरमें धर्मवल्लभ नामका एक राजा राज्य करता था। उसका मन्त्री सत्यप्रकाश था। मन्त्रीकी स्त्रीका नाम था लक्ष्मी। एक बार राजा धर्मवल्लभने मन्त्रीसे कहा—'मन्त्रिवर! आनन्दके कितने भेद हैं? यह मुझे बताओ।' उसने कहा—'महाराज! आनन्द चार प्रकारके हैं। (१) ब्रह्मचर्याश्रमका आनन्द जो ब्रह्मानन्द है, वह श्रेष्ठ है। (२) गृहस्थाश्रमका विषयानन्द मध्यम है। (३) वानप्रस्थका धर्मानन्द सामान्य है और (४) संन्यासमें जो शिवानन्दकी प्राप्ति है, वह आनन्द उत्तमोत्तम है। राजन्! इनमें गृहस्थाश्रमका विषयानन्द स्त्री-प्रधान है, क्योंकि गृहस्थ-आश्रममें स्त्रीके बिना सुख नहीं मिलता।'

यह सुनकर राजा अपने अनुकूल धर्मपरायणा पत्नी प्राप्त करनेके लिये अन्य देशमें चला गया, किंतु उसे मनोऽनुकूल पत्नी नहीं प्राप्त हुई। तब उसने अपने मन्त्रीसे कहा—'मेरे अनुरूप कोई स्त्री ढूँढ़ो।' यह सुनकर मन्त्री विभिन्न देशोंमें गया। पर जब कहीं भी उसे राजाके योग्य स्त्री नहीं मिली तो वह सिन्धु देशमें आकर समुद्रकी ओर बढ़ा। सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ सिन्धुको देखकर वह प्रसन्न हुआ। मन्त्री सत्यप्रकाशने समुद्रसे इस प्रकार प्रार्थना की—'सभी रत्नोंके आलय, सिन्धुदेशके स्वामिन्! आपको नमस्कार है। शरणागतवत्सल! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, गङ्गा आदि नदियोंके स्वामी जलाधीश! आपको नमस्कार है। मेरे राजाके लिये आप उत्तम स्त्री-रत्न प्रदान करें। यदि ऐसा आप नहीं करेंगे तो मैं अपने प्राण यहीं दे दूँगा।' नदीपति सागर यह स्तुति सुनकर प्रसन्न हो गये और उसे जलमें विद्रुमके पत्तोंवाले, मुक्तारूपी फलसे समन्वित एक वृक्षको दिखाया, जिसके ऊपर मनोरमा, सुकुमारी एक सुन्दरी कन्या स्थित थी। पर कुछ ही क्षणोंमें देखते ही देखते वह कन्या वृक्षसहित पुनः जलमें लीन हो गयी।

यह देखकर अतिशय आश्चर्यचकित होकर मन्त्री सत्य-प्रकाश पुनः राजाके पास लौट आया और उसने सारी बातें राजाको सुनायीं। पुनः दोनों समुद्रके किनारे आये। राजाने भी मन्त्रीके समान ही कन्याको वृक्षपर बैठा देखा और राजाके देखते ही वह कन्या पूर्ववत् जलमें प्रविष्ट हो गयी। इस अद्भुत दृश्यको देखकर राजा भी समुद्रमें प्रविष्ट हो गया तथा उसी कन्याके साथ पातालमें पहुँच गया और मन्त्री वापस लौट आया।

राजाने कहा—वरानने! मैं तुम्हारे लिये यहाँ आया हूँ। गान्धर्व विवाहसे मुझे प्राप्त करो। उसने हँसकर कहा—'नृपश्रेष्ठ! जब कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी तिथि आयेगी, तब मैं देवी-मन्दिरमें आकर तुम्हें मिलूँगी।' राजा लौट आया और पुनः कृष्ण चतुर्दशीके दिन हाथमें तलवार लेकर देवीके

मन्दिरमें गया। वह कन्या राजासे पूर्व ही मन्दिरमें पहुँच चुकी थी। उसी समय बकवाहन नामके एक राक्षसने आकर उस कन्याका स्पर्श किया। यह देखकर राजा क्रोधान्ध हो गया। उसने राक्षसका सिर तलवारसे काट दिया। पुनः उस कन्यासे कहा—'भामिनि! तुम सत्य बताओ, यह कौन था और यहाँ कैसे आया?' उसने कहा—'राजन्! मैं विद्याधरकी कन्या हूँ। मेरा नाम मदवती है। मैं पिताजीकी प्रिय कन्या हूँ। एक बार मैं किसी समय वनमें गयी थी और भोजनके समय पिता-माताके पास घरमें नहीं पहुँच सकी थी। मेरे पिताजीने ध्यानके द्वारा सारा वृत्तान्त जान लिया, उन्होंने मुझे शाप दे दिया कि 'मदवती! कृष्ण चतुर्दशीको तुमको राक्षस ग्रहण करेगा।' जब मुझे शापकी बात मालूम हुई, तब मैंने रोते हुए पिताजीसे पूछा—'देव! मेरी इस शापसे मुक्ति कब होगी?' उन्होंने कहा—'पुत्री! जब कृष्ण चतुर्दशीको कोई राजा तुम्हारा वरण करेगा, तब तुम्हारे शापकी निवृत्ति हो जायगी।'

मदवतीने कहा— राजन्! आपके अनुग्रहसे आज मैं शापसे मुक्त हो गयी हूँ। आपकी आज्ञा पाकर अब मैं अपने पिताके घर जाना चाहती हूँ। यह सुनकर राजाने कहा—'तुम मेरे साथ मेरे घर चलो। इसके बाद मैं तुम्हें तुम्हारे पिताके पास ले चलूँगा।' वह राजाकी बात मानकर राजाके महलमें आ गयी और राजासे उसका विवाह हो गया। उस राजाके नगरमें महान् उत्सव हुआ। मन्त्रीने देखा कि राजाके साथ एक दिव्य कन्या भी आयी है। कुछ दिनों बाद मन्त्री एकाएक मृत्युको प्राप्त हो गया।

वैतालने पूछा—राजन्! बताओ, उस मन्त्रीके मरनेमें क्या कारण है? क्या रहस्य है?

राजा विक्रमने कहा—मन्त्री सत्यप्रकाश राजाका मित्र और प्रजाका परम हितैषी था। उसके ही समुद्योगसे राजाको श्रेष्ठ मदवती नामकी विद्याधर-कन्या रानीके रूपमें प्राप्त हुई थी, किंतु मदवतीके साथ विवाहके बाद मन्त्री सत्यप्रकाशने देखा कि राजा मदवतीको पाकर विलासी होते जा रहे हैं और राज्य एवं प्रजाकी उपेक्षा करने लगे हैं। दिन-रात विषय-सुखमें ही लिप्त रहने लगे हैं। यह देखकर उसने समझ लिया कि अब शीघ्र ही इस राज्यका विनाश होनेवाला है; क्योंकि जब राजा विषयी एवं स्वार्थी बन जाता है, तब राज्यका नाश अवश्य होता है। ऐसी स्थितिमें मेरी मन्त्रणाएँ भी व्यर्थ सिद्ध होंगी, अतः राज्यके विनाशको मैं अपनी आँखोंसे न देख सकूँ, इसलिये पहले ही मैं अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर देता हूँ। वैताल! यही समझकर मन्त्री सत्यप्रकाशने अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया।

किये गये कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है

(हरिस्वामीकी कथा)

वैतालने पुनः कहा—राजन्! चूड़ापुर नामक एक रमणीय नगरमें चूड़ामणि नामका एक राजा राज्य करता था। उसकी विशालाक्षी नामकी पतिव्रता पत्नी थी। रानीने पुत्रकी कामनासे भगवान् शंकरकी आराधना की। उनकी कृपासे उसे कामदेवके समान एक सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ, जो देवताओंके अंशसे सम्भूत था। उसका नाम रखा गया हरिस्वामी। सभी सम्पत्तियोंसे समन्वित वह हरिस्वामी पृथ्वीपर देवताके समान सुख भोगने लगा। देवलमुनिके शापसे एक देवाङ्गना मानुषीरूपमें रूपलावण्यिका नामसे उत्पन्न होकर राजकुमार हरिस्वामीकी पत्नी हुई। एक समय वह सुन्दरी अपने प्रासादमें आनन्दपूर्वक शय्यापर शयन कर रही थी। उस समय सुकल नामका एक गन्धर्व आया और उसने प्रगाढ़ निद्रामें निमग्न उस रानीका अपहरण कर लिया। जब हरिस्वामी उठा, तब अपनी पत्नीको न देखकर उसे ढूँढ़ने लगा। उसके न मिलनेपर वह व्याकुल हो गया और नगर छोड़कर वनमें चला गया तथा सभी विषयोंका परित्याग कर एकमात्र भगवान् श्रीहरिके ध्यानमें लीन हो गया और भिक्षावृत्तिका आश्रय ग्रहणकर संन्यासी हो गया।

एक दिन वह संन्यासी (राजा हरिस्वामी) भिक्षा माँगनेके लिये एक ब्राह्मणके घर आया और ब्राह्मणने प्रसन्नतापूर्वक खीर बनाकर उसको दी। खीरका पात्र लेकर वह वहाँसे स्नान करने चला आया। खीरका पात्र उसने वटवृक्षपर रख दिया और स्वयं नदीमें स्नान करने लगा। उसी समय कहींसे एक सर्प आया और उसने उस खीरमें अपने मुँहसे विष उगल दिया। जब संन्यासी हरिस्वामी स्नानसे आकर खीर खाने लगा तो विषके प्रभावसे वह बेहोश होने लगा और उस ब्राह्मणके

पास आकर कहने लगा—'अरे दुष्ट ब्राह्मण ! तुम्हारे द्वारा दिये गये विषमय खीरको खाकर अब मैं मर रहा हूँ। इसलिये तुम्हें ब्रह्महत्याका पाप लगेगा।' यह कहकर वह संन्यासी मर गया और उसने अपनी तपस्याके प्रभावसे शिवलोकको प्राप्त किया।

वैतालने राजासे पूछा—राजन्! इनमें ब्रह्महत्याका पाप किसको लगेगा ? यह मुझे बताओ।

राजाने कहा— विषधर नागने अज्ञानवश स्वभावतः उस पायसको विषमय कर दिया, अतः ब्रह्महत्याका पाप उसे नहीं होगा।

चूँकि संन्यासी बुभुक्षित था और भिक्षा माँगने ब्राह्मणके घर आया था, ब्राह्मणके लिये वह अतिथि देव-स्वरूप था। अतः अतिथिधर्मका पालन करना उसके कुल-धर्मके अनुकूल ही था। उसने श्रद्धासे खीर बनाकर संन्यासीको निवेदित किया; ऐसेमें वह कैसे ब्रह्महत्याका भागी बन सकता है ? यदि वह विष मिलाकर अन्न देता, तभी ब्रह्महत्या उसे लगती, क्योंकि अतिथिका अपमान भी ब्रह्महत्याके समान ही है। अतः ब्राह्मणको ब्रह्महत्या नहीं लगेगी। शेष बच गया वह संन्यासी। चूँकि अपने किये गये शुभाशुभ कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है। अतः वह संन्यासी अपने किसी जन्मान्तरीय कर्मवश कालकी प्रेरणासे स्वतः ही मरा, उसकी मृत्यु स्वाभाविक रूपसे ही हुई। इसमें किसीका दोष नहीं। पायसका भोजन करना तो मरनेमें केवल निमित्तमात्र ही था। अतः उसे भी ब्रह्महत्या नहीं लगेगी। इस प्रकार इन तीनोंमें किसीको भी ब्रह्महत्या नहीं लगेगी।

जीवन-दानका आदर्श
(जीमूतवाहन और शङ्खचूडकी कथा)

रुद्रकिंकर वैतालने राजा विक्रमादित्यसे कहा— महाराज ! कान्यकुब्ज (कन्नौज)में दानशील, सत्यवादी एवं देवी-पूजनमें तत्पर एक ब्राह्मण रहता था। वह प्रतिग्रहसे प्राप्त द्रव्यका दान कर देता था। एक बार शारदीय नवदुर्गाका व्रत आया। उसे दानमें कुछ भी द्रव्य प्राप्त नहीं हो सका, अतः वह बहुत चिन्तित हो गया, सोचने लगा, कौन-सा उपाय करूँ, जिससे मुझे द्रव्यकी प्राप्ति हो। मैंने दुर्गा-पूजामें कन्याओंको निमन्त्रित किया है, अब उन्हें कैसे भोजन कराऊँगा। वह इसी चिन्तामें निमग्न हो रहा था कि देवीकी कृपासे उसे अनायास पाँच मुद्राएँ प्राप्त हो गयीं और उसीसे उसने व्रत सम्पन्न किया। उसने नौ दिनोंतक निराहार व्रत किया था। उस व्रतके प्रभावसे मरकर उसने देवस्वरूपको प्राप्त किया। फलतः वह विद्याधरोंका स्वामी जीमूतकेतु हुआ। वह हिमालय पर्वतके रम्य स्थानमें रहता था। वहाँ वह भक्तिपूर्वक कल्पवृक्षकी पूजा भी करता था। उस वृक्षके प्रभावसे उसे सभी कलाओंमें कुशल जीमूतवाहन नामका एक पुत्र प्राप्त हुआ।

पूर्वजन्ममें वह जीमूतवाहन मध्यदेशका शूरसेन नामक राजा था। किसी समय वह राजा शूरसेन आखेटके लिये महर्षि वाल्मीकिकी निवासभूमि उत्पलावर्त नामक वनमें आया। वहाँ चैत्र शुक्ला नवमीको उसने विधिवत् रामजन्मका श्रीरामनवमी-उत्सव किया। उसने महर्षि वाल्मीकिकी कुटीमें रात्रि-जागरण भी किया। राममयी गाथाके श्रवणजन्य पुण्यके प्रभावसे वह शूरसेन राजा ही जीमूतकेतुके पुत्र-रूपमें जीमूतवाहन नामक विद्याधर हुआ।

उस महात्मा जीमूतवाहनने भी कल्पवृक्षकी श्रद्धापूर्वक पूजा की। एक वर्षके भीतर ही प्रसन्न होकर उस वृक्षने उससे वर माँगनेको कहा। इसपर जीमूतवाहनने कहा— 'महावृक्ष ! मेरा नगर आपकी कृपासे धन-धान्य-सम्पन्न हो जाय। कल्पवृक्षने नगरको पृथ्वीमें सर्वश्रेष्ठ कर दिया। वहाँ कोई भी ऐसा नहीं था जो कल्पवृक्षके प्रभावसे राजाके समान न हो गया हो। अनन्तर वे पिता और पुत्र दोनों तपस्याके लिये वनमें चले गये और अतिशय रमणीय मलयाचलपर कठोर तपस्या करने लगे।

राजन्! एक दिन राजा मलयध्वजकी पुत्री कमलाक्षी शिवकी पूजाके लिये अपनी सखियोंके साथ शिव-मन्दिरमें आयी। उसी समय जीमूतवाहन भी पूजाके लिये मन्दिरमें पहुँचा। सभी अलंकारोंसे अलंकृत दिव्य राजकन्याको देखकर उसे प्राप्त करनेकी इच्छा जीमूतवाहनको जाग्रत् हुई तथा इसके

लिये उसने प्रार्थना भी की। अन्तमें कन्याके पिता मलयध्वजने जीमूतवाहनसे उसका विवाह करा दिया।

राजा मलयध्वजका पुत्र विश्वावसु एक दिन अपने बहनोई जीमूतवाहनके साथ गन्धमादन पर्वतपर गया। वहाँ उसने नर-नारायणको प्रणाम किया। उसी शिखरपर भगवान् विष्णुका वाहन गरुड़ आया। उस समय शङ्खचूड नागकी माता, जहाँ जीमूतवाहन था वहाँ विलाप कर रही थी। स्त्रीके करुणक्रन्दनको सुनकर दीनवत्सल जीमूतवाहन दुःखी होकर शीघ्र ही वहाँ पहुँचा। वृद्धाको आश्वासन देकर उसने पूछा—'तुम क्यों रो रही हो? तुम्हें क्या कष्ट है?' वह बोली—'देव! आज मेरा पुत्र गरुड़का भक्ष्य बनेगा, उसके वियोगके कारण दुःखसे व्याकुल होकर मैं रो रही हूँ।' यह सुनकर राजा जीमूतवाहन गरुड़-शिखरपर गया। गरुड़ उसे अपना भक्ष्य समझकर पकड़कर आकाशमें ले गया। जीमूतवाहनकी पत्नी कमलाक्षी आकाशमें गरुड़के द्वारा भक्षण किये जाते हुए अपने पतिको देखकर दुःखसे रोने लगी। परंतु बिना कष्टके खाये जाते उस जीमूतवाहनको मानव-रूपमें देखकर गरुड़ डर गया और जीमूतवाहनसे कहने लगा—'तुम मेरे भक्ष्य क्यों बन गये?' इसपर उसने कहा—'शङ्खचूड नागकी माता बड़ी दुःखी थी, उसके पुत्रकी रक्षाके लिये मैं तुम्हारे पास आया।' जब यह घटना शङ्खचूड नागको मालूम हुई तो दुःखी होकर वह शीघ्र ही गरुड़के पास आया और कहने लगा—'कृपासागर! आपके भोजनके लिये मैं उपस्थित हूँ। महामते! इस दिव्य मनुष्यको छोड़कर मुझे अपना आहार बनाइये।' जीमूतवाहनकी महानता और परोपकारकी भावना देखकर गरुड़ अत्यन्त प्रसन्न हो गया और उसने विद्याधर जीमूतवाहनको तीन वर दिये। 'अब मैं आगेसे कभी शङ्खचूडके वंशजोंको नहीं खाऊँगा। श्रेष्ठ जीमूतवाहन! तुम विद्याधरोंकी नगरीमें श्रेष्ठ राज्य प्राप्त करोगे और एक लाख वर्षतक आनन्दका उपभोग कर वैकुण्ठ प्राप्त करोगे।' इतना कहकर गरुड़ अन्तर्हित हो गया और जीमूतवाहनने पितासे राज्य प्राप्त किया तथा अपनी पत्नी कमलाक्षीके साथ राज्य-सुख भोगकर अन्तमें वह वैकुण्ठलोकको चला गया।

वैतालने राजासे पूछा—भूपते! अब आप बताइये कि शङ्खचूड तथा जीमूतवाहन—इन दोनोंमें किसको महान् फल प्राप्त हुआ और दोनोंमें कौन अधिक साहसी था?

राजा बोला—वैताल! शङ्खचूडको ही महान् फल प्राप्त हुआ; क्योंकि उपकार करना तो राजाका स्वभाव ही होता है। राजा जीमूतवाहनने शङ्खचूडके लिये यद्यपि अपना जीवन देकर महान् त्याग एवं उपकार किया, उसीके फलस्वरूप गरुड़ने प्रसन्न होकर उसे राज्य एवं वैकुण्ठ-प्राप्तिका वर प्रदान किया, तथापि राजा होनेसे जीमूतवाहनका जीवन-दान (नागकी रक्षा करना) कर्तव्यकोटिमें आ जाता है। अतः उसका त्याग शङ्खचूडके त्याग एवं साहसके सामने महत्त्वपूर्ण नहीं प्रतीत होता, परंतु शङ्खचूडने निर्भय होकर अपने शत्रु गरुड़को अपना शरीर समर्पित कर एक महान् धर्मात्मा राजाके प्राण बचाये थे। अतः शङ्खचूड ही सबसे बड़े फलका अधिकारी प्रतीत होता है। वैताल राजाके इस उत्तरसे संतुष्ट हो गया।

साधनामें मनोयोगकी महत्ता
(गुणाकरकी कथा)

वैतालने पुनः कहा—राजन्! उज्जयिनीमें महासेन नामका एक राजा था। उसके राज्यमें देवशर्मा नामका एक ब्राह्मण रहता था। देवशर्माका गुणाकर नामक एक पुत्र था, जो द्यूत, मद्य आदिका व्यसनी था। उस दुष्ट गुणाकरने पिताका सारा धन द्यूत आदिमें नष्ट कर दिया। उसके बन्धुओंने उसका परित्याग कर दिया। वह पृथ्वीपर इधर-उधर भटकने लगा। दैवयोगसे गुणाकर एक सिद्धके आश्रममें आया, वहाँ कपर्दी नामके एक योगीने उसे कुछ खानेको दिया, किंतु भूखसे पीडित होते हुए भी उसने उस अन्नको पिशाच आदिसे दूषित समझकर ग्रहण नहीं किया। इसपर उस योगीने उसके आतिथ्यके लिये एक यक्षिणीको बुलाया। यक्षिणीने आकर गुणाकरका आतिथ्य-स्वागत किया। तदनन्तर वह कैलास-शिखरपर चली गयी। उसके वियोगसे विह्वल होकर गुणाकर पुनः योगीके पास आया। योगीने यक्षिणीको आकृष्ट करनेवाली

विद्या गुणाकरको प्रदान की और कहा—'वत्स ! तुम चालीस दिनतक जलमें स्थित रहकर आधी रातमें इस शुभ मन्त्रका जप करो। ऐसा करनेपर यदि तुम मन्त्र सिद्ध कर लोगे तो मन्त्रकी शक्तिके प्रभावसे वह यक्षिणी तुम्हें प्राप्त हो जायगी। गुणाकरने वैसा ही किया, किंतु वह यक्षिणीको प्राप्त नहीं कर सका। अन्तमें विवश होकर योगीकी आज्ञासे अपने घर लौट आया। उसने अपने माता-पिताको नमस्कार कर वह रात्रि बितायी। दूसरे दिन प्रातः वह गुणाकर संन्यासियोंके एक मठमें गया और वहाँ शिष्य-रूपमें रहने लगा। पञ्चाग्निके मध्यमें स्थित होकर उसने पवित्र हो यक्षिणीको प्राप्त करनेके लिये कपर्दीद्वारा बताये गये मन्त्रका पुनः जप करना प्रारम्भ किया, पर यक्षिणी फिर भी नहीं आयी, जिससे उसे बड़ा कष्ट हुआ।

वैतालने ज्ञानविशारद राजासे पूछा—'महाभाग ! गुणाकर अपनी प्रिया यक्षिणीको क्यों नहीं प्राप्त कर सका ?'

राजा बोला—रुद्रकिंकर ! साधककी सिद्धिके लिये तीन आवश्यक गुण होने चाहिये—मन, वाणी तथा शरीरका ऐकात्म्य। मन और वाणीकी एकतासे किया गया कर्म परलोकमें सुखप्रद होता है। वाणी और शरीरसे किया गया कार्य सुन्दर होता है। वह इस जन्ममें आंशिक फल देता है और परलोकमें अधिक फलप्रद होता है। मन और शरीरके द्वारा किया गया कर्म दूसरे जन्ममें सिद्धि प्रदान करता है; परंतु मन, वाणी और शरीर—इन तीनोंकी तन्मयतासे सम्पादित कर्म इस जन्ममें ही शीघ्र फल प्रदान करता है और अन्तमें मोक्ष भी प्रदान करता है। अतः साधकको कोई भी कार्य अत्यन्त मनोयोगसे करना चाहिये।

गुणाकरने यद्यपि दो बार बड़े कष्टपूर्वक मन्त्रका जप किया; किंतु दोनों ही बारकी साधनामें मनोयोगकी कमी रही। जलके भीतर तथा पञ्चाग्नि-सेवन आदिमें शरीरका योग रहा और वाणीसे जप भी होता रहा, किंतु गुणाकरका मन मन्त्रमें न लगकर यक्षिणीमें लगा हुआ था। इसी कारण उसे मन्त्र-शक्तिपर विश्वास भी न हो सका। शरीर और वाणीका योग होते हुए भी मनका योग न रहनेके कारण गुणाकर यक्षिणीको प्राप्त न कर सका, किंतु कर्म तो उसने किया ही था, फलतः परलोकमें वह यक्ष हुआ और यक्ष होकर यक्षिणीको प्राप्त किया। इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी भी कार्यकी पूर्ण सिद्धिके लिये मन, वाणी और शरीर—इन तीनोंका ही योग आवश्यक है। इनमें भी मनका योग परम आवश्यक है।

संतानमें समान-भाव रखें
(मझले पुत्रकी कथा)

वैतालने पुनः कहा—राजन् ! चित्रकूटमें रूपदत्त नामका एक विख्यात राजा रहता था। एक दिन वह एक मृगका पीछा करते हुए एक वनमें प्रविष्ट हो गया। मध्याह्न-कालमें वह एक सरोवरके पास पहुँचा और वहाँ उसने अपनी सखीके साथ कमल-पुष्पोंका चयन करती हुई एक सुन्दर मुनि-कन्याको देखा। उसके श्रेष्ठ रूपको देखकर राजाने उसे अपनी रानी बनानेका निश्चय किया। वह कन्या भी राजाको देखकर प्रसन्न हुई। दोनों परस्पर प्रीतिपूर्वक एक दूसरेको देखने लगे। उसकी सखीसे राजाने जब उस कन्याका पता पूछा, तब उसने कहा कि यह एक मुनिकी धर्मपुत्री है। उसी समय उस कन्याके पिता वहाँ आ पहुँचे। मुनिको देखकर राजाने विनयपूर्वक उनसे पूछा—'मुने ! उत्तम धर्म क्या है ?' इसपर महामनीषी मुनि बोले—'राजन् ! असहायका पालन-पोषण, शरणागतकी रक्षा और दया करना यही मुख्य धर्म है। भयभीतको अभय-दान देनेके समान कोई दान नहीं है। उद्दण्डोंको दण्ड देना चाहिये। पूज्यजनोंकी पूजा करनी चाहिये। गौ एवं ब्राह्मणमें नित्य आदर-भाव रखना चाहिये। दण्ड देनेमें समान-भाव रखना चाहिये, पक्षपात नहीं करना चाहिये। देवताकी पूजामें छल-छद्म एवं कपटको छोड़कर श्रद्धा-भक्ति-रूपी सत्यका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। गुरु एवं श्रेष्ठ जनोंकी पूजामें इन्द्रिय-निग्रह एवं समाहितचित्तताका विशेष ध्यान रखना चाहिये। दान देते समय मृदुताका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। थोड़े-से भी हुए निन्द्य कर्मको बहुत बड़ा अपराध समझकर सर्वथा उससे विरत रहना चाहिये[१]।

१-तमुवाच मुनिर्धीमान् दयाधर्मप्रपोषणम्। निर्भयस्य समं दानं न भूतं न भविष्यति॥

ऐसा कहकर उस मुनिने अपनी कन्याका विवाह राजकुमारके साथ कर दिया। राजा उसे लेकर अपनी राजधानीकी ओर चला। मार्गमें उसने एक वटवृक्षके नीचे विश्राम किया। उसी समय उसकी पत्नीको खा जानेके लिये एक राक्षस वहाँ आया और कहने लगा कि 'तुम दोनोंने मेरा स्थान अपवित्र कर दिया है, अतः मैं तुमलोगोंको खा जाऊँगा।' राजाके क्षमा माँगनेपर उसने पुनः कहा—'यदि तुम किसी सात वर्षके ब्राह्मण-बालकको मेरे खानेके लिये प्रस्तुत करो तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगा।' राजा राक्षसको वचन देकर अपनी पत्नीके साथ महलमें चला आया।

दूसरे दिन राजाने मन्त्रियोंको सब समाचार कह सुनाया। मन्त्रियोंके परामर्शपर राजाने एक ब्राह्मणको एक लक्ष स्वर्ण-मुद्राएँ देकर उसके मध्यम पुत्रको राक्षसको समर्पित करनेके लिये राजी कर लिया। उस ब्राह्मणपुत्रने भी पिताके लिये अपना बलिदान देना स्वीकार कर लिया। यथासमय उसे लेकर सभी राक्षसके पास पहुँचे। ज्यों ही बलिदानका समय आया, त्यों ही वह ब्राह्मणका बालक पहले हँसा और फिर उच्च स्वरसे रोने लगा।

वैतालने पूछा—राजन्! बताओ कि मृत्युके समय वह ब्राह्मण-बालक पहले क्यों हँसा और बादमें फिर क्यों रोया?

राजाने कहा—वैताल! बड़ा पुत्र पिताको प्रिय होता है और छोटा पुत्र माताको प्रिय होता है। इसलिये माता-पितासे अपनेको उपेक्षित जानकर और अन्य कोई शरण्य न देखकर बड़ी आशासे मध्यम पुत्रने राजाकी शरण ग्रहण की, परंतु अपनी पत्नीका प्रिय चाहनेवाले उस निर्दयी राजा रूपदत्तके हाथमें मृत्युरूपी तलवार देखकर उस ब्राह्मणकुमारको पहले हँसी आ गयी और फिर मेरा यह उत्तम शरीर अधम राक्षसको प्राप्त होगा, यह सोचकर वह दुःखी होकर उच्च स्वरसे रोता हुआ पश्चात्ताप करने लगा। वैताल राजाके इस उत्तरसे बहुत प्रसन्न हुआ।

पढ़ो कम, समझो ज्यादा

(चार मूर्खोंकी कथा)

वैतालने राजासे पुनः कहा—राजन्! रमणीय जयपुरमें वर्धमान नामका एक राजा था। उसके गाँवमें वेदवेदाङ्गपारंगत विष्णुस्वामी नामका एक ब्राह्मण निवास करता था। वह राधा-कृष्णका भक्त था। उसके चार पुत्र थे, जो विभिन्न व्यसनोंमें लगे रहते थे। वे जैसा निन्दित कर्म करते थे, वैसा ही उनका नाम भी निन्दित ही हो गया। पहला पुत्र द्यूतकर्मा था, दूसरा व्यभिचारी, तीसरा विषयी और चौथा नास्तिक था। संयोगसे दुर्भाग्यवश वे सभी निर्धन हो गये। एक बार वे सभी अपने पिता विष्णुशर्माके पास गये। उन लोगोंने विनयपूर्वक उन्हें नमस्कार किया और कहा—'पिताजी! हमलोगोंकी लक्ष्मी कैसे नष्ट हो गयी?' पिताने कहा—'द्यूतकर्मा! द्यूतकर्म धनको नष्ट कर देता है। यह पापका मूल है। द्यूतकर्मसे व्यभिचार, चौर्य और निर्दयता आदि उत्पन्न होते हैं। यह महान् दुष्परिणामकारी है। द्यूतकर्म करनेके कारण तुम्हारे द्रव्यका नाश हुआ।' यह सुनकर उसने कहा—'पितृचरण! आप मुझे कृपया धन-प्राप्तिका सही मार्ग बतायें।' पिताने कहा—'तीर्थ और व्रतके प्रभावसे तुम्हारे पाप नष्ट हो जायँगे। तुम अपने माता-पिताकी बातोंपर ध्यान दो, उनका कहना मानो।' तदनन्तर पिताने द्वितीय पुत्रसे कहा— 'पुत्र! तुम व्यभिचारी हो। वेश्याका संग बड़ा अशुभ है। तुम इस अशुभ कर्मको त्यागकर ब्रह्मचर्यपूर्वक ब्रह्मपरायण हो। ब्रह्मचर्यव्रत धारण करो।' तृतीय पुत्र विषयीसे कहा—'मांस और मदिरा सदा पापकी वृद्धिके कारण हैं, इनके द्वारा तुम चौर्य-कर्म करोगे और नरकगामी होगे, इसलिये तुम ऐश्वर्यसम्पन्न जगत्पति, सर्वोत्तम भगवान् विष्णुके निमित्त द्रव्योंको समर्पित कर मौन होकर भोजन करो' और अपने नास्तिक पुत्रसे कहा—'तुम देवनिन्दा आदि नास्तिक-भावको छोड़कर शुद्ध आस्तिक-मार्गका अवलम्बन

अनर्हान् दण्डमादद्यादर्हपूजाफलं भजेत्। मित्रता गोद्विजे नित्यं समता दण्डनिग्रहे॥
सत्यता सुरपूजायां दमता गुरुपूजने। मृदुता दानसमये संतुष्टिर्निन्द्यकर्मणि॥

(प्रतिसर्गपर्व २। १९। ५-७)

करो, आत्मा शुद्ध-बुद्ध एवं नित्य है और महादेवी चण्डिका महाशक्ति है। सभी प्राणियोंके हृदय-गुहामें स्थित देवतागण परमात्माके अङ्ग हैं। उनका ज्ञान प्राप्तकर पापकी शान्तिके लिये उनकी पूजा करो।'

यह सुनकर वे चारों पुत्र अपने पिताके द्वारा निर्दिष्ट साधनोंमें प्रवृत्त हो गये और सुन्दर ज्ञानकी प्राप्तिके लिये सर्वेश्वर शिवकी आराधना भी करने लगे। भगवान् शंकरने वर्षभरमें उन्हें संजीवनी विद्या प्रदान कर दी। वे संजीवनी विद्या प्राप्त कर एक वनमें आये और वहाँ बिखरी व्याघ्रकी अस्थियोंपर विद्याकी परीक्षा करने लगे। प्रथम पुत्रने मरे हुए व्याघ्रकी अस्थियोंको एकत्र करके उसपर मन्त्रपूत जल छिड़का। उस मन्त्रके प्रभावसे वे अस्थियाँ पंजर-रूप हो गयीं। दूसरे व्यभिचारी पुत्रने उसपर मन्त्रपूत जल छिड़का' जिसके प्रभावसे वह पंजर मांस और रुधिरसे सम्पन्न हो गया। विषयी पुत्रने उसके ऊपर अभिमन्त्रित जल छिड़का। फलस्वरूप त्वचा और प्राण उसमें आ गये। सोये हुए व्याघ्रको जीवित करनेके लिये नास्तिक पुत्रने जल छिड़का। मन्त्रके प्रभावसे जीवित होनेपर उस व्याघ्रने उन सभीका भक्षण कर लिया।

वैतालने राजासे पूछा—राजन्! अब आप बतायें कि उन चारोंमें सबसे बड़ा मूर्ख कौन था?

राजा बोले—जिसने मरे हुए व्याघ्रको जिलाया, वही सबसे बड़ा मूर्ख है। इस उत्तरसे वैताल अत्यन्त प्रसन्न हो गया।

वैतालने पुनः राजासे कहा—राजा विक्रमादित्य! भगवान् शंकरकी आज्ञासे ही मैं तुम्हारे पास आया था। अनेक प्रकारके प्रश्नोत्तरोंके द्वारा मैंने तुम्हारी परीक्षा ली और तुमने सबका बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर दिया। इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारी भुजाओंमें मेरा निवास रहेगा, जिससे तुम पृथ्वीके समस्त शत्रुओंको जीत लोगे। दस्युओंके द्वारा सभी पुरियाँ, विविध क्षेत्र, नगर आदि नष्ट कर दिये गये हैं। इसलिये शास्त्रमें बताये गये परिमाणके आधारपर पुनः उनकी रचना करवाओ और न्यायपूर्वक पृथ्वीका शासन करो। तुम्हारे राज्यमें पुनः धर्मकी स्थापना होगी।

इतना कहकर वह वैताल देवीकी आराधनाका निर्देश देकर वहीं अन्तर्हित हो गया। राजा विक्रमादित्यने मुनियोंकी आज्ञासे अश्वमेध-यज्ञ किया और वह चक्रवर्ती राजा हुआ। धर्मपूर्वक राज्य करते हुए अन्तमें राजा विक्रमादित्यने स्वर्गलोक प्राप्त किया[1]।

राजा विक्रमादित्यके स्वर्गगमनको जानकर शौनकादि महर्षियोंने लोमहर्षण सूतजी महाराजसे पुनः इतिहास एवं पुराणकी पुण्यमयी कथाओंका श्रवण किया और फिर आनन्दित होते हुए वे सभी अपने-अपने स्थानोंकी ओर चले गये। (अध्याय १—२३)

१-इन्हीं राजा विक्रमादित्यने विक्रम-संवत्‌का प्रवर्तन किया था, जो भारतका मुख्य संवत् है।

सत्यनारायणव्रत-कथा

[भारतवर्षमें सत्यनारायणव्रत-कथा अत्यन्त लोकप्रिय है और जनता-जनार्दनमें इसका प्रचार-प्रसार भी सर्वाधिक है। भारतीय सनातन परम्परामें किसी भी माङ्गलिक कार्यका प्रारम्भ भगवान् गणपतिके पूजनसे एवं उस कार्यकी पूर्णता भगवान् सत्यनारायणकी कथा-श्रवणसे समझी जाती है। वर्तमान समयमें भगवान् सत्यनारायणकी प्रचलित कथा स्कन्दपुराणके रेवाखण्डके नामसे प्रसिद्ध है, जो पाँच या सात अध्यायोंके रूपमें उपलब्ध है। भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपर्वमें भी भगवान् सत्यनारायणव्रत-कथाका उल्लेख मिलता है, जो छः अध्यायोंमें प्राप्त है। यह कथा स्कन्दपुराणकी कथासे मिलती-जुलती होनेपर भी विशेष रोचक एवं श्रेष्ठ प्रतीत होती है। सत्यनारायणव्रत-कथाकी प्रसिद्धिके साथ अनेक शंका-समाधान भी इसपर होते रहते हैं तथा लोग यह भी पूछते हैं कि साधु वणिक्, काष्ठविक्रेता, शतानन्द ब्राह्मण, उल्कामुख, तुंगध्वज आदि राजाओंने कौन-सी कथाएँ सुनी थीं और वे कथाएँ कहाँ गयीं तथा इस कथाका प्रचार कबसे हुआ ? इस सम्बन्धमें यही जानना चाहिये कि कथाके माध्यमसे मूल सत्-तत्व परमात्माका ही इसमें निरूपण हुआ है, जिसके लिये गीतामें **'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'** *आदि शब्दोंमें यह स्पष्ट किया गया है कि इस मायामय दुःखद संसारकी वास्तविक सत्ता ही नहीं है। परमेश्वर ही त्रिकालाबाधित सत्य है और एकमात्र वही ज्ञेय, ध्येय एवं उपास्य है। ज्ञान-वैराग्य और अनन्य भक्तिके द्वारा वही साक्षात्कार करनेके योग्य है। भागवत (१०।२।२६) में भी कहा गया है—*

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥

यहाँ भी सत्यव्रत और सत्यनारायणव्रतका तात्पर्य उन शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मासे ही है। इसी प्रकार निम्नलिखित श्लोकमें—

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः।
असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः ॥ (श्रीमद्भा० १०।१४।२८)

—संसारमें मनीषियोंद्वारा सत्य-तत्त्वकी खोजकी बात निर्दिष्ट है, जिसे प्राप्तकर मनुष्य सर्वथा कृतार्थ हो जाता है और सभी आराधनाएँ उसीमें पर्यवसित होती हैं। निष्काम-उपासनासे सत्यस्वरूप नारायणकी प्राप्ति हो जाती है।

अतः श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक पूजन, कथा-श्रवण एवं प्रसाद आदिके द्वारा उन सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान् सत्यनारायणकी उपासनासे लाभ उठाना चाहिये।—**सम्पादक]**

कथाका उपक्रम—

व्यासजी बोले—एक समयकी बात है, नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंने पौराणिक श्रीसूतजीसे विनयपूर्वक पूछा—'भगवन्! संसारके कल्याणके लिये आप यह बतलानेकी कृपा करें कि चारों युगोंमें कौन पूजनीय और कौन सेवनीय है तथा कौन सबके अभीष्ट मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है? मानव अनायास ही किसकी आराधनाद्वारा अपनी मङ्गलमयी कामनाको प्राप्त कर सकता है? ब्रह्मन्! आप ऐसे सत्य उपायको बतलायें जो मनुष्योंकी कीर्तिको बढ़ानेवाला हो। शौनकादि ऋषियोंद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर श्रीसूतजी भगवान् सत्यनारायणकी प्रार्थना करने लगे—

नवाम्भोजनेत्रं रमाकेलिपात्रं
चतुर्बाहुचामीकरं चारुगात्रम्।
जगत्त्राणहेतुं रिपौ धूम्रकेतुं
सदा सत्यनारायणं स्तौमि देवम् ॥

(प्रतिसर्गपर्व २।२४।४)

(श्रीसूतजीने प्रार्थना करते हुए कहा—) 'प्रफुल्लित नवीन कमलके समान नेत्रवाले, भगवती लक्ष्मीके क्रीडापात्र, चतुर्भुज, सुवर्णकान्तिके समान सुन्दर शरीरवाले, संसारकी रक्षा करनेके एकमात्र मूल कारण तथा शत्रुओंके लिये धूम्रकेतुस्वरूप भगवान् सत्यनारायणदेवकी मैं

स्तुति करता हूँ।'

श्रीरामं सहलक्ष्मणं सकरुणं सीतान्वितं सात्त्विकं
वैदेहीमुखपद्मलुब्धमधुपं पौलस्त्यसंहारकम्।
वन्दे वन्द्यपदाम्बुजं सुरवरं भक्तानुकम्पाकरं
शत्रुघ्नेन हनूमता च भरतेनासेवितं राघवम्॥

(प्रतिसर्गपर्व २।२४।५)

'जो भगवान् करुणाके निधान हैं, जिनके चरणकमल वन्दनीय हैं, जो भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं, जो लक्ष्मणजीके साथ रहते हैं और माता श्रीसीतासे समन्वित हैं तथा माता वैदेही श्रीजनकनन्दिनीजीके मुख-कमलकी ओर स्निग्धभावसे देखते रहते हैं, उन शत्रुघ्न, हनुमान् तथा भरतसे सेवित, पुलस्त्यकुलका संहार करनेवाले, सत्त्वरूप सुरश्रेष्ठ राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्रकी मैं वन्दना करता हूँ।'

सूतजीने कहा—ऋषियो! अब मैं आपसे श्रेष्ठ राजाओंके चरित्रोंसे सम्बद्ध एक इतिहासका वर्णन करता हूँ, उसे आपलोग श्रवण करें। यह पवित्र आख्यान कलियुगके सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, देवताओंद्वारा आभासित, ब्राह्मणोंद्वारा प्रकाशित, विद्वानोंको आनन्दित करनेवाला तथा विशेष रूपसे सत्संगकी चर्चास्वरूप है[१]।

ऋषियो! एक समय योगी देवर्षि नारदजी सबके कल्याणकी कामनासे विविध लोकोंमें भ्रमण करते हुए इस मृत्युलोकमें आये। यहाँ उन्होंने देखा कि अपने-अपने किये गये कर्मोंके अनुसार संसारके प्राणी नाना प्रकारके क्लेशों एवं दुःखोंसे दुःखी हैं और विविध आधि एवं व्याधिसे ग्रस्त हैं। यह देखकर उन्होंने सोचा कि कौन-सा ऐसा उपाय है, जिससे इन प्राणियोंके दुःखका नाश हो। ऐसा विचारकर वे विष्णु-लोकमें गये। वहाँ उन्होंने शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमालासे अलंकृत, प्रसन्नमुख, शान्त, सनक-सनन्दन तथा सनत्कुमारादिसे संस्तुत भगवान् नारायणका दर्शन किया। उन देवाधिदेवका दर्शनकर नारदजी उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—'वाणी और मनसे जिनका स्वरूप परे है और जो अनन्तशक्तिसम्पन्न हैं, आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं, ऐसे महान् आत्मा निर्गुणस्वरूप आप परमात्माको मेरा नमस्कार है। सभीके आदिपुरुष लोकोपकारपरायण, सर्वत्र व्याप्त, तपोमूर्ति आपको मेरा बार-बार नमस्कार है।'

देवर्षि नारदकी स्तुति सुनकर भगवान् विष्णु बोले—देवर्षे! आप किस कारणसे यहाँ आये हैं? आपके मनमें कौन-सी चिन्ता है? महाभाग! आप सभी बातें बतायें। मैं उचित उपाय कहूँगा।

नारदजीने कहा—प्रभो! लोकोंमें भ्रमण करता हुआ मैं मृत्युलोकमें गया था, वहाँ मैंने देखा कि संसारके सभी प्राणी अनेक प्रकारके क्लेश-तापोंसे दुःखी हैं। अनेक रोगोंसे ग्रस्त हैं। उनकी वैसी दुर्दशा देखकर मेरे मनमें बड़ा कष्ट हुआ और मैं सोचने लगा कि किस उपायसे इन दुःखी प्राणियोंका उद्धार होगा? भगवन्! उनके कल्याणके लिये आप कोई श्रेष्ठ एवं सुगम उपाय बतलानेकी कृपा करें। नारदजीके इन वचनोंको सुनकर भगवान् नारायणने साधु-साधु शब्दोंसे उनका अभिनन्दन किया और कहा—'नारदजी! जिस विषयमें आप पूछ रहे हैं, उसके लिये मैं आपको एक सनातन व्रत बतलाता हूँ।'

भगवान् नारायण सत्ययुग और त्रेतायुगमें विष्णुस्वरूपमें फल प्रदान करते हैं और द्वापरमें अनेक रूप धारणकर फल देते हैं, परंतु कलियुगमें सर्वव्यापक भगवान् सत्यनारायण प्रत्यक्ष फल देते हैं, क्योंकि धर्मके चार पाद हैं—सत्य, शौच, तप और दान। इनमें सत्य ही प्रधान धर्म है। सत्यपर ही लोकका व्यवहार टिका है और सत्यमें ही ब्रह्म प्रतिष्ठित है, इसलिये सत्यस्वरूप भगवान् सत्यनारायणका व्रत परम श्रेष्ठ कहा गया है।'

नारदजीने पुनः पूछा—भगवन्! सत्यनारायणकी पूजाका क्या फल है और इसकी क्या विधि है? देव! कृपासागर! सभी बातें अनुग्रहपूर्वक मुझे बतायें।

श्रीभगवान् बोले—नारद! सत्यनारायणकी पूजाका फल एवं विधि चतुर्मुख ब्रह्मा भी बतलानेमें समर्थ नहीं हैं, किंतु संक्षेपमें मैं उसका फल तथा विधि बतला रहा हूँ,

---

१-कलिकलुषविनाशं कामसिद्धिप्रकाशं सुरवरमुखभासं भूसुरेण प्रकाशम्।
विबुधबुधविलासं साधुचर्याविशेषं नृपतिवरचरित्रं भोः शृणुध्वेतिहासम्॥ (प्रतिसर्गपर्व २।२४।६)

आप सुने —

सत्यनारायणके व्रत एवं पूजनसे निर्धन व्यक्ति धनाढ्य और पुत्रहीन व्यक्ति पुत्रवान् हो जाता है। राज्यच्युत व्यक्ति राज्य प्राप्त कर लेता है, दृष्टिहीन व्यक्ति दृष्टिसम्पन्न हो जाता है, बंदी बन्धनमुक्त हो जाता है और भयार्त व्यक्ति निर्भय हो जाता है। अधिक क्या ? व्यक्ति जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, उसे वह सब प्राप्त हो जाती है। इसलिये मुने ! मनुष्य-जन्ममें भक्तिपूर्वक सत्यनारायणकी अवश्य आराधना करनी चाहिये। इससे वह अपने अभिलषित वस्तुको निःसंदेह शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।

इस सत्यनारायण-व्रतके करनेवाले व्रतीको चाहिये कि वह प्रातः दन्तधावनपूर्वक स्नानकर पवित्र हो जाय। हाथमें तुलसी-मंजरीको लेकर सत्यमें प्रतिष्ठित भगवान् श्रीहरिका इस प्रकार ध्यान करे—

नारायणं सान्द्रघनावदातं
चतुर्भुजं पीतमहार्हवाससम्।
प्रसन्नवक्त्रं नवकञ्जलोचनं
सनन्दनाद्यैरुपसेवितं भजे॥
करोमि ते व्रतं देव सायंकाले त्वदर्चनम्।
श्रुत्वा गाथां त्वदीयां हि प्रसादं ते भजाम्यहम्॥

(प्रतिसर्गपर्व २।२४।२६-२७)

'सघन मेघके समान अत्यन्त निर्मल, चतुर्भुज, अति श्रेष्ठ पीले वस्त्रको धारण करनेवाले, प्रसन्नमुख, नवीन कमलके समान नेत्रवाले, सनक-सनन्दनादिसे उपसेवित भगवान् नारायणका मैं सतत चिन्तन करता हूँ। देव ! मैं आपके सत्यस्वरूपको धारणकर सायंकालमें आपकी पूजा करूँगा। आपके रमणीय चरित्रको सुनकर आपके प्रसाद अर्थात् आपकी प्रसन्नताका मैं सेवन करूँगा।'

इस प्रकार मनमें संकल्पकर सायंकालमें विधिपूर्वक भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। पूजामें पाँच कलश रखने चाहिये। कदली-स्तम्भ और बंदनवार लगाने चाहिये। स्वर्णमण्डित भगवान् शालग्रामको पुरुषसूक्त (यजु० ३१।१-१६) द्वारा पञ्चामृत आदिसे भलीभाँति स्नान कराकर चन्दन आदि अनेक उपचारोंसे भक्तिपूर्वक उनकी अर्चना करनी चाहिये। अनन्तर भगवान्‌को निम्न मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्रणाम करना चाहिये—

नमो भगवते नित्यं सत्यदेवाय धीमहि।
चतुःपदार्थदात्रे च नमस्तुभ्यं नमो नमः॥

(प्रतिसर्गपर्व २।२४।३०)

'षडैश्वर्यरूप भगवान् सत्यदेवको नमस्कार है, मैं आपका सदा ध्यान करता हूँ। आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष— इस चतुर्विध पुरुषार्थको प्रदान करनेवाले हैं, आपको बार-बार नमस्कार है।'

इस मन्त्रका यथाशक्ति जपकर १०८ बार हवन करे। उसके दशांशसे तर्पण तथा उसके दशांशसे मार्जन कर भगवान्‌की कथाको सुनना चाहिये, जो छः अध्यायोंमें उपनिबद्ध है। भगवान्‌की इस कथामें सत्य-धर्मकी ही मुख्यता है। कथा-श्रवणके अनन्तर भगवान्‌के प्रसादको चार भागोंमें विभक्तकर उसे भलीभाँति वितरण करे। प्रथम भाग आचार्यको दे, द्वितीय भाग अपने कुटुम्बको, तृतीय भाग श्रोताओंको और चतुर्थ भाग अपने लिये रखे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराये एवं स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। देवर्षे ! इस विधिसे सत्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सत्यनारायणकी पूजा करनेवाला व्रती सभी अभीष्ट कामनाओंको इसी जन्ममें प्राप्त कर लेता है। इस जन्ममें किये गये पुण्यफलको दूसरे जन्ममें भोगा जाता है और दूसरे जन्ममें किये गये कर्मोंका फल मनुष्यको यहाँ भोगना पड़ता है। श्रद्धापूर्वक किया गया सत्यनारायणका व्रत सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है।

नारदजीने कहा—भगवन् ! आज ही आपकी आज्ञासे भूमण्डलमें इस सत्यदेव-व्रतको मैं प्रतिष्ठित करूँगा। यह कहकर नारदजी तो पृथ्वीपर व्रतका प्रचार करने चले गये और भगवान् नारायणदेव अन्तर्धान हो काशीपुरीमें चले आये।

(अध्याय २४)

[सत्यनारायणव्रत-कथाका प्रथम अध्याय]

सत्यनारायणव्रत-कथामें शतानन्द ब्राह्मणकी कथा

सूतजी बोले—ऋषियो! भगवान् नारायणने स्वयं कृपापूर्वक देवर्षि नारदजीद्वारा जिस प्रकार इस व्रतका प्रचार किया, अब मैं उस कथाको कहता हूँ, आपलोग सुनें—

लोकप्रसिद्ध काशी नगरीमें एक श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण रहते थे, जो विष्णु-व्रतपरायण थे, वे गृहस्थ थे, दीन थे तथा स्त्री-पुत्रवान् थे। वे भिक्षा-वृत्तिसे अपना जीवन-यापन करते थे। उनका नाम शतानन्द था। एक समय वे भिक्षा माँगनेके लिये जा रहे थे। उन विनीत एवं अतिशय शान्त शतानन्दको मार्गमें एक वृद्ध ब्राह्मण दिखायी दिये, जो साक्षात् हरि ही थे। उन वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी श्रीहरिने ब्राह्मण शतानन्दसे पूछा—'द्विजश्रेष्ठ! आप किस निमित्तसे कहाँ जा रहे हैं?' शतानन्द बोले—'सौम्य! अपने पुत्र-कलत्रादिके भरण-पोषणके लिये धन-याचनाकी कामनासे मैं धनिकोंके पास जा रहा हूँ।'

नारायणने कहा—द्विज! निर्धनताके कारण आपने दीर्घकालसे भिक्षा-वृत्ति अपना रखी है, इसकी निवृत्तिके लिये सत्यनारायणव्रत कलियुगमें सर्वोत्तम उपाय है। इसलिये मेरे कथनके अनुसार आप कमलनेत्र भगवान् सत्यनारायणके चरणोंकी शरण-ग्रहण करें, इससे दारिद्र्य, शोक और सभी संतापोंका विनाश होता है और मोक्ष भी प्राप्त होता है।

करुणामूर्ति भगवान्‌के इन वचनोंको सुनकर ब्राह्मण शतानन्दने पूछा—'ये सत्यनारायण कौन हैं?'

ब्राह्मणरूपधारी भगवान् बोले—नानारूप धारण करनेवाले, सत्यव्रत, सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले तथा निरञ्जन वे देव इस समय विप्रका रूप धारणकर तुम्हारे सामने आये हैं। इस महान् दुःखरूपी संसार-सागरमें पड़े हुए प्राणियोंको तारनेके लिये भगवान्‌के चरण नौकारूप हैं। जो बुद्धिमान् व्यक्ति हैं, वे भगवान्‌की शरणमें जाते हैं, किंतु विषयोंमें व्याप्त विषयबुद्धिवाले व्यक्ति भगवान्‌की शरणमें न जाकर इसी संसार-सागरमें पड़े रहते हैं[1]। इसलिये द्विज! संसारके कल्याणके लिये विविध उपचारोंसे भगवान् सत्यनारायण-देवकी पूजा, आराधना तथा ध्यान करते हुए तुम इस व्रतको प्रकाशमें लाओ।

विप्ररूपधारी भगवान्‌के ऐसा कहते ही उस ब्राह्मण शतानन्दने मेघोंके समान नीलवर्ण, सुन्दर चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म लिये हुए और पीताम्बर धारण किये हुए, नवीन विकसित कमलके समान नेत्रवाले तथा मन्द-मन्द मधुर मुसकानवाले, वनमालायुक्त और भौंरोंके द्वारा चुम्बित चरण-कमलवाले पुरुषोत्तम भगवान् नारायणके साक्षात् दर्शन किये।

भगवान्‌की वाणी सुनने और उनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेसे उस विप्रके सभी अङ्ग पुलकित हो उठे, आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आये। उसने भूमिपर गिरकर भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और गद्गद वाणीसे वह उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगा—

संसारके स्वामी, जगत्‌के कारणके भी कारण, अनाथोंके नाथ, कल्याण-मङ्गलको देनेवाले, शरण देनेवाले, पुण्यरूप, पवित्र, अव्यक्त तथा व्यक्त होनेवाले और आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक तीनों प्रकारके तापोंका समूल उच्छेद करनेवाले भगवान् सत्यनारायणको मैं प्रणाम करता हूँ। इस संसारके रचयिता सत्यनारायणदेवको नमस्कार है। विश्वके भरण-पोषण करनेवाले शुद्ध सत्त्वस्वरूपको नमस्कार है तथा विश्वका विनाश करनेवाले कराल महाकालस्वरूपको नमस्कार है। सम्पूर्ण संसारका मङ्गल करनेवाले आत्ममूर्तिस्वरूप हे भगवन्! आपको नमस्कार है। आज मैं धन्य हो गया, पुण्यवान् हो गया, आज मेरा जन्म लेना सफल हो गया, जो कि मन-वाणीसे अगम-अगोचर आपका मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। मैं अपने भाग्यकी क्या सराहना करूँ। न जाने मेरे किस पुण्यकर्मका यह फल था, जो मुझे आपके दर्शन हुए। प्रभो! आपने क्रियाहीन इस मन्द-बुद्धिके शरीरको सफल कर दिया[2]।

लोकनाथ! रमापते! किस विधिसे भगवान् सत्य-

१-दुःखोदधिनिमग्नानां तरणिश्चरणौ हरेः। कुशलाः शरणं यान्ति नेतरे विषयात्मिकाः॥ (प्रतिसर्गपर्व २।२५।१०)

२-प्रणमामि जगन्नाथं जगत्कारणकारणम्। अनाथनाथं शिवदं शरण्यमनघं शुचिम्॥
अव्यक्तं व्यक्ततां यातं तापत्रयविमोचनम्॥
नमः सत्यनारायणायास्य कर्त्रे नमः शुद्धसत्त्वाय विश्वस्य भर्त्रे। करालाय कालाय विश्वस्य हर्त्रे नमस्ते जगन्मङ्गलायात्ममूर्ते॥

नारायणका पूजन करना चाहिये, विभो ! कृपाकर उसे भी आप बतायें। संसारको मोहित करनेवाले भगवान् नारायण मधुर वाणीमें बोले—'विप्रेन्द्र ! मेरी पूजामें बहुत अधिक धनकी आवश्यकता नहीं, अनायास जो धन प्राप्त हो जाय, उसीसे श्रद्धापूर्वक मेरा यजन करना चाहिये। जिस प्रकार मेरी स्तुतिसे, स्मृतिसे ग्राह-ग्रस्त गजेन्द्र, अजामिल संकटसे मुक्त हो गये, इसी प्रकार इस व्रतके आश्रयसे मनुष्य तत्काल क्लेशमुक्त हो जाता है। इस व्रतकी विधिको सुनें—

अभीष्ट कामनाकी सिद्धिके लिये पूजाकी सामग्री एकत्रकर विधिपूर्वक भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। सवा सेरके लगभग गोधूम-चूर्णमें दूध और शक्कर मिलाकर, उस चूर्णको घृतसे युक्तकर हरिको निवेदित करना चाहिये, यह भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय है। पञ्चामृतके द्वारा भगवान् शालग्रामको स्नान कराकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा ताम्बूलादि उपचारोंसे मन्त्रोंद्वारा उनकी अर्चना करनी चाहिये। अनेक मिष्टान्न तथा भक्ष्य-भोज्य पदार्थों एवं ऋतुकालोद्भूत विविध फलों तथा फूलोंसे भक्ति-पूर्वक पूजा करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणों तथा स्वजनोंके साथ मेरी कथा, राजा (तुङ्गध्वज) के इतिहास, भीलोंकी और वणिक् (साधु) की कथाको आदरपूर्वक श्रवण करना चाहिये। कथाके अनन्तर भक्तिपूर्वक सत्यदेवको प्रणामकर प्रसादका वितरण करना चाहिये। तदनन्तर भोजन करना चाहिये। मेरी प्रसन्नता द्रव्यादिसे नहीं, अपितु श्रद्धा-भक्तिसे ही होती है।

विप्रेन्द्र ! इस प्रकार जो विधिपूर्वक पूजा करते हैं, वे पुत्र-पौत्र तथा धन-सम्पत्तिसे युक्त होकर श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करते हैं और अन्तमें मेरा सांनिध्य प्राप्त कर मेरे साथ आनन्दपूर्वक रहते हैं। व्रती जो-जो कामना करता है, वह उसे अवश्य ही प्राप्त हो जाती है।

इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और वे ब्राह्मण भी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। मन-ही-मन उन्हें प्रणाम कर वे भिक्षाके लिये नगरकी ओर चले गये और उन्होंने मनमें यह निश्चय किया कि 'आज भिक्षामें जो धन मुझे प्राप्त होगा, मैं उससे भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करूँगा।'

उस दिन अनायास बिना माँगे ही उन्हें प्रचुर धन प्राप्त हो गया। वे आश्चर्यचकित हो अपने घर आये। उन्होंने सारा वृत्तान्त अपनी धर्मपत्नीको बताया। उसने भी सत्यनारायणके व्रत-पूजाका अनुमोदन किया। वह पतिकी आज्ञासे श्रद्धापूर्वक बाजारसे पूजाकी सभी सामग्रियोंको ले आयी और अपने बन्धु-बान्धवों तथा पड़ोसियोंको भगवान् सत्यनारायणकी पूजामें सम्मिलित होनेके लिये बुला ले आयी। अनन्तर शतानन्दने भक्तिपूर्वक भगवान्‌की पूजा की। कथाकी समाप्तिपर प्रसन्न होकर उनकी कामनाओंको पूर्ण करनेके उद्देश्यसे भक्तवत्सल भगवान् सत्यनारायणदेव प्रकट हो गये। उनका दर्शनकर ब्राह्मण शतानन्दने भगवान्‌से इस लोकमें तथा परलोकमें सुख तथा पराभक्तिकी याचना की और कहा—'हे भगवन् ! आप मुझे अपना दास बना लें।' भगवान् भी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये। यह देखकर कथामें आये सभी जन अत्यन्त विस्मित हो गये और ब्राह्मण भी कृतकृत्य हो गया। वे सभी भगवान्‌को दण्डवत् प्रणामकर आदरपूर्वक प्रसाद ग्रहणकर 'यह ब्राह्मण धन्य है, धन्य है' इस प्रकार कहते हुए अपने-अपने घर चले गये। तभीसे लोकमें यह प्रचार हो गया कि भगवान् सत्यनारायणका व्रत अभीष्ट कामनाओंकी सिद्धि प्रदान करनेवाला, क्लेशनाशक और भोग-मोक्षको प्रदान करनेवाला है। (अध्याय २५)

[सत्यनारायणव्रत-कथाका द्वितीय अध्याय]

सत्यनारायणव्रत-कथामें राजा चन्द्रचूडका आख्यान

सूतजी बोले—ऋषियो ! प्राचीन कालमें केदारखण्डके मणिपूरक नामक नगरमें चन्द्रचूड नामक एक धार्मिक तथा प्रजावत्सल राजा रहते थे। वे अत्यन्त शान्त-स्वभाव, मृदुभाषी, धीर-प्रकृति तथा भगवान् नारायणके भक्त थे।

धन्योऽस्म्यद्य कृती धन्यो भवोऽद्य सफलो मम। वाङ्मनोऽगोचरो यस्त्वं मम प्रत्यक्षमागतः॥
दिष्टं किं वर्णयाम्यहो न जाने कस्य वा फलम्। क्रियाहीनस्य मन्दस्य देहोऽयं फलवान् कृतः॥

(प्रतिसर्गपर्व २। २५। १५—१९)

विन्ध्यदेशके म्लेच्छगण उनके शत्रु हो गये। उस राजाका उन म्लेच्छोंसे अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा भयानक युद्ध हुआ। उस युद्धमें राजा चन्द्रचूडकी विशाल चतुरङ्गिणी सेना अधिक नष्ट हुई, किंतु कूट-युद्धमें निपुण म्लेच्छोंकी सेनाकी क्षति बहुत कम हुई। युद्धमें दम्भी म्लेच्छोंसे परास्त होकर राजा चन्द्रचूड अपना राष्ट्र छोड़कर अकेले ही वनमें चले गये। तीर्थाटनके बहाने इधर-उधर घूमते हुए वे काशीपुरीमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि घर-घर सत्यनारायणकी पूजा हो रही है और यह काशी नगरी द्वारकाके समान ही भव्य एवं समृद्धिशाली हो गयी है।

वहाँकी समृद्धि देखकर चन्द्रचूड विस्मित हो गये और उन्होंने सदानन्द (शतानन्द) ब्राह्मणके द्वारा की गयी सत्यनारायण-पूजाकी प्रसिद्धि भी सुनी, जिसके अनुसरणसे सभी शील एवं धर्मसे समृद्ध हो गये थे। राजा चन्द्रचूड भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनेवाले ब्राह्मण सदानन्द (शतानन्द) के पास गये और उनके चरणोंपर गिरकर उनसे सत्यनारायण-पूजाकी विधि पूछी तथा अपने राज्यभ्रष्ट होनेकी कथा भी बतलायी और कहा—'ब्रह्मन्! लक्ष्मीपति भगवान् जनार्दन जिस व्रतसे प्रसन्न होते हैं, पापके नाश करनेवाले उस व्रतको बतलाकर आप मेरा उद्धार करें।'

सदानन्द (शतानन्द)ने कहा—राजन्! श्रीपति भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाला सत्यनारायण नामक एक श्रेष्ठ व्रत है, जो समस्त दुःख-शोकादिका शामक, धन-धान्यका प्रवर्धक, सौभाग्य और संततिका प्रदाता तथा सर्वत्र विजय-प्रदायक है। राजन्! जिस किसी भी दिन प्रदोषकालमें इनके पूजन आदिका आयोजन करना चाहिये। कदलीदलके स्तम्भोंसे मण्डित, तोरणोंसे अलंकृत एक मण्डपकी रचनाकर उसमें पाँच कलशोंकी स्थापना करनी चाहिये और पाँच ध्वजाएँ भी लगानी चाहिये। व्रतीको चाहिये कि उस मण्डपके मध्यमें ब्राह्मणोंके द्वारा एक रमणीय वेदिकाकी रचना करवाये। उसके ऊपर स्वर्णसे मण्डित शिलारूप भगवान् नारायण (शालग्राम) को स्थापित कर प्रेम-भक्तिपूर्वक चन्दन, पुष्प आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे। भगवान्‌का ध्यान करते हुए भूमिपर शयनकर सात रात्रि व्यतीत करे।

यह सुनकर राजा चन्द्रचूडने काशीमें ही भगवान् सत्यनारायणकी शीघ्र ही पूजा की। प्रसन्न होकर रात्रिमें भगवान्‌ने राजाको एक उत्तम तलवार प्रदान की। शत्रुओंको नष्ट करनेवाली तलवार प्राप्त कर राजा ब्राह्मणश्रेष्ठ सदानन्दको प्रणाम कर अपने नगरमें आ गये तथा छः हजार म्लेच्छ दस्युओंको मारकर उनसे अपार धन प्राप्त किया और नर्मदाके मनोहर तटपर पुनः भगवान् श्रीहरिकी पूजा की। वे राजा प्रत्येक मासकी पूर्णिमाको प्रेम और भक्तिपूर्वक विधि-विधानसे भगवान् सत्यदेवकी पूजा करने लगे। उस व्रतके प्रभावसे वे लाखों ग्रामोंके अधिपति हो गये और साठ वर्षतक राज्य करते हुए अन्तमें उन्होंने विष्णुलोकको प्राप्त किया। (अध्याय २६)

[सत्यनारायण-व्रत-कथाका तृतीय अध्याय]

सत्यनारायण-व्रतके प्रसंगमें लकड़हारोंकी कथा

सूतजी बोले—ऋषियो! अब इस सम्बन्धमें सत्य-नारायण-व्रतके आचरणसे कृतकृत्य हुए भिल्लोंकी कथा सुनें। एक समयकी बात है, कुछ निषादगण वनसे लकड़ियाँ काटकर नगरमें लाकर बेचा करते थे। उनमेंसे कुछ निषाद काशीपुरीमें लकड़ी बेचने आये। उन्हींमेंसे एक बहुत प्यासा लकड़हारा विष्णुदास (शतानन्द) के आश्रममें गया। वहाँ उसने जल पिया और देखा कि ब्राह्मणलोग भगवान्‌की पूजा कर रहे हैं। भिक्षुक शतानन्दका वैभव देखकर वह चकित हो गया और सोचने लगा—'इतने दरिद्र ब्राह्मणके पास यह अपार वैभव कहाँसे आ गया? इसे तो आजतक मैंने अकिंचन ही देखा था। आज यह इतना महान् धनी कैसे हो गया?' इसपर उसने पूछा—'महाराज! आपको यह ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हुआ और आपको निर्धनतासे मुक्ति कैसे मिली? यह बतानेका कष्ट करें, मैं सुनना चाहता हूँ।'

शतानन्दने कहा—भाई! यह सब सत्यनारायणकी आराधनाका फल है, उनकी आराधनासे क्या नहीं होता। भगवान् सत्यनारायणकी अनुकम्पाके बिना किंचित् भी सुख प्राप्त नहीं होता।

निषादने उनसे पूछा—महाराज! सत्यनारायण भगवान्‌का क्या माहात्म्य है? इस व्रतकी विधि क्या है? आप

उनकी पूजाके सभी उपचारोंका वर्णन करें, क्योंकि उपकार-परायण संत-महात्मा अपने हृदयमें सबके लिये समान भाव रखते हैं, किसीसे कोई कल्याणकारी बात नहीं छिपाते[1]।

शतानन्द बोले—एक समयकी बात है, केदारक्षेत्रके मणिपूरक नगरमें रहनेवाले राजा चन्द्रचूड मेरे आश्रममें आये और उन्होंने मुझसे भगवान् सत्यनारायण-व्रत-कथाके विधानको पूछा। हे निषादपुत्र ! इसपर मैंने जो उन्हें बताया था, उसे तुम सुनो—

सकाम भावसे अथवा निष्कामभावसे किसी भी प्रकार भगवान्‌की पूजाका मनमें संकल्पकर उनकी पूजा करनी चाहिये। सवा सेर गोधूमके चूर्णको मधु तथा सुगन्धित घृतसे संस्कृतकर नैवेद्यके रूपमें भगवान्‌को अर्पण करना चाहिये। भगवान् सत्यनारायण (शालग्राम) को पञ्चामृतसे स्नान कराकर चन्दन आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। पायस, अपूप, संयाव, दधि, दुग्ध, ऋतुफल, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य आदिसे भक्तिपूर्वक भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। यदि वैभव रहे तो और अधिक उत्साह एवं समारोहसे पूजा करनी चाहिये। भगवान् भक्तिसे जितना प्रसन्न होते हैं, उतना विपुल द्रव्योंसे प्रसन्न नहीं होते। भगवान् सम्पूर्ण विश्वके स्वामी एवं आप्तकाम हैं, उन्हें किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, केवल भक्तोंके द्वारा श्रद्धासे अर्पित की हुई वस्तुको वे ग्रहण करते हैं। इसीलिये दुर्योधनके द्वारा की जानेवाली राजपूजाको छोड़कर भगवान्‌ने विदुरजीके आश्रममें आकर शाक-भाजी और पूजाको ग्रहण किया। सुदामाके तण्डुल-कणको स्वीकार कर भगवान्‌ने उन्हें मनुष्यके लिये सर्वथा दुर्लभ सम्पत्तियाँ प्रदान कर दीं। भगवान् केवल प्रीतिपूर्वक भक्तिकी ही अपेक्षा करते हैं। गोप, गृध्र, वणिक्, व्याध, हनुमान्, विभीषणके अतिरिक्त अन्य वृत्रासुर आदि दैत्य भी नारायणके सांनिध्यको प्राप्त कर उनके अनुग्रहसे आज भी आनन्दपूर्वक रह रहे हैं[2]।

निषादपुत्र ! मेरी बात सुनकर उस राजा चन्द्रचूडने पूजा-सामग्रियोंको एकत्रितकर आदरपूर्वक भगवान्‌की पूजा की; फलस्वरूप वे अपना नष्ट हुआ द्रव्य प्राप्तकर आज भी आनन्दित हो रहे हैं। इसलिये तुम भी भक्तिसे सत्यनारायणकी उपासना करो। इससे तुम इस लोकमें सुखको प्राप्त कर अन्तमें भगवान् विष्णुका सांनिध्य प्राप्त करोगे।

यह सुनकर वह निषाद कृतकृत्य हो गया। विप्रश्रेष्ठ शतानन्दको प्रणाम कर अपने घर जाकर उसने अपने साथियोंको भी हरि-सेवाका माहात्म्य बताया। उन सबने भी प्रसन्नचित्त हो श्रद्धापूर्वक यह प्रतिज्ञा की कि आज काष्ठको बेचकर हमलोगोंको जितना धन प्राप्त होगा, उससे अपने सभी बन्धु-बान्धवोंके साथ श्रद्धा एवं विधिपूर्वक हम सत्य-नारायणकी पूजा करेंगे। उस दिन उन्हें काष्ठ बेचनेसे पहलेकी अपेक्षा चौगुना धन मिला। घर आकर उन सबने सारी बात स्त्रियोंको बतायी और फिर सबने मिलकर आदरपूर्वक भगवान् सत्यनारायणकी पूजा की और कथाका श्रवण किया तथा भक्तिपूर्वक भगवान्‌का प्रसाद सबको वितरितकर स्वयं भी ग्रहण किया। पूजाके प्रभावसे पुत्र, पत्नी आदिसे समन्वित निषादगणोंने पृथ्वीपर द्रव्य और श्रेष्ठ ज्ञान-दृष्टिको प्राप्त किया। द्विजश्रेष्ठ ! उन सबने यथेष्ट भोगोंका उपभोग किया और अन्तमें वे सभी योगिजनोंके लिये भी दुर्लभ वैष्णवधामको प्राप्त हुए। (अध्याय २७)

[सत्यनारायणव्रत-कथाका चतुर्थ अध्याय]

१-साधूनां समचित्तानामुपकारवतां सताम्। न गोप्यं विद्यते किंचिदार्तानामार्तिनाशनम्॥

(प्रतिसर्गपर्व २। २७। ८)

२-न तुष्येद्द्रव्यसम्भारैर्भक्त्या केवलया यथा। भगवान् परितः पूर्णो न मानं वृणुयात् क्वचित्॥
दुर्योधनकृतां त्यक्त्वा राजपूजां जनार्दनः। विदुरस्याश्रमे वासमातिथ्यं जगृहे विभुः॥
सुदाम्नस्तंडुलकणा जग्ध्वा मानुष्यदुर्लभाः। सम्पदोऽदाद्धरिः प्रीत्या भक्तिमात्रमपेक्ष्यते॥
गोपो गृध्रो वणिग्व्याधो हनुमान् सविभीषणः। येऽन्ये पापात्मका दैत्या वृत्रकयाधवादयः॥
नारायणान्तिकं प्राप्य मोदन्तेऽद्यापि तद्वशाः।

(प्रतिसर्गपर्व २। २७। १५—१९)

सत्यनारायण-व्रतके प्रसंगमें साधु वणिक् एवं जामाताकी कथा

सूतजी बोले—ऋषियो ! अब मैं एक साधु वणिक्की कथा कहता हूँ। एक बार भगवान् सत्यनारायणका भक्त मणिपूरक नगरका स्वामी महायशस्वी राजा चन्द्रचूड अपनी प्रजाओंके साथ व्रतपूर्वक सत्यनारायण भगवान्का पूजन कर रहा था, उसी समय रत्नपुर (रत्नसारपुर) निवासी महाधनी साधु वणिक् अपनी नौकाको धनसे परिपूर्ण कर नदी-तटसे यात्रा करता हुआ वहाँ आ पहुँचा। वहाँ उसने अनेक ग्रामवासियोंसहित मणि-मुक्तासे निर्मित तथा श्रेष्ठ वितानादिसे विभूषित पूजन-मण्डपको देखा, गीत-वाद्य आदिकी ध्वनि तथा वेदध्वनि भी वहाँ उसे सुनायी पड़ी। उस रम्य स्थानको देखकर साधु वणिक्ने अपने नाविकको आदेश दिया कि यहींपर नौका रोक दो। मैं यहाँके आयोजनको देखना चाहता हूँ। इसपर नाविकने वैसा ही किया। नावसे उतरकर उस वणिक्ने लोगोंसे जानकारी प्राप्त की और वह सत्यनारायण भगवान्की कथा-मण्डपमें गया तथा वहाँ उसने उन सभीसे पूछा—'महाशय ! आपलोग यह कौन-सा पुण्यकार्य कर रहे हैं ?' इसपर उन लोगोंने कहा—'हमलोग अपने माननीय राजाके साथ भगवान् सत्यनारायणकी पूजा-कथाका आयोजन कर रहे हैं। इसी व्रतके अनुष्ठानसे इन्हें निष्कण्टक राज्य प्राप्त हुआ है। भगवान् सत्यनारायणकी पूजासे धनकी कामनावाला द्रव्य-लाभ, पुत्रकी कामनावाला उत्तम पुत्र, ज्ञानकी कामनावाला ज्ञान-दृष्टि प्राप्त करता है और भयातुर मनुष्य सर्वथा निर्भय हो जाता है। इनकी पूजासे मनुष्य अपनी सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।'

यह सुनकर उसने गलेमें वस्त्रको कई बार लपेटकर भगवान् सत्यनारायणको दण्डवत् प्रणाम कर सभासदोंको भी सादर प्रणाम किया और कहा—'भगवन् ! मैं संततिहीन हूँ, अतः मेरा सारा ऐश्वर्य तथा सारा उद्यम सभी व्यर्थ है, हे कृपासागर ! यदि आपकी कृपासे पुत्र या कन्या मैं प्राप्त करूँगा तो स्वर्णमयी पताका बनाकर आपकी पूजा करूँगा।' इसपर सभासदोंने कहा—'आपकी कामना पूर्ण हो।' तदनन्तर उसने भगवान् सत्यनारायण एवं सभासदोंको पुनः प्रणामकर प्रसाद ग्रहण किया और हृदयसे भगवान्का चिन्तन करता हुआ वह साधु वणिक् सबके साथ अपने घर गया। घर आनेपर माङ्गलिक द्रव्योंसे स्त्रियोंने उसका यथोचित स्वागत किया। साधु वणिक् अतिशय आश्चर्यके साथ मङ्गलमय अन्तःपुरमें गया। उसकी पतिव्रता पत्नी लीलावतीने भी उसकी स्त्रियोचित सेवा की। भगवान् सत्यनारायणकी कृपासे समय आनेपर बन्धु-बान्धवोंको आनन्दित करनेवाली तथा कमलके समान नेत्रोंवाली उसे एक कन्या उत्पन्न हुई। इससे साधु वणिक् अतिशय आनन्दित हुआ और उस समय उसने पर्याप्त धनका दान किया। वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर उसने कन्याके जातकर्म आदि मङ्गलकृत्य सम्पन्न किये। उस बालिकाकी जन्मकुण्डली बनवाकर उसका नाम कलावती रखा। कलानिधि चन्द्रमाकी कलाके समान वह कलावती नित्य बढ़ने लगी। आठ वर्षकी बालिका गौरी, नौ वर्षकी रोहिणी, दस वर्षकी कन्या तथा उसके आगे (अर्थात्) बारह वर्षकी बालिका प्रौढ़ा या रजस्वला कहलाती है[1]। समयानुसार कलावती भी बढ़ते-बढ़ते विवाहके योग्य हो गयी। उसका पिता कलावतीको विवाह-योग्य जानकर उसके सम्बन्धकी चिन्ता करने लगा।

काञ्चनपुर नगरमें एक शंखपति नामका वणिक् रहता था। वह कुलीन, रूपवान्, सम्पत्तिशाली, शील और उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न था। अपनी पुत्रीके योग्य उस वरको देखकर साधु वणिक्ने शंखपतिका वरण कर लिया और शुभ लग्नमें अनेक माङ्गलिक उपचारोंके साथ अग्निके सांनिध्यमें वेद, वाद्य आदि ध्वनियोंके साथ यथाविधि कन्या उसे प्रदान कर दी, साथ ही मणि, मोती, मूँगा, वस्त्राभूषण आदि भी उस साधु वणिक्ने मङ्गलके लिये अपनी पुत्री एवं जामाताको प्रदान किये। साधु वणिक् अपने दामादको अपने घरमें रखकर उसे पुत्रके समान मानता था और वह भी पिताके समान साधु वणिक्का आदर करता था। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। साधु वणिक्ने भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनेका पहले यह संकल्प लिया था कि 'संतान प्राप्त होनेपर मैं

१-अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी॥
दशवर्षा भवेत् कन्या ततः प्रौढा रजस्वला। (प्रतिसर्गपर्व २।२८।२१-२२)

भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करूँगा' पर वह इस बातको भूल ही गया। उसने पूजा नहीं की।

कुछ दिनोंके बाद वह अपने जामाताके साथ व्यापारके निमित्त सुदूर नर्मदाके दक्षिण तटपर गया और वहाँ व्यापारनिरत होकर बहुत दिनोंतक ठहरा रहा। पर वहाँ भी उसने सत्यदेवकी किसी प्रकार भी उपासना नहीं की और परिणामस्वरूप भगवान्‌के प्रकोपका भाजन बनकर वह अनेक संकटोंसे ग्रस्त हो गया। एक समय कुछ चोरोंने एक निस्तब्ध रात्रिमें वहाँके राजमहलसे बहुत-सा द्रव्य तथा मोतीकी मालाको चुरा लिया। राजाने चोरीकी बात ज्ञात होनेपर अपने राजपुरुषोंको बुलाकर बहुत फटकारा और कहा कि 'यदि तुमलोगोंने चोरोंका पता लगाकर सारा धन यहाँ दो दिनोंमें उपस्थित नहीं किया तो तुम्हारी असावधानीके लिये तुम्हें मृत्यु-दण्ड दिया जायगा।' इसपर राजपुरुषोंने सर्वत्र व्यापक छान-बीन की, परंतु बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे उन चोरोंका पता नहीं लगा सके। फिर वे सभी एकत्रित होकर विचार करने लगे—'अहो! बड़े कष्टकी बात है, चोर तो मिला नहीं, धन भी नहीं मिला, अब राजा हमलोगोंको परिवारके साथ मार डालेगा। मरनेपर भी हमें प्रेत-योनि प्राप्त होगी। इसलिये अब तो यही श्रेयस्कर है कि 'हमलोग पवित्र नर्मदा नदीमें डूबकर मर जायँ। क्योंकि नर्मदाके प्रभावसे हमें शिवलोककी प्राप्ति होगी।' वे सभी राजपुरुष आपसमें ऐसा निश्चयकर नर्मदा नदीके तटपर गये। वहाँ उन्होंने उस साधु वणिक्‌को देखा और उसके कण्ठमें मोतीकी माला भी देखी। उन्होंने उस साधु वणिक्‌को ही चोर समझ लिया और वे सभी प्रसन्न होकर उन दोनों (साधु वणिक् और उसके जामाता) को धनसहित पकड़कर राजाके पास ले आये। भगवान् सत्यनारायण भी पूजा करनेमें असत्यका आश्रय लेनेके कारण वणिक्‌के प्रतिकूल हो गये थे। इसी कारण राजाने भी विचार किये बिना ही अपने सेवकोंको आदेश दिया कि इनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर खजानेमें जमा कर दो और इन्हें हथकड़ी लगाकर जेलमें डाल दो। सेवकोंने राजाज्ञाका पालन किया। वणिक्‌की बातोंपर किसीने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। अपने जामाताके साथ वह वणिक् अत्यन्त दुःखित हुआ और विलाप करने लगा—'हा पुत्र! मेरा धन अब कहाँ चला गया, मेरी पुत्री और पत्नी कहाँ हैं? विधाताकी प्रतिकूलता तो देखो। हम दुःख-सागरमें निमग्न हो गये। अब इस संकटसे हमें कौन पार करेगा? मैंने धर्म एवं भगवान्‌के विरुद्ध आचरण किया। यह उन्हीं कर्मोंका प्रभाव है।' इस प्रकार विलाप करते हुए वे ससुर और जामाता कई दिनोंतक जेलमें भीषण संतापका अनुभव करते रहे। (अध्याय २८)

[सत्यनारायण-व्रत-कथाका पञ्चम अध्याय]

सत्य-धर्मके आश्रयसे सबका उद्धार
(लीलावती एवं कलावतीकी कथा)

सूतजीने कहा—ऋषियो! आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—इन तीनों तापोंको हरण करनेवाले भगवान् विष्णुके मङ्गलमय चरित्रको जो सुनते हैं, वे सदा हरिके धाममें निवास करते हैं, किंतु जो भगवान्‌का आश्रय नहीं ग्रहण करते—उन्हें विस्मृत कर देते हैं, उन्हें कष्टमय नरक प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुकी पत्नीका नाम कमला (लक्ष्मी) है। इनके चार पुत्र हैं—धर्म, यज्ञ, राजा और चोर। ये सभी लक्ष्मी-प्रिय हैं अर्थात् ये लक्ष्मीकी इच्छा करते हैं। ब्राह्मणों और अतिथियोंको जो दान दिया जाता है, वह धर्म कहा जाता है, उसके लिये धनकी आवश्यकता है। स्वाहा और स्वधाके द्वारा जो देवयज्ञ और पितृयज्ञ किया जाता है, वह यज्ञ कहा जाता है, उसमें भी धनकी अपेक्षा होती है। धर्म और यज्ञकी रक्षा करनेवाला राजा कहलाता है, इसलिये राजाको भी लक्ष्मी—धनकी अपेक्षा रहती है। धर्म और यज्ञको नष्ट करनेवाला चोर कहलाता है, वह भी धनकी इच्छासे चोरी करता है। इसलिये ये चारों किसी-न-किसी रूपमें लक्ष्मीके किंकर हैं। परंतु जहाँ सत्य रहता है, वहीं धर्म रहता है और वहीं लक्ष्मी भी स्थिर-रूपमें रहती हैं।

वह वणिक् सत्य-धर्मसे च्युत हो गया था (उसने सत्यनारायणका व्रत न कर प्रतिज्ञा-भंग की थी) इसीलिये राजाने उस वणिक्‌के घरसे भी सारा धन हरण करवा लिया और घरमें चोरी भी हो गयी। बेचारी उसकी पत्नी लीलावती

एवं पुत्री कलावतीके साथ अपने वस्त्र-आभूषण तथा मकान बेचकर जैसे-तैसे जीवन-यापन करने लगी।

एक दिन उसकी कन्या कलावती भूखसे व्याकुल होकर किसी ब्राह्मणके घर गयी और वहाँ उसने ब्राह्मणको भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करते हुए देखा। जगन्नाथ सत्यदेवकी प्रार्थना करते हुए देखकर उसने भी भगवान्‌से प्रार्थना की—'हे सत्यनारायणदेव! मेरे पिता और पति यदि घरपर आ जायँगे तो मैं भी आपकी पूजा करूँगी।' उसकी बात सुनकर ब्राह्मणोंने कहा—'ऐसा ही होगा।' इस प्रकार ब्राह्मणोंसे आश्वासनयुक्त आशीर्वाद प्राप्त कर वह अपने घर वापस आ गयी। रात्रिमें देरसे लौटनेके कारण माताने उससे डाँटते हुए पूछा कि 'बेटी! इतनी राततक तुम कहाँ रही?' इसपर उसने उसे प्रसाद देते हुए सत्यनारायणके पूजा-वृत्तान्तको बताया और कहा—'माँ! मैंने वहाँ सुना कि भगवान् सत्यनारायण कलियुगमें प्रत्यक्ष फल देनेवाले हैं, उनकी पूजा मनुष्यगण सदा करते हैं। माँ! मैं भी उनकी पूजा करना चाहती हूँ, तुम मुझे आज्ञा प्रदान करो। मेरे पिता और स्वामी अपने घर आ जायँ, यही मेरी कामना है।'

रातमें ऐसा मनमें निश्चयकर प्रातः वह कलावती शीलपाल नामक एक वणिक्‌के घरपर धन प्राप्त करनेकी इच्छासे गयी और उसने कहा—'बन्धो! थोड़ा धन दें, जिससे मैं भगवान् सत्यनारायणकी पूजा कर सकूँ।' यह सुनकर शीलपालने उसे पाँच अशर्फियाँ दीं और कहा—'कलावती! तुम्हारे पिताका कुछ ऋण शेष था, मैं उन्हें ही वापस कर रहा हूँ, इसे देकर आज मैं उऋण हो गया।' यह कहकर शीलपाल गया-तीर्थमें श्राद्ध करने चला गया। कन्याने अपनी माँ लीलावतीके साथ उस द्रव्यसे कल्याणप्रद सत्य-नारायण-व्रतका श्रद्धा-भक्तिसे विधिपूर्वक अनुष्ठान किया। इससे सत्यनारायण भगवान् संतुष्ट हो गये।

उधर नर्मदा-तटवासी राजा अपने राजमहलमें सो रहा था। रात्रिके अन्तिम प्रहरमें ब्राह्मण-वेषधारी भगवान् सत्यनारायणने स्वप्नमें उससे कहा—'राजन्! तुम शीघ्र उठकर उन निर्दोष वणिकोंको बन्धनमुक्त कर दो। वे दोनों बिना अपराधके ही बंदी बना लिये गये हैं। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।' इतना कहकर वे अन्तर्हित हो गये। राजा निद्रासे सहसा जग उठा। वह परमात्माका स्मरण करने लगा। प्रातःकाल राजा अपनी सभामें आया और उसने अपने मन्त्रीसे देखे गये स्वप्नका फल पूछा। महामन्त्रीने भी राजासे कहा—'राजन्! बड़े आश्चर्यकी बात है, मुझे भी आज ऐसा ही स्वप्न दिखलायी पड़ा। अतः उस वणिक् और उसके जामाताको बुलाकर भलीभाँति पूछ-ताछ कर लेनी चाहिये।' राजाने उन दोनोंको बंदी-गृहसे बुलवाया और पूछा—'तुम दोनों कहाँ रहते हो और तुम कौन हो?' इसपर साधु वणिक्‌ने कहा—'राजन्! मैं रत्नपुरका निवासी एक वणिक् हूँ। मैं व्यापार करनेके लिये यहाँ आया था। पर दैववश आपके सेवकोंने हमें चोर समझकर पकड़ लिया। साथमें यह मेरा जामाता है। बिना अपराधके ही हमें मणि-मुक्ताकी चोरी लगी है। राजेन्द्र! हम दोनों चोर नहीं हैं। आप भलीभाँति विचार कर लें।' उसकी बातें सुनकर राजाको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने उन्हें बन्धनमुक्त कर दिया। अनेक प्रकारसे उन्हें अलंकृत कर भोजन कराया और वस्त्र, आभूषण आदि देकर उनका सम्मान किया। साधु वणिक्‌ने कहा—'राजन्! मैंने कारागारमें अनेक कष्ट भोगे हैं, अब मैं अपने नगर जाना चाहता हूँ, आप मुझे आज्ञा दें।' इसपर राजाने अपने कोषाध्यक्षके माध्यमसे साधु वणिक्‌की नौका रत्नों आदिसे परिपूर्ण करवा दी। फिर वह साधु वणिक् अपने जामाताके साथ राजाद्वारा सम्मानित हो द्विगुणित धन लेकर रत्नपुरकी ओर चला।

साधु वणिक्‌ने अपने नगरके लिये प्रस्थान किया, पर भगवान् सत्यनारायणका पूजन वह उस समय भी भूल गया। भगवान् सत्यदेवने जो कलियुगमें तत्काल फल देते हैं, पुनः तपस्वीका रूप धारणकर वहाँ आकर उससे पूछा—'साधो! तुम्हारी इस नौकामें क्या है?' इसपर साधु वणिक्‌ने उत्तर दिया—'आपको देनेके लिये कुछ भी धन मेरे पास नहीं है। नावमें केवल कुछ लताओंके पत्ते भरे पड़े हैं।' साधु वणिक्‌के ऐसा कहनेपर तपस्वीने कहा—'ऐसा ही होगा।' इतना कहकर तपस्वी अन्तर्धान हो गये। उनके ऐसा कहते ही नौकामें धनके बदले केवल पत्ते ही दीखने लगे। यह सब देखकर साधु अत्यन्त चकित एवं चिन्तित हो गया, उसे मूर्च्छा-सी आ गयी। वह अनेक प्रकारसे विलाप करने लगा। वज्रपात होनेके समान

वह स्तब्ध होकर सोचने लगा कि मैं अब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरा धन कहाँ चला गया ? जामाताके समझाने-बुझानेपर इसे तपस्वीका शाप समझकर वह पुनः उन्हीं तपस्वीकी शरणमें गया और गलेमें कपड़ा लपेटकर उस तपस्वीको प्रणाम कर कहा—'महाभाग ! आप कौन हैं ? कोई गन्धर्व हैं या देवता हैं या साक्षात् परमात्मा हैं ? प्रभो ! मैं आपकी महिमाको लेशमात्र भी नहीं जानता। आप मेरे अपराधोंको क्षमा कर दें और मेरी नौकाके धनको पुनः पूर्ववत् कर दें।' इसपर तपस्वी-रूप भगवान् सत्यनारायणने कहा कि तुमने चन्द्रचूड़ राजाके सत्यनारायणके मण्डपमें 'संततिके प्राप्त होनेपर भगवान् सत्यदेवकी पूजा करूँगा'— ऐसी प्रतिज्ञा की थी। तुम्हें कन्या प्राप्त हुई, उसका विवाह भी तुमने किया, व्यापारसे धन भी प्राप्त किया, बंदी-गृहसे तुम मुक्त भी हो गये, पर तुमने भगवान् सत्यनारायणकी पूजा कभी नहीं की। इससे मिथ्याभाषण, प्रतिज्ञालोप और देवताकी अवज्ञा आदि अनेक दोष हुए, तुम भगवान्‌का स्मरणतक भी नहीं करते। इसी कारण हे मूढ ! तुम कष्ट भोग रहे हो। सत्यनारायण-भगवान् सर्वव्यापी हैं, वे सभी फलोंको देनेवाले हैं। उनका अनादर कर तुम कैसे सुख प्राप्त कर सकते हो। तुम भगवान्‌को याद करो, उनका स्मरण करो।' इसपर साधु वणिक्‌को भगवान् सत्यनारायणका स्मरण हो आया और वह पश्चात्ताप करने लगा। उसके देखते-ही-देखते वहाँ वे तपस्वी भगवान् सत्यनारायणरूपमें परिवर्तित हो गये और तब वह उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगा—

'सत्यस्वरूप, सत्यसंध, सत्यनारायण भगवान् हरिको नमस्कार है। जिस सत्यसे जगत्‌की प्रतिष्ठा है, उस सत्यस्वरूप आपको बार-बार नमस्कार है। भगवन् ! आपकी मायासे मोहित होनेके कारण मनुष्य आपके स्वरूपको जान नहीं पाता और इस दुःखरूपी संसार-समुद्रको सुख मानकर उसीमें लिप्त रहता है। धनके गर्वसे मैं मूढ होकर मदान्धकारसे कर्तव्य और अकर्तव्यकी दृष्टिसे शून्य हो गया। मैं अपने कल्याणको भी नहीं समझ पा रहा हूँ। मेरे दौरात्म्य-भावके लिये आप क्षमा करें। हे तपोनिधे ! आपको नमस्कार है। कृपासागर ! आप मुझे अपने चरणोंका दास बना लें, जिससे मुझे आपके चरण-कमलोंका नित्य स्मरण होता रहे[1]।'

इस प्रकार स्तुति कर उस साधु वणिक्‌ने एक लाख मुद्रासे पुरोहितके द्वारा घर आकर सत्यनारायणकी पूजा करनेके लिये प्रतिज्ञा की। इसपर भगवान्‌ने प्रसन्न होकर कहा—'वत्स ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी, तुम पुत्र-पौत्रसे समन्वित होकर श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर मेरे सत्यलोकको प्राप्त करोगे और मेरे साथ आनन्द प्राप्त करोगे।' यह कहकर भगवान् सत्यनारायण अन्तर्हित हो गये और साधुने पुनः अपनी यात्रा प्रारम्भ की।

सत्यदेव भगवान्‌से रक्षित हो वह साधु वणिक् एक सप्ताहमें नगरके समीप पहुँच गया और उसने अपने आगमनका समाचार देनेके लिये घरपर दूत भेजा। दूतने घर आकर साधु वणिक्‌की स्त्री लीलावतीसे कहा—'जामाताके साथ सफलमनोरथ साधु वणिक् आ रहे हैं।' वह साध्वी लीलावती कन्याके साथ सत्यनारायण भगवान्‌की पूजा कर रही थी। पतिके आगमनको सुनकर उसने पूजा वहींपर छोड़ दी और पूजाका शेष दायित्व अपनी पुत्रीको सौंपकर वह शीघ्रतासे नौकाके समीप चली आयी। इधर कलावती भी अपनी सखियोंके साथ सत्यनारायणकी जैसे-तैसे पूजा समाप्तकर बिना प्रसाद लिये ही अपने पतिको देखनेके लिये उतावली हो नौकाकी ओर चली गयी।

भगवान् सत्यनारायणके प्रसादके अपमानसे जामाता-सहित साधु वणिक्‌की नौका जलके मध्य अलक्षित हो गयी। यह देखकर सभी दुःखमें निमग्न हो गये। साधु वणिक् भी मूर्च्छित हो गया। कलावती भी यह देखकर मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी और उसका सारा शरीर आँसुओंसे भीग

१-सत्यरूपं सत्यसन्धं सत्यनारायणं हरिम्। यत्सत्यत्वेन जगतस्तं सत्यं त्वां नमाम्यहम्॥
त्वन्मायामोहितात्मानो न पश्यन्त्यात्मनः शुभम्। दुःखाम्भोधौ सदा मग्ना दुःखे च सुखमानिनः॥
मूढोऽहं धनगर्वेण मदान्धीकृतलोचनः। न जाने स्वात्मनः क्षेमं कथं पश्यामि मूढधीः॥
क्षमस्व मम दौरात्म्यं तपोधाम्ने हरे नमः। आज्ञापयात्मदास्यं मे येन ते चरणौ स्मरे॥
(प्रतिसर्गपर्व २। २९। ४८—५१)

गया। वह हवाके वेगसे हिलते हुए केलेके पत्तेके समान काँपने लगी। हा नाथ! हा कान्त! कहकर विलाप करने लगी और कहने लगी—'हे विधाता! आपने मुझे पतिसे वियुक्त कर मेरी आशा तोड़ दी। पतिके बिना स्त्रीका जीवन अधूरा एवं निष्फल है।' कलावती आर्तस्वरमें भगवान् सत्यनारायणसे बोली—'हे सत्यसिन्धो! हे भगवान् सत्यनारायण! मैं अपने पतिके वियोगमें जलमें डूबनेवाली हूँ, आप मेरे अपराधोंको क्षमा करें। पतिको प्रकट कर मेरे प्राणोंकी रक्षा करें।' (इस प्रकार जब वह अपने पतिके पादुकाओंको लेकर जलमें प्रवेश करनेवाली ही थी) उसी समय आकाशवाणी हुई—'हे साधो! तुम्हारी पुत्रीने मेरे प्रसादका अपमान किया है। यदि वह पुनः घर जाकर श्रद्धापूर्वक प्रसादको ग्रहण कर ले तो उसका पति नौकासहित यहाँ अवश्य दीखेगा, चिन्ता मत करो।' इसपर आश्चर्यचकित हो कलावतीने वैसा ही किया और उसे उसका पति पुनः अपनी नौकासहित दीखने लगा। फिर क्या था? सभी परस्पर आनन्दसे मिले और घर आकर साधु वणिक्ने एक लाख मुद्राओंसे बड़े समारोहपूर्वक भगवान् सत्यदेवकी पूजा की और आनन्दसे रहने लगा। पुनः कभी भगवान् सत्यदेवकी उपेक्षा नहीं की। उस व्रतके प्रभावसे पुत्र-पौत्रसमन्वित अनेक भोगोंका उपभोग करते हुए सभी स्वर्गलोक चले गये। इस इतिहासको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सुनता है, वह भी विष्णुका अत्यन्त प्रिय हो जाता है। अपनी मनःकामनाकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

सूतजी बोले—ऋषिगणो! मैंने सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ इस सत्यनारायण-व्रतको कहा। ब्राह्मणके मुखसे निकला हुआ यह व्रत कलिकालमें अतिशय पुण्यप्रद है।

(अध्याय २९)

[श्रीसत्यनारायण-व्रत-कथाका षष्ठ अध्याय]

(सत्यनारायण-व्रत-कथा सम्पूर्ण)

पितृशर्मा और उनके वंशज—व्याडि, पाणिनि और वररुचि आदिकी कथा

ऋषियोंने कहा—भगवन्! तीनों दुःखोंके विनाश करनेवाले व्रतोंमें सर्वश्रेष्ठ सत्यनारायण-व्रतको हमलोगोंने सुना, अब आपसे हमलोग ब्रह्मचर्यका महत्त्व सुनना चाहते हैं।

सूतजी बोले—ऋषियो! कलियुगमें पितृशर्मा नामका एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था। वह वेदवेदाङ्गोंके तत्त्वोंको जाननेवाला था और पापकर्मोंसे डरता रहता था। कलियुगके भयंकर समयको देखकर वह बहुत चिन्तित हुआ। उसने सोचा कि किस आश्रमके द्वारा मेरा कल्याण होगा, क्योंकि कलिकालमें संन्यास-मार्ग दम्भ और पाखण्डके द्वारा खण्डित हो गया है, वानप्रस्थ तो समाप्त-सा ही है, बस, कहीं-कहीं ब्रह्मचर्य रह गया है, किंतु गार्हस्थ्य-जीवनका कर्म सभी कर्मोंमें श्रेष्ठ माना गया है। अतः इस घोर कलियुगमें मुझे गृहस्थ-धर्मका पालन करनेके लिये विवाह करना चाहिये। यदि भाग्यसे अपनी मनोवृत्तिके अनुसार आचरण करनेवाली स्त्री मिल जाती है, तब मेरा जन्म सफल एवं कल्याणकारी हो जायगा। इस प्रकार विचार करते हुए पितृशर्माने उत्तम पत्नी प्राप्त करनेके लिये विश्वेश्वरी जगन्माता भगवतीकी चन्दन आदिसे पूजाकर स्तुति प्रारम्भ की[1]।

पितृशर्माकी स्तुति सुनकर देवी प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने कहा—'हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने तुम्हारी स्त्रीके रूपमें विष्णुयशा नामक ब्राह्मणकी कन्याको निर्दिष्ट किया है।' तदनन्तर पितृशर्मा उस देवी ब्रह्मचारिणीसे विवाह करके मथुरामें निवास करते हुए गृहस्थ-धर्मानुसार जीवन-यापन

१-नमः प्रकृत्यै सर्वायै कैवल्यायै नमो नमः। त्रिगुणैक्यस्वरूपायै तुरीयायै नमो नमः॥
महत्तत्त्वजनन्यै च द्वन्द्वकर्त्र्यै नमो नमः। ब्रह्ममातर्नमस्तुभ्यं साहंकारपितामहि॥
पृथग्गुणायै शुद्धायै नमो मातर्नमो नमः। विद्यायै शुद्धसत्त्वायै लक्ष्म्यै सत्त्वरजोमयि॥
नमो मातरविद्यायै ततः शुद्ध्यै नमो नमः। काल्यै सत्त्वतमोभूत्यै नमो मातर्नमो नमः॥
स्त्रियै शुद्धरजोमूर्त्यै नमस्त्रैलोक्यवासिनि। नमो रजस्तमोमूर्त्यै दुर्गायै च नमो नमः॥ (प्रतिसर्गपर्व २। ३०। १०—१४)

करने लगा। चारों वेदोंको जाननेवाले उसे चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम थे—ऋक्, यजुष्, साम तथा अथर्वा। ऋक्के पुत्र व्याडि थे, जो न्याय-शास्त्र-विशारद थे। यजुष्के पुत्र लोकविश्रुत मीमांस हुए। सामके पुत्र पाणिनि हुए जो व्याकरण-शास्त्रमें पारंगत थे और अथर्वाके पुत्र वररुचि हुए।

एक समय वे चारों पितृशर्माके साथ मगध देशके अधिपति राजा चन्द्रगुप्तकी सभामें गये। अतिशय सम्मानपूर्वक राजाने उन लोगोंका पूजनकर पूछा—'द्विजगण! कौन-सा ब्रह्मचर्यव्रत श्रेष्ठ है?' इसपर व्याडिने कहा—'महाराज! जो व्यक्ति उस परम पुरुषदेवकी न्यायपूर्वक आराधनामें तत्पर रहता है, वह श्रेष्ठ ब्रह्मचारी है।' मीमांसने कहा—'राजन्! जो श्रेष्ठ व्यक्ति यज्ञमें ब्रह्मा आदि देवताओंका यजन करता है और रोचना आदिसे उनका अर्चन एवं तर्पण आदि करता है तथा भगवान्के प्रसादको ग्रहण करता है, वह ब्रह्मचारी है।' यह सुनकर पाणिनिने कहा— 'राजन्! उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरोंसे या परा, पश्यन्ती, मध्यमा वाणीसे शब्दब्रह्मका आराधक तथा लिङ्ग, धातु एवं गणोंसे समन्वित सूत्रपाठोंसे शब्दब्रह्मकी आराधना करनेवाला सच्चा ब्रह्मचारी है और वही ब्रह्मको प्राप्त करता है।' यह सुनकर वररुचिने कहा—'हे मगधाधिपते! जो व्यक्ति उपनीत होकर गुरुकुलमें निवास करता हुआ दण्ड, केश और नखधारी भिक्षार्थी वेदाध्ययनमें तत्पर रहते हुए गुरुकी आज्ञाके अनुसार गुरुके गृहमें निवास करता है, वह ब्रह्मचारी कहा गया है।'

इनके वचनोंको सुनकर पितृशर्माने कहा कि 'जो गृहस्थ-धर्ममें रहता हुआ पितरों, देवताओं और अतिथियोंका सम्मान करता है और इन्द्रिय-संयमपूर्वक ऋतुकालमें ही भार्याका उपगमन करता है, वही मुख्य ब्रह्मचारी है।' यह सुनकर राजाने कहा—'स्वामिन्! कलिकालके लिये आपका ही कथन उचित, सुगम और उत्तम धर्म है, यही मेरा भी मत है।'

यह कहकर वह राजा पितृशर्माका शिष्य हो गया और उसने अन्तमें स्वर्गलोकको प्राप्त किया। पितृशर्मा भी भगवान् श्रीहरिका ध्यान करते हुए हिमालय पर्वतपर जाकर योगध्यान-परायण हो गया। (अध्याय ३०)

महर्षि पाणिनिका इतिवृत्त

ऋषियोंने पूछा—भगवन्! सभी तीर्थों, दानों आदि धर्मसाधनोंमें उत्तम साधन क्या है, जिसका आश्रय लेकर मनुष्य क्लेश-सागरको पार कर जाय और मुक्ति प्राप्त कर ले?

सूतजी बोले—प्राचीन कालमें सामके एक श्रेष्ठ पुत्र थे, जिनका नाम पाणिनि था। कणादके श्रेष्ठ शास्त्रज्ञ शिष्योंसे वे पराजित एवं लज्जित होकर तीर्थाटनके लिये चले गये। प्रायः सभी तीर्थोंमें स्नान तथा देवता-पितरोंका तर्पण करते हुए वे केदार-क्षेत्रका जल पानकर भगवान् शिवके ध्यानमें तत्पर हो गये। पत्तोंके आहारपर रहते हुए वे सप्ताहान्तमें जल ग्रहण करते थे। फिर उन्होंने दस दिनतक जल ही ग्रहण किया। बादमें वे दस दिनोंतक केवल वायुके ही आहारपर रहकर भगवान् शिवका ध्यान करते रहे। इस प्रकार जब अट्ठाईस दिन व्यतीत हो गये तो भगवान् शिवने प्रकट होकर उनसे वर माँगनेको कहा। भगवान् शिवकी इस अमृतमय वाणीको सुनकर उन्होंने गद्गद वाणीसे सर्वेश, सर्वलिङ्गेश, गिरिजावल्लभ हरकी इस प्रकार स्तुति की—

'महान् रुद्रको नमस्कार है। सर्वेश्वर सर्वहितकारी भगवान् शिवको नमस्कार है। अभय एवं विद्या प्रदान करनेवाले, नन्दी-वाहन भगवान्‌को नमस्कार है। पापका विनाश करनेवाले तथा समस्त लोकोंके स्वामी एवं समस्त मायारूपी दुःखोंका हरण करनेवाले तेजःस्वरूप अनन्तमूर्ति भगवान् शंकरको नमस्कार है।'[1] देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे मूल विद्या एवं परम शास्त्र-ज्ञान प्रदान करनेकी कृपा करें।

सूतजी बोले—यह सुनकर महादेवजीने प्रसन्न होकर 'अ इ उ ण्' आदि मङ्गलकारी सर्ववर्णमय सूत्रोंको उन्हें प्रदान किया। ज्ञानरूपी सरोवरके सत्यरूपी जलसे जो राग-द्वेषरूपी मलका नाश करनेवाला है, उस मानसतीर्थको प्राप्त करनेपर

१-नमो रुद्राय महते सर्वेशाय हितैषिणे। नन्दीसंस्थाय देवाय विद्याभयकराय च॥
पापान्तकाय भर्गाय नमोऽनन्ताय वेधसे। नमो मायाहरेशाय नमस्ते लोकशंकर॥ (प्रतिसर्गपर्व २। ३१। ७-८)

अर्थात् उस मानस तीर्थमें अवगाहन करनेपर सभी तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है। यह महान् मानस-ज्ञान-तीर्थ ब्रह्मके साक्षात्कार करानेमें समर्थ है! पाणिने ! मैंने यह सर्वोत्तम तीर्थ तुम्हें प्रदान किया है, इससे तुम कृतकृत्य हो जाओगे। यह कहकर भगवान् रुद्र अन्तर्हित हो गये और पाणिनि अपने घरपर आ गये। पाणिनिने सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ और लिङ्गसूत्र-रूप व्याकरण शास्त्रका निर्माण कर परम निर्वाण प्राप्त किया।[1] अतः भार्गवश्रेष्ठ ! तुम मनोमय ज्ञानतीर्थका अवलम्बन करो। उन्हींसे कल्याणमयी सर्वोत्तम तीर्थमयी गङ्गा प्रकट हुई हैं। गङ्गासे बढ़कर उत्तम तीर्थ न कोई हुआ है और न आगे होगा।

(अध्याय ३१)

बोपदेवके चरित्र-प्रसंगमें श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

सूतजी बोले—महामुने शौनक ! तोताद्रिमें एक बोपदेव नामके ब्राह्मण रहते थे। वे कृष्णभक्त और वेद-वेदाङ्गपारंगत थे। उन्होंने गोप-गोपियोंसे प्रतिष्ठित वृन्दावन-तीर्थमें जाकर देवाधिदेव जनार्दनकी आराधना की। एक वर्ष बाद भगवान् श्रीहरिने प्रसन्न होकर उन्हें अतिशय श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान किया। उसी ज्ञानके द्वारा उनके हृदयमें भागवती कथाका उदय हुआ। जिस कथाको श्रीशुकदेवजीने बुद्धिमान् राजा परीक्षित्को सुनाया था, उस सनातनी मोक्ष-स्वरूपा कथाका बोपदेवने हरि-लीलामृत नामसे पुनः वर्णन किया। कथाकी समाप्तिपर जनार्दन भगवान् विष्णु प्रकट हुए और बोले 'महामते ! वर माँगो।' बोपदेवने अतिशय स्नेहमयी वाणीमें कहा—'भगवन् ! आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण संसारपर अनुग्रह करनेवाले हैं। आपसे देव, मनुष्य, पशु-पक्षी सभी निर्मित हुए हैं। नरकसे दुःखी प्राणी भी इस कलियुगमें आपके ही नामसे कृतार्थ होते हैं। महर्षि वेदव्यासरचित श्रीमद्भागवतका ज्ञान तो आपने मुझे प्रदान किया है, पुनः यदि आप वर प्रदान करना चाहते हैं तो उस भागवतका माहात्म्य मुझसे कहें।'

श्रीभगवान् बोले—बोपदेव ! एक समय भगवान् शंकर पार्वतीके साथ दम्भ और पाखण्डसे युक्त बौद्धोंके राज्य प्राप्त होनेपर काशीमें उत्तम भूमि देखकर वहाँ स्थित हो गये। भगवान् शंकरने आनन्दपूर्वक प्रणाम करते हुए कहा—'हे सच्चिदानन्द ! हे विभो ! हे जगत्को आनन्द प्रदान करनेवाले ! आपकी जय हो।' इस प्रकारकी वाणी सुनकर पार्वतीने भगवान् शंकरसे पूछा—'भगवन् ! आपके समान दूसरा अन्य देवता कौन है जिसे आपने प्रणाम किया।' इसपर भगवान् शिवने कहा—'महादेवि ! यह काशी परम पवित्र क्षेत्र है, यह स्वयं सनातन ब्रह्मस्वरूप है, यह प्रणाम करने योग्य है। यहाँ मैं सप्ताह-यज्ञ (भागवत-सप्ताह-यज्ञ) करूँगा।' उस यज्ञ-स्थलकी रक्षाके लिये भगवान् शंकरने चण्डीश, गणेश, नन्दी तथा गुह्यकोंको स्थापित किया और स्वयं ध्यानमें स्थित होकर माता पार्वतीसे सात दिनतक भागवती कथा कहते रहे। आठवें दिन पार्वतीको सोते देखकर उन्होंने पूछा कि 'तुमने कितनी कथा सुनी।' उन्होंने कहा—'देव ! मैंने अमृत- मन्थनपर्यन्त विष्णुचरित्रका श्रवण किया।' इसी कथाको वहाँ वृक्षके कोटरमें स्थित शुकरूपी शुकदेव सुन रहे थे। अमृत-कथाके श्रवणसे वे अमर हो गये। मेरी इस आज्ञासे वह शुक साक्षात् तुम्हारे हृदयमें स्थित है। बोपदेव ! तुमने इस दुर्लभ भागवत-माहात्म्यको मेरे द्वारा प्राप्त किया है। अब तुम जाकर राजा विक्रमके पिता गन्धर्वसेनको नर्मदाके तटपर इसे सुनाओ। हरि-माहात्म्यका दान करना सभी दानोंमें उत्तम दान है। इसे विष्णुभक्त बुद्धिमान् सत्पात्रको ही सुनाना चाहिये। भूखेको अन्न-दान करना भी इसके समान दान नहीं है! यह कहकर भगवान् श्रीहरि अन्तर्हित हो गये और बोपदेव बहुत प्रसन्न हो गये।

(अध्याय ३२)

१-सूत्रपाठं धातुपाठं गणपाठं तथैव च।
लिङ्गसूत्रं तथा कृत्वा परं निर्वाणमाप्तवान्॥

(प्रतिसर्गपर्व २।३१।१३-१४)

श्रीदुर्गासप्तशतीके आदिचरित्रका माहात्म्य

(व्याधकर्माकी कथा)

ऋषियोंने पूछा—सूतजी महाराज! अब आप हमलोगोंको यह बतलानेकी कृपा करें कि किस स्तोत्रके पाठ करनेसे वेदोंके पाठ करनेका फल प्राप्त होता है और पाप विनष्ट होते हैं।

सूतजी बोले—ऋषियो! इस विषयमें आप एक कथा सुनें। राजा विक्रमादित्यके राज्यमें एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम था कामिनी। एक बार वह ब्राह्मण श्रीदुर्गासप्तशतीका पाठ करनेके लिये अन्यत्र गया हुआ था। इधर उसकी स्त्री कामिनी जो अपने नामके अनुरूप कर्म करनेवाली थी, पतिके न रहनेपर निन्दित कर्ममें प्रवृत्त हो गयी। फलतः उसे एक निन्द्य पुत्र उत्पन्न हुआ, जो व्याधकर्मा नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह भी अपने नामके अनुरूप कर्म करनेवाला था, धूर्त था तथा वेद-पाठसे रहित था। उस ब्राह्मणने अपनी स्त्री एवं पुत्रके निन्दित कर्म और पापमय आचरणको देखकर उन दोनोंको घरसे निकाल दिया तथा स्वयं धर्ममें तत्पर रहते हुए विन्ध्याचल पर्वतपर प्रतिदिन चण्डीपाठ करने लगा। जगदम्बाके अनुग्रहसे अन्तमें वह जीवन्मुक्त हो गया।

इधर वे दोनों माता-पुत्र (कामिनी और व्याधकर्मा) पूर्वपरिचित निषादके पास चले गये और वहीं निवास करने लगे। वहाँ भी वे दोनों अपने निन्दित आचरणको छोड़ न सके और इन्हीं बुरे कर्मोंसे धन-संग्रह करने लगे। व्याधकर्मा चौर्य-कर्ममें प्रवृत्त हो गया। ऐसे ही भ्रमण करते हुए दैवयोगसे एक दिन वह व्याधकर्मा देवीके मन्दिरमें पहुँचा। वहाँ एक श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीदुर्गासप्तशतीका पाठ कर रहे थे। दुर्गापाठके आदिचरित (प्रथम चरित्र) के किंचित् पाठमात्रके श्रवणसे उसकी दुष्टबुद्धि धर्ममय हो गयी, फलतः धर्मबुद्धि-सम्पन्न उस व्याधकर्माने उस श्रेष्ठ विप्रका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया और अपना सारा धन उन्हें दे दिया। गुरुकी आज्ञासे उसने देवीके मन्त्रका जप किया। बीजमन्त्रके प्रभावसे उसके शरीरसे पापसमूह कृमिके रूपमें निकल गये। तीन वर्षतक इस प्रकार जप करते हुए वह निष्पाप श्रेष्ठ द्विज हो गया। इसी प्रकार मन्त्र-जप और आदि चरित्रका पाठ करते हुए उसे बारह वर्ष व्यतीत हो गये। तदनन्तर वह द्विज काशीमें चला आया। मुनि एवं देवोंसे पूजित महादेवी अन्नपूर्णाका उसने रोचनादि उपचारोंके द्वारा पूजन किया और उनकी इस प्रकार स्तुति की—

नित्यानन्दकरी पराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिलपापपावनकरी काशीपुराधीश्वरी।
नानालोककरी महाभयहरी विश्वम्भरी सुन्दरी
विद्यां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी[1]॥

(प्रतिसर्गपर्व २। ३३। २९)

इस स्तुतिका एक सौ आठ बार जपकर ध्यानमें नेत्रोंको बंदकर वह वहीं सो गया। स्वप्नमें उसके सम्मुख अन्नपूर्णा शिवा उपस्थित हुई और उसे ऋग्वेदका ज्ञान प्रदान कर अन्तर्हित हो गयीं। बादमें वह बुद्धिमान् ब्राह्मण श्रेष्ठ विद्या प्राप्त कर राजा विक्रमादित्यके यज्ञका आचार्य हुआ। यज्ञके बाद योग धारण कर हिमालय चला गया।

हे विप्रो! मैंने आपलोगोंको देवीके पुण्यमय आदि-चरितके माहात्म्यको बतलाया, जिसके प्रभावसे उस व्याध-कर्माने ब्राह्मीभाव प्राप्तकर परमोत्तम सिद्धिको प्राप्त कर लिया था।

(अध्याय ३३)

श्रीदुर्गासप्तशतीके मध्यमचरित्रका माहात्म्य

(कात्यायन तथा मगधके राजा महानन्दकी कथा)

सूतजी बोले—शौनक! उज्जयिनी नगरीमें एक हिंसापरायण मद्य-मांस-भक्षी भीमवर्मा नामका क्षत्रिय रहता था। वह अतिशय हिंसा एवं अधर्माचरणके कारण भयंकर व्याधियोंसे ग्रस्त हो गया और युवावस्थामें ही उसकी मृत्यु हो

१-'हे काशीपुरीकी अधीश्वरी अन्नपूर्णेश्वरी! आप नित्य आनन्ददायिनी हैं। शत्रुओंसे अभय प्रदान करनेवाली हैं तथा आप सौन्दर्यरत्नोंकी निधान और समस्त पापोंको नष्ट कर पवित्र कर देनेवाली हैं। हे सुन्दरी! आप सम्पूर्ण लोकोंकी रचना करनेवाली, महान्-महान् भयोंको दूर करनेवाली, विश्वका भरण-पोषण करनेवाली तथा सबके ऊपर अनुग्रह करनेवाली हैं। हे मातः! आप मुझे विद्या प्रदान करें।

गयी। संयोगवश उसने कभी चण्डीपाठ भी कराया था। जिसके पुण्यके प्रभावसे इतना निकृष्ट पापी भी नरकमें नहीं गया। दूसरे जन्ममें वही राजनीतिपरायण मगधका विख्यात राजा महानन्द हुआ और उसे अपने पूर्वजन्मकी पूरी स्मृति थी। अतिशय समर्थ बुद्धिमान् कात्यायन (वररुचि) का वह शिष्य हुआ। देवी महालक्ष्मीके बीजसहित मध्यम चरित्रका राजा महानन्दको उपदेश देकर कात्यायन स्वयं विन्ध्यपर्वतपर शक्ति-उपासनाके लिये चले गये। इधर राजा भी प्रतिदिन महालक्ष्मीकी कस्तूरी, चन्दन आदिसे पूजा कर श्रीदुर्गासप्तशतीके मध्यम चरित्रका पाठ करने लगा। बारह वर्ष व्यतीत होनेपर शक्तिकी उपासना करनेवाले कात्यायन पुनः अपने शिष्य महानन्दके पास आये और उन्होंने राजासे विधिपूर्वक लक्षचण्डीपाठ करवाया। फलस्वरूप सनातनी भगवती महालक्ष्मी प्रकट हुईं और राजाको धर्म, अर्थ, कामसहित मोक्ष भी दे दिया। इस प्रकार महाभाग महानन्दने देवोंके समान अभीष्ट फलोंका उपभोग कर अन्तमें देवताओंसे नमस्कृत हो परम लोकको प्राप्त किया।

(अध्याय ३४)

श्रीदुर्गासप्तशतीके उत्तरचरित्रकी महिमाके प्रसंगमें योगाचार्य महर्षि पतञ्जलिका चरित्र

सूतजी बोले—अनेक धातुओंके द्वारा चित्रित रमणीय चित्रकूट पर्वतपर महाविद्वान् उपाध्याय पतञ्जलिमुनि रहते थे। वे वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञ एवं गीता-शास्त्र-परायण थे। वे विष्णुके भक्त, सत्यवक्ता एवं व्याकरण-महाभाष्यके रचयिता भी माने गये हैं। एक समय वे शुद्धात्मा अन्य तीर्थोंमें गये। काशीमें उनका देवीभक्त कात्यायनके साथ शास्त्रार्थ हुआ। एक वर्षतक शास्त्रार्थ चलता रहा, अन्तमें पतञ्जलि पराजित हो गये। इससे लज्जित होकर उन्होंने सरस्वतीकी इस प्रकार आराधना की—

नमो देव्यै महामूर्त्यै सर्वमूर्त्यै नमो नमः।
शिवायै सर्वमाङ्गल्यै विष्णुमाये च ते नमः॥
त्वमेव श्रद्धा बुद्धिस्त्वं मेधा विद्या शिवंकरी।
शान्तिर्वाणी त्वमेवासि नारायणि नमो नमः॥

(प्रतिसर्गपर्व २। ३५। ५-६)

'महामूर्ति देवीको नमस्कार है। सर्वमूर्तिस्वरूपिणीको नमस्कार है। सर्वमङ्गलस्वरूपा शिवादेवीको नमस्कार है। हे विष्णुमाये! तुम्हें नमस्कार है। हे नारायणि! तुम्हीं श्रद्धा, बुद्धि, मेधा, विद्या तथा कल्याणकारिणी हो। तुम्हीं शान्ति हो, तुम्हीं वाणी हो, तुम्हें बार-बार नमस्कार है।'

इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवती सरस्वतीने आकाश-वाणीमें कहा—'विप्रश्रेष्ठ! तुम एकाग्रचित्त होकर मेरे उत्तर चरित्रका जप करो। उसके प्रभावसे तुम निश्चय ही ज्ञानको प्राप्त करोगे। पतञ्जले! कात्यायन तुमसे परास्त हो जायँगे।' देवीकी इस वाणीको सुनकर पतञ्जलिने विन्ध्यवासिनीदेवीके मन्दिरमें जाकर सरस्वतीकी आराधना की और वे प्रसन्न हो गयीं। इससे उन्होंने पुनः शास्त्रार्थमें कात्यायनको पराजित कर दिया, बादमें उन्होंने कृष्ण-मन्त्र और भक्तिके प्रचारमें तुलसीमाला आदिका भी महत्त्व बढ़ाया। भगवती विष्णुमायाकी कृपासे वे योगाचार्य अत्यन्त चिरजीवी हो गये।

मुनियो। इस प्रकार दुर्गासप्तशतीके उत्तर चरित्रकी महिमा निरूपित हुई। अब आगे आपलोग क्या सुनना चाहते हैं, वह बतायें। सभीका कल्याण हो, कोई भी दुःख प्राप्त न करे। गरुडध्वज, पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु मङ्गलमय हैं। भगवान् विष्णु मङ्गलमूर्ति हैं। जो व्यक्ति पवित्र होकर इस इतिहास-समुच्चयको प्रतिदिन सुनता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। (अध्याय ३५)

॥ प्रतिसर्गपर्व द्वितीय खण्ड सम्पूर्ण ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

प्रतिसर्गपर्व

(तृतीय खण्ड)

[भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपर्वका तीसरा खण्ड रामांश और कृष्णांश अर्थात् आल्हा और ऊदल (उदयसिंह) के चरित्र तथा जयचन्द्र एवं पृथ्वीराज चौहानकी वीर-गाथाओंसे परिपूर्ण है। इधर भारतमें जगनिक भाटरचित आल्हाका वीरकाव्य बहुत प्रचलित है। इसके बुंदेलखण्डी, भोजपुरी आदि कई संस्करण हैं, जिनमें भाषाओंका थोड़ा-थोड़ा भेद है। इन कथाओंका मूल यह प्रतिसर्गपर्व ही प्रतीत होता है। इसीके आधारपर ये रचनाएँ प्रचलित हैं। प्रायः ये कथाएँ लोकरञ्जनके अनुसार अतिशयोक्तिपूर्ण-सी प्रतीत होती हैं, किंतु ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्वकी भी हैं। यहाँ इनका सारमात्र प्रस्तुत किया गया है।—सम्पादक]

आल्हा-खण्ड (आल्हा-ऊदलकी कथा) का उपक्रम

ऋषियोंने पूछा—सूतजी महाराज! आपने महाराज विक्रमादित्यके इतिहासका वर्णन किया। द्वापर युगके समान उनका शासन, धर्म एवं न्यायपूर्ण था और लंबे समयतक इस पृथ्वीपर रहा। महाभाग! उस समय भगवान् श्रीकृष्णने अनेक लीलाएँ की थीं। आप उन लीलाओंका हमलोगोंसे वर्णन कीजिये, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं।

श्रीसूतजीने मङ्गल-स्मरणपूर्वक कहा—

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

(प्रतिसर्गपर्व ३।१।३)

'भगवान् नर-नारायणके अवतारस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके सखा नरश्रेष्ठ अर्जुन, उनकी लीलाओंको प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उनके चरित्रोंका वर्णन करनेवाले वेदव्यासको नमस्कार कर अष्टादश पुराण, रामायण और महाभारत आदि जय नामसे व्यपदिष्ट ग्रन्थोंका वाचन करना चाहिये।'

मुनिगणो! भविष्य नामक महाकल्पके वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें द्वापर युगके अन्तमें कुरुक्षेत्रका प्रसिद्ध महायुद्ध हुआ। उसमें युद्ध कर दुरभिमानी सभी कौरवोंपर पाण्डवोंने अठारहवें दिन पूर्ण विजय प्राप्त की। अन्तिम दिन भगवान् श्रीकृष्णने कालकी दुर्गतिको जानकर योगरूपी सनातन शिवजीकी मनसे इस प्रकार स्तुति की—

शान्तस्वरूपी, सब भूतोंके स्वामी, कपर्दी, कालकर्ता, जगद्धर्ता, पाप-विनाशक रुद्र! मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ। भगवन्! आप मेरे भक्त पाण्डवोंकी रक्षा कीजिये।

इस स्तुतिको सुनकर भगवान् शंकर नन्दीपर आरूढ़ हो हाथमें त्रिशूल लिये पाण्डवोंके शिविरकी रक्षाके लिये आ गये। उस समय महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये थे और पाण्डव सरस्वतीके किनारे रहते थे।

मध्यरात्रिमें अश्वत्थामा, भोज (कृतवर्मा) और कृपाचार्य—ये तीनों पाण्डव-शिविरके पास आये और उन्होंने मनसे भगवान् रुद्रकी स्तुति कर उन्हें प्रसन्न कर लिया। इसपर भगवान् शंकरने उन्हें पाण्डव-शिविरमें प्रवेश करनेकी आज्ञा दे दी। बलवान् अश्वत्थामाने भगवान् शंकरद्वारा प्राप्त तलवारसे धृष्टद्युम्न आदि वीरोंकी हत्या कर दी, फिर वह कृपाचार्य और कृतवर्माके साथ वापस चला गया। वहाँ एकमात्र पार्षद सूत ही बचा रहा, उसने इस जनसंहारकी सूचना पाण्डवोंको दी। भीम आदि पाण्डवोंने इसे शिवजीका ही कृत्य समझा; वे क्रोधसे तिलमिला गये और अपने आयुधोंसे देवाधिदेव पिनाकीसे युद्ध करने लगे। भीम आदिद्वारा प्रयुक्त अस्त्र-शस्त्र शिवजीके शरीरमें समाहित हो गये। इसपर भगवान् शिवने कहा कि तुम श्रीकृष्णके उपासक हो अतः हमारे द्वारा तुमलोग रक्षित हो, अन्यथा तुमलोग वधके योग्य थे। इस अपराधका फल तुम्हें कलियुगमें जन्म लेकर भोगना पड़ेगा। ऐसा कहकर वे अदृश्य हो गये और पाण्डव बहुत दुःखी हुए। वे अपराधसे मुक्त होनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये। निःशस्त्र पाण्डवोंने श्रीकृष्णके साथ एकाग्र मनसे शंकरजीकी स्तुति की। इसपर

भगवान् शंकरने प्रत्यक्ष प्रकट होकर उनसे वर माँगनेको कहा।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—देव! पाण्डवोंके जो शस्त्रास्त्र आपके शरीरमें लीन हो गये हैं, उन्हें पाण्डवोंको वापस कर दीजिये और इन्हें शापसे भी मुक्त कर दीजिये।

श्रीशिवजीने कहा—श्रीकृष्णचन्द्र! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। उस समय मैं आपकी मायासे मोहित हो गया था। उस मायाके अधीन होकर मैंने यह शाप दे दिया। यद्यपि मेरा वचन तो मिथ्या नहीं होगा तथापि ये पाण्डव तथा कौरव अपने अंशोंसे कलियुगमें उत्पन्न होकर अंशतः अपने पापोंका फल भोगकर मुक्त हो जायँगे।

युधिष्ठिर वत्सराजका पुत्र होगा, उसका नाम बलखानि (मलखान) होगा, वह शिरीष नगरका अधिपति होगा। भीमका नाम वीरण होगा और वह वनरसका राजा होगा। अर्जुनके अंशसे जो जन्म लेगा, वह महान् बुद्धिमान् और मेरा भक्त होगा। उसका जन्म परिमलके यहाँ होगा और नाम होगा ब्रह्मानन्द। महाबलशाली नकुलका जन्म कान्यकुब्जमें रत्नभानुके पुत्रके रूपमें होगा और नाम होगा लक्षण। सहदेव भीमसिंहका पुत्र होगा और उसका नाम होगा देवसिंह। धृतराष्ट्रके अंशसे अजमेरमें पृथ्वीराज जन्म लेगा और द्रौपदी पृथ्वीराजकी कन्याके रूपमें वेला नामसे प्रसिद्ध होगी। महादानी कर्ण तारक नामसे जन्म लेगा। उस समय रक्तबीजके रूपमें पृथ्वीपर मेरा भी अवतार होगा। कौरव माया-युद्धमें निष्णात होंगे और पाण्डु-पक्षके योद्धा धार्मिक और बलशाली होंगे।

सूतजी बोले—ऋषियो! यह सब बातें सुनकर श्रीकृष्ण मुसकराये और उन्होंने कहा 'मैं भी अपनी शक्ति-विशेषसे अवतार लेकर पाण्डवोंकी सहायता करूँगा। मायादेवीद्वारा निर्मित महावती नामकी पुरीमें देशराजके पुत्र-रूपमें मेरा अंश उत्पन्न होगा, जो उदयसिंह (ऊदल) कहलायेगा, वह देवकीके गर्भसे उत्पन्न होगा। मेरे वैकुण्ठ-धामका अंश आह्लाद नामसे जन्म लेगा, वह मेरा गुरु होगा। अग्निवंशसे उत्पन्न राजाओंका विनाश कर मैं (श्रीकृष्ण—उदयसिंह) धर्मकी स्थापना करूँगा।' श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर शिवजी अन्तर्हित हो गये।

राजा शालिवाहन तथा ईशामसीहकी कथा

सूतजीने कहा—ऋषियो! प्रातःकालमें पुत्रशोकसे पीड़ित सभी पाण्डव प्रेतकार्य कर पितामह भीष्मके पास आये। उनसे उन्होंने राजधर्म, मोक्षधर्म और दानधर्मोंके स्वरूपको अलग-अलग रूपसे भलीभाँति समझा। तदनन्तर उन्होंने उत्तम आचरणोंसे तीन अश्वमेध-यज्ञ किये। पाण्डवोंने छत्तीस वर्षतक राज्य किया और अन्तमें वे स्वर्ग चले गये। कलिधर्मकी वृद्धि होनेपर वे भी अपने अंशसे उत्पन्न होंगे।

अब आप सब मुनिगण अपने-अपने स्थानको पधारें। मैं योगनिद्राके वशीभूत हो रहा हूँ, अब मैं समाधिस्थ होकर गुणातीत परब्रह्मका ध्यान करूँगा। यह सुनकर नैमिषारण्यवासी मुनिगण यौगिक सिद्धिका अवलम्बन कर आत्मसामीप्यमें स्थित हो गये। दीर्घकाल व्यतीत होनेपर शौनकादिमुनि ध्यानसे उठकर पुनः सूतजीके पास पहुँचे।

मुनियोंने पूछा—सूतजी महाराज! विक्रमाख्यानका तथा द्वापरमें शिवकी आज्ञासे होनेवाले राजाओंका आप वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—मुनियो! विक्रमादित्यके स्वर्गलोक चले जानेके बाद बहुतसे राजा हुए। पूर्वमें कपिल स्थानसे पश्चिममें सिन्धु नदीतक, उत्तरमें बदरीक्षेत्रसे दक्षिणमें सेतुबन्धतककी सीमावाले भारतवर्षमें उस समय अठारह राज्य या प्रदेश थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्रप्रस्थ, पाञ्चाल, कुरुक्षेत्र, कम्पिल, अन्तर्वेदी, व्रज, अजमेर, मरुधन्व (मारवाड़), गुर्जर (गुजरात), महाराष्ट्र, द्रविड़ (तमिलनाडु), कलिंग (उड़ीसा), अवन्ती (उज्जैन), उडुप (आन्ध्र), बंग, गौड़, मागध तथा कौशल्य। इन राज्योंपर अलग-अलग राजाओंने शासन किया। वहाँकी भाषाएँ भिन्न-भिन्न रहीं और समय-समयपर विभिन्न धर्म-प्रचारक भी हुए। एक सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर धर्मका विनाश सुनकर शक आदि विदेशी राजा अनेक लोगोंके साथ सिन्धु नदीको पारकर आर्यदेशमें आये और कुछ लोग हिमालयके हिममार्गसे यहाँ आये। उन्होंने आर्योंको जीतकर उनका धन लूट लिया और अपने देशमें लौट गये। इसी समय विक्रमादित्यका पौत्र राजा

शालिवाहन पिताके सिंहासनपर आसीन हुआ। उसने शक, चीन आदि देशोंकी सेनापर विजय पायी। बाह्लीक, कामरूप, रोम तथा खुर देशमें उत्पन्न हुए दुष्टोंको पकड़कर उन्हें कठोर दण्ड दिया और उनका सारा कोष छीन लिया। उसने म्लेच्छों तथा आर्योंकी अलग-अलग देश-मर्यादा स्थापित की। सिन्धु- प्रदेशको आर्योंका उत्तम स्थान निर्धारित किया और म्लेच्छोंके लिये सिन्धुके उस पारका प्रदेश नियत किया।

एक समयकी बात है, वह शकाधीश शालिवाहन हिमशिखरपर गया। उसने हूण देशके मध्य स्थित पर्वतपर एक सुन्दर पुरुषको देखा। उसका शरीर गोरा था और वह श्वेत वस्त्र धारण किये था। उस व्यक्तिको देखकर शकराजने प्रसन्नतासे पूछा—'आप कौन हैं ?' उसने कहा—'मैं ईशपुत्र हूँ और कुमारीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूँ। मैं म्लेच्छ-धर्मका प्रचारक और सत्य-व्रतमें स्थित हूँ।' राजाने पूछा—'आपका कौन-सा धर्म है ?'

ईशपुत्रने कहा—महाराज ! सत्यका विनाश हो जानेपर मर्यादारहित म्लेच्छ-प्रदेशमें मैं मसीह बनकर आया और दस्युओंके मध्य भयंकर ईशामसी नामसे एक कन्या उत्पन्न हुई। उसीको म्लेच्छोंसे प्राप्त कर मैंने मसीहत्व प्राप्त किया। मैंने म्लेच्छोंमें जिस धर्मकी स्थापना की है, उसे सुनिये—

'सबसे पहले मानस और दैहिक मलको निकालकर शरीरको पूर्णतः निर्मल कर लेना चाहिये। फिर इष्ट देवताका जप करना चाहिये। सत्य वाणी बोलनी चाहिये, न्यायसे चलना चाहिये और मनको एकाग्र कर सूर्यमण्डलमें स्थित परमात्माकी पूजा करनी चाहिये, क्योंकि ईश्वर और सूर्यमें समानता है। परमात्मा भी अचल हैं और सूर्य भी अचल हैं। सूर्य अनित्य भूतोंके सारका चारों ओरसे आकर्षण करते हैं। हे भूपाल ! ऐसे कृत्यसे वह मसीहा विलीन हो गयी। पर मेरे हृदयमें नित्य विशुद्ध कल्याणकारिणी ईश-मूर्ति प्राप्त हुई है। इसलिये मेरा नाम ईशामसीह प्रतिष्ठित हुआ।'

यह सुनकर राजा शालिवाहनने उस म्लेच्छ-पूज्यको प्रणाम किया और उसे दारुण म्लेच्छ-स्थानमें प्रतिष्ठित किया तथा अपने राज्यमें आकर उस राजाने अश्वमेध यज्ञ किया और साठ वर्षतक राज्य करके स्वर्गलोक चला गया।

राजा भोज और महामदकी कथा

सूतजीने कहा—ऋषियो ! शालिवाहनके वंशमें दस राजा हुए। उन्होंने पाँच सौ वर्षतक शासन किया और स्वर्गवासी हुए। तदनन्तर भूमण्डलपर धर्म-मर्यादा लुप्त होने लगी। शालिवाहनके वंशमें अन्तिम दसवें राजा भोजराज हुए। उन्होंने देशकी मर्यादा क्षीण होती देख दिग्विजयके लिये प्रस्थान किया। उनकी सेना दस हजार थी और उनके साथ कालिदास एवं अन्य विद्वान् ब्राह्मण भी थे। उन्होंने सिन्धु नदीको पार करके गान्धार, म्लेच्छ और काश्मीरके शठ राजाओंको परास्त किया तथा उनका कोश छीनकर उन्हें दण्डित किया। उसी प्रसंगमें आचार्य एवं शिष्यमण्डलके साथ म्लेच्छ महामद नामका व्यक्ति उपस्थित हुआ। राजा भोजने मरुस्थलमें विद्यमान महादेवजीका दर्शन किया। महादेवजीको पञ्चगव्यमिश्रित गङ्गाजलसे स्नान कराकर चन्दन आदिसे भक्तिभावपूर्वक उनका पूजन किया और उनकी स्तुति की।

भोजराजने कहा—हे मरुस्थलमें निवास करनेवाले तथा म्लेच्छोंसे गुप्त शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूपवाले गिरिजापते ! आप त्रिपुरासुरके विनाशक तथा नानाविध मायाशक्तिके प्रवर्तक हैं। मैं आपकी शरणमें आया हूँ, आप मुझे अपना दास समझें। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। इस स्तुतिको सुनकर भगवान् शिवने राजासे कहा—

'हे भोजराज ! तुम्हें महाकालेश्वर-तीर्थमें जाना चाहिये। यह वाह्लीक नामकी भूमि है, पर अब म्लेच्छोंसे दूषित हो गयी है। इस दारुण प्रदेशमें आर्य-धर्म है ही नहीं। महामायावी त्रिपुरासुर यहाँ दैत्यराज बलिद्वारा प्रेषित किया गया है। मेरे द्वारा वरदान प्राप्त कर वह दैत्य-समुदायको बढ़ा रहा है। वह अयोनिज है। उसका नाम महामद है। राजन् ! तुम्हें इस अनार्य देशमें नहीं आना चाहिये। मेरी कृपासे तुम विशुद्ध हो।' भगवान् शिवके इन वचनोंको सुनकर राजा भोज सेनाके साथ अपने देशमें वापस चला आया।

राजा भोजने द्विजवर्गके लिये संस्कृत वाणीका प्रचार किया और शूद्रोंके लिये प्राकृत भाषा चलायी। उन्होंने पचास

वर्षतक राज्य किया और अन्तमें स्वर्गलोक प्राप्त किया। उन्होंने देश-मर्यादाका स्थापन किया। विन्ध्यगिरि और हिमालयके मध्यमें आर्यावर्तकी पुण्यभूमि है, वहाँ आर्यलोग रहते हैं।

देशराज एवं वत्सराज आदि राजाओंका आविर्भाव

सूतजीने कहा—भोजराजके स्वर्गारोहणके पश्चात् उनके वंशमें सात राजा हुए, पर वे सभी अल्पायु, मन्द-बुद्धि और अल्पतेजस्वी हुए तथा तीन सौ वर्षके भीतर ही मर गये। उनके राज्यकालमें पृथ्वीपर छोटे-छोटे अनेक राजा हुए। वीरसिंह नामके सातवें राजाके वंशमें तीन राजा हुए, जो दो सौ वर्षके भीतर ही मर गये। दसवाँ जो गंगासिंह नामका राजा हुआ, उसने कल्पक्षेत्रमें धर्मपूर्वक अपना राज्य चलाया। अन्तर्वेदीमें कान्यकुब्जपर राजा जयचन्द्रका शासन था। तोमरवंशमें उत्पन्न अनङ्गपाल इन्द्रप्रस्थका राजा था। इस तरहसे गाँव और राष्ट्रमें (जनपदों) में बहुतसे राजा हुए। अग्निवंशका विस्तार बहुत हुआ और उसमें बहुतसे बलवान् राजा हुए। पूर्वमें कपिलस्थान (गङ्गासागर), पश्चिममें बाह्लीक, उत्तरमें चीन देश और दक्षिणमें सेतुबन्ध—इनके बीचमें साठ लाख भूपाल ग्रामपालक थे, जो महान् बलवान् थे। इनके राज्यमें—प्रजाएँ अग्निहोत्र करनेवाली, गौ-ब्राह्मणका हित चाहनेवाली तथा द्वापर युगके समान धर्म-कार्य करनेमें निपुण थीं। सर्वत्र द्वापर युग ही मालूम पड़ता था। घर-घरमें प्रचुर धन तथा जन-जनमें धर्म विद्यमान था। प्रत्येक गाँवमें देवताओंके मन्दिर थे। देश-देशमें यज्ञ होते थे। म्लेच्छ भी आर्य-धर्मका सभी तरहसे पालन करते थे। द्वापरके समान ऐसा धर्माचरण देखकर कलिने भयभीत होकर म्लेच्छोंके साथ नीलाचल पर्वतपर जाकर हरिकी शरण ली। वहाँ उसने बारह वर्षतक तपश्चर्या की। इस ध्यानयोगात्मक तपश्चर्यासे उसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन हुआ। राधाके साथ भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन पाकर उसने मनसे उनकी स्तुति की।

कलिने कहा—हे भगवन्! आप मेरे साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणामको स्वीकार करें। मेरी रक्षा कीजिये। हे कृपानिधे! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप सभी पापोंका विनाश करते हैं। सभी कालोंका निर्माण करनेवाले आप ही हैं। सत्ययुगमें आप गौरवर्णके थे, त्रेतामें रक्तवर्ण, द्वापरमें पीतवर्णके थे। मेरे समय (कलियुग)में आप कृष्ण-रूपके हैं। मेरे पुत्रोंने म्लेच्छ होनेपर भी अब आर्य-धर्म स्वीकार किया है। मेरे राज्यमें प्रत्येक घरमें द्यूत, मद्य, स्वर्ण, स्त्री-हास्य आदि होना चाहिये। परंतु अग्निवंशमें पैदा हुए क्षत्रियोंने उनका विनाश कर दिया है। हे जनार्दन! मैं आपके चरण-कमलोंकी शरण हूँ। कलियुगकी यह स्तुति सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराकर कहने लगे—

'कलिराज! मैं तुम्हारी रक्षाके लिये अंशरूपमें महावतीमें अवतीर्ण होऊँगा, वह मेरा अंश भूमिमें आकर उन महाबली अग्निवंशीय प्रजाओंका विनाश करेगा और म्लेच्छवंशीय राजाओंकी प्रतिष्ठा करेगा।' यह कहकर भगवान् अदृश्य हो गये और म्लेच्छोंके साथ वह कलि अत्यन्त प्रसन्न हो गया।

आगे चलकर इसी प्रकार सम्पूर्ण घटनाएँ घटित हुईं। कौरवांशोंकी पराजय और पाण्डवांशोंकी विजय हुई। अन्तमें पृथ्वीराज चौहानने वीरगति प्राप्त की तथा सहोद्दीन (मोहम्मदगोरी) अपने दास कुतुकोद्दीनको यहाँका शासन सौंपकर यहाँसे बहुत-सा धन लूटकर अपने देश चला गया'*।

॥ प्रतिसर्गपर्व, तृतीय खण्ड सम्पूर्ण ॥

* प्रतिसर्गपर्वका चतुर्थ खण्ड परिशिष्टाङ्कमें दिया गया है।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

उत्तरपर्व

महाराज युधिष्ठिरके पास व्यासादि महर्षियोंका आगमन एवं उनसे उपदेश करनेके लिये युधिष्ठिरकी प्रार्थना

कल्याणानि ददातु वो गणपतिर्यस्मिन्नतुष्टे सति
क्षोदीयस्यपि कर्मणि प्रभवितुं ब्रह्मापि जिह्मायते।
भेजे यच्चरणारविन्दमसकृत्सौभाग्यभाग्योदयै-
स्तेनैषा जगति प्रसिद्धिमगमद्देवेन्द्रलक्ष्मीरपि ॥
शश्वत्पुण्यहिरण्यगर्भरसनासिंहासनाध्यासिनी
सेयं वागधिदेवता वितरतु श्रेयांसि भूयांसि वः।
यत्पादामलकोमलाङ्गुलिनखज्योत्स्नाभिरुद्वेल्लितः
शब्दब्रह्मसुधाम्बुधिर्बुधमनस्युच्छृङ्खलं खेलति ॥

(उत्तरपर्व १।१-२)

'जिनकी प्रसन्नताके बिना ब्रह्मा भी एक क्षुद्रकार्यका सम्पादन नहीं कर सकते और जिनके चरणोंके एक बार आश्रय लेनेसे देवेन्द्रका भाग्य चमक उठा तथा उन्हें अखण्ड राजलक्ष्मीकी प्राप्ति हो गयी, वे भगवान् गणपतिदेव आप-लोगोंका कल्याण करें। जो ब्रह्माके जिह्वाग्र-भागपर निरन्तर सिंहासनासीन रहती हैं और जिनके चरणनखकी चन्द्रिकासे प्रकाशित होकर शब्दब्रह्मका समुद्र विद्वानोंके हृदयपर नृत्य करता है, वे भगवती सरस्वती आप सबका अनन्त कल्याण करें।'

भगवान् शंकरका ध्यान कर, भगवान् (विष्णु) कृष्णकी स्तुति कर और ब्रह्माजीको नमस्कार कर तथा सूर्यदेव एवं अग्निदेवको प्रणाम कर इस ग्रन्थका वाचन करना चाहिये[1]।

एक बार धर्मके पुत्र धर्मवेत्ता महाराज युधिष्ठिरको देखनेके लिये व्यास, मार्कण्डेय, माण्डव्य, शाण्डिल्य, गौतम, शातातप, पराशर, भरद्वाज, शौनक, पुलस्त्य, पुलह तथा देवर्षि नारद आदि श्रेष्ठ ऋषिगण पधारे।

उन महान् तपस्वी एवं वेदवेदाङ्गपारंगत ऋषियोंको देखकर भक्तिमान् राजा युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके साथ प्रसन्नचित्त हो सिंहासनसे उठकर भगवान् श्रीकृष्ण तथा पुरोहित धौम्यको आगे कर उनका अभिवादन किया और आचमन एवं पाद्यादिसे उनकी पूजाकर आसन प्रदान किया। उन तपस्वियोंके बैठनेपर विनयसे अवनत हो महाराज युधिष्ठिरने श्रीवेदव्यासजीसे कहा—

'भगवन्! आपके प्रसादसे मैंने यह महान् राज्य प्राप्त किया तथा दुर्योधनादिको परास्त किया। किंतु जैसे रोगीको सुख प्राप्त होनेपर भी वह सुख उसके लिये सुखकर नहीं होता, वैसे ही अपने बन्धु-बान्धवोंको मारकर यह राज्य-सुख मुझे प्रिय नहीं लग रहा है। जो आनन्द वनमें निवास करते हुए कन्द-मूल तथा फलोंके भक्षणसे प्राप्त होता है, वह सुख शत्रुओंको जीतकर सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य प्राप्त करनेपर भी नहीं होता। जो भीष्मपितामह हमारे गुरु, बन्धु, रक्षक, कल्याण और कवचस्वरूप थे, उन्हें भी मुझ-जैसे पापीने राज्यके लोभसे मार डाला। मैंने बहुत विवेकशून्य कार्य किया है। मेरा मन पाप-पङ्कमें लिप्त हो गया है। भगवन्! आप कृपाकर अपने ज्ञानरूपी जलसे मेरे अज्ञान तथा पाप-पङ्कको धोकर सर्वथा निर्मल बना दीजिये और अपने प्रज्ञारूपी दीपकसे मेरा धर्मरूपी मार्ग प्रशस्त कीजिये। धर्मके संरक्षक ये मुनिगण कृपाकर यहाँ आये हुए हैं। गङ्गापुत्र महाराज भीष्मपितामहसे मैंने अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्रका विस्तारसे श्रवण किया है। उन शान्तनुपुत्र भीष्मके स्वर्गलोक चले जानेपर अब श्रीकृष्ण और आप ही मैत्री एवं बन्धुताके कारण मेरे मार्गदर्शक हैं।'

व्यासजी बोले—राजन्! आपको करने योग्य सभी बातें मैंने, पितामह भीष्मने, महर्षि मार्कण्डेय, धौम्य और महामुनि लोमशने बता दी हैं। आप धर्मज्ञ, गुणी, मेधावी तथा धीमान् पुरुषोंके समान हैं, धर्म और अधर्मके निश्चयमें कोई भी बात आपको अज्ञात नहीं है। हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णके यहाँ उपस्थित रहते हुए धर्मका उपदेश करनेका साहस कौन कर सकता है? क्योंकि ये ही संसारकी सृष्टि, स्थिति तथा पालन करते हैं एवं प्रत्यक्षदर्शी हैं। अतः ये ही आपको उपदेश करेंगे। इतना कहकर तथा पाण्डवोंकी पूजा ग्रहणकर बादरायण व्यासजी तपोवन चले गये।

(अध्याय १)

१-शिवं ध्यात्वा हरिं स्तुत्वा प्रणम्य परमेष्ठिनम्। चित्रभानुं च भानुं च नत्वा ग्रन्थमुदीरयेत्॥ (उत्तरपर्व १।७)

भुवनकोशका संक्षिप्त वर्णन

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! यह जगत् किसमें प्रतिष्ठित है? कहाँसे उत्पन्न होता है? इसका किसमें लय होता है? इस विश्वका हेतु क्या है? पृथ्वीपर कितने द्वीप, समुद्र तथा कुलाचल हैं? पृथिवीका कितना प्रमाण है? कितने भुवन हैं? इन सबका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! आपने जो पूछा है, वह सब पुराणका विषय है, किंतु संसारमें घूमते हुए मैंने जैसा सुना और जो अनुभव किया है, उनका संक्षेपमें मैं वर्णन करता हूँ। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन पाँच लक्षणोंसे समन्वित पुराण कहा जाता है[1]।

अनघ! आपका प्रश्न इन पाँच लक्षणोंमेंसे सर्ग (सृष्टि)-के प्रति ही विशेषरूपसे सम्बद्ध है, इसलिये इसका मैं संक्षेपमें वर्णन करता हूँ।

अव्यक्त-प्रकृतिसे महत्तत्त्व-बुद्धि उत्पन्न हुई। महत्तत्त्वसे त्रिगुणात्मक अहंकार उत्पन्न हुआ, अहंकारसे पञ्चतन्मात्रा, पञ्चतन्मात्राओंसे पाँच महाभूत और इन भूतोंसे चराचर-जगत् उत्पन्न हुआ है। स्थावर-जङ्गमात्मक अर्थात् चराचर जगत्के नष्ट होनेपर जलमूर्तिमय विष्णु रह जाते हैं अर्थात् सर्वत्र जल परिव्याप्त रहता है, उससे भूतात्मक अण्ड उत्पन्न हुआ। कुछ समयके बाद उस अण्डके दो भाग हो गये। उसमें एक खण्ड पृथिवी और दूसरा भाग आकाश हुआ। उसमें जरायुसे मेरु आदि पर्वत हुए। नाडियोंसे नदी आदि हुई। मेरु पर्वत सोलह हजार योजन भूमिके अंदर प्रविष्ट है और चौरासी हजार योजन भूमिके ऊपर है, बत्तीस हजार योजन मेरुके शिखरका विस्तार है। कमलस्वरूप भूमिकी कर्णिका मेरु है। उस अण्डसे आदिदेवता आदित्य उत्पन्न हुए, जो प्रातःकालमें ब्रह्मा, मध्याह्नमें विष्णु और सायंकालमें रुद्ररूपसे अवस्थित रहते हैं। एक आदित्य ही तीन रूपोंको धारण करते हैं। ब्रह्मासे मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ और नारद—ये नौ मानस-पुत्र उत्पन्न हुए। पुराणोंमें इन्हें ब्रह्मपुत्र कहा गया है। ब्रह्माके दक्षिण अँगूठेसे दक्ष उत्पन्न हुए और बायें अँगूठेसे प्रसूति उत्पन्न हुई। दोनों दम्पति अँगूठेसे ही उत्पन्न हुए। उन दोनोंसे उत्पन्न हर्यश्व आदि पुत्रोंको देवर्षि नारदने सृष्टिके लिये उद्यत होनेपर भी सृष्टिसे विरत कर दिया। प्रजापति दक्षने अपने पुत्र हर्यश्वोंको सृष्टिसे विमुख देखकर सत्या आदि नामवाली साठ कन्याओंको उत्पन्न किया और उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, दो बाहुपुत्रको, दो कृशाश्वको, चार अरिष्टनेमिको, एक भृगुको और एक कन्या शंकरको प्रदान किया। फिर इनसे चराचर-जगत् उत्पन्न हुआ। मेरु पर्वतके तीन शृङ्गोंपर ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी क्रमशः वैराज, वैकुण्ठ तथा कैलास नामक तीन पुरियाँ हैं। पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र आदि दिक्पालोंकी नगरी है। हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, नील, श्वेत और शृङ्गवान्—ये सात जम्बूद्वीपमें कुल-पर्वत हैं। जम्बूद्वीप लक्ष योजन प्रमाणवाला है। इसमें नौ वर्ष हैं। जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, शाल्मलि, गोमेद* तथा पुष्कर—ये सात द्वीप हैं। ये सातों द्वीप सात समुद्रोंसे परिवेष्टित हैं। क्षार, दुग्ध, इक्षुरस, सुरा, दधि, घृत और स्वादिष्ट जलके सात समुद्र हैं। सातों समुद्र और सातों द्वीप एककी अपेक्षा एक द्विगुण हैं। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—ये देवताओंके निवास-स्थान हैं। सात पाताललोक हैं—अतल, महातल, भूमितल, सुतल, वितल, रसातल तथा तलातल। इनमें हिरण्याक्ष आदि दानव और वासुकि आदि नाग निवास करते हैं। हे युधिष्ठिर! सिद्ध और ऋषिगण भी इनमें निवास करते हैं। स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष—ये छः मनु व्यतीत हो गये हैं, इस समय वैवस्वत मनु वर्तमान हैं। उन्हींके पुत्र और पौत्रोंसे यह पृथिवी परिव्याप्त है। बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र और दो अश्विनीकुमार—ये तैंतीस देवता वैवस्वत-मन्वन्तरमें कहे गये हैं। विप्रचित्तिसे दैत्यगण और हिरण्याक्षसे दानवगण उत्पन्न हुए हैं।

द्वीप और समुद्रोंसे समन्वित भूमिका प्रमाण पचास कोटि

१-सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ (उत्तरपर्व २। ११)

* अन्य मत्स्य आदि सभी पुराणोंके अनुसार गोमेद आठवाँ है, यहाँ प्लक्ष नामक द्वीप छूट गया है।

योजन है। नौकाकी तरह यह भूमि जलपर तैर रही है। इसके चारों ओर लोकालोक-पर्वत हैं। नैमित्तिक, प्राकृत, आत्यन्तिक और नित्य—ये चार प्रकारके प्रलय हैं। जिससे इस संसारकी उत्पत्ति होती है। प्रलयके समय उसीमें इसका लय हो जाता है। जिस प्रकार ऋतुके अनुकूल वृक्षोंके पुष्प, फल और फूल उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार संसार भी अपने समयसे उत्पन्न होता है और अपने समयसे लीन होता है। सम्पूर्ण विश्वके लीन होनेके बाद महेश्वर वेद-शब्दोंके द्वारा पुनः इसका निर्माण करते हैं। हिंस्र, अहिंस्र, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य आदि कर्मोंसे जीव अनेक योनियोंको इस संसारमें प्राप्त करते हैं। भूमि जलसे, जल तेजसे, तेज वायुसे, वायु आकाशसे वेष्टित है। आकाश अहंकारसे, अहंकार महत्तत्त्वसे, महत्तत्त्व प्रकृतिसे और प्रकृति उस अविनाशी पुरुषसे परिव्याप्त है। इस प्रकारके हजारों अण्ड उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। सुर, नर, किन्नर, नाग, यक्ष तथा सिद्ध आदिसे समन्वित चराचर-जगत् नारायणकी कुक्षिमें अवस्थित है। निर्मल-बुद्धि तथा शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनिगण इसके बाह्य और आभ्यन्तर-स्वरूपको देखते हैं अथवा परमात्माकी माया ही उन्हें जानती है।

(अध्याय २)

नारदजीको विष्णु-मायाका दर्शन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! यह विष्णु-भगवान्‌की माया किस प्रकारकी है? जो इस चराचर-जगत्‌को व्यामोहित करती है।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! किसी समय नारदमुनि श्वेतद्वीपमें नारायणका दर्शन करनेके लिये गये। वहाँ श्रीनारायणका दर्शन कर और उन्हें प्रसन्न-मुद्रामें देखकर उनसे जिज्ञासा की। भगवन्! आपकी माया कैसी है? कहाँ रहती है? कृपाकर उसका रूप मुझे दिखायें।

भगवान्‌ने हँसकर कहा—नारद! मायाको देखकर क्या करोगे? इसके अतिरिक्त जो कुछ चाहते हो वह माँगो।

नारदजीने कहा—भगवन्! आप अपनी मायाको ही दिखायें, अन्य किसी वरकी अभिलाषा नहीं है। नारदजीने बार-बार आग्रह किया।

नारायणने कहा—अच्छा, आप हमारी माया देखें। यह कहकर नारदकी अँगुली पकड़कर श्वेतद्वीपसे चले। मार्गमें आकर भगवान्‌ने एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया। शिखा, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, मृगचर्मको धारण कर कुशाकी पवित्री हाथोंमें पहनकर वेद-पाठ करने लगे और अपना नाम उन्होंने यज्ञशर्मा रख लिया। इस प्रकारका रूप धारणकर नारदके साथ जम्बूद्वीपमें आये। वे दोनों वेत्रवती नदीके तटपर स्थित विदिशा नामक नगरीमें गये। उस विदिशा नगरीमें धन-धान्यसे समृद्ध उद्यमी, गाय, भैंस, बकरी आदि पशु-पालनमें तत्पर, कृषिकार्यको भलीभाँति करनेवाला सीरभद्र नामका एक वैश्य निवास करता था। वे दोनों सर्वप्रथम उसीके घर गये। उसने इन विशुद्ध ब्राह्मणोंका आसन, अर्घ्य आदिसे आदर-सत्कार किया। फिर पूछा—'यदि आप उचित समझें तो अपनी रुचिके अनुसार मेरे यहाँ अन्नका भोजन करें।' यह सुनकर वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी भगवान्‌ने हँसकर कहा—'तुमको अनेक पुत्र-पौत्र हों और सभी व्यापार एवं खेतीमें तत्पर रहें। तुम्हारी खेती और पशु-धनकी नित्य वृद्धि हो'—यह मेरा आशीर्वाद है। इतना कहकर वे दोनों वहाँसे आगे गये। मार्गमें गङ्गाके तटपर वेणिका नामके गाँवमें गोस्वामी नामका एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था, वे दोनों उसके पास पहुँचे। वह अपनी खेतीकी चिन्तामें लगा था। भगवान्‌ने उससे कहा—'हम बहुत दूरसे आये हैं, अब हम तुम्हारे अतिथि हैं, हम भूखे हैं, हमें भोजन कराओ।' उन दोनोंको साथमें लेकर वह ब्राह्मण अपने घरपर आया। उसने दोनोंको स्नान-भोजन आदि कराया, अनन्तर सुखपूर्वक उत्तम शय्यापर शयन आदिकी व्यवस्था की। प्रातः उठकर भगवान्‌ने ब्राह्मणसे कहा—'हम तुम्हारे घरमें सुखपूर्वक रहे, अब जा रहे हैं। परमेश्वर करे कि तुम्हारी खेती निष्फल हो, तुम्हारी संततिकी वृद्धि न हो'—इतना कहकर वे वहाँसे चले गये।

मार्गमें नारदजीने पूछा—भगवन्! वैश्यने आपकी कुछ भी सेवा नहीं की, किंतु उसको आपने उत्तम वर दिया। इस ब्राह्मणने श्रद्धासे आपकी बहुत सेवा की, किंतु उसको आपने आशीर्वादके रूपमें शाप ही दिया—ऐसा आपने

क्यों किया ?

भगवान्‌ने कहा—नारद ! वर्षभर मछली पकड़नेसे जितना पाप होता है, उतना ही एक दिन हल जोतनेसे होता है। वह सीरभद्र वैश्य अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ इसी कृषि-कार्यमें लगा हुआ है, वह नरकमें जायगा, अतः हमने न तो उसके घरमें विश्राम किया और न भोजन ही किया। इस ब्राह्मणके घरमें भोजन और विश्राम किया। इस ब्राह्मणको ऐसा आशीर्वाद दिया है कि जिससे यह जगज्जालमें न फँसकर मुक्तिको प्राप्त करे।

इस प्रकार मार्गमें बातचीत करते हुए वे दोनों कान्यकुब्ज देशके समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक अतिशय रम्य सरोवर देखा। उस सरोवरकी शोभा देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए।

भगवान्‌ने कहा—नारद ! यह उत्तम तीर्थस्थान है। इसमें स्नान करना चाहिये, फिर कन्नौज नामके नगरमें चलेंगे इतना कहकर भगवान् उस सरोवरमें स्नान कर शीघ्र ही बाहर आ गये।

तदनन्तर नारदजी भी स्नान करनेके लिये सरोवरमें प्रविष्ट हुए। स्नान सम्पन्न कर जब वे बाहर निकले, तब उन्होंने अपनेको दिव्य कन्याके रूपमें देखा। उस कन्याके विशाल नेत्र थे। चन्द्रमाके समान मुख था, वह सर्वाङ्ग-सुन्दरी कन्या दिव्य शुभलक्षणोंसे सम्पन्न थी। अपनी सुन्दरतासे संसारको व्यामोहित कर रही थी। जिस प्रकार समुद्रसे सम्पूर्ण रूपकी निधान लक्ष्मी निकली थीं, उसी प्रकार सरोवरसे स्नानके बाद नारदजी स्त्रीके रूपमें निकले। भगवान् अन्तर्धान हो गये। वह स्त्री भी अपने झुंडसे भ्रष्ट अकेली हरिणीकी तरह भयभीत होकर इधर-उधर देखने लगी। इसी समय अपनी सेनाओंके साथ राजा तालध्वज वहाँ आया और उस सुन्दरीको देखकर सोचने लगा कि यह कोई देवस्त्री है या अप्सरा ? फिर बोला—'बाले ! तुम कौन हो, कहाँसे आयी हो ?' उस कन्याने कहा—'मैं माता-पितासे रहित और निराश्रय हूँ। मेरा विवाह भी नहीं हुआ है, अब आपकी ही शरणमें हूँ।' इतना सुनते ही प्रसन्नचित्त हो राजा उसे घोड़ेपर बैठाकर राजधानी पहुँचा और विधिपूर्वक उससे विवाह कर लिया। तेरहवें वर्षमें वह गर्भवती हुई। समय पूर्ण होनेपर उससे एक तुंबी (लौकी) उत्पन्न हुई, जिसमें पचास छोटे-छोटे दिव्य शरीरवाले युद्धमें कुशल बलशाली बालक थे, उसने उनको घृतकुण्डमें छोड़ दिया, कुछ दिन बाद पुत्र और पौत्रोंकी खूब वृद्धि हो गयी। वे महान् अहंकारी, परस्पर-विरोधी और राज्यकी कामना करनेवाले थे। अनन्तर राज्यके लोभसे कौरव और पाण्डवोंकी तरह परस्पर युद्ध करके समुद्रकी लहरोंकी भाँति लड़ते हुए वे सभी नष्ट हो गये। वह स्त्री अपने वंशका इस प्रकार संहार देखकर छाती पीटकर करुणापूर्वक विलाप करती हुई मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी। राजा भी शोकसे पीड़ित हो रोने लगा।

इसी समय ब्राह्मणका रूप धारणकर भगवान् विष्णु द्विजोंके साथ वहाँ आये और राजा तथा रानीको उपदेश देने लगे—'यह विष्णुकी माया है। तुमलोग व्यर्थ ही रो रहे हो। सम्पूर्ण प्राणियोंकी अन्तमें यही स्थिति होती है। विष्णुमाया ही ऐसी है कि उसके द्वारा सैकड़ों चक्रवर्ती और हजारों इन्द्र उसी तरह नष्ट कर दिये गये हैं जैसे दीपकको प्रचण्ड वायु विनष्ट कर देती है। समुद्रको सुखानेके लिये भूमिको पीसकर चूर्ण कर डालनेकी तथा पर्वतको पीठपर उठानेकी सामर्थ्य रखनेवाले पुरुष भी कालके कराल मुखमें चले गये हैं। त्रिकूट पर्वत जिसका दुर्ग था, समुद्र जिसकी खाई थी, ऐसी लंका जिसकी राजधानी थी, राक्षसगण जिसके योद्धा थे, सभी शास्त्रों और वेदोंको जाननेवाले शुक्राचार्य जिसके लिये मन्त्रणा करते थे, कुबेरके धनको भी जिसने जीत लिया था, ऐसा रावण भी दैववश नष्ट हो गया[1]। युद्धमें, घरमें, पर्वतपर, अग्निमें, गुफामें अथवा समुद्रमें कहीं भी कोई जाय, वह कालके कोपसे नहीं बच सकता। भावी होकर ही रहती है। पातालमें जाय, इन्द्रलोकमें जाय, मेरु पर्वतपर चढ़ जाय, मन्त्र, औषध, शस्त्र आदिसे भी कितनी भी अपनी रक्षा करे, किंतु जो होना होता है, वह होता ही है—इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है। मनुष्योंके भाग्यानुसार जो भी शुभ और अशुभ होना है, वह अवश्य ही होता है। हजारों उपाय करनेपर भी

१-दुर्गस्त्रिकूटः परिखा समुद्रो रक्षांसि योधा धनदाच्च वित्तम्।
शास्त्रं च यस्यौशनसा प्रणीतं स रावणो दैववशाद् विपन्नः॥ (उत्तरपर्व ४।९३)

भावी किसी भी प्रकार नहीं टल सकती[1]। कोई शोक-विह्वल होकर आँसू टपकाता है, कोई रोता है, कोई बड़ी प्रसन्नतासे नाचता है, कोई मनोहर गीत गाता है, कोई धनके लिये अनेक उपाय करता है, इस तरह अनेक प्रकारके जालकी रचना करता रहता है, अतः यह संसार एक नाटक है और सभी प्राणिवर्ग उस नाटकके पात्र हैं।'

इतना उपदेश देकर भगवान्‌ने रानीका हाथ पकड़कर कहा—'नारदजी ! तुमने विष्णुकी माया देख ली। उठो ! अब स्नानकर अपने पुत्र-पौत्रोंको अर्घ्य देकर और्ध्वदैहिक कृत्य करो। यह माया विष्णुने स्वयं निर्मित की है।' इतना कहकर उसी पुण्यतीर्थमें नारदको स्नान कराया। स्नान करते ही स्त्री-रूपको छोड़कर नारदमुनिने अपना रूप धारण कर लिया। राजाने भी अपने मन्त्री और पुरोहितोंके साथ देखा कि जटाधारी, यज्ञोपवीतधारी, दण्ड-कमण्डलु लिये, वीणा धारण किये हुए, खड़ाऊँके ऊपर स्थित एक तेजस्वी मुनि हैं, यह मेरी रानी नहीं है। उसी समय भगवान् नारदका हाथ पकड़कर आकाश-मार्गसे क्षणमात्रमें श्वेतद्वीप आ गये।

भगवान्‌ने नारदसे कहा—देवर्षि नारदजी ! आपने मेरी माया देख ली। नारदके देखते-देखते ऐसा कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये। देवर्षि नारदजीने भी हँसकर उन्हें प्रणाम किया और भगवान्‌की आज्ञा प्राप्त कर तीनों लोकोंमें घूमने लगे। महाराज ! इस विष्णुमायाका हमने संक्षेपमें वर्णन किया। इस मायाके प्रभावसे संसारके जीव, पुत्र, स्त्री, धन आदिमें आसक्त हो रोते-गाते हुए अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करते हैं।

(अध्याय ३)

संसारके दोषोंका वर्णन

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! यह जीव किस कर्मसे देवता, मनुष्य और पशु आदि योनियोंमें उत्पन्न होता है ? बालभावमें कैसे पुष्ट होता है और किस कर्मसे युवा होता है ? किस कर्मके फलस्वरूप अतिशय भयंकर दारुण गर्भवासका कष्ट सहन करता है ? गर्भमें क्या खाता है ? किस कर्मसे रूपवान्, धनवान्, पण्डित, पुत्रवान्, त्यागी और कुलीन होता है ? किस कर्मसे रोगरहित जीवन व्यतीत करता है ? कैसे सुखपूर्वक मरता है ? शुभ और अशुभ फलका भोग कैसे करता है ? हे विमलमते ! ये सभी विषय मुझे बहुत ही गहन मालूम होते हैं ?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! उत्तम कर्मोंसे देवयोनि, मिश्रकर्मसे मनुष्ययोनि और पाप-कर्मोंसे पशु आदि योनियोंमें जन्म होता है। धर्म और अधर्मके निश्चयमें श्रुति ही प्रमाण है। पापसे पापयोनि और पुण्यसे पुण्ययोनि प्राप्त होती है।[2]

ऋतुकालके समय दोषरहित शुक्र वायुसे प्रेरित स्त्रीके रक्तके साथ मिलकर एक हो जाता है। शुक्रके साथ ही कर्मोंके अनुसार प्रेरित जीवयोनिमें प्रविष्ट होता है। एक दिनमें शुक्र और शोणित मिलकर कलल बनता है। पाँच रातमें वह कलल बुद्बुद हो जाता है। सात रातमें बुद्बुद मांसपेशी बन जाता है। चौदह दिनोंमें वह मांसपेशी मांस और रुधिरसे व्याप्त होकर दृढ़ हो जाता है। पचीस दिनोंमें उसमें अङ्कुर निकलते हैं। एक महीनमें उन अङ्कुरोंके पाँच-पाँच भाग— ग्रीवा, सिर, कंधे, पृष्ठवंश तथा उदर हो जाते हैं। चार मासमें वही अङ्कुरोंका भाग अँगुली बन जाता है। पाँच महीनेमें मुख, नासिका और कान बनते हैं। छः महीनेमें दन्तपंक्तियाँ, नख और कानके छिद्र बनते हैं। सातवें महीनेमें गुदा, लिङ्ग अथवा योनि और नाभि बनते हैं, संधियाँ उत्पन्न होती हैं और अङ्गोंमें संकोच भी होता है। आठवें महीनेमें अङ्ग-प्रत्यङ्ग सब पूर्ण हो जाते हैं और सिरमें केश भी आ जाते हैं। माताके भोजनका रस नाभिके द्वारा बालकके शरीरमें पहुँचता रहता है, उसीसे उसका पोषण होता है। तब गर्भमें स्थित जीव सब सुख-दुःख समझता है और यह विचार करता है कि 'मैंने अनेक योनियोंमें जन्म लिया और बारंबार मृत्युके अधीन हुआ और अब जन्म

१-पातालमाविशतु यातु सुरेन्द्रलोकमारोहतु क्षितिधराधिपतिं सुमेरुम्।
मन्त्रौषधिप्रहरणैश्च करोतु रक्षां यद्भावि तद्भवति नात्र विभावितोऽस्मि ॥ (उत्तरपर्व ४ । ९५)

२-शुभैर्देवत्वमाप्नोति मिश्रैर्मानुषतां व्रजेत्। अशुभैः कर्मभिर्जन्तुस्तिर्यग्योनिषु जायते ॥
प्रमाणं श्रुतिरेवात्र धर्माधर्मविनिश्चये। पापं पापेन भवति पुण्यं पुण्येन कर्मणा ॥ (उत्तरपर्व ४ । ६-७)

होते ही फिर संसारके बन्धनको प्राप्त करूँगा।' इस प्रकार गर्भमें विचारता और मोक्षका उपाय सोचता हुआ जीव अतिशय दुःखी रहता है। पर्वतके नीचे दब जानेसे जितना क्लेश जीवको होता है, उतना ही जरायुसे वेष्टित अर्थात् गर्भमें होता है। समुद्रमें डूबनेसे जो दुःख होता है, वही दुःख गर्भके जलमें भी होता है, तप्त लोहेके खम्भेसे बाँधनेमें जीवको जो क्लेश होता है वही गर्भमें जठराग्निके तापसे होता है। तपायी हुई सूइयोंसे बेधनेपर जो व्यथा होती है, उससे आठ गुना अधिक गर्भमें जीवको कष्ट होता है। जीवोंके लिये गर्भवाससे अधिक कोई दुःख नहीं है। उससे भी कोटि गुना दुःख जन्म लेते समय होता है, उस दुःखसे मूर्च्छा भी आ जाती है। प्रबल प्रसव-वायुकी प्रेरणासे जीव गर्भके बाहर निकलता है। जिस प्रकार कोल्हूमें पीडन करनेसे तिल निस्सार हो जाते हैं, उसी प्रकार शरीर भी योनियन्त्रके पीडनसे निस्तत्त्व हो जाता है। मुखरूप जिसका द्वार है, दोनों ओष्ठ कपाट हैं, सभी इन्द्रियाँ गवाक्ष अर्थात् झरोखे हैं, दाँत, जिह्वा, गला, वात, पित्त, कफ, जरा, शोक, काम, क्रोध, तृष्णा, राग, द्वेष आदि जिसमें उपकरण हैं, ऐसे इस देह-रूप अनित्य गृहमें नित्य आत्माका निवास-स्थान है। शुक्र-शोणितके संयोगसे शरीर उत्पन्न होता है और नित्य ही मूत्र, विष्ठा आदिसे भरा रहता है। इसलिये यह अत्यन्त अपवित्र है। जिस प्रकार विष्ठासे भरा हुआ घट बाहर धोनेसे शुद्ध नहीं होता, इसी प्रकार यह देह भी स्नान आदिके द्वारा पवित्र नहीं हो सकता। पञ्चगव्य आदि पवित्र पदार्थ भी इसके संसर्गसे अपवित्र हो जाते हैं। इससे अधिक और कौन अपवित्र पदार्थ होगा। उत्तम भोजन, पान आदि देहके संसर्गसे मलरूप हो जाते हैं, फिर देहकी अपवित्रताका क्या वर्णन करें। देहको बाहरसे जितना भी शुद्ध करें, भीतर तो कफ, मूत्र, विष्ठा आदि भरे ही रहेंगे। सुगन्धित तेल देहमें मलते रहें, परंतु कभी इस देहकी मलिनता कम नहीं होती। यह आश्चर्य है कि मनुष्य अपने देहका दुर्गन्ध सूँघकर, नित्य अपना मल-मूत्र देखकर और नासिकाका मल निकालकर भी इस देहसे विरक्त नहीं होता और उसे देहसे घृणा उत्पन्न नहीं होती। यह मोहका ही प्रभाव है कि शरीरके दोष और दुर्गन्ध देख-सूँघकर भी इससे ग्लानि नहीं होती। यह शरीर स्वभावतः अपवित्र है। यह केलेके वृक्षकी भाँति केवल त्वक् आदिसे आवृत और निस्सार है। जन्म होते ही बाहरकी वायुके स्पर्शसे पूर्वजन्मोंका ज्ञान नष्ट हो जाता है और पुनः संसारके व्यवहारमें आसक्त हो अनेक दुष्कर्ममें रत हो जाता है और अपनेको तथा परमेश्वरको भूल जाता है। आँख रहते हुए भी नहीं देख पाता, बुद्धि रहते हुए भी भले-बुरेका निर्णय नहीं कर पाता। राग तथा लोभ आदिके वशीभूत होकर वह संसारमें दुःख प्राप्त करता रहता है। सूखे मार्गमें भी पैर फिसलते हैं, यह सब मोहकी ही महिमा है। दिव्यदर्शी महर्षियोंने इस गर्भका वृत्तान्त विस्तृत रूपसे वर्णन किया है। इसे सुनकर भी मनुष्यको वैराग्य उत्पन्न नहीं होता और अपने कल्याणका मार्ग नहीं सोचता—यह बड़ा ही आश्चर्य है।

बाल्यावस्थामें भी केवल दुःख ही है। बालक अपना अभिप्राय भी नहीं कह सकता और जो चाहता है, वह नहीं कर पाता, वह असमर्थ रहता है। इससे नित्य व्याकुल रहता है। दाँत आनेके समय बालक बहुत क्लेश भोगता है और भाँति-भाँतिके रोग तथा बालग्रह उसे सताते रहते हैं। वह क्षुधा-तृष्णासे पीड़ित होता रहता है, मोहसे विष्ठा आदिका भी भक्षण करने लगता है। कुमारावस्थामें कर्ण-वेधके समय दुःख होता है। अक्षरारम्भके समय गुरुसे भी बड़ा ही भय होता है। माता-पिता ताडन करते हैं।

युवावस्थामें भी सुख नहीं है। अनेक प्रकारकी ईर्ष्या मनमें उपजती है। मनुष्य मोहमें लीन हो जाता है। राग आदिमें आसक्त होनेके कारण दुःख होता है, रात्रिको नींद नहीं आती और धनकी चिन्तासे दिनमें भी चैन नहीं पड़ता। स्त्री-संसर्गमें भी कोई सुख नहीं। कुष्ठी व्यक्तिके कोढ़में कीड़े पड़ जानेपर जो खुजलाहट होती है, उसे खुजलानेमें जितना आनन्द होता है, उससे अधिक कामी व्यक्तिको स्त्रीसे सुख नहीं मिलता।[1]

१-अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद् बाल्ये दुःखं महत्पुनः। इच्छन्नपि न शक्नोति कर्तुं वक्तुं च सत्क्रियाम्॥
दन्तोत्थाने महद्दुःखं मौलेन व्याधिना तथा। बालरोगैश्च विविधैः पीडा बालग्रहैरपि॥
क्रिमिभिस्तुद्यमानस्य कुष्ठिनः कामिनस्तथा। कण्डूयनाग्नितापेन यद्भवेत् स्त्रीषु तद्धि तत्॥
(उत्तरपर्व ४। ६३-६४, ७१)

इस तरह विचार करनेपर मालूम होता है कि स्त्रीमें कोई सुख नहीं है।

व्यक्ति मान-अपमानके द्वारा, युवावस्था-वृद्धावस्थाके द्वारा और संयोग-वियोगके द्वारा ग्रस्त है, तो फिर निर्विवाद सुख कहाँ? जो यौवनके कारण स्त्री-पुरुषोंके शरीर परस्पर प्रिय लगते हैं, वही वार्धक्यके कारण घृणित प्रतीत होते हैं। वृद्ध हो जाने, शरीरके काँपने और सभी अङ्गोंके जर्जर एवं शिथिल हो जानेपर वह सभीको अप्रिय लगता है। जो युवावस्थाके बाद वार्धक्यमें अपनेमें भारी परिवर्तन और अपनी शक्तिहीनताको देखकर विरक्त नहीं होता—धर्म और भगवान्‌की ओर प्रवृत्त नहीं होता, उससे बढ़कर मूर्ख कौन हो सकता है?

बुढ़ापेमें जब पुत्र-पौत्र, बान्धव, दुराचारी नौकर आदि अवज्ञा—उपेक्षा करते हैं, तब अत्यन्त दुःख होता है। बुढ़ापेमें वह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-सम्बन्धी कार्योंको सम्पन्न करनेमें असमर्थ रहता है। इसमें वात, पित्त आदिकी विषमतासे अर्थात् न्यूनता-अधिकता होनेसे अनेक प्रकारके रोग होते रहते हैं। इसलिये यह शरीर रोगोंका घर है। ये दुःख प्रायः सभीको समय-समयपर अनुभूत होते ही हैं, फिर उसमें विशेष कहनेकी आवश्यकता ही क्या?

वास्तवमें शरीरमें सैकड़ों मृत्युके स्थान हैं, जिनमें एक तो साक्षात् मृत्यु या काल है, दूसरे अन्य आने-जानेवाली भयंकर आधि-व्याधियाँ हैं, जो आधी मृत्युके समान हैं। आने-जानेवाली आधि-व्याधियाँ तो जप-तप एवं औषध आदिसे टल भी जाती हैं, परंतु काल—मृत्युका कोई उपाय नहीं है। रोग, सर्प, शस्त्र, विष तथा अन्य घात करनेवाले बाघ, सिंह, दस्यु आदि प्राणिवर्ग ये सब भी मृत्युके द्वार ही हैं। किंतु जब रोग आदिके रूपमें साक्षात् मृत्यु पहुँच जाती है तो देव-वैद्य धन्वन्तरि भी कुछ नहीं कर पाते। औषध, तन्त्र, मन्त्र, तप, दान, रसायन, योग आदि भी कालसे ग्रस्त व्यक्तिकी रक्षा नहीं कर सकते। सभी प्राणियोंके लिये मृत्युके समान न कोई रोग है, न भय, न दुःख है और न कोई शंकाका स्थान अर्थात् केवल एकमात्र मृत्युसे ही सारे भय आदि आशंकाएँ हैं। मृत्यु पुत्र, स्त्री, मित्र, राज्य, ऐश्वर्य, धन आदि सबसे वियुक्त करा देती है और बद्धमूल वैर भी मृत्युसे निवृत्त हो जाते हैं।

पुरुषकी आयु सौ वर्षोंकी कही गयी है, परंतु कोई अस्सी वर्ष जीता है कोई सत्तर वर्ष। अन्य लोग अधिक-से-अधिक साठ वर्षतक ही जीते हैं और बहुत-से तो इससे पहले ही मर जाते हैं। पूर्वकर्मानुसार मनुष्यकी जितनी आयु निश्चित है, उसका आधा समय तो रात्रि ही सोनेमें हर लेती है। बीस वर्ष बाल्य और बुढ़ापेमें व्यर्थ चले जाते हैं। युवा-अवस्थामें अनेक प्रकारकी चिन्ता और कामकी व्यथा रहती है। इसलिये वह समय भी निरर्थक ही चला जाता है। इस प्रकार यह आयु समाप्त हो जाती है और मृत्यु आ पहुँचती है। मरणके समय जो दुःख होता है, उसकी कोई उपमा नहीं। हे मातः! हे पितः! हे कान्त! आदि चिल्लाते व्यक्तिको भी मृत्यु वैसे ही पकड़ ले जाती है, जैसे मेढकको सर्प पकड़ लेता है। व्याधिसे पीड़ित व्यक्ति खाटपर पड़ा इधर-उधर हाथ-पैर पटकता रहता है और साँस लेता रहता है। कभी खाटसे भूमिपर और कभी भूमिसे खाटपर जाता है, परंतु कहीं चैन नहीं मिलता। कण्ठमें घर्र-घर्र शब्द होने लगता है। मुख सूख जाता है। शरीर मूत्र, विष्ठा आदिसे लिप्त हो जाता है। प्यास लगनेपर जब वह पानी माँगता है, तो दिया हुआ पानी भी कण्ठतक ही रह जाता है। वाणी बंद हो जाती है, पड़ा-पड़ा चिन्ता करता रहता है कि मेरे धनको कौन भोगेगा? मेरे कुटुम्बकी रक्षा कौन करेगा? इस तरह अनेक प्रकारकी यातना भोगता हुआ मनुष्य मरता है और जीव इस देहसे निकलते ही जोंककी तरह दूसरे शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है।

मृत्युसे भी अधिक दुःख विवेकी पुरुषोंको याचना अर्थात् माँगनेमें होता है। मृत्युमें तो क्षणिक दुःख होता है, किंतु याचनासे तो निरन्तर ही दुःख होता है। देखिये, भगवान् विष्णु भी बलिसे माँगते ही वामन (अत्यन्त छोटे) हो गये। फिर और दूसरा है ही कौन जिसकी प्रतिष्ठा याचनासे न घटे। आदि, मध्य और अन्तमें दुःखकी ही परम्परा है। अज्ञानवश मनुष्य दुःखोंको झेलता हुआ कभी आनन्द नहीं प्राप्त करता। बहुत खाये तो दुःख, थोड़ा खाये तो दुःख, किसी समय भी सुख नहीं है। क्षुधा सब रोगोंमें प्रबल है और वह अन्नरूपी ओषधिके सेवनसे थोड़ी देरके लिये शान्त हो जाती है, परंतु अन्न भी परम सुखका साधन नहीं है। प्रातः उठते ही मूत्र, विष्ठा आदिकी बाधा, मध्याह्नमें क्षुधा-तृषाकी पीड़ा और पेट

भरनेपर कामकी व्यथा होती है। रात्रिको निद्रा दुःख देती है। धनके सम्पादनमें दुःख, सम्पादित धनकी रक्षा करनेमें दुःख, फिर उसके व्यय करनेमें अतिशय दुःख होता है। इससे धन भी सुखदायक नहीं है। चोर, जल, अग्नि, राजा और स्वजनोंसे भी धनवालोंको अधिक भय रहता है। मांसको आकाशमें फेंकनेपर पक्षी, भूमिपर कुत्ते आदि जीव और जलमें मछली आदि खा जाते हैं, इसी प्रकार धनवान्‌की भी सर्वत्र यही स्थिति होती है। सम्पत्तिके अर्जन करनेमें दुःख, सम्पत्तिकी प्राप्तिके बाद मोहरूपी दुःख और नाश हो जानेपर तो अत्यन्त दुःख होता ही है, इसलिये किसी भी कालमें धन सुखका साधन नहीं है। धन आदिकी कामनाएँ ही दुःखका परम कारण हैं, इसके विपरीत कामनाओंसे निःस्पृह रहना परम सुखका मूल है[1]।

हेमन्त ऋतुमें शीतका दुःख, ग्रीष्ममें दारुण तापका दुःख और वर्षा ऋतुमें झंझावात तथा वर्षाका दुःख होता है। इसलिये काल भी सुखदायक नहीं है। विवाहमें दुःख और पतिके विदेश-गमनमें दुःख, स्त्री गर्भवती हो तब दुःख, प्रसवके समय दुःख, संतानके दन्त, नेत्र आदिकी पीड़ासे दुःख। इस प्रकार स्त्री भी सदा व्याकुल रहती है। कुटुम्बियोंको यह चिन्ता रहती है कि गौ नष्ट हो गयी, खेती सूख गयी, नौकर चला गया, घरमें मेहमान आया है, स्त्रीके अभी संतान हुई है, इसके लिये रसोई कौन बनायेगा, कन्याके विवाह आदिकी चिन्ता—इस प्रकार हजारों चिन्ताएँ कुटुम्बियोंके कारण लगी रहती हैं, जिनसे उनके शील, शुद्ध बुद्धि और सम्पूर्ण गुण नष्ट हो जाते हैं, जिस तरह कच्चे घड़ेमें जल डालते ही घटके साथ जल नष्ट हो जाता है, उसी तरह गुणोंसहित कुटुम्बी मनुष्यका देह नष्ट हो जाता है।

राज्य भी सुखका साधन नहीं है। जहाँ नित्य सन्धि-विग्रहकी चिन्ता लगी रहती है और पुत्रसे भी राज्यके ग्रहणका भय बना रहता है, वहाँ सुखका लेश भी नहीं है। अपनी जातिसे भी सबको भय होता है। जिस प्रकार एक मांस-खण्डके अभिलाषी कुत्तोंको परस्पर भय रहता है, वैसे ही संसारमें कोई सुखी नहीं है। ऐसा कोई राजा नहीं जो सबको जीतकर सुखपूर्वक राज्य करे, प्रत्येकको दूसरेसे भय रहता है। इतना कहकर श्रीकृष्णभगवान्‌ने पुनः कहा कि 'महाराज! यह कर्ममय शरीर जन्मसे लेकर अन्ततक दुःखी ही है। जो पुरुष जितेन्द्रिय हैं और व्रत, दान तथा उपवास आदिमें तत्पर रहते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं।'

(अध्याय ४)

विविध प्रकारके पापों एवं पुण्य-कर्मोंका फल

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! अधम कर्म करनेसे जीव घोर नरकमें गिरते हैं और अनेक प्रकारकी यातनाएँ भोगते हैं। उस अधम कर्मको ही पाप और अधर्म कहते हैं। चित्तवृत्तिके भेदसे अधर्मका भेद जानना चाहिये। स्थूल, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म आदि भेदोंके द्वारा करोड़ों प्रकारके पाप हैं। परंतु यहाँ मैं केवल बड़े-बड़े पापोंका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ—परस्त्रीका चिन्तन, दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन और अकार्य (कुकर्म) में अभिनिवेश—ये तीन प्रकारके मानस पाप हैं। अनियन्त्रित प्रलाप, अप्रिय, असत्य, परनिन्दा और पिशुनता अर्थात् चुगली—ये पाँच वाचिक पाप हैं। अभक्ष्य-भक्षण, हिंसा, मिथ्या कामसेवन (असंयमित जीवन व्यतीत करना) और परधन-हरण—ये चार कायिक पाप हैं। इन बारह कर्मोंके करनेसे नरककी प्राप्ति होती है। इन कर्मोंके भी अनेक भेद होते हैं। जो पुरुष संसाररूपी सागरसे उद्धार करनेवाले महादेव अथवा भगवान् विष्णुसे द्वेष रखते हैं, वे घोर नरकमें पड़ते हैं। ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्णकी चोरी और गुरु-पत्नीगमन—ये चार महापातक हैं। इन पातकोंको करने-वालोंके सम्पर्कमें रहनेवाला मनुष्य पाँचवाँ महापातकी गिना

१-अर्थस्योपार्जने दुःखमर्जितस्यापि रक्षणे। आये दुःखं व्यये दुःखमर्थेभ्यश्च कुतः सुखम्॥
चौरेभ्यः सलिलादग्नेः स्वजनात् पार्थिवादपि। भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणभृतामिव॥
खे यातं पक्षिभिर्मांसं भक्ष्यते श्वापदैर्भुवि। जले च भक्ष्यते मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वित्तवान्॥
विमोहयन्ति सम्पत्सु तापयन्ति विपत्तिषु। खेदयन्त्यर्जनाकाले कदा ह्यर्थाः सुखावहाः॥
यथार्थपतिरुद्विग्नो यश्च सर्वार्थनिःस्पृहः। यतश्चार्थपतिर्दुःखी सुखी सर्वार्थनिःस्पृहः॥
(उत्तरपर्व ४। १२१—१२५)

जाता है। ये सभी नरकमें जाते हैं।

अब मैं उपपातकोंका वर्णन करता हूँ। ब्राह्मणको कोई पदार्थ देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर नहीं देना, ब्राह्मणका धन हरण करना, अत्यन्त अहंकार, अतिक्रोध, दाम्भिकत्व, कृतघ्नता, कृपणता, विषयोंमें अतिशय आसक्ति, अच्छे पुरुषोंसे द्वेष, परस्त्रीहरण, कुमारीगमन, स्त्री, पुत्र आदिको बेचना, स्त्री-धनसे निर्वाह करना, स्त्रीकी रक्षा न करना, ऋण लेकर न चुकाना; देवता, अग्नि, साधु, गौ, ब्राह्मण, राजा और पतिव्रताकी निन्दा करना आदि उपपातक हैं। इन पापोंको करनेवाले पुरुषोंका जो संसर्ग करते हैं वे भी पातकी होते हैं। इस प्रकार पाप करनेवाले मनुष्योंको मृत्युके बाद यमराज नरकमें ले जाते हैं। जो भूलसे पाप करते हैं, उनको गुरुजनोंकी आज्ञाके अनुसार प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो मन, वचन, कर्मसे पाप करते हैं एवं दूसरोंसे कराते हैं अथवा पाप करते हुए पुरुषोंका अनुमोदन करते हैं, वे सभी नरकमें जाते हैं और जो उत्तम कर्म करते हैं, वे स्वर्गमें सुखसे आनन्द भोगते हैं। अशुभ कर्मोंका अशुभ फल और शुभ कर्मोंका शुभ फल होता है।

महाराज! यमराजकी सभामें सबके शुभ-अशुभ कर्मोंका विचार चित्रगुप्त आदि करते हैं। जीवको अपने कर्मानुसार फल भोगना पड़ता है। इसलिये शुभ कर्म ही करना चाहिये। किये गये कर्मका फल बिना भोगे किसी प्रकार नष्ट नहीं होता। धर्म करनेवाले सुखपूर्वक परलोक जाते हैं और पापी अनेक प्रकारके दुःखका भोग करते हुए यमलोक जाते हैं। इसलिये सदा धर्म ही करना चाहिये। जीव छियासी हजार योजन चलकर वैवस्वतपुरमें पहुँचता है। पुण्यात्माओंको इतना बड़ा मार्ग निकट ही जान पड़ता है और पापियोंके लिये बहुत लम्बा हो जाता है। पापी जिस मार्गसे चलते हैं, उसमें तीखे काँटे, कंकड़, पत्थर, कीचड़, गड्ढे और तलवारकी धारके समान तीक्ष्ण पत्थर पड़े रहते हैं और लोहेकी सुइयाँ बिखरी रहती हैं। उस मार्गमें कहीं अग्नि, कहीं सिंह, कहीं व्याघ्र और कहीं-कहीं मक्षिका, सर्प, वृश्चिक आदि दुष्ट जन्तु घूमते रहते हैं। कहींपर डाकिनी, शाकिनी, रोग और बड़े क्रूर राक्षस दुःख देते रहते हैं। उस मार्गमें न कहीं छाया है और न जल। इस प्रकारके भयंकर मार्गसे यमदूत पापियोंको लोहेकी शृङ्खलासे बाँधकर घसीटते हुए ले जाते हैं। उस समय अपने बन्धु आदिसे रहित वे प्राणी अपने कर्मोंको सोचते हुए रोते रहते हैं। भूख और प्यासके मारे उनके कण्ठ, तालु और ओष्ठ सूख जाते हैं। भयंकर यमदूत उन्हें बार-बार ताडित करते हैं और पैरोंमें अथवा चोटीमें साँकलसे बाँधकर खींचते हुए ले जाते हैं। इस प्रकार दुःख भोगते-भोगते वे यमलोकमें पहुँचते हैं और वहाँ अनेक यातनाएँ भोगते हैं।

पुण्य करनेवाले उत्तम मार्गसे सुखपूर्वक पहुँचकर सौम्य-स्वरूप धर्मराजका दर्शन करते हैं और वे उनका बहुत आदर करते हैं, वे कहते हैं कि महात्माओ! आपलोग धन्य हैं, दूसरोंका उपकार करनेवाले हैं। आपने दिव्य सुखकी प्राप्तिके लिये बहुत पुण्य किया है। इसलिये इस उत्तम विमानपर चढ़कर स्वर्गको जायँ। पुण्यात्मा यमराजको प्रसन्नचित्त अपने पिताकी भाँति देखते हैं, परंतु पापी लोग उन्हें भयानक रूपमें देखते हैं। यमराजके समीप ही कालाग्निके समान क्रूर कृष्ण-वर्ण मृत्युदेव विराजमान रहते हैं और कालकी भयंकर शक्तियाँ तथा अनेक प्रकारके रूप धारण किये सम्पूर्ण रोग वहाँ बैठे दिखायी देते हैं। कृष्णवर्णके असंख्य यमदूत अपने हाथोंमें शक्ति, शूल, अङ्कुश, पाश, चक्र, खड्ग, वज्र, दण्ड आदि शस्त्र धारण किये वहाँ स्थित रहते हैं। पापी जीव यमराजको इस रूपमें स्थित देखते हैं और यमराजके समीप बैठे हुए चित्रगुप्त उनकी भर्त्सना करके कहते हैं कि पापियो! तुमने ऐसे बुरे कर्म क्यों किये? तुमने पराया धन अपहरण किया है, रूपके गर्वसे पर-स्त्रियोंका सम्पर्क किया है, और भी अनेक प्रकारके पातक-उपपातक तुमने किये हैं। अब उन कर्मोंका फल भोगो। अब कोई तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। इस प्रकार पापी राजाओंका तर्जनकर चित्रगुप्त यमदूतको आज्ञा देते हैं कि इनको ले जाकर नरकोंकी अग्निमें डाल दो।

सातवें पातालमें घोर अन्धकारके बीच अति दारुण अट्ठाईस करोड़ नरक हैं, जिनमें पापी जीव यातना भोगते हैं। यमदूत वहाँ उनको ऊँचे वृक्षोंकी शाखाओंमें टाँग देते हैं और सैकड़ों मन लोहा उनके पैरोंमें बाँध देते हैं। उस बोझसे उनका शरीर टूटने लगता है और वे अपने अशुभ कर्मोंको यादकर रोते और चिल्लाते हैं। तपाये हुए काँटोंसे युक्त लौह-दण्डसे और चाबुकोंसे यमदूत उन्हें बार-बार ताडित करते हैं और साँपोंसे कटवाते हैं। जब उनके देहोंमें घाव हो जाता है तब

उनमें नमक लगाते हैं। कभी उनको उतारकर खौलते हुए तेलमें डालते हैं, वहाँसे निकालकर विष्ठाके कूपमें उनको डुबोते हैं, जिनमें कीड़े काट-काटकर खाते हैं, फिर मेद, रुधिर, पूय आदिके कुण्डोंमें उनको ढकेल देते हैं। जहाँ लोहेकी चोंचवाले काक और श्वान आदि जीव उनका मांस नोच-नोच कर खाते हैं। कभी उनको तीक्ष्ण शूलोंमें पिरोते हैं।

अभक्ष्य-भक्षण और मिथ्या भाषण करनेवाली जिह्वाको बहुत दण्ड मिलता है। जो पुरुष माता, पिता और गुरुको कठोर वचन बोलते हैं, उनके मुखमें जलते हुए अंगारे भर दिये जाते हैं और घावोंमें नमक भरकर खौलता हुआ तेल डाल दिया जाता है। जो अतिथिको अन्न-जल दिये बिना उसके सम्मुख ही स्वयं भोजन करते हैं, वे इक्षुकी तरह कोल्हूमें पेरे जाते हैं तथा वे असिताल वन नामक नरकमें जाते हैं। इस प्रकार अनेक क्लेश भोगते रहनेपर भी उनके प्राण नहीं निकलते। जिसने परनारीके साथ संग किया हो, यमदूत उसे तप्त लोहेकी नारीसे आलिङ्गन कराते हैं और पर-पुरुषगामिनी स्त्रीको तप्त लौह पुरुषसे लिपटाते हैं और कहते हैं कि 'दुष्टे ! जिस प्रकार तुमने अपने पतिका परित्याग कर पर-पुरुषका आलिङ्गन किया, उसी प्रकारसे इस लौह-पुरुषका भी आलिङ्गन करो।' जो पुरुष देवालय, बाग, वापी, कूप, मठ आदिको नष्ट करते हैं और वहाँ रहकर मैथुन आदि अनेक प्रकारके पाप करते हैं, यमदूत उनको अनेक प्रकारके यन्त्रोंसे पीडित करते हैं और वे जबतक चन्द्र-सूर्य हैं, तबतक नरककी अग्निमें पड़े जलते रहते हैं। जो गुरुकी निन्दा श्रवण करते हैं, उनके कानोंको दण्ड मिलता है। इस प्रकार जिन-जिन इन्द्रियोंसे मनुष्य पाप करते हैं, वे इन्द्रियाँ कष्ट पाती हैं। इस प्रकारकी अनेक घोर यातना पापी पुरुष सभी नरकोंमें भोगते हैं। इनका सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं हो सकता। जीव नरकोंमें अनेक प्रकारकी दारुण व्यथा भोगते रहते हैं, परंतु उनके प्राण नहीं निकलते।

इससे भी अधिक दारुण यातनाएँ हैं, मृदुचित्त पुरुष उनको सुनकर ही दहलने लगते हैं। पुत्र, मित्र, स्त्री आदिके लिये प्राणी अनेक प्रकारका पाप करता है, परंतु उस समय कोई सहायता नहीं करता। केवल एकाकी ही वह दुःख भोगता है और प्रलयपर्यन्त नरकमें पड़ा रहता है। यह ध्रुव सिद्धान्त है कि अपना किया पाप स्वयं भोगना पड़ता है। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य शरीरको नश्वर जानकर लेशमात्र भी पाप न करे, पापसे अवश्य ही नरक भोगना पड़ता है। पापका फल दुःख है और नरकसे बढ़कर अधिक दुःख कहीं नहीं है। पापी मनुष्य नरकवासके अनन्तर फिर पृथ्वीपर जन्म लेते हैं। वृक्ष आदि अनेक प्रकारकी स्थावर योनियोंमें वे जन्म ग्रहण करते हैं और अनेक कष्ट भोगते हैं। अनन्तर कीट, पतंग, पक्षी, पशु आदि अनेक योनियोंमें जन्म लेते हुए अति दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाते हैं। स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाले मनुष्य-जन्मको पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे नरक न देखना पड़े। यह मनुष्य-योनि देवताओं तथा असुरोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। धर्मसे ही मनुष्यका जन्म मिलता है। मनुष्य-जन्म पाकर उसे धर्मकी वृद्धि करनी चाहिये। जो अपने कल्याणके लिये धर्मका पालन नहीं करता है, उसके समान मूर्ख कौन होगा ?

यह देश सब देशोंमें उत्तम है। बहुत पुण्यसे प्राणीका जन्म भारतवर्षमें होता है। इस देशमें जन्म पाकर जो अपने कल्याणके लिये पुण्य करता है, वही बुद्धिमान् है। जिसने ऐसा नहीं किया, उसने अपने आत्माके साथ वञ्चना की। जबतक यह शरीर स्वस्थ है, तबतक जो कुछ पुण्य बन सके वह कर लेना चाहिये। बादमें कुछ भी नहीं हो सकता। दिन-रातके बहाने नित्य आयुके ही अंश खण्डित हो रहे हैं। फिर भी मनुष्योंको बोध नहीं होता कि एक दिन मृत्यु आ पहुँचेगी[1]। यह तो किसीको भी निश्चय नहीं है कि किसकी मृत्यु किस समयमें होगी, फिर मनुष्यको क्योंकर धैर्य और सुख मिलता है ? यह जानते हुए कि एक दिन इन सभी सामग्रियोंको छोड़कर अकेले चले जायँगे, फिर अपने हाथसे ही अपनी सम्पत्ति सत्पात्रोंको क्यों नहीं बाँट देते ? मनुष्यके लिये दान ही पाथेय अर्थात् रास्तेके लिये भोजन है। जो दान करते हैं, वे सुखपूर्वक जाते हैं। दानहीन मार्गमें अनेक दुःख पाते हैं, भूखे मरते जाते हैं। इन सब बातोंको विचारकर पुण्य ही करना

१-आयुषः खण्डखण्डानि निपतन्ति तवाग्रतः। अहोरात्रापदेशेन किमर्थं नावबुध्यसे॥ (उत्तरपर्व ६। १९९)

चाहिये, पापसे सदा बचना चाहिये। पुण्य कर्मोंसे देवत्व प्राप्त होता है और पाप करनेसे नरककी प्राप्ति होती है। जो सत्पुरुष सर्वात्मभावसे श्रीसदाशिवकी शरणमें जाते हैं, वे पद्मपत्रपर स्थित जलकी तरह पापोंसे लिप्त नहीं होते। इसलिये द्वन्द्वसे छूटकर भक्तिपूर्वक ईश्वरकी आराधना करनी चाहिये तथा सभी प्रकारके पापोंसे निरन्तर बचना चाहिये। (अध्याय ५-६)

व्रतोपवासकी महिमामें शकटव्रतकी कथा

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मैंने जो भीषण नरकोंका विस्तारसे वर्णन किया है, उन्हें व्रत-उपवासरूपी नौकासे मनुष्य पार कर सकता है। प्राणीको अति दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे पश्चात्ताप न करना पड़े और यह जन्म भी व्यर्थ न जाय और फिर जन्म भी न लेना पड़े। जिस मनुष्यकी कीर्ति, दान, व्रत, उपवास आदिकी परम्परा बनी है, वह परलोकमें उन्हीं कर्मोंके द्वारा सुख भोगता है। व्रत तथा स्वाध्याय न करनेवालेकी कहीं भी गति नहीं है। इसके विपरीत व्रत, स्वाध्याय करनेवाले पुरुष सदा सुखी होते हैं। इसलिये व्रत-स्वाध्याय अवश्य करने चाहिये।

राजन् ! यहाँ एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ—योगको सिद्ध किया हुआ एक सिद्ध अति भयंकर विकृत रूप धारण कर पृथ्वीपर विचरण करता था। उसके लंबे ओंठ, टूटे दाँत, पिङ्गल नेत्र, चपटे कान, फटा मुख, लंबा पेट, टेढ़े पैर और सम्पूर्ण अङ्ग कुरूप थे। उसे मूलजालिक नामके एक ब्राह्मणने देखा और उससे पूछा कि आप स्वर्गसे कब आये और किस प्रयोजनसे यहाँ आपका आगमन हुआ ? क्या आपने देवताओंके चित्तको मोहित करनेवाली और स्वर्गकी अलंकार-स्वरूपिणी रम्भाको देखा है ? अब आप स्वर्गमें जायँ तो रम्भासे कहें कि अवन्तिपुरीका निवासी ब्राह्मण तुम्हारा कुशल पूछता था। ब्राह्मणका वचन सुनकर सिद्धने चकित हो पूछा कि 'ब्राह्मण ! तुमने मुझे कैसे पहचाना ?' तब ब्राह्मणने कहा कि 'महाराज ! कुरूप पुरुषोंके एक-दो अङ्ग विकृत होते हैं, पर आपके सभी अङ्ग टेढ़े और विकृत हैं।' इसीसे मैंने अनुमान किया कि इतना रूप गुप्त किये कोई स्वर्गके निवासी सिद्ध ही हैं। ब्राह्मणका वचन सुनते ही वह सिद्ध वहाँसे अन्तर्धान हो गया और कई दिनोंके बाद पुनः ब्राह्मणके समीप आया और कहने लगा—'ब्राह्मण ! हम स्वर्गमें गये और इन्द्रकी सभामें जब नृत्य हो चुका, उसके बाद मैंने एकान्तमें रम्भासे तुम्हारा संदेश कहा, परंतु रम्भाने यह कहा कि मैं उस ब्राह्मणको नहीं जानती। यहाँ तो उसीका नाम जानते हैं जो निर्मल विद्या, पौरुष, दान, तप, यज्ञ अथवा व्रत आदिसे युक्त होता है। उसका नाम स्वर्गभरमें चिरकालतक स्थिर रहता है।' रम्भाका सिद्धके मुखसे यह वचन सुनकर ब्राह्मणने कहा कि हम शकटव्रतको नियमसे करते हैं, आप रम्भासे कह दीजिये। यह सुनते ही सिद्ध फिर अन्तर्धान हो गया और स्वर्गमें जाकर उसने रम्भासे ब्राह्मणका संदेश कहा और जब उसने उसके गुण वर्णन किये तब रम्भा प्रसन्न होकर कहने लगी—'सिद्ध महाकाल ! मैं वनके निवासी उस शकट ब्रह्मचारीको जानती हूँ। दर्शनसे, सम्भाषणसे, एकत्र निवाससे और उपकार करनेसे मनुष्योंका परस्पर स्नेह होता है, परंतु मुझे उस ब्राह्मणका दर्शन-सम्भाषण आदि कुछ भी नहीं हुआ। केवल नाम-श्रवणसे इतना स्नेह हो गया है।' सिद्धसे इतना कहकर रम्भा इन्द्रके समीप गयी और ब्राह्मणके व्रत आदि करने तथा अपने ऊपर अनुरक्त होनेका वर्णन किया। इन्द्रने भी प्रसन्न हो रम्भासे पूछकर उस उत्तम ब्राह्मणको वस्त्राभूषण आदिसे अलंकृत कर दिव्य विमानमें बैठाकर स्वर्गमें बुलाया और वहाँ सत्कारपूर्वक स्वर्गके दिव्य भोगोंको उसे प्रदान किया। ब्राह्मण चिरकालतक वहाँ दिव्य भोग भोगता रहा। यह शकट-व्रतका माहात्म्य हमने संक्षेपमें वर्णन किया है। दृढ़व्रती पुरुषके लिये राजलक्ष्मी, वैकुण्ठलोक, मनोवाञ्छित फल आदि दुर्लभ पदार्थ भी जगत्‌में सुलभ हैं। इसलिये सदा सत्परायण पुरुषको व्रतमें संलग्न रहना चाहिये। (अध्याय ७)

तिलकव्रतके माहात्म्यमें चित्रलेखाका चरित्र

[संवत्सर-प्रतिपदाका कृत्य]

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गौरी, गणपति, दुर्गा, सोम, अग्नि तथा सूर्य आदि देवताओंके व्रत शास्त्रोंमें निर्दिष्ट हैं, उन व्रतोंका वर्णन आप प्रतिपदादि क्रमसे करें। जिस देवताकी जो तिथि है तथा जिस तिथिमें जो कर्तव्य है, उसे आप पूरी तरह बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी जो प्रतिपदा होती है, उस दिन स्त्री अथवा पुरुष नदी, तालाब या घरपर स्नान कर देवता और पितरोंका तर्पण करे। फिर घर आकर आटेकी पुरुषाकार संवत्सरकी मूर्ति बनाकर चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपचारोंसे उसकी पूजा करे। ऋतु तथा मासोंका उच्चारण करते हुए पूजन तथा प्रणाम कर संवत्सरकी प्रार्थना करे और—'**संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि। उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ता्ँ संवत्सरस्ते कल्पताम्। प्रेत्या एत्यै सं चाञ्च प्र च सारय। सुपर्णचिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद॥**' (यजु० २७।४५) यह मन्त्र पढ़कर वस्त्रसे प्रतिमाको वेष्टित करे। तदनन्तर फल, पुष्प, मोदक आदि नैवेद्य चढ़ाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे—'भगवन्! आपके अनुग्रहसे मेरा वर्ष सुखपूर्वक व्यतीत हो[1]।' यह कहकर यथाशक्ति ब्राह्मणको दक्षिणा दे और उसी दिनसे आरम्भ कर ललाटको नित्य चन्दनसे अलंकृत करे। इस प्रकार स्त्री या पुरुष इस व्रतके प्रभावसे उत्तम फल प्राप्त करते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, ग्रह, डाकिनी और शत्रु उसके मस्तकमें तिलक देखते ही भाग खड़े होते हैं।

इस सम्बन्धमें मैं एक इतिहास कहता हूँ—पूर्व कालमें शत्रुञ्जय नामके एक राजा थे और चित्रलेखा नामकी अत्यन्त सदाचारिणी उनकी पत्नी थी। उसीने सर्वप्रथम ब्राह्मणोंसे संकल्पपूर्वक इस व्रतको ग्रहण किया था। इसके प्रभावसे बहुत अवस्था बीतनेपर उनको एक पुत्र हुआ। उसके जन्मसे उनको बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। वह रानी सदा संवत्सरव्रत किया करती और नित्य ही मस्तकमें तिलक लगाती। जो उसको तिरस्कृत करनेकी इच्छासे उसके पास आता, वह उसके तिलकको देखकर पराभूत-सा हो जाता। कुछ समयके बाद राजाको उन्मत्त हाथीने मार डाला और उनका बालक भी सिरकी पीड़ासे मर गया। तब रानी अति शोकाकुल हुई। धर्मराजके किंकर (यमदूत) उन्हें लेनेके लिये आये। उन्होंने देखा कि तिलक लगाये चित्रलेखा रानी समीपमें बैठी है। उसको देखते ही वे उलटे लौट गये। यमदूतोंके चले जानेपर राजा अपने पुत्रके साथ स्वस्थ हो गया और पूर्वकर्मानुसार शुभ भोगोंका उपभोग करने लगा। महाराज! इस परम उत्तम व्रतका पूर्वकालमें भगवान् शंकरने मुझे उपदेश किया था और हमने आपको सुनाया। यह तिलकव्रत समस्त दुःखोंको हरनेवाला है। इस व्रतको जो भक्तिपूर्वक करता है, वह चिरकालपर्यन्त संसारका सुख भोगकर अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। (अध्याय ८)

अशोकव्रत तथा करवीरव्रतका माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! आश्विन-मासकी शुक्ल प्रतिपदाको गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, सप्तधान्यसे तथा फल, नारिकेल, अनार, लड्डू आदि अनेक प्रकारके नैवेद्यसे मनोरम पल्लवोंसे युक्त अशोक वृक्षका पूजन करनेसे कभी शोक नहीं होता। अशोक वृक्षकी निम्नलिखित मन्त्रसे प्रार्थना करे और उसे अर्घ्य प्रदान करे—

पितृभ्रातृपतिश्वश्रूश्वशुराणां तथैव च।
अशोक शोकशमनो भव सर्वत्र नः कुले॥

(उत्तरपर्व ९।४)

'अशोकवृक्ष! आप मेरे कुलमें पिता, भाई, पति, सास तथा ससुर आदि सभीका शोक शमन करें।'

वस्त्रसे अशोक-वृक्षको लपेट कर पताकाओंसे अलंकृत करे। इस व्रतको यदि स्त्री भक्तिपूर्वक करे तो वह दमयन्ती, स्वाहा, वेदवती और सतीकी भाँति अपने पतिकी अति प्रिय हो

१-भगवंस्त्वत्प्रसादेन वर्षं शुभमस्तु मे। (उत्तरपर्व ८।१०)

जाती है। वनगमनके समय सीताने भी मार्गमें अशोक वृक्षका भक्तिपूर्वक गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, तिल, अक्षत आदिसे पूजन किया और प्रदक्षिणा कर वनको गयीं। जो स्त्री तिल, अक्षत, गेहूँ, सर्षप आदिसे अशोकका पूजन कर मन्त्रसे वन्दना और प्रदक्षिणा कर ब्राह्मणको दक्षिणा देती है, वह शोकमुक्त होकर चिरकालतक अपने पतिसहित संसारके सुखोंका उपभोगकर अन्तमें गौरी-लोकमें निवास करती है। यह अशोकव्रत सब प्रकारके शोक और रोगको हरनेवाला है।

महाराज! इसी प्रकार ज्येष्ठ मासकी शुक्ल प्रतिपदाको सूर्योदयके समय अत्यन्त मनोहर देवताके उद्यानमें लगे हुए करवीर-वृक्षका पूजन करे। लाल सूत्रसे वृक्षको वेष्टित कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, सप्तधान्य, नारिकेल, नारंगी और भाँति-भाँतिके फलोंसे पूजन कर इस मन्त्रसे उसकी प्रार्थना करे—

करवीर विषावास नमस्ते भानुवल्लभ।
मौलिमण्डनसद्रत्न नमस्ते केशवेशयोः॥

(उत्तरपर्व १०।४)

'भगवान् विष्णु और शंकरके मुकुटपर रत्नके रूपमें सुशोभित, भगवान् सूर्यके अत्यन्त प्रिय तथा विषके आवास करवीर (जहर कनेर)! आपको बार-बार नमस्कार है।'

इसी तरह '**आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥** (यजु० ३३।४३)' इस मन्त्रसे प्रार्थना कर ब्राह्मणको दक्षिणा दे एवं वृक्षकी प्रदक्षिणा कर घरको जाय। सूर्यदेवकी प्रसन्नताके लिये इस व्रतको अरुन्धती, सावित्री, सरस्वती, गायत्री, गङ्गा, दमयन्ती, अनसूया और सत्यभामा आदि पतिव्रता स्त्रियोंने तथा अन्य स्त्रियोंने भी किया है। इस करवीरव्रतको जो भक्तिपूर्वक करता है, वह अनेक प्रकारके सुख भोग कर अन्तमें सूर्यलोकको जाता है।

(अध्याय ९-१०)

कोकिलाव्रतका विधान और माहात्म्य

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! जिस व्रतके करनेसे कुलीन स्त्रियोंका अपने पतिके साथ परस्पर विशुद्ध प्रेम बना रहे, उसे आप बतलाइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! यमुनाके तटपर मथुरा नामक एक सुन्दर नगरी है। वहाँ श्रीरामचन्द्रजीने अपने भाई शत्रुघ्नको राजाके पदपर प्रतिष्ठित किया था। उनकी रानीका नाम कीर्तिमाला[1] था। वह बड़ी पतिव्रता थी। एक दिन कीर्तिमालाने अपने कुलगुरु, वसिष्ठमुनिसे प्रणामकर पूछा—'मुनिश्रेष्ठ! आप मुझे कोई ऐसा व्रत बतायें, जिससे मेरे अखण्ड सौभाग्यकी वृद्धि हो।'

वसिष्ठजीने कहा—कीर्तिमाले! कल्याण-कामिनी स्त्री आषाढ़ मासकी पूर्णिमाको सायंकाल यह संकल्प करे कि 'श्रावण मासभर नित्य-स्नान, रात्रि-भोजन और भूमि-शयन करूँगी तथा ब्रह्मचर्यसे रहूँगी और प्राणियोंपर दया करूँगी।' प्रातः उठकर सब सामग्री लेकर नदी, तालाब आदिपर जाय। वहाँ दन्तधावन कर सुगन्धित द्रव्य, तिल और आँवलेका उबटन लगाये और विधिसे स्नान करे। इस प्रकार आठ दिनतक स्नान करे। अनन्तर सर्वौषधियोंका उबटन लगाकर आठ दिनतक स्नान करे। शेष दिनोंमें वचका उबटन मलकर स्नान करे। तदनन्तर सूर्यभगवान्का ध्यान करे। इसके बाद तिल पीस करके उससे कोकिला पक्षीकी मूर्ति बनाये। रक्तचन्दन, चम्पाके पुष्प, पत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, तिल, चावल, दूर्वा आदिसे उसका पूजनकर इस मन्त्रसे प्रार्थना करे—

तिलसहे तिलसौख्ये तिलवर्णे तिलप्रिये।
सौभाग्यद्रव्यपुत्रांश्च देहि मे कोकिले नमः॥

(उत्तरपर्व ११।१४)

'तिलसहे कोकिला देवि! आप तिलके समान कृष्णवर्णवाली हैं। आपको तिलसे सुख प्राप्त होता है तथा आपको तिल अत्यन्त प्रिय है। आप मुझे सौभाग्य, सम्पत्ति तथा पुत्र प्रदान करें। आपको नमस्कार है।'

—इस प्रकार पूजन कर घरमें आकर भोजन ग्रहण करे। इस विधिसे एक मास व्रतकर अन्तमें तिलपिष्टकी कोकिला बनाकर उसमें रत्नके नेत्र और सुवर्णके पंख लगाकर ताम्रपात्रमें स्थापित करे। दक्षिणासहित वस्त्र, धान्य और गुड़ ससुर,

[1] १-सभी रामायणोंमें शत्रुघ्न-पत्नीका नाम श्रुतिकीर्ति प्राप्त होता है। इसे उसका पर्याय मानना चाहिये। भाव प्रायः समान है।

दैवज्ञ, पुरोहित अथवा किसी ब्राह्मणको दान करे।

इस विधिसे जो नारी कोकिलाव्रत करती है, वह सात जन्मतक सौभाग्यवती रहती है और अन्तमें उत्तम विमानमें बैठकर गौरीलोकको जाती है। वसिष्ठजीसे व्रतका विधान सुनकर कीर्तिमालाने उसी प्रकार कोकिलाव्रतका अनुष्ठान किया। उससे उन्हें अखण्ड सौभाग्य, पुत्र, सुख-समृद्धि और शत्रुघ्नजीकी कृपा एवं प्रीति प्राप्त हुई। अन्य भी जो स्त्रियाँ इस व्रतको भक्तिपूर्वक करती हैं उन्हें भी सुख, सौभाग्य आदिकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय ११)

बृहत्तपोव्रतका विधान और फल

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं सभी पापोंका नाशक तथा सुर, असुर और मुनियोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ बृहत्तपोव्रतका विधान बतलाता हूँ, आप सुनें—आश्विन मासकी पूर्णिमाके दिन आत्मशुद्धिपूर्वक उपवासकर रातमें घृतमिश्रित पायसका भोजन करना चाहिये। दूसरे दिन प्रातः उठकर पवित्र हो आचमनकर बिल्वके काष्ठसे दन्तधावन करे। अनन्तर इस मन्त्रसे महादेवजीकी प्रार्थना करनी चाहिये—

अहं देवव्रतमिदं कर्तुमिच्छामि शाश्वतम्।
तवाज्ञया महादेव यथा निर्वहते कुरु ॥

(उत्तरपर्व १२।४)

'महादेव ! मैं आपकी आज्ञासे निरन्तर बृहत्तपोव्रत करना चाहता हूँ। जिस प्रकार मेरा यह व्रत निर्विघ्न पूर्ण हो जाय, आप वैसी कृपा करें।'

नियमपूर्वक सोलह वर्षपर्यन्त प्रतिपद्का व्रत करना चाहिये। फिर मार्गशीर्ष मासकी प्रतिपदाको उपवास कर गुरुजनोंसे आदेश प्राप्त करके महादेवका स्मरण करते हुए भक्तिपूर्वक शिवका पूजन करना चाहिये और रातमें दीपक जलाकर शिवको निवेदित करना चाहिये। शिवभक्त सपत्नीक सोलह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित कर वस्त्र, आभूषण आदिसे पूजन कर भोजन कराये या आठ दम्पतिको भोजन कराये। यदि शक्ति न हो तो एक ही दम्पतिका पूजन करे। निराहार व्रत करके रातमें भूमिपर शयन करना चाहिये। सूर्योदय होनेपर स्नान करके सभी सामग्रियोंको लेकर शिवजीका उद्वर्तन एवं पञ्चगव्यसे स्नान कराना चाहिये। अनन्तर पञ्चामृत, तिलमिश्रित जल और गर्म जलसे स्नान कराना चाहिये। स्नानके अनन्तर कर्पूर, चन्दन आदिका लेपकर कमल आदि उत्तम पुष्प चढ़ाने चाहिये। वस्त्र, पताका, वितान, धूप, दीप, घण्टा एवं भाँति-भाँतिके नैवेद्य महादेवजीको समर्पित कर अग्नि प्रज्वलित कर एवं उसकी पूजाकर विधिपूर्वक हवन करना चाहिये। घर आकर पञ्चगव्य-प्राशन कर आचार्य आदिको भोजन कराकर अपने सभी बन्धुओंके साथ मौन होकर भोजन करना चाहिये। फिर स्वर्ण, वस्त्र आदि देकर ब्राह्मणोंसे क्षमा माँगे। धनवान् व्यक्ति श्रद्धापूर्वक साङ्गोपाङ्ग निर्दिष्ट विधिसे पूजन करे एवं यदि कोई व्यक्ति निर्धन हो तो वह श्रद्धापूर्वक जल, पुष्प आदिसे पूजा करे। इससे व्रतके सम्यक् फलकी प्राप्ति होती है। श्रद्धाके साथ कार्तिककी प्रतिपदासे लेकर प्रतिमास इस विधिसे व्रत करना चाहिये। अनन्तर पारणा करनी चाहिये। सोलहवें वर्षमें पारणाके दिन शिवजीकी पूजा कर सोनेकी सींग, चाँदीके खुर और घण्टा, काँसेके दोहन-पात्रके साथ उत्तम गाय महादेवजीके निमित्त शिवभक्त ब्राह्मणोंको देनी चाहिये। अनन्तर सोलह ब्राह्मणोंका विधि-विधानसे पूजनकर यथाशक्ति वस्त्र, आभूषण आदिसे पूजनकर उत्तम पदार्थोंका भोजन कराना चाहिये। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराकर दक्षिणा दे। दीनों, अन्धों, अनाथों आदिको भी भोजन कराकर कुछ दान देना चाहिये। यह बृहत्तपोव्रत ब्रह्महत्या-जैसे पापोंका हरण और तीनों लोकोंमें अनेक प्रकारके उत्तम भोगोंको प्रदान करनेवाला है। चारों वर्णोंके लिये यह स्वर्गकी सीढ़ी है। धन पाकर भी जो इस व्रतको नहीं करता, वह मूढ़-बुद्धि है। सधवा स्त्री यदि इसे करती है तो उसका पतिसे वियोग नहीं होता और विधवा स्त्रीको भी भविष्यमें वैधव्य न प्राप्त हो, इसलिये उसे यह व्रत करना चाहिये। इस व्रतके अनुष्ठानसे धन, आयु, रूप, सौभाग्य आदिकी प्राप्ति होती है। सभी स्त्री-पुरुष इस व्रतको कर सकते हैं। सोलह वर्षोंतक इस बृहत्तपोव्रतका भक्तिपूर्वक अनुष्ठान कर व्रती सूर्यमण्डलका भेदनकर शिवजीके चरणोंको प्राप्त करता है।

(अध्याय १२)

जातिस्मर[1]-भद्रव्रतका फल और विधान तथा स्वर्णष्ठीवीकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! अपने पूर्व-जन्मोंका ज्ञान होना बहुत कठिन है। आप यह बतायें कि ऋषियोंके वरदान, देवताओंकी आराधना या तीर्थ, स्नान, होम, जप, तप, व्रत आदिके करनेसे पूर्वजन्मका ज्ञान प्राप्त हो सकता है या नहीं? यदि ऐसा कोई व्रत हो, जिसके करनेसे पूर्वजन्मका स्मरण हो सकता है तो आप उसका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! एक ही वर्षमें 'मार्गशीर्ष, फाल्गुन, ज्येष्ठ एवं भाद्रपद' क्रमशः इन चार मासोंमें भद्रव्रतका श्रद्धापूर्वक उपवास करनेसे मनुष्यको अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो जाता है। इस विषयमें एक आख्यान है, उसे आप सुनें—

प्राचीन कालमें यमुनाके किनारे शुभोदय नामका एक वैश्य रहता था। वह इस व्रतको करता था। कालक्रमसे वह मृत्युको प्राप्त हुआ और व्रतके प्रभावसे वह दूसरे जन्ममें राजा संजयके पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुआ, उसका नाम था स्वर्णष्ठीवी। उसे पूर्वजन्मका स्मरण था। कुछ दिनों बाद चोरोंने उसे मार डाला और नारदजीके प्रभावसे वह जीवित हो गया। इस व्रतके प्रभावसे अपने इस विगत वृत्तान्तोंको वह भलीभाँति जानता था।

राजाने पूछा—उसका स्वर्णष्ठीवी नाम कैसे पड़ा? और चोरोंने उसे क्यों मार डाला? तथा किस उपायसे वह जीवित हुआ, इसका विस्तारपूर्वक वर्णन करें?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! कुशावती नामकी नगरीमें संजय नामका एक राजा रहता था। एक दिन नारद और पर्वत नामके दो मुनि राजाके पास आये। वे दोनों राजाके मित्र थे। राजाने अर्घ्य-पाद्य, आसनादि उपचारोंसे उनका पूजन तथा सत्कार किया। उसी समय राजाकी अत्यन्त सुन्दरी राजकन्या वहाँ आयी। पर्वतमुनिने उसे देखकर मोहित हो राजासे पूछा—'राजन्! यह युवती कौन है?' राजाने कहा—'मुने! यह मेरी कन्या है।' नारदजीने कहा—'राजन्! आप अपनी इस कन्याको मुझे दे दें और आप जो दुर्लभ वर माँगना चाहते हों, वह मुझसे माँग लें।' राजाने प्रसन्न होकर कहा—'देवर्षे! आप मुझे एक ऐसा पुत्र दें जो जिस स्थानमें मूत्र-पुरीष और निष्ठीवन (थूक, खखार) का त्याग करे, वह सब उत्तम सुवर्ण बन जाय।' नारदजी बोले—'ऐसा ही होगा।'

राजाने अभीष्ट वर प्राप्त कर अपनी कन्याको वस्त्र-आभूषणसे अलंकृतकर नारदजीसे उसका विवाह कर दिया। नारदकी इस लीलाको देखकर पर्वतमुनिके ओठ क्रोधसे फड़कने लगे, आँखें लाल हो गयीं। वे नारदजीसे बोले—'नारद! तुमने इसके साथ विवाह कर लिया, अतः तुम मेरे साथ स्वर्ग आदि लोकोंमें नहीं जा सकोगे और जो तुमने इस राजाको पुत्र-प्राप्तिका वरदान दिया है, वह पुत्र भी चोरोंद्वारा मारा जायगा।' यह सुनकर नारदजीने कहा—'पर्वत! तुम धर्मको जाने बिना मुझे शाप दे रहे हो। यह कन्या है, इसपर किसीका भी अधिकार नहीं। धर्मपूर्वक माता-पिता जिसे दे दें, वही उसका स्वामी होता है। तुमने मूढ़तावश मुझे शाप दिया है, इसलिये तुम भी स्वर्गमें नहीं जा सकोगे। राजा संजयके पुत्रको चोरोंद्वारा मार डाले जानेपर भी मैं उसे यमलोकसे ले आऊँगा।'

इस प्रकार परस्पर शाप देकर और राजा संजयके द्वारा सत्कृत होकर दोनों मुनि अपने-अपने आश्रमकी ओर चले गये। तदनन्तर सातवें महीनेमें राजाको पुत्र उत्पन्न हुआ। वह कामदेवके समान अतिशय रूपवान् और पूर्वजन्मोंका ज्ञाता था। नारदजीके वरदानसे जिस स्थानपर वह मूत्र-पुरीष आदिका परित्याग करता, वहीं वह सुवर्ण हो जाता, इसलिये राजाने उसका नाम स्वर्णष्ठीवी रखा। वह राजपुत्र सभी प्राणियोंकी बातोंको समझता था। राजा संजयने पुत्रके प्रभावसे

१-जातिस्मर शब्दका अर्थ है पूर्वजन्मोंको स्मरण करनेवाला व्यक्ति। यह योगदर्शनके अनुसार त्याग, अपरिग्रह और मन-बुद्धि एवं प्रकृतिके अनुशीलनसे प्राप्त होता है—'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्'। (योगदर्शन ३। १८) जिस प्रकार अद्रोह, सद्भाव, सरलता आदिको जातिस्मरता (आध्यात्मिकता, कुण्डलिनी-जागरणादि) में सहायक माना है, उसी प्रकार अहंकार, कौटिल्य-द्वेष-द्रोहादिको आध्यात्मिकतामें बाधक भी मानना चाहिये और कल्याणकामीको उनसे सदा बचते रहनेकी भी चेष्टा करनी चाहिये।

बहुत धन प्राप्तकर राजसूय आदि यज्ञोंका विधिपूर्वक सम्पादन किया। उसने अनेक कूप, सरोवर, देवालयों आदिका निर्माण कराया। पुत्रकी रक्षाके लिये विशाल सेना भी नियुक्त कर दी।

स्वर्णष्ठीवीके प्रभावसे राजा संजयके यहाँ स्वर्णकी ढेर सारी राशियाँ एकत्र हो गयीं। कुछ समयके बाद राजपुत्रकी अत्यन्त ख्याति सुनकर लोभवश मदोद्धत चोरोंने स्वर्णष्ठीवीका हरण कर लिया, परंतु जब उसके शरीरमें कहीं भी सोना नहीं देखा, तब चोरोंने उसे मारकर जंगलमें फेंक दिया। चोरोंद्वारा पुत्रके मारे जानेपर राजा बहुत दुःखी हो विलाप करने लगा। उस समय नारदजी वहाँ पुनः पधारे। नारदजीने अनेक प्राचीन राजाओंकी गाथाएँ सुनाकर राजाके शोकको दूर किया और यमलोकमें जाकर वे राजपुत्रको ले आये। पुत्रको प्राप्तकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने नारदजीसे पूछा—'महाराज! किस कर्मके प्रभावसे यह मेरा पुत्र स्वर्णष्ठीवी हुआ और किस कर्मके प्रभावसे इसको पूर्वजन्मका स्मरण है?' नारदजीने कहा—'राजन्! इसने 'भद्र' नामक व्रतको विधिपूर्वक चार बार किया है। यह उसीका प्रताप है।' इतना कहकर नारदजी अपने आश्रमको चले गये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस व्रतके करनेसे व्रतीका उत्तम कुलमें जन्म होता है और वह रूपवान् तथा पूर्वजन्मका ज्ञाता एवं दीर्घायु होता है। अब आप इस व्रतका विधान सुनें—इस व्रतके चार भद्र चार पादके रूपमें हैं। मार्गशीर्षमें पहला, फाल्गुनमें दूसरा, ज्येष्ठमें तीसरा और भाद्रपदमें चौथा पाद होता है। मार्गशीर्ष शुक्ल आदि तीन मास 'विष्णुपद' नामक भद्र सभी धर्मोंका साधक है। फाल्गुन शुक्ल आदि तीन मास 'त्रिपुष्कर' नामक भद्ररूप है और यह तप आदिका साधक एवं लक्ष्मीप्रद है। ज्येष्ठ शुक्ल आदि तीन मास 'त्रिराम' नामक भद्र है। यह सत्य और शौर्य प्रदान करता है। भाद्र शुक्ल आदि तीन मास 'त्रिरंग' नामक भद्र है, यह बहुत विद्या देनेवाला है। सभी स्त्री-पुरुषोंको इस भद्र-व्रतको करना चाहिये।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—जगत्पते! इन भद्रोंका विधान आप विस्तारपूर्वक कहें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस अतिशय गुप्त विधानको मैंने किसीसे नहीं कहा है, आपको मैं सुनाता हूँ, आप सावधान होकर सुनें—

मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी प्रारम्भिक चार तिथियाँ अत्यन्त श्रेष्ठ मानी गयी हैं। ये तिथियाँ हैं—द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी। व्रतीको प्रतिपदाके दिन जितेन्द्रिय होकर एकभुक्त रहना चाहिये। प्रातःकालमें द्वितीया तिथिको नित्यक्रियाओंको सम्पन्न कर मध्याह्नमें मन्त्रपूर्वक गोमय तथा मिट्टी आदि लगाकर स्नान करना चाहिये। इन मन्त्रोंके अधिकारी चारों वर्ण हैं, किंतु वर्णसंकरोंको इनका अधिकार नहीं है। विधवा स्त्री यदि सदाचारसम्पन्न हो तो वह भी इस व्रतकी अधिकारिणी है। सधवा स्त्री अपने पतिकी आज्ञासे यह व्रत ग्रहण करे। शरीरमें मिट्टी-लेपन करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

त्वं मृत्स्ने वन्दिता देवैः समलैर्दैत्यघातिभिः॥
मयापि वन्दिता भक्त्या मामतो विमलं कुरु॥

(उत्तरपर्व १३।६५-६६)

'मृत्तिके! दुष्ट दैत्योंका विनाश करनेवाले देवताओंके द्वारा आप वन्दित हैं, मैं भी भक्तिपूर्वक आपकी वन्दना करता हूँ, मुझे भी आप पवित्र बना दें।'

अनन्तर जलके सम्मुख जाकर सफेद सरसों, कृष्ण तिल, वच और सर्वौषधिका उबटन लगाकर जलमें मण्डल अङ्कित कर ये मन्त्र पढ़ने चाहिये—

त्वमादिः सर्वदेवानां जगतां च जगन्मये।
भूतानां वीरुधां चैव रसानां पतये नमः॥
गङ्गासागरजं तोयं पौष्करं नार्मदं तथा।
यामुनं सांनिहत्यं च संनिधानमिहास्तु मे॥

(उत्तरपर्व १३।६८-६९)

ये मन्त्र पढ़कर स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहन, संध्या और तर्पण करे। फिर घर आकर नियमपूर्वक रहे और चन्द्रोदय-पर्यन्त किसीसे सम्भाषण न करे।

इसी प्रकार द्वितीया आदि तिथियोंमें कृष्ण, अच्युत, अनन्त और हृषीकेश—इन नामोंसे भक्तिपूर्वक भगवान्‌का पूजन करे। पहले दिन भगवान्‌के चरणारविन्दोंका, दूसरे दिन नाभिका, तीसरे दिन वक्षःस्थलका और चौथे दिन नारायणके मस्तकका विधिपूर्वक उत्तम पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे पूजन करे और रात्रिमें जब चन्द्रोदय हो, तब शशि, चन्द्र,

शशाङ्क तथा इन्दु—इन नामोंसे क्रमशः चन्दन, अगरु, कर्पूर, दधि, दूर्वा, अक्षत तथा अनेक रत्नों, पुष्पों एवं फलों आदिसे चन्द्रमाको अर्घ्य दे। प्रत्येक दिन जैसे-जैसे चन्द्रमाकी वृद्धि हो वैसे-वैसे अर्घ्यमें भी वृद्धि करनी चाहिये। अर्घ्य इस मन्त्रसे देना चाहिये—

नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः।
त्रिरश्मिसमवेतान् वै देवानाप्यायसे हविः॥
गगनाङ्गणसद्दीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव।
भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व १३। ८६-८७)

'हे रमानुज! आप प्रत्येक मासके अन्तमें नवीन-नवीन रूपमें आविर्भूत होते रहते हैं। तीन अग्नियोंसे समन्वित देवताओंको आप ही हविष्यके द्वारा आप्यायित करते हैं। आपकी उत्पत्ति क्षीरसागरके मन्थनसे हुई है। आपकी आभासे ही दिशा-विदिशाएँ आभासित होती हैं। गगनरूपी आँगनके आप सत्स्वरूपी देदीप्यमान दीपक हैं। आपको नमस्कार है।'

चन्द्रमाको अर्घ्य निवेदित कर वह अर्घ्य ब्राह्मणको दे दे। अनन्तर मौन होकर भूमिपर पद्मपत्र बिछाकर भोजन करे। पलाश या अशोकके पत्रोंद्वारा पवित्र भूमि या शिलातलका शोधन कर इस मन्त्रसे भूमिकी प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वत्तले भोक्तुकामोऽहं देवि सर्वरसोद्भवे॥
मदनुग्रहाय सुस्वादं कुर्वन्नममृतोपमम्।

(उत्तरपर्व १३। ९०-९१)

'सम्पूर्ण रसोंको उत्पन्न करनेवाली हे पृथ्वी देवि! आपके आश्रयमें मैं भोजन करना चाहता हूँ। मुझपर अनुग्रह करनेके लिये आप इस अन्नको अमृतके समान उत्तम स्वादयुक्त बना दें।'

अनन्तर शाक तथा पकान्नका भोजन करे। भोजनके बाद आचमन करे और अङ्गोंका स्पर्श कर चन्द्रमाका ध्यान करते हुए भूमिपर ही शयन करे। द्वितीयाके दिन क्षार एवं लवणरहित हविष्यका भोजन करना चाहिये। तृतीयाको नीवार (तिन्नी) तथा चतुर्थीको गायके दूधसे बने उत्तम पदार्थोंको ग्रहण करना चाहिये। पञ्चमीको घृतयुक्त कृशरान्न (खिचड़ी) ग्रहण करना चाहिये। इस भद्रव्रतमें सावाँ, चावल, गायका घृत तथा अन्य गव्य पदार्थ एवं अयाचित प्राप्त वन्य फल प्रशस्त माने गये हैं। अनन्तर प्रातःकाल स्नानकर पितरोंका तर्पणकर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दान-दक्षिणा आदि देकर बिदा करना चाहिये। बादमें भृत्य एवं बन्धुजनोंके साथ स्वयं भी भोजन करे।

इस प्रकार तीन-तीन महीनोंतक चार भद्र-व्रतोंका जो वर्षपर्यन्त भक्तिपूर्वक प्रमादरहित होकर आचरण करता है, उसे चन्द्रदेव प्रसन्न होकर श्री, विजय आदि प्रदान करते हैं। जो कन्या इस भद्रव्रतका अनुष्ठान करती है, वह शुभ पतिको प्राप्त करती है। दुर्भगा स्त्री सुभगा एवं साध्वी हो जाती है तथा नित्य सौभाग्यको प्राप्त करती है। राज्यार्थी राज्य, धनार्थी धन और पुत्रार्थी पुत्र प्राप्त करता है। इस भद्रव्रतके करनेसे स्त्रीका उत्तम कुलमें विवाह होता है तथा वह उत्तम शय्या, अन्न, यान, आसन आदि शुभ पदार्थोंको प्राप्त करती है तथा पुरुष धन, पुत्र, स्त्रीके साथ ही पूर्वजन्मके ज्ञानको भी प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १३)

यमद्वितीया तथा अशून्यशयन-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वितीया तिथिको यमुनाने अपने घर अपने भाई यमको भोजन कराया और यमलोकमें बड़ा उत्सव हुआ, इसलिये इस तिथिका नाम यमद्वितीया है। अतः इस दिन भाईको अपने घर भोजन न कर बहिनके घर जाकर प्रेमपूर्वक उसके हाथका बना हुआ भोजन करना चाहिये। उससे बल और पुष्टिकी वृद्धि होती है। इसके बदले बहिनको स्वर्णालंकार, वस्त्र तथा द्रव्य आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। यदि अपनी सगी बहिन न हो तो पिताके भाईकी कन्या, मामाकी पुत्री, मौसी अथवा बुआकी बेटी—ये भी बहिनके समान हैं, इनके हाथका बना भोजन करे। जो पुरुष यमद्वितीयाको बहिनके हाथका भोजन करता है, उसे धन, यश, आयुष्य, धर्म, अर्थ और अपरिमित सुखकी प्राप्ति होती है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने बताया कि सब धर्मोंका साधन गृहस्थाश्रम है, वह गृहस्थाश्रम स्त्री और

पुरुषसे ही प्रतिष्ठित होता है। पत्नीहीन पुरुष और पुरुषहीन नारी धर्म आदि साधन सम्पन्न करनेमें समर्थ नहीं होते, इसलिये आप कोई ऐसा व्रत बतायें जिसके अनुष्ठानसे दाम्पत्यका वियोग न हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीयाको अशून्यशयन नामक व्रत होता है। इसके करनेसे स्त्री विधवा नहीं होती और पुरुष पत्नीसे हीन नहीं होता। इस तिथिको लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुका शय्यापर अनेक उपचारोंद्वारा पूजन करना चाहिये। इस दिन उपवास, नक्तव्रत अथवा अयाचित-व्रत करना चाहिये। व्रतके दिन दही, अक्षत, कन्द-मूल, फल, पुष्प, जल आदि सुवर्णके पात्रमें रखकर निम्नमन्त्रको पढ़ते हुए चन्द्रमाको अर्घ्य देना चाहिये—

गगनाङ्गणसम्भूत दुग्धाब्धिमथनोद्भव।
भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते॥
(उत्तरपर्व १५।१८)

इस विधानके साथ जो व्यक्ति चार मासतक व्रत करता है, उसको कभी भी स्त्री-वियोग प्राप्त नहीं होता एवं उसे सभी प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। जो स्त्री भक्तिपूर्वक इस व्रतको करती है, वह तीन जन्मतक विधवा और दुर्भगा नहीं होती। यह अशून्य-द्वितीयाका व्रत सभी कामनाओं और उत्तम भोगोंको देनेवाला है, अतः इसे अवश्य करना चाहिये।

(अध्याय १४-१५)

मधूकतृतीया एवं मेघपाली तृतीया-व्रत

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! मधूक-वृक्षका आश्रय ग्रहण करनेवाली भगवान् शंकरकी भार्या भगवती गौरीकी लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियोंने किस कारणसे अर्चना की, इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—प्राचीन कालमें समुद्र-मन्थनसे मधूक-वृक्ष विनिर्गत हुआ। स्त्रियोंको अखण्ड सौभाग्य प्राप्त करानेवाले तथा सभी आधि-व्याधियोंको दूर करनेवाले उस वृक्षको भूलोकवासियोंने पृथिवीपर स्थापित किया। जया-विजया आदि सखियोंसहित भगवती गौरीको उस प्रफुल्लित सुन्दर वृक्षका आश्रय ग्रहण किये देखकर देवताओंने अपनी अभीष्ट इच्छाओंकी पूर्तिहेतु उसकी अनेक उपचारोंसे पूजा की। स्वयं लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, गङ्गा, रोहिणी, रम्भा तथा अरुन्धती आदिने भी विनयपूर्वक पूजा की। भगवती गौरीने प्रसन्न होकर उन्हें अभिमत फल प्रदान किया। फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको इनकी उपासना हुई थी। इसलिये फाल्गुनके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको उपवासकर मधुवनमें जाकर मधूक वृक्षके नीचे ब्रह्मचर्यमें स्थित, जटामुकुटसे सुशोभित, तपस्यारत तथा गोधाके रथपर आरूढ़, रुद्र-ध्यानपरायणा भगवती पार्वतीकी प्रतिमाका ध्यान करते हुए गन्ध, पुष्प, दीप, लाल चन्दन, केशर, मधुर द्रव्य, स्वर्ण, माणिक्य आदिसे पूजाकर देवीसे इस प्रकार अखण्ड सौभाग्यके लिये प्रार्थना करे—

ॐ भूषिता देवभूषा च भूषिका ललिता उमा।
तपोवनरता गौरी सौभाग्यं मे प्रयच्छतु॥
दौर्भाग्यं मे शमयतु सुप्रसन्नमनाः सदा।
अवैधव्यं कुले जन्म ददात्वपरजन्मनि॥
(उत्तरपर्व १६।३-४)

'तपोवनरता हे गौरी देवि! आपका नाम ललिता तथा उमा है। आप देवताओंकी आभूषणस्वरूपा एवं सभीको आभूषित करनेवाली हैं और स्वयं आभूषित हैं। आप मुझे सौभाग्य प्रदान करें। आप मेरे दौर्भाग्यका शमन करें। दूसरे जन्ममें भी मेरा सौभाग्य अखण्डित रहे। आप सर्वदा मुझपर प्रसन्न रहें।'

अनन्तर फूल, जीरक, लवण, गुड़, घी, पुष्पमालाओं, कुंकुम, गन्ध, अगरु, चन्दन एवं सिंदूर आदि तथा वस्त्रोंसे और अनेक देशोत्पन्न अंजनोंसे, पुआ, तिल और तण्डुल, घृतपूरित मोदक इत्यादि नैवेद्योंसे मधूक-वृक्षकी पूजा करे। उसकी प्रदक्षिणा कर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। जो कन्या इस उत्तम तृतीयाव्रतको करती है वह तीनों लोकोंमें दुष्प्राप्य भगवान् विष्णुके समान पति प्राप्त करती है। राजन्! मेरे द्वारा कथित यह व्रत चिरकालतक प्रसिद्ध रहेगा। इस व्रतको रुक्मिणीके सम्मुख प्रथम महर्षि कश्यपने कहा था। जो स्त्री

इस व्रतका आचरण करेगी, वह नीरोग, सुन्दर दृष्टिसम्पन्न तथा अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे शोभायुक्त होकर सौ वर्षोंतक जीवित रहेगी। अनन्तर किंकिणीके शब्दोंसे समन्वित हंसयानसे रुद्रलोकको प्राप्त करेगी। वहाँ अनेक वर्षोंतक अपने पतिके साथ दिव्य भोगोंको प्राप्त कर आठों सिद्धियोंसे समन्वित होगी।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! मेघपाली-व्रत कब और कैसे अनुष्ठित होता है, इसका क्या फल है तथा मेघपाली लता कैसी होती है ? इसे बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—आश्विन मासके कृष्ण-पक्षकी तृतीया तिथिको भक्तिपूर्वक स्त्रियों अथवा पुरुषोंको सद्धर्मकी प्राप्तिके लिये मेघपालीको सप्तधान्य (यव, गोधूम, धान, तिल, कंगु, श्यामाक (सावाँ) तथा चना) और अंकुरित गोधूमके साथ अथवा तिल-तण्डुलके पिण्डोंद्वारा अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। मेघपाली ताम्बूलके समान पत्तों-वाली, मंजरीयुक्त एक लाल लता है, वह वाटिकाओंमें, ग्राम-मार्गमें होती है तथा पर्वतोंपर प्रायः होती है। व्यापारसे जीवन बितानेवाले वैश्यगण धान्य, तेल, गुड़, कुंकुम, स्वर्ण, तथा पद (जूता, छाता, कपड़ा, अँगूठी, कमण्डलु, आसन, बर्तन और भोज्य वस्तु) आदिसे इसकी पूजा करते हैं। मेघपालीके अर्घ्यदानसे जाने-अनजाने जो भी पाप होते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। श्रेष्ठ स्त्रियोंको शुभ देश या स्थानमें उत्पन्न मेघपालीकी फल, गन्ध, पुष्प, अक्षत, नारिकेल, खजूर, अनार, कनेर, धूप, दीप, दही और नये अंकुरवाले धान्य-समूहसे पूजा करनी चाहिये तथा लाल वस्त्रोंसे उसे आच्छादित कर और अबीरसे विभूषित कर अर्घ्य देना चाहिये। वह अर्घ्य विद्वान् ब्राह्मणको समर्पण कर देना चाहिये। इस प्रकार मेघपालीकी पूजा करनेवाली नारी या पुरुष परम ऐश्वर्यको प्राप्त करते हैं तथा सुख-सौभाग्यसे समन्वित हो सौ वर्षोंतक मर्त्यलोकमें जीवित रहते हैं। अन्तमें विमानपर आरूढ़ हो विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं और अपने सात कुलोंको निःसंदेह नरकसे स्वर्ग पहुँचा देते हैं। जो नरकके भयसे फलादिसे समन्वित अर्घ्य मेघपालीको प्रदान करता है, उसके सभी पाप वैसे ही नष्ट हो जाते हैं[1] जैसे सूर्यके द्वारा अन्धकार नष्ट हो जाता है।

(अध्याय १६-१७)

पञ्चाग्निसाधन नामक रम्भा-तृतीया तथा गोष्पद-तृतीयाव्रत

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! इस मृत्युलोकमें जिस व्रतके द्वारा स्त्रियोंका गृहस्थाश्रम सुचारु-रूपसे चले और उन्हें पतिकी भी प्रीति प्राप्त हो, उसे बताइये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—एक समय अनेक लताओंसे आच्छन्न, विविध पुष्पोंसे सुशोभित, मुनि और किन्नरोंसे सेवित तथा गान और नृत्यसे परिपूर्ण रमणीय कैलास-शिखरपर मुनियों और देवताओंसे आवृत माँ पार्वती और भगवान् शिव बैठे हुए थे। उस समय भगवान् शंकरने पार्वतीसे पूछा—'सुन्दरि! तुमने कौन-सा ऐसा उत्तम व्रत किया था, जिससे आज तुम मेरी वामाङ्गीके रूपमें अत्यन्त प्रिय बन गयी हो ?'

पार्वतीजी बोलीं—नाथ! मैंने बाल्य-कालमें रम्भाव्रत किया था, उसीके फलस्वरूप आप मुझे पतिरूपमें प्राप्त हुए हैं एवं मैं सभी स्त्रियोंकी स्वामिनी तथा आपकी अर्धाङ्गिनी भी बन गयी हूँ।

भगवान् शंकरने पूछा—भद्रे! सभीको सौख्य प्रदान करनेवाला वह रम्भाव्रत कैसे किया जाता है ? पिताके यहाँ इसे तुमने किस प्रकार अनुष्ठित किया था ? उसे बताओ।

पार्वतीजी बोलीं—देव! एक समय मैं बाल्यकालमें अपने पिताके घर सखियोंके साथ बैठी थी, उस समय मेरे पिता हिमवान् तथा माता मेनाने मुझसे कहा—'पुत्रि! तुम सुन्दर तथा सौभाग्यवर्धक रम्भाव्रतका अनुष्ठान करो, उसके आरम्भ करते ही तुम्हें सौभाग्य, ऐश्वर्य तथा महादेवी-पदकी प्राप्ति हो जायगी। पुत्रि! ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको स्नान कर इस व्रतका नियम ग्रहण करो और अपने चारों ओर पञ्चाग्नि प्रज्वलित करो अर्थात् गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि, आहवनीय तथा

१-इसमें वनस्पतिको देवता मानकर उसकी पूजाको विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। विशेषकर अथर्ववेद तथा उसके सूक्तोंमें ऐसे कई प्रकरण आये हैं। ओषधियाँ देवता ही हैं, जिनसे रोग, दुःख, पाप-शमनके साथ-साथ धर्मार्थकी सिद्धि भी होती है।

सभ्याग्नि और पाँचवें तेजःस्वरूप सूर्याग्निका सेवन करो। इसके बीचमें पूर्वकी दिशाकी ओर मुखकर बैठ जाओ और मृगचर्म, जटा, वल्कल आदि धारण कर चार भुजाओंवाली एवं सभी अलंकारोंसे सुशोभित तथा कमलके ऊपर विराजमान भगवती महासतीका ध्यान करो। पुत्रि! महालक्ष्मी, महाकाली, महामाया, महामति, गङ्गा, यमुना, सिन्धु, शतद्रु, नर्मदा, मही, सरस्वती तथा वैतरणीके रूपमें वे ही महासती सर्वत्र व्याप्त हैं। अतः तुम उन्हींकी आराधना करो।'

प्रभो! मैंने माताके द्वारा बतलायी गयी विधिसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक रम्भा-(गौरी) व्रतका अनुष्ठान किया और उसी व्रतके प्रभावसे मैंने आपको प्राप्त कर लिया।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—कौन्तेय! लोपामुद्राने भी इस रम्भाव्रतके आचरणसे महामुनि अगस्त्यको प्राप्त किया और वे संसारमें पूजित हुईं। जो कोई स्त्री-पुरुष इस रम्भाव्रतको करेगा, उसके कुलकी वृद्धि होगी। उसे उत्तम संतति तथा सम्पत्ति प्राप्त होगी। स्त्रियोंको अखण्ड सौभाग्यकी तथा सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाले श्रेष्ठ गार्हस्थ्य-सुखकी प्राप्ति होगी और जीवनके अन्तमें उन्हें इच्छानुसार विष्णु एवं शिवलोककी प्राप्ति होगी।

इस व्रतका संक्षिप्त विधान इस प्रकार है—व्रतीको एक सुन्दर मण्डप बनाकर उसे गन्ध-पुष्पादिसे सुवासित तथा अलंकृत करना चाहिये। तदनन्तर मण्डपमें महादेवी रुद्राणीकी यथाशक्ति स्वर्णादिसे निर्मित प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। देवीके सम्मुख सौभाग्याष्टक—जीरा, कडुहुंड, अपूप, फूल, पवित्र निष्पाव (सेम), नमक, चीनी तथा गुड़ निवेदित करना चाहिये। पद्मासन लगाकर सूर्यास्ततक देवीके सम्मुख बैठा रहे। अनन्तर रुद्राणीको प्रणाम कर यह मन्त्र कहे—

वेदेषु सर्वशास्त्रेषु दिवि भूमौ धरातले।
दृष्टः श्रुतश्च बहुशो न शक्त्या रहितः शिवः॥
त्वं शक्तिस्त्वं स्वधा स्वाहा त्वं सावित्री सरस्वती।
पतिं देहि गृहं देहि वसु देहि नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व १८। २३-२४)

'सम्पूर्ण वेदादि शास्त्रोंमें, स्वर्गमें तथा पृथ्वी आदिमें कहीं भी यह कभी नहीं सुना गया है और न ऐसा देखा ही गया है कि शिव शक्तिसे रहित हैं। हे पार्वती! आप ही शक्ति हैं, आप ही स्वधा, स्वाहा, सावित्री और सरस्वती हैं। आप मुझे पति, श्रेष्ठ गृह तथा धन प्रदान करें, आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार पुनः-पुनः उन्हें प्रणाम करके देवीसे क्षमा-प्रार्थना करे। अनन्तर सपत्नीक यशस्वी ब्राह्मणकी सभी उपकरणोंसे पूजा करके दान देना चाहिये। सुवासिनी स्त्रियोंको नैवेद्य आदि प्रदान करना चाहिये। इस विधानसे सभी कार्य सम्पन्न कर पाप-नाशके लिये क्षमा-प्रार्थना करे। अगले दिन चतुर्थीको ब्राह्मण-दम्पतियोंको मधुर रसोंसे समन्वित भोजन कराकर व्रत पूर्ण करना चाहिये।

पार्थ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तथा चतुर्थी तिथिको प्रतिवर्ष गोष्पद-नामक व्रत करना चाहिये। स्त्री अथवा पुरुष प्रथम स्नानसे निवृत्त होकर अक्षत और पुष्पमाला, धूप, चन्दन, पिष्टक (पीठी) आदिसे गौकी पूजा करे। उसके शृंग आदि सभी अङ्गोंको अलंकृत करे। उन्हें भोजन कराकर तृप्त कर दे। स्वयं तेल और लवण आदि क्षार वस्तुओंसे रहित जो अग्निके द्वारा सिद्ध न किया गया हो उसका भोजन करे। वनकी ओर जाती तथा लौटती गौओंको उनकी तुष्टिके लिये ग्रास दे और उन्हें निम्न मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥

(ऋ० ८। १०१। १५)

तदनन्तर निम्न मन्त्रसे गौकी प्रार्थना करे—

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

(उत्तरपर्व १९। ७)

पञ्चमीको क्रोधरहित होकर गायके दूध, दही, चावलका पीठा, फल तथा शाकका भोजन करे। रात्रिमें संयत होकर विश्राम करे। प्रातःकाल यथाशक्ति स्वर्णादिसे निर्मित गोष्पद (गायका खुर) तथा गुड़से निर्मित गोवर्धन पर्वतकी पूजा कर ब्राह्मणको **'गोविन्दः प्रीयताम्'** ऐसा कहकर दान करे। अनन्तर अच्युतको प्रणाम करे।

इस व्रतको भक्तिपूर्वक करनेवाला व्रती सौभाग्य,

लावण्य, धन, धान्य, यश, उत्तम संतान आदि सभी पदार्थोंको प्राप्त करता है। उसका घर, गौ और बछड़ोंसे परिपूर्ण रहता है। मृत्युके बाद वह दिव्य स्वरूप धारणकर दिव्यालंकारोंसे विभूषित हो विमानमें बैठकर स्वर्गलोक जाता है एवं स्वर्गमें दिव्य सौ वर्षोंतक निवासकर फिर विष्णुलोकमें जाता है। इस गोष्पद त्रिरात्रव्रतका कर्ता गौ तथा गोविन्दकी पूजा करनेवाला और गोरस आदिका भोजन करते हुए जीवनयापन करनेवाला उत्तम गोलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १८-१९)

हरकालीव्रत-कथा

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! भगवती हरकाली-देवी कौन हैं? इनका पूजन करनेसे स्त्रियोंको क्या फल प्राप्त होता है? इसका आप वर्णन करें?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! दक्ष प्रजापतिकी एक कन्याका नाम था काली। उनका वर्ण भी नीलकमलके समान काला था। उनका विवाह भगवान् शंकरके साथ हुआ। विवाहके बाद भगवान् शंकर भगवती कालीके साथ आनन्द-पूर्वक रहने लगे। एक समय भगवान् शंकर भगवान् विष्णुके साथ अपने सुरम्य मण्डपमें विराजमान थे। उस समय हँसकर शिवजीने भगवती कालीको बुलाया और कहा—'प्रिये! गौरि! यहाँ आओ।' शिवजीका यह वक्रवाक्य सुनकर भगवतीको बहुत क्रोध आया और वे यह कहकर रुदन करने लगीं कि 'शिवजीने मेरा कृष्णवर्ण देखकर परिहास किया है और मुझे गौरी कहा है, अतः अब मैं अपनी इस देहको अग्निमें प्रज्वलित कर दूँगी।' भगवान् शंकरने उन्हें अग्निमें प्रवेश करनेसे रोकनेका प्रयत्न किया, परंतु देवीने अपनी देहकी हरितवर्णकी कान्ति हरी दूर्वा आदि घासमें त्यागकर अपनी देहको अग्निमें हवन कर दिया और उन्होंने पुनः हिमालयकी पुत्री-रूपमें गौरी नामसे प्रादुर्भूत होकर शिवजीके वामाङ्गमें निवास किया। इसी दिनसे जगत्पूज्या श्रीभगवतीका नाम 'हरकाली' हुआ।

महाराज! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको सब प्रकारके नये धान्य एकत्रकर उनपर अंकुरित हरी घाससे निर्मित भगवती हरकालीकी मूर्ति स्थापित करे और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, मोदक आदि नैवेद्य तथा भाँति-भाँतिके उपचारोंसे देवीका पूजन करे। रात्रिमें गीत-नृत्य आदि उत्सवकर जागरण करे और देवी हरकालीको इस मन्त्रसे प्रणाम करे—

> हरकर्मसमुत्पन्ने हरकाये हरप्रिये।
> मां त्राहीशस्य मूर्तिस्थे प्रणतोऽस्मि नमो नमः॥
>
> (उत्तरपर्व २०।२०)

'भगवान् शंकरके कृत्यसे उत्पन्न हे शंकरप्रिये! आप भगवान् शंकरके शरीरमें निवास करनेवाली हैं, भगवान् शंकरकी मूर्तिमें स्थित रहनेवाली हैं, मैं आपकी शरण हूँ, आप मेरी रक्षा करें। आपको बार-बार प्रणाम है।'

इस प्रकार देवीका पूजनकर प्रातःकाल सुवासिनी स्त्रियाँ बड़े उत्सवसे गीत-नृत्यादि करते हुए प्रतिमाको पवित्र जलाशयके समीप ले जायँ और इस मन्त्रको पढ़ते हुए विसर्जित करें—

> अर्चितासि मया भक्त्या गच्छ देवि सुरालयम्।
> हरकाले शिवे गौरि पुनरागमनाय च॥
>
> (उत्तरपर्व २०।२२)

'हे हरकाली देवि! मैंने भक्तिपूर्वक आपकी पूजा की है, हे गौरि! आप पुनः आगमनके लिये इस समय देवलोकको प्रस्थान करें।'

इस विधिसे प्रतिवर्ष, जो स्त्री अथवा पुरुष व्रत करता है, वह आरोग्य, दीर्घायुष्य, सौभाग्य, पुत्र, पौत्र, धन, बल, ऐश्वर्य आदि प्राप्त करता है और सौ वर्षतक संसारका सुख भोगकर शिवलोक प्राप्त करता है। महादेवके अनुग्रहसे वहाँ वीरभद्र, महाकाल, नन्दीश्वर, विनायक आदि शिवजीके गण उसकी आज्ञामें रहते हैं। जो भी स्त्री भक्तिपूर्वक यह हरकाली-व्रत करती है और रात्रिके समय गीत-वाद्य-नृत्यसे जागरण कर उत्सव मनाती है, वह अपने पतिकी अति प्रिय होती है।

(अध्याय २०)

ललितातृतीया-व्रतकी विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप द्वादश मासोंमें किये जानेवाले व्रतोंका वर्णन करें, जिनके करनेसे सभी उत्तम फल प्राप्त होते हैं, साथ ही प्रत्येक मास-व्रतका विधान भी बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस विषयमें मैं एक प्राचीन वृत्तान्त सुनाता हूँ, आप सुनें—

एक समय देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, सिद्ध, तपस्वी, नाग आदिसे पूजित भगवान् श्रीसदाशिव कैलासपर्वतपर विराजमान थे। उस समय भगवती उमाने विनयपूर्वक भगवान् सदाशिवसे प्रार्थना की कि महाराज! आप मुझे उत्तम तृतीया-व्रतके विषयमें बतानेकी कृपा करें, जिसके करनेसे नारीको सौभाग्य, धन, सुख, पुत्र, रूप, लक्ष्मी, दीर्घायु तथा आरोग्य प्राप्त होता है और स्वर्गकी भी प्राप्ति होती है। उमाकी यह बात सुनकर भगवान् शिवने हँसते हुए कहा—'प्रिये! तीनों लोकोंमें ऐसा कौन-सा पदार्थ है जो तुम्हें दुर्लभ है तथा जिसकी प्राप्तिके लिये व्रतकी जिज्ञासा कर रही हो।'

पार्वतीजी बोलीं—महाराज! आपका कथन सत्य ही है। आपकी कृपासे तीनों लोकोंके सभी उत्तम पदार्थ मुझे सुलभ हैं, किंतु संसारमें अनेक स्त्रियाँ विविध कामनाओंकी प्राप्तिके लिये तथा अमङ्गलोंकी निवृत्तिके लिये भक्तिपूर्वक मेरी आराधना करती हैं तथा मेरी शरण आती हैं। अतः ऐसा कोई व्रत बताइये, जिससे वे अनायास अपना अभीष्ट प्राप्त कर सकें।

भगवान् शिवने कहा—उमे! व्रतकी इच्छावाली स्त्री संयमपूर्वक माघशुक्ला तृतीयाको प्रातः उठकर नित्यकर्म सम्पन्नकर व्रतके नियमको ग्रहण करे। मध्याह्नके समय बिल्व और आमलकमिश्रित पवित्र जलसे स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण करे तथा गन्ध, पुष्प, दीप, कपूर, कुंकुम एवं विविध नैवेद्योंसे भक्तिपूर्वक भक्तोंपर वात्सल्यभाव रखनेवाली तुम्हारी (पार्वतीकी) भक्तिभावसे पूजा करे। अनन्तर ईशानी नामसे तुम्हारा ध्यान करते हुए ताँबेके घड़ेमें जल, अक्षत तथा सुवर्ण रखकर सौभाग्यादिकी कामनासे संकल्पपूर्वक वह घट ब्राह्मणको दान दे दे। ब्राह्मण उस घटस्थ जलसे व्रतकर्त्रीका अभिषेक करे। अनन्तर वह कुशोदकका आचमन कर रात्रिके समय भगवती उमादेवीका ध्यान करते हुए भूमिपर कुशकी शय्या बिछाकर सोये। दूसरे दिन प्रातः उठकर स्नानसे निवृत्त हो, विधिपूर्वक भगवतीका पूजन करे और यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। इस प्रकार भगवतीका प्रथम मासमें ईशानी नामसे, द्वितीय मासमें पार्वती नामसे, तृतीय मासमें शंकरप्रिया नामसे, चतुर्थ मासमें भवानी नामसे, पाँचवें मासमें स्कन्दमाता नामसे, छठे मासमें दक्षदुहिता नामसे, सातवें मासमें मैनाकी नामसे, आठवें मासमें कात्यायनी नामसे, नवें मासमें हिमाद्रिजा नामसे, दसवें मासमें सौभाग्यदायिनी नामसे, ग्यारहवें मासमें उमा नामसे तथा अन्तिम बारहवें मासमें गौरी नामसे पूजन करे। बारहों मासोंमें क्रमशः कुशोदक, दुग्ध, घृत, गोमूत्र, गोमय, फल, निम्ब-पत्र, कंटकारी, गोशृंगोदक, दही, पञ्चगव्य और शाकका प्राशन करे।

इस प्रकार बारह मासतक व्रतकर श्रद्धापूर्वक भगवतीकी पूजा करे और प्रत्येक मासमें ब्राह्मणोंको दान दे। व्रतकी समाप्तिपर वेदपाठी ब्राह्मणको पत्नीके साथ बुलाकर दोनोंमें शिव-पार्वतीकी बुद्धि रखकर गन्ध-पुष्पादिसे उनकी पूजा करे और उन्हें भक्तिपूर्वक भोजन कराये तथा आभूषण, अन्न, दक्षिणा आदि देकर उन्हें संतुष्ट करे। ब्राह्मणको दो शुक्ल वस्त्र तथा ब्राह्मणीको दो रक्त वस्त्र प्रदान करे। जो स्त्री इस व्रतको भक्तिपूर्वक करती है, वह अपने पतिके साथ दिव्यलोकमें जाकर दस हजार वर्षोंतक उत्तम भोगोंका भोग करती है। पुनः मनुष्य-लोकमें आनेके बाद वे दोनों दम्पति ही होते हैं और आरोग्य, धन, संतान आदि सभी उत्तम पदार्थ उन्हें प्राप्त होते हैं। इस व्रतका पालन करनेवाली स्त्रीका पति सदा उसके अधीन रहता है और उसे अपने प्राणोंसे भी अधिक मानता है। जन्मान्तरमें व्रतकर्त्री स्त्री राजपत्नी होकर राज्य-सुखका उपभोग करती है।

(अध्याय २१)

अवियोगतृतीया-व्रत

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! जिस व्रतके करनेसे पत्नी पतिसे वियुक्त न हो और अन्तमें शिवलोकमें निवास करे तथा जन्मान्तरमें भी विधवा न हो ऐसे व्रतका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इसी विषयको भगवती पार्वतीजीने भगवान् शिवसे और अरुन्धतीने महर्षि वसिष्ठजीसे पूछा था। उन लोगोंने जो कहा, वही आपको सुनाता हूँ।

मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको पवित्र चरित्रवाली स्त्री रात्रिमें पायस भक्षण कर शिव और पार्वतीको दण्डवत् प्रणाम करे। तृतीया तिथिमें प्रातः गूलरकी दातौनसे दन्तधावन कर स्नान करे। शालि चावलके चूर्णसे शिव और पार्वतीकी प्रतिमा बनाये। उन्हें एक उत्तम पात्रमें स्थापित कर विधिपूर्वक उनका पूजन करे। रात्रिमें जागरण कर शिव-पार्वतीका कीर्तन करती हुई भूमिपर शयन करे। चतुर्थीको प्रातः उठकर दक्षिणाके साथ उस प्रतिमाको आचार्यको समर्पित कर शिवभक्त ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन कराकर संतुष्ट करे। ब्राह्मण दम्पतिकी भी यथाशक्ति पूजा करे।

इस प्रकार प्रतिमास व्रत एवं पूजन करना चाहिये। बारह महीनोंमें क्रमशः शिव-पार्वतीकी इन नामोंसे पूजा करनी चाहिये—मार्गशीर्षमें शिव-पार्वतीके नामसे, पौषमें गिरीश और पार्वती नामसे, माघमें भव और भवानी नामसे, फाल्गुनमें महादेव और उमा नामसे, चैत्रमें शंकर और ललिता नामसे, वैशाखमें स्थाणु और लोलनेत्रा नामसे, ज्येष्ठमें वीरेश्वर और एकवीरा नामसे, आषाढ़में त्रिलोचन पशुपति और शक्ति नामसे, श्रावणमें श्रीकण्ठ और सुता नामसे, भाद्रपदमें भीम और कालरात्रि नामसे, आश्विनमें शिव और दुर्गा नामसे तथा कार्तिकमें ईशान और शिवा नामसे पूजा करनी चाहिये।

बारह महीनोंमें भगवान् शिव एवं पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये क्रमशः—नील कमल, कनेर, बिल्वपत्र, पलास, कुब्ज, मल्लिका, पाढर, श्वेत कमल, कदम्ब, तगर, द्रोण तथा मालती—इन पुष्पोंसे पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार मार्गशीर्षसे व्रत प्रारम्भकर कार्तिकमें व्रतका उद्यापन करना चाहिये। उद्यापनमें सुवर्ण, कमल, दो वस्त्र, ध्वजा, दीपक और विविध नैवेद्य शिवको अर्पित कर आरती करनी चाहिये और बारह ब्राह्मणयुगलका यथाशक्ति पूजनकर सुवर्णमय शिव-पार्वतीकी मूर्ति बनवाकर उन्हें ताम्रपात्रमें स्थापित कर उसी पात्रमें चौसठ मोती, चौसठ मूँगा, चौसठ पुखराज रखकर उस पात्रको वस्त्रसे ढककर आचार्यको समर्पित करना चाहिये। अड़तालीस जलपूर्ण कलश, छाता, जूता और सुवर्ण ब्राह्मणोंको दानमें देना चाहिये। दीन, अन्ध और कृपणको अन्न बाँटना चाहिये। किसीको भी उस दिन निराश नहीं जाने देना चाहिये। यदि इतनी शक्ति न हो तो कुछ कम करे, किंतु वित्तशाठ्य न करे। इस व्रतके करनेसे रूप, सौभाग्य, धन, आयु, पुत्र और शिवलोककी प्राप्ति होती है तथा इष्टजनोंसे कभी वियोग नहीं होता। इस व्रतके करनेपर पतिव्रता स्त्री कभी भी पति-पुत्र, सौभाग्य और धनसे वियुक्त नहीं होती और शिवलोकमें निवास करती है।

(अध्याय २२)

उमामहेश्वर-व्रतकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! जिस व्रतके करनेसे स्त्रियोंको अनेक गुणवान् पुत्र-पौत्र, सुवर्ण, वस्त्र और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है तथा पति-पत्नीका परस्पर वियोग नहीं होता, उस व्रतका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ एक व्रत है, जो उमामहेश्वर-व्रत कहलाता है, इस व्रतको करनेसे स्त्रियोंको अनेक संतान, दास, दासी, आभूषण, वस्त्र और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। इस व्रतको अप्सरा, विद्याधरी, किन्नरी, ऋषिकन्या, सीता, अहल्या, रोहिणी, दमयन्ती, तारा तथा अनसूया आदि सभीने किया था और अन्य सभी उत्तम स्त्रियाँ भी इस व्रतको करती हैं। भगवती पार्वतीने सौभाग्य तथा आरोग्य प्रदान करनेवाले और दरिद्रता तथा व्याधिका नाश करनेवाले इस व्रतका दुर्भगा और कुरूपा तथा निर्धन स्त्रियोंके हितकी दृष्टिसे मनुष्यलोकमें प्रचार किया।

धर्मपरायणा स्त्री इस व्रतमें मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको नियमपूर्वक उपवास करे। प्रातः उठकर पवित्र

गङ्गा आदि नदियोंमें स्नान कर शिव-पार्वतीका ध्यान करती हुई यह मन्त्र पढ़े और भगवान् शंकरकी अर्धाङ्गिनी भगवती श्रीललिताकी पूजा करे—

नमो नमस्ते देवेश उमादेहार्धधारक ।
महादेवि नमस्तेऽस्तु हरकायार्धवासिनि ॥

(उत्तरपर्व २३ । १२)

'भगवती उमाको अपने आधे भागमें धारण करनेवाले हे देवदेवेश्वर भगवान् शंकर! आपको बार-बार नमस्कार है। महादेवि! भगवती पार्वती! आप भगवान् शंकरके आधे शरीरमें निवास करनेवाली हैं, आपको नमस्कार है।'

पुनः घर आकर शरीरकी शुद्धिके लिये पञ्चगव्य-पान करे और प्रतिमाके दक्षिण भागमें भगवान् शंकर और वाम भागमें भगवती पार्वतीकी भावना कर गन्ध, पुष्प, गुग्गुल, धूप, दीप और घीमें पकाये गये नैवेद्योंसे भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करे। इसी प्रकार बारह महीनेतक पूजनकर प्रसन्नचित्त हो व्रतका उद्यापन करे। भगवान् शंकरकी चाँदीकी तथा भगवती पार्वतीकी सुवर्णकी मूर्ति बनवाकर दोनोंको चाँदीके वृषभपर स्थापित कर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करे। अनन्तर चन्दन, श्वेत पुष्प, श्वेत वस्त्र आदिसे भगवान् शंकरकी और कुंकुम, रक्त वस्त्र, रक्त पुष्प आदिसे भगवती पार्वतीकी पूजा करनी चाहिये। फिर शिवभक्त वेदपाठी, शान्तचित्त ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। सभीको दक्षिणा देकर उनकी प्रदक्षिणा करके यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

उमामहेश्वरौ देवौ सर्वलोकपितामहौ ।
व्रतेनानेन सुप्रीतौ भवेतां मम सर्वदा ॥

(उत्तरपर्व २३ । २१)

'सभी लोकोंके पितामह भगवान् शिव एवं पार्वती मेरे इस व्रतके अनुष्ठानसे मुझपर सदा प्रसन्न रहें।'

इस प्रकार प्रार्थना करके क्रोधरहित ब्राह्मणको सभी सामग्रियाँ देकर व्रतको समाप्त करे। इस व्रतको जो स्त्री भक्तिपूर्वक करती है, वह शिवजीके समीप एक कल्पतक निवास करती है। तदनन्तर मनुष्य-लोकमें उत्तम कुलमें जन्म ग्रहणकर रूप, यौवन, पुत्र आदि सभी पदार्थोंको प्राप्त कर बहुत दिनोंतक अपने पतिके साथ सांसारिक सुखोंको भोगती है, उसका अपने पतिसे कभी वियोग नहीं होता और अन्तमें वह शिव-सायुज्य प्राप्त करती है। (अध्याय २३)

रम्भातृतीया-व्रतका माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अब मैं सभी पापोंके नाशक, पुत्र एवं सौभाग्यप्रद सभी व्याधियोंके उपशामक, पुण्य तथा सौख्य प्रदान करनेवाले रम्भातृतीया-व्रतका वर्णन करता हूँ। यह व्रत सपत्नियोंसे उत्पन्न क्लेशका शामक तथा ऐश्वर्यको प्रदान करनेवाला है। भगवान् शंकरने देवी पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये इस व्रतकी जो विधि बतलायी थी, उसे ही मैं कहता हूँ।

श्रद्धालु स्त्री मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको प्रातः उठकर दन्तधावन आदिसे निवृत्त हो भक्तिपूर्वक उपवासका नियम ग्रहण करे। वह सर्वप्रथम व्रत-ग्रहण करनेके लिये देवीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

देवि संवत्सरं यावत्तृतीयायामुपोषिता ।
प्रतिमासं करिष्यामि पारणं चापरेऽहनि ।
तदविघ्नेन मे यातु प्रसादात् तव पार्वति ॥

(उत्तरपर्व २४ । ५)

'देवि! मैं पूरे एक वर्षतक इस तृतीया-व्रतका आचरण और दूसरे दिन पारणा करूँगी। आप ऐसी कृपा करें, जिससे इसमें कोई विघ्न न उत्पन्न हो।'

इस प्रकार स्त्री या पुरुष व्रतका संकल्प करे और मनमें व्रतका निश्चय कर सावधानी बरतते हुए नदी, तालाब अथवा घरमें स्नान करे। तदनन्तर देवी पार्वतीका पूजन कर रात्रिमें कुशोदकका प्राशन करे। दूसरे दिन प्रातःकाल विद्वान् शिवभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराये और दक्षिणाके रूपमें सुवर्ण एवं लवण प्रदान करे। यथाशक्ति गौरीश्वर भगवान् शिवको प्रयत्नपूर्वक भोग निवेदित करे।

राजन्! पौष मासकी तृतीयामें इसी विधिसे उपवास एवं पूजनकर रात्रिमें गोमूत्रका प्राशन कर प्रभातकालमें ब्राह्मणोंको भोजन कराये और दक्षिणाके रूपमें उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार सोना तथा जीरक दे। इससे वाजपेय तथा अतिरात्र यज्ञोंका फल प्राप्त होता है और वह कल्पपर्यन्त इन्द्रलोकमें

निवासकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है।

माघ मासकी शुक्ला तृतीयाको 'सुदेवी' नामसे भगवती पार्वतीका पूजन कर रात्रिमें गोमयका प्राशन कर अकेले ही सोये। प्रातः अपनी शक्तिके अनुसार केसर तथा सोना ब्राह्मणोंको दानमें दे। इससे व्रतीको चिरकालतक विष्णुलोकमें निवास करनेके पश्चात् भगवान् शंकरके सायुज्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको 'गौरी' नामसे देवी पार्वतीका पूजन कर रात्रिमें गायका दूध पीये। प्रातः विद्वान् शिवभक्तों तथा सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन कराकर सोनेके साथ कडुहुंड देकर बिदा करे। इससे वाजपेय तथा अतिरात्र यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयामें भक्तिपूर्वक भगवती पार्वतीका विशालाक्षी नामसे पूजन कर रात्रिमें दहीका प्राशन करे और प्रातः कुंकुमके साथ ब्राह्मणोंको सोना प्रदान करे। विशालाक्षीके प्रसादसे व्रतकर्त्रीको महान् सौभाग्य प्राप्त होता है।

वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको भगवती पार्वतीका 'श्रीमुखी' नामसे पूजन करे। रात्रिमें घृतका प्राशन करे और एकाकी ही शयन करे। प्रातः शिवभक्त ब्राह्मणोंको यथारुचि भोजन कराकर ताम्बूल तथा लवण प्रदान कर प्रणामपूर्वक बिदा करे। इस विधिसे पूजन करनेपर सुन्दर पुत्रोंकी प्राप्ति होती है।

आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको गौरी-पार्वतीकी 'माधवी' नामसे पूजा करे। तिलोदकका प्राशन करे। प्रातःकाल विप्रोंको भोजन कराये और दक्षिणामें गुड़ तथा सोना दे। इससे उसे शुभ लोककी प्राप्ति होती है।

श्रावण मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको देवी पार्वतीका 'श्रीदेवी' नामसे पूजनकर गायके सींगका स्पर्श किया जल पीये। शिवभक्तोंको भोजन कराकर सोना और फल दक्षिणाके रूपमें दे। इससे व्रती सर्वलोकेश्वर होकर सभी कामनाओंको प्राप्त करता है।

भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको भगवती पार्वतीका 'हरताली' नामसे पूजन करे। महिषीका दूध पीये। इससे अतुल सौभाग्य प्राप्त होता है और इस लोकमें वह सुख भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है।

आश्विन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको देवी पार्वतीका 'गिरिपुत्री' नामसे पूजनकर तण्डुल-मिश्रित जलका प्राशन करे और दूसरे दिन प्रातः ब्राह्मणोंका पूजन कर चन्दनयुक्त सुवर्ण दक्षिणामें दे। इससे सभी यज्ञोंका फल प्राप्त होता है और वह गौरीलोकमें प्रशंसित होता है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको देवी पार्वतीका 'पद्मोद्भवा' नामसे पूजन करके पञ्चगव्यका प्राशन करे तथा रात्रिमें जागरण करे। प्रभातकालमें सपत्नीक सदाचारी ब्राह्मणोंको भोजन कराये और माल्य, वस्त्र तथा अलंकारोंसे उन शिवभक्त ब्राह्मणोंका पूजन करे। कुमारियोंको भी भोजन कराये।

इस प्रकार वर्षभर व्रत करनेके पश्चात् उद्यापन करना चाहिये। यथाशक्ति सोनेकी उमा-महेश्वरकी प्रतिमा बनाकर उन्हें एक सुन्दर, अलंकृत वितानयुक्त मण्डपमें स्थापित कर सुगन्धित द्रव्य, पत्र, पुष्प, फल, घृत-पक्व-नैवेद्य, दीपमाला, शर्करा, नारियल, दाडिम, बीजपूरक, जीरक, लवण, कुसुंभ, कुंकुम तथा मोदकयुक्त ताम्रपात्रसे देवदेवेशकी विधिवत् पूजाकर अन्तमें क्षमा-प्रार्थना एवं शंख आदि वाद्योंकी ध्वनि करनी चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! इस विधिसे देवी पार्वतीका पूजन करनेपर जो फल प्राप्त होता है, उसका फल वर्णन करनेमें मैं भी समर्थ नहीं हूँ। वह पूर्वोक्त सभी फलोंको प्राप्त करता है, सभी देवताओंके द्वारा पूजित होता है तथा सौ करोड़ कल्पोंतक सभी कामनाओंका उपभोग करता हुआ अन्तमें शिव-सायुज्य प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं। यह व्रत पहले रम्भाके द्वारा किया गया था, इसलिये यह रम्भाव्रत कहलाता है।

(अध्याय २४)

सौभाग्यशयन-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले सौभाग्यशयन-व्रतका वर्णन करता हूँ। जब प्रलयके पूर्वकालमें—'**भूर्भुवः स्वः**' आदि सभी लोक दग्ध हो गये, तब सभी प्राणियोंका सौभाग्य एकत्र होकर वैकुण्ठमें भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें स्थित हो गया। पुनः जब सृष्टि हुई, तब आधा सौभाग्य ब्रह्माजीके पुत्र दक्ष प्रजापतिने पान कर लिया, जिससे उनका रूप-लावण्य, बल और तेज सबसे अधिक हो गया। शेष आधे सौभाग्यसे इक्षु, स्तवराज, निष्पाव (सेम), राजिधान्य (शालि या अगहनी), गोक्षीर तथा उसका विकार, कुसुंभ-पुष्प (केसर), कुंकुम तथा लवण—ये आठ पदार्थ उत्पन्न हुए। इनका नाम सौभाग्याष्टक है[1]।

दक्ष प्रजापतिने पूर्वकालमें जिस सौभाग्यका पान किया, उससे सती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। सभी लोकोंमें उस कन्याका सौन्दर्य अधिक था, इसीसे उसका नाम सती एवं रूपमें अतिशय लालित्य होनेके कारण ललिता पड़ा। त्रैलोक्य-सुन्दरी इस कन्याका विवाह भगवान् शंकरके साथ हुआ। जगन्माता ललितादेवीकी आराधनासे भुक्ति, मुक्ति और स्वर्गका राज्य आदि सब प्राप्त होते हैं।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! जगद्धात्री उन भगवतीकी आराधनाका क्या विधान है? उसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको ललितादेवीका भगवान् शंकरके साथ विवाह हुआ। इस दिन पूर्वाह्णमें तिलमिश्रित जलसे स्नान करे। पञ्चगव्य तथा चन्दनमिश्रित जलके द्वारा गौरी और भगवान् चन्द्रशेखरकी प्रतिमाको स्नान कराकर धूप, दीप, नैवेद्य तथा नाना प्रकारके फलोंद्वारा उन दोनोंकी पूजा करे। इसके बाद इस प्रकार अङ्ग-पूजा करे—

'**ॐ पाटलायै नमः, ॐ शम्भवे नमः**' ऐसा कहकर पार्वती और शम्भुके चरणोंकी, '**त्रियुगायै नमः, ॐ शिवाय नमः**' से दोनोंके गुल्फोंकी; '**विजयायै नमः, ॐ भद्रेश्वराय नमः**' से दोनोंके जानुओंकी, '**ॐ ईशान्यै नमः, ॐ हरिकेशाय नमः**' से कटि-प्रदेशकी, '**ॐ कोटव्यै नमः, ॐ शूलिने नमः**' से कुक्षियोंकी, '**ॐ मङ्गलायै नमः, ॐ शर्वाय नमः**' से उदरकी, '**ॐ उमायै नमः, ॐ रुद्राय नमः**' से कुचद्वयकी, '**ॐ अनन्तायै नमः, ॐ त्रिपुरघ्नाय नमः**' से दोनोंके हाथोंकी पूजा करे। '**ॐ भवान्यै नमः, ॐ भवाय नमः**' से दोनोंके कण्ठकी, '**ॐ गौर्यै नमः, ॐ हराय नमः**' से दोनोंके मुखकी तथा '**ॐ ललितायै नमः, ॐ सर्वात्मने नमः**' से दोनोंके मस्तककी पूजा करे।

इस प्रकार विधिवत् पूजनकर शिव-पार्वतीके सम्मुख सौभाग्याष्टक स्थापित कर '**उमामहेश्वरौ प्रीयेताम्**' कहकर उनकी प्रीतिके लिये निवेदन करे। उस रात्रिमें गोशृंगोदकका प्राशनकर भूमिपर ही शयन करना चाहिये। प्रातः द्विज-दम्पतिकी वस्त्र-माला तथा अलंकारोंसे पूजाकर सुवर्णनिर्मित गौरी तथा भगवान् शंकरकी प्रतिमाके साथ वह सौभाग्याष्टक '**ललिता प्रीयताम्**' ऐसा कहकर ब्राह्मणोंको दे दे।

इस प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक मासकी तृतीयाको पूजा करनी चाहिये। चैत्र आदि बारहों मासोंमें क्रमशः गौके सींगका जल, गोमय, मन्दार-पुष्प, बिल्वपत्र, दही, कुशोदक, दूध, घृत, गोमूत्र, कृष्ण तिल और पञ्चगव्यका प्राशन करना चाहिये। ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, कमला, सती तथा उमा—इन बारह नामोंका क्रमशः बारह महीनोंमें दानके समय '**प्रीयताम्**' कहकर उच्चारण करे। मल्लिका, अशोक, कमल, कदम्ब, उत्पल, मालती, कुड्मल, करवीर, बाण (कचनार या काश), खिला हुआ पुष्प, कुंकुम और सिंदुवार—ये बारह महीनोंकी पूजाके लिये क्रमशः पुष्प कहे गये हैं। जपाकुसुम, कुसुंभ, मालती तथा कुन्दके पुष्प प्रशस्त माने गये हैं। करवीरका पुष्प भगवतीको सदा ही प्रिय है।

इस प्रकार एक वर्षतक व्रत करके सभी सामग्रियोंसे युक्त उत्तम शय्यापर सुवर्णकी उमा-महेश्वरकी तथा सुवर्णनिर्मित गौ तथा वृषभकी प्रतिमा स्थापित कर उनकी

१- इक्षवः स्तवराजं च निष्पावा राजिधान्यकम्।
विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुंकुमं तथा। लवणं चाष्टमं तत्र सौभाग्याष्टकमुच्यते॥ (उत्तरपर्व २५।९)

पूजाकर ब्राह्मणको दे।

इस व्रतके करनेसे सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं और निष्कामभावसे करनेपर नित्यपद प्राप्त होता है। स्त्री, पुरुष अथवा कुमारी जो कोई भी इस सौभाग्यशयन नामक व्रतको भक्तिपूर्वक करते हैं वे देवीके अनुग्रहसे अपनी कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं। जो इस व्रतका माहात्म्य श्रवण करते हैं, वे दिव्य शरीर प्राप्त कर स्वर्गमें जाते हैं। इस व्रतको कामदेव, चन्द्रमा, कुबेर तथा और भी अन्य देवताओंने किया है। अतः सबको यह व्रत करना चाहिये।

(अध्याय २५)

अनन्त-तृतीया तथा रसकल्याणिनी तृतीया-व्रत

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप सौभाग्य एवं आरोग्य-प्रदायक, शत्रुविनाशक तथा भुक्ति-मुक्ति-प्रदायक कोई व्रत बतलाइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! बहुत पहलेकी बात है, असुर-संहारक भगवान् शंकरने अनेक कथाओंके प्रसंगमें पार्वतीजीसे भगवती ललिताकी आराधनाकी जो विधि बतलायी थी, उसी व्रतका मैं वर्णन कर रहा हूँ, यह व्रत सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला तथा नारियोंके लिये अत्यन्त उत्तम है, इसे आप सावधान होकर सुनें—

वैशाख, भाद्रपद अथवा मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको श्वेत सरसोंका उबटन लगाकर स्नान करे। गोरोचन, मोथा, गोमूत्र, दही, गोमय और चन्दन—इन सबको मिलाकर मस्तकमें तिलक करे, क्योंकि यह तिलक सौभाग्य तथा आरोग्यको देनेवाला है तथा भगवती ललिताको बहुत प्रिय है। प्रत्येक मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको सौभाग्यवती स्त्री रक्तवस्त्र, विधवा गेरु आदिसे रँगा वस्त्र और कुमारी शुक्ल वस्त्र धारणकर पूजा करे। भगवती ललिताको पञ्चगव्य अथवा केवल दुग्धसे स्नान कराकर मधु और चन्दन-पुष्पमिश्रित जलसे स्नान कराना चाहिये। स्नानके अनन्तर श्वेत पुष्प, अनेक प्रकारके फल, धनिया, श्वेत जीरा, नमक, गुड़, दूध तथा घीका नैवेद्य अर्पणकर श्वेत अक्षत तथा तिलसे ललितादेवीकी अर्चना करे। प्रत्येक शुक्ल पक्षमें तृतीया तिथिको देवीकी अर्चना करे।

प्रत्येक शुक्ल पक्षमें तृतीया तिथिको देवीकी मूर्तिके चरणसे लेकर मस्तकपर्यन्त पूजन करनेका विधान इस प्रकार है—**'वरदायै नमः'** कहकर दोनों चरणोंकी, **'श्रियै नमः'** कहकर दोनों टखनोंकी, **'अशोकायै नमः'** कहकर दोनों पिंडलियोंकी, **'भवान्यै नमः'** कहकर घुटनोंकी, **'मङ्गलकारिण्यै नमः'** कहकर ऊरुओंकी, **'कामदेव्यै नमः'** कहकर कटिकी, **'पद्मोद्भवायै नमः'** कहकर पेटकी, **'कामश्रियै नमः'** कहकर वक्षःस्थलकी, **'सौभाग्यवासिन्यै नमः'** कहकर हाथोंकी, **'शशिमुखश्रियै नमः'** कहकर बाहुओंकी, **'कन्दर्पवासिन्यै नमः'** कहकर मुखकी, **'पार्वत्यै नमः'** कहकर मुसकानकी, **'गौर्यै नमः'** कहकर नासिकाकी, **'सुनेत्रायै नमः'** कहकर नेत्रोंकी, **'तुष्ट्यै नमः'** कहकर ललाटकी, **'कात्यायन्यै नमः'** कहकर उनके मस्तककी पूजा करे। तदनन्तर **'गौर्यै नमः'**, **'सृष्ट्यै नमः'**, **'कान्त्यै नमः'**, **'श्रियै नमः'**, **'रम्भायै नमः'**, **'ललितायै नमः'** तथा **'वासुदेव्यै नमः'** कहकर देवीके चरणोंमें बार-बार नमस्कार करे। इसी प्रकार विधिपूर्वक पूजाकर मूर्तिके आगे कुंकुमसे कर्णिकासहित द्वादश-दलयुक्त कमल बनाये। उसके पूर्वभागमें गौरी, अग्निकोणमें अपर्णा, दक्षिणमें भवानी, नैर्ऋत्यमें रुद्राणी, पश्चिममें सौम्या, वायव्यमें मदनवासिनी, उत्तरमें पाटला तथा ईशानकोणमें उमाकी स्थापना करे। मध्यमें लक्ष्मी, स्वाहा, स्वधा, तुष्टि, मङ्गला, कुमुदा, सती तथा रुद्राणीकी स्थापना कर कर्णिकाके ऊपर भगवती ललिताकी स्थापना करे। तत्पश्चात् गीत और माङ्गलिक वाद्योंका आयोजन कर श्वेत पुष्प एवं अक्षतसे अर्चना कर उन्हें नमस्कार करे। फिर लाल वस्त्र, रक्त पुष्पोंकी माला और लाल अङ्गरागसे सुवासिनी स्त्रियोंका पूजन करे तथा उनके सिर (माँग) में सिंदूर और केसर लगाये, क्योंकि सिंदूर और केसर सतीदेवीको सदा अभीष्ट हैं।

भाद्रपद मासमें उत्पल (नीलकमल) से, आश्विनमें बन्धुजीव (गुलदुपहरिया)से, कार्तिकमें कमलसे, मार्गशीर्षमें कुन्द-पुष्पसे, पौषमें कुंकुमसे, माघमें सिंदुवार (निर्गुंडी) से, फाल्गुनमें मालतीसे, चैत्रमें मल्लिका तथा अशोकसे, वैशाखमें गन्धपाटल (गुलाब)से, ज्येष्ठमें कमल और मन्दारसे, आषाढ़में चम्पक और कमलसे तथा श्रावणमें कदम्ब

और मालतीके पुष्पोंसे उमादेवीकी पूजा करनी चाहिये। भाद्रपदसे लेकर श्रावण आदि बारह महीनोंमें क्रमशः गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी, कुशोदक, बिल्वपत्र, मदार-पुष्प, गोशृङ्गोदक, पञ्चगव्य और बेलका नैवेद्य अर्पण करे।

प्रत्येक पक्षकी तृतीयामें ब्राह्मण-दम्पतिको निमन्त्रित कर उनमें शिव-पार्वतीकी भावना कर भोजन कराये तथा वस्त्र, माला, चन्दन आदिसे उनकी पूजा करे। पुरुषको दो पीताम्बर तथा स्त्रीको पीली साड़ियाँ प्रदान करे। फिर ब्राह्मणी स्त्रीको सौभाग्याष्टक-पदार्थ तथा ब्राह्मणको फल और सुवर्णनिर्मित कमल देकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

यथा न देवि देवेशस्त्वां परित्यज्य गच्छति।
तथा मां सम्परित्यज्य पतिर्नान्यत्र गच्छतु॥

(उत्तरपर्व २६।३०)

'देवि! जिस प्रकार देवाधिदेव भगवान् महादेव आपको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाते, उसी प्रकार मेरे भी पतिदेव मुझे छोड़कर कहीं न जायँ।'

पुनः कुमुदा, विमला, अनन्ता, भवानी, सुधा, शिवा, ललिता, कमला, गौरी, सती, रम्भा और पार्वती—इन नामोंका उच्चारण करके प्रार्थना करे कि आप क्रमशः भाद्रपद आदि मासोंमें प्रसन्न हों।

व्रतकी समाप्तिमें सुवर्णनिर्मित कमलसहित शय्या-दान करे और चौबीस अथवा बारह द्विज-दम्पतियोंकी पूजा करे। प्रत्येक मासमें ब्राह्मण-दम्पतियोंकी पूजा विधिपूर्वक करे। अपने पूज्य गुरुदेवकी भी पूजा करे।

जो इस अनन्त तृतीया-व्रतका विधिपूर्वक पालन करता है, वह सौ कल्पोंसे भी अधिक समयतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। निर्धन पुरुष भी यदि तीन वर्षोंतक उपवास कर पुष्प और मन्त्र आदिके द्वारा इस व्रतका अनुष्ठान करता है तो उसे भी यही फल प्राप्त होता है। सधवा स्त्री, विधवा अथवा कुमारी जो कोई भी इस व्रतका पालन करती है, वह भी गौरीकी कृपासे उस फलको प्राप्त कर लेती है। जो इस व्रतके माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह भी उत्तम लोकोंको प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब एक व्रत और बता रहा हूँ, उसका नाम है—रसकल्याणिनी तृतीया। यह पापोंका नाश करनेवाला है। यह व्रत माघ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको किया जाता है। उस दिन प्रातःकाल गो-दुग्ध और तिल-मिश्रित जलसे स्नान करे। फिर देवीकी मूर्तिको मधु और गन्नेके रससे स्नान कराये तथा जाती-पुष्पों एवं कुंकुमसे अर्चना करे। अनन्तर पहले दक्षिणाङ्गकी पूजा करे तब वामाङ्गकी। अङ्ग-पूजा इस प्रकार करे—'**ललितायै नमः**' कहकर दोनों चरणों तथा दोनों टखनोंकी, '**सत्यै नमः**' कहकर पिंडलियों और घुटनोंकी, '**श्रियै नमः**' कहकर ऊरुओंकी, '**मदालसायै नमः**' कहकर कटि-प्रदेशकी, '**मदनायै नमः**' कहकर उदरकी, '**मदनवासिन्यै नमः**' कहकर दोनों स्तनोंकी, '**कुमुदायै नमः**' कहकर गरदनकी, '**माधव्यै नमः**' कहकर भुजाओंकी तथा भुजाके अग्रभागकी, '**कमलायै नमः**' कहकर उपस्थकी, '**रुद्राण्यै नमः**' कहकर भ्रू और ललाटकी, '**शंकरायै नमः**' कहकर पलकोंकी, '**विश्ववासिन्यै नमः**' कहकर मुकुटकी, '**कान्त्यै नमः**' कहकर केशपाशकी, '**चक्रायुधधारिण्यै नमः**' कहकर नेत्रोंकी, '**पुष्ट्यै नमः**' कहकर मुखकी, '**उत्कण्ठिन्यै नमः**' कहकर कण्ठकी '**अनन्तायै नमः**' कहकर दोनों कंधोंकी, '**रम्भायै नमः**' कहकर वामबाहुकी, '**विशोकायै नमः**' कहकर दक्षिण बाहुकी, '**मन्मथादित्यै नमः**' कहकर हृदयकी पूजा करे, फिर '**पाटलायै नमः**' कहकर उन्हें बार-बार नमस्कार करे।

इस प्रकार प्रार्थना कर ब्राह्मण-दम्पतिकी गन्ध-माल्यादिसे पूजा कर स्वर्णकमलसहित जलपूर्ण घट प्रदान करे। इसी विधिसे प्रत्येक मासमें पूजन करे और माघ आदि महीनोंमें क्रमशः लवण, गुड़, तेल, राई, मधु, पानक (एक प्रकारका पेय पदार्थ या ताम्बूल), जीरा, दूध, दही, घी, शाक, धनिया और शर्कराका त्याग करे। पूर्वकथित पदार्थोंको उन-उन मासोंमें नहीं खाना चाहिये। प्रत्येक मासमें व्रतकी समाप्तिपर करवेके ऊपर सफेद चावल, गोझिया, मधु, पूरी, घेवर (सेवईं), मण्डक (पिष्टक), दूध, शाक, दही, छः प्रकारका अन्न, भिंडी तथा शाकवर्तिक रखकर ब्राह्मणको दान करना चाहिये। माघ मासमें पूजाके अन्तमें '**कुमुदा प्रीयताम्**' यह कहना चाहिये। इसी प्रकार फाल्गुन आदि महीनोंमें 'माधवी, गौरी, रम्भा, भद्रा, जया, शिवा, उमा, शची, सती, मङ्गला तथा रतिलालसा' का नाम लेकर '**प्रीयताम्**' ऐसा

कहे। सभी मासोंके व्रतमें पञ्चगव्यका प्राशन करे और उपवास करे। तदनन्तर माघ मास आनेपर करकपात्रके ऊपर पञ्चरत्नसे युक्त अङ्गुष्ठमात्रकी पार्वतीकी स्वर्णनिर्मित मूर्तिकी स्थापना करे। वस्त्र, आभूषण और अलंकारसे उसे सुशोभित कर एक बैल और एक गाय **'भवानी प्रीयताम्'** यह कहकर ब्राह्मणको प्रदान करे। इस विधिके अनुसार व्रत करनेवाला सम्पूर्ण पापोंसे उसी क्षण मुक्त हो जाता है और हजार वर्षोंतक दुःखी नहीं होता। इस व्रतके करनेसे हजारों अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त होता है। कुमारी, सधवा, विधवा या दुर्भगा जो भी हो, वह इस व्रतके करनेपर गौरीलोकमें पूजित होती है। इस विधानको सुनने या इस व्रतको करनेके लिये औरोंको उपदेश देनेसे भी सभी पापोंसे छुटकारा मिलता है और वह पार्वतीके लोकमें निवास करता है।

(अध्याय २६)

आर्द्रानन्दकरी तृतीयाव्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध, आनन्द प्रदान करनेवाले, पापोंका नाश करनेवाले आर्द्रानन्दकरी तृतीयाव्रतका वर्णन करता हूँ। जब किसी भी महीनेमें शुक्ल पक्षकी तृतीयाको पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ अथवा रोहिणी या मृगशिरा नक्षत्र हो तो उस दिन यह व्रत करना चाहिये। उस दिन कुश और गन्धोदकसे स्नानकर श्वेत चन्दन, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारणकर उत्तम सिंहासनपर शिव-पार्वतीकी प्रतिमा स्थापित करे। सुगन्धित श्वेत पुष्प, चन्दन आदिसे उनकी पूजा करे। **'वासुदेव्यै नमः-शंकराय नमः'** से गौरी-शंकरके दोनों चरणोंकी, **'शोकविनाशिन्यै नमः-आनन्दाय नमः'** से पिंडलियोंकी, **'रम्भायै नमः-शिवाय नमः'** से ऊरुकी, **'आदित्यै नमः-शूलपाणये नमः'** से कटिकी, **'माधव्यै नमः-भवाय नमः'** से नाभिकी, **'आनन्दकारिण्यै नमः-इन्दुधारिणे नमः'** से दोनों स्तनोंकी, **'उत्कण्ठिन्यै नमः-नीलकण्ठाय नमः'**से कण्ठकी, **'उत्पलधारिण्यै नमः-रुद्राय नमः'** से दोनों हाथोंकी, **'परिरम्भिण्यै नमः-नृत्यशीलाय नमः'** से दोनों भुजाओंकी, **'विलासिन्यै नमः-वृषेशाय नमः'** से मुखकी, **'सस्मरशीलायै नमः-विश्ववक्त्राय नमः'** से मुसकानकी, **'मदनवासिन्यै नमः-विश्वधाम्ने नमः'** से नेत्रोंकी, **'रतिप्रियायै नमः-ताण्डवेशाय नमः'** से भुवोंकी, **'इन्द्राण्यै नमः-हव्यवाहाय नमः'** से ललाटकी तथा **'स्वाहायै नमः-पञ्चशराय नमः'** कहकर मुकुटकी पूजा करे। तदनन्तर नीचे लिखे मन्त्रसे पार्वती-परमेश्वरकी प्रार्थना करे—

विश्वकायौ विश्वमुखौ विश्वपादकरौ शिवौ।
प्रसन्नवदनौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

(उत्तरपर्व २७। १३)

'विश्व जिनका शरीर है, जो विश्वके मुख, पाद और हस्तस्वरूप तथा मङ्गलकारक हैं, जिनके मुखपर प्रसन्नता झलकती रहती है, उन पार्वती और परमेश्वरकी मैं वन्दना करता हूँ।'

इस प्रकार पूजनकर मूर्तियोंके आगे अनेक प्रकारके कमल, शङ्ख, स्वस्तिक, चक्र आदिका चित्रण करे। गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, घी, कुशोदक, गोशृंगोदक, बिल्वपत्र, घड़ेका जल, खसका जल, यवचूर्णका जल तथा तिलोदकका क्रमशः मार्गशीर्ष आदि महीनोंमें प्राशन करे, अनन्तर शयन करे। यह प्राशन प्रत्येक पक्षकी द्वितीयाको करना चाहिये। भगवान् उमा-महेश्वरकी पूजाके लिये सर्वत्र श्वेत पुष्पको श्रेष्ठ माना गया है। दानके समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

गौरी मे प्रीयतां नित्यमघनाशाय मङ्गला।
सौभाग्यायास्तु ललिता भवानी सर्वसिद्धये॥

(उत्तरपर्व २७। १९)

'गौरी नित्य मुझपर प्रसन्न रहें, मङ्गला मेरे पापोंका विनाश करें। ललिता मुझे सौभाग्य प्रदान करें और भवानी मुझे सब सिद्धियाँ प्रदान करें।'

वर्षके अन्तमें लवण तथा गुड़से परिपूर्ण घट, नेत्रपट्ट, चन्दन, दो श्वेत वस्त्र, ईख और विभिन्न फलोंके साथ सुवर्णकी शिव-पार्वतीकी प्रतिमा सपत्नीक ब्राह्मणको दे और **'गौरी मे प्रीयताम्'** ऐसा कहे। शय्यादान भी करे।

इस आर्द्रानन्दकरी तृतीयाका व्रत करनेसे पुरुष शिवलोकमें निवास करता है और इस लोकमें भी धन, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और सुखको प्राप्त करता है। इस व्रतको करनेवालोंको कभी शोक नहीं होता। दोनों पक्षोंमें विधिवत् पूजनसहित इस व्रतको करना चाहिये। ऐसा करनेसे रुद्राणीके

लोककी प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति इस विधानको सुनता और सुनाता है, वह गन्धर्वोंसे पूजित होता हुआ इन्द्रलोकमें निवास करता है। जो कोई स्त्री इस व्रतको करती है, वह संसारके सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें अपने पतिके साथ गौरीके लोकमें निवास करती है।

(अध्याय २७)

चैत्र, भाद्रपद और माघ शुक्ल तृतीया-व्रतका विधान और फल

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब आप चैत्र, भाद्रपद तथा माघके शुक्ल तृतीया-व्रतोंके विषयमें सुनें। इन व्रतोंसे रूप, सौभाग्य तथा उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें आप एक वृत्तान्त सुनें—

भगवती पार्वतीकी जया और विजया नामकी दो सखियाँ थीं। किसी समय मुनि-कन्याओंने उन दोनोंसे पूछा कि आप दोनों तो भगवती पार्वतीके साथ सदा निवास करती हैं। आप सब यह बतायें कि किस दिन, किन उपचारों और मन्त्रोंसे पूजा करनेसे भगवती पार्वती प्रसन्न होती हैं।

इसपर जया बोली—मैं सभी कामनाओंको सिद्ध करनेवाले व्रतका वर्णन करती हूँ। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको प्रातःकाल उठकर दन्तधावन आदि क्रियाओंसे निवृत्त होकर इस व्रतके नियमको ग्रहण करे। कुंकुम, सिंदूर, रक्त वस्त्र, ताम्बूल आदि सौभाग्यके चिह्नोंको धारणकर भक्तिपूर्वक देवीकी पूजा करे। प्रथम अतिशय सुन्दर एक मण्डप बनवाकर उसके मध्यमें एक मनोहर मणिजटित वेदीकी रचना करे। एक हस्त प्रमाणका कुण्ड बनाये, तदनन्तर स्नान कर उत्तम वस्त्र धारणकर देवताओं और पितरोंकी पूजा कर देवीके मण्डपमें जाय और पार्वती, ललिता, गौरी, गान्धारी, शांकरी, शिवा, उमा और सती—इन आठ नामोंसे भगवतीकी पूजा करे। कुंकुम, कपूर, अगरु, चन्दन आदिका लेपन करे। अनेक प्रकारके सुगन्धित पुष्प चढ़ाकर धूप, दीप आदि उपचार अर्पण करे। लड्डू, अनेक प्रकारके अपूप तथा विभिन्न प्रकारके घृतपक्व नैवेद्य, जीरक, कुंकुम, नमक, ईख और ईखका रस, हल्दी, नारिकेल, आमलक, अनार, कूष्माण्ड, कर्कटी, नारंगी, कटहल, बिजौरा नींबू आदि ऋतुफल भगवतीको निवेदित करे। गृहस्थीके उपकरण—ओखली, सिल, सूप, टोकरी आदि तथा शरीरको अलंकृत करनेकी सामग्रियाँ भी निवेदित करे। शङ्ख, तूर्य, मृदङ्ग आदिके शब्द और उत्तम गीतोंके साथ महोत्सव करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार पार्वतीजीकी पूजा करके कुमारी कन्याएँ सौभाग्यकी अभिलाषासे प्रदोषके समय नये कलशोंमें जल लाकर उससे स्नान करें। पुनः पूर्वोक्त विधिसे भगवतीकी पूजा करे। प्रत्येक प्रहरमें पूजा और घृतसमन्वित तिलोंसे हवन करे। भगवतीके सम्मुख पद्मासन लगाकर रात्रि-जागरण करे। नृत्यसे भगवान् शंकर, गीतसे भगवती पार्वती और भक्तिसे सभी देवता प्रसन्न होते हैं। ताम्बूल, कुंकुम और उत्तम-उत्तम पुष्प सुवासिनी स्त्रीको अर्पित करे।

प्रातः-स्नानके अनन्तर पार्वतीजीकी पूजाकर गुड़, लवण, कुंकुम, कपूर, अगरु, चन्दन आदि द्रव्योंसे यथाशक्ति तुलादान करे और देवीसे क्षमा-प्रार्थना करे। ब्राह्मणों तथा सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन कराये। नैवेद्यका वितरण करे। इससे उसका कर्म सफल हो जाता है।

भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको भी चैत्र-तृतीयाकी भाँति व्रत एवं पूजन करना चाहिये। इसमें सप्तधान्योंसे एक सूपमें उमाकी मूर्ति बनाकर पूजा करनी चाहिये तथा गोमूत्र-प्राशन करना चाहिये। यह व्रत उत्तम सौन्दर्य-प्रदायक है।

इसी प्रकार माघ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको चैत्र-तृतीयाकी भाँति पूर्वोक्त क्रियाओंको करनेके पश्चात् कुन्द-पुष्पोंसे तुलादान करे तथा चतुर्थीको गणेशजीका भी पूजन करे।

इस विधिसे जो स्त्री व्रत और तुलादान करती है, वह अपने पतिके साथ इन्द्रलोकमें निवास कर ब्रह्मलोकमें और वहाँसे शिवलोकमें जाती है। इस लोकमें भी वह रूप, सौभाग्य, संतान, धन आदि प्राप्त करती है। उसके वंशमें दुर्भगा कन्या और दुर्विनीत पुत्र कभी भी उत्पन्न नहीं होता। घरमें दारिद्र्य, रोग, शोक आदि नहीं होते। जो कन्या इस व्रतको करती है तथा ब्राह्मणकी पूजा करती है, वह अभीष्ट वर प्राप्त कर संसारका सुख भोगती है। (अध्याय २८)

आनन्तर्य-तृतीयाव्रत

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आपने शुक्ल पक्षके अनेक तृतीया-व्रतोंको बतलाया। अब आप आनन्तर्य-व्रतका स्वरूप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! ब्रह्मा, विष्णु और महेशने देवताओंको बतलाया है कि यह आनन्तर्यव्रत अत्यन्त गुह्य है, फिर भी मैं आपसे इस व्रतका वर्णन करता हूँ। इस व्रतका आरम्भ मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयासे करना चाहिये। द्वितीयाके दिन रातमें व्रतकर तृतीयाको उपवास करे। गन्ध, पुष्प आदिसे उमादेवीका पूजनकर शर्करा और पूरीका नैवेद्य समर्पित करे। स्वयं दहीका प्राशन कर रात्रिमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराये। इस विधिसे जो स्त्री व्रत करती है, वह सम्पूर्ण अश्वमेध-यज्ञके फलको प्राप्त करती है।

मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी तृतीयाको भगवती कात्यायनीके पूजनमें नारिकेल समर्पित कर दुग्धका प्राशन करे। काम-क्रोधका त्यागकर रात्रिमें शयन करे एवं प्रातः उठकर ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। ऐसा करनेसे अनेक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

पौष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको उपवासकर गौरीका पूजन करे, लड्डूका नैवेद्य निवेदित करे और घृतका प्राशनकर शयन करे। प्रातः उठकर सपत्नीक ब्राह्मणका पूजन करे। इससे महान् यज्ञका फल मिलता है। इसी प्रकार पौषकी कृष्ण-तृतीयाको भगवती पार्वतीकी पूजा करे और नैवेद्य अर्पण करे, रातमें पूरी और गोमयका प्राशन करना चाहिये। प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। इससे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

माघ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको भगवती पार्वतीका 'सुरनायिका' नामसे पूजनकर खाँड़ और बिल्वका नैवेद्य समर्पित करे। कुशोदकका प्राशन कर जितेन्द्रिय रहे, भूमिपर शयन करे। प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराये। इससे सुवर्णदानका फल मिलता है। इसी प्रकार माघ-कृष्ण-तृतीयाको पवित्र होकर 'आर्या' नामसे पार्वतीका पूजनकर भक्ष्य पदार्थोंका नैवेद्य समर्पित कर मधुका प्राशन करे। देवीके आगे शयन करे, दूसरे दिन भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। इससे वाजपेय-यज्ञका फल मिलता है।

फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको पवित्र होकर उपवास करे और देवी पार्वतीका 'भद्रा' नामसे पूजनकर कासारका नैवेद्य निवेदित करे। शर्कराका प्राशन कर रात्रिमें शयन करे। प्रातःकाल सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे सौत्रामणि-यागका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार कृष्ण पक्षकी तृतीयामें 'विशालाक्षी' नामसे भगवती पार्वतीका पूजन कर पूरीका भोग लगाये। जल तथा चावल निवेदित कर भूमिपर शयन करे। प्रातःकाल सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको जितेन्द्रिय और पवित्र होकर भगवती पार्वतीका 'श्री' नामसे पूजन करे। वटक (दहीबड़ा) का नैवेद्य निवेदित करे, बिल्वपत्रका प्राशन करे एवं देवीका ध्यान करता करता हुआ विश्राम करे। प्रातःकाल भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे, इससे राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार कृष्ण-तृतीयाको देवीकी 'काली' नामसे पूजा करे। अपूपका नैवेद्य निवेदित करे, पीठीका प्राशन करे और रात्रिमें विश्राम करे। प्रातःकाल सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे अतिरात्र-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको जितेन्द्रिय होकर उपवास करे। भगवती पार्वतीकी 'चण्डिका' नामसे पूजा कर मधुक निवेदित करे। श्रीखण्ड-चन्दनसे लिप्त कर देवीके सम्मुख विश्राम करे। प्रातःकाल सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करे। इससे चान्द्रायणव्रतका फल मिलता है। ऐसे ही कृष्ण पक्षकी तृतीयाको विमत्सर होकर उपवास करे। देवीकी 'कालरात्रि' नामसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदिसे पूजा करे। घी तथा जौके आटेसे बना नैवेद्य निवेदित करे। तिलका प्राशन कर रात्रिमें शयन करे। प्रातःकाल सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे अतिकृच्छ्रव्रतका फल प्राप्त होता है।

ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको उपवासकर पार्वतीकी पूजा 'शुभा' नामसे करे तथा आम्र-फलका नैवेद्य निवेदित करे एवं आँवलेका प्राशन कर गौरीका ध्यान करते हुए सुखपूर्वक सोये। प्रातःकाल सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन

कराये। इससे तीर्थयात्राका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार ज्येष्ठ कृष्ण तृतीयाको सुवासिनी स्त्री उपवास करे। 'स्कन्दमाता' की पूजा कर भोग लगाये। पञ्चगव्यका प्राशन कर देवीके सामने शयन करे। प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे। इससे कन्यादानका फल प्राप्त होता है।

आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको सतीका पूजन कर दहीका नैवेद्य समर्पित करे। गोशृङ्ग-जलका प्राशन कर शयन करे। प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे, इससे कन्यादानका फल प्राप्त होता है। पुनः आषाढ़ मासके कृष्ण पक्षकी तृतीयामें कूष्माण्डीका पूजन कर गुड़ और घृतके साथ सत्तूका नैवेद्य अर्पित करे। कुशोदकका प्राशन कर शयन करे। प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे। इससे गोसहस्र-दानका फल प्राप्त होता है।

श्रावण मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको उपवासकर चन्द्र-घण्टाका पूजन करे। कुल्माष (कुलथी) को नैवेद्य-रूपमें समर्पित कर पुष्पोदकका प्राशन कर शयन करे, प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। ऐसा करनेसे अभयदानका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार श्रावणकी कृष्ण-तृतीयाको 'रुद्राणी' नामसे पार्वतीका पूजन कर सिद्ध पिण्ड आदि नैवेद्यके रूपमें समर्पित करे। तिलकुटका प्राशन करे। प्रातः सपत्नीक ब्राह्मणका पूजन करे, इससे इष्टापूर्त-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयामें 'हिमाद्रिजा' नामसे पार्वतीका पूजन कर गोधूमका नैवेद्य समर्पित करे। श्वेत चन्दन तथा गन्धोदकका प्राशन कर शयन करे। प्रातः सपत्नीक ब्राह्मणका पूजन करे, इससे सैकड़ों उद्यान लगानेका फल प्राप्त होता है। भाद्रपद कृष्ण-तृतीयाको दुर्गाकी पूजा करे। गुड़युक्त पिष्ट और फलका नैवेद्य समर्पित करे, गोमूत्रका प्राशन कर शयन करे। प्रातः सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करे। इससे सदावर्तका फल प्राप्त होता है।

आश्विनमें उपवासकर 'नारायणी' नामसे पार्वतीका पूजनकर पक्वान्नका नैवेद्य समर्पित करे। रक्त चन्दनका प्राशन कर रात्रिमें शयन करे। प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। इससे अग्निहोत्र-यज्ञका फल प्राप्त होता है। आश्विन कृष्ण-तृतीयाको 'स्वस्ति' नामसे पार्वतीकी पूजा करे। गुड़के साथ शाल्योदन समर्पित करे। कुसुंभके बीजोंका प्राशन कर रात्रिमें विश्राम करे। प्रातःकाल सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे गवाह्निक (अन्न, घास आदिसे दिनभर गो-सेवा करने) का फल प्राप्त होता है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको 'स्वाहा' नामसे पार्वतीका पूजनकर घृत, खाँड़ और खीरका नैवेद्य समर्पित करे। कुंकुम, केसरका प्राशन कर शयन करे और प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे। इससे एकभुक्त-व्रतका फल प्राप्त होता है। कार्तिककी कृष्ण-तृतीयाको 'स्वधा' नामसे पार्वतीका पूजनकर मूँगकी खिचड़ीका नैवेद्य समर्पित करे और घीका प्राशनकर रातमें शयन करे। प्रातः सपत्नीक ब्राह्मणका पूजन करे। इससे नक्तव्रतका फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार वर्षभर प्रत्येक मास एवं पक्षकी तृतीयाको व्रतादि करनेसे व्रती सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त और पवित्र हो जाता है। व्रत पूर्ण कर उद्यापन इस प्रकार करना चाहिये—

मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको उपवासकर शास्त्र-रीतिसे एक मण्डप बनाकर सुवर्णकी शिव-पार्वतीकी प्रतिमा बनवाये। उन प्रतिमाओंके नेत्रोंमें मोती और नीलम लगाये। ओष्ठोंमें मूँगा और कानोंमें रत्नकुण्डल पहनाये। भगवान् शंकरको यज्ञोपवीत और पार्वतीजीको हारसे अलंकृत कर क्रमशः श्वेत और रक्त वस्त्र पहनाये। चतुःसम (एक गन्ध-द्रव्य जो कस्तूरी, चन्दन, कुंकुम और कपूरके समान-भागके योगसे बनता है) से सुशोभित करे। तदनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप आदि उपचारोंसे मण्डलमें पूजनकर अगरुका हवन करे। इसमें अपराजिता भगवतीकी अर्चना करे। मृत्तिकाका प्राशन कर रातमें जागरण करे। गीत, नृत्य आदि उत्सव करे। सूर्योदयपर्यन्त जप करे। प्रातः उत्तम मण्डल बनाकर मण्डलमें शय्यापर शिव-पार्वतीकी प्रतिमा स्थापित करे। वितान, ध्वज, माला, किंकिणी, दर्पण आदिसे मण्डपको सुशोभित करे, अनन्तर शिव-पार्वतीकी पूजा करे। सपत्नीक ब्राह्मणको भोजनादिसे संतुष्ट करे। पान निवेदित कर प्रार्थना करे कि 'हे भगवान् शिव-पार्वती ! आप दोनों मुझपर प्रसन्न होवें।' इसके बाद उच्छिष्ट स्थानको पवित्र कर ले। तत्पश्चात् सुवर्णसे मण्डित सींग तथा चाँदीसे मण्डित खुरवाली, कांस्य-दोहनपात्रसे युक्त, लाल वस्त्रसे आच्छादित, घण्टा आदि

आभरणोंसे युक्त पयस्विनी लाल रंगकी गौकी प्रदक्षिणा कर दक्षिणाके साथ जूता, खड़ाऊँ, छाता एवं अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ गुरुको समर्पित करे। पुनः शिव-पार्वतीको प्रणाम कर गुरुके चरणोंमें भी प्रणाम कर क्षमा माँगे। इस प्रकार इस आनन्तर्य-व्रतकी समाप्ति करे। जो स्त्री या पुरुष इस व्रतको करता है, वह दिव्य विमानमें बैठकर गन्धर्वलोक, यक्षलोक, देवलोक तथा विष्णुलोकमें जाता है। वहाँ बहुत समयतक उत्तम भोगोंको भोगकर शिवलोकको प्राप्त करता है और फिर भूमिपर जन्म लेकर प्रतापी चक्रवर्ती राजा होता है। व्रत करनेवाली उसकी स्त्री उसकी पटरानी होती है। जिस प्रकार शिवजीके साथ पार्वती, इन्द्रके साथ शची, वसिष्ठके साथ अरुन्धती, विष्णुके साथ लक्ष्मी, ब्रह्माके साथ सावित्री सदा विराजमान रहती है, उसी प्रकार वह नारी भी जन्म-जन्ममें अपने पतिके साथ सुख भोगती है। इस व्रतको करनेवाली नारी पतिसे वियुक्त नहीं होती तथा पुत्र, पौत्र आदि सभी वस्तुओंको प्राप्त करती है। (अध्याय २९)

अक्षय-तृतीयाव्रतके प्रसंगमें धर्म वणिक्‌का चरित्र

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब आप वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी अक्षय-तृतीयाकी कथा सुनें। इस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, तर्पण आदि जो भी कर्म किये जाते हैं, वे सब अक्षय हो जाते हैं[1]। सत्ययुगका आरम्भ भी इसी तिथिको हुआ था, इसलिये इसे कृतयुगादि तृतीया भी कहते हैं। यह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली एवं सभी सुखोंको प्रदान करनेवाली है। इस सम्बन्धमें एक आख्यान प्रसिद्ध है, आप उसे सुनें—

शाकल नगरमें प्रिय और सत्यवादी, देवता और ब्राह्मणोंका पूजक धर्म नामक एक धर्मात्मा वणिक् रहता था। उसने एक दिन कथाप्रसंगमें सुना कि यदि वैशाख शुक्लकी तृतीया रोहिणी नक्षत्र एवं बुधवारसे युक्त हो तो उस दिनका दिया हुआ दान अक्षय हो जाता है। यह सुनकर उसने अक्षय तृतीयाके दिन गङ्गामें अपने पितरोंका तर्पण किया और घर आकर जल और अन्नसे पूर्ण घट, सत्तू, दही, चना, गेहूँ, गुड़, ईख, खाँड़ और सुवर्ण श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको दान दिया। कुटुम्बमें आसक्त रहनेवाली उसकी स्त्री उसे बार-बार रोकती थी, किंतु वह अक्षय तृतीयाको अवश्य ही दान करता था। कुछ समयके बाद उसका देहान्त हो गया। अगले जन्ममें उसका जन्म कुशावती (द्वारका) नगरीमें हुआ और वह वहाँका राजा बना। दानके प्रभावसे उसके ऐश्वर्य और धनकी कोई सीमा न थी। उसने पुनः बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ किये। वह ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, सुवर्ण आदि देता रहता और दीन-दुखियोंको भी संतुष्ट करता, किंतु उसके धनका कभी ह्रास नहीं होता। यह उसके पूर्वजन्ममें अक्षय तृतीयाके दिन दान देनेका फल था। महाराज! इस तृतीयाका फल अक्षय है। अब इस व्रतका विधान सुनें—सभी रस, अन्न, शहद, जलसे भरे घड़े, तरह-तरहके फल, जूता आदि तथा ग्रीष्म ऋतुमें उपयुक्त सामग्री, अन्न, गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र जो पदार्थ अपनेको प्रिय और उत्तम लगें, उन्हें ब्राह्मणोंको देना चाहिये। यह अतिशय रहस्यकी बात मैंने आपको बतलायी। इस तिथिमें किये गये कर्मका क्षय नहीं होता, इसीलिये मुनियोंने इसका नाम अक्षय-तृतीया रखा है।

(अध्याय ३०—३३)

[1] १-मत्स्यपुराणके अध्याय ५५ में इसके विषयमें एक दूसरी कथा आती है, जिसमें कहा गया है कि 'इस दिन अक्षतसे भगवान् विष्णुकी पूजा करनेसे वे विशेष प्रसन्न होते हैं और उसकी संतति भी अक्षय बनी रहती है—

अक्षया संततिस्तस्य तस्यां सुकृतमक्षयम्। अक्षतैः पूज्यते विष्णुस्तेन साक्षया स्मृता॥
अक्षतैस्तु नरा स्नाता विष्णोर्दत्त्वा तथाक्षतान्॥ (मत्स्यपुराण ६५।४)

(सामान्यतया अक्षतके द्वारा विष्णुपूजन निषिद्ध है, पर केवल इस दिन अक्षतसे उनकी पूजा की जाती है। अन्यत्र अक्षतके स्थानपर सफेद तिलका विधान है।)

शान्तिव्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं पञ्चमी-कल्पमें शान्तिव्रतका वर्णन करता हूँ। इसके करनेसे गृहस्थोंको सब प्रकारकी शान्ति प्राप्त होती है। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीसे लेकर एक वर्षपर्यन्त खट्टे पदार्थोंका भोजन न करे। नक्तव्रत कर शेषनागके ऊपर स्थित भगवान् विष्णुका पूजन करे और निम्नलिखित मन्त्रोंसे उनके अङ्गोंकी पूजा करे—

'**ॐ अनन्ताय नमः पादौ पूजयामि**'से भगवान् विष्णुके दोनों पैरोंकी, '**ॐ धृतराष्ट्राय नमः कटिं पूजयामि**'से कटि-प्रदेशकी, '**ॐ तक्षकाय नमः उदरं पूजयामि**'से उदरदेशकी, '**ॐ कर्कोटकाय नमः उरः पूजयामि**'से हृदयकी, '**ॐ पद्माय नमः कर्णौ पूजयामि**'से दोनों कानोंकी, '**ॐ महापद्माय नमः दोर्युगं पूजयामि**'से दोनों भुजाओंकी, '**ॐ शङ्खपालाय नमः वक्षः पूजयामि**'से वक्षःस्थलकी तथा '**ॐ कुलिकाय नमः शिरः पूजयामि**' से उनके मस्तककी पूजा करे। तदनन्तर मौन हो भगवान् विष्णुको दूधसे स्नान कराये, फिर दुग्ध और तिलोंसे हवन करे। वर्ष पूरा होनेपर नारायण तथा शेषनागकी सुवर्णप्रतिमा बनवाकर उनका पूजन कर ब्राह्मणको दान दे, साथ ही उसे सवत्सा गौ, पायससे पूर्ण कांस्यपात्र, दो वस्त्र और यथाशक्ति सुवर्ण भी प्रदान करे। तत्पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराकर व्रत समाप्त करे। जो व्यक्ति इस व्रतको भक्तिपूर्वक करता है, वह नित्य शान्ति प्राप्त करता है और उसे नागोंका कभी भी कोई भय नहीं रहता।

(अध्याय ३४)

सरस्वतीव्रतका विधान और फल

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! किस व्रतके करनेसे वाणी मधुर होती है ? प्राणीको सौभाग्य प्राप्त होता है ? विद्यामें अतिकौशल प्राप्त होता है ?, पति-पत्नीका और बन्धुजनोंका कभी वियोग नहीं होता तथा दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है ? उसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! आपने बहुत उत्तम बात पूछी है। इन फलोंको देनेवाले सारस्वतव्रतका विधान आप सुनें। इस व्रतके कीर्तनमात्रसे भी भगवती सरस्वती प्रसन्न हो जाती हैं। इस व्रतको वत्सरारम्भमें चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको आदित्यवारसे प्रारम्भ करना चाहिये। इस दिन भक्तिपूर्वक ब्राह्मणके द्वारा स्वस्तिवाचन कराकर गन्ध, श्वेत माला, शुक्ल अक्षत और श्वेत वस्त्रादि उपचारोंसे, वीणा, अक्षमाला, कमण्डलु तथा पुस्तक धारण की हुई एवं सभी अलंकारोंसे अलंकृत भगवती गायत्रीका पूजन करे। फिर हाथ जोड़कर इन मन्त्रोंसे प्रार्थना करे—

यथा तु देवि भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
त्वां परित्यज्य नो तिष्ठेत् तथा भव वरप्रदा॥
वेदशास्त्राणि सर्वाणि नृत्यगीतादिकं च यत्।
वाहितं यत् त्वया देवि तथा मे सन्तु सिद्धयः॥
लक्ष्मीर्मेधा वरा रिष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा मतिः।
एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वति॥

(उत्तरपर्व ३५।७—९)

'देवि ! जिस प्रकार लोकपितामह ब्रह्मा आपका परित्यागकर कभी अलग नहीं रहते, उसी प्रकार आप हमें भी वर दीजिये कि हमारा भी कभी अपने परिवारके लोगोंसे वियोग न हो। हे देवि ! वेदादि सम्पूर्ण शास्त्र तथा नृत्य-गीतादि जो भी विद्याएँ हैं, वे सभी आपके अधिष्ठानमें ही रहती हैं, वे सभी मुझे प्राप्त हों। हे भगवती सरस्वती देवि ! आप अपनी—लक्ष्मी, मेधा, वरा, रिष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा तथा मति—इन आठ मूर्तियोंके द्वारा मेरी रक्षा करें।'

इस विधिसे प्रार्थनाकर मौन होकर भोजन करे। प्रत्येक मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको सुवासिनी स्त्रियोंका भी पूजन करे और उन्हें तिल तथा चावल, घृतपात्र, दुग्ध तथा सुवर्ण प्रदान करे और देते समय '**गायत्री प्रीयताम्**' ऐसा उच्चारण करे। सायंकाल मौन रहे। इस तरह वर्षभर व्रत करे। व्रतकी समाप्तिपर ब्राह्मणको भोजनके लिये पूर्णपात्रमें चावल भरकर प्रदान करे। साथ ही दो श्वेत वस्त्र, सवत्सा गौ, चन्दन आदि भी दे। देवीको निवेदित किये गये वितान, घण्टा, अन्न आदि पदार्थ भी ब्राह्मणको दान कर दे। पूज्य गुरुका भी वस्त्र, माल्य तथा धन-धान्यसे पूजन करे। इस विधिसे जो पुरुष सारस्वत

व्रत करता है, वह विद्वान्, धनवान् और मधुर कण्ठवाला होता है। भगवती सरस्वतीकी कृपासे वह वेदव्यासके समान कवि हो जाता है। नारी भी यदि इस व्रतका पालन करे तो उसे भी पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है। (अध्याय ३५-३६)

श्रीपञ्चमीव्रत-कथा

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! तीनों लोकोंमें लक्ष्मी दुर्लभ है; पर व्रत, होम, तप, जप, नमस्कार आदि किस कर्मके करनेसे स्थिर लक्ष्मी प्राप्त होती है ? आप सब कुछ जाननेवाले हैं, कृपाकर उसका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! सुना जाता है कि प्राचीन कालमें भृगुमुनिकी 'ख्याति' नामकी स्त्रीसे लक्ष्मीका आविर्भाव हुआ। भृगुने विष्णुभगवान्‌के साथ लक्ष्मीका विवाह कर दिया। लक्ष्मी भी संसारके पति भगवान् विष्णुको वरके रूपमें प्राप्तकर अपनेको कृतार्थ मानकर अपने कृपाकटाक्षसे सम्पूर्ण जगत्‌को आनन्दित करने लगीं। उन्हींसे प्रजाओंमें क्षेम और सुभिक्ष होने लगा। सभी उपद्रव शान्त हो गये। ब्राह्मण हवन करने लगे, देवगण हविष्य-भोजन प्राप्त करने लगे और राजा प्रसन्नतापूर्वक चारों वर्णोंकी रक्षा करने लगे। इस प्रकार देवगणोंको अतीव आनन्दमें निमग्न देखकर विरोचन आदि दैत्यगण लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये तपस्या एवं यज्ञ-यागादि करने लगे। वे सब भी सदाचारी और धार्मिक हो गये। फिर दैत्योंके पराक्रमसे सारा संसार आक्रान्त हो गया।

कुछ समय बाद देवताओंको लक्ष्मीका मद हो गया, उन लोगोंके शौच, पवित्रता, सत्यता और सभी उत्तम आचार नष्ट होने लगे। देवताओंको सत्य आदि शील तथा पवित्रतासे रहित देखकर लक्ष्मी दैत्योंके पास चली गयी और देवगण श्रीविहीन हो गये। दैत्योंको भी लक्ष्मीकी प्राप्ति होते ही बहुत गर्व हो गया और दैत्यगण परस्पर कहने लगे कि 'मैं ही देवता हूँ, मैं ही यज्ञ हूँ, मैं ही ब्राह्मण हूँ, सम्पूर्ण जगत् मेरा ही स्वरूप है, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र आदि सब मैं ही हूँ।' इस प्रकार अतिशय अहंकारयुक्त हो वे अनेक प्रकारका अनर्थ करने लगे। अहंकारमति दैत्योंकी भी यह दशा देखकर व्याकुल हो वह भृगुकन्या भगवती लक्ष्मी क्षीरसागरमें प्रविष्ट हो गयीं। क्षीरसागरमें लक्ष्मीके प्रवेश करनेसे तीनों लोक श्रीविहीन होकर अत्यन्त निस्तेज-से हो गये।

देवराज इन्द्रने अपने गुरु बृहस्पतिसे पूछा—महाराज ! कोई ऐसा व्रत बतायें, जिसका अनुष्ठान करनेसे पुनः स्थिर लक्ष्मीकी प्राप्ति हो जाय।

देवगुरु बृहस्पति बोले—देवेन्द्र ! मैं इस सम्बन्धमें आपको अत्यन्त गोपनीय श्रीपञ्चमी-व्रतका विधान बतलाता हूँ। इसके करनेसे आपका अभीष्ट सिद्ध होगा। ऐसा कहकर देवगुरु बृहस्पतिने देवराज इन्द्रको श्रीपञ्चमी-व्रतकी साङ्गोपाङ्ग विधि बतलायी। तदनुसार इन्द्रने उसका विधिवत् आचरण किया। इन्द्रको व्रत करते देखकर विष्णु आदि सभी देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, विद्याधर, नाग, ब्राह्मण, ऋषिगण तथा राजागण भी यह व्रत करने लगे। कुछ कालके अनन्तर व्रत समाप्तकर उत्तम बल और तेज पाकर सबने विचार किया कि समुद्रको मथकर लक्ष्मी और अमृतको ग्रहण करना चाहिये। यह विचारकर देवता और असुर मन्दरपर्वतको मथानी और वासुकिनागको रस्सी बनाकर समुद्र-मन्थन करने लगे। फलस्वरूप सर्वप्रथम शीतल किरणोंवाले अति उज्ज्वल चन्द्रमा प्रकट हुए, फिर देवी लक्ष्मीका प्रादुर्भाव हुआ। लक्ष्मीके कृपाकटाक्षको पाकर सभी देवता और दैत्य परम आनन्दित हो गये। भगवती लक्ष्मीने भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलका आश्रय ग्रहण किया, भगवान् विष्णुने इस व्रतको किया था, फलस्वरूप लक्ष्मीने इनका वरण किया। इन्द्रने राजस-भावसे व्रत किया था, इसलिये उन्होंने त्रिभुवनका राज्य प्राप्त किया। दैत्योंने तामस-भावसे व्रत किया था, इसलिये ऐश्वर्य पाकर भी वे ऐश्वर्यहीन हो गये। महाराज ! इस प्रकार इस व्रतके प्रभावसे श्रीविहीन सम्पूर्ण जगत् फिरसे श्रीयुक्त हो गया।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—यदूत्तम ! यह श्रीपञ्चमी-व्रत किस विधिसे किया जाता है, कबसे यह प्रारम्भ होता है और इसकी पारणा कब होती है ? आप इसे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! यह व्रत मार्ग-शीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको करना चाहिये। प्रातः

उठकर शौच, दन्तधावन आदिसे निवृत्त हो व्रतके नियमको धारण करे। फिर नदीमें अथवा घरपर ही स्नान करे। दो वस्त्र धारण कर देवता और पितरोंका पूजन-तर्पण कर घर आकर लक्ष्मीका पूजन करे। सुवर्ण, चाँदी, ताम्र, आरकूट, काष्ठकी अथवा चित्रपटमें भगवती लक्ष्मीकी ऐसी प्रतिमा बनाये जो कमलपर विराजमान हो, हाथमें कमल-पुष्प धारण किये हो, सभी आभूषणोंसे अलंकृत हो, उनके लोचन कमलके समान हों और जिन्हें चार श्वेत हाथी सुवर्णके कलशोंके जलसे स्नान करा रहे हों। इस प्रकारकी भगवती लक्ष्मीकी प्रतिमाकी निम्नलिखित नाम-मन्त्रोंसे ऋतुकालोद्भूत पुष्पोंद्वारा अङ्गपूजा करे—

'ॐ चपलायै नमः, पादौ पूजयामि', 'ॐ चञ्चलायै नमः, जानुनी पूजयामि', 'ॐ कमलवासिन्यै नमः, कटिं पूजयामि', 'ॐ ख्यात्यै नमः, नाभिं पूजयामि', 'ॐ मन्मथवासिन्यै नमः, स्तनौ पूजयामि', ॐ ललितायै नमः, भुजद्वयं पूजयामि', 'ॐ उत्कण्ठितायै नमः, कण्ठं पूजयामि', 'ॐ माधव्यै नमः, मुखमण्डलं पूजयामि' तथा **'ॐ श्रियै नमः, शिरः पूजयामि'** आदि नाममन्त्रोंसे पैरसे लेकर सिरतक पूजा करे। इस प्रकार प्रत्येक अङ्गोंकी भक्तिपूर्वक पूजाकर अंकुरित विविध धान्य और अनेक प्रकारके फल नैवेद्यमें देवीको निवेदित करे। तदनन्तर पुष्प और कुंकुम आदिसे सुवासिनी स्त्रियोंका पूजन कर उन्हें मधुर भोजन कराये और प्रणाम कर विदा करे। एक प्रस्थ (सेरभर) चावल और घृतसे भरा पात्र ब्राह्मणको देकर **'श्रीशः सम्प्रीयताम्'** इस प्रकार कहकर प्रार्थना करे। इस तरह पूजन कर मौन हो भोजन करे। प्रतिमास यह व्रत करे और श्री, लक्ष्मी, कमला, सम्पत्, रमा, नारायणी, पद्मा, धृति, स्थिति, पुष्टि, ऋद्धि तथा सिद्धि—इन बारह नामोंसे क्रमशः बारह महीनोंमें भगवती लक्ष्मीकी पूजा करे और पूजनके अन्तमें **'प्रीयताम्'** ऐसा उच्चारण करे। बारहवें महीनेकी पञ्चमीको वस्त्रसे उत्तम मण्डप बनाकर गन्ध-पुष्पादिसे उसे अलंकृतकर उसके मध्य शय्यापर उपकरणोंसहित भगवती लक्ष्मीकी मूर्ति स्थापित करे। आठ मोती, नेत्रपट्ट, सप्त-धान्य, खड़ाऊँ, जूता, छाता, अनेक प्रकारके पात्र और आसन वहाँ उपस्थापित करे। तदनन्तर लक्ष्मीका पूजन कर वेदवेत्ता और सदाचारसम्पन्न ब्राह्मणको सवत्सा गौसहित यह सब सामग्री प्रदान करे। यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। अन्तमें भगवती लक्ष्मीसे ऋद्धिकी कामनासे इस प्रकार प्रार्थना करे—

क्षीराब्धिमथनोद्भूते विष्णोर्वक्षःस्थलालये।
सर्वकामप्रदे देवि ऋद्धिं यच्छ नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व ३७। ५४)

'हे देवि! आप क्षीरसागरके मन्थनसे उद्भूत हैं, भगवान् विष्णुका वक्षःस्थल आपका अधिष्ठान है, आप सभी कामनाओंको प्रदान करनेवाली हैं, अतः मुझे भी आप ऋद्धि प्रदान करें, आपको नमस्कार है।'

जो इस विधिसे श्रीपञ्चमीका व्रत करता है, वह अपने इक्कीस कुलोंके साथ लक्ष्मीलोकमें निवास करता है। जो सौभाग्यवती स्त्री इस व्रतको करती है, वह सौभाग्य, रूप, संतान और धनसे सम्पन्न हो जाती है तथा पतिको अत्यन्त प्रिय होती है। (अध्याय ३७)

विशोक-षष्ठी-व्रत

राजा युधिष्ठिरने कहा—जनार्दन! आपके श्रीमुखसे पञ्चमी-व्रतोंका विधान सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। अब आप षष्ठीव्रतोंका विधान बतलायें। मैंने सुना है कि षष्ठीको भगवान् सूर्यकी पूजा करनेसे सभी व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं और सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! सर्वप्रथम मैं विशोक-षष्ठी-व्रतका विधान बतलाता हूँ। इस तिथिको उपवास करनेसे मनुष्यको कभी शोक नहीं होता। माघ मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको प्रभातकालमें उठकर दन्तधावन करे, कृष्ण तिलोंसे स्नान आदिद्वारा पवित्र हो कृशर-(खिचड़ी) का भोजन करे, रात्रिमें ब्रह्मचर्यपूर्वक रहे। दूसरे दिन षष्ठीको प्रभातकालमें उठकर स्नान आदिसे पवित्र हो जाय। सुवर्णका एक कमल बनाये, उसे सूर्यनारायणका स्वरूप मानकर रक्तचन्दन, रक्तकरवीर-पुष्प और रक्तवर्णके दो वस्त्र, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनका पूजन करे। तदनन्तर हाथ जोड़कर इस मन्त्रसे प्रार्थना करे—

यथा विशोकं भवनं त्वयैवादित्य सर्वदा।
तथा विशोकता मे स्यात् त्वद्भक्तिर्जन्मजन्मनि ॥

(उत्तरपर्व ३८। ७)

'हे आदित्यदेव! जैसे आपने अपना स्थान शोकसे रहित बनाया है, वैसे ही मेरा भी भवन सदा शोकरहित हो तथा जन्म-जन्ममें मेरी आपमें भक्ति बनी रहे।'

इस विधिसे पूजनकर षष्ठीको ब्राह्मण-भोजन कराये। गोमूत्रका प्राशन करे। फिर गुड़, अन्न, उत्तम दो वस्त्र और सुवर्ण ब्राह्मणको प्रदान करे। सप्तमीको मौन होकर तेल और लवणरहित भोजन करे और पुराण भी श्रवण करे। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त दोनों पक्षोंकी षष्ठीका व्रतकर अन्तमें शुक्ल सप्तमीको सुवर्ण-कमलयुक्त कलश, श्रेष्ठ सामग्रियोंसे युक्त उत्तम शय्या और पयस्विनी कपिला गौ ब्राह्मणको दान करे। इस विधिसे कृपणता छोड़कर जो इस व्रतको करता है, वह करोड़ों वर्षोंसे भी अधिक समयतक शोक, रोग, दुर्गति आदिसे मुक्त रहता है। यदि किसी कामनासे यह व्रत किया जाय तो उसकी वह कामना अवश्य पूर्ण होती है और यदि निष्काम होकर व्रत करे तो उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। जो इस शोक-विनाशिनी विशोक-षष्ठीका एक बार भी उपवास करता है, वह कभी दुःखी नहीं होता और इन्द्रलोकमें निवास करता है।

(अध्याय ३८)

कमलषष्ठी-(फलषष्ठी-) व्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अब मैं कमल-षष्ठी नामक व्रतको बतलाता हूँ, जिसमें उपवास करनेसे व्यक्ति पापमुक्त होकर स्वर्गको प्राप्त करता है। मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको नियतव्रत होकर षष्ठीको उपवास करे। कृष्ण सप्तमीको सुवर्णकमल, सुवर्णफल तथा शर्कराके साथ कलश ब्राह्मणको प्रदान करे। इसी विधिसे एक वर्षपर्यन्त दोनों पक्षोंमें प्रत्येक षष्ठीको उपवास करे। भानु, अर्क, रवि, ब्रह्मा, सूर्य, शुक्र, हरि, शिव, श्रीमान्, विभावसु, त्वष्टा तथा वरुण—इन बारह नामोंसे क्रमशः बारह महीनोंमें पूजन करे और **'भानुर्मे प्रीयताम्'**, **'अर्को मे प्रीयताम्'** इस प्रकार प्रतिमास सप्तमीको दान और षष्ठी-पूजन आदिके समय उच्चारण करे। व्रतके अन्तमें ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजाकर वस्त्र-आभूषण, शर्करापूर्ण कलश और सुवर्ण-कमल तथा स्वर्णफल ब्राह्मणको देकर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर व्रत पूर्ण करे—

यथा फलकरो मासस्त्वद्भक्तानां सदा रवे।
तथानन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि ॥

(उत्तरपर्व ३९। ११)

'हे सूर्यदेव! जिस प्रकार आपके भक्तोंके लिये यह मास-व्रत फलदायी होता है, उसी प्रकार मुझे भी जन्म-जन्ममें अनन्त फलोंकी प्राप्ति होती रहे।'

इस अनन्त फल देनेवाली फल-षष्ठी-व्रतको जो करता है, वह सुरापानादि सभी पापोंसे मुक्त हो सूर्यलोकमें सम्मानित होता है और अपने आगे-पीछेकी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करता है। जो इसका माहात्म्य श्रवण करता है, वह भी कल्याणका भागी होता है।[1]।

(अध्याय ३९)

मन्दारषष्ठी-व्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अब मैं सभी पापोंको दूर करनेवाले तथा समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले मन्दारषष्ठी नामक व्रतका विधान बतलाता हूँ। व्रती माघ मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमी तिथिको स्वल्प भोजन कर नियमपूर्वक रहे और षष्ठीको उपवास करे। ब्राह्मणोंका पूजन करे तथा मन्दारका पुष्प भक्षण कर रात्रिमें शयन करे। षष्ठीको प्रातः उठकर स्नानादि करे तथा ताम्रपात्रमें काले तिलोंसे एक अष्टदल कमल बनाये। उसपर हाथमें कमल लिये भगवान् सूर्यकी सुवर्णकी प्रतिमा स्थापित करे। आठ सोनेके अर्कपुष्पोंसे तथा गन्धादि उपचारोंसे अष्टदल-कमलके दलोंमें

१-मत्स्यपुराणके अध्याय ७६ मे फलसप्तमी नामसे इसी व्रतका वर्णन हुआ है।

पूर्वादि क्रमसे भगवान् सूर्यके नाम-मन्त्रोंद्वारा इस प्रकार पूजा करे—'**ॐ भास्कराय नमः**' से पूर्व दिशामें, '**ॐ सूर्याय नमः**' से अग्निकोणमें, '**ॐ अर्काय नमः**' से दक्षिणमें, '**ॐ अर्यमणे नमः**' से नैर्ऋत्यमें, '**ॐ वसुधात्रे नमः**' से पश्चिममें, '**ॐ चण्डभानवे नमः**' से वायव्यमें, '**ॐ पूष्णे नमः**' से उत्तरमें, '**ॐ आनन्दाय नमः**' से ईशानकोणमें तथा उस कमलकी मध्यवर्ती कर्णिकामें '**ॐ सर्वात्मने पुरुषाय नमः**' यह कहकर शुक्ल वस्त्र, नैवेद्य तथा माल्य एवं फलादि सभी उपचारोंसे भगवान् सूर्यका पूजन करे। सप्तमीको पूर्वाभिमुख मौन होकर तेल तथा लवण भक्षण करे। इस प्रकार प्रत्येक मासकी शुक्ल-षष्ठीको व्रतकर सप्तमीको पारण करे। वर्षके अन्तमें वही मूर्ति कलशके ऊपर स्थापित कर यथाशक्ति वस्त्र, गौ, सुवर्ण आदि ब्राह्मणको प्रदान करे और दान करते समय यह मन्त्र पढ़े—

नमो मन्दारनाथाय मन्दरभवनाय च।
त्वं च वै तारयस्वास्मानस्मात् संसारकर्दमात्॥

(उत्तरपर्व ४०। ११)

'हे मन्दारभवन, मन्दारनाथ भगवान् सूर्य! आप हमलोगोंका इस संसाररूपी पङ्कसे उद्धार कर दें, आपको नमस्कार है।'

इस विधिसे जो मन्दार-षष्ठीका व्रत करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर एक कल्पतक सुखपूर्वक स्वर्गमें निवास करता है और जो इस विधानको पढ़ता है अथवा सुनता है, वह भी सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है[१]। (अध्याय ४०)

ललिताषष्ठी-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठीको यह व्रत होता है। उस दिन उत्तम रूप, सौभाग्य और संतानकी इच्छावाली स्त्रीको चाहिये कि वह नदीमें स्नान करे और एक नये बाँसके पात्रमें बालू लेकर घर आये। फिर वस्त्रका मण्डप बनाकर उसमें दीप प्रज्वलित करे। मण्डपमें वह बाँसका बालुकामय पात्र स्थापित कर उसमें बालुकामयी, तपोवन-निवासिनी भगवती ललितागौरीका ध्यानकर पूजन करे और उस दिन उपवास रहे, तदनन्तर चम्पक, करवीर, अशोक, मालती, नीलोत्पल, केतकी तथा तगर-पुष्प—इनमेंसे प्रत्येककी १०८ या २८ पुष्पाञ्जलि अक्षतोंके साथ निम्नलिखित मन्त्रसे दे—

ललिते ललिते देवि सौख्यसौभाग्यदायिनि।
या सौभाग्यसमुत्पन्ना तस्यै देव्यै नमो नमः॥

(उत्तरपर्व ४१।८)

इस प्रकारसे पूजन करनेके पश्चात् तरह-तरहके सोहाल, मोदक आदि पकवान्न, कूष्माण्ड, ककड़ी, बिल्व, करेला, बैंगन, करंज आदि फल भगवती ललिताको निवेदित करे और धूप, दीप, वस्त्राभूषण आदि भी समर्पित करे। इस विधिसे पूजनकर रात्रिको जागरण करे तथा गीत-नृत्यादि उत्सव करे। दूसरे दिन प्रातः गीत-वाद्य-सहित मूर्तिको नदीके समीप ले जाय। वहाँ पूजनकर पूजन-सामग्री ब्राह्मणको निवेदित कर दे और भगवती ललिताकी बालुकामयी मूर्तिको नदीमें विसर्जित कर दे। घर आकर हवन करे और देवता, पितर, मनुष्य तथा सुवासिनी स्त्रियोंका पूजन करे। पंद्रह कुमारी कन्याओंको और उतने ही ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके स्वादिष्ट भोजनोंसे संतुष्ट कर दक्षिणा प्रदान करे और '**ललिता प्रीतियुक्ता अस्तु**' यह कहकर उन्हें विदा करे। जो पुरुष अथवा स्त्री इस ललिताषष्ठी-व्रतको करते हैं, उन्हें संसारमें कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं रहता। व्रत करनेवाली स्त्री बहुत कालपर्यन्त सुख-सौभाग्यसे सम्पन्न रहकर अन्तमें गौरीलोकमें निवास करती है। (अध्याय ४१)

कुमारषष्ठी-व्रतकी कथा

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—भरतसत्तम महाराज युधिष्ठिर! मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथि समस्त पापनाशिनी, धन-धान्य तथा शान्ति-प्रदायिनी एवं अति-कल्याणकारिणी है। उसी दिन कार्तिकेयने तारकासुरका वध किया था, इसलिये यह षष्ठी तिथि स्वामिकार्तिकेयको बहुत प्रिय है। इस दिन किया हुआ स्नान-दान आदि कर्म अक्षय

१-मत्स्यपुराणके अध्याय ७९ में मन्दारसप्तमी नामसे इसी व्रतका वर्णन हुआ है।

होता है। दक्षिण देशमें स्थित कार्तिकेयका जो इस तिथिमें दर्शन करता है, वह निःसंदेह ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसलिये इस तिथिमें कुमारस्वामीकी सोने, चाँदी अथवा मिट्टीकी मूर्ति बनवाकर पूजा करनी चाहिये। अपराह्णमें स्नान तथा आचमनकर, पद्मासन लगाकर बैठ जाय और स्वामी कुमारका एकाग्रचित्तसे ध्यान करे। इस दिन उपवासपूर्वक निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए इनके मस्तकपर कलशसे अभिषेक करे—

चन्द्रमण्डलभूतानां भवभूतिपवित्रिता।
गङ्गाकुमार धारेयं पतिता तव मस्तके॥

(उत्तरपर्व ४२।७)

इस प्रकार अभिषेक कर भगवान् सूर्यका पूजन करे, तदनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्य आदि उपचारोंद्वारा कृत्तिकापुत्र कार्तिकेयकी निम्न मन्त्रसे पूजा करे—

देव सेनापते स्कन्द कार्तिकेय भवोद्भव।
कुमार गुह गाङ्गेय शक्तिहस्त नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व ४२।९)

दक्षिण-देशोत्पन्न अन्न, फल और मलय चन्दन भी चढ़ाये। इसके बाद स्वामिकार्तिकेयके परमप्रिय छाग, कुक्कुट, कलापयुक्त मयूर तथा उनकी माता भगवती पार्वती— इनका प्रत्यक्ष पूजन करे अथवा इनकी सुवर्णकी प्रतिमा बनाकर पूजन करे। पूजनके अनन्तर पूर्वोक्त देवसेनापति तथा स्कन्द आदि नाम-मन्त्रोंसे आज्ययुक्त तिलोंसे हवन करे, अनन्तर फल भक्षण कर भूमिपर कुशाकी शय्यापर शयन करे। क्रमशः बारह महीनोंमें नारियल, मातुलुंग (बिजौरा नींबू), नारंगी, पनस (कटहल), जम्बीर (एक प्रकारका नींबू), दाड़िम, द्राक्षा, आम्र, बिल्व, आमलक, ककड़ी तथा केला—इन फलोंका भक्षण करे। ये फल उपलब्ध न हों तो उस कालमें उपलब्ध फलोंका सेवन करे। प्रातःकाल सोनेके बने छाग अथवा कुक्कुटको **'सेनानी प्रीयताम्'** ऐसा कहकर ब्राह्मणको दे। बारह महीनोंमें क्रमसे सेनानी, सम्भूत, क्रौंचारि, षण्मुख, गुह, गाङ्गेय, कार्तिकेय, स्वामी, बालग्रहाग्रणी, छागप्रिय, शक्तिधर तथा द्वार—इन नामोंसे कार्तिकेयका पूजन करे और नामोंके अन्तमें **'प्रीयताम्'** यह पद योजित करे । यथा—**'सेनानी प्रीयताम्'** इत्यादि। इसके पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। वर्ष समाप्त होनेपर कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठीको वस्त्र, आभूषण आदिसे कार्तिकेयका पूजन एवं हवन करे और सब सामग्री ब्राह्मणको निवेदित कर दे।

इस विधिसे जो पुरुष अथवा स्त्री इस व्रतको करते हैं,वे उत्तम फलोंको प्राप्त कर इन्द्रलोकमें निवास करते हैं, अतः राजन्! शंकरात्मज कार्तिकेयका सदा प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। राजाओंके लिये तो कार्तिकेयकी पूजाका विशेष महत्त्व है। जो राजा स्वामी कुमारका इस प्रकार पूजनकर युद्धके लिये जाता है, वह अवश्य ही विजय प्राप्त करता है। विधिपूर्वक पूजा करनेपर भगवान् कार्तिकेय पूर्ण प्रसन्न हो जाते हैं। जो षष्ठीको नक्तव्रत करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर कार्तिकेयके लोकमें निवास करता है। दक्षिण दिशामें जाकर जो भक्तिपूर्वक कार्तिकेयका दर्शन और पूजन करता है वह शिवलोकको प्राप्त करता है। जो सदा शरवणोद्भव आदिदेव कार्तिकेयकी आराधना करता है, वह बहुत कालतक स्वर्गका सुख भोगकर पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करता तथा चक्रवर्ती राजाका सेनापति होता है।

(अध्याय ४२)

विजयासप्तमी-व्रत

युधिष्ठिरने पूछा—देव ! विजया-सप्तमी-व्रतमें किसकी पूजा की जाती है, उसका क्या विधान है और क्या फल है? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको यदि आदित्यवार हो तो उसे विजया सप्तमी कहते हैं। वह सभी पातकोंका विनाश करनेवाली है। उस दिन किया हुआ स्नान, दान, जप, होम तथा उपवास आदि कर्म अनन्त फलदायक होता है। जो उस दिन फल, पुष्प आदि लेकर भगवान् सूर्यकी प्रदक्षिणा करता है, वह सर्वगुणसम्पन्न उत्तम पुत्रको प्राप्त करता है। पहली प्रदक्षिणा नारियल-फलोंसे, दूसरी रक्तनागरसे, तीसरी बिजौरा नींबूसे, चौथी कदलीफलसे, पाँचवीं श्रेष्ठ कूष्माण्डसे, छठी पके हुए

तेंदूके फलोंसे और सातवीं वृन्ताक-फलोंसे करे अथवा अष्टोत्तरशत प्रदक्षिणा करे। मोती, पद्मराग, नीलम, पन्ना, गोमेद, हीरा और वैदूर्य आदिसे भी प्रदक्षिणा करे तथा अखरोट, बेर, बिल्व, करौंदा, आम्र, आम्रातक (आमड़ा), जामुन आदि जो भी उस कालमें फल-फूल मिले उससे प्रदक्षिणा करे। प्रदक्षिणा करते समय बीचमें बैठे नहीं, न किसीको स्पर्श करे और न किसीसे बात करे। एकाग्रचित्तसे प्रदक्षिणा करनेसे सूर्यभगवान् प्रसन्न होते हैं। गौके घृतसे वसोर्धारा भी दे। किंकिणीयुक्त ध्वजा तथा श्वेत छत्र चढ़ाये और फिर कुंकुम, गन्ध, पुष्प, धूप तथा नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन कर इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यसे क्षमा-प्रार्थना करे—

भानो भास्कर मार्तण्ड चण्डरश्मे दिवाकर।
आरोग्यमायुर्विजयं पुत्रं देहि नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व ४३। १४)

इस व्रतमें उपवास, नक्तव्रत अथवा अयाचित-व्रत करे। इस विजया-सप्तमीका नियमपूर्वक व्रत करनेसे रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है, दरिद्र लक्ष्मी प्राप्त करता है, पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है तथा विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है। शुक्ल पक्षकी आदित्यवारयुक्त सात सप्तमियोंमें नक्तव्रत कर मूँगका भोजन करना चाहिये। भूमिपर पलाशके पत्तोंपर शयन करना चाहिये। इस प्रकार व्रतकी समाप्तिपर सूर्यभगवान्‌का पूजनकर षडक्षर-मन्त्र (**खखोल्काय नमः**) से अष्टोत्तरशत हवन करे। सुवर्णपात्रमें सूर्यप्रतिमा स्थापित कर रक्तवस्त्र, गौ और दक्षिणा इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए ब्राह्मणको प्रदान करे—

ॐ भास्कराय सुदेवाय नमस्तुभ्यं यशस्कर॥
ममाद्य समीहितार्थप्रदो भव नमो नमः।

(उत्तरपर्व ४३। २३-२४)

तदनन्तर शय्या-दान, श्राद्ध, पितृतर्पण आदि कर्म करे। इस व्रतके करनेसे यात्रियोंकी यात्रा प्रशस्त हो जाती है, विजयकी इच्छावाले राजाको युद्धमें विजय अवश्य प्राप्त होती है, इसलिये लोकमें यह विजयसप्तमीके नामसे विश्रुत है। इस व्रतको करनेवाला पुरुष संसारके समस्त सुखोंको भोगकर सूर्यलोकमें निवास करता है और फिर पृथ्वीपर जन्म ग्रहणकर दानी, भोगी, विद्वान्, दीर्घायु, नीरोग, सुखी और हाथी, घोड़े तथा रत्नोंसे सम्पन्न बड़ा प्रतापी राजा होता है। यदि स्त्री इस व्रतको करे तो वह पुण्यभागिनी होकर उत्तम फलोंको प्राप्त करती है। राजन्! इसमें आपको किंचित् भी संदेह नहीं करना चाहिये। (अध्याय ४३)

आदित्य-मण्डलदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं समस्त अशुभोंके निवारण करनेवाले श्रेयस्कर आदित्य-मण्डलके दानका वर्णन करता हूँ। जौ अथवा गोधूमके चूर्णमें गुड़ मिलाकर उसे गौके घृतमें भलीभाँति पकाकर सूर्यमण्डलके समान एक अति सुन्दर अपूप बनाये और फिर सूर्यभगवान्‌का पूजनकर उनके आगे रक्तचन्दनका मण्डप अंकितकर उसके ऊपर वह सूर्यमण्डलात्मक मण्डक (एक प्रकारका पिष्टक) रखे। ब्राह्मणको सादर आमन्त्रित कर रक्त वस्त्र तथा दक्षिणासहित वह मण्डक इस मन्त्रको पढ़ते हुए ब्राह्मणको प्रदान करे—

आदित्यतेजसोत्पन्नं राजतं विधिनिर्मितम्।
श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतिगृह्णेदमुत्तमम्॥

(उत्तरपर्व ४४। ५)

ब्राह्मण भी उसे ग्रहणकर निम्नलिखित मन्त्र बोले—

कामदं धनदं धर्म्यं पुत्रदं सुखदं तव।
आदित्यप्रीतये दत्तं प्रतिगृह्णामि मण्डलम्॥

(उत्तरपर्व ४४। ६)

इस प्रकार विजय-सप्तमीको मण्डकका दान करे और सामर्थ्य होनेपर सूर्यभगवान्‌की प्रीतिके लिये शुद्धभावसे नित्य ही मण्डक प्रदान करे। इस विधिसे जो मण्डकका दान करता है, वह भगवान् सूर्यके अनुग्रहसे राजा होता है और स्वर्गलोकमें भगवान् सूर्यकी तरह सुशोभित होता है।

(अध्याय ४४)

वर्ज्यसप्तमी-व्रत

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! धन, सौख्य तथा समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको प्रदान करनेवाली किसी सप्तमीव्रतका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! उत्तरायणके व्यतीत हो जानेपर शुक्ल पक्षमें पुरुषवाची नक्षत्रमें आदित्यवारको सप्तमी-तिथि-व्रत ग्रहण करे। धान, तिल, जौ, उड़द, मूँग, गेहूँ, मधु, निन्द्य भोजन, मैथुन, कांस्यपात्रमें भोजन, तैलाभ्यङ्ग, अंजन और शिलापर पीसी हुई वस्तु—इन सबका षष्ठी तिथिको प्रयोग न करे। इन पदार्थोंका षष्ठीके दिन परित्याग कर केवल चनाका भोग करे और देवता, मुनि तथा पितर—इन सबका तर्पणकर भगवान् सूर्यका पूजन करे। घृतयुक्त तिल और जौका हवन कर भगवान् सूर्यका ध्यान करता हुआ भूमिपर शयन करे। इस विधिसे जो एक वर्षतक व्रत करता है, वह अपने सभी मनोवाञ्छित फलको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय ४५)

कुक्कुट-मर्कटी-व्रतकथा (मुक्ताभरण सप्तमीव्रत-कथा)

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज युधिष्ठिर! एक बार महर्षि लोमश मथुरा आये और वहाँ मेरे माता-पिता—देवकी-वसुदेवने उनकी बड़ी श्रद्धासे आवभगत की। फिर वे प्रेमसे बैठकर अनेक प्रकारकी कथाएँ कहने लगे। उन्होंने उसी प्रसंगमें मेरी मातासे कहा—'देवकी! कंसने तुम्हारे बहुतसे पुत्रोंको मार डाला है, अतः तुम मृतवत्सा एवं दुःखभागिनी बन गयी हो। इसी प्रकारसे प्राचीन कालमें चन्द्रमुखी नामकी एक सुलक्षणा रानी भी मृतवत्सा एवं दुःखी हो गयी थी। परंतु उसने एक ऐसे व्रतका अनुष्ठान किया, जिसके प्रभावसे वह जीवत्पुत्रा हो गयी। इसलिये देवकी! तुम भी उस व्रतके अनुष्ठानके प्रभावसे वैसी हो जाओगी, इसमें संशय नहीं।'

माता देवकीने उनसे पूछा—महाराज! वह चन्द्रमुखी रानी कौन थी? उसने सौभाग्य और आरोग्यकी वृद्धि करनेवाला कौन-सा व्रत किया था? जिसके कारण उसकी संतान जीवित हो गयी। आप मुझे भी वह व्रत बतलानेकी कृपा करें।

लोमशमुनि बोले—प्राचीन कालमें अयोध्यामें नहुष नामके एक प्रसिद्ध राजा थे, उन्हींकी महारानीका नाम चन्द्रमुखी था। राजाके पुरोहितकी पत्नी मानमानिकासे रानी चन्द्रमुखीकी बहुत प्रीति थी। एक दिन वे दोनों सखियाँ स्नान करनेके लिये सरयू-तटपर गयीं। उस समय नगरकी और भी बहुत-सी स्त्रियाँ वहाँ स्नान करने आयी हुई थीं। उन सब स्त्रियोंने स्नानकर एक मण्डल बनाया और उसमें शिव-पार्वतीकी प्रतिमा चित्रितकर गन्ध, पुष्प, अक्षत आदिसे भक्तिपूर्वक यथाविधि उनकी पूजा की। अनन्तर उन्हें प्रणामकर जब वे सभी अपने घर जानेको उद्यत हुईं, तब महारानी चन्द्रमुखी तथा पुरोहितकी स्त्री मानमानिकाने उनसे पूछा—'देवियो! तुमलोगोंने यह किसकी और किस उद्देश्यसे पूजा की है?' इसपर वे कहने लगीं—'हमलोगोंने भगवान् शिव एवं भगवती पार्वतीकी पूजा की है और उनके प्रति आत्म-समर्पण कर यह सुवर्णसूत्रमय धागा भी हाथमें धारण किया है। हम सब जबतक प्राण रहेंगे, तबतक इसे धारण किये रहेंगी और शिव-पार्वतीका पूजन भी किया करेंगी।' यह सुनकर उन दोनोंने भी यह व्रत करनेका निश्चय किया और वे अपने घर आ गयीं तथा नियमसे व्रत करने लगीं। परंतु कुछ समय बाद रानी चन्द्रमुखी प्रमादवश व्रत करना भूल गयीं और सूत्र भी न बाँध सकीं। इस कारण मरनेके अनन्तर वह वानरी हुई, पुरोहितकी स्त्रीका भी व्रत-भङ्ग हो गया, इसलिये मरकर वह कुक्कुटी हुई। उन योनियोंमें भी उनकी मित्रता और पूर्वजन्मकी स्मृतियाँ बनी रहीं।

कुछ कालके अनन्तर दोनोंकी मृत्यु हो गयी। फिर रानी चन्द्रमुखी तो मालव देशके पृथ्वीनाथ नामक राजाकी मुख्य रानी और पुरोहित अग्निमीलकी स्त्री मानमानिका उसी राजाके पुरोहितकी पत्नी हुई। रानीका नाम ईश्वरी और पुरोहितकी स्त्रीका नाम भूषणा था। भूषणाको अपने पूर्वजन्मोंका ज्ञान था। उसके आठ उत्तम पुत्र हुए। परंतु रानी ईश्वरीको बहुत समयके बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह रोगग्रस्त रहता था। इस कारण थोड़े ही समय बाद (नवें वर्ष) उसकी मृत्यु हो गयी। तब दुःखी हो भूषणा अपनी सखी रानी ईश्वरीको आश्वासन देने

उनके पास आयी। भूषणाके बहुतसे पुत्रोंको देखकर ईश्वरीके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी, फलस्वरूप रानी ईश्वरीने धीरे-धीरे भूषणाके सभी पुत्र मरवा डाले, परंतु भगवान् शंकरके अनुग्रहसे वे मरकर भी पुनः जीवित हो उठे। तब ईश्वरीने भूषणाको अपने यहाँ बुलवाया और उससे पूछा—'सखि! तुमने ऐसा कौन-सा पुण्यकर्म किया है, जिसके कारण तुम्हारे मरे हुए भी पुत्र जीवित हो जाते हैं और तुम्हारे बहुतसे चिरंजीवी पुत्र उत्पन्न हुए हैं, मुक्ता आदि आभूषणोंसे रहित होनेपर भी कैसे तुम सदा सुशोभित रहती हो?'

भूषणाने कहा—सखि! मुक्ताभरण सप्तमी-व्रतका विलक्षण माहात्म्य है। भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको किये जानेवाले इस व्रतमें स्नानकर एक मण्डल बनाकर उसमें शिव-पार्वतीका पूजन करे और शिवको आत्म-निवेदित सूत्र (दोरक) को हाथमें धारण करे अथवा चाँदी, सोनेकी अँगूठी बनाकर अँगुलीमें पहने। उस दिन उपवास करे। बादमें व्रतका उद्यापन करे। उद्यापनके दिन शिव-पार्वतीका मण्डलमें पूजन कर वह अँगूठी ताम्रके पात्रमें रखकर ब्राह्मणको दे दे तथा यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी कराये। इस व्रतके करनेसे सभी पदार्थ प्राप्त होते हैं।

सखी! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको तुमने और मैंने साथ ही इस व्रतका नियम ग्रहण किया था, परंतु प्रमादवश तुमने इसे छोड़ दिया, इसीसे तुम्हारा पुत्र नष्ट हो गया और राज्य पाकर भी तुम दुःखी ही रहती हो। मैंने व्रतका भक्तिपूर्वक पालन किया, इससे मैं सब प्रकारसे सुखी हूँ, परंतु मेरा व्रत अन्तमें भङ्ग हो गया था, इसलिये एक जन्ममें मुझे कुक्कुटी बनना पड़ा। सखि! मैं तुम्हें अपने द्वारा किये गये व्रतका आधा पुण्यफल देती हूँ, इससे तुम्हारे सभी दुःख दूर हो जायँगे। इतना कहकर भूषणाने अपने व्रतका आधा पुण्यफल ईश्वरीको दे दिया। उसके प्रभावसे ईश्वरीके दीर्घ आयुवाले बहुत पुत्र उत्पन्न हुए और उसे सब प्रकारका सुख प्राप्त हुआ तथा अन्तमें मोक्ष भी प्राप्त हुआ।

लोमश मुनि बोले—देवकी! तुम भी इस व्रतको करो, इससे तुम्हारी संतान स्थिर हो जायगी और तुम्हारा पुत्र तीनों लोकोंका स्वामी होगा। यह कहकर लोमश मुनि अपने आश्रमको चले गये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! (मेरी माताको इसी व्रतके प्रभावसे मेरे-जैसा पुत्र पैदा हुआ और मेरी इतनी आयु बढ़ी तथा कंस आदि दुष्टोंसे बच भी गया।) यह प्रसंगवश मैंने इस व्रतका माहात्म्य बतलाया है, अन्य जो भी कोई स्त्री इस व्रतका आचरण करेगी, उसे कभी संतानका वियोग नहीं होगा और अन्तमें वह शिवलोकको प्राप्त करेगी[1]। (अध्याय ४६)

उभय-सप्तमीव्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं सप्तमी-कल्पका वर्णन करता हूँ। आप इसे प्रीतिपूर्वक सुनें। माघ महीनेकी शुक्ला सप्तमीको संकल्पकर भगवान् सूर्यका वरुणदेव-नामसे पूजन करे। अष्टमीके दिन तिल, पिष्ट, गुड़ और ओदन ब्राह्मणोंको भोजन कराये, ऐसा करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। फाल्गुन शुक्ला सप्तमीको भगवान् सूर्यका पूजन करनेसे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है। चैत्र शुक्ला सप्तमीमें वेदांशु-नामसे सूर्य-पूजन करनेसे उक्थ नामक यज्ञके समान पवित्र फल प्राप्त होता है। वैशाखके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको धाता नामसे पूजा करनेसे पशुबन्ध-यागके पुण्यके समान फल प्राप्त होता है। ज्येष्ठ मासकी सप्तमीको इन्द्र नामसे सूर्यकी पूजा करनेसे वाजपेय यज्ञका दुर्लभ फल प्राप्त होता है। आषाढ़ मासकी सप्तमीको दिवाकरकी पूजा करनेसे बहुत सुवर्णकी दक्षिणावाले यज्ञका फल प्राप्त होता है। श्रावणकी सप्तमीको मातापि (लोलार्क) को पूजनेसे सौत्रामणि यागका फल प्राप्त होता है। भाद्रपद

१-इसी व्रतका ठीक इन्हीं श्लोकोंमें हेमाद्रि, जयसिंह-कल्पद्रुम तथा व्रतराज आदि निबन्ध-ग्रन्थोंमें मुक्ताभरण-सप्तमीके नामसे उल्लेख किया गया है और उसके श्लोक भविष्यपुराणके नामसे सूचित किये गये हैं, किंतु आश्चर्य है कि वहाँ इसे कुक्कुट-मर्कटी-सप्तमी नहीं कहा गया है। सम्भव है कि भविष्यपुराणके अन्य किन्हीं हस्तलिखित प्रतियोंकी पुष्पिकामें इन्हें मुक्ताभरण-सप्तमीके नामसे निर्दिष्ट किया गया हो। मोनियर विलियम नामक संस्कृत अंग्रेजीके विख्यात कोशमें कैटलागस नामसे कुक्कुट-मर्कट-सप्तमीके नामका ही उल्लेख किया गया है।

मासमें शुचि नामसे सूर्यका पूजन करे तो तुलापुरुष-दानका फल प्राप्त होता है। आश्विन शुक्ला सप्तमीको सविताकी पूजा करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। कार्तिक शुक्ला सप्तमीमें सप्तवाहन दिनेशकी पूजा करनेसे पुण्डरीक-यागका फल प्राप्त होता है। मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीमें भानुकी पूजा करनेसे दस राजसूय-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। पौष मासमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको भास्करकी पूजा करनेसे अनेक यज्ञोंका फल मिलता है। इसी प्रकार प्रत्येक मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको भी उन-उन नामोंसे पूजा करनी चाहिये।

महाराज! इस प्रकार एक वर्षतक व्रत और पूजन कर उद्यापन करे। पवित्र भूमिपर एक हाथ, दो हाथ अथवा चार हाथ रक्तचन्दनका मण्डल बनाकर उसमें सिंदूर और गेरुका सूर्यमण्डल बनाये। कमल आदि रक्तपुष्पों, शल्लकी वृक्षके गोंद आदिसे निर्मित धूप तथा अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे भगवान् सूर्यका पूजन करे। अन्न तथा स्वर्णसे भरे कलशोंको उनके सामने स्थापित करे। फिर अग्निसंस्कार कर तिल, घृत, गुड़ और आककी समिधाओंसे **'आ कृष्णेन॰'** (यजु॰ ३३।४३) इस मन्त्रसे एक हजार आहुति दे। अनन्तर द्वादश ब्राह्मणोंको रक्तवस्त्र, एक-एक सवत्सा गौ, छतरी, जूता, दक्षिणा और भोजन देकर क्षमा-प्रार्थना करे। बादमें स्वयं भी मौन होकर भोजन करे।

इस विधिसे जो सप्तमीका व्रत करता है, वह नीरोग, कुशल वक्ता, रूपवान् और दीर्घायु होता है। जो पुरुष सप्तमीके दिन उपवास कर भगवान् सूर्यका दर्शन करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है। यह उभय-सप्तमीव्रत सम्पूर्ण अशुभोंको दूर कर आरोग्य और सूर्यलोक प्राप्त करानेवाला है, ऐसा देवर्षि नारदका कहना है।

(अध्याय ४७)

कल्याणसप्तमी-व्रतकी विधि

महराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! यदि इस संसार-सागरसे पार उतारनेवाला तथा स्वर्ग, आरोग्य एवं सुखप्रदायक कोई व्रत हो तो उसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! जिस शुक्ला सप्तमीको आदित्यवार हो, उसे विजया-सप्तमी या कल्याण-सप्तमी कहते हैं। यह तिथि महापुण्यमयी है। इस दिन प्रातःकाल गोदुग्धयुक्त जलसे स्नानकर शुक्ल वस्त्र धारण कर अक्षतोंसे अति सुन्दर एक कर्णिकायुक्त अष्टदलकमल बनाये तथा पूर्वादि आठों दलोंमें क्रमशः पूर्व दिशामें **'ॐ तपनाय नमः,'** अग्निकोणमें **'ॐ मार्तण्डाय नमः'**, दक्षिण दिशामें **'ॐ दिवाकराय नमः'**, नैर्ऋत्यकोणमें **'ॐ विधात्रे नमः'**, पश्चिम दिशामें **'ॐ वरुणाय नमः'**, वायव्यकोणमें **'ॐ भास्कराय नमः'**, उत्तर दिशामें **'ॐ विकर्तनाय नमः'** तथा ईशानकोणमें **'ॐ रवये नमः'**—इस प्रकारसे नाम-मन्त्रोंद्वारा कर्णिकाओंमें सभी उपचारोंसे पूजन करे। शुक्ल वस्त्र, फल, भक्ष्य पदार्थ, धूप, पुष्पमाला, गुड़ और लवणसे नमस्कारान्त इन नाम-मन्त्रोंसे वेदीके ऊपर पूजा करे। इसके बाद व्याहृति-होमकर यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराये। गुरुको सुवर्णसहित तिलपात्र-दान करे। दूसरे दिन प्रातः उठकर नित्य-क्रियासे निवृत्त हो ब्राह्मणोंके साथ घृत एवं पायससे बने पदार्थोंका भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक भगवान् सूर्यका पूजन एवं व्रतकर उद्यापन करे। जल, कलश, घृतपात्र, सुवर्ण, वस्त्र, आभूषण और सवत्सा गौ ब्राह्मणको दे। इतनी शक्ति न हो तो गोदान करे। जो इस कल्याणसप्तमी-व्रतको करता है अथवा माहात्म्यको पढ़ता या सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है[1]। (अध्याय ४८)

शर्करासप्तमी-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—धर्मराज! अब मैं सभी पापोंको नष्ट करनेवाले तथा आयु, आरोग्य और अनन्त ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले शर्करासप्तमी-व्रतका वर्णन करता हूँ। वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको श्वेत तिलोंसे युक्त जलसे स्नानकर शुक्ल वस्त्रोंको धारण करे तथा वेदीके ऊपर कुंकुमसे कर्णिकासहित अष्टदल-कमलकी रचना करे और

१-मत्स्यपुराण (अध्याय ७४) में भी इस व्रतका प्रायः इन्हीं श्लोकोंमें उल्लेख प्राप्त होता है।

'सवित्रे नमः' इस नाम-मन्त्रसे गन्ध-पुष्प आदिसे सूर्यकी पूजा करे। जलपूर्ण कलशके ऊपर शक्करसे भरा पूर्णपात्र स्थापित करे। उस कलशको रक्त वस्त्र, श्वेत माला आदिसे अलंकृत करे, साथ ही वहाँ एक सुवर्ण-निर्मित अश्व भी स्थापित करे। तदनन्तर भगवान् सूर्यका आवाहनकर इस मन्त्रसे उनका पूजन करे—

विश्वेदेवमयो यस्माद् वेदवादीति पठ्यसे ॥
त्वमेवामृतसर्वस्वमतः पाहि सनातन ।

(उत्तरपर्व ४९ । ५-६)

'हे भगवान् सूर्यदेव ! यह सारा विश्व एवं सभी देवता आपके ही स्वरूप हैं, इस कारण आपको ही वेदोंका तत्त्वज्ञ एवं अमृतसर्वस्व कहा गया है। हे सनातनदेव ! आप मेरी रक्षा करें।'

तदनन्तर सौरसूक्तका[1] जप करे अथवा सौरपुराणका[2] श्रवण करे। अष्टमीको प्रातः उठकर स्नान आदि नित्यक्रिया सम्पन्नकर भगवान् सूर्यका पूजन करे। तत्पश्चात् सारी सामग्री वेदवेत्ता ब्राह्मणको देकर शर्करा, घृत और पायससे यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये। स्वयं भी मौन होकर तेल और लवणरहित भोजन करे। इस विधिसे प्रतिमास व्रत करके वर्ष पूरा होनेपर यथाशक्ति उत्तम शय्या, दूध देनेवाली गाय, शर्करापूर्ण घट, गृहस्थके उपकरणोंसे युक्त मकान तथा अपनी सामर्थ्यके अनुकूल एक हजार अथवा एक सौ अथवा पाँच निष्क सोनेका बना हुआ एक अश्व ब्राह्मणको दान करे। भगवान् सूर्यके मुखसे अमृतपान करते समय जो अमृत-बिन्दु गिरे, उनसे शालि (अगहनी धान), मूँग और इक्षु उत्पन्न हुए, शर्करा इक्षुका सार है, इसलिये हव्य-कव्यमें इस शर्कराका उपयोग करना भगवान् सूर्यको अति प्रिय है एवं यह शर्करा अमृतरूप है। यह शर्करासप्तमी-व्रत अश्वमेध यज्ञका फल देनेवाला है। इस व्रतके करनेसे संतानकी वृद्धि होती है तथा समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं। इस व्रतका करनेवाला व्यक्ति एक कल्प स्वर्गमें निवासकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है[3]।

(अध्याय ४९)

कमलसप्तमी-व्रत[4]

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं कमलसप्तमी-व्रतका वर्णन करता हूँ, जिसके नाम लेनेमात्रसे ही भगवान् सूर्य प्रसन्न हो जाते हैं। वसन्त ऋतुमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको प्रातःकाल पीली सरसोंयुक्त जलसे स्नान करे। एक पात्रमें तिल रखकर उसमें सुवर्णका कमल बनाकर स्थापित करे और उसमें भगवान् सूर्यकी भावना कर दो वस्त्रोंसे आवृत करे तथा गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे पूजाकर निम्नलिखित श्लोकसे प्रार्थना करे—

नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे ॥
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते ।

(उत्तरपर्व ५० । ३-४)

तदनन्तर वस्त्र, माला तथा अलंकारोंसे सुसज्जित उस उदककुम्भको प्रतिमासहित ब्राह्मणको पूजाकर प्रदान कर दे। दूसरे दिन अष्टमीको यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराये और स्वयं भी तेल आदिसे रहित विशुद्ध भोजन करे। इसी प्रकार वर्षपर्यन्त प्रत्येक मासकी शुक्ल सप्तमीको भक्तिपूर्वक व्रत करे। व्रतकी समाप्तिपर वह भक्तिपूर्वक सुवर्ण-कमल, सुवर्णकी पयस्विनी गौ, अनेक पात्र, आसन, दीप तथा अन्य सामग्रियाँ ब्राह्मणको दानमें दे। इस विधिसे जो कमल-सप्तमीका व्रत करता है, वह अनन्त लक्ष्मीको प्राप्त करता है और सूर्यलोकमें प्रसन्न होकर निवास करता है। कल्प-कल्प भर सात लोकोंमें निवास करता हुआ अन्तमें परमगतिको प्राप्त करता है।

(अध्याय ५०)

१-ऋग्वेदके प्रथम मण्डलका ५०वाँ सूक्त सूर्यसूक्त या सौरसूक्त कहलाता है।

२-सौरपुराणसे मुख्य तात्पर्य है भविष्यपुराण और साम्बपुराण। आजकल सौरपुराणके नामसे प्रकाशित जो सूर्यपुराण हैं, वास्तवमें वे शैवपुराण हैं सौर नहीं।

३-भविष्यपुराणका यह अध्याय भी मत्स्यपुराणके अ० ७७ में प्रायः इसी रूपमें प्राप्त होता है।

४-कई व्रत-निबन्धों एवं पुराणोंमें इसे ही कमल-षष्ठी भी कहा गया है।

शुभसप्तमी-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अब मैं एक दूसरी सप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ, वह शुभसप्तमी कहलाती है। इसमें उपवासकर व्यक्ति रोग, शोक तथा दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। इस पुण्यप्रद व्रतमें आश्विन मासमें (शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको) स्नान करके पवित्र हो ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराये। तदनन्तर गन्ध, माल्य तथा अनुलेपनादिसे भक्तिपूर्वक कपिला गौका निम्नलिखित मन्त्रसे पूजन करे—

नमामि सूर्यसम्भूतामशेषभुवनालयाम्॥
त्वामहं शुभकल्याणशरीरां सर्वसिद्धये।

(उत्तरपर्व ५१। ३-४)

'देवि! आप सूर्यसे उत्पन्न हुई हैं और सम्पूर्ण लोकोंकी आश्रयदात्री हैं, आपका शरीर सुशोभन मङ्गलोंसे युक्त है, आपको मैं समस्त सिद्धियोंकी प्राप्तिके निमित्त नमस्कार करता हूँ।'

तत्पश्चात् ताम्रपात्रमें एक सेर तिल रखकर उसपर वृषभकी स्वर्ण-प्रतिमा स्थापित करे और उसकी वस्त्र, माल्य, गुड़ आदिसे पूजा करे। सायंकालमें **'अर्यमा प्रीयताम्'** यह कहकर सब सामग्री भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको निवेदित करे। रात्रिमें पञ्चगव्यका प्राशन करे तथा भूमिपर ही मात्सर्यरहित होकर शयन करे। प्रातः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको पूजा आदिसे संतुष्ट करे। प्रत्येक मासमें दो वस्त्र, स्वर्णमय वृषभ और गौ आदिका पूजनपूर्वक दान करे। संवत्सरके अन्तमें ईख, गुड़, वस्त्र, पात्र, आसन, गद्दा, तकिया आदिसे समन्वित शय्या, एक सेर तिलसे पूर्ण ताम्र-पात्र, सौवर्ण वृषभ **'विश्वात्मा प्रीयताम्'** कहकर वेदज्ञ ब्राह्मणको दान करे। इस विधिसे शुभसप्तमी-व्रत करनेवाला व्यक्ति जन्म-जन्ममें विमल कीर्ति एवं श्री प्राप्त करता है और देवलोकमें पूजित तथा प्रलयपर्यन्त गुणाधिप होता है। एक कल्पके अनन्तर वह पृथ्वीपर जन्म लेकर सातों द्वीपोंका चक्रवर्ती सम्राट् होता है। यह पुण्यदायिनी शुभ-सप्तमी सहस्रों ब्रह्महत्या और सैकड़ों भ्रूणहत्या आदि पापोंका नाश करती है। इस शुभ-सप्तमीके माहात्म्यको जो पढ़ता है अथवा क्षणभर भी सुनता है, वह शरीर छूटनेपर विद्याधरोंका अधिपति होता है[1]।

(अध्याय ५१)

सप्तमी-स्नपनव्रत और उसकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—प्रभो! मनुष्यको अपने मनमें उद्भूत उद्वेग तथा खेद-खिन्नता और अपनी दरिद्रताकी निवृत्तिके लिये अद्भुत[2]-शान्तिके निमित्त कौन-सा धर्म-कृत्य करना चाहिये? मृतवत्सा स्त्रीको (जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हैं) अपनी संततिकी रक्षा और दुःस्वप्नादिकी शान्तिके लिये क्या करना चाहिये?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! पूर्वजन्मके पाप इस जन्ममें रोग, दुर्गति तथा इष्टजनोंकी मृत्युके रूपमें फलित होते हैं। उनके विनाशके लिये मैं कल्याणकारी सप्तमी-स्नपन नामक व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, यह लोगोंकी पीड़ाका विनाश करनेवाला है। जहाँ दुधमुँहे शिशुओं, वृद्धों, आतुरों और नवयुवकोंकी आकस्मिक मृत्यु होती देखी जाती है, वहाँ उसकी शान्तिके लिये इस **'मृतवत्साभिषेक'** को बतला रहा हूँ। यह समस्त अद्भुत उत्पातों, उद्वेगों और चित्त-भ्रमोंका भी विनाशक है।

वराह-कल्पके वैवस्वत मन्वन्तरमें सत्ययुगमें हैहयवंशीय क्षत्रियोंके कुलकी शोभा बढ़ानेवाला कृतवीर्य नामक एक राजा हुआ था। उसने सतहत्तर हजार वर्षतक धर्म और नीतिपूर्वक समस्त प्रजाओंका पालन किया। उसके सौ पुत्र थे, जो च्यवनमुनिके शापसे दग्ध हो गये। फिर राजाने भगवान् सूर्यकी विधिपूर्वक उपासना प्रारम्भ की। कृतवीर्यके उपवास-व्रत, पूजा और स्तोत्रोंसे संतुष्ट होकर भगवान् सूर्यने उसे अपना दर्शन दिया और कहा—'कृतवीर्य! तुम्हें (कार्तवीर्य नामक) एक सुन्दर एवं चिरायु पुत्र उत्पन्न होगा, किंतु तुम्हें अपने पूर्वकृत पापोंको विनष्ट करनेके लिये स्नपन-सप्तमी नामक व्रत करना पड़ेगा। तुम्हारी मृतवत्सा पत्नीके जब पुत्र उत्पन्न हो जाय तो

१-भविष्यपुराणका यह अध्याय मत्स्यपुराण (अध्याय ८०) में इसी रूपमें प्राप्त होता है।

२-सामवेदीय 'अद्भुतब्राह्मण' (ताण्ड्य २६) तथा अथर्वपरिशिष्ट (७२) में अद्भुत-शान्तिका विस्तारसे उल्लेख है।

सात महीनेपर बालकके जन्म-नक्षत्रकी तिथिको छोड़कर शुभ दिनमें ग्रह एवं ताराबलको देखकर ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्ति-वाचन कराना चाहिये। इसी प्रकार वृद्ध, रोगी अथवा अन्य लोगोंके लिये किये जानेवाले इस व्रतमें जन्म-नक्षत्रका परित्याग कर देना चाहिये। गोदुग्धके साथ लाल अगहनीके चावलोंसे हव्यान्न पकाकर मातृकाओं, भगवान् सूर्य एवं रुद्रकी तुष्टिके लिये अर्पण करना चाहिये और फिर भगवान् सूर्यके नामसे अग्निमें घीकी सात आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। फिर बादमें रुद्रसूक्तसे भी आहुतियाँ देनी चाहिये। इस आहुतिमें आक एवं पलाशकी समिधाएँ प्रयुक्त करनी चाहिये तथा हवन-कार्यमें काले तिल, जौ एवं घीकी एक सौ आठ आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। हवनके बाद शीतल गङ्गाजलसे स्नान करना चाहिये। तदनन्तर हाथमें कुश लिये हुए वेदज्ञ ब्राह्मणद्वारा चारों कोणोंमें चार सुन्दर कलश स्थापित कराये। पुनः उसके बीचमें छिद्ररहित पाँचवाँ कलश स्थापित करे। उसे दही-अक्षतसे विभूषित करके सूर्यसम्बन्धी सात ऋचाओंसे अभिमन्त्रित कर दे। फिर उसे तीर्थ-जलसे भरकर उसमें रत्न या सुवर्ण डाल दे। इसी प्रकार सभी कलशोंमें सर्वौषधि, पञ्चगव्य, पञ्चरत्न, फल और पुष्प डालकर उन्हें वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर दे। फिर हाथीसार, घुड़शाल, बिमौट, नदीके संगम, तालाब, गोशाला और राजद्वार—इन सात जगहोंसे शुद्ध मृत्तिका लाकर उन सभी कलशोंमें डाल दे।

तदनन्तर ब्राह्मण रत्नगर्भित चारों कलशोंके मध्यमें स्थित पाँचवें कलशको हाथमें लेकर सूर्य-मन्त्रोंका पाठ करे तथा सात सुलक्षणा स्त्रियोंद्वारा जो पुष्प-माला और वस्त्राभूषणोंद्वारा पूजित हों, ब्राह्मणके साथ-साथ उस घड़ेके जलसे मृतवत्सा स्त्रीका अभिषेक कराये। (अभिषेकके समय इस प्रकार कहे—) 'यह बालक दीर्घायु और यह स्त्री जीवत्पुत्रा (जीवित पुत्रवाली) हो। सूर्य, ग्रहों और नक्षत्र-समूहोंसहित चन्द्रमा, इन्द्रसहित लोकपालगण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इनके अतिरिक्त अन्यान्य देव-समूह इस कुमारकी सदा रक्षा करें। सूर्य, शनि, अग्नि अथवा अन्यान्य जो कोई बालग्रह हों, वे सभी इस बालकको तथा इसके माता-पिताको कहीं भी कष्ट न पहुँचायें[1]।' अभिषेकके पश्चात् वह स्त्री श्वेत वस्त्र धारण करके अपने बच्चे और पतिके साथ उन सातों स्त्रियोंकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। पुनः गुरुकी पूजा करके धर्मराजकी स्वर्णमयी प्रतिमा ताम्रपात्रके ऊपर स्थापित करके गुरुको निवेदित कर दे। उसी प्रकार कृपणता छोड़कर अन्य ब्राह्मणोंका भी वस्त्र, सुवर्ण, रत्नसमूह आदिसे पूजन करके उन्हें घी और खीरसहित भक्ष्य पदार्थोंका भोजन कराये। भोजनोपरान्त गुरुदेवको बालककी रक्षाके लिये इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये—'यह बालक दीर्घायु हो और सौ वर्षोंतक सुखका उपभोग करे। इसका जो कुछ पाप था, उसे वडवानलमें डाल दिया गया। ब्रह्मा, रुद्र, वसुगण, स्कन्द, विष्णु, इन्द्र और अग्नि—ये सभी दुष्ट ग्रहोंसे इसकी रक्षा करें और सदा इसके लिये वरदायक हों[2]।' इस प्रकारके वाक्योंका उच्चारण करनेवाले गुरुदेवका यजमान पूजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें एक कपिला गौ प्रदान करे और फिर प्रणाम करके विदा करे। तत्पश्चात् मृतवत्सा स्त्री पुत्रको गोदमें लेकर सूर्यदेव और भगवान् शंकरको नमस्कार करे और हवनसे बचे हुए हव्यान्नको 'सूर्यदेवको नमस्कार है'—यह कहकर खा जाय। यह व्रत उद्विग्नता और दुःस्वप्नादिमें भी प्रशस्त माना गया है।

इस प्रकार कार्तिके जन्मदिनके नक्षत्रको छोड़कर शान्ति-प्राप्तिके हेतु शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिमें सदा (सूर्य और शंकरका) पूजन करना चाहिये, क्योंकि इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाला कभी कष्टमें नहीं पड़ता। जो मनुष्य इस विधानके अनुसार इस व्रतका सदा अनुष्ठान करता है, वह दीर्घायु होता है। (इसी व्रतके प्रभावसे) कार्तवीर्यने दस हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीपर शासन किया था। राजन्! इस प्रकार सूर्यदेव इस पुण्यप्रद, परम पावन और आयुवर्धक सप्तमीस्नपन-व्रतका

१-दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवपुत्रा च भाविनी। आदित्यचन्द्रमासार्धं ग्रहनक्षत्रमण्डलम्॥
शक्रः सलोकपालो वै ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः। एते चान्ये च वै देवाः सदा पान्तु कुमारकम्॥
मा शनिर्मा स हुतभुङ् मा च बालग्रहाः क्वचित्। पीडां कुर्वन्तु बालस्य मा मातृजनकस्य वै॥ (उत्तरपर्व ५२। २६—२८)

२-दीर्घायुरस्तु बालोऽयं यावद्वर्षशतं सुखी। यत्किञ्चिदस्य दुरितं तत्क्षिप्तं वडवामुखे॥
ब्रह्मा रुद्रो विष्णुः स्कन्दो वायुः शक्रो हुताशनः। रक्षन्तु सर्वे दुष्टेभ्यो वरदा यान्तु सर्वदा॥ (उत्तरपर्व ५२। ३२-३३)

विधान बतलाकर वहीं अन्तर्हित हो गये। मनुष्यको सूर्यसे नीरोगता, अग्निसे धन, ईश्वर (शिवजी) से ज्ञान और भगवान् जनार्दनसे मोक्षकी अभिलाषा करनी चाहिये[1]। यह व्रत बड़े-बड़े पापोंका विनाशक, बाल-वृद्धिकारक तथा परम हितकारी है। जो मनुष्य अनन्यचित्त होकर इस व्रत-विधानको सुनता है, उसे भी सिद्धि प्राप्त होती है[2]। (अध्याय ५२)

अचलासप्तमी[3]-व्रत-कथा तथा व्रत-विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने सभी उत्तम फलोंको देनेवाले माघस्नानका[4] विधान बतलाया था, परंतु जो प्रातःकाल स्नान करनेमें समर्थ न हो तो वह क्या करे? स्त्रियाँ अति सुकुमारी होती हैं, वे किस प्रकार माघस्नानका कष्ट सहन कर सकती हैं? इसलिये आप कोई ऐसा उपाय बतायें कि थोड़ेसे परिश्रमसे भी नारियोंको रूप, सौभाग्य, संतान और अनन्त पुण्य प्राप्त हो जाय।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैं अचला-सप्तमीका अत्यन्त गोपनीय विधान आपको बतलाता हूँ, जिसके करनेसे सब उत्तम फल प्राप्त हो जाते हैं। इस सम्बन्धमें आप एक कथा सुनें—

मगध देशमें अति रूपवती इन्दुमती नामकी एक वेश्या रहती थी। एक दिन वह वेश्या प्रातःकाल बैठी-बैठी संसारकी अनवस्थिति (नश्वरता)का इस प्रकार चिन्तन करने लगी—देखो! यह विषयरूपी संसार-सागर कैसा भयंकर है, जिसमें डूबते हुए जीव जन्म-मृत्यु-जरा आदिसे तथा जल-जन्तुओंसे पीड़ित होते हुए भी किसी प्रकार पार उतर नहीं पाते। ब्रह्माजीके द्वारा निर्मित यह प्राणिसमुदाय अपने किये गये कर्मरूपी ईंधनसे एवं कालरूपी अग्निसे दग्ध कर दिया जाता है। प्राणियोंके जो धर्म, अर्थ, कामसे रहित दिन व्यतीत होते हैं, फिर वे कहाँ वापस आते हैं? जिस दिन स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण आदि सत्कर्म नहीं किया जाता, वह दिन व्यर्थ है। पुत्र, स्त्री, घर, क्षेत्र तथा धन आदिकी चिन्तामें सारी आयु बीत जाती है और मृत्यु आकर घर दबोचती है।

इस प्रकार कुछ निर्विण्ण—उद्विग्न होकर सोचती-विचारती हुई वह इन्दुमती वेश्या महर्षि वसिष्ठके आश्रममें गयी और उन्हें प्रणामकर हाथ जोड़कर कहने लगी— 'महाराज! मैंने न तो कभी कोई दान दिया, न जप, तप, व्रत, उपवास आदि सत्कर्मोंका अनुष्ठान किया और न शिव, विष्णु आदि किन्हीं देवताओंकी आराधना की, अब मैं इस भयंकर संसारसे भयभीत होकर आपकी शरण आयी हूँ, आप मुझे कोई ऐसा व्रत बतलायें, जिससे मेरा उद्धार हो जाय।'

वसिष्ठजी बोले—'वरानने! तुम माघ मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको स्नान करो, जिससे रूप, सौभाग्य और सद्गति आदि सभी फल प्राप्त होते हैं। षष्ठीके दिन एक बार भोजनकर सप्तमीको प्रातःकाल ही ऐसे नदीतट अथवा जलाशयपर जाकर दीपदान और स्नान करो, जिसके जलको किसीने स्नानकर हिलाया न हो, क्योंकि जल मलको प्रक्षालित कर देता है। बादमें यथाशक्ति दान भी करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।' वसिष्ठजीका ऐसा वचन सुनकर इन्दुमती अपने घर वापस लौट आयी और उनके द्वारा बतायी गयी विधिके अनुसार उसने स्नान-ध्यान आदि कर्मोंको सम्पन्न किया। सप्तमीके स्नानके प्रभावसे बहुत दिनोंतक सांसारिक सुखोंका उपभोग करती हुई वह देह-त्यागके पश्चात् देवराज इन्द्रकी सभी अप्सराओंमें प्रधान नायिकाके पदपर अधिष्ठित हुई। यह अचलासप्तमी सम्पूर्ण पापोंका प्रशमन करनेवाली तथा सुख-सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाली है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! अचलासप्तमीका माहात्म्य तो आपने बतलाया, कृपाकर अब स्नानका विधान

१-आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्। शंकराज्ज्ञानमिच्छेत्तु गतिमिच्छेज्जनार्दनात्॥ (उत्तरपर्व ५२। ३९)

२-भविष्यपुराणका यह अध्याय मत्स्यपुराण (अ०६८) से प्रायः मिलता है।

३-यह सप्तमी पुराणोंमें रथ, सूर्य, भानु, अर्क, महती, पुत्रसप्तमी आदि अनेक नामोंसे विख्यात है और अनेक पुराणोंमें उन-उन नामोंसे अलग-अलग विधियाँ निर्दिष्ट हैं, जिनसे सभी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं।

४-पुराणोंका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। माघस्नानकी विस्तृत विधि पद्मपुराणके उत्तरखण्ड एवं वायुपुराणमें प्राप्त होती है। इनमें बड़ी सुन्दर एवं श्रेष्ठ कथाएँ हैं।

भी बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! षष्ठीके दिन एकभुक्त होकर सूर्यनारायणका पूजन करे। यथासम्भव सप्तमीको प्रातःकाल ही उठकर नदी या सरोवरपर जाकर अरुणोदय आदि वेलामें बहुत सबेरे ही स्नान करनेकी चेष्टा करे। सुवर्ण, चाँदी अथवा ताम्रके पात्रमें कुसुम्भकी रँगी हुई बत्ती और तिलका तेल डालकर दीपक प्रज्वलित करे। उस दीपकको सिरपर रखकर हृदयमें भगवान् सूर्यका इस प्रकार ध्यान करे—

नमस्ते रुद्ररूपाय रसानाम्पतये नमः।
वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिवास नमोऽस्तु ते॥
यावज्जन्म कृतं पापं मया जन्मसु सप्तसु।
तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी॥
जननी सर्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके।
सर्वव्याधिहरे देवि नमस्ते रविमण्डले॥

(उत्तरपर्व ५३।३३—३५)

तदनन्तर दीपकको जलके ऊपर तैरा दे फिर स्नानकर देवता और पितरोंका तर्पण करे और चन्दनसे कर्णिकासहित अष्टदल-कमल बनाये। उस कमलके मध्यमें शिव-पार्वतीकी स्थापनाकर प्रणव-मन्त्रसे पूजा करे और पूर्वादि आठ दलोंमें क्रमसे भानु, रवि, विवस्वान्, भास्कर, सविता, अर्क, सहस्रकिरण तथा सर्वात्माका पूजन करे। इन नामोंके आदिमें 'ॐ'कार तथा अन्तमें 'नमः' पद लगाये। यथा—'**ॐ भानवे नमः**', '**ॐ रवये नमः**' इत्यादि।

इस प्रकार पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा वस्त्र आदि उपचारोंसे विधिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजाकर '**स्वस्थानं गम्यताम्**' यह कहकर विसर्जित कर दे। बादमें ताम्र अथवा मिट्टीके पात्रमें गुड़ और घृतसहित तिलचूर्ण तथा सुवर्णका ताल-पत्राकार एक कानका आभूषण बनाकर पात्रमें रख दे। अनन्तर रक्तवस्त्रसे उसे ढँककर पुष्प-धूपादिसे पूजन करे और वह पात्र दौर्भाग्य तथा दुःखोंके विनाशकी कामनासे ब्राह्मणको दे दे। अनन्तर '**सपुत्रपशुभृत्याय मेऽर्कोऽयं प्रीयताम्**' पुत्र, पशु, भृत्य-समन्वित मेरे ऊपर भगवान् सूर्य प्रसन्न हो जायँ—ऐसी प्रार्थना करे। फिर गुरुको वस्त्र, तिल, गौ और दक्षिणा देकर तथा यथाशक्ति अन्य ब्राह्मणोंको भोजन कराकर व्रत समाप्त करे।

जो पुरुष इस विधिसे अचलासप्तमीको स्नान करता है, उसे सम्पूर्ण माघ-स्नानका फल प्राप्त होता है। जो इस माहात्म्यको भक्तिसे कहेगा या सुनेगा तथा लोगोंको इसका उपदेश करेगा, वह उत्तम लोकको अवश्य प्राप्त करेगा।

(अध्याय ५३)

बुधाष्टमीव्रत-कथा तथा माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं बुधाष्टमीव्रतका विधान बतलाता हूँ, जिसे करनेवाला कभी नरकका मुख नहीं देखता। इस विषयमें आप एक आख्यान सुनें। सत्ययुगके प्रारम्भमें मनुके पुत्र राजा इल[1] हुए। वे अनेक मित्रों तथा भृत्योंसे घिरे रहते थे। एक दिन वे मृगयाके प्रसंगसे एक हिरणका पीछा करते हुए हिमालय पर्वतके समीप एक जंगलमें पहुँच गये। उस वनमें प्रवेश करते ही वे सहसा स्त्री-रूपमें परिणत हो गये। वह वन शिवजी और माता पार्वतीजीका विहार-क्षेत्र था। वहाँ शिवजीकी यह आज्ञा थी कि 'जो पुरुष इस वनमें प्रवेश करेगा, वह तत्क्षण ही स्त्री हो जायगा।' इस कारण राजा इल भी स्त्री हो गये। अब वे स्त्री-रूपसे वनमें विचरण करने लगे। वे यह नहीं समझ सके कि मैं कहाँ आ गया हूँ। उसी समय चन्द्रमाके पुत्र कुमार बुधकी दृष्टि उनपर पड़ी। उसके उत्तम रूपपर आकृष्ट हो बुधने उसे अपनी स्त्री बना लिया। इलासे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम पुरूरवा था। पुरूरवासे ही चन्द्रवंशका प्रारम्भ हुआ।

जिस दिन बुधने इलासे विवाह किया, उस दिन अष्टमी तिथि थी, इसलिये यह बुधाष्टमी जगत्में पूज्य हुई। यह बुधाष्टमी सम्पूर्ण पापोंका प्रशमन तथा उपद्रवोंका नाश करनेवाली है।

राजन्! अब मैं आपको एक दूसरी कथा सुना रहा हूँ—विदेह राजाओंकी नगरी मिथिलामें निमि नामके एक राजा थे।

१-इनका मुख्य नाम सुद्युम्न था, किंतु जन्मके समय पुत्रीरूपमें उत्पन्न होनेके कारण 'इला' और बादमें पुरुष-रूपमें परिवर्तित हो जानेपर 'इल' नाम हुआ। इनकी कथा प्रायः सभी पुराणों तथा महाभारत आदिमें भी आती है।

वे शत्रुओंद्वारा लड़ाईके मैदानमें मार डाले गये। उनकी स्त्रीका नाम था उर्मिला। उर्मिला जब राज्य-च्युत एवं निराश्रित हो इधर-उधर घूमने लगी, तब अपने बालक और कन्याको लेकर वह अवन्ति देश चली गयी और वहाँ एक ब्राह्मणके घरमें कार्यकर अपना निर्वाह करने लगी। वह विपत्तिसे पीड़ित थी, गेहूँ पीसते समय वह थोड़ेसे गेहूँ चुराकर रख लेती और उसीसे क्षुधासे पीड़ित अपने बच्चोंका पालन करती। कुछ समय बाद उर्मिलाका देहान्त हो गया। उर्मिलाका पुत्र बड़ा हो गया, वह अवन्तिसे मिथिला आया और पिताके राज्यको पुनः प्राप्तकर शासन करने लगा। उसकी बहन श्यामला विवाह-योग्य हो गयी थी। वह अत्यन्त रूपवती थी। अवन्तिदेशके राजा धर्मराजने उसके उत्तम रूपकी चर्चा सुनकर उसे अपनी रानी बना लिया।

एक दिन धर्मराजने अपनी प्रिया श्यामलासे कहा— 'वैदेहिनन्दिनि! तुम और सभी कामोंको तो करना, परंतु ये सात स्थान जिनमें ताले बंद हैं, इनमें तुम कभी मत जाना।' श्यामलाने 'बहुत अच्छा' कहकर पतिकी बात मान ली, परंतु उसके मनमें कुतूहल बना रहा।

एक दिन जब धर्मराज अपने किसी कार्यमें व्यस्त थे, तब श्यामलाने एक मकानका ताला खोलकर वहाँ देखा कि उसकी माता उर्मिलाको अति भयंकर यमदूत बाँधकर तप्त तेलके कड़ाहमें बार-बार डाल रहे हैं। लज्जित होकर श्यामलाने वह कमरा बंद कर दिया, फिर दूसरा ताला खोला तो देखा कि वहाँ भी उसकी माताको यमदूत शिलाके ऊपर रखकर पीस रहे हैं और माता चिल्ला रही है। इसी प्रकार उसने तीसरे कमरेको खोलकर देखा कि यमदूत उसकी माताके मस्तकमें लोहेकी कील ठोंक रहे हैं, इसी तरह चौथेमें अति भयंकर श्वान उसका भक्षण कर रहे हैं, पाँचवेंमें लोहेके संदंशसे उसे पीड़ित कर रहे हैं। छठेमें कोल्हूके बीच ईखके समान पेरी जा रही है और सातवें स्थानपर ताला खोलकर देखा तो वहाँ भी उसकी माताको हजारों कृमि भक्षण कर रहे हैं और वह रुधिर आदिसे लथपथ हो रही है।

यह देखकर श्यामलाने विचार किया कि मेरी माताने ऐसा कौन-सा पाप किया, जिससे वह इस दुर्गतिको प्राप्त हुई। यह सोचकर उसने सारा वृत्तान्त अपने पति धर्मराजको बतलाया।

धर्मराज बोले—'प्रिये! मैंने इसीलिये कहा था कि ये सात ताले कभी न खोलना, नहीं तो तुम्हें वहाँ पश्चात्ताप होगा। तुम्हारी माताने संतानके स्नेहसे ब्राह्मणके गेहूँ चुराये थे, क्या तुम इस बातको नहीं जानती हो जो तुम मुझसे पूछ रही हो? यह सब उसी कर्मका फल है। ब्राह्मणका धन स्नेहसे भी भक्षण करे तो भी सात कुल अधोगतिको प्राप्त होते हैं और चुराकर खाये तो जबतक चन्द्रमा और तारे हैं, तबतक नरकसे उद्धार नहीं होता। जो गेहूँ इसने चुराये थे, वे ही कृमि बनकर इसका भक्षण कर रहे हैं।'

श्यामलाने कहा—महाराज! मेरी माताने जो कुछ भी पहले किया, वह सब मैं जानती ही हूँ, फिर भी अब आप कोई ऐसा उपाय बतलायें, जिससे मेरी माताका नरकसे उद्धार हो जाय। इसपर धर्मराजने कुछ समय विचार किया और कहने लगे—'प्रिये! आजसे सात जन्म पूर्व तुम ब्राह्मणी थी। उस समय तुमने अपनी सखियोंके साथ जो बुधाष्टमीका व्रत किया था, यदि उसका फल तुम संकल्पपूर्वक अपनी माताको दे दो तो इस संकटसे उसकी मुक्ति हो जायगी।' यह सुनते ही श्यामलाने स्नानकर अपने व्रतका पुण्यफल संकल्पपूर्वक माताके लिये दान कर दिया। व्रतके फलके प्रभावसे उसकी माता भी उसी क्षण दिव्य देह धारणकर विमानमें बैठकर अपने पतिसहित स्वर्गलोकको चली गयी और बुध ग्रहके समीप स्थित हो गयी।

राजन्! अब इस व्रतके विधानको भी आप सावधान होकर सुनें—जब-जब शुक्ल पक्षकी अष्टमीको बुधवार पड़े तो उस दिन एकभुक्त-व्रत करना चाहिये। पूर्वाह्णमें नदी आदिमें स्नान करे और वहाँसे जलसे भरा नवीन कलश लाकर घरमें स्थापित कर दे, उसमें सोना छोड़ दे और बाँसके पात्रमें पक्वान्न भी रखे। आठ बुधाष्टमियोंका व्रत करे और आठोंमें क्रमसे ये आठ पक्वान्न—मोदक, फेनी, घीका अपूप, वटक, श्वेत कसारसे बने पदार्थ, सोहालक (खांडयुक्त अशोकवर्तिका) और फल, पुष्प तथा फेनी आदि अनेक पदार्थ बुधको निवेदित कर बादमें स्वयं भी अपने इष्ट-मित्रोंके साथ भोजन करे। साथ ही बुधाष्टमीकी कथा भी सुने। बिना कथा सुने भोजन न करे। बुधकी एक माशे (८ रत्ती=एक माशा) या

आधे माशेकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर गन्ध, पुष्प, नैवेद्य, पीत वस्त्र तथा दक्षिणा आदिसे उसका पूजन करे। पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—

'**ॐ बुधाय नमः, ॐ सोमात्मजाय नमः, ॐ दुर्बुद्धिनाशनाय नमः, ॐ सुबुद्धिप्रदाय नमः, ॐ ताराजाताय नमः, ॐ सौम्यग्रहाय नमः** तथा **ॐ सर्वसौख्यप्रदाय नमः।**'

तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर मूर्तिके साथ-साथ वह भोज्य-सामग्री तथा अन्य पदार्थ ब्राह्मणको दान कर दे—

ॐ बुधोऽयं प्रतिगृह्णातु द्रव्यस्थोऽयं बुधः स्वयम्।
दीयते बुधराजाय तुष्यतां च बुधो मम॥

(उत्तरपर्व ५४। ५१)

ब्राह्मण भी मूर्ति आदि ग्रहणकर यह मन्त्र पढ़े—

बुधः सौम्यस्तारकेयो राजपुत्र इलापतिः।
कुमारो द्विजराजस्य यः पुरूरवसः पिता॥
दुर्बुद्धिबोधदुरितं नाशयित्वावयोर्बुधः।
सौख्यं च सौमनस्यं च करोतु शशिनन्दनः॥

(उत्तरपर्व ५४। ५२-५३)

इस विधिसे जो बुधाष्टमीका व्रत करता है, वह सात जन्मतक जातिस्मर होता है। धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, दीर्घ आयुष्य और ऐश्वर्य आदि संसारके सभी पदार्थोंको प्राप्त कर अन्त समयमें नारायणका स्मरण करता हुआ तीर्थ-स्थानमें प्राण त्याग करता है और प्रलयपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है। जो इस विधानको सुनता है, वह भी ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त हो जाता है[१]।

(अध्याय ५४)

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीव्रतकी कथा एवं विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—अच्युत! आप विस्तारसे (अपने जन्म-दिन) जन्माष्टमीव्रतका विधान बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! जब मथुरामें कंस मारा गया, उस समय माता देवकी मुझे अपनी गोदमें लेकर रोने लगीं। पिता वसुदेवजी भी मुझे तथा बलदेवजीको आलिङ्गित कर गद्गदवाणीसे कहने लगे—'आज मेरा जन्म सफल हुआ, जो मैं अपने दोनों पुत्रोंको कुशलसे देख रहा हूँ। सौभाग्यसे आज हम सभी एकत्र मिल रहे हैं।' हमारे माता-पिताको अति हर्षित देखकर बहुतसे लोग वहाँ एकत्र हुए और मुझसे कहने लगे—'भगवन्! आपने बहुत बड़ा काम किया, जो इस दुष्ट कंसको मारा। हम सभी इससे बहुत पीड़ित थे। आप कृपाकर यह बतलायें कि आप माता देवकीके गर्भसे कब आविर्भूत हुए थे? हम सब उस दिन महोत्सव मनाया करेंगे। आपको बार-बार नमस्कार है, हम सब आपकी शरण हैं। आप हम सभीपर प्रसन्न होइये। उस समय पिता वसुदेवजीने भी मुझसे कहा था कि अपना जन्मदिन इन्हें बता दो।'

तब मैंने मथुरानिवासी जनोंको जन्माष्टमीव्रतका रहस्य बतलाया और कहा—'पुरवासियो! आपलोग मेरे जन्म-दिनको विश्वमें जन्माष्टमीके नामसे प्रसारित करें। प्रत्येक धार्मिक व्यक्तिको जन्माष्टमीका व्रत अवश्य करना चाहिये। जिस समय सिंह राशिपर सूर्य और वृषराशिपर चन्द्रमा था, उस भाद्रपद मासकी कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथिको अर्धरात्रिमें

१-मत्स्यपुराणमें बुधका स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—

पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः। खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः॥ (९४। ४)

बुध पीले रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। उनकी शरीरकान्ति कनेरके पुष्प-सरीखी है। वे चारों हाथोंमें क्रमशः तलवार, ढाल गदा और वरदमुद्रा धारण किये रहते हैं तथा सिंहपर सवार होते हैं।

२-हेमाद्रि, व्रतराज तथा जयसिंहकल्पद्रुम आदि निबन्धग्रन्थोंमें भी भविष्योत्तरपुराणके नामसे बुधाष्टमीव्रत दिया गया है, पर पाठ-भेद अधिक है। व्रतराजमें बुधके पूजनकी तथा व्रतके उद्यापनकी विधि भी भविष्योत्तरपुराणके नामसे दी गयी है। इस कथामें बुद्धि, युक्ति और विमर्श-शक्तिका भी पर्याप्त सम्मिश्रण दीखता है।

रोहिणी नक्षत्रमें मेरा जन्म हुआ[१]। वसुदेवजीके द्वारा माता देवकीके गर्भसे मैंने जन्म लिया। यह दिन संसारमें जन्माष्टमी नामसे विख्यात होगा। प्रथम यह व्रत मथुरामें प्रसिद्ध हुआ और बादमें सभी लोकोंमें इसकी प्रसिद्धि हो गयी। इस व्रतके करनेसे संसारमें शान्ति होगी, सुख प्राप्त होगा और प्राणिवर्ग रोगरहित होगा।'

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप इस व्रतका विधान बतलायें, जिसके करनेसे आप प्रसन्न होते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस एक ही व्रतके कर लेनेसे सात जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। व्रतके पहले दिन दन्तधावन आदि करके व्रतका नियम ग्रहण करे। व्रतके दिन मध्याह्नमें स्नानकर माता भगवती देवकीका एक सूतिका-गृह बनाये। उसे पद्मरागमणि और वनमाला[२] आदिसे सुशोभित करे। गोकुलकी भाँति गोप, गोपी, घण्टा, मृदङ्ग, शङ्ख और माङ्गल्य-कलश आदिसे समन्वित तथा अलंकृत सूतिका-गृहके द्वारपर रक्षाके लिये खड्ग, कृष्ण छाग, मुशल आदि रखे। दीवालोंपर स्वस्तिक आदि माङ्गलिक चिह्न बना दे। षष्ठीदेवीकी भी नैवेद्य आदिके साथ स्थापना करे। इस प्रकार यथाशक्ति उस सूतिकागृहको विभूषितकर बीचमें पर्यङ्कके ऊपर मुझसहित अर्धसुप्तावस्थावाली, तपस्विनी माता देवकीकी प्रतिमा स्थापित करे। प्रतिमाएँ आठ प्रकारकी होती हैं—स्वर्ण, चाँदी, ताम्र, पीतल, मृत्तिका, काष्ठकी, मणिमयी तथा चित्रमयी। इनमेंसे किसी भी वस्तुकी सर्वलक्षणसम्पन्न प्रतिमा बनाकर स्थापित करे। माता देवकीका स्तनपान करती हुई बालस्वरूप मेरी प्रतिमा उनके समीप पलँगके ऊपर स्थापित करे। एक कन्याके साथ माता यशोदाकी प्रतिमा भी वहाँ स्थापित की जाय। सूतिका-मण्डपके ऊपरकी भित्तियोंमें देवता, ग्रह, नाग तथा विद्याधर आदिकी मूर्तियाँ हाथोंसे पुष्प-वर्षा करते हुए बनाये। वसुदेवजीको भी सूतिकागृहके बाहर खड्ग और ढाल धारण किये चित्रित करना चाहिये। वसुदेवजी महर्षि कश्यपके अवतार हैं और देवकी माता अदितिकी। बलदेवजी शेषनागके अवतार हैं, नन्दबाबा दक्षप्रजापतिके, यशोदा दितिकी और गर्गमुनि ब्रह्माजीके अवतार हैं। कंस कालनेमिका अवतार है। कंसके पहरेदारोंको सूतिकागृहके आस-पास निद्रावस्थामें चित्रित करना चाहिये। गौ, हाथी आदि तथा नाचती-गाती हुई अप्सराओं और गन्धर्वोंकी प्रतिमा भी बनाये। एक ओर कालिय नागको यमुनाके ह्रदमें स्थापित करे।

इस प्रकार अत्यन्त रमणीय नवसूतिका-गृहमें देवी देवकीका स्थापनकर भक्तिसे गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, नारियल, दाडिम, ककड़ी, बीजपूर, सुपारी, नारंगी तथा पनस आदि जो फल उस देशमें उस समय प्राप्त हों, उन सबसे पूजनकर माता देवकीकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादै-
र्भृङ्गारादर्शकुम्भप्रमरकृतकरैः सेव्यमाना मुनीन्द्रैः।
पर्यङ्के स्वास्तृते या मुदिततरमनाः पुत्रिणी सम्यगास्ते
सा देवी देवमाता जयति सुवदना देवकी कान्तरूपा॥

(उत्तरपर्व ५५।४२)

'जिनके चारों ओर किंनर आदि अपने हाथोंमें वेणु तथा वीणा-वाद्योंके द्वारा स्तुति-गान कर रहे हैं और जो अभिषेक-पात्र, आदर्श, मङ्गलमय कलश तथा चँवर हाथोंमें लिये श्रेष्ठ मुनिगणोंद्वारा सेवित हैं तथा जो कृष्ण-जननी भलीभाँति बिछे हुए पलँगपर विराजमान हैं, उन कमनीय स्वरूपवाली सुवदना देवमाता अदिति-स्वरूपा देवी देवकीकी जय हो।'

उस समय यह ध्यान करे कि कमलासना लक्ष्मी देवकीके चरण दबा रही हों। उन देवी लक्ष्मीकी—'**नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।**' इस मन्त्रसे पूजा करे। इसके बाद '**ॐ देवक्यै नमः, ॐ वसुदेवाय नमः, ॐ बलभद्राय नमः, ॐ श्रीकृष्णाय नमः, ॐ सुभद्रायै नमः, ॐ नन्दाय नमः** तथा **ॐ यशोदायै नमः**'—इन नाम-मन्त्रोंसे सबका अलग-अलग पूजन करे।

१-सिंहराशिगते सूर्ये गगने जलदाकुले। मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्धरात्रके।
वृषराशिस्थिते चन्द्रे नक्षत्रे रोहिणीयुते॥ (उत्तरपर्व ५५।१४)

२-आजानुलम्बिनी ऋतु-पुष्पोंकी माला और पद्मराग, मुक्ता आदि पञ्चमणियोंकी माला तथा तुलसीपत्रमिश्रित विविध पुष्पोंकी मालाको भी वनमाला, जयमाला और वैजयन्ती माला कहा गया है।

कुछ लोग चन्द्रमाके उदय हो जानेपर चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान कर हरिका ध्यान करते हैं, उन्हें निम्नलिखित मन्त्रोंसे हरिका ध्यान करना चाहिये—

अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम्।
वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम्॥
वाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं ब्राह्मणप्रियम्।
दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम्॥
गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम्।
अधोक्षजं जगद्बीजं सर्गस्थित्यन्तकारणम्॥
अनादिनिधनं विष्णुं त्रैलोक्येशं त्रिविक्रमम्।
नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्॥
पीताम्बरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम्।
श्रीवत्साङ्कं जगत्सेतुं श्रीधरं श्रीपतिं हरिम्॥

(उत्तरपर्व ५५।४६—५०)

—इन मन्त्रोंसे भगवान् श्रीहरिका ध्यान करके **'योगेश्वराय योगसम्भवाय योगपतये गोविन्दाय नमो नमः'**-इस मन्त्रसे प्रतिमाको स्नान कराना चाहिये। अनन्तर **'यज्ञेश्वराय यज्ञसम्भवाय यज्ञपतये गोविन्दाय नमो नमः'**-इस मन्त्रसे अनुलेपन, अर्घ्य, धूप, दीप आदि अर्पण करे। तदनन्तर **'विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वसम्भवाय विश्वपतये गोविन्दाय नमो नमः।'** इस मन्त्रसे नैवेद्य निवेदित करे। दीप अर्पण करनेका मन्त्र इस प्रकार है—**'धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः।'**

इस प्रकार वेदीके ऊपर रोहिणी-सहित चन्द्रमा, वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा और बलदेवजीका पूजन करे, इससे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। चन्द्रोदयके समय इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे—

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केन्दो रोहिण्या सहितो मम॥

(उत्तरपर्व ५५।५४)

आधी रातको गुड़ और घीसे वसोर्धाराकी आहुति देकर षष्ठीदेवीकी पूजा करे। उसी क्षण नामकरण आदि संस्कार भी करने चाहिये। नवमीके दिन प्रातःकाल मेरे ही समान भगवतीका भी उत्सव करना चाहिये। इसके अनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर **'कृष्णो मे प्रीयताम्'** कहकर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये और यह मन्त्र भी पढ़ना चाहिये—

यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्।
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः॥

(उत्तरपर्व ५५।६०)

इसके बाद ब्राह्मणोंको विदा करे और ब्राह्मण कहें—**'शान्तिरस्तु शिवं चास्तु।'**

धर्मनन्दन! इस प्रकार जो मेरा भक्त पुरुष अथवा नारी देवी देवकीके इस महोत्सवको प्रतिवर्ष करता है, वह पुत्र, संतान, आरोग्य, धन-धान्य, सद्‌गृह, दीर्घ आयुष्य और राज्य तथा सभी मनोरथोंको प्राप्त करता है। जिस देशमें यह उत्सव किया जाता है, वहाँ जन्म-मरण, आवागमनकी व्याधि, अवृष्टि तथा ईति-भीति आदिका कभी भय नहीं रहता। मेघ समयपर वर्षा करते हैं। पाण्डुपुत्र! जिस घरमें यह देवकी-व्रत किया जाता है, वहाँ अकालमृत्यु नहीं होती और न गर्भपात होता है तथा वैधव्य, दौर्भाग्य एवं कलह नहीं होता। जो एक बार भी इस व्रतको करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है। इस व्रतके करनेवाले संसारके सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें विष्णुलोकमें निवास करते हैं।

(अध्याय ५५)

दूर्वाकी उत्पत्ति एवं दूर्वाष्टमीव्रतका विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको अत्यन्त पवित्र दूर्वाष्टमीव्रत होता है। जो पुरुष इस पुण्य दूर्वाष्टमीका श्रद्धापूर्वक व्रत करता है, उसके वंशका क्षय नहीं होता। दूर्वाके अङ्कुरोंकी तरह उसके कुलकी वृद्धि होती रहती है।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—लोकनाथ! यह दूर्वा कहाँसे उत्पन्न हुई? कैसे चिरायु हुई तथा यह क्यों पवित्र मानी गयी और लोकमें वन्द्य तथा पूज्य कैसे हुई? इसे भी बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—देवताओंके द्वारा अमृतकी प्राप्तिके लिये क्षीर-सागरके मथे जानेपर भगवान् विष्णुने अपनी जंघापर हाथसे पकड़कर मन्दराचलको धारण किया

था। मन्दराचलके वेगसे भ्रमण करनेके कारण रगड़से विष्णु भगवान्‌के जो रोम उखड़कर समुद्रमें गिरे थे, पुनः समुद्रकी लहरोंद्वारा उछाले गये वे ही रोम हरित वर्णके सुन्दर एवं शुभ दूर्वाके रूपमें उत्पन्न हुए। उसी दूर्वापर देवताओंने मन्थनसे उत्पन्न अमृतका कुम्भ रखा, उससे जो अमृतके बिन्दु गिरे, उनके स्पर्शसे वह दूर्वा अजर-अमर हो गयी। वह देवताओंके लिये पवित्र तथा वन्द्य हुई। देवताओंने भाद्रपदकी शुक्ला अष्टमीको गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, खर्जूर, नारिकेल, द्राक्षा, कपित्थ, नारंग, आम्र, बीजपूर, दाड़िम आदि फलों तथा दही, अक्षत, माला आदिसे निम्न मन्त्रोंद्वारा उसका पूजन किया—

त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दिता च सुरासुरैः।
सौभाग्यं संततिं कृत्वा सर्वकार्यकरी भव॥
यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले।
तथा ममापि संतानं देहि त्वमजरामरे॥

(उत्तरपर्व ५६। १२-१३)

देवताओंके साथ ही उनकी पत्नियों तथा अप्सराओंने भी उसका पूजन किया। मर्त्यलोकमें वेदवती, सीता, दमयन्ती आदि स्त्रियोंके द्वारा भी सौभाग्यदायिनी यह दूर्वा पूजित (वन्दित) हुई और सभीने अपना-अपना अभीष्ट प्राप्त किया। जो भी नारी स्नानकर शुद्ध वस्त्र धारणकर दूर्वाका पूजन कर तिलपिष्ट, गोधूम और सप्तधान्य आदिका दानकर ब्राह्मणको भोजन कराती है और श्रद्धासे इस पुण्य तथा संतानकारक दूर्वाष्टमी-व्रतको करती है वह पुत्र, सौभाग्य—धन आदि सभी पदार्थोंको प्राप्तकर बहुत कालतक संसारमें सुख भोगकर अन्तमें अपने पतिसहित स्वर्गमें जाती है और प्रलयपर्यन्त वहाँ निवास करती है तथा देवताओंके द्वारा आनन्दित होती है।

(अध्याय ५६)

मासिक कृष्णाष्टमी[1]-व्रतोंकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! अब आप समस्त पापों तथा भयोंके नाशक, धर्मप्रद और भगवान् शंकरके प्रीतिकारक मासिक कृष्णाष्टमी-व्रतोंके विधानका श्रवण करें। मार्गशीर्ष मासकी कृष्णाष्टमीको उपवासके नियम ग्रहणकर जितेन्द्रिय और क्रोधरहित हो गुरुकी आज्ञानुसार उपवास करे। मध्याह्नके अनन्तर नदी आदिमें स्नानकर गन्ध, उत्तम पुष्प, गुग्गुल धूप, दीप अनेक प्रकारके नैवेद्य तथा ताम्बूल आदि उपचारोंसे शिवलिङ्गका पूजनकर काले तिलोंसे हवन करे। इस मासमें शंकरजीका पूजन करे और गोमूत्र-पानकर रात्रिमें भूमिपर शयन करे, इससे अतिरात्र-यज्ञका फल प्राप्त होता है। पौष मासकी कृष्णाष्टमीको शम्भु नामसे महेश्वरका पूजनकर घृत प्राशन करनेसे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है। माघ मासकी कृष्णाष्टमीको महेश्वर नामसे भगवान् शंकरका पूजनकर गोदुग्ध प्राशन करनेसे अनेक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। फाल्गुन मासकी कृष्णाष्टमीमें महादेव नामसे उनका पूजनकर तिल भक्षण करनेसे आठ राजसूय यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। चैत्र मासकी कृष्णाष्टमीमें स्थाणु नामसे शिवका पूजनकर यवका भोजन करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। वैशाख मासकी कृष्णाष्टमीमें शिव नामसे इनका पूजनकर रात्रिमें कुशोदक-पान करनेसे दस पुरुषमेध यज्ञोंका फल मिलता है। ज्येष्ठ मासकी कृष्णाष्टमीमें पशुपति नामसे भगवान् शंकरका पूजनकर गोशृंगजलका पान करनेसे लाख गोदानका फल मिलता है। आषाढ़ मासकी कृष्णाष्टमीमें उग्र नामसे शंकरका पूजनकर गोमय प्राशन करनेवाला दस लाख वर्षसे भी अधिक समयतक रुद्रलोकमें निवास करता है। श्रावण मासकी कृष्णाष्टमीमें शर्व नामसे भगवान् शंकरकी पूजाकर रात्रिमें अर्क प्राशन करनेसे बहुत-सा सुवर्ण-दान किये जानेवाले यज्ञका फल मिलता है। भाद्रपद मासके कृष्णाष्टमीमें त्र्यम्बक नामसे इनकी पूजाकर एवं बिल्वपत्रका भक्षण करनेसे अन्न-दानका फल मिलता है। आश्विन मासकी कृष्णाष्टमीमें भव नामसे भगवान् शंकरका यजनकर तण्डुलोदकका पान करनेसे सौ पुण्डरीक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार

---

[1] यह श्रीकृष्णजन्माष्टमीसे भिन्न शिवोपासनाका एक मुख्य अङ्गभूत व्रत है। इसकी महिमा तथा अनुष्ठान-विधिका वर्णन मत्स्यपुराण, अध्याय ५६, नारदपुराण, सौरपुराण १४। १-३६, व्रत-कल्पद्रुम आदिमें बहुत विस्तारसे है। विशेष जानकारीके लिये उन्हें भी देखना चाहिये। ज्योतिषग्रन्थों और पुराणोंके अनुसार अष्टमी तिथिके स्वामी शिव ही हैं। अतः अष्टमी तथा चतुर्दशीको उनकी उपासना विशेष कल्याणकारिणी होती है।

कार्तिक मासकी कृष्णाष्टमीमें रुद्र नामसे भगवान् शंकरकी भक्तिसे पूजाकर रात्रिमें दहीका प्राशन करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार बारह महीने शिवजीका पूजन कर अन्तमें शिवभक्त ब्राह्मणोंको घृत, शर्करायुक्त पायस भोजन कराये तथा यथाशक्ति सुवर्ण, वस्त्र आदि उनको देकर प्रसन्न करे। काले तिलसे पूर्ण बारह कलश, छाता, जूता तथा वस्त्र आदि ब्राह्मणोंको देकर दूध देनेवाली सवत्सा एक कृष्ण वर्णकी गौ भी महादेवजीको निवेदित करे। इस मासिक कृष्णाष्टमी-व्रतको जो एक वर्षतक निरन्तर करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करता है और सौ वर्षपर्यन्त संसारके आनन्दोंका उपभोग करता है। इसी व्रतका अनुष्ठान कर इन्द्र, चन्द्र, ब्रह्मा तथा विष्णु आदि देवताओंने उत्तम-उत्तम पदोंको प्राप्त किया है। जो स्त्री-पुरुष इस व्रतको भक्तिपूर्वक करते हैं वे उत्तम विमानमें बैठकर देवताओंद्वारा स्तुत होते हुए शिवलोकमें जाते हैं और भगवान् शंकरके ऐश्वर्यसे सम्पन्न हो जाते हैं। वहाँ आठ कल्पपर्यन्त निवास करते हैं और जो इस व्रतके माहात्म्यको सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

(अध्याय ५७)

अनघाष्टमी-व्रतकी कथा एवं विधि

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! प्राचीन कालमें ब्रह्माजीके महातेजस्वी अत्रि पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। अत्रिकी भार्याका नाम था अनसूया, वह महान् भाग्यशालिनी एवं पतिव्रता थी। कुछ कालके बाद उनके महातेजस्वी पुत्र दत्त हुए। दत्त महान् योगी थे। ये विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए थे। इनका दूसरा नाम था अनघ। इनकी भार्याका नाम था नदी। ब्राह्मणोंकि सभी गुणोंसे सम्पन्न इनके आठ पुत्र थे। 'दत्त' विष्णु-रूपमें थे तथा 'नदी' लक्ष्मीकी रूप थीं। दत्त अपनी भार्या नदीके साथ योगाभ्यासमें लीन थे, उसी समय जंभ[1] नामक दैत्यसे पीड़ित तथा पराजित देवता विन्ध्यगिरिमें स्थित इनके आश्रममें आये और उन्होंने इनकी शरण ग्रहण की। दत्तात्रेयजीने इन्द्रके साथ उन सभी देवताओंको अपने योगबलसे अपने आश्रममें रख लिया और कहा—'आपलोग निर्भय तथा निश्चिन्त होकर यहाँ रहें।' देवगण अत्यन्त प्रसन्न हो गये और वे वहीं रहने लगे।

दैत्य-समुदाय भी देवताओंको खोजते-खोजते इसी आश्रमपर आ पहुँचा। वे क्रोधपूर्वक ललकारकर कहने लगे—'इस मुनिकी पत्नीको पकड़ लो और यह सारा आश्रम उजाड़ डालो।' यह कहते हुए दैत्यगण आश्रममें घुस गये और उनकी पत्नीको उठाकर अपने सिरपर रखकर चल पड़े। लक्ष्मीको सिरपर उठाते ही सभी दैत्य श्रीहीन हो गये और दत्तकी दृष्टि पड़नेसे वे सभी दैत्य भागने और नष्ट होने लगे। देवताओंने भी उन्हें मारना प्रारम्भ कर दिया। निश्चेष्ट होकर दैत्यगण हाहाकार करने लगे। दत्तमुनिके प्रभावसे वहाँ प्रलय मच गया। इन्द्रादि देवताओंने सभी असुरोंको पराजित कर दिया और फिर वे सभी अपने-अपने लोक चले गये तथा पूर्ववत् आनन्दसे रहने लगे। देवताओंने उन भगवान् दत्तात्रेयकी महिमा और प्रभावको ही इसमें कारण माना।

दत्तात्रेयजी भी संसारके कल्याणके लिये ऊर्ध्वबाहु होकर कठिन तपस्या करने लगे। वे योगमार्गका आश्रय लेकर ध्यान-समाधिमें स्थित हो गये। इसी प्रकार समाधिमें उन्हें तीन हजार वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन माहिष्मतीके राजा हैहयाधिपति कार्तवीर्यार्जुन उनके पास आया और रात-दिन उनकी सेवा करने लगा। दत्त उनकी सेवासे अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसकी याचनापर उसे चार वर प्रदान किये—पहला वर था हजार हाथ हो जायँ, दूसरे वरसे सारी पृथ्वीको अधर्मसे बचाते हुए धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करना। तीसरे वरसे लड़ाईके मैदानमें किसीसे पराजित न होना तथा चौथे वरसे भगवान् विष्णुके हाथों मृत्यु होना।

कौन्तेय ! योगाभ्यासमें लीन उन दत्तमुनिने कार्तवीर्यार्जुनको अष्टसिद्धियोंसे समन्वित चक्रवर्ती-पदवाले राज्यको प्रदान किया। कार्तवीर्यार्जुनने भी सप्तद्वीपा

१-यह अनेक राक्षसोंका नाम है। इसका वर्णन श्रीमद्भागवत ६। १८। १२, ब्रह्माण्ड ३। ६। १०, वायु० ९७। १०३, मत्स्य० ४७। ७२ और विष्णु० ४। ६। १४ आदि पुराणोंमें आया है। इसे इन्द्रने मारा था, अतः इन्द्रका एक नाम जंभभेदी भी है।

वसुमतीको धर्मपूर्वक अपने अधीन कर लिया। यह सब उसके हजार बाहुओंका प्रभाव था। वह अपनी मायाद्वारा यज्ञोंके माध्यमसे ध्वजावाला रथ उत्पन्न कर लेता था। उसके प्रभावसे सभी द्वीपोंमें दस हजार यज्ञ निरन्तर होते रहते थे। उन यज्ञोंकी वेदियाँ, यूप तथा मण्डप आदि सभी सोनेके रहते थे। उनमें प्रचुर दक्षिणाएँ दी जाती थीं। विमानमें बैठकर सभी देवता, गन्धर्व तथा अप्सराएँ पृथ्वीपर आकर यज्ञकी शोभा बढ़ाते रहते थे। नारद नामका गन्धर्व उसके यज्ञकी गाथा इस प्रकार गाया करता था—'कार्तवीर्यके पराक्रमकी बात सुननेसे यह पता चलता है कि संसारका कोई भी राजा उसके समान यज्ञ, दान तथा तप नहीं कर सकता। सातों द्वीपोंमें केवल वही ढाल, तलवार तथा धनुष-बाणवाला है। जैसे बाज पक्षीको अन्य पक्षी डरसे अपने समीप ही समझते हैं, वैसे ही अन्य राजा लोग दूरसे ही इससे भय खाते हैं। इसकी सम्पत्ति कभी नष्ट नहीं होती, इसके राज्यमें न कहीं शोक दिखायी पड़ता है न कोई क्लान्त ही। यह अपने प्रभावसे पृथ्वीपर धर्मपूर्वक प्रजाओंका पालन करता है।'

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—नराधिप! कार्तवीर्य इस पृथ्वीपर पचासी हजार वर्षतक अखण्ड शासन करता रहा। वह अपने योगबलसे पशुओंका पालक तथा खेतोंका रक्षक भी था। समयानुसार मेघ बनकर वृष्टि भी करता था। धनुषकी प्रत्यञ्चाके आघातसे कठोर त्वचायुक्त अपनी सहस्रों भुजाओंद्वारा वह सूर्यके समान उद्भासित होता था। उसने अपनी हजार भुजाओंके बलसे समुद्रको मथ डाला और नागलोकमें कर्कोटक आदि नागोंको जीतकर वहाँ भी अपनी नगरी बसा ली। उसकी भुजाओंद्वारा समुद्रके उद्वेलित होनेसे पातालवासी महान् असुर भी निश्चेष्ट हो जाते थे। बड़े-बड़े नाग उसके पराक्रमको देखकर सिर नीचा कर लेते थे। सभी धनुर्धरोंको उसने जीत लिया। अपने पराक्रमसे रावणको भी उसने अपनी माहिष्मती नगरीमें लाकर बंदी बना रखा था, जिसे पुलस्त्य ऋषिने छुड़वाया। एक बार भूखे-प्यासे चित्रभानु (अग्निदेव) को राजा कार्तवीर्यार्जुनने समस्त सप्तद्वीपा वसुन्धराको दानमें दे दिया। इस प्रकार वह कार्तवीर्यार्जुन बड़ा पराक्रमी एवं गुणवान् राजा हुआ था।

योगाचार्य भगवान् अनघ (दत्तात्रेय) से वर प्राप्तकर कार्तवीर्यार्जुनने पृथ्वीलोकमें इस अनघाष्टमी-व्रतको प्रवर्तित किया। अघको पाप कहा जाता है यह तीन प्रकारका होता है—कायिक, वाचिक और मानसिक। यह अनघाष्टमी त्रिविध पापोंको नष्ट करनेवाली है, इसलिये इसे अनघा कहते हैं। इस व्रतके प्रभावसे अष्टविध ऐश्वर्य (अणिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, लघिमा, ईशित्व, वशित्व तथा सर्वकामावसायिता) प्राप्त कर लेना मानो विनोद ही है।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—पुण्डरीकाक्ष! राजा कार्तवीर्यार्जुनके द्वारा प्रवर्तित यह अनघाष्टमी-व्रत किन मन्त्रोंके द्वारा, कब और कैसे किया जाता है? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! इस व्रतकी विधि इस प्रकार है—मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमीको कुशोंसे स्त्री-पुरुषकी प्रतिमा बनाकर भूमिपर स्थापित करनी चाहिये। उनमें एकमें सौम्य एवं शान्तिस्वरूपयुक्त अनघ (दत्तात्रेय) की तथा दूसरेमें अनघा (लक्ष्मी) की भावना करनी चाहिये और ऋग्वेदके विष्णुसूक्तसे[1] पूजा करनी चाहिये। पूजामें फल, कन्द, शृंगारकी सामग्री, बेर, विविध धान्य, विविध पुष्पका उपयोग करना चाहिये। दीपक जलाना चाहिये तथा ब्राह्मणों एवं बन्धु-बान्धवोंको भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार पूजा करनेवाला सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है, लक्ष्मी प्राप्त करता है तथा भगवान् विष्णु उसपर प्रसन्न हो जाते हैं। (अध्याय ५८)

१-अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः॥
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूळ्हमस्य पांसुरे॥
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥
तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥
तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत् परमं पदम्॥ (ऋग्वेद १। २२। १६—२१)

सोमाष्टमी-व्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं एक दूसरा व्रत बतला रहा हूँ, जो सर्वसम्मत, कल्याणप्रद एवं शिवलोक-प्रापक है। शुक्र पक्षकी अष्टमीके दिन यदि सोमवार हो तो उस दिन उमासहित भगवान् चन्द्रचूडका पूजन करे। इसके लिये एक ऐसी प्रतिमाकी स्थापना करनी चाहिये, जिसका दक्षिण भाग शिवस्वरूप और वामभाग उमा-स्वरूप हो। अनन्तर विधिपूर्वक उसे पञ्चामृतसे स्नान कराकर उसके दक्षिणभागमें कर्पूरयुक्त चन्दनका उपलेपन करे। श्वेत तथा रक्त पुष्प चढ़ाये और घृतमें पकाये गये नैवेद्यका भोग लगाये। पचीस प्रज्वलित दीपकोंसे उमासहित भगवान् चन्द्रचूडकी आरती करे। उस दिन निराहार रहकर दूसरे दिन प्रातः इसी प्रकार पूजन सम्पन्न कर तिल तथा घीसे हवन कर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। यथाशक्ति सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करे और पितरोंका भी अर्चन करे। एक वर्षतक इस प्रकार व्रत करके एक त्रिकोण तथा दूसरा चतुष्कोण (चौकोर) मण्डल बनाये। त्रिकोणमें भगवती पार्वती तथा चौकोर मण्डपमें भगवान् शंकरको स्थापित करे। तदनन्तर पूर्वोक्त विधिके अनुसार पार्वती एवं शंकरकी पूजा करके श्वेत एवं पीत वस्त्रके दो वितान, पताका, घण्टा, धूपदानी, दीपमाला आदि पूजनके उपकरण ब्राह्मणको समर्पित करे और यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी कराये। ब्राह्मण-दम्पतिका वस्त्र, आभूषण, भोजन आदिसे पूजनकर पचीस प्रज्वलित दीपकोंसे धीरे-धीरे नीराजन करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक पाँच वर्षोंतक या एक वर्ष ही व्रत करनेसे व्रती उमासहित शिवलोकमें निवास कर अनामय पद प्राप्त करता है। जो पुरुष आजीवन इस व्रतको करता है, वह तो साक्षात् विष्णुरूप ही हो जाता है। उसके समीप आपत्ति, शोक, ज्वर आदि कभी नहीं आते। इतना विधान कहकर भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—महाराज! इसी प्रकार रविवार-युक्त अष्टमीका भी व्रत होता है। उस दिन एक प्रतिमाके दक्षिण भागमें शिव और वाम भागमें पार्वतीकी पूजा करे। दिव्य पद्मरागसे भगवान् शंकरको और सुवर्णसे पार्वतीको अलंकृत करे। यदि रत्नोंकी सुविधा न हो सके तो सुवर्ण ही चढ़ाये। चन्दनसे भगवान् शिवको और कुंकुमसे देवी पार्वतीको अनुलिप्त करे। भगवती पार्वतीको लाल वस्त्र और लाल माला तथा भगवान् शंकरको रुद्राक्ष निवेदित कर नैवेद्यमें घृतपक्व पदार्थ निवेदित करे। शेष सारा विधान पूर्ववत् कर पारण गव्य-पदार्थोंसे करे। उद्यापन पूर्वरीत्या करना चाहिये। इस व्रतको एक वर्ष अथवा लगातार पाँच वर्ष करनेवाला सूर्य आदि लोकोंमें उत्तम भोगको प्राप्तकर अन्तमें परमपदको प्राप्त करता है। (अध्याय ५९)

श्रीवृक्षनवमी-व्रत-कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! देवता और दैत्योंने जब समुद्र-मन्थन किया था, तब उस समय समुद्रसे निकली हुई लक्ष्मीको देखकर सभीकी यह इच्छा हुई कि मैं ही लक्ष्मीको प्राप्त कर लूँ। लक्ष्मीकी प्राप्तिको लेकर देवता और दैत्योंमें परस्पर युद्ध होने लगा। उस समय लक्ष्मीने कुछ देरके लिये बिल्ववृक्षका आश्रय ग्रहण कर लिया। भगवान् विष्णुने सभीको जीतकर लक्ष्मीका वरण किया। लक्ष्मीने बिल्ववृक्षका आश्रय ग्रहण किया था, इसलिये उसे श्रीवृक्ष भी कहते हैं। अतः भाद्रपद मासके शुक्र पक्षकी नवमी तिथिको श्रीवृक्ष-नवमीव्रत करना चाहिये। सूर्योदयके समय भक्तिपूर्वक अनेक पुष्पों, गन्ध, वस्त्र, फल, तिलपिष्ट, अन्न, गोधूम, धूप तथा माला आदिसे निम्नलिखित मन्त्रसे बिल्ववृक्षकी पूजा करे—

श्रीनिवास नमस्तेऽस्तु श्रीवृक्ष शिववल्लभ।
ममाभिलषितं कृत्वा सर्वविघ्नहरो भव॥

इस विधिसे पूजा कर श्रीवृक्षकी सात प्रदक्षिणा कर उसे प्रणाम करे। अनन्तर ब्राह्मणभोजन कराकर **'श्रीदेवी प्रीयताम्'** ऐसा कहकर प्रार्थना करे। तदनन्तर स्वयं भी तेल और नमकसे रहित बिना अग्निके संयोगसे तैयार किया गया भोजन, दही, पुष्प, फल आदिको मिट्टीके पात्रमें रखकर मौन हो ग्रहण करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो पुरुष या स्त्री श्रीवृक्षका पूजन करते हैं, वे अवश्य ही सभी सम्पत्तियोंको प्राप्त करते हैं।

(अध्याय ६०)

ध्वजनवमी-व्रत-कथा

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भगवती दुर्गाद्वारा महिषासुरके वध किये जानेपर दैत्योंने पूर्व-वैरका स्मरण कर देवताओंके साथ अनेक संग्राम किये। भगवतीने भी धर्मकी रक्षाके लिये अनेक रूप धारण कर दैत्योंका संहार किया। महिषासुरके पुत्र रक्तासुरने बहुत लम्बे समयतक घोर तपस्या कर ब्रह्माजीको प्रसन्न किया और ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उसे तीनों लोकोंका राज्य दे दिया। उसने वर प्राप्तकर दैत्योंको एकत्रित किया तथा इन्द्रके साथ युद्ध करनेके लिये अमरावतीपर आक्रमण कर दिया। देवताओंने देखा कि दैत्य-सेना युद्धके लिये आ रही है, तब वे भी एकत्रित होकर देवराज इन्द्रकी अध्यक्षतामें युद्धके लिये आ डटे। घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। दानवोंने इतना भयंकर युद्ध किया कि देवगण रण छोड़कर भाग गये। दैत्य रक्तासुर अमरावतीको अपने अधीन कर राज्य करने लगा। देवगण वहाँसे भागकर करक्षत्रापुरीमें गये, जहाँ भववल्लभा दुर्गा निवास करती हैं। चामुण्डा भी नवदुर्गाके साथ वहाँ विराजमान रहती हैं। वहाँ देवताओंने महालक्ष्मी, नन्दा, क्षेमकरी, शिवदूती, महारुण्डा, भ्रामरी, चन्द्रमङ्गला, रेवती और हरसिद्धि—इन नौ दुर्गाओंकी भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए कहा—'भगवति! इस घोर संकटसे आप हमारी रक्षा करें, हमारे लिये अब दूसरा कोई भी अवलम्ब नहीं है।'

देवताओंकी यह आर्त वाणी सुनकर बीस भुजाओंमें विभिन्न आयुध धारण किये सिंहारूढा नवदुर्गाके साथ कुमारी-स्वरूपा भगवती प्रकट हो गयीं। तदनन्तर परम पराक्रमी और ब्रह्माजीके वरदानसे अभिमानी अधम अब्रह्मण्य प्रचण्ड दैत्यगण भी वहाँ आये, जिनमें इन्द्रमारी, गुरुकेशी, प्रलम्ब, नरक, कुष्ठ, पुलोमा, शरभ, शम्बर, दुन्दुभि, इल्वल, नमुचि, भौम, वातापि, धेनुक, कलि, मायावृत, बलबन्धु, कैटभ, कालजित्, राहु, पौण्ड्र आदि दैत्य मुख्य थे। ये प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी, विविध वाहनोंपर आरूढ अनेक प्रकारके शस्त्र, अस्त्र और ध्वजाओंको धारण किये हुए थे। उनके आगे पणव, भेरी, गोमुख, शङ्ख, डमरू, डिण्डिम आदि बाजे बज रहे थे। दैत्योंने युद्ध आरम्भ कर दिया और भगवतीपर शर, शूल, परिघ, पट्टिश, शक्ति, तोमर, कुन्त, शतघ्नी, गदा, मुद्गर आदि अनेक आयुधोंकी वृष्टि करने लगे। भगवती भी क्रोधसे प्रज्वलित हो दैत्योंका संहार करने लगीं। उनके ध्वज आदि चिह्नोंको बलपूर्वक छीनकर देवगणोंको सौंप दिया। क्षणभरमें ही उन्होंने अनन्त दैत्योंका नाश कर दिया। रक्तासुरके कण्ठको पकड़कर पृथ्वीपर पटककर त्रिशूलसे उसका हृदय विदीर्ण कर दिया। बचे हुए दैत्यगण वहाँसे जान बचाकर भाग निकले। इस प्रकार देवीकी कृपासे देवताओंने विजय प्राप्तकर करछत्रपुरमें आकर भगवतीका विशेष उत्सव मनाया। नगर तोरणों और ध्वजाओंसे अलंकृत किया गया। राजन्! जो नवमी तिथिको उपवासकर भगवतीका उत्सव करता है तथा उन्हें ध्वज अर्पण करता है, वह अवश्य ही विजयी होता है।

महाराज! अब इस व्रतकी विधि सुनिये। पौष मासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथिको स्नानकर पूजाके लिये पुष्प अपने हाथसे चुने और उनसे सिंहवाहिनी कुमारी भगवतीका पूजन करे साथ ही विविध ध्वजाओंको भगवतीके सम्मुख स्थापित करे और मालती-पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, गन्ध, चन्दन, विविध फल, माला, वस्त्र, दधि एवं बिना अग्निसे सिद्ध विविध भक्ष्य भगवतीको निवेदित करे एवं इस मन्त्रको पढ़े—

रुद्रां भगवतीं कृष्णां ग्रहं नक्षत्रमालिनीम्।
प्रपन्नोऽहं शिवां रात्रिं सर्वशत्रुक्षयंकरीम्॥

—फिर कुमारियों और देवीभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराये, क्षमा-प्रार्थना करे, उपवास करे या भक्तिपूर्वक एकभुक्त रहे। इस प्रकारसे जो पुरुष नवमीको उपवास करता है और ध्वजाओंसे भगवतीको अलंकृत कर उनकी पूजा करता है, उसे चोर, अग्नि, जल, राजा, शत्रु आदिका भय नहीं रहता। इस नवमी तिथिको भगवतीने विजय प्राप्त की थी, अतः यह नवमी इन्हें बहुत प्रिय है। जो नवमीको भक्तिपूर्वक भगवतीकी पूजा कर इन्हें ध्वजारोपण करता है, वह सभी प्रकारके सुखोंको भोगकर अन्तमें वीरलोकको प्राप्त होता है। (अध्याय ६१)

उल्का-नवमी-व्रतका विधान और फल

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब आप उल्का-नवमी-व्रतके विषयमें सुनें। आश्विन मासके शुक्ल पक्षकी नवमीको नदीमें स्नानकर पितृदेवोंकी विधिपूर्वक अर्चना करे। अनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्य आदिसे भैरव-प्रिया चामुण्डादेवीकी पूजा करे, तदनन्तर इस मन्त्रसे हाथ जोड़कर स्तुति करे—

महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि ।
द्रव्यमारोग्यविजयौ देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व ६२ । ५)

इसके बाद यथाशक्ति सात, पाँच या एक कुमारीको भोजन कराकर उन्हें नीला कंचुक, आभूषण, वस्त्र एवं दक्षिणा आदि देकर संतुष्ट करे। श्रद्धासे भगवती प्रसन्न होती हैं। अनन्तर भूमिका अभ्युक्षण करे। तदनन्तर गोबरका चौका लगाकर आसनपर बैठ जाय। सामने पात्र रखकर, जो भी भोजन बना हो सारा परोस ले, फिर एक मुट्ठी तृण और सूखे पत्तोंको अग्निसे प्रज्वलित कर जितने समयतक प्रकाश रहे उतने समयमें ही भोजन सम्पन्न कर ले। अग्निके शान्त होते ही भोजन करना बंद कर आचमन करे। चामुण्डाका हृदयमें ध्यानकर प्रसन्नतापूर्वक घरका कार्य करे। इस प्रकार प्रतिमास व्रतकर वर्षके समाप्त होनेपर कुमारी-पूजा करे तथा उन्हें वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि देकर उनसे क्षमा-याचना करे। ब्राह्मणको सुवर्ण एवं गौका दान करे। हे पार्थ ! इस प्रकार जो पुरुष उल्का-नवमीका व्रत करता है, उसे शत्रु, अग्नि, राजा, चोर, भूत, प्रेत, पिशाच आदिका भय नहीं होता एवं युद्ध आदिमें उसपर शस्त्रोंका प्रहार नहीं लगता, देवी चामुण्डा उसकी सर्वत्र रक्षा करती हैं। इस उल्का-नवमी-व्रतको करनेवाले पुरुष और स्त्री उल्काकी तरह तेजस्वी हो जाते हैं।

(अध्याय ६२)

दशावतार-व्रत-कथा, विधान और फल

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! सत्ययुगके प्रारम्भमें भृगु नामके एक ऋषि हुए थे। उनकी भार्या दिव्या[1] अत्यन्त पतिव्रता थीं। वे आश्रमकी शोभा थीं और निरन्तर गृहकार्यमें संलग्न रहती थीं। वे महर्षि भृगुकी आज्ञाका पालन करती थीं। भृगुजी भी उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे।

किसी समय देवासुर-संग्राममें भगवान् विष्णुके द्वारा असुरोंको महान् भय उपस्थित हुआ। तब वे सभी असुर महर्षि भृगुकी शरणमें आये। महर्षि भृगु अपना अग्निहोत्र आदि कार्य अपनी भार्याको सौंपकर स्वयं संजीवनी-विद्याको प्राप्त करनेके लिये हिमालयके उत्तर भागमें जाकर तपस्या करने लगे। वे भगवान् शंकरकी आराधना कर संजीवनी-विद्याको प्राप्त कर दैत्यराज बलिको सदा विजयी करना चाहते थे। इसी समय गरुड़पर चढ़कर भगवान् विष्णु वहाँ आये और दैत्योंका वध करने लगे। क्षणभरमें ही उन्होंने दैत्योंका संहार कर दिया। भृगुकी पत्नी दिव्या भगवान्को शाप देनेके लिये उद्यत हो गयीं। उनके मुखसे शाप निकलना ही चाहता था कि भगवान् विष्णुने चक्रसे उनका सिर काट दिया। इतनेमें भृगुमुनि भी संजीवनी-विद्याको प्राप्तकर वहाँ आ गये। उन्होंने देखा कि सभी दैत्य मारे गये हैं और ब्राह्मणी भी मार दी गयी है। क्रोधान्ध हो भृगुने भगवान् विष्णुको शाप दे दिया कि 'तुम दस बार मनुष्यलोकमें जन्म लोगे।'

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! भृगुके शापसे जगत्‌की रक्षाके लिये मैं बार-बार अवतार ग्रहण करता हूँ। जो लोग भक्तिपूर्वक मेरी अर्चना करते हैं, वे अवश्य स्वर्गगामी होते हैं।

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! आप अपने दशावतार-व्रतका विधान कहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी दशमीको संयतेन्द्रिय हो नदी आदिमें स्नान कर तर्पण सम्पन्न करे तथा घर आकर तीन अञ्जलि धान्यका चूर्ण लेकर घृतमें पकाये। इस प्रकार दस वर्षोंतक प्रतिवर्ष करे। प्रतिवर्ष क्रमशः पूरी, घेवर, कसार, मोदक, सोहालक, खण्डवेष्टक, कोकरस, अपूप, कर्णवेष्ट तथा खण्डक—ये पक्वान्न उस चूर्णसे बनाये और उसे भगवान्को

१-भागवत, विष्णु आदि पुराणोंमें भृगु-पत्नीका नाम 'ख्याति' आया है।

नैवेद्यके रूपमें समर्पित करे। प्रत्येक दशहराको दस गौएँ दस ब्राह्मणोंको दे। नैवेद्यका आधा भाग भगवान्‌के सामने रख दे, चौथाई ब्राह्मणको दे और चौथाई भाग पवित्र जलाशयपर जाकर बादमें स्वयं भी ग्रहण करे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे मन्त्रपूर्वक दशावतारोंका पूजन करे। भगवान्‌के दस अवतारोंके नाम इस प्रकार हैं[1]—(१) मत्स्य, (२) कूर्म, (३) वराह, (४) नृसिंह, (५) त्रिविक्रम (वामन), (६) परशुराम, (७) श्रीराम, (८) श्रीकृष्ण, (९) बुद्ध तथा (१०) कल्कि।

अनन्तर प्रार्थना करे—

गतोऽस्मि शरणं देवं हरिं नारायणं प्रभुम्।
प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे विष्णुः प्रसीदतु॥
छिनत्तु वैष्णवीं मायां भक्त्या प्रीतो जनार्दनः।
श्वेतद्वीपं नयत्वस्मान्मयात्मा विनिवेदितः॥

(उत्तरपर्व ६३। २४-२५)

'दस अवतारोंको धारण करनेवाले सर्वव्यापी, सम्पूर्ण संसारके स्वामी हे नारायण हरि! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे देव! आप मुझपर प्रसन्न हों। जनार्दन! आप भक्तिद्वारा प्रसन्न होते हैं। आप अपनी वैष्णवी मायाको निवारित करें, मुझे आप अपने धाममें ले चलें। मैंने अपनेको आपके लिये सौंप दिया है।'

इस प्रकार जो इस व्रतको करता है, वह भगवान्‌के अनुग्रहसे जन्म-मरणसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है और सदा विष्णुलोकमें निवास करता है। (अध्याय ६३)

आशादशमी-व्रत-कथा एवं व्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! अब मैं आपसे आशादशमी-व्रत-कथा एवं उसके विधानका वर्णन कर रहा हूँ। प्राचीन कालमें निषध देशमें नल नामके एक राजा थे। उनके भाई पुष्करने द्यूतमें जब उन्हें पराजित कर दिया, तब नल अपनी भार्या दमयन्तीके साथ राज्यसे बाहर चले गये। वे प्रतिदिन एक वनसे दूसरे वनमें भ्रमण करते रहते थे, केवल जलमात्रसे अपना जीवन-निर्वाह करते थे और जनशून्य भयंकर वनोंमें घूमते रहते थे। एक बार राजाने वनमें स्वर्ण-सी कान्तिवाले कुछ पक्षियोंको देखा। उन्हें पकड़नेकी इच्छासे राजाने उनके ऊपर वस्त्र फैलाया, परंतु वे सभी उस वस्त्रको लेकर आकाशमें उड़ गये। इससे राजा बड़े दुःखी हो गये। वे दमयन्तीको गाढ़ निद्रामें देखकर उसे उसी स्थितिमें छोड़कर चले गये।

दमयन्तीने निद्रासे उठकर देखा तो नलको न पाकर वह उस घोर वनमें हाहाकार करते हुए रोने लगी। महान् दुःख और शोकसे संतप्त होकर वह नलके दर्शनोंकी इच्छासे इधर-उधर भटकने लगी। इसी प्रकार कई दिन बीत गये और भटकते हुए वह चेदिदेशमें पहुँची। वहाँ वह उन्मत्त-सी रहने लगी। छोटे-छोटे शिशु उसे कौतुकवश घेरे रहते थे। किसी दिन मनुष्योंसे घिरी हुई उसे चेदिदेशके राजाकी माताने देखा। उस समय दमयन्ती चन्द्रमाकी रेखाके समान भूमिपर पड़ी हुई थी। उसका मुखमण्डल प्रकाशित था। राजमाताने उसे अपने भवनमें बुलाकर पूछा—'वरानने! तुम कौन हो?' इसपर दमयन्तीने लज्जित होते हुए कहा—'मैं सैरन्ध्री हूँ। मैं न किसीके चरण धोती हूँ और न किसीका उच्छिष्ट भक्षण करती हूँ। यहाँ रहते हुए कोई मुझे प्राप्त करेगा तो वह आपके द्वारा दण्डनीय होगा। देवि! इस प्रतिज्ञाके साथ मैं यहाँ रह सकती हूँ।' राजमाताने कहा—'ठीक है ऐसा ही होगा।' तब दमयन्तीने वहाँ रहना स्वीकार किया और इसी प्रकार कुछ समय व्यतीत हुआ और फिर एक ब्राह्मण दमयन्तीको उसके माता-पिताके घर ले आया। पर माता-पिता तथा भाइयोंका स्नेह पानेपर भी पतिके बिना वह अत्यन्त दुःखी रहती थी।

एक बार दमयन्तीने एक श्रेष्ठ ब्राह्मणको बुलाकर उससे पूछा—'हे ब्राह्मणदेवता! आप कोई ऐसा दान एवं व्रत बतलायें, जिससे मेरे पति मुझे प्राप्त हो जायँ।' इसपर उस बुद्धिमान् ब्राह्मणने कहा—'भद्रे! तुम मनोवाञ्छित सिद्धि प्रदान करनेवाले आशादशमी-व्रतको करो।' तब दमयन्तीने पुराणवेत्ता उस दमन नामक पुरोहित ब्राह्मणके द्वारा ऐसा कहे जानेपर आशादशमी-व्रतका अनुष्ठान किया। उस व्रतके प्रभावसे दमयन्तीने अपने पतिको पुनः प्राप्त किया।

[1] १-दशावतारोंमें दो पक्ष प्राप्त होते हैं, एकमें भगवान् कृष्णको पूर्णतम भगवान् मानकर केन्द्रमें रखा गया है और अन्यत्र उन्हें दस अवतारोंके भीतर ही रख लिया है। दोनों मत मान्य हैं, अतः संदेह नहीं करना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—हे गोविन्द ! यह आशादशमी-व्रत किस प्रकार और कैसे किया जाता है, आप सर्वज्ञ हैं, आप इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! इस व्रतके प्रभावसे राजपुत्र अपना राज्य, कृषक खेती, वणिक् व्यापारमें लाभ, पुत्रार्थी पुत्र तथा मानव धर्म, अर्थ एवं कामकी सिद्धि प्राप्त करते हैं। कन्या श्रेष्ठ वर प्राप्त करती है, ब्राह्मण निर्विघ्न यज्ञ सम्पन्न कर लेता है, रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है और पतिके चिर-प्रवास हो जानेपर स्त्री उसे शीघ्र ही प्राप्त कर लेती है। शिशुके दन्तजनित पीड़ामें भी इस व्रतसे पीड़ा दूर हो जाती है और कष्ट नहीं होता। इसी प्रकार अन्य कार्योंकी सिद्धिके लिये इस आशादशमी-व्रतको करना चाहिये। जब भी जिस किसीको कोई कष्ट पड़े, उसकी निवृत्तिके लिये इस व्रतको करना चाहिये।

यह आशादशमी-व्रत किसी भी मासके शुक्ल पक्षकी दशमीको किया जाता है। इस दिन प्रातःकाल स्नान करके देवताओंकी पूजा कर रात्रिमें पुष्प, अलक्त तथा चन्दन आदिसे दस आशादेवियोंकी पूजा करनी चाहिये। घरके आँगनमें जौसे अथवा पिष्टातकसे पूर्वादि दसों दिशाओंके अधिपतियोंकी प्रतिमाओंको उनके वाहन तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित कर उन्हें ही ऐन्द्री आदि दिशा-देवियोंके रूपमें मानकर पूजन करना चाहिये। सबको घृतपूर्ण नैवेद्य, पृथक्-पृथक् दीपक तथा ऋतुफल आदि समर्पित करना चाहिये। इसके अनन्तर अपने कार्यकी सिद्धिके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

आशाश्चाशाः सदा सन्तु सिद्ध्यन्तां मे मनोरथाः।
भवतीनां प्रसादेन सदा कल्याणमस्त्विति ॥

(उत्तरपर्व ६४।२५)

'हे आशादेवियो ! मेरी आशाएँ सदा सफल हों, मेरे मनोरथ पूर्ण हों, आपलोगोंके अनुग्रहसे मेरा सदा कल्याण हो।'

इस प्रकार विधिवत् पूजा कर ब्राह्मणको दक्षिणा प्रदानकर प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। इसी क्रमसे प्रत्येक मासमें इस व्रतको करना चाहिये। जबतक अपना मनोरथ पूर्ण न हो जाय, तबतक इस व्रतको करना चाहिये। अनन्तर उद्यापन करना चाहिये। उद्यापनमें आशादेवियोंकी सोने, चाँदी अथवा पिष्टातकसे प्रतिमा बनाकर घरके आँगनमें उनकी पूजा करके ऐन्द्री, आग्नेयी, याम्या, नैर्ऋति, वारुणि, वायव्या, सौम्या, ऐशानी, अधः तथा ब्राह्मी—इन दस आशादेवियों (दिशा-देवियों) से अभीष्ट कामनाओंकी सिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये, साथ ही नक्षत्रों, ग्रहों, ताराग्रहों, नक्षत्र-मातृकाओं, भूत-प्रेत-विनायकोंसे भी अभीष्ट-सिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। पुष्प, फल, धूप, गन्ध, वस्त्र आदिसे उनकी पूजा करनी चाहिये। सुहागिनी स्त्रियोंको नृत्य-गीत आदिके द्वारा रात्रि-जागरण करना चाहिये। प्रातःकाल विद्वान् ब्राह्मणको सब कुछ पूजित पदार्थ निवेदित कर देना चाहिये और उन्हें प्रणाम कर क्षमा-याचना करनी चाहिये। अनन्तर बन्धु-बान्धवों एवं मित्रोंके साथ प्रसन्न-मनसे भोजन करना चाहिये। हे पार्थ ! जो इस आशादशमी-व्रतको श्रद्धापूर्वक करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। यह व्रत स्त्रियोंके लिये विशेष श्रेयस्कर है। (अध्याय ६४)

तारकद्वादशीके प्रसंगमें राजा कुशध्वजकी कथा तथा व्रत-विधान

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! मैं बहुत बड़ा पातकी हूँ। भीष्म, द्रोण आदि महात्माओंका मैंने वध किया। आप कृपाकर कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे मैं इस वधरूपी पापसमूहसे छुटकारा पा सकूँ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! प्राचीन कालमें विदर्भ देशमें एक बड़ा प्रतापी कुशध्वज नामका राजा रहता था। किसी दिन वह मृगयाके लिये वनमें गया। वहाँ उसने मृगके धोखेमें एक तपस्वी ब्राह्मणको बाणसे मार दिया। मरनेके बाद उस पापसे उसे भयंकर रौरव नरककी प्राप्ति हुई। फिर वह बहुत दिनोंतक नरककी यातनाको भोगकर भयंकर सर्प-योनिमें गया। सर्प-योनिमें भी उसने पाप किया। इस कारण उसे सिंह-योनि प्राप्त हुई। इस प्रकार उसने कई निन्द्य योनियोंमें जन्म लिया और उस-उस योनिमें पाप-कर्म करता रहा। इस कर्मविपाकसे उसे कष्ट भोगना पड़ता था। चूँकि उसने पूर्वजन्ममें तारकद्वादशीका व्रत किया था, अतः उस व्रतके प्रभावसे इन पाप-योनियोंसे वह जल्दी-जल्दी मुक्त होता

गया। अन्तमें पुनः वह विदर्भ देशका धर्मात्मा राजा हुआ। वह भक्तिपूर्वक तारकद्वादशीका व्रत किया करता था। उसके प्रभावसे बहुत समयतक निष्कण्टक राज्यकर, मरनेपर उसने विष्णुलोकको प्राप्त किया।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—कृष्णचन्द्र ! इस व्रतको किस प्रकार करना चाहिये ?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको तारकद्वादशी-व्रत करना चाहिये। प्रातःकाल नदी आदिमें स्नानकर तर्पण, पूजन आदि सम्पन्न कर सूर्यास्ततक हवन करता रहे। सूर्यास्त होनेपर पवित्र भूमिके ऊपर गोमयसे ताराओंसहित एक सूर्य-मण्डलका निर्माण करे। उस आकाशमें चन्दनसे ध्रुवको भी अङ्कित करे। अनन्तर ताम्रके अर्घ्यपात्रमें पुष्प, फल, अक्षत, गन्ध, सुवर्ण तथा जल रखकर मस्तकतक उस अर्घ्यपात्रको उठाकर दोनों जानुओंको भूमिपर टेककर पूर्वाभिमुख होकर '**सहस्रशीर्षा॰**' इस मन्त्रसे उस मण्डलको अर्घ्य प्रदान करे। अनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। मार्गशीर्ष आदि बारह महीनोंमें क्रमशः खण्ड-खाद्य, सोहालक, तिल-तण्डुल, गुडके अपूप, मोदक, खण्डवेष्टक, सत्तू, गुडयुक्त पूरी, मधुशीर्ष, पायस, घृतपर्ण (करंज) और कसारका भोजन ब्राह्मणको कराये। तदनन्तर क्षमा-प्रार्थना कर मौन-धारणपूर्वक स्वयं भी भोजन करे। उद्यापनमें चाँदीका तारकमण्डल बनाकर उसकी पूजा करे। मोदकके साथ बारह घड़े तथा दक्षिणाके साथ वह मण्डल ब्राह्मणको निवेदित कर दे। इस विधिसे जो पुरुष और स्त्री इस तारकद्वादशी-व्रतको करते हैं, वे सूर्यके समान देदीप्यमान विमानोंमें बैठकर नक्षत्र-लोकको जाते हैं। वहाँ अयुत वर्षोंतक निवास कर विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं। इस व्रतको सती, पार्वती, सीता, राज्ञी, दमयन्ती, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि श्रेष्ठ नारियोंने किया था। इस व्रतको करनेसे अनेक जन्मोंमें किये गये पातक नष्ट हो जाते हैं। (अध्याय ६५)

अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान और फल

महाराज युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्णचन्द्र ! आप अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—कौन्तेय ! प्राचीन कालमें जिस व्रतको रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वनमें सीताजीने किया था और अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य आदिसे मुनिपत्नियोंको संतुष्ट किया था, उस अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान मैं बतलाता हूँ, आप प्रीतिपूर्वक सुनें। इस व्रतमें मार्गशीर्ष मासकी शुक्ला एकादशीको प्रातः स्नानकर भगवान् जनार्दनकी भक्तिपूर्वक गन्ध, पुष्पादि उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये और उपवास रखना चाहिये। रात्रिमें जागरण करना चाहिये। दूसरे दिन स्नान आदि करके बेदज्ञ ब्राह्मणोंको उपवनमें ले जाकर प्रायः फल आदि भोजन कराना चाहिये। अनन्तर पञ्चगव्यका प्राशन कर स्वयं भी भोजन करना चाहिये।

इस विधिसे एक वर्षतक व्रत करे। श्रावण, कार्तिक, माघ तथा चैत्र मासमें वृक्षादिसे सुशोभित किसी सुन्दर वनमें अरण्यवासियों, मुनियों तथा ब्राह्मणोंको पूर्व या उत्तरमुख आसनपर बैठाकर मण्डक, घृतपूर, खण्डवेष्टक, शाक, व्यञ्जन, अपूप, मोदक तथा सोहालक आदि अनेक प्रकारके पक्वान्न, फल तथा विभिन्न भोज्य पदार्थोंसे संतुष्ट करे और दक्षिणा प्रदान करे। कर्पूर, इलायची, कस्तूरी आदिसे सुगन्धित पानक पिलाना चाहिये। वनमें रहनेवाले मुनिगण एवं उनकी पत्नियों, एक दण्डी अथवा त्रिदण्डी और गृहस्थ आदि अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन कराना चाहिये। वासुदेव, जनार्दन, दामोदर, मधुसूदन, पद्मनाभ, विष्णु, गोवर्धन, त्रिविक्रम, श्रीधर, हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष तथा वराह—इन बारह नामोंसे नमस्कारपूर्वक एक-एक ब्राह्मणको भोजन कराकर वस्त्र और दक्षिणा देकर '**विष्णुर्मे प्रीयताम्**' यह वाक्य कहकर अपने मित्र, सम्बन्धी और बान्धवोंके साथ स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकारसे जो अरण्यद्वादशी-व्रत करता है, वह अपने परिवारके साथ दिव्य विमानमें बैठकर भगवान्‌के धाम श्वेतद्वीपमें निवास करता है। वह वहाँ प्रलयपर्यन्त निवासकर मुक्ति प्राप्त करता है। यदि कोई स्त्री भी इस व्रतका आचरण करती है तो वह भी संसारके सभी सुखोंका उपभोग कर भगवान्‌की कृपासे पतिलोकको प्राप्त करती है। (अध्याय ६६)

रोहिणीचन्द्र-व्रत तथा अवियोग-व्रतका विधान

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! वर्षाकालमें आकाश नीले मेघसे आच्छादित हो जाता है। मोर चारों ओर मीठी-मीठी बोली बोलने लगते हैं। मेढकोंकी ध्वनि भी बड़ी सुहावनी लगती है, इस समय कुलीन स्त्रियाँ किसको अर्घ्य दें तथा कौन-सा सत्कर्म करें और वे किस तिथिमें कौन-सा व्रत करें? आप इसका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! श्रेष्ठ स्त्रियोंको इस समय रोहिणीचन्द्र-व्रतका पालन करना चाहिये। श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी एकादशीको पवित्र होकर सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नान करे, अनन्तर उड़दके आटेकी एक सौ इन्दुरिका और पाँच घृत-मोदक बनाये। सभी सामग्रियोंको लेकर उत्तम जलाशयपर जाय और उसके तटपर गोबरसे मण्डलकी रचना करे, उसमें रोहिणीके साथ चन्द्रमाको अङ्कित कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, नैवेद्य आदिसे उनकी अर्चना करे और इस प्रकार उनकी प्रार्थना करे—

सोमराज नमस्तुभ्यं रोहिण्यै ते नमो नमः।
महासति महादेवि सम्पादय ममेप्सितम्॥

(उत्तरपर्व ६७।८)

अनन्तर '**सोमो मे प्रीयताम्**' तथा '**देवी रोहिणी मे प्रीयताम्**' ऐसा कहते हुए पूजन-द्रव्य ब्राह्मणके लिये निवेदित कर दे। अनन्तर कमरतक जलमें उतरकर मनमें रोहिणीसहित चन्द्रमाका ध्यान करते हुए उन इन्दुरिकाओंका भक्षण कर ले। अनन्तर जलसे बाहर आकर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा दे। प्रतिवर्ष इस विधिसे जो स्त्री अथवा पुरुष भक्तिपूर्वक व्रत करता है, वह धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादिसे परिपूर्ण होकर बहुत दिनोंतक सुख भोगकर तीर्थ-स्थानमें मृत्युको प्राप्त करता है और ब्रह्मलोकको जाता है, अनन्तर विष्णुलोक, तदनन्तर शिवलोकमें जाता है।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आप यह बतायें कि अवियोगव्रत किस विधिसे किया जाता है?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अवियोगव्रत सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ है, मैं उसका विधान बतलाता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें।

भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको प्रातः उठकर जलाशयपर जाकर स्नान करे, शुद्ध शुक्ल वस्त्र धारणकर सुन्दर लिपे-पुते स्थानपर गोबरसे एक मण्डलका निर्माण कर, उसमें लक्ष्मीसहित विष्णु, गौरीसहित शिव, सावित्रीसहित ब्रह्मा, राज्ञीसहित सूर्यनारायणकी प्रतिमा स्थापितकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे इन चारों देवदम्पतियोंकि पृथक्-पृथक् नाम-मन्त्रोंसे आदिमें 'ॐ'कार तथा अन्तमें '**नमः**' पदकी योजनाकर पूजा एवं प्रार्थना करे। अनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। फिर विविध दान देकर स्वयं भी भोजन करना चाहिये। इस अवियोगव्रतको जो करता है, उसका कभी भी इष्टजनों (मित्र, पुत्र, पत्नी आदि)से वियोग नहीं होता और बहुत समयतक वह सांसारिक सुखोंका भोगकर क्रमशः विष्णु, शिव, ब्रह्मा और सूर्यलोकमें निवास कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है। जो स्त्री इस व्रतको करती है, वह भी अपने सभी अभीष्ट फलोंको प्राप्त कर विष्णुलोकको प्राप्त करती है।

(अध्याय ६७—६८)

गोवत्सद्वादशीका विधान, गौओंका माहात्म्य, मुनियों और राजा उत्तानपादकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! मेरे राज्यकी प्राप्तिके लिये अट्ठारह अक्षौहिणी सेनाएँ नष्ट हुई हैं, इस पापसे मेरे चित्तमें बहुत घृणा उत्पन्न हो गयी है। उसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदि सभी मारे गये हैं। भीष्म, द्रोण, कलिंगराज, कर्ण, शल्य, दुर्योधन आदिके मरनेसे मेरे हृदयमें महान् क्लेश है। हे जगत्पते! इन पापोंसे छुटकारा पानेके लिये किसी धर्मका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे पार्थ! गोवत्सद्वादशी नामका व्रत अतीव पुण्य प्रदान करनेवाला है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! यह गोवत्सद्वादशी कौन-सा व्रत है? इसके करनेका क्या विधान है? इसकी कब और कैसे उत्पत्ति हुई है? मैं नरकार्णवमें डूब रहा हूँ, प्रभो! आप मेरी रक्षा कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! सत्ययुगमें

पुण्यशाली जम्बूमार्ग (भड़ौच) में नामव्रतधरा नामक पर्वतके टंटाबि नामक रमणीय शिखरपर भगवान् शंकरके दर्शन करनेकी इच्छासे करोड़ों मुनिगण तपस्या कर रहे थे। वह तपोवन अतुलनीय दिव्य काननोंसे मण्डित था। वह महर्षि भृगुका आश्रममण्डल था। विविध मृगगण और बंदरोंसे समन्वित था। सिंह आदि सभी जंगली पशु, आनन्दपूर्वक निर्भय होकर वहाँ साथ-साथ ही निवास करते थे। उन तपस्यारत मुनियोंको दर्शन देनेके व्याजसे भगवान् शंकरने एक वृद्ध ब्राह्मणका वेश बना लिया। जर्जर-देहवाले वे वृद्ध ब्राह्मण हाथमें डंडा लिये काँपते हुए उस स्थानपर आये। जगन्माता पार्वती भी सुन्दर सवत्सा गौका रूप धारणकर वहाँ उपस्थित हुईं।

पार्थ! गौका जो स्वरूप है, उसे आप सुनें—प्राचीन कालमें क्षीरसागरके मन्थनके समय अमृतके साथ पाँच गौएँ उत्पन्न हुईं—नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुशीला तथा बहुला। इन्हें लोकमाता कहा गया है। इनका आविर्भाव लोकोपकार तथा देवताओंकी तृप्तिके लिये हुआ है। देवताओंने अभीष्ट कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली इन पाँच गौओंको महर्षि जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, असित तथा गौतममुनिको प्रदान किया और इन महाभागोंने इन्हें ग्रहण किया। गौओंके छः अङ्ग—गोमय, रोचना, मूत्र, दुग्ध, दधि और घृत—ये अत्यन्त पवित्र और संशुद्धिके साधन भी हैं। गोमयसे शिवप्रिय श्रीमान् बिल्ववृक्ष उत्पन्न हुआ, उसमें पद्महस्ता श्रीलक्ष्मी विद्यमान हैं, इसीलिये इसे श्रीवृक्ष कहा जाता है। गोमयसे ही कमलके बीज उत्पन्न हुए हैं। गोरोचन अतिशय मङ्गलमय है, यह पवित्र और सर्वार्थसाधक है। गोमूत्रसे गुग्गुलकी उत्पत्ति हुई है, जो देखनेमें प्रिय और सुगन्धियुक्त है। यह गुग्गुल सभी देवोंका आहार है। विशेषरूपसे शिवका आहार है। संसारमें जो कुछ भी मूलभूत बीज हैं, वे सभी गोदुग्धसे उत्पन्न हैं। प्रयोजनकी सिद्धिके लिये सभी माङ्गलिक पदार्थ दधिसे उत्पन्न हैं। घृतसे अमृत उत्पन्न होता है, जो देवोंकी तृप्तिका साधन है। ब्राह्मण और गौ एक ही कुलके दो भाग हैं। ब्राह्मणोंके हृदयमें तो वेदमन्त्र निवास करते हैं और गौओंके हृदयमें हवि रहती है। गायसे ही यज्ञ प्रवृत्त होता है और गौमें ही सभी देवगण प्रतिष्ठित हैं। गायमें ही छः अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेद समाहित हैं[1]।

गौओंके सींगकी जड़में सदा ब्रह्मा और विष्णु प्रतिष्ठित हैं। शृङ्गके अग्रभागमें सभी चराचर एवं समस्त तीर्थ प्रतिष्ठित हैं। सभी कारणोंके कारणस्वरूप महादेव शिव मध्यमें प्रतिष्ठित हैं। गौके ललाटमें गौरी, नासिकामें कार्तिकेय और नासिकाके दोनों पुटोंमें कम्बल तथा अश्वतर ये दो नाग प्रतिष्ठित हैं। दोनों कानोंमें अश्विनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्र और सूर्य, दाँतोंमें आठों वसुगण, जिह्वामें वरुण, कुहरमें सरस्वती, गण्डस्थलोंमें यम और यक्ष, ओष्ठोंमें दोनों संध्याएँ, ग्रीवामें इन्द्र, ककुद् (मौर) में राक्षस, पार्ष्णि-भागमें द्यौ और जंघाओंमें चारों चरणोंसे धर्म सदा विराजमान रहता है। खुरोंके मध्यमें गन्धर्व, अग्रभागमें सर्प एवं पश्चिम-भागमें राक्षसगण प्रतिष्ठित हैं। गौके पृष्ठदेशमें एकादश रुद्र, सभी संधियोंमें वरुण, श्रोणितट (कमर) में

१-क्षीरोदतोयसम्भूता याः पुरामृतमन्थने। पञ्च गावः शुभाः पार्थ पञ्चलोकस्य मातरः॥
नन्दा सुभद्रा सुरभिः सुशीला बहुला इति। एता लोकोपकाराय देवानां तर्पणाय च॥
जमदग्निभरद्वाजवसिष्ठासितगौतमाः। जगृहुः कामदाः पञ्च गावो दत्ताः सुरैस्ततः॥
गोमयं रोचनं मूत्रं क्षीरं दधि घृतं गवाम्। षडङ्गानि पवित्राणि संशुद्धिकरणानि च॥
गोमयादुत्थितः श्रीमान् बिल्ववृक्षः शिवप्रियः। तत्रास्ते पद्महस्ता श्रीः श्रीवृक्षस्तेन स स्मृतः।
बीजान्युत्पलपद्मानां पुनर्जातानि गोमयात्॥
गोरोचना च माङ्गल्या पवित्रा सर्वसाधिका।
गोमूत्राद् गुग्गुलुर्जातः सुगन्धिः प्रियदर्शनः। आहारः सर्वदेवानां शिवस्य च विशेषतः॥
यद्बीजं जगतः किंचित् तज्ज्ञेयं क्षीरसम्भवम्।
दधिजातानि सर्वाणि मङ्गलान्यर्थसिद्धये। घृतादमृतमुत्पन्नं देवानां तृप्तिकारणम्॥
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्। एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति॥
गोषु यज्ञाः प्रवर्तन्ते गोषु देवाः प्रतिष्ठिताः। गोषु वेदाः समुत्कीर्णाः सषडङ्गपदक्रमाः॥ (उत्तरपर्व ६९।१६—२४)

पितर, कपोलोंमें मानव तथा अपानमें स्वाहा-रूप अलंकारको आश्रित कर श्री अवस्थित हैं। आदित्यरश्मियाँ केश-समूहोंमें पिण्डीभूत हो अवस्थित हैं। गोमूत्रमें साक्षात् गङ्गा और गोमयमें यमुना स्थित हैं। रोमसमूहमें तैंतीस करोड़ देवगण प्रतिष्ठित हैं। उदरमें पर्वत और जंगलोंके साथ पृथ्वी अवस्थित है। चारों पयोधरोंमें चारों महासमुद्र स्थित हैं। क्षीरधाराओंमें मेघ, वृष्टि एवं जलबिन्दु हैं, जठरमें गार्हपत्याग्नि, हृदयमें दक्षिणाग्नि, कण्ठमें आहवनीयाग्नि और तालुमें सभ्याग्नि स्थित है। गौओंकी अस्थियोंमें पर्वत और मज्जाओंमें यज्ञ स्थित हैं। सभी वेद भी गौओंमें प्रतिष्ठित हैं[1]।

हे युधिष्ठिर! भगवती उमाने उन सुरभियोंके रूपका स्मरणकर अपना भी रूप वैसा ही बना लिया। छः स्थानोंसे उन्नत, पाँच स्थानोंसे निम्न, मण्डूकनेत्रा, सुन्दर पूँछवाली, ताम्रके समान रक्त स्तनवाली, चाँदीके समान उज्ज्वल कटि-भागवाली, सुन्दर खुर एवं सुन्दर मुखवाली, श्वेतवर्णा, सुशीला, पुत्रस्नेहवती, मधुर दूधवाली, शोभन पयोधरवाली— इस प्रकार सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न सवत्सा गोरूपधारिणी उस उमाको वृद्ध विप्ररूपधारी भगवान् शंकर प्रसन्नचित्त होकर चरा रहे थे। हे पार्थ! धीरे-धीरे वे उस आश्रममें गये और कुलपति भृगुके पास जाकर उन्होंने उस गायको न्यासरूपमें दो दिनतक उसकी सुरक्षा करनेके लिये उन्हें दे दिया और कहा—'मुने! मैं यहाँ स्नानकर जम्बूक्षेत्रमें जाऊँगा और दो दिन बाद लौटूँगा, तबतक आप इस गायकी रक्षा करें।' मुनियोंने भी उस गौकी सभी प्रकारसे रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा की। भगवान् शिव वहीं अन्तर्हित हो गये और फिर थोड़ी देर बाद वे एक व्याघ्र-रूपमें प्रकट हो गये और बछड़ेसहित गौको डराने लगे। ऋषिगण भी व्याघ्रके भयसे आक्रान्त हो आर्तनाद करने लगे और यथासम्भव व्याघ्रको हटानेके उपाय करने लगे। व्याघ्रके भयसे सवत्सा वह गौ भी कूद-कूदकर रँभाने लगी। युधिष्ठिर! व्याघ्रके भयसे डरी हुई गौके भागनेपर चारों खुरोंका चिह्न शिला-मध्यमें पड़ गया। आकाशमें देवताओं एवं किन्नरोंने व्याघ्र (भगवान् शंकर) और सवत्सा गौ (माता पार्वती) की वन्दना की। शिलाका वह चिह्न आज भी सुस्पष्ट दीखता है। वह नर्मदाजीका उत्तम तीर्थ है। यहाँ शम्भुतीर्थके शिवलिङ्गका जो स्पर्श करता है, वह गोहत्यासे मुक्त हो जाता है। राजन्! जम्बूमार्गमें स्थित उस महातीर्थमें स्नान कर ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्ति मिल जाती है।

जब व्याघ्रसे सवत्सा गौ भयभीत हो रही थी तब मुनियोंने क्रुद्ध होकर ब्रह्मासे प्राप्त भयंकर शब्द करनेवाले घंटेको बजाना प्रारम्भ किया। उस शब्दसे व्याघ्र भी सवत्सा गौको छोड़कर चला गया। ब्राह्मणोंने उसका नाम रखा ढुण्ढागिरि। हे पार्थ! जो मानव उसका दर्शन करते हैं, वे रुद्रस्वरूप ही हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। कुछ ही क्षणोंमें भगवान् शंकर व्याघ्ररूपको छोड़कर वहाँ साक्षात् प्रकट हो गये। वे वृषभपर आरूढ़ थे, भगवती उमा उनके वाम भागमें विराजमान थीं तथा विनायक कार्तिकेयके साथ नन्दी, महाकाल, शृङ्गी, वीरभद्रा, चामुण्डा, घण्टाकर्णा आदिसे परिवृत और मातृका, भूतसमूह, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, देव,

---

१-शृङ्गमूले गवां नित्यं ब्रह्मा विष्णुश्च संस्थितौ। शृङ्गाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च॥
शिवो मध्ये महादेवः सर्वकारणकारणम्। ललाटे संस्थिता गौरी नासावंशे च षण्मुखः॥
कम्बलाश्वतरौ नागौ नासापुटसमाश्रितौ। कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुर्भ्यां शशिभास्करौ॥
दन्तेषु वसवः सर्वे जिह्वायां वरुणः स्थितः। सरस्वती च कुहरे यमयक्षौ च गण्डयोः॥
संध्याद्वयं तथोष्ठाभ्यां ग्रीवायां च पुरन्दरः। रक्षांसि ककुदे द्यौश्च पार्ष्णिकाये व्यवस्थिता॥
चतुष्पात्सकलो धर्मो नित्यं जङ्घासु तिष्ठति। खुरमध्येषु गन्धर्वाः खुराग्रेषु च पन्नगाः॥
खुराणां पश्चिमे भागे राक्षसाः सम्प्रतिष्ठिताः। रुद्रा एकादश पृष्ठे वरुणः सर्वसन्धिषु॥
श्रोणीतटस्थाः पितरः कपोलेषु च मानवाः। श्रीरपाने गवां नित्यं स्वाहालंकारमाश्रिताः॥
आदित्या रश्मयो बालाः पिण्डीभूता व्यवस्थिताः। साक्षाद्गङ्गा च गोमूत्रे गोमये यमुना स्थिता॥
त्रयस्त्रिंशद् देवकोट्यो रोमकूपे व्यवस्थिताः। उदरे पृथिवी सर्वा सशैलवनकानना॥
चत्वारः सागराः प्रोक्ता गवां ये तु पयोधराः। पर्जन्यः क्षीरधारासु मेघा बिन्दुव्यवस्थिताः॥
जठरे गार्हपत्योऽग्निर्दक्षिणाग्निर्हृदि स्थितः। कण्ठे आहवनीयोऽग्निः सभ्योऽग्निस्तालुनि स्थितः॥
अस्थिष्वस्थिताः शैला मज्जासु क्रतवः स्थिताः। ऋग्वेदोऽथर्ववेदश्च सामवेदो यजुस्तथा॥ (उत्तरपर्व ६९। २५—३७)

दानव, गन्धर्व, मुनि, विद्याधर एवं नाग तथा उनकी पत्नियोंसे वे पूजित थे। सनकादि भी उनकी पूजा कर रहे थे।

राजन्! कार्तिक मासके शुक्ल पक्ष (मतान्तरसे कृष्ण पक्ष) की द्वादशी तिथिमें ब्रह्मवादी ऋषियोंने सवत्सा गोरूपधारिणी उमादेवीकी नन्दिनी नामसे भक्तिपूर्वक पूजा की थी। इसीलिये इस दिन गोवत्सद्वादशीव्रत किया जाता है। तभीसे उस व्रतका पृथ्वीतलपर प्रचार हुआ। राजा उत्तानपादने जिस प्रकार इस व्रतको पृथ्वीपर प्रचारित किया उसे आप सुनें—

उत्तानपाद नामक एक क्षत्रिय राजा थे। जिनकी सुरुचि और शुभ्नी (सुनीति) नामकी दो रानियाँ थीं। सुनीतिसे ध्रुव नामका पुत्र हुआ। सुनीतिने अपने उस पुत्रको सुरुचिको सौंप दिया और कहा—'हे सखि! तुम इसकी रक्षा करो। मैं सदा स्वयं सेवामें तत्पर रहूँगी।' सुरुचि सदा गृहकार्य सँभालती और पतिव्रता सुनीति सदा पतिकी सेवा करती थी। सपत्नी-द्वेषके कारण किसी समय क्रोध और मात्सर्यसे सुरुचिने सुनीतिके शिशुको मार डाला, किंतु वह तत्क्षण ही जीवित होकर हँसता हुआ माँकी गोदमें स्थित हो गया। इसी प्रकार सुरुचिने कई बार यह कुकृत्य किया, किंतु वह बालक बार-बार जीवित हो उठता। उसको जीवित देखकर आश्चर्य-चकित हो सुरुचिने सुनीतिसे पूछा—'देवि! यह कैसी विचित्र घटना है और यह किस व्रतका फल है, तुमने किस हवन या व्रतका अनुष्ठान किया है? जिससे तुम्हारा पुत्र बार-बार जीवित हो जाता है। क्या तुम्हें मृतसंजीवनी विद्या सिद्ध है? रत्न, महारत्न या कौन-सी विशिष्ट विद्या तुम्हारे पास है—यह सत्य-सत्य बताओ।'

सुनीतिने कहा—बहन! मैंने कार्तिक मासकी द्वादशीके दिन गोवत्सव्रत किया है, उसीके प्रभावसे मेरा पुत्र पुनः-पुनः जीवित हो जाता है। जब-जब मैं उसका स्मरण करती हूँ, वह मेरे पास ही आ जाता है। प्रवासमें रहनेपर भी इस व्रतके प्रभावसे पुत्र प्राप्त हो जाता है। इस गोवत्सद्वादशी-व्रतके करनेसे हे सुरुचि! तुम्हें भी सब कुछ प्राप्त हो जायगा और तुम्हारा कल्याण होगा। सुनीतिके कहनेपर सुरुचिने भी इस व्रतका पालन किया, जिससे उसे पुत्र, धन तथा सुख प्राप्त हुआ। सृष्टिकर्ता ब्रह्माने सुरुचिको उसके पति उत्तानपादके साथ प्रतिष्ठित कर दिया और आज भी वह आनन्दित हो रही है। दस नक्षत्रोंसे युक्त ध्रुव आज भी आकाशमें दिखायी देते हैं। ध्रुव नक्षत्रको देखनेसे सभी पापोंसे विमुक्ति हो जाती है।

युधिष्ठिरने कहा—हे भगवन्! इस व्रतकी विधि भी बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे कुरुश्रेष्ठ! कार्तिक मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीको संकल्पपूर्वक श्रेष्ठ जलाशयमें स्नान कर पुरुष या स्त्री एक समय ही भोजन करे। अनन्तर मध्याह्नके समय वत्ससमन्वित गौको गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुंकुम, अलक्तक, दीप, उड़दके बड़े, पुष्पों तथा पुष्पमालाओंद्वारा इस मन्त्रसे पूजा करे—

ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः। प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट नमो नमः स्वाहा॥ (ऋ० ८। १०१। १५)

इस प्रकार पूजाकर गौको ग्रास प्रदान करे और निम्नलिखित मन्त्रसे गौका स्पर्श करते हुए प्रार्थना एवं क्षमा-याचना करे—

ॐ सर्वदेवमये देवि लोकानां शुभनन्दिनि।
मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि॥

(उत्तरपर्व ६९। ८५)

इस प्रकार गौकी पूजाकर जलसे उसका पर्युक्षण करके भक्तिपूर्वक गौको प्रणाम करे। उस दिन तवापर पकाया हुआ भोजन न करे और ब्रह्मचर्यपूर्वक पृथ्वीपर शयन करे। इस व्रतके प्रभावसे व्रती सभी सुखोंको भोगते हुए अन्तमें गौके जितने रोयें हैं, उतने वर्षोंतक गोलोकमें वास करता है, इसमें संदेह नहीं है।

(अध्याय ६९)

देवशयनी एवं देवोत्थानी द्वादशीव्रतोंका विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अब मैं गोविन्द-शयन नामक व्रतका वर्णन कर रहा हूँ और कटिदान, समुत्थान एवं चातुर्मास्यव्रतका भी वर्णन करता हूँ, उसे आप सुनें।

युधिष्ठिरने पूछा—महाराज! यह देव-शयन क्या है?

जब देवता भी सो जाते हैं तब संसार कैसे चलता है? देव क्यों सोते हैं? और इस व्रतका क्या विधान है—इसे कहें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भगवान् सूर्यके मिथुन राशिमें आनेपर भगवान् मधुसूदनकी मूर्तिको शयन करा दे और तुलाराशिमें सूर्यके जानेपर पुनः भगवान् जनार्दनको शयनसे उठाये। अधिमास आनेपर भी यही विधि है। अन्य प्रकारसे न तो हरिको शयन कराये और न उन्हें निद्रासे उठाये। आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी देवशयनी एकादशीको उपवास करे। भक्तिमान् पुरुष शुक्ल वस्त्रसे आच्छादित तकियेसे युक्त उत्तम शय्यापर पीताम्बरधारी, सौम्य, शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णुको शयन कराये। इतिहास और पुराणवेत्ता विष्णुभक्त पुरुष दही, दूध, शहद, घी और जलसे भगवान्‌की प्रतिमाको स्नान कराकर गन्ध, धूप, कुंकुम तथा वस्त्रोंसे अलंकृत कर निम्नलिखित मन्त्रसे प्रार्थना करे—

सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत् सुप्तं भवेदिदम्।
विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत् सर्वं चराचरम्॥

(उत्तरपर्व ७०। १०)

'हे जगन्नाथ! आपके सो जानेपर यह सारा जगत् सुप्त हो जाता है और आपके जग जानेपर सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रबुद्ध हो जाता है।'

महाराज! इस प्रकार भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको शय्यापर स्थापित कर उसीके सम्मुख वाणीपर नियन्त्रण रखनेका और अन्य नियमोंका व्रत ग्रहण करे। वर्षके चार मासतक देवाधिदेवके शयन और उसके बाद उत्थापनकी विधि कही गयी है।

राजन्! इस व्रतके त्यागने एवं ग्रहण करने योग्य पदार्थोंके अलग-अलग नियमोंको आप सुनें। गुड़का परित्याग करनेसे व्रती अगले जन्ममें मधुर वाणीवाला राजा होता है। इसी प्रकार चार मासतक तेलका परित्याग करनेवाला सुन्दर शरीरवाला होता है। कटु तैलका त्याग करनेसे उसके शत्रुओंका नाश होता है। महुएके तेलका त्याग करनेसे अतुल सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। पुष्प आदिके भोगका परित्याग करनेसे स्वर्गमें विद्याधर होता है। इन चार मासोंमें जो योगका अभ्यास करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त करता है। कड़वा, खट्टा, तीता, मधुर, क्षार, कषाय आदि रसोंका जो त्याग करता है, वह वैरूप्य और दुर्गतिको कभी भी प्राप्त नहीं होता। ताम्बूलके त्यागसे श्रेष्ठ भोगोंको प्राप्त करता है और मधुर कण्ठवाला होता है। घृतके त्यागसे रमणीय लावण्य और सभी प्रकारकी सिद्धिको प्राप्त करता है। फलका त्याग करनेसे बुद्धिमान् होता है और अनेक पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। पत्तोंका साग खानेसे रोगी, अपक्व अन्न खानेसे निर्मल शरीरसे युक्त होता है। तैल-मर्दनके परित्यागसे व्रती दीप्तिमान्, दीप्तकरण, राजाधिराज धनाध्यक्ष कुबेरके सायुज्यको प्राप्त करता है। दही, दूध, तक्र (मट्ठा)के त्यागका नियम[1] लेनेसे मनुष्य गोलोकको प्राप्त करता है। स्थालीपाकका परित्याग करनेपर इन्द्रका अतिथि होता है। तापपक्व वस्तुके भक्षणका नियम लेनेपर दीर्घायु संतानकी प्राप्ति होती है। पृथ्वीपर शयनका नियम लेनेसे विष्णुका भक्त होता है।

हे धर्मनन्दन! इन वस्तुओंके परित्यागसे धर्म होता है। नख और केशोंके धारण करनेपर, प्रतिदिन गङ्गा-स्नान करनेपर एवं मौनव्रती रहनेपर उसकी आज्ञाका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता। जो सदा पृथ्वीपर भोजन करता है, वह पृथ्वीपति होता है। '**ॐ नमो नारायणाय**' इस अष्टाक्षर मन्त्रका निराहार रहकर जप करने एवं भगवान् विष्णुके चरणोंकी वन्दना करनेसे गोदानजन्य फल प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुके चरणोदकके संस्पर्शसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुके मन्दिरमें उपलेपन और अर्चना करनेसे मनुष्य कल्पपर्यन्त स्थायी राजा होता है, इसमें संशय नहीं है। स्तुतिपाठ करता हुआ जो सौ बार भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा करता है एवं पुष्प, माला आदिसे पूजा करता है, वह हंसयुक्त विमानके द्वारा विष्णुलोकको जाता है। विष्णु-सम्बन्धी गान और वाद्य करनेवाला गन्धर्वलोकको प्राप्त होता है। प्रतिदिन शास्त्र-चर्चासे जो लोगोंको ज्ञान प्रदान करता है, वह व्यासरूपी भगवान्‌के रूपमें मान्य होता है और अन्तमें विष्णुलोकको जाता है। नित्य स्नान करनेवाला मनुष्य कभी नरकोंमें नहीं जाता। भोजनका संयम करनेवाला मनुष्य पुष्कर-क्षेत्रमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। भगवत्सम्बन्धी लीला-नाटक आदिका आयोजन करनेवाला अप्सराओंका राज्य प्राप्त करता

१-सावनमें मट्ठा, भाद्रपदमें दही और आश्विनमें दूधका परित्याग करना चाहिये।

है। अयाचित भोजन करनेवाला श्रेष्ठ बावली और कुँआ बनानेका फल प्राप्त करता है। दिनके छठे (अन्तिम) भागमें अन्नके भक्षण करनेसे मनुष्य स्थायीरूपसे स्वर्ग प्राप्त करता है। पत्तलमें भोजन करनेवाला मनुष्य कुरुक्षेत्रमें वास करनेका फल प्राप्त करता है। शिलापर नित्य भोजन करनेसे प्रयागमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। दो प्रहरतक जलका त्याग करनेसे कभी रोगी नहीं होता।

हे पार्थ ! चातुर्मास्यमें इस प्रकारके व्रत एवं नियमोंके पालनसे साधक पूर्ण संतोषको प्राप्त करता है। अर्थात् सभी प्रकार सुखी एवं संतुष्ट हो जाता है। गरुडध्वज जगन्नाथके शयन करनेपर चारों वर्णोंकी विवाह, यज्ञ आदि सभी क्रियाएँ सम्पादित नहीं होतीं। विवाह, यज्ञोपवीतादि संस्कार, दीक्षा-ग्रहण, यज्ञ, गृहप्रवेशादि, गोदान, प्रतिष्ठा एवं जितने भी शुभ कर्म हैं, वे सभी चातुर्मास्यमें त्याज्य हैं। संक्रान्तिरहित मासमें अर्थात् मलमासमें देवता एवं पितरोंसे सम्बन्धित कोई भी क्रिया सम्पादित नहीं की जानी चाहिये। भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको भगवान् विष्णुका कटिदान होता है अर्थात् करवट बदलनेकी क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये। इस दिन महापूजा करनी चाहिये।

राजन् ! अब इस विष्णु-शयनका कारण सुनिये। किसी समय तपस्याके प्रभावसे हरिको संतुष्टकर योगनिद्राने प्रार्थना की कि भगवन् ! आप मुझे भी अपने अङ्गोंमें स्थान दीजिये। तब मैंने देखा कि मेरा सम्पूर्ण शरीर तो लक्ष्मी आदिके द्वारा अधिष्ठित है। लक्ष्मीके द्वारा उरःस्थल, शङ्ख, चक्र, शार्ङ्गधनुष तथा असिके द्वारा बाहु, वैनतेयके द्वारा नाभिके नीचेके अङ्ग, मुकुटसे सिर, कुण्डलोंसे कान अवरुद्ध हैं। इसलिये मैंने संतुष्ट होकर नेत्रोंमें आदरसे योगनिद्राको स्थान दिया और कहा कि तुम वर्षमें चार मास मेरे आश्रित रहोगी। यह सुनकर प्रसन्न होकर योगनिद्राने मेरे नेत्रोंमें वास किया। मैं उस मनस्विनीको आदर देता हूँ। योगनिद्रामें जब मैं क्षीरसागरमें इस महानिद्रारूपी शेषशय्यापर शयन करता हूँ, उस समय ब्रह्माके सांनिध्यमें भगवती लक्ष्मी अपने करकमलोंसे मेरे दोनों चरणोंका मर्दन करती हैं और क्षीरसागरकी लहरें मेरे चरणोंको धोती हैं। हे पाण्डवश्रेष्ठ ! जो मनुष्य इस चातुर्मास्यके समय अनेक व्रत-नियमपूर्वक रहता है, वह कल्पपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास करता है, इसमें संशय नहीं। शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णु कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीमें जागते हैं, उसकी व्रत-विधि आप सुनिये। भगवान्‌को इस मन्त्रसे जगाना चाहिये—**'इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पाँ्सुरे स्वाहा ॥** (यजु० ५। १५) अपने आसनपर विष्णुके जागनेपर संसारकी सभी धार्मिक क्रियाएँ प्रवृत्त हो जाती हैं। शङ्ख, मृदंग आदि वाद्योंकी ध्वनि एवं जयघोषके साथ भगवान्‌को रात्रिमें रथपर बैठाकर घुमाना चाहिये। देवदेवेशके उठनेपर नगरको दीपादिसे देदीप्यमान कर नृत्य-गीत-वाद्य आदिसे मङ्गलोत्सव करना चाहिये। धरणीधर दामोदर भगवान् विष्णु उठकर जिस-जिसको देखते हैं, उस समय उन्हें प्रदत्त सभी वस्तुएँ मानवको स्वर्गमें प्राप्त होती हैं। एकादशीके दिन रात्रिमें मन्दिरमें जागरण करे। द्वादशीमें प्रातःकाल स्वच्छ जलसे स्नानकर विष्णुकी पूजा करे। अग्निमें घृत आदि हव्य द्रव्योंसे हवन करे, अनन्तर स्नानकर ब्राह्मणको विशिष्ट अन्नोंका भोजन कराये। घी, दही, मधु, गुड आदिके द्वारा निर्मित मोदकको भोजनके लिये समर्पित करे। यजमान भी प्रसन्नतापूर्वक संयमित होकर ग्यारह, दस, आठ, पाँच या दो विप्रोंकी पुष्प, गन्ध आदिसे विधिवत् पूजा करे। श्रेष्ठ संन्यासियोंको भी भोजन कराये और संकल्पमें त्यक्त पदार्थ तथा अभीष्ट पत्र-पुष्प आदि दक्षिणाके साथ देकर उन्हें बिदा करे। अनन्तर स्वयं भोजन करना चाहिये। जिस वस्तुको चार मासतक छोड़ा है, उसे भी खाना चाहिये। ऐसा करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है। अन्तमें व्रती विष्णुपुरी (वैकुण्ठ) को प्राप्त करता है। जिस व्यक्तिका चातुर्मास्यव्रत निर्विघ्न सम्पन्न होता है, वह कृतकृत्य हो जाता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। हे पार्थ ! जो देवशयन-व्रतको विधिपूर्वक सम्पन्न करता हुआ अन्तमें भगवान् विष्णुको जगाता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। इस माहात्म्यको जो मनुष्य ध्यानसे सुनता है, स्तुति करता एवं कहता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। क्षीरसागरमें भगवान् अनन्त जिस दिन सोते हैं और जागते हैं, उस दिन अनन्यचित्तसे उपवास करनेवाला पुरुष सद्गतिको प्राप्त करता है। (अध्याय ७०)

—❖—

नीराजनद्वादशीव्रत-कथा एवं व्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! प्राचीन कालमें अजपाल नामके एक राजर्षि थे। एक बार प्रजाने अपने दुःखोंको दूर करनेकी उनसे प्रार्थना की, तब उन्होंने इसपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और फिर नीराजन-शान्तिका अनुष्ठान किया। राजन्! आपको उस व्रतकी विधि बतलाता हूँ। हे पाण्डवश्रेष्ठ! राजाको पुरोहितके द्वारा इसे सविधि सम्पन्न कराना चाहिये।

जब अजपाल राजा था, उस समय राक्षसोंका स्वामी रावण लंकाका राजा था। देवताओंको उसने अपनी सेवामें नियुक्त कर लिया था। रावणने चन्द्रमाको छत्र, इन्द्रको सेनापति, वायुको धूल साफ करनेवाला, वरुणको जलसेवक, कुबेरको धनरक्षक, यमको शत्रुको संयत करनेवाला तथा राजेन्द्र मनुको मन्त्रणाके लिये नियुक्त किया। मेघ उसकी इच्छानुसार शीतल मन्द वृष्टि करते थे। ब्रह्माके साथ सप्तर्षिगण नित्य उसकी शान्तिकी कामना करते रहते थे। रावणने गन्धर्वोंको गानके लिये, अप्सराओंको नृत्य-गीतके लिये, विद्याधरोंको वाद्य-कार्यके लिये, गङ्गादि नदियोंको जलपान करानेके लिये, अग्निको गार्हपत्य-कार्यके लिये, विश्वकर्माको अन्न-संस्कारके लिये तथा यमको शिल्प आदि कार्योंके लिये नियुक्त किया और दूसरे राजागण नगरकी सेवाके विधानमें तत्पर रहते थे। रावणने ऐसा अपना प्रभाव देखकर अपने प्रसस्ति नामक प्रतिहारसे कहा—'यहाँ मेरी सेवाके लिये कौन आया है?' प्रणाम कर निशाचरने कहा—'प्रभो! ककुत्स्थ, मान्धाता, धुन्धुमार, नल, अर्जुन, ययाति, नहुष, भीम, राघव, विदूरथ—ये सभी तथा अन्य बहुतसे राजा आपकी सेवाके लिये यहाँ आये हैं, किंतु राजा अजपाल आपकी सेवामें नहीं आया है।' रावणने क्रुद्ध होकर शीघ्र ही धूम्राक्ष नामक राक्षससे कहा—'धूम्राक्ष! जाओ और अजपालको मेरी आज्ञाके अनुसार यह सूचना दो कि तुम आकर मेरी सेवा करो, अन्यथा तलवारसे तुमको मैं मार डालूँगा।' रावणके द्वारा ऐसा कहनेपर धूम्राक्ष गरुड़के समान तेज गतिसे उसकी रमणीय नगरीमें गया और राजकुलमें पहुँचा। धूम्राक्षने रावणके द्वारा कही गयी बातें उसे सुनायीं, किंतु अजपालने धूम्राक्षके आक्षेपपूर्वक अन्य कारणोंको कहते हुए लौटा दिया। तदनन्तर ज्वरको बुलाकर राजाने कहा—'तुम लंकेश्वर रावणके पास जाओ और वहाँ यथोचित कार्य सम्पन्न करो।' अजपालके द्वारा नियुक्त मूर्तिमान् ज्वर वहाँ गया और उसने सभी गणोंके साथ बैठे हुए राक्षसपतिको प्रकम्पित कर दिया। रावणने उस परम भयंकर ज्वरको आया जानकर कहा कि अजपाल राजा वहीं रहे, मुझे उसकी जरूरत नहीं है। उसी बुद्धिमान् राजर्षि अजपालके द्वारा यह शान्ति प्रवर्तित हुई है, यह शान्ति सभी उपद्रवोंको दूर करनेवाली है। सभी रोगोंको नष्ट करनेवाली है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिमें सायंकाल भगवान् विष्णुके जग जानेके बाद ब्राह्मणोंके द्वारा विष्णुका हवन करे। वर्धमान (एरण्ड) वृक्षोंसे प्राप्त तेलयुक्त दीपिकाओंसे भगवान् विष्णुका धीरे-धीरे नीराजन करे। पुष्प, चन्दन, अलंकार, वस्त्र एवं रत्न आदिसे उनकी पूजा करे। साथ ही लक्ष्मी, चण्डिका, ब्रह्मा, आदित्य, शंकर, गौरी, यक्ष, गणपति, ग्रह, माता-पिता तथा नाग सभीका नीराजन (आरती) करे। गौ, महिष आदिका भी नीराजन करे। घंटा आदि वाद्योंको बजाये। गौओंका सिन्दूर आदिसे तथा चित्र-विचित्र वस्त्रोंसे शृङ्गार करे और बछड़ोंके साथ उनको ले चले और उनके पीछे गोपाल भी ध्वनि करते चलें। मङ्गलध्वनिसे युक्त गौओंके नीराजन-उत्सवमें घोड़ों आदिको भी ले चले। अपने घरके आँगनको राजचिह्नोंसे सुशोभित कर पुरोहितोंके साथ मन्त्री, नौकर आदिको लेकर राजा शङ्ख, तुरही आदिके द्वारा एवं गन्ध, पुष्प, वस्त्र, दीप आदिसे पूजा करे। पुरोहित **'शान्तिरस्तु'**, **'समृद्धिरस्तु'** ऐसा कहते रहें। यह महाशान्ति नामसे प्रसिद्ध नीराजन जिस राष्ट्र, नगर और गाँवमें सम्पन्न होता है, वहाँके सभी रोग एवं दुःख नष्ट हो जाते हैं और सुभिक्ष हो जाता है। राजा अजपालने इसी नीराजन-शान्तिसे अपने राष्ट्रकी वृद्धि की थी और सम्पूर्ण प्राणियोंको रोगसे मुक्त बना दिया था। इसलिये रोगादिकी निवृत्ति और अपना हित चाहनेवाले व्यक्तिको नीराजनव्रतका अनुष्ठान प्रतिवर्ष करना चाहिये। भगवान् विष्णुका जो नीराजन करता है, वह गौ, ब्राह्मण, रथ, घोड़े आदिसे युक्त एवं नीरोग हो सुखसे जीवन-यापन करता है। (अध्याय ७१)

भीष्मपञ्चक-व्रतकी विधि एवं महिमा

युधिष्ठिरने कहा—हे यदुश्रेष्ठ कृष्ण ! कार्तिक मासमें श्रीभीष्मपञ्चक नामका जो श्रेष्ठ व्रत होता है, अब कृपया उसका विधान बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मैं आपसे व्रतोंमें सर्वोत्तम भीष्मपञ्चक-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ। मैंने पहले इस व्रतका उपदेश भृगुजीको किया था, फिर भृगुने शुक्राचार्यको और शुक्राचार्यने प्रह्लाद आदि दैत्यों एवं अपने शिष्य ब्राह्मणोंको बताया। जैसे तेजस्वियोंमें अग्नि, शीघ्रगामियोंमें पवन, पूजनीयोंमें ब्राह्मण एवं दानोंमें सुवर्ण-दान श्रेष्ठ है, वैसे ही व्रतोंमें भीष्मपञ्चक-व्रत श्रेष्ठ है। लोकोंमें भूलोक, तीर्थोंमें गङ्गा, यज्ञोंमें अश्वमेध, शास्त्रोंमें वेद तथा देवताओंमें अच्युतका जैसा स्थान है, ठीक उसी प्रकारसे व्रतोंमें भीष्मपञ्चक सर्वोत्तम है। जो इस दुष्कर भीष्मपञ्चक-व्रतका अनुष्ठान कर लेता है, उसके द्वारा सभी धर्म सम्पादित हो जाते हैं। पहले सत्ययुगमें वसिष्ठ, भृगु, गर्ग आदि मुनियोंने, फिर त्रेतामें नाभाग, अम्बरीष आदि राजाओंने और द्वापरमें सीरभद्र आदि वैश्योंने तथा कलियुगमें उत्तम आचरणवाले शूद्रोंने भी इस व्रतका अनुष्ठान किया। ब्राह्मणोंने ब्रह्मचर्य-पालन, जप तथा हवन-कर्मके द्वारा और क्षत्रियों एवं वैश्योंने सत्य-शौच आदिके पालनपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान किया है। सत्यहीन मूढ मनुष्योंके लिये इस व्रतका अनुष्ठान असम्भव है। यह भीष्मपञ्चक-व्रत पाँच दिनतक होता है। इस भीष्मपञ्चक-व्रतमें असत्यभाषण, शिकार खेलने आदि अनुचित कर्मोंका त्याग करना चाहिये। पाँच दिन विष्णु भगवान्का पूजन करते हुए शाकमात्रका ही आहार करना चाहिये। पतिकी आज्ञासे स्त्री भी सुख-प्राप्तिहेतु इस व्रतका आचरण कर सकती है। विधवा नारी भी पुत्र-पौत्रोंकी समृद्धि अथवा मोक्षार्थ इस व्रतको कर सकती है। इसमें कार्तिक मासपर्यन्त नित्य प्रातः-स्नान, दान, मध्याह्न-स्नान और भगवान् विष्णुके पूजनका विधान है। नदी, झरना, देवखात या किसी पवित्र जलाशयमें शरीरमें गोमय लगाकर स्नान कर जौ, चावल तथा तिलोंसे देवता, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। भगवान् विष्णुको भी मधु, दुग्ध, घी तथा चन्दनमिश्रित जलसे भक्तिपूर्वक स्नान कराना चाहिये। कर्पूर, पञ्चगव्य, कुंकुम (केसर), चन्दन तथा सुगन्धित पदार्थोंके द्वारा भगवान् गरुडध्वज विष्णुका उपलेपन करना चाहिये। उनके सामने एक दीपक पाँच दिनोंतक अनवरत दिन-रात प्रज्वलित रखना चाहिये। भगवान्को नैवेद्य निवेदित कर '**ॐ नमो वासुदेवाय**' का अष्टोत्तरशत-जप, तदनन्तर षडक्षर-मन्त्रसे हवन करना चाहिये तथा विधिपूर्वक सायंकालीन संध्या करनी चाहिये। जमीनपर सोना चाहिये। ये सभी कार्य पाँच दिनोंतक किये जाने चाहिये। इस व्रतमें पहले दिन भगवान् विष्णुके चरणोंकी कमल-पुष्पोंके द्वारा पूजा करनी चाहिये। दूसरे दिन बिल्वपत्रके द्वारा उनके घुटनोंकी, तीसरे दिन नाभि-स्थलपर केवड़ेके पुष्पद्वारा पूजा करनी चाहिये। चौथे दिन बिल्व एवं जपा-पुष्पोंसे भगवान्के स्कन्ध-प्रदेशकी पूजा करनी चाहिये और पाँचवें दिन मालती-पुष्पोंसे भगवान्के शिरोभागकी पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार हृषीकेशका पूजन करते हुए व्रतीको एकादशीके दिन व्रत कर अभिमन्त्रित गोमय तथा द्वादशीको गोमूत्रका प्राशन करना चाहिये। त्रयोदशीको दूध तथा चतुर्दशीको दधिका प्राशन करना चाहिये। कायशुद्धिके लिये चारों दिन इनका प्राशन करना चाहिये। पाँचवें दिन स्नानकर केशवकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। इसी प्रकार पुराण-वाचकोंको भी वस्त्राभूषण प्रदान करना चाहिये। रात्रिमें पहले पञ्चगव्य-पान करके पीछे अन्न भोजन करे। इस प्रकारसे भीष्मपञ्चक-व्रतका समापन करना चाहिये। यह भीष्मपञ्चक-व्रत परम पवित्र और सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। राजन् ! इसी भीष्मपञ्चक-व्रतका वर्णन शरशय्यापर पड़े हुए महात्मा भीष्मने स्वयं किया था। इसे मैंने आपको बता दिया। जो मानव भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करता है, उसे भगवान् अच्युत मुक्ति प्रदान करते हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी जो कोई भी इस व्रतको करते हैं, उन्हें वैष्णव-स्थान प्राप्त होता है। कार्तिक शुक्ल एकादशीसे व्रत प्रारम्भ करके पौर्णमासीको व्रत पूर्ण करना चाहिये। जो इस व्रतको सम्पन्न करता है, वह ब्रह्महत्या, गोहत्या आदि बड़े-बड़े पापोंसे भी मुक्त हो जाता है और शुद्ध सद्गतिको प्राप्त होता है। ऐसा भीष्मका वचन है। (अध्याय ७२)

मल्लद्वादशी एवं भीमद्वादशी-व्रतका विधान

युधिष्ठिरके द्वारा मल्लद्वादशीके विषयमें पूछे जानेपर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—महाराज! जब मेरी अवस्था आठ वर्षकी थी, उस समय यमुना-तटपर भाण्डीर-वनमें वट-वृक्षके नीचे एक सिंहासनपर मुझे बैठाकर सुरभद्र, मण्डलीक, योगवर्धन तथा यक्षेन्द्रभद्र आदि बड़े-बड़े मल्लों और गोपाली, धन्या, विशाखा, ध्याननिष्ठिका, अनुगन्धा, सुभगा आदि गोपियोंने दही, दूध और फल-फूल आदिसे मेरा पूजन किया। तत्पश्चात् तीन सौ साठ मल्लोंने भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करते हुए मल्लयुद्धको सम्पन्न किया तथा हमारी प्रसन्नताके लिये बड़ा भारी उत्सव मनाया। उस महोत्सवमें भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य, गोदान, गोष्ठी तथा पूजन आदि कार्य सम्पन्न किये गये थे। श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंका पूजन भी हुआ था। उसी दिनसे यह मल्लद्वादशी प्रचलित हुई। इस व्रतको मार्गशीर्ष-मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीसे आरम्भ कर कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीतक करना चाहिये और प्रतिमास क्रमसे केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ तथा दामोदर—इन नामोंसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, गीत-वाद्य, नृत्य-सहित पूजन करे और **'कृष्णो मे प्रीयताम्'** इस प्रकार उच्चारण करे। यह द्वादशीव्रत मुझे बहुत प्रिय है। चूँकि मल्लोंने इस व्रतको प्रारम्भ किया था, अतः इसका नाम मल्लद्वादशी है। जिन गोपोंके द्वारा इस व्रतको सम्पन्न किया गया उन्हें गाय, महिषी, कृषि आदि प्रचुर मात्रामें प्राप्त हुआ। जो कोई पुरुष इस व्रतको सम्पन्न करेगा, मेरे अनुग्रहसे वह आरोग्य, बल, ऐश्वर्य और शाश्वत विष्णुलोकको प्राप्त करेगा।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—महाराज! प्राचीन कालमें विदर्भ देशमें भीम नामक एक प्रतापी राजा थे। वे दमयन्तीके पिता एवं राजा नलके ससुर थे। राजा भीम बड़े पराक्रमी, सत्यवक्ता और प्रजापालक थे। वे शास्त्रोक्त-विधिसे राज्य-कार्य करते थे। एक दिन तीर्थयात्रा करते हुए ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यमुनि उनके यहाँ पधारे। राजाने अर्घ्य-पाद्यादिद्वारा उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। पुलस्त्यमुनिने प्रसन्न होकर राजासे कुशल-क्षेम पूछा, तब राजाने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'महाराज! जहाँ आप-जैसे महानुभावका आगमन हो, वहाँ सब कुशल ही होता है। आपके यहाँ पधारनेसे मैं पवित्र हो गया।' इस तरहसे अनेक प्रकारकी स्नेहकी बातें राजा तथा पुलस्त्यमुनिके बीच होती रहीं। कुछ समयके पश्चात् विदर्भाधिपति भीमने पुलस्त्यमुनिसे पूछा—प्रभो! संसारके जीव अनेक प्रकारके दुःखोंसे सदा पीडित रहते हैं और उसमें गर्भवास सबसे बड़ा दुःख है, प्राणी अनेक प्रकारके रोगसे ग्रस्त हैं। जीवोंकी ऐसी दशाको देखकर मुझे अत्यन्त कष्ट होता है। अतः ऐसा कौन-सा उपाय है, जिसके द्वारा थोड़ा परिश्रम करके ही जीव संसारके दुःखोंसे छुटकारा पानेमें समर्थ हो जाय। यदि कोई व्रत-दानादि हो तो आप मुझे बतलायें।

पुलस्त्यमुनिने कहा—राजन्! यदि मानव माघ मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास करे तो उसे कोई कष्ट नहीं हो सकता। यह तिथि परम पवित्र करनेवाली है। यह व्रत अति गुप्त है, किंतु आपके स्नेहने मुझे कहनेके लिये विवश कर दिया है। अदीक्षितसे इस व्रतको कभी नहीं कहना चाहिये, जितेन्द्रिय, धर्मनिष्ठ और विष्णुभक्त पुरुष ही इस व्रतके अधिकारी हैं। ब्रह्मघाती, गुरुघाती, स्त्रीघाती, कृतघ्न, मित्रद्रोही आदि बड़े-बड़े पातकी भी इस व्रतके करनेसे पापमुक्त हो जाते हैं। इसके लिये शुद्ध तिथिमें और अच्छे मुहूर्तमें दस हाथ लम्बा-चौड़ा मण्डप तैयार करना चाहिये तथा उसके मध्यमें पाँच हाथकी एक वेदी बनानी चाहिये। वेदीके ऊपर एक मण्डल बनाये, जो पाँच रंगोंसे युक्त हो। मण्डपमें आठ अथवा चार कुण्ड बनाये। कुण्डोंमें ब्राह्मणोंको उपस्थापित करे। मण्डलके मध्यमें कर्णिकाके ऊपर पश्चिमाभिमुख चतुर्भुज भगवान् जनार्दनकी प्रतिमा स्थापित कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि भाँति-भाँतिके उपचारों तथा नैवेद्योंसे शास्त्रोक्त-विधिसे ब्राह्मणोंद्वारा उनकी पूजा करानी चाहिये। नारायणके सम्मुख दो स्तम्भ गाड़कर उनके ऊपर एक आड़ा काष्ठ रख उसमें एक दृढ़ छींका बाँधना चाहिये। उसपर सुवर्ण, चाँदी, ताम्र अथवा मृत्तिकाका सहस्र, शत अथवा एक छिद्रसमन्वित उत्तम कलश जल, दूध अथवा घीसे पूर्ण कर रखना चाहिये। पलाशकी समिधा, तिल, घृत, खीर और शमी-पत्रोंसे ग्रहोंके लिये आहुति देनी चाहिये। ईशान-कोणमें ग्रहोंका पीठ-स्थापन कर ग्रह-यज्ञविधानसे ग्रहोंकी पूजा करनी

चाहिये। पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र, यम, वरुण और कुबेरका पूजन कर शुक्ल वस्त्र तथा चन्दनसे भूषित, हाथमें कुश लेकर यजमानको एक पीढ़ेके ऊपर भगवान्‌के सामने बैठना चाहिये। यजमानको एकाग्रचित्त हो कलशसे गिरती जलधारा (वसोर्धारा) को निम्नमन्त्रका पाठ करते हुए भगवान्‌को प्रणामपूर्वक अपने सिरपर धारण करना चाहिये—

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भुवनेश्वर।
व्रतेनानेन मां पाहि परमात्मन् नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व ७४।४२)

उस समय ब्राह्मणोंको चारों दिशाओंके कुण्डोंमें हवन करना चाहिये। साथ ही शान्तिकाध्याय और विष्णुसूक्तका पाठ किया जाना चाहिये। शङ्ख-ध्वनि करनी चाहिये। भाँति-भाँतिके वाद्योंको बजाना चाहिये। पुण्य-जयघोष करना चाहिये। माङ्गलिक स्तुति-पाठ करना चाहिये। इस तरहके माङ्गलिक कार्य करते हुए यजमानको हरिवंश, सौपर्णिक (सुपर्णसूक्त) आख्यान और महाभारत आदिका श्रवण करते हुए जागरण-पूर्वक रात्रि व्यतीत करनी चाहिये। भगवान्‌के ऊपर गिरती हुई वसोर्धारा समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली है। दूसरे दिन प्रातः यजमान ब्राह्मणोंके साथ किसी पुण्य जलाशय अथवा नदी आदिमें स्नानकर शुक्ल वस्त्र पहनकर प्रसन्नचित्तसे भगवान् भास्करको अर्घ्य दे। पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करे। हवन करके भक्तिपूर्वक पूर्णाहुति दे। यज्ञमें उपस्थित सभी ब्राह्मणोंका शय्या, भोजन, गोदान, वस्त्र, आभूषण आदिद्वारा पूजन करे और आचार्यकी विशेषरूपसे पूजा करे। जैसे ब्राह्मण एवं आचार्य संतुष्ट हों वैसा यत्न करे, क्योंकि आचार्य साक्षात् देवतुल्य गुरु है। दीनों, अनाथों तथा अभ्यागतोंको भी संतुष्ट करे। अनन्तर स्वयं भी हविष्यका भोजन करे।

राजन्! इस प्रकार मैंने इस भीमद्वादशीव्रतका विधान बतलाया, इससे पापिष्ठ व्यक्ति भी पापमुक्त हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। यह विष्णुयाग सैकड़ों वाजपेय एवं अतिरात्र यागोंसे विशेष फलदायी है। इस भीमद्वादशीका व्रत करनेवाले स्त्री-पुरुष सात जन्मोंतक अखण्ड सौभाग्य, आयु, आरोग्य तथा सभी सम्पदाओंको प्राप्त करते हैं। अनन्तर मृत्युके बाद क्रमशः विष्णुपुर, रुद्रलोक तथा ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। इस पृथ्वीलोकमें आकर पुनः वह सम्पूर्ण पृथ्वीका अधिपति एवं चक्रवर्ती धार्मिक राजा होता है।

इस व्रतको प्राचीन कालमें महात्मा सगर, अज, धुंधुमार, दिलीप, ययाति तथा अन्य महान् श्रेष्ठ राजाओंने किया था और स्त्री, वैश्य एवं शूद्रोंने भी धर्मकी कामनासे इस व्रतको किया था। भृगु आदि मुनियों और सभी वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा भी इसका अनुष्ठान हुआ था। हे राजन्! आपके पूछनेपर मैंने इसे बतलाया है, अतः आजसे यह द्वादशी आपके (भीमद्वादशी) नामसे पृथ्वीपर ख्याति प्राप्त करेगी। (अध्याय ७३-७४)

श्रवणद्वादशी-व्रतके प्रसंगमें एक वणिक्‌की कथा

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! जो व्यक्ति दीर्घ उपवास करनेमें असमर्थ हो उसके लिये कौन-सा व्रत है? इसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथि यदि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो इसमें व्रत करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यह परम पवित्र एवं महान् फल देनेवाली द्वादशी है। इस व्रतमें प्रातःकाल नदी-संगममें जाकर स्नान करके द्वादशीमें उपवास करना चाहिये। एकमात्र इस श्रवणद्वादशीके व्रत कर लेनेसे द्वादश द्वादशी-व्रतोंका फल प्राप्त हो जाता है। यदि इस तिथिमें बुधवारका भी योग हो जाय तो इसमें किये गये समस्त कर्म अक्षय हो जाते हैं। इस व्रतसे गङ्गास्नानका लाभ होता है। इस व्रतमें एक सुन्दर कलशकी विधिवत् स्थापना कर उसमें भगवान् विष्णुकी प्रतिमा यथाविधि स्थापित करनी चाहिये। अनन्तर भगवान्‌की अङ्गपूजा करनी चाहिये। रात्रिमें जागरण करे। प्रभातकालमें स्नानकर गरुडध्वजकी पूजा करे और पुष्पाञ्जलि देकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक।
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव॥

(उत्तरपर्व ७५।१५)

अनन्तर वेदज्ञ एवं पुराणज्ञ ब्राह्मणोंकी पूजा करे और प्रतिमा आदि सब पदार्थ **'प्रीयतां मे जनार्दनः'** कहकर

ब्राह्मणको निवेदित कर दे।

श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! इस व्रतके प्रसंगमें एक प्राचीन आख्यान है, उसे आप सुनें—दशार्ण देशके पश्चिम भागमें सम्पूर्ण प्राणियोंको भय देनेवाला एक मरुदेश है। वहाँके भूमिकी बालू निरन्तर तपती रहती है, यत्र-तत्र भयंकर साँप घूमते रहते हैं। वहाँ छाया बहुत कम है। वृक्षोंमें पत्ते कम रहते हैं। प्राणी प्रायः मरे-जैसे ही रहते हैं। शमी, खैर, पलाश, करील, पीलु आदि कँटीले वृक्ष वहाँ हैं। वहाँ अन्न और जल बहुत कम मिलता है। वृक्षोंके कोटरोंमें छोटे-छोटे पक्षी प्यासे ही मर जाते हैं। वहाँके प्यासे हरिण मरु-भूमिमें जलकी इच्छासे दौड़ लगाते रहते हैं और जल न मिलनेसे मर जाते हैं।

उस मरुस्थलमें दैववश एक वणिक् पहुँच गया। वह अपने साथियोंसे बिछुड़ गया था। उसने इधर-उधर घूमते हुए भयंकर पिशाचोंको वहाँ देखा। वह वणिक् भूख-प्याससे व्याकुल होकर इधर-उधर घूमने लगा। कहने लगा—क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कहाँसे मुझे अन्न-जल प्राप्त हो। तदनन्तर उसने एक प्रेतके स्कन्धप्रदेशपर बैठे एक प्रेतको देखा। जिसे चारों ओरसे अन्य प्रेत घेरे हुए थे। कन्धेपर चढ़ा हुआ वह प्रेत वणिक्‌को देखकर उसके पास आया और कहने लगा—'तुम इस निर्जल प्रदेशमें कैसे आ गये?' उसने बताया—'मेरे साथी छूट गये हैं, मैं अपने किसी पूर्व-कुकृत्यके फलसे या संयोगसे यहाँ पहुँच गया हूँ। भूख और प्याससे मेरे प्राण निकल रहे हैं। मैं अपने जीनेका कोई उपाय नहीं देख रहा हूँ।' इसपर वह प्रेत बोला—'तुम इस पुन्नाग वृक्षके पास क्षणमात्र प्रतीक्षा करो। यहाँ तुम्हें अभीष्ट-लाभ होगा, इसके बाद तुम यथेच्छ चले जाना।' वणिक् वहीं ठहर गया। दोपहरके समय कोई व्यक्ति पुन्नाग वृक्षसे एक कसोरेमें जल तथा दूसरे कसोरेमें दही और भात लेकर प्रकट हुआ और उसने वह वणिक्‌को प्रदान किया। वणिक् उसे ग्रहणकर संतुष्ट हुआ। उसी व्यक्तिने प्रेत-समुदायको भी जल और दही-भात दिया, इससे वे सभी संतृप्त हो गये। शेष भागको उस व्यक्तिने स्वयं भी ग्रहण किया। इसपर आश्चर्यचकित होकर वणिक्‌ने उस प्रेताधिपसे पूछा—'ऐसे दुर्गम स्थानमें अन्न-जलकी प्राप्ति आपको कहाँसे होती है? थोड़ेसे ही अन्न-जलसे बहुतसे लोग कैसे तृप्त हो जाते हैं। मुझे सहारा देनेवाले इस स्थानमें आप कैसे मिल गये? हे शुभव्रत! आप यह बतलायें कि ग्रासमात्रसे ही आपको संतुष्टि कैसे हो गयी? इस घोर अटवीमें आपने अपना स्थान कहाँ बनाया है? मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है, मेरा संशय आप दूर करें।'

प्रेताधिपने कहा—हे भद्र! मैंने पहले बहुत दुष्कृत किया था। दुष्ट बुद्धिवाला मैं पहले रमणीय शाकल नगरमें रहता था। व्यापारमें ही मैंने अपना अधिकांश जीवन बिता दिया। प्रमादवश मैंने धनके लोभसे कभी भी भूखेको न अन्न दिया और न प्यासेकी प्यास ही बुझायी। मेरे ही घरके पास एक गुणवान् ब्राह्मण रहता था। वह भाद्रपद मासकी श्रवण नक्षत्रसे युक्त द्वादशीके योगमें कभी मेरे साथ तोषा नामकी नदीमें गया। तोषा नदीका संगम चन्द्रभागासे हुआ है। चन्द्रभागा चन्द्रमाकी तथा तोषा सूर्यकी कन्या हैं। उन दोनोंका शीतोष्ण जल बड़ा मनोहर है। उस तीर्थमें जाकर हमलोगोंने स्नान किया और उपवास किया। हमने वहाँ दध्योदन, छत्र, वस्त्र आदि उपचारोंसे भगवान् विष्णुकी प्रतिमाकी पूजा की। इसके अनन्तर हमलोग घर आ गये। मरनेके अनन्तर नास्तिक होनेसे मैं प्रेतत्वको प्राप्त हुआ। इस घोर अटवीमें जो हो रहा है, वह तो आप देख ही रहे हैं। ये जो अन्य प्रेतगण आप देख रहे हैं, इनमें कुछ ब्राह्मणोंके धनका अपहरण करनेवाले, कोई परदाररत हैं, कोई अपने स्वामीसे द्रोह करनेवाले तथा कोई मित्रद्रोही हैं। मेरा अन्न-पान करनेसे ये सब मेरे सेवक बन गये हैं। भगवान् श्रीकृष्ण अक्षय, सनातन परमात्मा हैं। उनके उद्देश्यसे जो कुछ भी दान किया जाता है वह अक्षय होता है। हे महाभाग! आप हिमालयमें जाकर धन प्राप्त करेंगे, अनन्तर मुझपर कृपाकर आप इन प्रेतोंकी मुक्तिके लिये गयामें जाकर श्राद्ध करें। इतना कहकर वह प्रेताधिप मुक्त होकर विमानमें बैठकर स्वर्गलोक चला गया।

प्रेताधिपके चले जानेपर वह वणिक् हिमालयमें गया और वहाँ धन प्राप्त कर अपने घर आ गया और उस धनसे उसने गया तीर्थमें अक्षयवटके समीप उन प्रेतोंके उद्देश्यसे श्राद्ध किया। वह वणिक् जिस-जिस प्रेतकी मुक्तिके निमित्त श्राद्ध करता था, वह प्रेत वणिक्‌को स्वप्नमें दर्शन देकर कहता था कि 'हे महाभाग! आपकी कृपासे मैं प्रेतत्वसे मुक्त हो गया

और मुझे परमगति प्राप्त हुई।' इस प्रकार वे सभी प्रेत मुक्त हो गये। राजन्! वह वणिक् पुनः घर लौट आया और उसने भाद्रपद मासके श्रवण द्वादशीके योगमें भगवान् जनार्दनकी पूजा की, ब्राह्मणोंको गो-दान किया। जितेन्द्रिय होकर प्रतिवर्ष नदीके संगमोंपर यह सब कार्य किया और अन्तमें उसने मानवोंके लिये दुर्लभ स्थानको प्राप्त किया। (अध्याय ७५)

विजय-श्रवण-द्वादशीव्रतमें वामनावतारकी कथा तथा व्रत-विधि

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—युधिष्ठिर! भाद्रपद मासकी एकादशी तिथि यदि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो उसे विजया तिथि कहते हैं, वह भक्तोंको विजय प्रदान करनेवाली है। एक बार दैत्यराज बलिसे पराजित होकर सभी देवता भगवान् विष्णुकी शरणमें पहुँचे और कहने लगे—'प्रभो! सभी देवताओंके एकमात्र आश्रय आप ही हैं। आप महान् कष्टसे हमारा उद्धार कीजिये। इस दैत्य बलिका आप विनाश कीजिये।' इसपर भगवान्ने कहा—'देवगणो! मैं यह जानता हूँ कि विरोचन-पुत्र बलि तीनों लोकोंका कण्टक बना हुआ है, पर उसने तपस्याद्वारा अपनी आत्माकी अपनेमें भावना कर ली है, वह शान्त है, जितेन्द्रिय है और मेरा भक्त है, उसके प्राण मुझमें ही लगे हैं, वह सत्यप्रतिज्ञ है। बहुत दिनोंके बाद उसकी तपस्याका अन्त होगा। जब मैं इसे अविनयसम्पन्न समझूँगा, तब उसका अभीष्ट हरण कर लूँगा और आपको दे दूँगा। पुत्रकी इच्छासे देवमाता अदिति भी मेरे पास आयी थीं। देवताओ! मैं उनका भी कल्याण करूँगा, अवतार लेकर देवताओंका संरक्षण और असुरोंका विनाश करूँगा। इसलिये आपलोग निश्चिन्त होकर जायँ और समयकी प्रतीक्षा करें।' देवगण भगवान् विष्णुको स्मरण करते हुए वापस आ गये। इधर अदिति भी भगवान् विष्णुका ध्यान करती थीं। कुछ कालमें उसने गर्भमें भगवान्को धारण किया। नवें मासमें वामन भगवान् अदितिके गर्भसे प्रादुर्भूत हुए। उनके पैर छोटे, शरीर छोटा, सिर बड़ा और छोटे बच्चेके समान हाथ-पैर, उदर आदि थे। वामनरूपमें जब अदितिने पुत्रको देखा और जब वह कुछ कहनेको उद्यत हुई तो देवमायासे उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी।

हे नरोत्तम! भाद्रपद मासके श्रवण नक्षत्रसे युक्त एकादशी तिथिमें जब त्रिविक्रम वामन भगवान्का पृथ्वीपर अवतार हुआ तब पृथ्वी डगमगाने लगी। दैत्योंमें भय छा गया और देवगण प्रसन्न हो गये। महामुनि कश्यपने शिशुके जातकर्मादि संस्कार स्वयं ही किये। वामन भगवान् दण्ड, मेखला, यज्ञोपवीत, कमण्डलु तथा छत्र धारणकर राजा बलिके यज्ञस्थलमें गये। उन्होंने बलिसे कहा—'यज्ञपते! मुझे तीन पग भूमि प्रदान करो।' बलिने कहा—'मैंने दे दिया।' उसी समय भगवान् वामनने अपना शरीर बढ़ाना प्रारम्भ किया। भगवान्ने अपना शरीर इतना विशाल बना लिया कि एक पगसे सम्पूर्ण पृथ्वीलोकको नाप लिया तथा द्वितीय पगसे ब्रह्मलोक नाप लिया। तीसरा पग रखनेके लिये जब कोई स्थान न मिला तो देवगण, सिद्ध, ऋषि-मुनि इस कृत्यको देखकर साधु-साधु कहने लगे और भगवान्की स्तुति करने लगे। तदनन्तर सभी दैत्यगणोंको जीतकर उन्होंने दैत्यराज बलिसे कहा—'तुम अपने परिजनोंके साथ सुतललोकमें चले जाओ। मेरे द्वारा सुरक्षित रहकर तुम वहाँ अभीप्सित भोगोंका उपभोग करोगे। वर्तमानमें जो इन्द्र हैं, उनके बाद तुम इन्द्रत्वको प्राप्त करोगे।' बलि भगवान्को प्रणामकर प्रसन्न हो सुतललोकको चला गया। भगवान्ने देवताओंसे कहा— 'आपलोग अपने-अपने स्थानपर निश्चिन्त होकर रहें।' भगवान् भी संसारका कल्याण करके वहीं अन्तर्धान हो गये।

राजन्! ये सभी कर्म एकादशी तिथिको हुए थे। अतः यह तिथि देवताओंकी विजयतिथि मानी गयी है। यही एकादशी तिथि फाल्गुन मासमें पुष्य नक्षत्रसे युक्त होनेपर विजया तिथि कही गयी है। एकादशीके दिन उपवासकर रात्रिमें भगवान् वामनकी प्रतिमा बनाकर पूजा करनी चाहिये। प्रतिमाके समीप ही कुण्डिका, छत्र, चरणपादुका, यष्टि, यज्ञोपवीत, कमण्डलु तथा मृगचर्म आदि स्थापित करना चाहिये। अनन्तर विधिवत् उनकी पूजा करनी चाहिये। निम्न मन्त्रोंसे उन्हें नमस्कार करे और प्रार्थना करे—

अनेककर्मनिर्बन्धध्वंसिनं जलशायिनम्।
नतोऽस्मि मधुरावासं माधवं मधुसूदनम्॥

नमो वामनरूपाय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम।
नमस्ते मणिबन्धाय वासुदेव नमोऽस्तु ते॥
नमो नमस्ते गोविन्द वामनेश त्रिविक्रम॥
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वकामप्रदो भव॥

(उत्तरपर्व ७६। ४८—५१)

इसके अनन्तर भगवान्‌को शयन कराये। गीत-वाद्य, स्तुति आदिके द्वारा जागरण करे। प्रातःकाल उस प्रतिमाकी पूजाकर मन्त्रपूर्वक उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। इस व्रतके करनेसे व्रतीका एक मन्वन्तरपर्यन्त विष्णुलोकमें वास होता है, तदनन्तर वह इस लोकमें आकर चक्रवर्ती दानी राजा होता है। वह नीरोग, दीर्घायु एवं पुत्रवान् होता है। (अध्याय ७६)

सम्प्राप्ति-द्वादशी एवं गोविन्द-द्वादशीव्रत

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पौष मासके कृष्ण पक्षकी द्वादशीसे ज्येष्ठ मासकी द्वादशीतक प्रत्येक मासकी कृष्ण द्वादशीको षाण्मासिक सम्प्राप्ति-द्वादशीव्रत किया जाता है। प्रत्येक मासमें क्रमशः पुण्डरीकाक्ष, माधव, विश्वरूप, पुरुषोत्तम, अच्युत तथा जय—इन नामोंसे उपवासपूर्वक भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। पुनः आषाढ़ कृष्ण द्वादशीसे व्रत ग्रहणकर मार्गशीर्षतक व्रतका नियम लेना चाहिये। पूर्वविधानसे उपवासपूर्वक उन्हीं नामोंसे क्रमशः भगवान्‌का पूजन करना चाहिये। प्रतिमास ब्राह्मणको भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। तेल एवं क्षार पदार्थ नहीं ग्रहण करने चाहिये। इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतके करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्तमें वह भगवान्‌के अनुग्रहसे उनके लोकको प्राप्त कर लेता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! इसी प्रकार गोविन्द-द्वादशी नामका एक अन्य व्रत है, जिसके करनेसे सभी अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं। पौष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास कर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे कमलनयन भगवान् गोविन्दका पूजनकर अन्तर्मनमें भी इसी नामका उच्चारण करते रहना चाहिये। इस दिन पाखंडियोंसे बात नहीं करनी चाहिये। ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। व्रतीको गोमूत्र, गोमय, दधि अथवा गोदुग्धका प्राशन करना चाहिये। दूसरे दिन स्नानकर उसी विधिसे गोविन्दका पूजन कर ब्राह्मणको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करना चाहिये। इसके साथ ही इस दिन गौको तृप्तिपूर्वक भोजन कराना चाहिये। इसी प्रकार प्रतिमास व्रत करते हुए वर्ष समाप्त होनेपर भगवती लक्ष्मीके साथ सुवर्णकी भगवान् गोविन्दकी प्रतिमा बनवाकर पुष्प, धूप, दीप, माला, नैवेद्य आदिसे उनका पूजनकर सवत्सा गौसहित ब्राह्मणोंको देना चाहिये। प्रतिमास गौओंकी पूजा तथा उन्हें ग्रासादिसे तृप्त करना चाहिये। पारणाके दिन विशेषरूपसे उनकी सेवा-भक्ति करनी चाहिये। इस व्रतको करनेसे वही फल प्राप्त होता है जो सुवर्णशृङ्गी सौ गौओंके साथ एक उत्तम वृषका दान देनेसे होता है। इस व्रतको सम्यक्‌रूपसे करनेवाला सब सुख भोगकर अन्तमें गोलोकको प्राप्त होता है। (अध्याय ७७-७८)

अखण्ड-द्वादशी, मनोरथ-द्वादशी एवं तिल-द्वादशी-व्रतोंका विधान

राजा युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्ण! व्रतोपवास, दान, धर्म आदिमें जो कुछ वैकल्य अर्थात् किसी बातकी न्यूनता रह जाय तो क्या फल होता है? इसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! राज्य पाकर भी जो निर्धन, उत्तम रूप पाकर भी काने, अंधे, लँगड़े हो जाते हैं, वे सब धर्म-वैकल्यके प्रभावसे ही होते हैं। धर्म-वैकल्यसे ही स्त्री-पुरुषोंमें वियोग एवं दुर्भगत्व होता है, उत्तम कुलमें जन्म पाकर भी लोग दुःशील हो जाते हैं, धनाढ्य होकर भी धनका भोग तथा दान नहीं कर सकते तथा वस्त्र-आभूषणोंसे हीन रहते हैं। वे सुख प्राप्त नहीं कर पाते। अतः यज्ञमें, व्रतमें और भी अन्य धर्म-कृत्योंमें कभी कोई त्रुटि नहीं होने देनी चाहिये।

युधिष्ठिरने पुनः कहा—भगवन्! यदि कदाचित् उपवास आदिमें कोई त्रुटि हो ही जाय तो उसके निवारणार्थ क्या करना चाहिये?

श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अखण्ड द्वादशी-व्रत करनेसे सभी प्रकारकी धार्मिक त्रुटियाँ दूर हो जाती हैं। अब आप उसका भी विधान सुनें। मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी

द्वादशीको स्नानकर जनार्दन भगवान्‌का भक्तिपूर्वक पूजन कर उपवास रखना चाहिये और नारायणका सतत स्मरण करते रहना चाहिये। जितेन्द्रिय पुरुष पञ्चगव्यमिश्रित जलसे स्नान करके जौ और व्रीहि (धान)से भरा पात्र ब्राह्मणको दान करे और फिर भगवान्‌से यह प्रार्थना करे—

सप्तजन्मनि यत्किंचिन्मया खण्डव्रतं कृतम्।
भगवन् त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे॥
यथाखण्डं जगत् सर्वं त्वयैव पुरुषोत्तम।
तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्तु वै॥

(उत्तरपर्व ७९। १४-१५)

'भगवन्! मुझसे सात जन्मोंमें जो भी व्रत करनेमें न्यूनता हुई हो, वह सब आपके अनुग्रहसे परिपूर्ण हो जाय। पुरुषोत्तम! जिस प्रकार आपसे यह सारा जगत् परिपूर्ण है, उसी प्रकार मेरे खण्डित सभी व्रत पूर्ण हो जायँ।'

इस व्रतमें चार महीनेमें व्रतकी पारणा करनी चाहिये। चैत्रादि चार मासके अनन्तर दूसरी पारणा कर सत्तू-पात्र ब्राह्मणको देनेका विधान है। श्रावणादि चार मासके अनन्तर तीसरा पारण कर नारायणका पूजन करते हुए अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण, चाँदी, मृत्तिका अथवा पलाश-पत्रके पात्रमें घृत-दान करना चाहिये। संवत्सर पूर्ण होनेपर जितेन्द्रिय बारह ब्राह्मणोंको खीरका भोजन कराकर वस्त्राभूषण देकर त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगनी चाहिये। इसमें आचार्यका विधिपूर्वक पूजन करनेका भी विधान है। इस तरहसे जो अखण्ड-द्वादशीका व्रत करता है, उसके सात जन्मतक किये हुए व्रत सम्पूर्ण फलदायक हो जाते हैं। अतः स्त्री-पुरुषोंको व्रतोंका वैकल्य दूर करनेके लिये अवश्य ही इस व्रतको सम्पादित करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! स्त्री अथवा पुरुष दोनोंको फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपवास कर जगत्पति भगवान्‌का पूजन-भजन और उठते-बैठते नित्य हरिका स्मरण करते रहना चाहिये। द्वादशीके दिन प्रभातमें ही स्नान-पूजन तथा घृतसे हवनके बाद ब्राह्मणको दक्षिणा देनेका विधान है। तदनन्तर भगवान्‌से अपने अभीष्ट मनोरथोंकी संसिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। तत्पश्चात् हविष्य-भोजन ग्रहण करना चाहिये। इस व्रतमें फाल्गुनसे ज्येष्ठतक प्रथम चार महीनोंमें रक्तपुष्प, गुग्गुल-धूप और हविष्यान्न-नैवेद्यसे भगवान्‌की पूजा-अर्चनाके बाद गोशृङ्गक्षालित जल तथा हविष्यान्न ग्रहण करनेका विधान है। फिर आषाढ़से आश्विनतक चार महीनोंमें चमेलीके पुष्प, धूप और शाल्यन्न (साठी धान) आदिके नैवेद्योंद्वारा भगवान्‌की पूजा-स्तुति करनेके बाद कुशोदकका प्राशन तथा निवेदित नैवेद्य भक्षण करना चाहिये। कार्तिकसे माघ मासतक तीसरी पारणामें जपापुष्प (अड़हुल), उत्तम धूप और कसारके नैवेद्यसे नारायणके पूजनोपरान्त गोमूत्र-प्राशन तथा कसार-भक्षण करनेका विधान है। प्रतिमास ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। वर्षके अन्तमें एक कर्ष (माशा) सुवर्णकी भगवान् नारायणकी प्रतिमाका पूजन कर, दो वस्त्र और दक्षिणासहित ब्राह्मणको निवेदित करना चाहिये। इसीके साथ बारह ब्राह्मणोंको भी भोजन कराकर प्रत्येकको अन्न, जलका घट, छतरी, जूता, वस्त्र और दक्षिणा देनी चाहिये। इस द्वादशी-व्रतके करनेसे सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। इसीसे इसका नाम मनोरथ-द्वादशी है। इन्द्रको त्रैलोक्यका राज्य भी इसी व्रतके परिणाम-स्वरूप प्राप्त हुआ है। शुक्राचार्यने धन तथा महर्षि धौम्यने निर्विघ्न विद्या प्राप्त की है। अन्य श्रेष्ठ पुरुषोंने तथा स्त्रियोंने भी इस व्रतके प्रभावसे अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त किया है। जो कोई भी जिस-किसी अभिलाषासे इस व्रतको करता है, उसे वह अवश्य प्राप्त होती है। जो पुरुष भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन नहीं करते, गौ, ब्राह्मण आदिकी सेवा नहीं करते और मनोरथ-द्वादशीका व्रत नहीं रखते, वे किसी भी प्रकारसे अपना अभीष्ट-फल प्राप्त नहीं कर सकते।

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! थोड़ेसे परिश्रमसे अथवा स्वल्पदानसे सभी पाप कट जायँ ऐसा कोई उपाय आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! तिल-द्वादशी नामक एक व्रत है, जो परम पवित्र है और सभी पापोंका नाश करनेवाला है। माघ मासके कृष्ण पक्षकी द्वादशीको जब मूल अथवा पूर्वाषाढ़ नक्षत्र प्राप्त हो, तब उसके एक दिन पूर्व अर्थात् एकादशीको उपवास रखकर व्रत ग्रहण करना चाहिये। द्वादशीको भगवान् श्रीकृष्णका पूजन कर ब्राह्मणको कृष्ण तिलोंका दान करना चाहिये। व्रतीको भी स्नानकर काले तिलका ही भोजन करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षतक

प्रत्येक कृष्ण द्वादशीमें व्रतकर अन्तमें तिलोंसे पूर्ण कृष्णवर्णके कुम्भ, पकवान, छत्र, जूता, वस्त्र और दक्षिणा बारह ब्राह्मणोंको देना चाहिये। उन तिलोंके बोनेसे जितने तिल उत्पन्न होते हैं, उतने वर्षपर्यन्त इस व्रतको करनेवाला स्वर्गमें पूजित होता है और किसी जन्ममें अंध, बधिर, कुष्ठी आदि नहीं होता, सदा नीरोग रहता है। इस तिल-दानसे बड़े-बड़े पाप कट जाते हैं। इस व्रतमें न बहुत परिश्रम है और न ही बहुत अधिक व्यय। इसमें तिलोंसे ही स्नान, तिल-दान और तिल ही भोजन करनेपर अवश्य सद्गति मिलती है[१]।

(अध्याय ७९—८१)

सुकृत-द्वादशीके प्रसंगमें सीरभद्र वैश्यकी कथा

राजा युधिष्ठिरने पूछा— श्रीकृष्णचन्द्र! ऐसा कौन-सा कर्म है, जिसके करनेसे सभी कष्ट दूर हो जायँ तथा कोई संताप भी न हो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! आपने जो पूछा है, उस विषयमें एक आख्यानका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालमें विदिशा (भेलसा) नगरीमें सीरभद्र नामक एक वैश्य रहता था। वह पुत्र-पौत्र, कन्या, स्त्री आदिके भरण-पोषणमें ही लगा रहता था, फलस्वरूप स्वप्नमें भी उसे परलोककी चिन्ता नहीं होती थी। वह न्याय-अन्याय हर तरहसे धनका ही उपार्जन करता, कभी दान, हवन, देवपूजन आदि कर्मका नाम भी नहीं लेता था। नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका लोप उसने स्वयं कर लिया था। कुछ कालके अनन्तर वह वैश्य मृत्युको प्राप्त हुआ और विन्ध्यारण्यमें यातना-देहमें प्रेतरूपसे रहने लगा। एक दिन ग्रीष्म ऋतुमें विपीत नामके वेदवेत्ता ब्राह्मणने उस प्रेतको देखा कि वह सूर्य-किरणोंसे संतप्त नदीके बालूमें लोट रहा है, उसके सब अङ्गोंमें छाले पड़ गये हैं। प्याससे कण्ठ सूख रहा है और जिह्वा लटक गयी है। वह लम्बी-लम्बी साँस ले रहा है। उसकी यह दशा देखकर ब्राह्मणको बड़ी दया आयी और उसने उसका वृत्तान्त पूछा।

प्रेत कहने लगा—ब्रह्मन्! मैं पूर्व-जन्ममें परलोकके लिये किसी प्रकारके कर्म न करनेके कारण ही दग्ध हो रहा हूँ। मैं निरन्तर धन, घर, खेत, पुत्र, स्त्री आदिकी चिन्तामें ही आसक्त रहता था और मैंने अपने वास्तविक हितका चिन्तन कभी नहीं किया। इसीसे यह कष्ट भोग रहा हूँ। 'यह काम कर लिया और यह काम करना है'—इसी उधेड़बुनमें सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करनेका ही यह फल है। लोभवश मैं शीत-उष्ण सभी प्रकारके कष्टोंको झेल रहा हूँ। मैंने धर्मके लिये किंचित् भी कष्ट नहीं झेला, उससे अब पछताता हूँ। देवता, पितर, अतिथि आदिका मैंने कभी पूजन नहीं किया और यही कारण है कि अब मुझे अन्न-जलतक नहीं मिल रहा है। अन्यायके द्वारा एकत्र किये गये धनका उपभोग दूसरे लोग कर रहे होंगे, यह सोच-सोचकर मुझे चैन नहीं मिलता। मैंने कभी ब्राह्मणोंका पूजन नहीं किया और न ही कभी देवार्चन ही किया। फलस्वरूप मेरी ऐसी दशा हुई है। चूँकि मैंने पापोंका ही संचय किया, अतः मैं उसके फलको अकेले ही भोग रहा हूँ। मैं अपने किये दुष्कर्मोंका ही फल भोग रहा हूँ। अतः हे मुनीश्वर! यदि ऐसा कोई उपाय हो तो आप उसे बतायें, जिससे इस दुर्गतिसे मेरा उद्धार हो।

विपीतमुनि बोले—सीरभद्र! दस जन्म पहले तुमने भगवान् अच्युतकी आराधनाकी इच्छासे सुकृत-द्वादशीका उपवास किया था, उसके प्रभावसे इस पापके बहुत बड़े भागका क्षय हो गया है, अब तुम्हें अल्पकालमें ही उत्तम गति प्राप्त होगी। यह द्वादशी-व्रत पापोंका क्षय तथा पुण्यका संचार करनेवाला है, इसी कारण इसका नाम सुकृत-द्वादशी है। इस तरह सीरभद्रको आश्वस्त कर विपीतमुनि अपने आश्रमको चले गये और सीरभद्र भी द्वादशीव्रतके फलस्वरूप थोड़े कालके अनन्तर मोक्षको प्राप्त हो गया।

इतना कहकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—हे महाराज! यह उपवासका प्रभाव है कि इतना पाप थोड़े ही कालमें क्षय हुआ, इसलिये मनुष्यको पुण्यके लिये सदा यत्न करना चाहिये और अपने कल्याणके लिये उपवासादि करते रहना चाहिये।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्णचन्द्र! पापोंसे अति दारुण नरककी यातना भोगनी पड़ती है। ऐसा कौन-सा व्रत है, जिससे सब पाप नष्ट हो जायँ और मोक्ष प्राप्त हो।

* यह कथा ब्रह्मपुराणमें भी आयी है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपवास कर काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ आदिका त्यागकर संसारकी असारताकी भावना करता हुआ '**ॐ नमो नारायणाय**' इस अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये। और इसी भाँति द्वादशीको भी भगवान् मधुसूदनकी पूजा आदि करनी चाहिये। प्रथम चार (फाल्गुनसे ज्येष्ठ) मासके पारणमें चाँदी, ताँबे अथवा मृत्तिकाके पात्रोंमें यव भरकर ब्राह्मणोंको देना चाहिये। आषाढ़ादि द्वितीय पारणमें घृतपात्र देना चाहिये और कार्तिकादि चार मासमें तिलपात्र ब्राह्मणोंको अर्पण करना चाहिये। भगवान्‌की पूजाके अनन्तर उनके अनुग्रहकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। तदनन्तर भोजन करना चाहिये। वर्ष पूरा होनेपर सुवर्णकी विष्णु-प्रतिमा बनवाकर उसे पूजित कर वस्त्र, सुवर्ण, दक्षिणा-सहित सवत्साधेनु ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इस विधिसे जो पुरुष अथवा स्त्री इस सुकृतद्वादशीका व्रत करता है, वह कभी नरकको नहीं प्राप्त होता। नारायणके भक्तको कभी नरककी बाधा नहीं होती। विष्णुका नाम उच्चारण करते ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, फिर नरकके भयका तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसी प्रकार वासुदेव नारायणके नामोंका उच्चारण करनेवाला कभी भी यमका मुख नहीं देखता। अतः भगवान्‌के पवित्र नामोंका उच्चारण करना चाहिये। (अध्याय ८२)

धरणी-व्रत (अर्चावतार-व्रत)

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! वेदोंमें यह कहा गया है कि विधिपूर्वक यज्ञ करने, बड़े-बड़े दान देने और कठिन परिश्रम करनेसे परमेश्वरकी प्राप्ति होती है, किंतु कलियुगके प्राणी, जो न दान दे सकते हैं और न ही यज्ञ करनेमें समर्थ हैं, उनकी मुक्ति किस प्रकार हो सकती है, यदि कोई उपाय हो तो आप उसे बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! मैं आपको एक रहस्यपूर्ण बात बतलाता हूँ। प्रलयके समय जब धरणी (पृथ्वी) जलमें निमग्न होकर रसातल चली गयी, तब उस समय धरणीदेवीने अपने उद्धारके लिये व्रत किया था। व्रतके प्रभावसे प्रसन्न होकर भगवान् नारायणने वाराहरूप धारणकर उसे पुनः अपने स्थानपर लाकर स्थापित कर दिया। उस व्रतका विधान इस प्रकार है—

व्रतीको मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी दशमीको प्रातः-काल नित्य-स्नानादि क्रियाओंको सम्पन्न कर देवार्चन एवं हवनादि कर्म विधिपूर्वक करने चाहिये। उस दिन पवित्र, अत्यल्प हविष्यान्न-भोजन करना चाहिये। अनन्तर पुनः पाँच पग चलकर हाथ-पाँव धोकर पवित्र हो क्षीर-वृक्षके आठ अंगुलके दातूनसे दन्तधावन कर आचमन करना चाहिये। जलसे अङ्गोंका स्पर्शकर भगवान् जनार्दनका ध्यान करते हुए वह दिन व्यतीत करना चाहिये। एकादशीको निराहार रहकर भगवान्‌के नामोंका जप करना चाहिये। द्वादशीको प्रातः नदी आदिके पवित्र जलमें स्नान करना चाहिये। स्नानसे पूर्व नदी, तालाब अथवा शुद्ध एवं पवित्र स्थानकी मृत्तिका ग्रहण करनी चाहिये, मृत्तिका ग्रहण करते समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—

धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा।
तेन सत्येन मां पाहि पापान्मोचय सुव्रते॥

(उत्तरपर्व ८३। १७)

'देवि सुव्रते ! जिस शक्तिके द्वारा आप समस्त स्थावर-जंगमात्मक प्राणियोंका धारण-पोषण करती हैं, उसी शक्तिके द्वारा मुझे पापोंसे मुक्त कीजिये तथा सदा मेरा पालन कीजिये।'

पुनः उस मिट्टीको सूर्यको दिखाकर शरीरमें लगाकर स्नान करे। तदनन्तर आचमनकर देवमन्दिरमें जाकर भगवान् नारायणके अङ्गोंकी पूजा करे। नारायणके आगे चार जलपूर्ण घटोंमें चार समुद्रोंकी परिकल्पनाकर स्थापना करे। उन घटोंपर तिलपूर्ण पूर्णपात्र स्थापित करे। घटोंके मध्य एक पीठके ऊपर जलपात्रमें सुवर्ण, चाँदी अथवा काष्ठकी मत्स्यभगवान्‌की प्रतिमा बनाकर स्थापित करे। यथाविधि उपचारोंसे उनका पूजनकर प्रार्थना करे। रात्रिमें वहीं जागरण करे। प्रभातमें चारों घटोंको ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी तथा अथर्ववेदी चार ब्राह्मणोंको पूजाकर उन्हें निवेदित करे। जलपात्रमें स्थापित भगवान् मत्स्यकी प्रतिमा ब्राह्मण-दम्पतिको प्रदान करे।

ब्राह्मणोंको पायसान्नसे संतृप्त कर पश्चात् स्वयं भी भोजन करे। राजन्! इस विधिसे जो मार्गशीर्ष कृष्ण द्वादशीका व्रत करता है, उसे दीर्घ आयुकी प्राप्ति होती है। जन्मान्तरमें किये गये ब्रह्महत्या आदि महापातकोंसे उसकी मुक्ति हो जाती है। यदि निष्कामभावसे व्रत करता है तो उसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

इसी प्रकार स्नानादि कर पौष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास कर भगवान् जनार्दनकी कूर्मरूपमें पूजा करनी चाहिये। माघ मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास-पूर्वक भगवान् वराहकी प्रतिमाका पूजनकर ब्राह्मणको दान करना चाहिये। इसी प्रकार फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् नरसिंहकी प्रतिमाका, चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको भगवान् वामनकी प्रतिमाका, वैशाख शुक्ल द्वादशीको परशुरामजीकी प्रतिमाका, ज्येष्ठ मासकी शुक्ल द्वादशीको भगवान् राम-लक्ष्मणकी प्रतिमाका, आषाढ़ शुक्ल द्वादशीको भगवान् वासुदेव (कृष्ण) की प्रतिमाका, श्रावण मासकी शुक्ल द्वादशीको बुद्ध भगवान्‌की तथा भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् कल्किकी प्रतिमाका यथाविधि अङ्ग-पूजन आदि कर घटोंकी स्थापना करके पूजित प्रतिमा आदि ब्राह्मणोंको निवेदित कर देनी चाहिये।

इस प्रकार दस मासोंमें भगवान्‌के दशावतारोंका पूजनकर पूर्व-विधानसे आश्विन शुक्ल द्वादशीको उपवास-पूर्वक भगवान् पद्मनाभकी तथा कार्तिक द्वादशीको वासुदेवकी पूजा करनी चाहिये। अन्तमें प्रतिमा तथा घटोंको ब्राह्मणको निवेदित कर दे। उन्हें भोजन कराकर, दक्षिणा प्रदान करे तथा दीनों, अनाथोंको भी भोजन-वस्त्र आदिसे संतुष्ट करना चाहिये और फिर स्वयं भी भोजन करना चाहिये।

राजन्! इस प्रकार द्वादश मासोंमें जो इस व्रतको करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णु-सायुज्यको प्राप्त करता है। धरणीदेवीने इस व्रतको किया था। इसीलिये यह धरणी-व्रतके नामसे प्रसिद्ध हुआ। प्राचीन कालमें दक्षप्रजापतिने इस व्रतका अनुष्ठानकर प्रजाओंका अधिपतित्व प्राप्त किया था। राजा युवनाश्वने इस व्रतके अनुष्ठानसे मान्धाता नामक श्रेष्ठ पुत्रको प्राप्तकर अन्तमें शाश्वत ब्रह्मपद प्राप्त किया था। इसी प्रकार हैहयाधिपति कृतवीर्यने इस व्रतके प्रभावसे महान् पराक्रमी चक्रवर्ती राजा सहस्रार्जुनको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था। शकुन्तलाने भी इस व्रतके प्रभावसे राजर्षि दुष्यन्तको पति-रूपमें तथा श्रेष्ठ भरतको पुत्र-रूपमें प्राप्त किया था। इसी प्रकार अन्य कई श्रेष्ठ चक्रवर्ती राजाओं तथा श्रेष्ठ पुरुषोंने इस व्रतके प्रभावसे उत्तम फल प्राप्त किया था। जो भी इसे करता है, भगवान् नारायण उसका उद्धार कर देते हैं[१]। (अध्याय ८३)

विशोकद्वादशी-व्रत और गुडधेनु[२] आदि दस धेनुओंके दानकी विधि तथा उसकी महिमा

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! इस भूतलपर कौन ऐसा उपवास या व्रत है, जो मनुष्यके अभीष्ट वस्तुओंके वियोगसे उत्पन्न शोकसमूहसे उद्धार करनेमें समर्थ, धन-सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाला और संसार-भयका नाशक है।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! आपने जिस व्रतके विषयमें प्रश्न किया है, वह समस्त जगत्‌को प्रिय तथा इतना महत्त्वशाली है कि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। यद्यपि इन्द्र, असुर और मानव भी उसे नहीं जानते तथापि आप-जैसे भक्तिमान्‌के प्रति मैं अवश्य इसका वर्णन करूँगा। उस पुण्यप्रद व्रतका नाम विशोकद्वादशी-व्रत है। विद्वान् व्रतीको, आश्विन मासमें दशमी तिथिके दिन अल्प आहार करके नियमपूर्वक इस व्रतका आरम्भ करना चाहिये। पुनः एकादशीके दिन व्रती उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर दातून करे, फिर (स्नान आदिसे निवृत्त होकर) निराहार रहकर भगवान् केशव और लक्ष्मीकी विधिपूर्वक भलीभाँति पूजा करे और 'दूसरे दिन भोजन करूँगा'—ऐसा नियम लेकर रात्रिमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर सर्वौषधि और पञ्चगव्यमिले जलसे स्नान करे तथा श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण

१-वाराहपुराणके ३९वें अध्यायसे ५०वें तक ठीक इसी प्रकार इन द्वादश द्वादशी-व्रतोंकी कथा एवं व्रत-विधिका विस्तारसे वर्णन हुआ है।

२-यह विषय मत्स्यपुराण ८२, पद्मपु० १।२१, वराहपुराण १०२, कृत्यकल्पतरु ५, दानकाण्ड पृ० १४१ तथा दानमयूख, दानसागरादिमें विशेष शुद्धरूपसे उद्धृत है। तदनुसार इसे भी शुद्ध किया गया है।

करके भगवान् विष्णुकी कमल-पुष्पोंद्वारा पूजा करे। पूजन करनेके पश्चात् एक मण्डल बनाकर मिट्टीसे वेदीका निर्माण कराये। वह वेदी बीस अंगुल लम्बी-चौड़ी, चारों ओरसे चौकोर, उत्तरकी ओर ढालू, चिकनी और सुन्दर हो। तत्पश्चात् बुद्धिमान् व्रती सूपमें नदीकी बालुकासे लक्ष्मीकी मूर्ति अङ्कित करे और उस सूपको वेदीपर रखकर **'देव्यै नमः'**, **'शान्त्यै नमः'**, **'लक्ष्म्यै नमः'**, **'श्रियै नमः'**, **'पुष्ट्यै नमः'**, **'तुष्ट्यै नमः'**, **'वृष्ट्यै नमः'**, **'हृष्ट्यै नमः'** के उच्चारणपूर्वक लक्ष्मीकी अर्चना करे और यों प्रार्थना करे—'विशोका (लक्ष्मीदेवी) मेरे दुःखोंका नाश करें, विशोका मेरे लिये वरदायिनी हों, विशोका मुझे संतति दें और विशोका मुझे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करें[1]।' तदनन्तर श्वेत वस्त्रोंसे सूपको परिवेष्टित कर नाना प्रकारके फलों, वस्त्रों और स्वर्णमय कमलोंसे लक्ष्मीकी पूजा करे। चतुर व्रती सभी रात्रियोंमें कुशोदक-पान करे और सारी रात नृत्य-गीत आदिका आयोजन कराये। तीन पहर रात व्यतीत होनेपर व्रती मनुष्य स्वयं नींद त्यागकर जग जाय और अपनी शक्तिके अनुसार शय्यापर सोते हुए तीन या एक द्विज-दम्पतिके पास जाकर वस्त्र, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे **'जलशायिने नमोऽस्तु'** जलशायी भगवान्‌को नमस्कार है—यों कहकर उनकी पूजा करे। इस प्रकार रातमें गीत-वाद्य आदि कराकर जागरण करे तथा प्रातःकाल स्नान कर पुनः द्विज-दम्पतिका पूजन करे और कृपणता छोड़कर अपनी सामर्थ्यके अनुकूल उन्हें भोजन कराये। फिर स्वयं भोजन करके पुराणोंकी कथाएँ सुनते हुए वह दिन व्यतीत करे। प्रत्येक मासमें इसी विधिसे सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये।

इस प्रकार व्रतकी समाप्तिके अवसरपर गद्दा, चादर, तकिया आदि उपकरणोंसे युक्त एक सुन्दर शय्या गुड-धेनुके साथ दान करके इस प्रकार प्रार्थना करे—'देवेश ! जिस प्रकार लक्ष्मी आपका परित्याग करके अन्यत्र नहीं जातीं, उसी प्रकार सौन्दर्य, नीरोगता और निःशोकता सदा मुझे निरवच्छिन्नरूपसे प्राप्त हों—मेरा परित्याग न करें और भगवान् केशवके प्रति उत्तम भक्ति प्राप्त हो।' वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले व्रतीको समन्त्र गुड-धेनुसहित शय्या और लक्ष्मीसहित सूप-दान करना चाहिये। इस व्रतमें कमल, करवीर (कनेर), बाण (नीलकुसुम या अगस्त्य-वृक्षका पुष्प), ताजा (बिना कुम्हलाया हुआ) कुंकुम, केसर, सिंदुवार, मल्लिका, गन्धपाटला, कदम्ब, कुब्जक और जाती—ये पुष्प सदा प्रशस्त माने गये हैं।

युधिष्ठिरने पुनः पूछा—जगत्पते ! अब आप मुझे (विशोकद्वादशीके प्रसङ्गमें निर्दिष्ट) गुड-धेनुका विधान बतलाइये। साथ ही यह भी बतलानेकी कृपा कीजिये कि गुड-धेनुका रूप कैसा होता है और उसे किस मन्त्रका पाठ करके दान करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! इस लोकमें गुड-धेनुके विधानका जो रूप है और उसका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसे मैं बतला रहा हूँ। गुड-धेनुका दान समस्त पापोंका विनाशक है। गुड-धेनुका दान करनेके दिन गोबरसे भूमिको लीप-पोतकर सब ओरसे कुश बिछाकर उसपर चार हाथ लम्बा काला मृगचर्म स्थापित कर दे, जिसका अग्रभाग पूर्व दिशाकी ओर हो। तदनन्तर एक छोटे मृगचर्ममें बछड़ेकी कल्पना करके उसीके निकट रख दे। फिर उसमें पूर्वमुख और उत्तर पैरवाली सवत्सा गौकी कल्पना करे। चार भार[2] गुडसे बनी हुई गुड-धेनु सदा उत्तम मानी गयी है। उसका बछड़ा एक भार गुडका बनाना चाहिये। अपने गृहकी सम्पत्तिके अनुसार इस (गौ)का निर्माण कराना चाहिये। इस प्रकार गौ और बछड़ेकी कल्पना करके उन्हें श्वेत एवं महीन वस्त्रसे आच्छादित कर दे। फिर घीसे उनके मुखकी, सीपसे कानोंकी, गन्नेसे पैरोंकी, श्वेत मोतीसे नेत्रोंकी, श्वेत सूतसे नाड़ियोंकी, श्वेत कम्बलसे गल-कम्बलकी, लाल रंगके चिह्नसे पीठकी, श्वेत रंगके मृगपुच्छके बालोंसे रोएँकी, मूँगेसे दोनों भौंहोंकी, मक्खनसे दोनों स्तनोंकी, रेशमके धागेसे पूँछकी, काँसासे दोहनीकी, इन्द्रनीलमणिसे आँखोंकी तारिकाओंकी, सुवर्णसे सींगके आभूषणोंकी, चाँदीसे खुरोंकी और नाना प्रकारके फलोंसे नासापुटोंकी रचना कर धूप, दीप आदिद्वारा उनकी अर्चना करनेके पश्चात् यों प्रार्थना करे—

'जो समस्त प्राणियों तथा देवताओंमें निवास करनेवाली

१-विशोका दुःखनाशाय विशोका वरदास्तु मे। विशोका चास्तु संतत्यै विशोका सर्वसिद्धये॥ (उत्तरपर्व ८४। १६)

२-दो हजार पल अर्थात् तीन मनके वजनको 'भार' कहते हैं।

लक्ष्मी हैं, धेनुरूपसे वही देवी मेरे पापोंका विनाश करें। जो लक्ष्मी विष्णुके वक्षःस्थलपर विराजमान हैं, जो स्वाहारूपसे अग्निकी पत्नी हैं तथा जो चन्द्र, सूर्य और इन्द्रकी शक्तिरूपा हैं, वे ही धेनुरूपसे मेरे लिये सम्पत्तिदायिनी हों। जो ब्रह्माकी, कुबेरकी तथा लोकपालोंकी लक्ष्मी हैं, वे धेनुरूपसे मेरे लिये वरदायिनी हों। जो लक्ष्मी प्रधान पितरोंके लिये स्वधारूपा, यज्ञभोजी अग्नियोंके लिये स्वाहारूपा तथा समस्त पापोंको हरनेवाली धेनुरूपा हैं, वे मुझे ऐश्वर्य प्रदान करें।' इस प्रकार उस गुड-धेनुको आमन्त्रित कर उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे। यही विधान घृत-तिल आदि सम्पूर्ण धेनुओंके दानके लिये कहा गया है।

नरेश्वर! अब जो दस पापविनाशिनी गौएँ बतलायी गयी हैं, उनका नाम और स्वरूप बतला रहा हूँ। पहली गुड-धेनु, दूसरी घृत-धेनु, तीसरी तिल-धेनु, चौथी मधु-धेनु, पाँचवीं जल-धेनु, छठी क्षीर-धेनु, सातवीं शर्करा-धेनु, आठवीं दधि-धेनु, नवीं रस-धेनु और दसवीं स्वरूपतः प्रत्यक्ष धेनु है। सदा पर्व-पर्वपर अपनी श्रद्धाके अनुसार मन्त्रोच्चारणपूर्वक आवाहनसहित इन गौओंका दान करना चाहिये, क्योंकि ये सभी भोग और मोक्षरूप फलको प्रदान करनेवाली हैं। ये सभी सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाली, कल्याणकारिणी और पापहारिणी हैं। चूँकि इस लोकमें विशोकद्वादशी-व्रत सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ माना गया है, इसलिये उसका अङ्ग होनेके कारण गुड-धेनु भी प्रशस्त मानी गयी है। उत्तरायण और दक्षिणायनके दिन, पुण्यप्रद विषुवयोग, व्यतीपातयोग अथवा सूर्य-चन्द्रके ग्रहण आदि पर्वोंपर इन गुड-धेनु आदि गौओंका दान करना चाहिये। यह विशोकद्वादशी पुण्यदायिनी, पापहारिणी और मङ्गलकारिणी है। इसका व्रत करके मनुष्य विष्णुके परमपदको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें सौभाग्य, नीरोगता और दीर्घायु प्राप्तकर अन्तमें श्रीहरिका स्मरण करता हुआ विष्णुलोक प्राप्त करता है। (अध्याय ८४)

विभूतिद्वादशी[1]-व्रतमें राजा पुष्पवाहनकी कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! अब मैं भगवान् विष्णुके विभूतिद्वादशी नामक सर्वोत्तम व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो सम्पूर्ण देवगणोंद्वारा अभिवन्दित है। बुद्धिमान् मनुष्य कार्तिक, वैशाख, मार्गशीर्ष, फाल्गुन अथवा आषाढ़ मासमें शुक्ल पक्षकी दशमी तिथिको स्वल्पाहार कर सायंकालिक संध्योपासनासे निवृत्त हो इस प्रकारका नियम ग्रहण करे—'प्रभो! मैं एकादशीको निराहार रहकर भगवान् जनार्दनकी भलीभाँति अर्चना करूँगा और द्वादशीके दिन ब्राह्मणके साथ बैठकर भोजन करूँगा। केशव! मेरा यह नियम निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण हो जाय और फलदायक हो।' फिर रातमें '**ॐ नमो नारायणाय**' मन्त्रका जप करते हुए सो जाय। प्रातःकाल उठकर स्नान-जप आदि करके पवित्र हो श्वेत पुष्पोंकी माला एवं चन्दन आदिसे भगवान् पुण्डरीकाक्षका पूजन करे।

एक वर्षतक प्रतिमास क्रमशः भगवान्‌के दस अवतारों तथा दत्तात्रेय और व्यासकी स्वर्णमयी प्रतिमाका स्वर्णनिर्मित कमलके साथ दान करना चाहिये। उस समय छल, कपट, पाखण्ड आदिसे दूर रहना चाहिये। राजन्! इस प्रकार यथाशक्ति बारहों द्वादशी-व्रतोंको समाप्त कर वर्षके अन्तमें गुरुको लवणपर्वतके साथ-साथ गौसहित शय्या-दान करना चाहिये। व्रती यदि सम्पत्तिशाली हो तो उसे वस्त्र, शृङ्गार-सामग्री और आभूषण आदिसे गुरुकी विधिपूर्वक पूजा कर ग्राम अथवा गृहके साथ-साथ भूमिका दान करना चाहिये। साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार अन्यान्य ब्राह्मणोंको भी भोजन कराकर उन्हें वस्त्र, गोदान, रत्नसमूह और धनराशियों-द्वारा संतुष्ट करना चाहिये। स्वल्प धनवाला व्रती अपनी सामर्थ्यके अनुसार दान करे तथा जो व्रती परम निर्धन हो, किंतु भगवान् माधवके प्रति उसकी प्रगाढ़ निष्ठा हो तो उसे तीन वर्षतक पुष्पार्चनकी विधिसे इस व्रतका पालन करना चाहिये। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह स्वयं पापसे मुक्त होकर अपने सौ पीढ़ियोंतकके पितरोंको तार देता है। उसे एक लाख जन्मोंतक

१-इस व्रतका वर्णन मत्स्यपु० ९९-१००, पद्मपु० सृष्टिखं० २०। १—४२, विष्णुधर्मो०, व्रतरत्न, व्रतराज, व्रतकल्पद्रुम आदिमें भी यों ही प्राप्त होता है। पाद्मीय कथामें तीर्थगुरु पुष्करक्षेत्रका भी सम्बन्ध प्रदृष्ट है।

न तो शोकरूप फलका भागी होना पड़ता है, न व्याधि और दरिद्रता ही घेरती है तथा न बन्धनमें ही पड़ना पड़ता है। वह प्रत्येक जन्ममें विष्णु अथवा शिवका भक्त होता है। राजन्! जबतक एक सौ आठ सहस्र युग नहीं बीत जाते, तबतक वह स्वर्गलोकमें निवास करता है और पुण्य-क्षीण होनेपर पुनः भूतलपर राजा होता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! बहुत पहले रथन्तरकल्पमें पुष्पवाहन नामका एक राजा हुआ था, जो सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात तथा तेजमें सूर्यके समान था। उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर ब्रह्माने उसे एक सोनेका कमल (रूप विमान) प्रदान किया था, जिससे वह इच्छानुसार जहाँ-कहीं भी आ-जा सकता था। उसे पाकर उस समय राजा पुष्पवाहन अपने नगर एवं जनपदवासियोंके साथ उसपर आरूढ़ होकर स्वेच्छानुसार देवलोकमें तथा सातों द्वीपोंमें विचरण किया करता था। कल्पके आदिमें पुष्करनिवासी उस पुष्पवाहनका सातवें द्वीपपर अधिकार था, इसीलिये लोकमें उसकी प्रतिष्ठा थी और आगे चलकर वह द्वीप पुष्करद्वीपके नामसे कहा जाने लगा। चूँकि देवेश्वर ब्रह्माने इसे कमलरूप विमान प्रदान किया था, इसलिये देवता एवं दानव उसे पुष्पवाहन कहा करते थे। तपस्याके प्रभावसे ब्रह्माद्वारा प्रदत्त कमलरूप विमानपर आरूढ़ होनेपर उसके लिये त्रिलोकीमें कोई भी स्थान अगम्य न था। नरेन्द्र! उसकी पत्नीका नाम लावण्यवती था। वह अनुपम सुन्दरी थी तथा हजारों नारियोंद्वारा चारों ओरसे समादृत होती रहती थी। वह राजाको उसी प्रकार अत्यन्त प्यारी थी, जैसे शंकरजीको पार्वतीजी परम प्रिय हैं। उसके दस हजार पुत्र थे, जो परम धार्मिक और धनुर्धारियोंमें अग्रगण्य थे। अपनी इन सारी विभूतियोंपर बारंबार विचारकर राजा पुष्पवाहन विस्मय-विमुग्ध हो जाता था। एक बार (प्रचेताके पुत्र) मुनिवर वाल्मीकि[1] राजाके यहाँ पधारे। उन्हें आया देखकर राजाने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया—

राजा पुष्पवाहनने पूछा—मुनीन्द्र! किस कारणसे मुझे यह देवों तथा मानवोंद्वारा पूजनीय निर्मल विभूति तथा अपने सौन्दर्यसे समस्त देवाङ्गनाओंको पराजित कर देनेवाली सुन्दरी भार्या प्राप्त हुई है? मेरे थोड़े-से तपसे संतुष्ट होकर ब्रह्माने मुझे ऐसा कमल-गृह क्यों प्रदान किया, जिसमें अमात्य, हाथी, रथसमूह और जनपदवासियोंसहित यदि सौ करोड़ राजा बैठ जायँ तो भी वे जान नहीं पड़ते कि कहाँ चले गये। वह विमान तारागणों, लोकपालों तथा देवताओंके लिये भी अलक्षित-सा रहता है। प्रचेतः! मैंने, मेरी पुत्रीने अथवा मेरी भार्याने पूर्वजन्मोंमें कौन-सा ऐसा कर्म किया है, जिसका प्रभाव आज दिखलायी पड़ रहा है, इसे आप बतलायें।

तदनन्तर महर्षि वाल्मीकि राजाके इस आकस्मिक एवं अद्भुत प्रभावपूर्ण वृत्तान्तको जन्मान्तरसे सम्बन्धित जानकर इस प्रकार कहने लगे—'राजन्! तुम्हारा पूर्वजन्म अत्यन्त भीषण व्याधके कुलमें हुआ था। एक तो तुम उस कुलमें पैदा हुए, फिर दिन-रात पापकर्ममें भी निरत रहते थे। तुम्हारा शरीर भी कठोर अङ्ग संधियुक्त तथा बेडौल था। तुम्हारी त्वचा दुर्गन्धयुक्त थी और नख बहुत बढ़े हुए थे। उससे दुर्गन्ध निकलती थी और तुम बड़े कुरूप थे। उस जन्ममें न तो तुम्हारा कोई हितैषी मित्र था, न पुत्र और न भाई-बन्धु ही थे, न पिता-माता और बहिन ही थी। भूपाल! केवल तुम्हारी यह परम प्रियतमा पत्नी ही तुम्हारी अभीष्ट परमानुकूल संगिनी थी। एक बार कभी भयंकर अनावृष्टि हुई, जिसके कारण अकाल पड़ गया। उस समय भूखसे पीड़ित होकर तुम आहारकी खोजमें निकले, परंतु तुम्हें कुछ भी जंगली (कन्द-मूल) फल आदि कोई खाद्य वस्तु प्राप्त न हुई। इतनेमें ही तुम्हारी दृष्टि एक सरोवरपर पड़ी, जो कमलसमूहसे मण्डित था। उसमें बड़े-बड़े कमल खिले हुए थे। तब तुम उसमें प्रविष्ट होकर बहुसंख्यक कमल-पुष्पोंको लेकर वैदिश[2] नामक नगर-(विदिशा नगरी-) में चले गये। वहाँ तुमने उन कमल-पुष्पोंको बेचकर मूल्य-प्राप्तिके हेतु पूरे नगरमें चक्कर लगाया। सारा दिन बीत गया, पर उन कमल-पुष्पोंका कोई खरीददार न मिला। उस समय

१-वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड ९३। १७, ९६। १०, १११। ११ तथा अध्यात्मरामायण ७। ७। ३१, बालरामायण, उत्तररामचरित आदिके अनुसार 'प्राचेतस' शब्द महर्षि वाल्मीकिका ही वाचक है।

२-यह इतिहास-पुराणादिमें अति प्रसिद्ध विदिशा नामकी नदीके तटपर बसा मध्यप्रदेशके मध्यकालीन इतिहासका बेसनगर, आजकलका भेलसा नगर है। इसपर कनिंघमका 'भेलसा टोप्स' ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

तुम भूखसे अत्यन्त व्याकुल और थकावटसे अतिशय क्लान्त होकर पत्नीसहित एक महलके प्राङ्गणमें बैठ गये। वहाँ रात्रिमें तुम्हें महान् मङ्गल शब्द सुनायी पड़ा। उसे सुनकर तुम पत्नीसहित उस स्थानपर गये, जहाँ वह मङ्गलशब्द हो रहा था। वहाँ मण्डपके मध्यभागमें भगवान् विष्णुकी पूजा हो रही थी। तुमने उसका अवलोकन किया। वहाँ अनङ्गवती नामकी वेश्या माघ मासकी विभूतिद्वादशी-व्रतकी समाप्ति कर अपने गुरुको भगवान् हृषीकेशका विधिवत् शृङ्गार कर स्वर्णमय कल्पवृक्ष, श्रेष्ठ लवणाचल और समस्त उपकरणोंसहित शय्याका दान कर रही थी। इस प्रकार पूजा करती हुई अनङ्गवतीको देखकर तुम दोनोंके मनमें यह विचार जाग्रत् हुआ कि इन कमलपुष्पोंसे क्या लेना है। अच्छा तो यह होता कि इनसे भगवान् विष्णुका शृङ्गार किया जाता। नरेश्वर! उस समय तुम दोनों पति-पत्नीके मनमें ऐसी भक्ति उत्पन्न हुई और इसी अर्चाके प्रसङ्गमें तुम्हारे उन पुष्पोंसे भगवान् केशव और लवणाचलकी अर्चना सम्पन्न हुई तथा शेष पुष्प-समूहोंसे तुम दोनोंने शय्याको भी सब ओरसे सुसज्जित किया।

तुम्हारी इस क्रियासे अनङ्गवती बहुत प्रसन्न हुई। उस समय उसने तुम दोनोंको इसके बदले तीन सौ अशर्फियाँ देनेका आदेश दिया, पर तुम दोनोंने बड़ी दृढ़तासे उस धन-राशिको अस्वीकार कर दिया। भूपते! तब अनङ्गवतीने तुम्हें (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) चार प्रकारका अन्न लाकर दिया और कहा—'भोजन कीजिये', किंतु तुम दोनोंने उसका भी परित्याग कर दिया और कहा—'वरानने! हमलोग कल भोजन कर लेंगे। दृढ़व्रते! हम दोनों जन्मसे ही पापपरायण और कुकर्म करनेवाले हैं, पर इस समय तुम्हारे उपवासके प्रसङ्गसे हमें विशेष आनन्द प्राप्त हो रहा है।' उसी प्रसङ्गमें तुम दोनोंको धर्मका लेशांश प्राप्त हुआ और तुम दोनोंने रातभर जागरण भी किया था। (दूसरे दिन) प्रातःकाल अनङ्गवतीने भक्तिपूर्वक अपने गुरुको लवणाचलसहित शय्या और अनेकों गाँव प्रदान किये। उसी प्रकार उसने अन्य बारह ब्राह्मणोंको भी सुवर्ण, वस्त्र, अलंकारादिसहित बारह गौएँ प्रदान कीं। तदनन्तर सुहृद्, मित्र, दीन, अंधे और दरिद्रोंके साथ तुम लुब्धक-दम्पतिको भोजन कराया और विशेष आदर-सत्कारके साथ तुम्हें बिदा किया।

राजेन्द्र! वह सपत्नीक लुब्धक तुम्हीं थे, जो इस समय राजराजेश्वरके रूपमें उत्पन्न हुए हो। उस कमल-समूहसे भगवान् केशवका पूजन होनेके कारण तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो गये तथा दृढ़ त्याग, तप एवं निर्लोभिताके कारण तुम्हें इस कमलमन्दिरकी भी प्राप्ति हुई है। राजन्! तुम्हारी उसी सात्त्विक भावनाके माहात्म्यसे, तुम्हारे थोड़े-से ही तपसे ब्रह्मरूपी भगवान् जनार्दन तथा लोकेश्वर ब्रह्मा भी संतुष्ट हुए हैं। इसीसे तुम्हारा पुष्कर-मन्दिर स्वेच्छानुसार जहाँ-कहीं भी जानेकी शक्तिसे युक्त है। वह अनङ्गवती वेश्या भी इस समय कामदेवकी पत्नी रतिके[1] सौतरूपमें उत्पन्न हुई है। यह इस समय प्रीति नामसे विख्यात है और समस्त लोकोंमें सबको आनन्द प्रदान करती तथा सम्पूर्ण देवताओंद्वारा सत्कृत है। इसलिये राजराजेश्वर! तुम उस पुष्कर-गृहको भूतलपर छोड़ दो और गङ्गातटका आश्रय लेकर विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करो। उससे तुम्हें निश्चय ही मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी।

श्रीकृष्णने कहा—महाराज! ऐसा कहकर प्रचेतामुनि वहीं अन्तर्हित हो गये। तब राजा पुष्पवाहनने मुनिके कथनानुसार सारा कार्य सम्पन्न किया। राजन्! इस विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करते समय अखण्ड-व्रतका पालन करना आवश्यक है। जिस किसी भी प्रकारसे हो सके, बारहों द्वादशियोंका व्रत कमल-पुष्पोंद्वारा सम्पन्न करना चाहिये। अनघ! अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देनेका विधान है। इसमें कृपणता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि भक्तिसे ही भगवान् केशव प्रसन्न होते हैं। जो मनुष्य पापोंको विदीर्ण करनेवाले इस व्रतको पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेके लिये सम्मति प्रदान करता है, वह भी सौ करोड़ वर्षोंतक देवलोकमें निवास करता है।

(अध्याय ८५)

१-हरिवंश एवं अन्य पुराणों तथा कथासरित्सागरादिमें भी रति और प्रीति—ये दो कामदेवकी पत्नियाँ कही गयी हैं। किंतु उसकी दूसरी पत्नी प्रीतिकी उत्पत्तिकी पूरी कथा यहीं है।

मदनद्वादशी-व्रतमें मरुद्गणोंका आख्यान

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! दिति (दैत्योंकी जननी) ने जिस व्रतके करनेसे उनचास मरुद्गणोंको पुत्र-रूपमें प्राप्त किया था, अब मैं आपसे उस मदनद्वादशी-व्रतके विषयमें सुनना चाहता हूँ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! पूर्वकालमें वसिष्ठ आदि महर्षियोंने दितिसे जिस उत्तम मदनद्वादशी-व्रतका वर्णन किया था, उसीको आप मुझसे विस्तारपूर्वक सुनिये। व्रतधारीको चाहिये कि वह चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको श्वेत चावलोंसे परिपूर्ण एवं छिद्ररहित एक घट स्थापित करे। उसपर श्वेत चन्दनका अनुलेप लगा हो तथा वह श्वेत वस्त्रके दो टुकड़ोंसे आच्छादित हो। उसके निकट विभिन्न प्रकारके ऋतुफल और गन्नेके टुकड़े रखे जायँ। वह विविध प्रकारकी खाद्य-सामग्रीसे युक्त हो तथा उसमें यथाशक्ति सुवर्ण-खण्ड भी डाला जाय। तत्पश्चात् उसके ऊपर गुड़से भरा हुआ ताँबेका पात्र स्थापित करे। उसके ऊपर केलेके पत्तेपर काम तथा उसके वाम-भागमें शक्करसमन्वित रतिकी स्थापना करे। फिर गन्ध, धूप आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे और गीत, वाद्य तथा भगवान् विष्णुकी कथाका आयोजन करे। प्रातःकाल वह घट ब्राह्मणको दान कर दे। पुनः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी नमकरहित भोजन करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर इस प्रकार उच्चारण करे—'जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित रहकर आनन्द नामसे कहे जाते हैं, वे कामरूपी भगवान् जनार्दन मेरे इस अनुष्ठानसे प्रसन्न हों।'

इसी विधिसे प्रत्येक मासमें मदनद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि वह द्वादशीके दिन आमलक-फल खाकर भूतलपर शयन करे और त्रयोदशीके दिन अविनाशी भगवान् विष्णुका पूजन करे। तेरहवाँ महीना आनेपर घृतधेनु-सहित एवं समस्त सामग्रियोंसे सम्पन्न शय्या, कामदेवकी स्वर्णनिर्मित प्रतिमा और श्वेत रंगकी दुधारू गौ ब्राह्मणको समर्पित करे। उस समय शक्तिके अनुसार वस्त्र एवं आभूषण आदिद्वारा सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करके उन्हें शय्या और सुगन्ध आदि प्रदान करते हुए ऐसा कहना चाहिये—'आप प्रसन्न हों।' तत्पश्चात् उस धर्मज्ञ व्रतीको कामदेवके नामोंका कीर्तन करते हुए गोदुग्धसे बनी हुई हवि और श्वेत तिलोंसे हवन करना चाहिये। पुनः कृपणता छोड़कर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये और उन्हें यथाशक्ति गन्ना और पुष्पमाला प्रदानकर संतुष्ट करना चाहिये। जो इस विधिके अनुसार इस मदनद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुकी समताको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें श्रेष्ठ पुत्रोंको प्राप्तकर सौभाग्य-फलका उपभोग करता है।

दितिके इस व्रतानुष्ठानके प्रभावसे प्रभावित होकर महर्षि कश्यप उसके निकट पधारे और परम प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने उसे पुनः रूप-यौवनसे सम्पन्न तरुण बना दिया तथा वर माँगनेके लिये कहा। दितिने कहा—'पतिदेव! मैं आपसे एक ऐसे पुत्रका वरदान चाहती हूँ, जो इन्द्रका वध करनेमें समर्थ, अमित पराक्रमी और महान् आत्मबलसे सम्पन्न हो।' यह सुनकर महर्षि कश्यपने उससे कहा 'ऐसा ही होगा।'

कश्यपने पुनः उससे कहा—'वरानने! एक सौ वर्षोंतक तुम्हें इसी तपोवनमें रहना है और अपने गर्भकी रक्षाके लिये प्रयत्न करना है। वरवर्णिनि! गर्भिणी स्त्रीको संध्या-कालमें भोजन नहीं करना चाहिये। उसे न तो कभी वृक्षके मूलपर बैठना चाहिये, न उसके निकट ही जाना चाहिये। वह घरकी सामग्री—मूसल, ओखली आदिपर न बैठे, जलमें घुसकर स्नान न करे, सुनसान घरमें न जाय, लोगोंके साथ वाद-विवाद न करे और शरीरको तोड़े-मरोड़े नहीं। वह बाल खोलकर न बैठे, कभी अपवित्र न रहे, उत्तर दिशामें सिरहाना करके एवं कहीं भी नीचे सिर करके न सोये, न नंगी होकर रहे न उद्विग्नचित्त रहे, न कभी भीगे चरणोंसे शयन करे, अमङ्गलसूचक वाणी न बोले, अधिक जोरसे हँसे नहीं, नित्य माङ्गलिक कार्योंमें तत्पर रहकर गुरुजनोंकी सेवा करे और (आयुर्वेदद्वारा गर्भिणीके स्वास्थ्यके लिये उपयुक्त बतलायी गयी) सम्पूर्ण ओषधियोंसे युक्त गुनगुने गरम जलसे स्नान करे। बुरी स्त्रियोंसे बातचीत न करे, कपड़ेसे हवा न ले। मृतवत्सा स्त्रीके साथ न बैठे, दूसरेके घरमें न जाय, जल्दी-जल्दी न चले, महानदियोंको पार न करे। भयंकर और बीभत्स दृश्य न देखे। अजीर्ण भोजन न करे। कठिन

व्यायामादि न करे। ओषधियोंद्वारा गर्भकी रक्षा करती रहे, हृदयमें मात्सर्य-भाव न रखे। जो गर्भिणी स्त्री विशेषरूपसे इन नियमोंका पालन करती है, उसका उस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह शीलवान् एवं दीर्घायु होता है। इन नियमोंका पालन न करनेपर निस्संदेह गर्भपातकी आशङ्का बनी रहती है। प्रिये! इसलिये तुम इन नियमोंका पालन करके अपने गर्भकी रक्षाका प्रयत्न करो। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जा रहा हूँ।'

दितिके द्वारा पतिकी आज्ञा स्वीकार कर लेनेपर महर्षि कश्यप वहीं अन्तर्धान हो गये। तब दिति नियमोंका पालन करती हुई समय व्यतीत करने लगी। कालान्तरमें दितिको उनचास पुत्र (मरुद्गण) प्राप्त हुए।

राजन्! इस प्रकारसे जो भी नारी इस मदनद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करेगी, वह पुत्र प्राप्त कर पतिके सुखको प्राप्त करेगी। (अध्याय ८६)

अबाधक-व्रत एवं दौर्भाग्य-दौर्गन्ध्यनाशक व्रतका माहात्म्य

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! जनशून्य घोर वनमें, समुद्रतरणमें, संग्राममें, चोर आदिके भयमें व्याकुल मनुष्य किस देवताका स्मरण करे, जिससे उस संकटके समय उसकी रक्षा हो सके, यह आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! सर्वमङ्गला भगवती श्रीदुर्गादेवीका स्मरण करनेपर पुरुष कभी भी दुःख और भयको प्राप्त नहीं होता। भारत! जब मैं और बलदेवजी अपने गुरु संदीपनि मुनिके यहाँ सब विद्या पढ़ चुके तो उस समय हमने गुरुदक्षिणाके लिये गुरुजीसे प्रार्थना की। तब गुरुजीने हमारा दिव्य प्रभाव जानकर यही कहा—'प्रभो! मेरा पुत्र प्रभासक्षेत्रमें गया था, वहाँ उसे समुद्रमें किसी प्राणीने मार दिया, उसी पुत्रको गुरुदक्षिणाके रूपमें मुझे प्राप्त कराओ।' तब हम यमलोकमें गये और वहाँसे गुरुपुत्रको लेकर गुरुजीके समीप आये और गुरुदक्षिणाके रूपमें उनका पुत्र उन्हें समर्पित कर दिया। तदनन्तर गुरुको प्रणामकर जब हम चलने लगे, तब गुरुजीने कहा—'पुत्रो! इस स्थानमें तुम अपने चरणोंका चिह्न बना दो', हमने भी गुरुकी आज्ञाके अनुसार वैसा ही किया, फिर हम वापस घर आ गये। उसी दिनसे बलरामजीके दक्षिण पादका, मध्यमें सर्वमङ्गलाका और मेरे वाम चरण-चिह्नका पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे अथवा अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिये सभी वहाँ पूजन करते हैं। प्रत्येक मासको शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको एकभुक्त, नक्तव्रत अथवा उपवास रहकर मृत्तिका अथवा सुवर्णकी इनकी प्रतिमा बना करके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, मधु आदिसे जो स्त्री अथवा पुरुष पूजन करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो स्वर्गमें निवास करता है।

राजा युधिष्ठिरने पुनः पूछा—यदुशार्दूल! ऐसा कौन व्रत है, जिसके आचरणसे शरीरका दुर्गन्ध नष्ट हो जाय और दौर्भाग्य भी दूर हो जाय।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! इसी प्रश्नको रानी विष्णुभक्तिने जातूकर्ण्यमुनिसे पूछा था, तब उन्होंने उनसे कहा—'देवि! ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीमें पवित्र जलाशयमें स्नान करे और शुद्ध स्थानमें उत्पन्न श्वेत आक, रक्त करवीर तथा निम्ब वृक्षकी पूजा करे। ये तीनों वृक्ष भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय हैं। प्रातःकाल सूर्योदय हो जानेपर भगवान् सूर्यका दर्शनकर उनका अपने हृदयमें ध्यान करे। अनन्तर पुष्प, नैवेद्य, धूप आदि उपचारोंसे उन वृक्षोंकी पूजा करे और पूजनके अनन्तर उन्हें नमस्कार करे।

राजन्! इस विधिसे जो स्त्री-पुरुष इस व्रतको करते हैं, उनके शरीरकी दुर्गन्धि तथा उनका दौर्भाग्य दोनों दूर हो जाते हैं और वे सौभाग्यशाली हो जाते हैं। (अध्याय ८७-८८)

धर्मराजका समाराधन-व्रत*

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! ऐसा कौन-सा व्रत है जिसके करनेसे यमराज प्रसन्न हो जायँ और नरकका दर्शन न हो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! एक बार जब मैं द्वारका-स्थित समुद्रमें स्नान करके बाहर निकला, तब देखा कि मुद्गलमुनि चले आ रहे हैं। उनका तेज सूर्यके समान था

* यह कथा स्कन्दपुराणके नामसे अनेक व्रत-निबन्धोंमें संगृहीत है।

और उनके मुखके तपस्तेजसे दिशाएँ उद्भासित हो रही थीं। तब मैंने उनका अर्घ्य, पाद्य आदिसे सत्कार कर आदरपूर्वक उनसे पूछा—'महाराज ! प्राणियोंके लिये अत्यन्त भयदायक नरक तथा यमदूतों आदिका जिससे दर्शन न हो ऐसा कोई व्रत आप मुझसे बतलायें।' यह सुनकर मुद्गलमुनि भी कुछ विस्मित-से हुए। किंतु बादमें शान्त-मन होकर वे बोले—'प्रभो ! एक बार ऐसा हुआ कि मुझे अकस्मात् मूर्च्छा आ गयी और मैं पृथ्वीपर गिर पड़ा, उस स्थितिमें मैंने देखा कि हाथमें लाठी लिये कुछ लोग आगसे जलते हुए-से मेरे शरीरसे निकलकर बाहर खड़े हुए थे और मेरे हृदयसे एक अँगूठेके बराबर व्यक्तिको बलपूर्वक खींचकर तथा रस्सियोंसे बाँधकर यमपुरीकी ओर ले जा रहे हैं। फिर मैं तत्काल क्या देखता हूँ कि यमराजकी सभा लगी है और लाल-पीले नेत्रोंवाले यमराज सभामें विराजमान हैं तथा कफ, वात, पित्त, ज्वर, मांस, शोथ, फोड़े, फुंसी, भगंदर, अक्षिरोग, विषूचिका, गलग्रह आदि अनेकों प्रकारके रोग और मृत्यु उन्हें घेरे हुए हैं और वे सभी मूर्तिमान् होकर यमदेवकी उपासना कर रहे हैं। यमदूत भयंकर शस्त्र धारण किये हैं। कुछ राक्षस, दानव आदि भी वहाँ बैठे हैं। सिंह, व्याघ्र, बिच्छू, दंश, सियार, साँप, उल्लू, कीड़े-मकोड़े आदि भयंकर जीव-जन्तु वहाँ उपस्थित हैं।' यमराजने अपने किंकरोंसे पूछा—'दूतो ! तुमलोग यहाँ इन मुद्गलमुनिको क्यों ले आये ? मैंने तो मुद्गल क्षत्रियको लानेके लिये कहा था, वह कौंडिन्यनगरका निवासी भीष्मकका पुत्र है, उसकी आयु समाप्त हो चुकी है, इन मुनिको तत्काल छोड़ दो और उसे ही ले आओ।' यह सुनकर वे दूत कौंडिन्यनगर गये, किंतु वहाँ राजा मुद्गलमें मृत्युके कोई लक्षण न देखकर भ्रान्त होकर पुनः यमलोकमें वापस आये और उन्होंने सारा वृत्तान्त यमराजको बता दिया। इसपर यमराजने उनसे कहा—'दूतो ! जिन पुरुषोंने नरकार्ति-विनाशिनी त्रयोदशीका व्रत किया है, उन्हें यमकिंकर नहीं देख पाते, इसीलिये तुमलोगोंने राजा मुद्गलको पहचाना नहीं।' पुनः यमदूतोंद्वारा व्रतके विधानको पूछे जानेपर यमराजने उनसे कहा—'मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको जब रविवार एवं मंगलवार न हो तब उस दिन तेरह विद्वान् और पवित्र ब्राह्मणों तथा एक पुराणवाचकका वरण करके पूर्वाह्णकालमें इन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख पवित्र आसनपर बैठाये। तिल-तैलसे उनका अभ्यंग करके गन्धकाषाय तथा हलके गरम जलसे उन्हें पृथक्-पृथक् स्नान कराये और उनकी सेवा-शुश्रूषा करे। अनन्तर पूर्वाभिमुख बैठाकर उन्हें शाल्यन्न, मुद्गान्न, गुड़के अपूप तथा सुपक्व व्यञ्जन आदरपूर्वक खिलाये।

पुनः व्रती पवित्र होकर आचमन करे और उन ब्राह्मणोंकी अर्चना करे। ताम्रपात्रमें प्रस्थमात्र (एक पसर या एक सेर) तिल-तण्डुल, दक्षिणा, छत्र, जलपूर्ण कलश आदि उन्हें अलग-अलग प्रदान कर विसर्जित करे।

इसी प्रकार वर्षभरतक व्रत करे। कोई मानव यदि आदरपूर्वक एक बार भी इस व्रतको कर ले तो वह मेरे यमलोकका दर्शन नहीं करता। वह मेरी मायासे अदृष्ट रहता है, अन्तमें विमानद्वारा अर्कमण्डलमें प्रवेश कर वह विष्णुपुर और शिवपुरको प्राप्त करता है। यमदूतो ! उस राजा मुद्गलने इस त्रयोदशी-व्रतको पहले किया था, इसीलिये तुम सब उस क्षत्रिय-श्रेष्ठका दर्शन नहीं कर पाये।'

श्रीकृष्ण ! उसी क्षण मेरी मूर्च्छा दूर हो गयी और मैं स्वस्थ हो गया। भगवन् ! मैं आपके दर्शनकी इच्छासे यहाँ आया था, जैसा पहले वृत्तान्त हुआ, वह सब मैंने आपको बतलाया।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—राजन् ! वे मुनि मुझसे इतना कहकर अपने स्थानको चले गये। कौन्तेय ! आप भी इस व्रतको करें। इससे आपको यमलोक नहीं जाना पड़ेगा। इसी प्रकार जो कोई स्त्री-पुरुष इस त्रयोदशी-व्रतका श्रद्धापूर्वक आचरण करेंगे, वे सभी पापोंसे मुक्त होकर अपने पुण्य-कर्मके प्रभावसे स्वर्गमें पूजित होंगे और उन्हें कभी यमयातना नहीं सहनी पड़ेगी। (अध्याय ८९)

अनङ्ग-त्रयोदशी-व्रत

युधिष्ठिरने पूछा—संसारसे उद्धार करनेवाले स्वामिन् ! आप रूप एवं सौभाग्य प्रदान करनेवाला कोई व्रत बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! शरीरको क्लेश देनेवाले बहुत-से व्रतोंके करनेसे क्या लाभ ? अकेले

अनङ्गत्रयोदशी ही सब दोषोंका शमन एवं समस्त मङ्गलोंकी वृद्धि करनेवाली है। आप इसकी विधि सुनें।

पहले जब भगवान् शंकरने कामदेवको दग्ध कर दिया, तब वह बिना अङ्गके ही सबके शरीरमें निवास करने लगा। कामदेवने इस व्रतको किया था, इसीसे इसका नाम अनङ्ग-त्रयोदशी पड़ा। इस व्रतमें मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको नदी, तडाग आदिमें स्नान कर, जितेन्द्रिय हो, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और कालोद्भूत फलोंसे भगवान् शंकरका 'शशिशेखर' नामसे पूजन करे और तिलसहित अक्षतोंसे हवन करे। रात्रिको मधु-प्राशन कर सो जाय। इससे व्रती कामदेवके समान ही सुन्दर हो जाता है और दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार पौष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीमें भगवान् शंकरका 'योगेश्वर' नामसे पूजन कर चन्दनका प्राशन करे तो शरीरमें चन्दनके समान गन्ध हो जाती है और व्रती राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त करता है। माघ मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको भगवान् शंकरका 'महेश्वर' नामसे पूजन कर मोतीका चूर्ण भक्षण करे तो उत्तम सौभाग्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार फाल्गुनमें 'हरेश्वर' नामसे पूजन कर कंकोलका प्राशन करनेसे अतुल सौन्दर्य प्राप्त होता है। चैत्रमें 'सुरूपक' नामसे पूजन करने और कर्पूर-प्राशन करनेसे व्रती चन्द्रके तुल्य मनोहर हो जाता है और महान् सौभाग्य प्राप्त करता है। वैशाखमें 'महारूप' नामसे पूजन कर जातीफल (जायफल)का प्राशन करे, इससे उत्तम कुलकी प्राप्ति होती है और उसके सब काम सफल हो जाते हैं तथा वह सहस्र गोदानका फल प्राप्त कर ब्रह्मलोकमें निवास करता है। ज्येष्ठमें 'प्रद्युम्न' नामसे पूजन करे और लवंगका प्राशन करे, इससे उत्तम स्थान, श्रेष्ठ लक्ष्मी और सभी सुख-सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं तथा वह एक सौ आठ वाजपेय-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। आषाढ़में 'उमाभर्ता' नामसे पूजन कर तिलोदकका प्राशन करे। इससे उत्तम रूप प्राप्त होता है तथा वह सौ वर्षतक सुखी जीवन व्यतीत करता है। श्रावणमें 'उमापति' नामसे पूजन कर तिलोंका प्राशन करे, इससे पौण्डरीक-यज्ञका फल प्राप्त होता है। भाद्रपद मासमें 'सद्योजात' नामसे पूजन कर अगरुका प्राशन करे, इससे वह भूमिपर सबका गुरु बनता है और पुत्र-पौत्र, धन आदि प्राप्त कर बहुत दिन संसारमें सुख भोगकर अन्तमें विष्णुलोकमें पूजित होता है। आश्विन मासमें 'त्रिदशाधिपति' नामसे पूजन कर स्वर्णोदकका प्राशन करे तो व्रती उत्तम रूप, सौभाग्य, प्रगल्भता और करोड़ों निष्कदानका फल प्राप्त करता है। कार्तिकमें 'विश्वेश्वर' नामसे पूजन कर दमन (दौना) फलका प्राशन करे तो व्रती अपने बाहुबलसे समस्त संसारका स्वामी होता है और अन्तमें शिवलोकमें निवास करता है।

इस प्रकार वर्षभर इस उत्तम व्रतका पालन कर पारणा करनी चाहिये। फिर कलश स्थापित कर उसके ऊपर ताम्रपात्र और उसके ऊपर शिवकी प्रतिमा स्थापित कर श्वेत वस्त्रसे आच्छादित करे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसका पूजन कर उसे शिवभक्त ब्राह्मणको प्रदान कर दे। साथ ही पयस्विनी सवत्सा गौ, छाता और यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार जो इस अनङ्गत्रयोदशी-व्रतको करता है और व्रत-पारणाके समय महान् उत्सव करता है वह निष्कण्टक राज्य, आयुष्य, बल, यश तथा सौभाग्य प्राप्त करता है और अन्तमें शिवलोकमें निवास करता है।

(अध्याय ९०)

पाली-व्रत[1] एवं रम्भा-(कदली-) व्रत

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! श्रेष्ठ स्त्रियाँ जलपूर्ण तडागों और सरोवरोंमें किस निमित्त स्नान-दान आदि कर्म करती हैं? इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको बावली, कुएँ, पुष्करिणी तथा बड़े-बड़े जलाशयों आदिके पास पवित्र होकर भगवान् वरुणदेवको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि तडागके तटपर जाकर फल, पुष्प, वस्त्र, दीप, चन्दन, महावर, सप्तधान्य, बिना अग्निके स्पर्शसे पका हुआ अन्न, तिल, चावल, खजूर, नारिकेल, बिजौरा नीबू, नारंगी, अंगूर, दाड़िम,

१-पाली शब्द जटिल है, यह कोशोंमें प्रायः नहीं मिलता। इसका अर्थ कूप, तडाग आदि जलाशयोंकी रक्षाके लिये बने घेरेसे है। उसीपर बैठकर स्त्रियाँ इस व्रतको सम्पन्न करती हैं। वरुणदेव चूँकि सभी जलोंमें रहते हैं, अतः इसे वहीं बैठकर करना चाहिये।

सुपारी आदि उपचारोंसे वारुणीसहित वरुणदेवकी एवं जलाशयकी विधिपूर्वक पूजा करे और उन्हें अर्घ्य प्रदान कर इस प्रकार उनकी प्रार्थना करे—

वरुणाय नमस्तुभ्यं नमस्ते यादसाम्पते ।
अपाम्पते नमस्तेऽस्तु रसानाम्पतये नमः ॥
मा क्लेदं मा च दौर्गन्ध्यं विरस्यं मा मुखेऽस्तु मे ।
वरुणो वारुणीभर्ता वरदोऽस्तु सदा मम ॥

(उत्तरपर्व ९१ । ७-८)

'जलचर जीवोंके स्वामी वरुणदेव ! आपको नमस्कार है। सभी जल एवं जलसे उत्पन्न रस-द्रव्योंके स्वामी वरुणदेव ! आपको नमस्कार है। मेरे शरीरमें पसीना, दुर्गन्ध या विरसता[1] आदि मेरे मुखमें न हों। वारुणीदेवीके स्वामी वरुणदेव ! आप मेरे लिये सदा प्रसन्न एवं वरदायक बने रहें।'

व्रतीको चाहिये कि इस दिन बिना अग्निके पके हुए भोजन अर्थात् फल आदिका भोजन करे। इस विधिसे जो पाली-व्रतको करता है, वह तत्क्षण सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। आयु, यश और सौभाग्य प्राप्त करता है तथा समुद्रके जलकी भाँति उसके धनका कभी अन्त नहीं होता।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—राजन् ! अब मैं ब्रह्माजीकी सभामें देवर्षियोंके द्वारा पूछे जानेपर देवलमुनिप्रोक्त रम्भा-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ। यह भी भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशीको ही होता है। सभी देवताओं, गन्धर्वों तथा अप्सराओंने भी इस व्रतका अनुष्ठान कर कदली-वृक्षको सादर अर्घ्य प्रदान किया था। व्रतीको चाहिये कि इस चतुर्दशीको नाना प्रकारके फल, अंकुरित अन्नों, सप्तधान्य, दीप, चन्दन, दही, दूर्वा, अक्षत, वस्त्र, पकान्न, जायफल, इलायची तथा लवंग आदि उपचारोंसे कदली-वृक्षका पूजनकर उसे निम्नलिखित मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे—

चित्या त्वं कन्दलदलैः कदली कामदायिनि ।
शरीरारोग्यलावण्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व ९२ । ७)

'कदली देवि ! आप अपने पत्तोंसे वायुके व्याजसे ज्ञान एवं चेतनाका संचार करती हुई सभी कामनाओंको देती हैं। आप मेरे शरीरमें रूप, लावण्य, आरोग्य प्रदान करनेकी कृपा करें। आपको नमस्कार है[2]।'

इसके अनन्तर स्वयं पके हुए फल आदिका भोजन ग्रहण करे। जो भी पुरुष अथवा स्त्री भक्तिसे इस व्रतको करती है, उसके वंशमें दुर्भगा, दरिद्रा, वन्ध्या, पापिनी, व्यभिचारिणी, कुलटा, पुनर्भू, दुष्टा और पतिकी विरोधिनी कोई कन्या नहीं उत्पन्न होती। इस व्रतको करनेपर नारी सौभाग्य, पुत्र-पौत्र, धन, आयुष्य तथा कीर्ति आदि प्राप्त कर सौ वर्षपर्यन्त अपने पतिके साथ आनन्दपूर्वक रहती है। इस रम्भा-व्रतको गायत्रीने स्वर्गमें किया था। इसी प्रकार गौरीने कैलासमें, इन्द्राणीने नन्दनवनमें, लक्ष्मीने श्वेतद्वीपमें, राज्ञीने रविमण्डलमें, अरुन्धतीने दारुवनमें, स्वाहाने मेरुपर्वतपर, सीतादेवीने अयोध्यामें, वेदवतीने हिमाचलपर और भानुमतीने नागपुरमें इस व्रतको किया था ।

(अध्याय ९१-९२)

आग्नेयी शिवचतुर्दशी-व्रतके प्रसंगमें महर्षि अङ्गिराका आख्यान

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! प्राचीन कालमें जब अग्निदेव अदृश्य हो गये, उस समय अग्निका कार्य किसने किया और कैसे अग्निने पुनः अपना स्वरूप प्राप्त किया ? इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! एक बार उतथ्यमुनि और अङ्गिरामुनिका विद्यामें और तपमें परस्पर श्रेष्ठताके विषयमें बहुत विवाद हुआ। इसका निश्चय करनेके लिये दोनों ब्रह्मलोक गये और उन्होंने ब्रह्माजीको सारा वृत्तान्त बतलाया। ब्रह्माजीने उनसे कहा कि 'तुम दोनों जाकर सभी देवताओं और लोकपालोंको यहाँ बुला लाओ, तब सभीके समक्ष इसका निर्णय किया जायगा।' ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर दोनों जाकर सभी देवता, ऋषि, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, राक्षस,

---

१-ज्वर आदिसे मुखका स्वाद बिगड़ जाता है, उसे विरसता कहते हैं।

२-कदलीके व्याजसे सर्वशक्तिमयी दुर्गाकी 'चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्। नमस्तस्यै॰'-को ही स्मरण करते हुए प्रार्थना की गयी है।

दैत्य, दानव आदिको बुला लाये। किंतु भगवान् सूर्य नहीं आये। ब्रह्माजीके पुनः कहनेपर उतथ्यमुनि सूर्यनारायणके समीप जाकर बोले—'भगवन्! आप शीघ्र ही हमारे साथ ब्रह्मलोक चलें।' भगवान् सूर्यने कहा—'मुने! हमारे चले जानेपर जगत्में अन्धकार छा जायगा, इसलिये हमारा चलना किस प्रकार हो सकता है, हम नहीं चल सकेंगे।' यह सुनकर उतथ्यमुनि वहाँसे चले आये और ब्रह्माजीको सब वृत्तान्त सुना दिया। तब ब्रह्माजीने अङ्गिरामुनिसे सूर्यभगवान्को बुलानेके लिये कहा। अङ्गिरामुनि ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर सूर्यनारायणके समीप गये और उनसे ब्रह्मलोक चलनेको कहा। सूर्यनारायणने वही उत्तर इनको भी दिया। तब अङ्गिराने कहा—'प्रभो! आप ब्रह्मलोक जायँ, मैं आपके स्थानपर यहाँ रहकर प्रकाश करूँगा।' यह सुनकर सूर्यनारायण तो ब्रह्माजीके पास चले गये और अङ्गिरा प्रचण्ड तेजसे तपने लगे। इधर भगवान् सूर्यने ब्रह्माजीसे पूछा—'ब्रह्मन्! आपने किस निमित्तसे मुझे यहाँ बुलाया है?' ब्रह्माजीने कहा—'देव! आप शीघ्र ही अपने स्थानपर जायँ, नहीं तो अङ्गिरामुनि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दग्ध कर डालेंगे। देखिये उनके तापसे सभी लोग दग्ध हो रहे हैं। जबतक वे सब कुछ भस्म न कर डालें उससे पूर्व ही आप प्रतिष्ठित हो जायँ।' यह सुनते ही सूर्यभगवान् पुनः अपने स्थानपर लौट आये और उन्होंने अङ्गिरामुनिकी स्तुति कर उन्हें बिदा किया। अङ्गिरा पुनः देवताओंके समीप आये। देवताओंने अङ्गिरामुनिकी स्तुति की और कहा—'भगवन्! जबतक हम अग्निको ढूँढ़ें, तबतक आप अग्निके सभी कर्म कीजिये।' देवताओंका ऐसा वचन सुनकर महर्षि अङ्गिरा अग्निरूपमें देवकार्यादिको सम्पन्न करने लगे। जब अग्निदेव आये तो उन्होंने देखा कि अङ्गिरामुनि अग्नि बनकर स्थित हैं। इसपर वे बोले—'मुने! आप मेरा स्थान छोड़ दें। मैं आपकी शुभा नामकी स्त्रीसे ज्येष्ठ एवं प्रिय पुत्रके रूपमें उत्पन्न होऊँगा और तब मेरा नाम होगा बृहस्पति। आपके और भी बहुत-से पुत्र-पौत्र होंगे।' यह वर पाकर प्रसन्न हो महर्षि अङ्गिराने अग्निका स्थान छोड़ दिया।

राजन्! अग्निदेवको चतुर्दशी तिथिको ही अपना स्थान प्राप्त हुआ था, इसलिये यह तिथि अग्निको अति प्रिय है और आग्नेयी चतुर्दशी तथा रौद्री चतुर्दशीके नामसे प्रसिद्ध है। स्वर्गमें देवता और भूमिपर मान्धाता, मनु, नहुष आदि बड़े-बड़े राजाओंने इस तिथिको माना है। जो पुरुष युद्धमें मारे जायँ, सर्प आदिके काटनेसे मरे हों और जिसने आत्मघात किया हो, उनका इस चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करना चाहिये, जिससे वे सद्गतिको प्राप्त हो जायँ। इस तिथिके व्रतका विधान इस प्रकार है—चतुर्दशीको उपवास करे और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे त्रिलोचन श्रीसदाशिवका पूजन करे, रात्रिमें जागरण करे। रात्रिमें पञ्चगव्यका प्राशन कर भूमिपर ही शयन करे। तैल-क्षारसे रहित श्यामाक (साँवा)का भोजन करे। अग्निके नाम-मन्त्रोंद्वारा काले तिलोंसे १०८ आहुतियाँ प्रदान करे। दूसरे दिन प्रातः स्नान कर पञ्चामृतसे शिवजीको स्नान कराकर भक्तिपूर्वक उनका पूजन करे और पूर्वोक्त रीतिसे हवनकर उनकी प्रार्थना करे। पीछे आरती कर ब्राह्मणको भोजन कराये। उनको दक्षिणा दे और मौन हो स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार एक वर्ष व्रत कर सुवर्णकी त्रिलोचन भगवान् शंकरकी प्रतिमा बनाये। प्रतिमाको चाँदीके वृषभपर स्थितकर दो श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित कर ताम्रपात्रमें स्थापित करे। तदनन्तर गन्ध, श्वेत पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको दे दे। जो एक वर्षतक इस व्रतको करता है, वह लम्बी आयु प्राप्त कर अन्तमें तीर्थमें प्राण परित्याग कर शिवलोकमें देवताओंके साथ विहार करता है। वहाँ बहुत कालतक रहकर वह पृथ्वीमें आकर ऐश्वर्य-सम्पन्न धार्मिक राजा होता है। पुत्र-पौत्रोंसे समन्वित होता है और चिरकालतक आनन्दित रहता है तथा अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त करता है[1]। (अध्याय ९३)

१-प्रायः अन्य ज्यौतिष ग्रन्थों तथा पुराणोंके अनुसार अग्निदेवकी तिथि प्रतिपदा ही है। चतुर्दशी शिवजीकी तिथि है। यहाँ भी शिवजीकी ही पूजा है, अतः कल्पान्तर-व्यवस्था मान लेनी चाहिये।

अनन्तचतुर्दशी-व्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! सम्पूर्ण पापोंका नाशक, कल्याणकारक तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला अनन्तचतुर्दशी नामक एक व्रत है, जिसे भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको सम्पन्न किया जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने जो अनन्त नाम लिया है, क्या ये अनन्त शेषनाग हैं या कोई अन्य नाग हैं या परमात्मा हैं या ब्रह्म हैं? अनन्त संज्ञा किसकी है? इसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अनन्त मेरा ही नाम है। कला, काष्ठा, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग तथा कल्प आदि काल-विभागोंके रूपमें मैं ही अवस्थित हूँ। संसारका भार उतारने तथा दानवोंका विनाश करनेके लिये वसुदेवके कुलमें मैं ही उत्पन्न हुआ हूँ। पार्थ! आप मुझे ही विष्णु, जिष्णु, हर, शिव, ब्रह्मा, भास्कर, शेष, सर्वव्यापी ईश्वर समझिये और अनन्त भी मैं ही हूँ। मैंने आपको विश्वास उत्पन्न करनेके लिये ऐसा कहा है।

युधिष्ठिरने पुनः पूछा—भगवन्! मुझे आप अनन्त-व्रतके माहात्म्य और विधिको तथा इसे किसने पहले किया था और इस व्रतका क्या पुण्य है, इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—युधिष्ठिर! इस सम्बन्धमें एक प्राचीन आख्यान है, उसे आप सुनें। कृतयुगमें वसिष्ठगोत्री सुमन्तु नामके एक ब्राह्मण थे। उनका महर्षि भृगुकी कन्या दीक्षासे वेदोक्त-विधिसे विवाह हुआ था। उन्हें सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम शीला रखा गया। कुछ समय बाद उसकी माता दीक्षाका ज्वरसे देहान्त हो गया और उस पतिव्रताको स्वर्गलोक प्राप्त हुआ। सुमन्तुने पुनः एक कर्कशा नामकी कन्यासे विवाह कर लिया। वह अपने कर्कशा नामके समान ही दुःशील, कर्कश तथा नित्य कलहकारिणी एवं चण्डीरूपा थी। शीला अपने पिताके घरमें रहती हुई दीवाल, देहली तथा स्तम्भ आदिमें माङ्गलिक स्वस्तिक, पद्म, शङ्ख आदि विष्णुचिह्नोंको अङ्कित कर उनकी अर्चना करती रहती। सुमन्तुको शीलाके विवाहकी चिन्ता होने लगी। उन्होंने शीलाका विवाह कौंडिन्यमुनिके साथ कर दिया। विवाहके अनन्तर सुमन्तुने अपनी पत्नीसे कहा—'देवि! दामादके लिये पारितोषिक रूपमें कुछ दहेज द्रव्य देना चाहिये।' यह सुनकर कर्कशा क्रुद्ध हो उठी और उसने घरमें बने मण्डपको उखाड़ डाला तथा भोजनसे बचे हुए कुछ पदार्थोंको पाथेयके रूपमें प्रदान कर कहा—चले जाओ, फिर उसने कपाट बंद कर लिया।

कौंडिन्य भी शीलाको साथ लेकर बैलगाड़ीसे धीरे-धीरे वहाँसे चल पड़े। दोपहरका समय हो गया। वे एक नदीके किनारे पहुँचे। शीलाने देखा कि शुभ वस्त्रोंको पहने हुए कुछ स्त्रियाँ चतुर्दशीके दिन भक्तिपूर्वक जनार्दनकी अलग-अलग पूजा कर रही हैं। शीलाने उन स्त्रियोंके पास जाकर पूछा—'देवियो! आपलोग यहाँ किसकी पूजा कर रही हैं, इस व्रतका क्या नाम है।' इसपर वे स्त्रियाँ बोलीं—'यह व्रत अनन्त-चतुर्दशी नामसे प्रसिद्ध है।' शीला बोली—'मैं भी इस व्रतको करूँगी, इस व्रतका क्या विधान है, किस देवताकी इसमें पूजा की जाती है और दानमें क्या दिया जाता है, इसे आपलोग बतायें।' इसपर स्त्रियोंने कहा—'शीले! प्रस्थभर पकान्नका नैवेद्य बनाकर नदीतटपर जाय, वहाँ स्नान कर एक मण्डलमें अनन्तस्वरूप भगवान् विष्णुकी गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे पूजा करे और कथा सुने। उन्हें नैवेद्य अर्पित करे। नैवेद्यका आधा भाग ब्राह्मणको निवेदित कर आधा भाग प्रसाद-रूपमें ग्रहण करनेके लिये रखे। भगवान् अनन्तके सामने चौदह ग्रन्थियुक्त एक दोरक (डोरा) स्थापित कर उसे कुंकुमादिसे चर्चित करे। भगवान्को वह दोरक निवेदित करके पुरुष दाहिने हाथमें और स्त्री बायें हाथमें बाँध ले। दोरक-बन्धनका मन्त्र इस प्रकार है—

अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव।
अनन्तरूपे विनियोजितात्मा ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते॥

(उत्तरपर्व ९४।३३)

'हे वासुदेव! अनन्त संसाररूपी महासमुद्रमें मैं डूब रही हूँ, आप मेरा उद्धार करें, साथ ही अपने अनन्तस्वरूपमें मुझे भी आप विनियुक्त कर लें। हे अनन्तस्वरूप! आपको मेरा बार-बार प्रणाम है।'

दोरक बाँधनेके अनन्तर नैवेद्य ग्रहण करना चाहिये। अन्तमें विश्वरूपी अनन्तदेव भगवान् नारायणका ध्यान कर

अपने घर जाय। शीले ! हमने इस अनन्तव्रतका वर्णन किया। तदनन्तर शीलाने भी विधिसे इस व्रतका अनुष्ठान किया। पाथेय निवेदित कर उसका आधा भाग ब्राह्मणको प्रदान कर आधा स्वयं ग्रहण किया और दोरक भी बाँधा। उसी समय शीलाके पति कौंडिन्य भी वहाँ आये। फिर वे दोनों बैलगाड़ीसे अपने घरकी ओर चल पड़े। घर पहुँचते ही व्रतके प्रभावसे उनका घर प्रचुर धन-धान्य एवं गोधनसे सम्पन्न हो गया। वह शीला भी मणि-मुक्ता तथा स्वर्णादिके हारों और वस्त्रोंसे सुशोभित हो गयी। वह साक्षात् सावित्रीके समान दिखलायी देने लगी। कुछ समय बाद एक दिन शीलाके हाथमें बँधे अनन्त-दोरकको उसके पतिने क्रुद्ध हो तोड़ दिया। उस विपरीत कर्मविपाकसे उनकी सारी लक्ष्मी नष्ट हो गयी, गोधन आदि चोरोंने चुरा लिया। सभी कुछ नष्ट हो गया। आपसमें कलह होने लगा। मित्रोंने सम्बन्ध तोड़ लिया। अनन्त-भगवान्‌के तिरस्कार करनेसे उनके घरमें दरिद्रताका साम्राज्य छा गया। दुःखी होकर कौंडिन्य एक गहन वनमें चले गये और विचार करने लगे कि मुझे कब अनन्तभगवान्‌के दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होगा। उन्होंने पुनः निराहार रहकर तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक भगवान् अनन्तका व्रत एवं उनके नामोंका जप किया और उनके दर्शनोंकी लालसासे विह्वल होकर वे पुनः दूसरे निर्जन वनमें गये। वहाँ उन्होंने एक फले-फूले आम्र-वृक्षको देखा और उससे पूछा कि क्या तुमने अनन्त-भगवान्‌को देखा है ? तब उसने कहा—'ब्राह्मण देवता ! मैं अनन्तको नहीं जानता।' इस प्रकार वृक्षों आदिसे अनन्त-भगवान्‌के विषयमें पूछते-पूछते घास चरती हुई एक सवत्सा गौको देखा। कौंडिन्यने गौसे पूछा—'धेनुके ! क्या तुमने अनन्तको देखा है ?' गौने कहा—'विभो ! मैं अनन्तको नहीं जानती।' इसके पश्चात् कौंडिन्य फिर आगे बढ़े। वहाँ उन्होंने देखा कि एक वृषभ घासपर बैठा है। पूछनेपर वृषभने भी बताया कि मैंने अनन्तको नहीं देखा है। फिर आगे जानेपर कौंडिन्यको दो रमणीय तालाब दिखलायी पड़े। कौंडिन्यने उनसे भी अनन्तभगवान्‌के विषयमें पूछा, किंतु उन्होंने भी अनभिज्ञता प्रकट की। इसी प्रकार कौंडिन्यने अनन्तके विषयमें गर्दभ तथा हाथीसे पूछा, उन्होंने भी नकारात्मक उत्तर दिया। इसपर वे कौंडिन्य अत्यन्त निराश हो पृथ्वीपर गिर पड़े। उसी समय कौंडिन्यमुनिके सामने कृपा करके भगवान् अनन्त वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें प्रकट हो गये और पुनः उन्हें अपने दिव्य चतुर्भुज विश्वरूपका दर्शन कराया। भगवान्‌का दर्शनकर कौंडिन्य अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उनकी प्रार्थना करने लगे तथा अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगने लगे—

पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः।
पाहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्।

(उत्तरपर्व ९४। ६०-६१)

कौंडिन्यने भगवान्‌से पुनः पूछा—भगवन् ! घोर वनमें मुझे जो आम्रवृक्ष, वृषभ, गौ, पुष्करिणी, गर्दभ तथा हाथी मिले, वे कौन थे ? आप तत्त्वतः इसे बतलायें।

भगवान् बोले—'द्विजदेव ! वह आम्रवृक्ष पूर्वजन्ममें एक वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मण था, किंतु उसे अपनी विद्याका बड़ा गर्व था। उसने शिष्योंको विद्या-दान नहीं किया, इसलिये वह वृक्ष-योनिको प्राप्त हुआ। जिस गौको तुमने देखा, वह उपजाऊ शक्तिरहित वसुन्धरा थी, वह भूमि सर्वथा निष्फल थी, अतः वह गौ बनी। वृषभ सत्य धर्मका आश्रय ग्रहणकर धर्मस्वरूप ही था। वे पुष्करिणियाँ धर्म और अधर्मकी व्यवस्था करनेवाली दो ब्राह्मणियाँ थीं। वे परस्पर बहिनें थीं, किंतु धर्म-अधर्मके विषयमें उनमें परस्पर अनुचित विवाद होता रहता था। उन्होंने किसी ब्राह्मण, अतिथि अथवा भूखेको दान भी नहीं किया। इसी कारण वे दोनों बहिनें पुष्करिणी हो गयीं, यहाँ भी लहरोंके रूपमें आपसमें उनमें संघर्ष होता रहता है। जिस गर्दभको तुमने देखा, वह पूर्वजन्ममें महान् क्रोधी व्यक्ति था और हाथी पूर्वजन्ममें धर्मदूषक था। हे विप्र ! मैंने तुम्हें सारी बातें बतला दीं। अब तुम अपने घर जाकर अनन्त-व्रत करो, तब मैं तुम्हें उत्तम नक्षत्रका पद प्रदान करूँगा। तुम स्वयं संसारमें पुत्र-पौत्रों एवं सुखको प्राप्तकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करोगे। ऐसा वर देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

कौंडिन्यने भी घर आकर भक्तिपूर्वक अनन्तव्रतका पालन किया और अपनी पत्नी शीलाके साथ वे धर्मात्मा उत्तम सुख प्राप्तकर अन्तमें स्वर्गमें पुनर्वसु नामक नक्षत्रके रूपमें प्रतिष्ठित हुए। जो व्यक्ति इस व्रतको करता है या इस कथाको सुनता है, वह भी भगवान्‌के स्वरूपमें मिल जाता है। (अध्याय ९४)

श्रवणिकाव्रत-कथा एवं व्रत-विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! संसारमें श्रावणी नामकी जिन देवियोंका नाम सुना जाता है, वे कौन हैं और उनका क्या धर्म है तथा वे क्या करती हैं? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पाण्डवश्रेष्ठ! ब्रह्माने इन श्रावणी देवियोंकी रचना की है। संसारमें मानव जो कुछ भी शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है, वे श्रावणी देवियाँ उस विषयकी सूचना शीघ्र ही ब्रह्माको श्रवण कराती हैं, इसीलिये ये श्रावणी कही गयी हैं[1]। संसारके प्राणियोंका नियमन करनेके कारण ये पूज्य हैं। ये दूरसे ही जान-सुन-देख लेती हैं। कोई भी ऐसा कर्म नहीं है जो इनसे अदृश्य हो। इनमें ऐसी विलक्षण शक्ति है जो तर्क, हेतु आदिसे अगम्य है। जिस प्रकार देवता, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, किम्पुरुष आदि पूज्य एवं पुण्यप्रद हैं, उसी प्रकार ये श्रावणी देवियाँ भी वन्दनीय एवं पुण्यमयी हैं। स्त्री-पुरुषोंको इनकी प्रसन्नताके लिये व्रत करना चाहिये तथा जल, चन्दन, पुष्प, धूप, पकान्न आदिसे इनकी पूजा करनी चाहिये और स्त्रियों तथा पुरुषोंको भोजन कराकर व्रतकी पारणा करनी चाहिये।

इनका व्रत न करनेसे मृत्यु-कष्ट होता है और यम-यातना सहन करनी पड़ती है। राजन्! इस विषयमें आपको एक आख्यान सुनाता हूँ—

प्राचीन कालमें नहुष नामके एक राजा थे। उनकी रानीका नाम 'जयश्री' था। वह अत्यन्त सुन्दर, शीलवती एवं पतिव्रता थी। एक बार गङ्गामें स्नान करके वह महर्षि वसिष्ठके समीपवर्ती आश्रममें गयी, वहाँ उसने देखा कि माता अरुन्धती मुनिपत्नियोंको विविध प्रकारका भोजन करा रही हैं। जयश्रीने उन्हें प्रणाम कर पूछा—'भगवति! आप यह कौन-सा व्रत कर रही हैं।' अरुन्धती बोलीं—'देवि! मैं श्रवणिकाव्रत कर रही हूँ। इस व्रतको मुझे महर्षि वसिष्ठने बताया है। यह व्रत अत्यन्त गुप्त और ब्रह्मर्षियोंका सर्वस्व है तथा कन्याओंके लिये श्रेष्ठ एवं उत्तम पति प्रदान करनेवाला है। तुम यहाँ ठहरो, मैं तुम्हारा आतिथ्य करूँगी।' और उन्होंने वैसा ही किया। तदनन्तर जयश्री अपने नगरमें चली आयी। कुछ समय बाद वह उस व्रतको तथा अरुन्धतीके भोजनको भूल गयी। समय आनेपर जब वह महासती मरणासन्न हुई तो उसके गलेमें घर्घराहट होने लगी, कण्ठ अवरुद्ध हो गया, मुखसे फेन एवं लार टपकने लगा। इस प्रकार दारुण कष्ट भोगते हुए उसे पंद्रह दिन व्यतीत हो गये। उसका मुख देखनेसे भय लगता था। सोलहवें दिन अरुन्धती जयश्रीके घर आयीं और उन्होंने वैसी कष्टप्रद स्थितिमें उसे देखा। तब अरुन्धतीने राजा नहुषसे श्रवणिकाव्रतके विषयमें बतलाया। राजा नहुषने भी देवी अरुन्धतीके निर्देशानुसार जयश्रीके निमित्त तत्काल श्रवणिका-व्रतका आयोजन किया। उस व्रतके प्रभावसे जयश्रीने सुख-पूर्वक मृत्युका वरण किया और इन्द्रलोकको प्राप्त किया।

श्रीकृष्णने पुनः कहा—राजन्! मार्गशीर्षसे कार्तिकतक द्वादश मासोंकी चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथियोंमें भक्तिपूर्वक यह व्रत करना चाहिये। प्रातःकाल नदी आदिमें स्नानकर पवित्र हो, श्रेष्ठ बारह ब्राह्मण-दम्पतियों अथवा अपने गोत्रमें उत्पन्न बारह दम्पतियोंको बुलाकर गन्ध, पुष्प, रोचना, वस्त्र, अलंकार, सिंदूर आदिसे उनका भक्तिपूर्वक पूजन करे। सुन्दर, सुडौल, अच्छिद्र, जलसे भरे हुए, सूत्रसे आवेष्टित तथा पुष्पमाला आदिसे विभूषित स्वर्णयुक्त बारह वर्धनियों (जलपूर्ण कलश)को ब्राह्मणियोंके सामने पृथक्-पृथक् रखे। उनमेंसे मध्यकी एक वर्धनी उठाकर अपने सिरपर रखे तथा उन ब्राह्मणियोंसे बाल्यावस्था, कुमारावस्था तथा वृद्धावस्थामें किये गये पापोंके विनाश, सुखपूर्वक मृत्यु-प्राप्ति तथा संसार-सागरसे पार होने और भगवान्‌के परमपदको पानेके लिये प्रार्थना करे। वे ब्राह्मणियाँ भी कहें—'ऐसा ही हो।' ब्राह्मणोंसे पापके विनाशके लिये प्रार्थना करे। ब्राह्मण उस वर्धनीको उसके सिरसे उतार लें और उसे आशीर्वाद प्रदान करें। उन सभी वर्धनियोंको ब्राह्मण-पत्नियोंको दे दे।

हे पार्थ! इस प्रकार इस श्रवणिकाव्रतको भक्तिपूर्वक करनेवाला सभी भोगोंका उपभोग कर सुखपूर्वक मृत्युका वरण करता है और उत्तम लोकको प्राप्त करता है। (अध्याय ९५)

१-गरुडपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय ७ में भी यह विषय विस्तारसे प्रतिपादित है। वहाँ इन्हें देवी न कहकर श्रवण नामका पुरुष देवता कहा गया है।

नक्त एवं शिवचतुर्दशी-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब आप नक्तव्रतका विधान सुनिये, जिसके करनेसे मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। किसी भी मासकी शुक्ल चतुर्दशीको ब्राह्मणको भोजन कराकर नक्तव्रत प्रारम्भ करना चाहिये। प्रत्येक मासमें दो अष्टमियाँ और दो चतुर्दशियाँ होती हैं। उस दिन भक्तिपूर्वक शिवजीका पूजन करे और उनके ध्यानमें तत्पर रहे। रात्रिके समय पृथ्वीको पात्र बनाकर उसीमें भोजन करे[1]। उपवाससे उत्तम भिक्षा, भिक्षासे उत्तम अयाचित-व्रत और अयाचित-व्रतसे भी उत्तम है नक्त-भोजन। इसलिये नक्तव्रत करना चाहिये। पूर्वाह्णमें देवता, मध्याह्नमें मुनिगण, अपराह्णमें पितर और सायंकालमें गुह्यक आदि भोजन करते हैं। इसलिये सबके बाद नक्त-भोजन करना चाहिये। नक्तव्रत करनेवाला पुरुष नित्य स्नान, स्वल्प हविष्यान्न-भोजन, सत्य-भाषण, नित्य-हवन और भूमिशयन करे। इस प्रकार एक वर्षतक व्रत करके अन्तमें घृतपूर्ण कलशके ऊपर भगवान् शिवकी मृत्तिकासे बनी प्रतिमा स्थापित करे। कपिला गौके पञ्चगव्यसे प्रतिमाको स्नान कराकर फल, पुष्प, यव, क्षीर, दधि, दूर्वाङ्कुर, तिल तथा चावल जलमें छोड़कर अष्टाङ्ग-अर्घ्य प्रदान करे। दोनों घुटनोंको पृथ्वीपर रखकर पात्रको सिरतक उठाकर महादेवजीको अर्घ्य दे। अनन्तर अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य नैवेद्य निवेदित करे। एक उत्तम सवत्सा गौ और वृषभ वेदवेत्ता ब्राह्मणको दक्षिणासहित दे। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति दिव्य देह धारण कर उत्तम विमानमें बैठकर रुद्रलोकमें जाता है। वहाँ तीन सौ कोटि वर्षपर्यन्त सुख भोगकर इस लोकमें महान् राजा होता है। एक बार भी जो इस विधानसे नक्तव्रत कर श्रीसदाशिवका पूजन करता है, वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज ! अब मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध शिवचतुर्दशीकी विधि बता रहा हूँ। यह माहेश्वरव्रत शिवचतुर्दशी नामसे प्रसिद्ध है[2]। इस व्रतमें मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको एक बार भोजन करे और चतुर्दशीको निराहार रहकर पार्वतीसहित भगवान् शंकरकी गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे पूजा करे। स्वर्णका वृषभ बनाकर उसकी भी पूजा करे। अनन्तर वह वृषभ तथा स्थापित जलपूर्ण कलश ब्राह्मणको प्रदान कर दे, विविध प्रकारके भक्ष्य पदार्थ भी दे और कहे—'**प्रीयतां देवदेवोऽत्र सद्योजातः पिनाकधृक्।**' अनन्तर उत्तराभिमुख हो घृतका प्राशन कर भूमिपर शयन करे। प्रतिमासकी शुक्ल चतुर्दशीको यही विधान करे और मार्गशीर्ष आदि महीनोंमें शयनके समय इस प्रकार प्रार्थना करे—

शंकराय नमस्तुभ्यं नमस्ते करवीरक।
त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं महेश्वरमतः परम्॥
नमस्तेऽस्तु महादेव स्थाणवे च ततः परम्।
नमः पशुपते नाथ नमस्ते शम्भवे नमः॥
नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्धधारिणे।
नमो भीमाय चोग्राय त्वामहं शरणं गतः॥

(उत्तरपर्व ९७। १५—१७)

बारह महीनोंमें क्रमसे गोमूत्र, गोमय, दुग्ध, दधि, घृत, कुशोदक, पञ्चगव्य, बिल्व, यवागू (यवकी काँजी), कमल तथा काले तिलका प्राशन करे और मन्दार, मालती, धतूर, सिंदुवार, अशोक, मल्लिका, कुब्जक, पाटल, अर्क-पुष्प, कदम्ब, रक्त एवं नीलकमल तथा कनेर—इन बारह पुष्पोंसे क्रमशः बारहों चतुर्दशियोंमें उमामहेश्वरका पूजन करे। अनेक प्रकारके भोजन, वस्त्र, आभूषण, दक्षिणा आदि देकर ब्राह्मणोंको संतुष्ट कर नीले (कृष्ण) रंगका वृष छोड़े और एक गौ तथा एक वृष सुवर्णका बना करके आठ मोतियोंसे युक्त उत्तम शय्यापर स्थापित करे। जल-कुम्भ, शालि-चावल, घृत, दक्षिणासहित सब सामग्री वेद-व्रत-परायण, शान्तचित्त सपत्नीक ब्राह्मणोंको प्रदान कर दे। इस व्रतको जो पुरुष भक्तिपूर्वक करता है, उसके माता-पिताके भी सभी पाप नष्ट

१-गया आदि तीर्थोंमें पृथ्वीपर ही भोजनपात्रके रूपमें थालियाँ बनी हुई हैं। पहले जैन, बौद्ध, भिक्षु, संन्यासी उन्हींमें या मिट्टीकी बनी थालियोंमें भोजन करते थे और कुछ लोग हाथमें लेकर भोजन करते थे। उन्हें करपात्री कहते थे। इसमें त्याग, व्रत, तपस्या और सहिष्णुता सब मिश्रित थी।

२- इस व्रतका वर्णन मत्स्य आदि पुराणोंमें भी प्राप्त होता है।

हो जाते हैं और वह स्वयं हजार अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है तथा दीर्घायु, ऐश्वर्य, आरोग्य, संतान एवं विद्या आदि प्राप्त करता है। बहुत दिनोंतक संसारका सुख भोगकर वह विष्णुलोकादिमें विहार करता हुआ अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय ९६-९७)

सर्वफलत्याग-चतुर्दशीव्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—भारत! अब आप सर्वफलत्याग-चतुर्दशीव्रतका माहात्म्य सुनें। यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। इस व्रतका नियम मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको अथवा अन्य मासोंकी अष्टमीको ग्रहण करना चाहिये। उस दिन ब्राह्मणोंको पायस-भोजन कराकर दक्षिणा दे। इस व्रतका आरम्भ कर वर्षभर कोई निन्द्य फल-मूल तथा अठारह प्रकारके धान्य[1] भक्षण न करे। वर्षके अन्तमें चतुर्दशी अथवा अष्टमीके दिन सुवर्णके रुद्र एवं धर्मराजकी प्रतिमा बनाकर दो कलशोंके ऊपर स्थापित कर उनका पूजन करे। सोनेके सोलह कूष्माण्ड और मातुलुङ्ग, बैंगन, कटहल, आम्र, आमड़ा, कैथ, कलिंग (तरबूज), ककड़ी, श्रीफल, वट, अश्वत्थ, जम्बीरी नींबू, केला, बेर तथा दाड़िम (अनार)—ये फल बनवाये। मूली, आँवला, जामुन, कमलगट्टा, करौंदा, गूलर, नारियल, अंगूर, दो बनभंटा, कंकोल, काकमाची, खीरा, करील, कुटज तथा शमी—ये सोलह फल चाँदीके बनवाये और ताल, अगस्त्य, पिंडार, खजूर, सूरण, कंदक, कटहल, लकुच, खेंकसा, इमली, चित्रावल्ली, कूटशाल्मलिका, महुआ, कारवेल्ल, वल्ली तथा गुदपटोलक—ये सोलह फल ताँबेके बनवाये। इन फलोंका व्रतपर्यन्त भक्षण न करे अर्थात् इन फलोंके त्यागका व्रतमें संकल्प करे। व्रतकी पूर्णतापर धर्मराज एवं रुद्रकी प्रतिमा तथा स्वर्ण, रौप्य एवं ताम्रसे बनाये गये इन फलोंको वेदज्ञ, शान्त, सपत्नीक ब्राह्मणको भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये प्रार्थनापूर्वक दान कर दे। सभी उपकरणोंसहित उत्तम शय्या, भूषण, दक्षिणा भी ब्राह्मणको देकर यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये। स्वयं भी तैल-क्षारवर्जित भोजन करे। यदि सभी फलोंको न त्याग सके तो एक ही फलका त्याग करे और सुवर्ण आदिका बनवाकर इसी विधानसे ब्राह्मणको दे। उन फलोंमें जितने परमाणु होते हैं, उतने हजार युग वर्षतक इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति रुद्रलोकमें पूजित होता है। स्त्रियोंको भी यह व्रत करना चाहिये। इस व्रतके करनेवालोंको किसी जन्ममें इष्टका वियोग नहीं होता और अन्तमें वह स्वर्गमें निवास करता है।

(अध्याय ९८)

पौर्णमासी-व्रत-विधान एवं अमावास्यामें श्राद्ध-तर्पणकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! पूर्णिमा चन्द्रमाकी प्रिय तिथि है। क्योंकि इसी दिन चन्द्रमा[2] सोलह कलाओंसे परिपूर्ण होते हैं। इसीलिये यह पौर्णमासी कही जाती है। इसी तिथिको चन्द्रमा तारासे बुध नामक पुत्रको प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। यह पौर्णमासी तिथि सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली है। चन्द्रमाने स्वयं कहा है कि 'जो इस पूर्णिमा-तिथिमें भक्तिपूर्वक विधिवत् मेरी पूजा करेगा, मैं प्रसन्न होकर उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण कर दूँगा।' व्रतीको चाहिये कि पूर्णिमाके दिन प्रातः नदी आदिमें स्नान कर देवता और पितरोंका तर्पण करे। तदनन्तर घर आकर एक मण्डल बनाये और उसमें नक्षत्रोंसहित चन्द्रमाको अंकित कर श्वेत गन्ध, अक्षत, श्वेत पुष्प, धूप, दीप, घृतपक्व नैवेद्य और श्वेत वस्त्र

१-ये अठारह धान्य—याज्ञवल्क्य-स्मृ० १। २०८ की अपरार्क व्याख्या, व्याकरणमहाभाष्य ५। २। ४, वाजसने० संहिता १८। १२, दानमयूख तथा विधानपारिजात आदिके अनुसार इस प्रकार हैं—साँवाँ, धान, जौ, मूँग, तिल, अणु (कँगनी), उड़द, गेहूँ, कोदो, कुलथी, सतीन (छोटी मटर), सेम, आढ़की (अरहर) या मयुष्ट (उजली मटर), चना, कलाय, मटर, प्रियङ्गु (सरसों, राई या टाँगुन) और मसूर। अन्य मतसे मयुष्टादिकी जगह अतसी और नीवार ग्राह्य है।

२-मास शब्दका अर्थ चन्द्रमा होता है, हिन्दुओंके महीने अमावास्याको पूर्ण होते हैं

आदि उपचारोंसे चन्द्रमाका पूजन कर उनसे क्षमा-प्रार्थना करे और सायंकाल इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे—

वसन्तबान्धव विभो शीतांशो स्वस्ति नः कुरु।
गगनार्णवमाणिक्य चन्द्र दाक्षायणीपते ॥

(उत्तरपर्व ९९। ५४)

अनन्तर रात्रिमें मौन होकर शाक एवं तिन्नीके चावलका भोजन करे। प्रत्येक मासकी पौर्णमासीको इसी प्रकार उपवासपूर्वक चन्द्रमाकी पूजा करनी चाहिये। यदि कृष्ण पक्षकी अमावास्यामें कोई श्रद्धावान् व्यक्ति चन्द्रमाकी पूजा करना चाहे तो उसके लिये भी यही विधि बतलायी गयी है। इससे सभी अभीष्ट सुख प्राप्त होते हैं। अमावास्या तिथि पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। इस दिन दान एवं तर्पण आदि करनेसे पितरोंको तृप्ति प्राप्त होती है। जो अमावास्याको उपवास करता है, उसे अक्षय-वटके नीचे श्राद्ध करनेका फल प्राप्त होता है। यह अक्षय-वट पितरोंके लिये उत्तम तीर्थ है। जो अमावास्याको अक्षय-वटमें पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्धादि क्रिया करता है, वह पुण्यात्मा अपने इक्कीस कुलोंका उद्धार कर देता है। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त पूर्णिमा-व्रत करके नक्षत्रसहित चन्द्रमाकी सुवर्णकी प्रतिमा बना करके वस्त्राभूषण आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको दान कर दे। व्रती यदि इस व्रतको निरन्तर न कर सके तो एक पक्षके व्रतको ही करके उद्यापन कर ले। पार्थ! पौर्णमासी-व्रत करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो चन्द्रमाकी तरह सुशोभित होता है और पुत्र-पौत्र, धन, आरोग्य आदि प्राप्तकर बहुत कालतक सुख भोग कर अन्त-समयमें प्रयागमें प्राण त्यागकर विष्णुलोकको जाता है। जो पुरुष पूर्णिमाको चन्द्रमाका पूजन और अमावास्याको पितृ-तर्पण, पिण्डदान आदि करते हैं, वे कभी धन-धान्य-संतान आदिसे च्युत नहीं होते। (अध्याय ९९)

वैशाखी, कार्तिकी और माघी पूर्णिमाकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! संवत्सरमें कौन-कौन तिथियाँ स्नान-दान आदिमें अधिक पुण्यप्रद हैं। उनका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! वैशाख, कार्तिक और माघ—इन तीन महीनोंकी पूर्णिमाएँ स्नान-दान आदिके लिये अति श्रेष्ठ हैं। इन तिथियोंमें स्नान, दान आदि अवश्य करने चाहिये। इन तिथियोंमें तीर्थोंमें स्नान करे और यथाशक्ति दान दे। वैशाखीको उज्जयिनी (शिप्रा) में, कार्तिकीको पुष्करमें और माघीको वाराणसी (गङ्गा)में स्नान करना चाहिये। इस दिन जो पितरोंका तर्पण करता है, वह अनन्त फल पाता है और पितरोंका उद्धार करता है। वैशाख-पूर्णिमाको अन्न, सुवर्ण और वस्त्रसहित जलपूर्ण कलश ब्राह्मणको दान करनेसे व्रती सर्वथा शोकमुक्त हो जाता है। इस व्रतमें सुन्दर मधुर भोजनसे परिपूर्ण पात्र, गौ, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्र आदिका दान करना चाहिये। माघ-पूर्णिमाको देवता और पितरोंका तर्पण कर सुवर्णसहित तिलपात्र, कम्बल, रुईके वस्त्र, कपास, रत्न आदि ब्राह्मणोंको दे। कार्तिक-पूर्णिमाको वृषोत्सर्ग करे। भगवान् विष्णुका नीराजन करे। हाथी, घोड़े, रथ और घृत-धेनु आदि दस धेनुओंका दान करे और केला, खजूर, नारियल, अनार, संतरा, ककड़ी, बैगन, करेला, कुंदुरु, कूष्माण्ड आदि फलोंका दान करे। इन पुण्य तिथियोंमें जो स्नान, दान आदि नहीं करते, वे जन्मान्तरमें रोगी और दरिद्री होते हैं। ब्राह्मणोंको दान देनेका तो फल है ही, परंतु बहन, भानजे, बुआ आदिको तथा दरिद्र बन्धुओंको भी दान देनेसे बड़ा पुण्य होता है। मित्र, कुलीन व्यक्ति, विपत्तिसे पीड़ित व्यक्ति, दरिद्री और आशासे आये अतिथिको दान देनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। राजन्! सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्र जब वन चले गये थे, उस समय भरतजी अपने ननिहालमें थे। इधर लोगोंने माता कौसल्याको उनके विषयमें सशंकित कर दिया कि श्रीरामके वनगमनमें भरत ही मुख्य हेतु हैं। फिर जब वे ननिहालसे वापस आये और उन्हें सारी बातें ज्ञात हुई तो उन्होंने माताको अनेक प्रकारसे समझाया और शपथ भी ली, पर माताको विश्वास न हुआ, किंतु जब भरतने कहा कि 'माँ! भगवान् श्रीरामके वन-गमनमें यदि मेरी सम्मति रही हो तो देवताओंद्वारा पूजित तथा अनेक पुण्योंको प्रदान करनेवाली वैशाख, कार्तिक तथा माघकी पूर्णिमाएँ मेरे बिना स्नान-दानके ही व्यतीत हों और मुझे निम्न गति प्राप्त हो।' इस महान् शपथको सुनते ही माताको

विश्वास हो गया और उन्होंने भरतको अपने अङ्कमें ले लिया तथा अनेक प्रकारसे आश्वस्त किया। महाराज ! इन तीनों तिथियोंका सम्पूर्ण माहात्म्य कौन वर्णन कर सकता है। मैंने संक्षेपमें कहा है। इन तीनों तिथियोंको जल, अन्न, वस्त्र, स्वर्णपात्र, छत्र आदि दान करनेवाले पुरुष इन्द्रलोकको प्राप्त करते हैं। (अध्याय १००)

युगादि तिथियोंकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आप उन तिथियोंका वर्णन करें, जिनमें स्वल्प भी किया गया स्नान, दान, जप आदि पुण्यकर्म अक्षय हो जाते हैं और महान् धर्म तथा शुभ फल प्राप्त होता है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मैं आपको अत्यन्त रहस्यकी बात बताता हूँ, जिसे आजतक मैंने किसीसे नहीं कहा था। वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया, कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी नवमी, भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी और माघकी पूर्णिमा—ये चारों युगादि तिथियाँ हैं। अर्थात् इन तिथियोंमें क्रमशः सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि—चारों युगोंका प्रारम्भ हुआ है। इन तिथियोंको उपवास, तप, दान, जप, होम आदि करनेसे कोटि गुना पुण्य प्राप्त होता है। वैशाख शुक्ल तृतीयाको गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्राभूषणादिसे लक्ष्मीसहित नारायणका पूजन कर सवत्सा लवण-धेनुका दान करना चाहिये। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी नवमीको नदी, तड़ाग आदिमें स्नान कर पुष्प, धूप, नैवेद्य आदि उपचारोंसे उमाके साथ नीलकण्ठ भगवान् शंकरकी पूजा कर तिल-धेनुका दान करना चाहिये। भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशीको पितृ-तर्पण कर शहद और घृतयुक्त अनेक प्रकारके पकान्नोंसे ब्राह्मण-भोजन कराये तथा दूध देनेवाली सुन्दर सुपुष्ट सवत्सा प्रत्यक्ष गौ ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये। माघ-पूर्णिमाको गायत्रीसहित ब्रह्माजीका पूजन कर सुवर्ण, वस्त्र अनेक प्रकारके फलोंसहित नवनीत-धेनुका दान करना चाहिये।

राजन् ! इस प्रकार दान करनेवालोंको तीनों लोकोंमें किसी वस्तुका अभाव नहीं होता। इन युगादि तिथियोंमें जो दान दिया जाता है वह अक्षय होता है। निर्धन हो तो थोड़ा-थोड़ा ही दान करे, उसका भी अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। वित्तके अनुसार शय्या, आसन, छतरी, जूता, वस्त्र, सुवर्ण, भोजन आदि ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इन तिथियोंमें यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन भी कराये। अनन्तर प्रसन्न-मनसे बन्धु-बान्धवोंके साथ मौन हो स्वयं भी भोजन करे। युगादि तिथियोंमें दान-पूजन आदि करनेसे कायिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं और दाता अक्षय स्वर्ग प्राप्त करता है।

(अध्याय १०१)

सावित्री-व्रतकथा एवं व्रत-विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! अब आप सावित्री-व्रतके विधानका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! सावित्री नामकी एक राजकन्याने वनमें जिस प्रकार यह व्रत किया था, स्त्रियोंके कल्याणार्थ मैं उस व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, उसे आप सुनें। प्राचीन कालमें मद्रदेश (पंजाब)में एक बड़ा पराक्रमी, सत्यवादी, क्षमाशील, जितेन्द्रिय और प्रजापालनमें तत्पर अश्वपति नामका राजा राज्य करता था, उसे कोई संतान न थी। इसलिये उसने सपत्नीक व्रतद्वारा सावित्रीकी आराधना की। कुछ कालके अनन्तर व्रतके प्रभावसे ब्रह्माजीकी पत्नी सावित्रीने प्रसन्न हो राजाको वर दिया कि 'राजन् ! तुम्हें (मेरे ही अंशसे) एक कन्या उत्पन्न होगी।' इतना कहकर सावित्री देवी अन्तर्धान हो गयीं और कुछ दिन बाद राजाको एक दिव्य कन्या उत्पन्न हुई। वह सावित्रीदेवीके वरसे प्राप्त हुई थी, इसलिये राजाने उसका नाम सावित्री ही रखा। धीरे-धीरे वह विवाहके योग्य हो गयी। सावित्रीने भी भृगुके उपदेशसे सावित्री-व्रत किया।

एक दिन वह व्रतके अनन्तर अपने पिताके पास गयी और प्रणाम कर वहाँ बैठ गयी। पिताने सावित्रीको विवाहयोग्य जानकर अमात्योंसे उसके विवाहके विषयमें मन्त्रणा की; पर उसके योग्य किसी श्रेष्ठ वरको न देखकर पिता अश्वपतिने सावित्रीसे कहा—'पुत्रि ! तुम वृद्धजनों तथा अमात्योंके साथ

जाकर स्वयं ही अपने अनुरूप कोई वर ढूँढ़ लो।' सावित्री भी पिताकी आज्ञा स्वीकार कर मन्त्रियोंके साथ चल पड़ी। स्वल्प कालमें ही राजर्षियोंके आश्रमों, सभी तीर्थों और तपोवनोंमें घूमती हुई तथा वृद्ध ऋषियोंका अभिनन्दन करती हुई वह मन्त्रियोंसहित पुनः अपने पिताके पास लौट आयी। सावित्रीने देखा कि राजसभामें देवर्षि नारद बैठे हुए हैं। सावित्रीने देवर्षि नारद और पिताको प्रणामकर अपना वृत्तान्त इस प्रकार बताया—'महाराज ! शाल्वदेशमें द्युमत्सेन नामके एक धर्मात्मा राजा हैं। उनके सत्यवान् नामक पुत्रका मैंने वरण किया है।' सावित्रीकी बात सुनकर देवर्षि नारद कहने लगे—'राजन् ! इसने बाल्य-स्वभाववश उचित निर्णय नहीं लिया। यद्यपि द्युमत्सेनका पुत्र सभी गुणोंसे सम्पन्न है, परंतु उसमें एक बड़ा भारी दोष है कि आजके ही दिन ठीक एक वर्षके बाद उसकी मृत्यु हो जायगी।' देवर्षि नारदकी वाणी सुनकर राजाने सावित्रीसे किसी अन्य वरको ढूँढ़नेके लिये कहा।

सावित्री बोली—'राजाओंकी आज्ञा एक ही बार होती है। पण्डितजन एक ही बार बोलते हैं और कन्या भी एक ही बार दी जाती है—ये तीनों बातें बार-बार नहीं होतीं[1]। सत्यवान् दीर्घायु हो अथवा अल्पायु, निर्गुण हो या गुणवान्, मैंने तो उसका वरण कर ही लिया; अब मैं दूसरे पतिको कभी नहीं चुनूँगी। जो कहा जाता है, उसका पहले विचारपूर्वक मनमें निश्चय कर लिया जाता है और जो वचन कह दिया जाय, वही करना चाहिये। इसलिये मैंने जो मनमें निश्चय कर कहा है, मैं वही करूँगी।' सावित्रीका ऐसा निश्चययुक्त वचन सुनकर नारदजीने कहा—'राजन् ! आपकी कन्याको यही अभीष्ट है तो इस कार्यमें शीघ्रता करनी चाहिये। आपका यह दान-कर्म निर्विघ्न सम्पन्न हो।' इस तरह कहकर नारदमुनि स्वर्ग चले गये और राजाने भी शुभ मुहूर्तमें सावित्रीका सत्यवान्से विवाह कर दिया। सावित्री भी मनोवाञ्छित पति प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। दोनों अपने आश्रममें सुखपूर्वक रहने लगे। परंतु नारदमुनिकी वाणी सावित्रीके हृदयमें खटकती रहती थी। जब वर्ष पूरा होनेको आया, तब सावित्रीने विचार किया कि अब मेरे पतिकी मृत्युका समय समीप आ गया है। यह सोचकर सावित्रीने भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीसे तीन रात्रिका व्रत[2] ग्रहण कर लिया और वह भगवती सावित्रीका जप, ध्यान, पूजन करती रही। उसे यह निश्चय था कि आजसे चौथे दिन सत्यवान्की मृत्यु होगी। सावित्रीने तीन दिन-रात नियमसे व्यतीत किये। चौथे दिन देवता-पितरोंको संतुष्ट कर उसने अपने ससुर और सासके चरणोंमें प्रणाम किया।

सत्यवान् वनसे काष्ठ लाया करता था। उस दिन भी वह काष्ठ लेनेके लिये जाने लगा। सावित्री भी उसके साथ जानेको उद्यत हो गयी। इसपर सत्यवान्ने सावित्रीसे कहा—'वनमें जानेके लिये अपने सास-ससुरसे पूछ लो।' वह पूछने गयी। पहले तो सास-ससुरने मना किया, किंतु सावित्रीके बार-बार आग्रह करनेपर उन्होंने जानेकी आज्ञा दे दी। दोनों साथ-साथ वनमें गये। सत्यवान्ने वहाँ काष्ठ काटकर बोझ बाँधा, परंतु उसी समय उसके मस्तकमें महान् वेदना उत्पन्न हुई। उसने सावित्रीसे कहा—'प्रिये ! मेरे सिरमें बहुत व्यथा है, इसलिये थोड़ी देर विश्राम करना चाहता हूँ।' सावित्री अपने पतिके सिरको अपनी गोदमें लेकर बैठ गयी। इतनेमें ही यमराज वहाँ आ गये। सावित्रीने उन्हें देखकर प्रणाम किया और कहा—'प्रभो ! आप देवता, दैत्य, गन्धर्व आदिमेंसे कौन हैं ? मेरे पास क्यों आये हैं ?'

धर्मराजने कहा—सावित्री ! मैं सम्पूर्ण लोकोंका नियमन करनेवाला हूँ। मेरा नाम यम है। तुम्हारे पतिकी आयु समाप्त हो गयी है, परंतु तुम पतिव्रता हो, इसलिये मेरे दूत इसको न ले जा सके। अतः मैं स्वयं ही यहाँ आया हूँ। इतना कहकर यमराजने सत्यवान्के शरीरसे अङ्गुष्ठमात्रके पुरुषको खींच लिया और उसे लेकर अपने लोकको चल पड़े। सावित्री भी उनके पीछे चल पड़ी। बहुत दूर जाकर यमराजने सावित्रीसे कहा—'पतिव्रते ! अब तुम लौट जाओ। इस मार्गमें इतनी दूर कोई नहीं आ सकता।'

सावित्रीने कहा—महाराज ! पतिके साथ आते हुए मुझे न तो ग्लानि हो रही है और न कुछ श्रम ही हो रहा है।

१-सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः। सकृत् प्रदीयते कन्या त्रीण्येतानि सकृत्सकृत्॥ (उत्तरपर्व १०२। २९)

२-यह व्रत अन्य वचनोंके अनुसार ज्येष्ठ कृष्ण तथा शुक्ल द्वादशीसे पूर्णिमातक करनेकी परम्परा भी लोकमें प्रसिद्ध है।

मैं सुखपूर्वक चली आ रही हूँ। जिस प्रकार सज्जनोंकी गति संत हैं, वर्णाश्रमोंका आधार वेद है, शिष्योंका आधार गुरु और सभी प्राणियोंका आश्रय-स्थान पृथ्वी है, उसी प्रकार स्त्रियोंका एकमात्र आश्रय-स्थान उसका पति ही है अन्य कोई नहीं[1]।

इस प्रकार सावित्रीके धर्म और अर्थयुक्त वचनोंको सुनकर यमराज प्रसन्न होकर कहने लगे—'भामिनि! मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ, तुम्हें जो वर अभीष्ट हो वह माँग लो।' तब सावित्रीने विनयपूर्वक पाँच वर माँगे—(१) मेरे ससुरके नेत्र अच्छे हो जायँ और उन्हें राज्य मिल जाय। (२) मेरे पिताके सौ पुत्र हो जायँ। (३) मेरे भी सौ पुत्र हों। (४) मेरा पति दीर्घायु प्राप्त करे तथा (५) हमारी सदा धर्ममें दृढ़ श्रद्धा बनी रहे। धर्मराजने सावित्रीको ये सारे वर दे दिये और सत्यवान्‌को भी दे दिया। सावित्री प्रसन्नतापूर्वक अपने पतिको साथ लेकर आश्रममें आ गयी। भाद्रपदकी पूर्णिमाको जो उसने सावित्री-व्रत किया था, यह सब उसीका फल है!

युधिष्ठिरने पुनः कहा—भगवन्! अब आप सावित्री-व्रतकी विधि विस्तारपूर्वक बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! सौभाग्यकी इच्छावाली स्त्रीको भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको पवित्र होकर तीन दिनके लिये सावित्री-व्रतका नियम ग्रहण करना चाहिये। यदि तीन दिन उपवास रहनेकी शक्ति न हो तो त्रयोदशीको नक्तव्रत, चतुर्दशीको अयाचित-व्रत और पूर्णिमाको उपवास करे। सौभाग्यकी कामनावाली नारी नदी, तड़ाग आदिमें नित्य-स्नान करे और पूर्णिमाको सरसोंका उबटन लगाकर स्नान करे।

यथाशक्ति मिट्टी, सोने या चाँदीकी ब्रह्मासहित सावित्रीकी प्रतिमा बनाकर बाँसके एक पात्रमें स्थापित करे और दो रक्त वर्णके वस्त्रोंसे उसे आच्छादित करे। फिर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यसे पूजन करे। कूष्माण्ड, नारियल, ककड़ी, तुरई, खजूर, कैथ, अनार, जामुन, जम्बीर, नारंगी, अखरोट, कटहल, गुड़, लवण, जीरा, अंकुरित अन्न, सप्तधान्य तथा गलेका डोरा (सावित्री-सूत्र) आदि सब पदार्थ बाँसके पात्रमें रखकर सावित्रीदेवीको अर्पण कर दे। रात्रिके समय जागरण करे। गीत, वाद्य, नृत्य आदिका उत्सव करे। ब्राह्मण सावित्रीकी कथा कहें। इस प्रकार सारी रात्रि उत्सवपूर्वक व्यतीत कर प्रातः व्रती नारी सब सामग्रीसहित सावित्रीकी प्रतिमा श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणको दान कर दे। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराकर स्वयं भी हविष्यान्न-भोजन करे।

राजन्! इसी प्रकार ज्येष्ठ मासकी अमावास्याको वटवृक्षके नीचे काष्ठभारसहित सत्यवान् और महासती सावित्रीकी प्रतिमा स्थापित कर उनका विधिवत् पूजन करना चाहिये। रात्रिको जागरण आदि कर प्रातः वह प्रतिमा ब्राह्मणको दान कर दे। इस विधानसे जो स्त्रियाँ यह सावित्री-व्रत करती हैं, वे पुत्र-पौत्र-धन आदि पदार्थोंको प्राप्त कर चिर-कालतक पृथ्वीपर सब सुख भोग कर पतिके साथ ब्रह्मलोकको प्राप्त करती हैं। यह व्रत स्त्रियोंके लिये पुण्यवर्धक, पापहारक, दुःखप्रणाशक और धन प्रदान करनेवाला है। जो नारी भक्तिसे इस व्रतको करती है, वह सावित्रीकी भाँति दोनों कुलोंका उद्धार कर पतिसहित चिरकालतक सुख भोगती है। जो इस माहात्म्यको पढ़ते अथवा सुनते हैं, वे भी मनोवाञ्छित फल प्राप्त करते हैं। (अध्याय १०२)

महाकार्तिकी-व्रतके प्रसंगमें रानी कलिंगभद्राका आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! पूर्वकालमें मध्य देशके वृषस्थल नामक स्थानमें महाराज दिलीपकी कलिंगभद्रा नामकी एक सर्वगुणसम्पन्ना महारानी थी। वह सदा ब्राह्मणोंको दान देती तथा देवार्चन करती रहती। एक समय उसने कार्तिक मासमें छः महीनेका कृत्तिका-व्रतका संकल्प लिया। वह प्रत्येक पारणामें नित्य पूजन, दान, ब्राह्मण-भोजन, हवन आदिमें तत्पर रहती। एक बार व्रतमें जब किंचित् कालावशेष था, तब वह रात्रिमें अपने पतिके साथ विश्राम कर रही थी। उसी समय अचानक एक भयंकर सर्पने उसे डँस लिया। फलस्वरूप उसके प्राण निकल गये और वह

१-सतां सन्तो गतिर्नान्या स्त्रीणां भर्ता सदा गतिः। वेदो वर्णाश्रमाणां च शिष्याणां च गतिर्गुरुः॥
सर्वेषामेव जन्तूनां स्थानमस्ति महीतलम्। भर्तार एव मनुजस्त्रीणां नान्यः समाश्रयः॥ (उत्तरपर्व १०२। ५५-५६)

जन्मान्तरमें बकरी बनी, परंतु व्रतके प्रभावसे उसे अपने पूर्वजन्मकी स्मृति बनी हुई थी। उसने अपना कृत्तिका-व्रत फिर ग्रहण किया। वह अपने यूथसे अलग होकर उपवास करने लगी।

एक बार कार्तिक मासमें किसी दूसरेके खेतमें जब वह चर रही थी, तब उस खेतका स्वामी उसे पकड़कर अपने घर ले आया। जातिस्मर अत्रिऋषिने उस बकरीको देखा और यह जान लिया कि यह रानी कलिंगभद्रा है। दयाकर उन्होंने उसे बन्धनसे मुक्त करा दिया। वहाँसे छूटकर उसने बेरके पत्ते खाकर शीतल जल पिया और कृत्तिका-व्रतका पारण किया। ऋषि अत्रि उसे योगज्ञानका उपदेश देकर अपने आश्रमको चले गये और वह योगेश्वरी अपने व्रतमें पुनः तत्पर हो गयी तथा कुछ कालके अनन्तर उसने योगबलसे अपने प्राण त्याग दिये। तदनन्तर वह गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याके गर्भसे उत्पन्न हुई। उस समय उसका नाम योगलक्ष्मी हुआ। गौतममुनिने महर्षि शाण्डिल्यमुनिसे योगलक्ष्मीका विवाह कर दिया। वह भी शाण्डिल्यके घरमें सरस्वती, स्वाहा, शची, अरुन्धती, गौरी, राज्ञी, गायत्री, महालक्ष्मी तथा महासतीकी भाँति सुशोभित हुई। वह देवता, पितर और अतिथियोंके सत्कारमें नित्य लगी रहती। ब्राह्मणोंको भोजन कराती।

एक दिन महर्षि वहाँ आये और उन्होंने योगबलसे सारा वृत्तान्त जान लिया और पूछा—'महाभागे योगलक्ष्मि! कृत्तिकाएँ कितनी हैं?' यह सुनकर महासती योगलक्ष्मीको भी पूर्ववृत्त स्मरण हो आया और उसने कहा—'महायोगिन्! कृत्तिकाएँ छः हैं।' यह सुनकर दयालु अत्रिमुनिने पुनः उसे मन्त्र और कृत्तिका-व्रतका उपदेश दिया, जिसके करनेसे उसने चिरकालतक संसारका सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! कृत्तिका-व्रतकी क्या विधि है? इसे आप बतायें।

भगवान् कहने लगे—महाराज! कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्रमें बृहस्पति या सोमवार होनेपर महाकार्तिकीका योग होता है। महाकार्तिकी तो बहुत वर्षोंमें और बड़े पुण्यसे प्राप्त होती है। इसलिये साधारण कार्तिकी पूर्णिमाको भी उपवास करे। कार्तिकी पूर्णिमाको प्रातः ही दन्तधावन आदि कर नक्तव्रतका अथवा उपवासका नियम ग्रहण करे। पुष्कर, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, नैमिष, शालग्राम, कुशावर्त, मूलस्थान, शकन्तुल, गोकर्ण, अर्बुद, अमरकण्टक आदि किसी पवित्र तीर्थमें अथवा अपने घरमें ही स्नान करे। फिर देवता, ऋषि, पितर और अतिथिका पूजन कर हवन करे। सायंकालके समय घृत और दुग्धसे पूर्ण छः पात्रोंमें सुवर्ण, चाँदी, रत्न, नवनीत, अन्नकण तथा पिष्टसे छः कृत्तिकाओंको मूर्ति बनाकर स्थापित करे। फिर उन्हें रक्तसूत्रसे आवेष्टित कर सिंदूर, कुंकुम, चन्दन, चमेलीके पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनका पूजन कर कृत्तिकाओंकी मूर्तियोंको ब्राह्मणको दान कर दे। दान करते समय यह मन्त्र पढ़े—

ॐ सप्तर्षिदारा ह्यनलस्य वल्लभा
या ब्रह्मणा रक्षितयेति युक्ताः।
तुष्टाः कुमारस्य यथार्थमातरो
ममापि सुप्रीततरा भवन्तु॥

(उत्तरपर्व १०३। ३७)

ब्राह्मण भी मूर्ति ग्रहण करते समय इस प्रकार मन्त्रोच्चारण करे—

धर्मदाः कामदाः सन्तु इमा नक्षत्रमातरः।
कृत्तिका दुर्गसंसारात् तारयन्त्वावयोः कुलम्॥

(उत्तरपर्व १०३। ३९)

तदनन्तर ब्राह्मण सब सामग्री लेकर घर जाय और छः कदमतक यजमान उसके पीछे चले। इस प्रकार जो पुरुष कृत्तिका-व्रत करता है, वह सूर्यके समान प्रकाशमान विमानमें बैठकर नक्षत्रलोकमें जाता है। जो स्त्री इस व्रतको करती है, वह भी अपने पतिसहित नक्षत्रलोकमें जाकर बहुत कालतक दिव्य भोगोंका उपभोग करती है।

(अध्याय १०३)

मनोरथपूर्णिमा तथा अशोकपूर्णिमाव्रत-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! फाल्गुनकी पूर्णिमासे संवत्सरपर्यन्त किया जानेवाला एक व्रत है, जो मनोरथपूर्णिमाके नामसे विख्यात है। इस व्रतके करनेसे व्रतीके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। व्रतीको चाहिये कि वह

फाल्गुन मासकी पूर्णिमाको स्नान आदि कर लक्ष्मीसहित भगवान् जनार्दनका पूजन करे और चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय जनार्दनका स्मरण करता रहे और पाखण्ड, पतित, नास्तिक, चाण्डाल आदिसे सम्भाषण न करे, जितेन्द्रिय रहे। रात्रिके समय चन्द्रमामें नारायण और लक्ष्मीकी भावना कर अर्घ्य प्रदान करे। बादमें तैल एवं लवणरहित भोजन करे। इसी प्रकार चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ—इन तीन महीनोंमें भी पूजन एवं अर्घ्य प्रदान कर व्रती प्रथम पारणा करे। आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन—इन चार महीनोंकी पूर्णिमाको श्रीसहित भगवान् श्रीधरका पूजन कर चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे और पूर्ववत् दूसरी पारणा करे। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष तथा माघ—इन चार महीनोंमें भूतिसहित भगवान् केशवका पूजन कर चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे और तीसरी पारणा सम्पन्न करे। प्रत्येक पारणाके अन्तमें ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। प्रथम पारणाके चार महीनोंमें पञ्चगव्य, दूसरी पारणाके चार महीनोंमें कुशोदक और तीसरी पारणामें सूर्यकिरणोंसे तप्त जलका प्राशन करे। रात्रिके समय गीत-वाद्यद्वारा भगवान्‌का कीर्तन करे। प्रतिमास जलकुम्भ, जूता, छतरी, सुवर्ण, वस्त्र, भोजन और दक्षिणा ब्राह्मणको दान करे। देवताओंके स्वामी भगवान्‌की मार्गशीर्ष आदि बारह महीनोंमें क्रमशः केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर तथा हृषीकेश, राम, पद्मनाभ और दामोदर—इन नामोंका कीर्तन करनेवाला व्यक्ति दुर्गतिसे उद्धार पा जाता है। यदि प्रतिमास दान देनेमें समर्थ न हो तो वर्षके अन्तमें यथाशक्ति सुवर्णका चन्द्रबिम्ब बनाकर फल, वस्त्र आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको निवेदित कर दे। इस प्रकार व्रत करनेवाले पुरुषको अनेक जन्मपर्यन्त इष्टका वियोग नहीं होता। उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और वह पुरुष नारायणका स्मरण करता हुआ दिव्यलोक प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! अब मैं अशोकपूर्णिमा-व्रतका वर्णन करता हूँ। इस व्रतको करनेसे मनुष्यको कभी शोक नहीं होता। फाल्गुनकी पूर्णिमाको अङ्गोंमें मृत्तिका लगाकर नदी आदिमें स्नान करे। मृत्तिकाकी एक वेदी बनाकर उसपर भगवान् भूधर और अशोका नामसे धरणीदेवीका पुष्प, नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन करे। पूजनके अनन्तर हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करे—'धरणीदेवि! आप सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को धारण करनेवाली हैं। आपको जिस प्रकार भगवान् जनार्दनने रसातलसे लाकर प्रतिष्ठित करके शोकरहित किया है, उसी प्रकार आप मुझे भी सभी शोकोंसे मुक्त कर दें और मेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करें। इस प्रकार प्रार्थना कर रात्रिमें चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे। उस दिन उपवास रखे अथवा रात्रिके समय तैल-क्षाररहित भोजन करे। फाल्गुन आदि चार-चार मासमें एक-एक पारणा करे और प्रत्येक पारणाके अन्तमें विशेष पूजा और जागरण करे। प्रथम पारणामें धरणी, द्वितीयमें मेदिनी और तृतीयमें वसुन्धरा नामसे पूजन करे। वर्षके अन्तमें सवत्सा गौ, भूमि, वस्त्र, आभूषण आदि ब्राह्मणोंको दान करे। यह व्रत पातालमें स्थित धरणीदेवीने किया था, तब भगवान्‌ने वाराह रूप धारण कर उनका उद्धार किया और प्रसन्न होकर कहा कि 'धरणी-देवि! तुम्हारे इस व्रतसे मैं परम संतुष्ट हूँ, जो कोई भी पुरुष-स्त्री भक्तिसे इस व्रतको करते हुए मेरा पूजन करेंगे और यथाविधि पारणा करेंगे, वे जन्म-जन्ममें सब प्रकारके क्लेशोंसे मुक्त हो जायँगे और तुम्हारे समान ही कल्याणके भाजन हो जायँगे।' (अध्याय १०४-१०५)

अनन्तव्रत-माहात्म्यमें कार्तवीर्यके आविर्भावका वृत्तान्त

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! भक्तिपूर्वक नारायणकी आराधना करनेसे सभी मनोवाञ्छित फल प्राप्त हो जाते हैं, किंतु स्त्री-पुरुषोंके लिये संतानहीन होनेसे अधिक कोई दुःख और शोक नहीं है, परंतु कुपुत्रता तो और भी महान् दुःखका कारण है। योग्य संतान सब सुखोंका हेतु है। जगत्‌में वे धन्य हैं, जो सर्वगुणसम्पन्न, आरोग्य, बलवान्, धर्मज्ञ, शास्त्रवेत्ता, दीन-अनाथोंके आश्रय, भाग्यवान्, हृदयको आनन्द देनेवाले और दीर्घायु पुत्र प्राप्त करते हैं। प्रभो! मैं ऐसा व्रत सुनना चाहता हूँ कि जिसके करनेसे ऐसे शुभ लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न हों।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस सम्बन्धमें एक प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है। हैहयवंशमें माहिष्मती

(महेश्वर) नगरीमें कृतवीर्य नामका एक महान् राजा हुआ। उसकी एक हजार रानियोंमें प्रधान तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न शीलधना नामकी एक रानी थी। उसने एक दिन पुत्र-प्राप्तिके लिये ब्रह्मवादिनी मैत्रेयीसे पूछा। मैत्रेयीने उसको श्रेष्ठ अनन्तव्रतका उपदेश दिया और कहा— 'शीलधने! स्त्री या पुरुष जो कोई भी भगवान् जनार्दनकी आराधना करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। मार्गशीर्ष मासमें जिस दिन मृगशिरा नक्षत्र हो उस दिन स्नान कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदिसे अनन्त भगवान्के वाम चरणका पूजन करे और प्रार्थना कर एकाग्रचित्त हो बारंबार प्रणाम कर ब्राह्मणको दक्षिणा दे। रात्रिके समय तैल-क्षारवर्जित भोजन करे। इसी विधिसे पौष मासमें पुष्य नक्षत्रमें भगवान्के बायें कटिप्रदेशका पूजन करे। माघ मासमें मघा नक्षत्रमें भगवान्की बायीं भुजाका पूजन करे। फाल्गुनमें फाल्गुनी नक्षत्रमें बायें स्कन्धका पूजन करे। इन चार महीनोंमें गोमूत्रका प्राशन करे और सुवर्णसहित तिल ब्राह्मणको दान दे।

चैत्रमें चित्रा नक्षत्रमें भगवान्के दाहिने कन्धेका पूजन करे, वैशाखमें विशाखा नक्षत्रमें दाहिनी भुजाका पूजन करे, ज्येष्ठमें ज्येष्ठा नक्षत्रमें दाहिने कटिप्रदेशका पूजन करे। इसी प्रकार आषाढ़ मासमें आषाढ़ा नक्षत्रमें दाहिने पैरका पूजन करे। इन चार महीनोंमें पञ्चगव्यका प्राशन करे। ब्राह्मणको सुवर्ण-दान दे और रात्रिको भोजन करे।

श्रावण मासमें श्रवण नक्षत्रमें भगवान् विष्णुके दोनों चरणोंका पूजन करे। भाद्रपद मासमें उत्तराभाद्रपद नक्षत्रमें गुह्य-स्थानका पूजन करे। आश्विनमें अश्विनी नक्षत्रमें हृदयका पूजन करे और कार्तिक मासमें कृत्तिका नक्षत्रमें अनन्त-भगवान्के सिरका पूजन करे। इन चार महीनोंमें घृतका प्राशन करे और घृत ही ब्राह्मणको दान दे।

मार्गशीर्ष आदि प्रथम चार मासोंमें घृतसे, द्वितीय चैत्र आदि चार मासोंमें शालिधान्यसे और तृतीय श्रावण आदि चार मासोंमें अनन्तभगवान्की प्रीतिके लिये दुग्धसे हवन करे। हविष्यान्नका भोजन करना सभी मासोंमें प्रशस्त माना गया है। इस प्रकार बारह महीनोंमें तीन पारणा कर वर्षके अन्तमें सुवर्णकी अनन्तभगवान्की मूर्ति और चाँदीके हल-मूसल बनाये। बादमें मूर्तिको ताम्रपीठपर स्थापित कर दोनों ओर हल, मूसल रखकर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन करे। नक्षत्र, देवता, मास, संवत्सर और नक्षत्रोंके अधिपति चन्द्रमाका भी विधिपूर्वक पूजन करे। अनन्तर पुराणवेत्ता, धर्मज्ञ, शान्तिप्रिय ब्राह्मणका वस्त्र-आभूषण आदिसे पूजन कर यह सब सामग्री उसे अर्पण कर दे और '**अनन्तः प्रीयताम्**' यह वाक्य कहे। पीछे अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन, दक्षिणा आदि देकर संतुष्ट करे। इस विधिसे जो इस अनन्त-व्रतको सम्पन्न करता है, वह सभी अभीष्ट फलोंको प्राप्त करता है। शीलधने! यदि तुम उत्तम पुत्रकी इच्छा रखती हो तो विधिपूर्वक श्रद्धासे इस अनन्तव्रतको करो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! इस प्रकार मैत्रेयीसे उपदेश प्राप्त कर शीलधना भक्तिपूर्वक व्रत करने लगी। व्रतके प्रभावसे भगवान् अनन्त संतुष्ट हुए और उन्होंने उसे एक श्रेष्ठ पुत्र प्रदान किया। पुत्रके जन्म होते ही आकाश निर्मल हो गया। आनन्ददायक वायु प्रवाहित होने लगी। देवगण दुन्दुभि बजाने लगे। पुष्पवृष्टि होने लगी, सारे जगत्में मङ्गल होने लगा। गन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। सभी लोगोंका मन धर्ममें आसक्त हो गया। राजा कृतवीर्यने अपने पुत्रका नाम अर्जुन रखा। कृतवीर्यका पुत्र होनेसे वही अर्जुन कार्तवीर्य कहलाया। कार्तवीर्यार्जुनने कठिन तप किया और विष्णुभगवान्के अवतार श्रीदत्तात्रेयजीकी आराधना की। भगवान् दत्तात्रेयने यह वर दिया कि 'अर्जुन! तुम चक्रवर्ती सम्राट् होओगे। जो व्यक्ति सायंकाल और प्रातः '**नमोऽस्तु कार्तवीर्याय**' यह वाक्य उच्चारण करेगा, उसे प्रस्थभर तिल-दानका पुण्य प्राप्त होगा और जो तुम्हारा स्मरण करेंगे, उन पुरुषोंका द्रव्य कभी नष्ट नहीं होगा।' भगवान्से वर प्राप्त कर राजा कार्तवीर्य धर्मपूर्वक सप्तद्वीपा वसुमतीका पालन करने लगे। उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ सम्पन्न किये और शत्रुओंपर विजय प्राप्त की। इस तरह रानी शीलधनाने अनन्तव्रतके प्रभावसे अति उत्तम पुत्र प्राप्त किया, पिताको पुत्रजनित कोई भी दुःख नहीं हुआ। जो पुरुष अथवा स्त्री इस कार्तवीर्यके जन्मको श्रवण करते हैं, वे सात जन्मपर्यन्त संतानका दुःख प्राप्त नहीं करते। जो इस अनन्त-व्रतको भक्तिसे करता है, वह उत्तम संतान और ऐश्वर्यको प्राप्त करता है।

(अध्याय १०६)

मास-नक्षत्र-व्रतके माहात्म्यमें साम्भरायणीकी कथा

राजा युधिष्ठिरने कहा—प्रभो ! ऐश्वर्य आदिके प्राप्त न होनेसे इतना कष्ट नहीं होता, जितना प्राप्त होकर नष्ट हो जानेसे होता है। इसलिये आप ऐसा कोई व्रत बतायें, जिसके करनेसे ऐश्वर्य-भ्रंश और इष्ट-वियोग न हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! यह बड़ा भारी दुःख है कि प्राप्त हुए सुखका फिर नाश हो जाता है। इसके लिये श्रेष्ठ पुरुषोंको चाहिये कि वे बारह मासोंके बारह नक्षत्रोंमें भगवान् अच्युतकी विविध उपचारोंसे पूजा करें। इस नक्षत्र-व्रतको प्रथम कार्तिक मासकी कृत्तिकामें करना चाहिये। इसी प्रकार मार्गशीर्ष मासके मृगशिरा नक्षत्रमें, पौष मासके पुष्य नक्षत्रमें तथा माघ मासके मघा नक्षत्रमें करना चाहिये। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष तथा माघ—इन चार महीनोंमें खिचड़ीका भोग लगाये और यही ब्राह्मणको भोजन भी कराये। फाल्गुन आदि चार महीनोंके नक्षत्रोंमें संयाव (गोझिया) का नैवेद्य लगाये और आषाढ़ आदि चार महीनोंके नक्षत्रोंमें पायसका नैवेद्य लगाये। पञ्चगव्यका प्राशन करे और भक्तिसे नारायणका अर्चन कर इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमो नमस्तेऽच्युत मे क्षयोऽस्तु पापस्य वृद्धिं समुपैतु पुण्यम्।
ऐश्वर्यवित्तादि तथाऽक्षयं मे क्षयं च मा संततिरभ्युपैतु ॥
यथाच्युतस्त्वं परतः परस्मात् स ब्रह्मभूतः परतः परात्मा।
तथाच्युतं मे कुरु वाञ्छितं त्वं हरस्व पापं च तथाप्रमेय ॥
अच्युतानन्त गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम्।
तदक्षयममेयात्मन् कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥

(उत्तरपर्व १०७। १२—१४)

'अच्युत ! आपको बार-बार नमस्कार है। मेरे पापोंका नाश हो जाय, पुण्यकी वृद्धि हो, मेरे ऐश्वर्य, वित्त आदि अक्षय हों तथा मेरी संतति कभी नष्ट न हो। जिस प्रकारसे आप परसे परे ब्रह्मभूत और उससे भी परे अच्युत परमात्मा हैं, उसी प्रकार आप मुझे अच्युत कर दें। अप्रमेय ! आप मेरे पापोंको नष्ट कर दें। पुरुषोत्तम ! अच्युत, अनन्त, गोविन्द अमेयात्मन् ! मेरी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करें, मेरे ऊपर आप प्रसन्न हों।'

अनन्तर रात्रिके समय भगवान्‌का प्रसाद ग्रहण करे। वर्ष पूरा होनेपर जब भगवान् अच्युत जग जायँ, तब घृतपूर्ण ताम्रपात्र और दक्षिणा ब्राह्मणको देकर **'अच्युतः प्रीयताम्'** यह वाक्य कहे। इस प्रकार सात वर्षतक नक्षत्रव्रत करके सुवर्णकी अच्युतकी प्रतिमा बनवाकर स्थापित करे और उसके सामने भगवान्‌की परम भक्त और पतिव्रता साम्भरायणी ब्राह्मणीकी चाँदीकी मूर्ति बनाकर स्थापित करे। फिर उन दोनोंकी गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे पूजाकर क्षमा-प्रार्थना करे और सब सामग्री ब्राह्मणको दान कर दे। इस विधिसे जो श्रद्धापूर्वक व्रत करता है और भगवान् अच्युतका पूजन करता है, उसके धन, संतति, ऐश्वर्य आदिका कभी क्षय नहीं होता। उसकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। अतः मनुष्यको चाहिये कि सर्वथा अक्षय होनेके लिये इस मास-नक्षत्र-व्रतका पालन करे।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आपने साम्भरायणीकी प्रतिमा बनाकर पूजन करनेको कहा है, ये साम्भरायणी देवी कौन हैं ? आप इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! ऐसा सुना जाता है कि स्वर्गमें साम्भरायणी नामकी एक तपोधना कठिन व्रतोंका आचरण करनेवाली प्रख्यात सिद्धा नारी थी, जो देवताओंकी भी शंकाओंका समाधान कर देती थी। एक समय देवराज इन्द्रने देवगुरु बृहस्पतिसे पूछा—'भगवन् ! हमारे पहले जितने इन्द्र हो गये हैं, उनका क्या आचरण और चरित्र था, आप कृपाकर इसका वर्णन कीजिये।'

देवगुरु बृहस्पति बोले—'देवेन्द्र ! सब इन्द्रोंका वृत्तान्त तो मुझे नहीं मालूम, केवल अपने समयमें हुए इन्द्रोंके विषयमें मुझे जानकारी है।' इन्द्रने कहा—'गुरो ! आपके बिना हम यह वृत्तान्त किससे पूछें।' बृहस्पति कुछ काल विचारकर कहने लगे— 'पुरन्दर ! इस विषयको तपस्विनी धर्मज्ञा साम्भरायणी देवीसे ही पूछो।' यह सुनकर बृहस्पतिको साथ लेकर देवराज इन्द्र साम्भरायणीके पास गये। साम्भरायणीने बड़े सत्कारसे उनको बैठाया और अर्घ्यादिसे पूजन कर विनयपूर्वक आगमनका प्रयोजन पूछा। इसपर बृहस्पतिजी बोले—'साम्भरायणि ! देवराज इन्द्रको प्राचीन वृत्तान्त सुननेका बड़ा कौतूहल है। यदि आप विगत इन्द्रोंका चरित्र जानती हों तो उसे बतायें।'

साम्भरायणी बोली—'देवगुरो ! जितने इन्द्र हो चुके हैं, सबका वृत्तान्त मैं अच्छी तरह जानती हूँ। मैंने बहुत-से मनुओं, देवसृष्टियों और सप्तर्षियोंको देखा है। मनुपुत्रोंको भी जानती हूँ और सब मन्वन्तरोंका चरित्र मुझे ज्ञात है। जो आप पूछें, वही मैं बताऊँगी। साम्भरायणीका यह वचन सुनकर देवराज इन्द्र और देवगुरु बृहस्पतिने स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष आदि मनुओं, मन्वन्तरों और व्यतीत इन्द्रोंका वृत्तान्त उससे पूछा। साम्भरायणीने सम्पूर्ण वृत्तान्तोंका यथावत् वर्णन किया। राजन् ! उसने एक अत्यन्त आश्चर्यकी बात यह बतलायी कि पूर्वकालमें शंकुकर्ण नामका एक बड़ा प्रतापी दैत्य हुआ। वह लोकपालोंको जीतकर स्वर्गमें इन्द्रको जीतने आया और निर्भय हो इन्द्रके भवनमें प्रविष्ट हो गया। शंकुकर्णको देखकर इन्द्र भयभीत होकर छिप गये और वह इन्द्रके आसनपर बैठ गया। उसी समय देवताओंके साथ विष्णु भी वहाँ आये। भगवान्‌को देखकर शंकुकर्ण अत्यन्त प्रसन्न हो गया और उसने बड़े स्नेहसे भगवान्‌का आलिङ्गन किया। भगवान् उसकी नियतको समझ रहे थे, अतः उन्होंने भी उसका आलिङ्गन कर ऐसा निष्पीडन किया कि उसके सब अस्थिपंजर चूर-चूर हो गये और वह घोर शब्द करता हुआ मृत्युको प्राप्त हो गया। दैत्यको मरा जानकर इन्द्र भी उपस्थित हो गये और विष्णुभगवान्‌की स्तुति करने लगे।

साम्भरायणीने पुनः कहा—देवराज ! यह वृत्तान्त मैंने अपने नेत्रोंसे देखा था।

इन्द्रने साम्भरायणीसे पूछा—देवि ! इतने प्राचीन वृत्तान्तको आप कैसे जानती हैं ?

साम्भरायणीने कहा—देवेन्द्र ! स्वर्गका कोई ऐसा वृत्तान्त नहीं है, जो मैं न जानती होऊँ।

इन्द्रने पूछा—धर्मज्ञे ! आपने ऐसा कौन-सा सत्कर्म किया है, जिसके प्रभावसे आपको अक्षय स्वर्ग प्राप्त हुआ ?

साम्भरायणी बोली—मैंने प्रतिमास मास-नक्षत्रोंमें सात वर्षपर्यन्त भगवान् अच्युतका विधिवत् पूजन और उपवास किया है। यह सब उसी पुण्य-कर्मका फल है। जो पुरुष अक्षय स्वर्गवास, इन्द्रपद, ऐश्वर्य, संतति आदिकी इच्छा करे, उसे अवश्य ही भगवान् विष्णुकी आराधना करनी चाहिये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पदार्थ भगवान् विष्णुकी आराधनासे प्राप्त होते हैं। इतना सुनकर देवगुरु बृहस्पति और देवराज इन्द्र साम्भरायणीपर बहुत प्रसन्न हुए और दोनों भक्तिपूर्वक उसके द्वारा बताये गये मास-नक्षत्र-व्रतका पालन करने लगे।

(अध्याय १०७)

वैष्णव एवं शैव नक्षत्रपुरुष-व्रतोंका विधान

राजा युधिष्ठिरने पूछा—यदुसत्तम ! पुरुष और स्त्रियोंको उत्तम रूप किस कर्मके करनेसे प्राप्त होता है ? आप सर्वाङ्गसुन्दर श्रेष्ठ रूपकी प्राप्तिका उपाय बताइये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! यही बात अरुन्धतीने वसिष्ठजीसे पूछी थी और महर्षि वसिष्ठने उनसे कहा था— 'प्रिये ! विष्णु भगवान्‌की बिना आराधना और पूजन किये उत्तम रूप प्राप्त नहीं हो सकता। जो पुरुष अथवा स्त्री उत्तम रूप, ऐश्वर्य और संतानकी अभिलाषा करे, उसे नक्षत्रपुरुषरूप भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये।' इसपर अरुन्धतीने नक्षत्रपुरुषव्रतका विधान पूछा। वसिष्ठजीने कहा—'प्रिये ! चैत्र माससे लेकर भगवान्‌के पाद आदि अङ्गोंका उपवासपूर्वक पूजन करे। स्नानादिसे पवित्र होकर नक्षत्रपुरुषरूपी भगवान् विष्णुकी प्रतिमा बनाकर उनके पादसे सिरतकके अङ्गोंका इस विधिसे पूजन करे। मूल नक्षत्रमें दोनों पैर, रोहिणी नक्षत्रमें दोनों जंघा, अश्विनीमें दोनों घुटनों, आषाढ़में दोनों ऊरुओं, दोनों फाल्गुनीमें गुह्यस्थान, कृत्तिकामें कटिप्रदेश, दोनों भाद्रपदाओंमें पार्श्वभाग और टखना, रेवतीमें दोनों कुक्षि, अनुराधामें वक्षःस्थल, धनिष्ठामें पीठ, विशाखामें दोनों भुजाएँ, हस्तमें दोनों हाथ, पुनर्वसुमें अंगुली, आश्लेषामें नख, ज्येष्ठामें ग्रीवा, श्रवणमें कर्ण, पुष्यमें मुख, स्वातीमें दाँत, शतभिषामें मुख, मघामें नासिका, मृगशिरामें नेत्र, चित्रामें ललाट, भरणीमें सिर और आर्द्रामें केशोंका पूजन करे। उपवासके दिन तैलाभ्यङ्ग न करे। नक्षत्रके देवताओं और नक्षत्रराज चन्द्रमाका भी प्रति नक्षत्रमें पूजन करे और विद्वान् ब्राह्मणको भोजन कराये। यदि व्रतमें अशौच आदि हो जाय तो दूसरे नक्षत्रमें उपवास कर पूजन करे। इस प्रकार माघ

मासमें व्रत पूरा हो जानेपर उद्यापन करे। अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णका नक्षत्रपुरुष बनाकर उसे अलंकृत करे, एक उत्तम शय्यापर प्रतिमा स्थापित करे और ब्राह्मण-दम्पतिको शय्यापर बैठाकर वस्त्राभूषण आदिसे उनका पूजन कर सप्तधान्य, सवत्सा गौ, छतरी, जूता, घृतपात्र और दक्षिणासहित वह नक्षत्रपुरुषकी प्रतिमा उन्हें दान कर दे। श्रद्धापूर्वक इस व्रतके करनेसे सर्वाङ्गसुन्दर रूप, मनकी प्रसन्नता, आरोग्य, उत्तम संतान, मधुर वाणी और जन्म-जन्मान्तरतक अखण्ड ऐश्वर्य प्राप्त होता है और सभी पाप निवृत्त हो जाते हैं। इतनी कथा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'महाराज ! इस प्रकार नक्षत्रपुरुष-व्रतका विधान वसिष्ठजीने अरुन्धतीको बतलाया। वही मैंने आपको सुनाया। जो इस विधिसे नक्षत्ररूप भगवान्‌का पूजन करते हैं, वे अवश्य ही उत्तम रूप पाते हैं।'

राजा युधिष्ठिरने पुनः पूछा—भगवन् ! शिवभक्तोंके कल्याणके लिये आप शैवनक्षत्रपुरुष-व्रतका विधान बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा— महाराज ! शैवनक्षत्र-पुरुष-व्रतके दिन भगवान् शंकरके अङ्गोंका पूजन और उपवास अथवा नक्तव्रत करना चाहिये। फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षमें जब हस्त नक्षत्र हो, उस दिनसे शैवनक्षत्रपुरुष-व्रतका नियम ग्रहण करना चाहिये और रातमें भगवान् शिवका पूजन करना चाहिये। हस्त आदि सत्ताईस नक्षत्रोंमें भगवान् शंकरके सत्ताईस नामोंसे उनके चरणसे लेकर सिरतककी क्रमशः अङ्ग-पूजा करनी चाहिये। रात्रिके समय तैल-क्षाररहित भोजन करे। प्रतिनक्षत्रमें सेरभर शालि-चावल और घृतपात्र ब्राह्मणको प्रदान करे। दो नक्षत्र एक दिन हो जायँ तो दो अङ्गोंका दो नामोंसे एक ही दिन पूजन करे। इस प्रकार व्रतकर पारणामें ब्राह्मणोंको भोजन, दक्षिणा आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। सुवर्णकी शिव-पार्वतीकी प्रतिमा बनाकर उसे उत्तम शय्यापर स्थापित करे। बादमें सभी उपचारोंसे पूजनकर कपिला गौ, बर्तन, छत्र, चामर, दर्पण, जूता, वस्त्र, आभूषण, अनुलेपन आदिसहित वह प्रतिमा ब्राह्मणको निवेदित कर दे। बादमें प्रदक्षिणा कर विसर्जन करे और शय्या, गौ आदि सब सामग्री ब्राह्मणके घर पहुँचा दे। महाराज ! दुश्शील, दाम्भिक, कुतार्किक, निन्दक, लोभी आदिको यह व्रत नहीं बताना चाहिये। शान्त-स्वभाव, सद्‌गुणी, शिवभक्त इस व्रतके अधिकारी हैं। इस व्रतके करनेसे महापातक भी निवृत्त हो जाते हैं। जो स्त्री पतिकी आज्ञा प्राप्त कर इस व्रतको सम्पन्न करती है, उसे कभी इष्ट-वियोग नहीं होता। जो इस व्रतके माहात्म्यको पढ़ता है अथवा श्रवण करता है उसके भी पितरोंका नरकसे उद्धार हो जाता है।

(अध्याय १०८-१०९)

भग्नव्रतकी प्रायश्चित्त-विधि तथा पण्यस्त्री-व्रत

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! यदि मनुष्य नक्षत्रपुरुष-व्रतको ग्रहण कर उसे न कर सके तो किस कर्मके द्वारा वह चीर्ण (कृत) माना जाता है, इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! यह अत्यन्त रहस्यपूर्ण बात है। आपके आग्रहसे मैं इसे बतला रहा हूँ। अनेक प्रकारके उपद्रव, मद, मोह या असावधानी आदिसे यदि व्रत-भग्न हो जायँ तो उनकी पूर्णताके लिये यह व्रत करना चाहिये। इस व्रतके करनेसे खण्डित-व्रत पूर्ण फल देनेवाले हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। जिस देवी-देवताका व्रत भग्न हो जाय, उसकी सुवर्ण अथवा चाँदीकी प्रतिमा बनाकर उस व्रतके दिन ब्राह्मणको बुलाकर प्रतिमाको पञ्चामृतसे स्नान कराये, बादमें जलपूर्ण कलशके ऊपर प्रतिमाको प्रतिष्ठितकर गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, वस्त्र, आभूषण तथा नैवेद्य आदिसे उनका पूजन करे। अनन्तर देवताके उद्देश्यसे नाममन्त्र (**ॐ अमुक देवाय नमः**) द्वारा अर्घ्य प्रदान करे तथा फिर व्रतकी पूर्णता एवं व्रतभङ्ग-दोषकी निवृत्तिके लिये इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे और भगवान्‌की शरण ग्रहण करे—

उपसन्नस्य दीनस्य प्रायश्चित्तकृताञ्जलेः ।
शरणं च प्रपन्नस्य कुरुष्वाद्य दयां प्रभो ॥
परत्र भयभीतस्य भग्नखण्डव्रतस्य च ।
कुरु प्रसादं सम्पूर्णं व्रतं सम्पूर्णमस्तु मे ॥
तपश्छिद्रं व्रतच्छिद्रं यच्छिद्रं भग्नके व्रते ।
तव प्रसादाद्देवेश सर्वमच्छिद्रमस्तु नः ॥

(उत्तरपर्व ११०। १३—१५)

तात्पर्य यह है कि 'प्रभो ! मैं आपकी शरण हूँ, मुझपर

आप दया करें। किसी भी प्रकारसे मेरे द्वारा किये गये व्रत, तप इत्यादि कर्मोंमें जो कोई भी त्रुटि, अपराध एवं च्युति हो गयी हो, हे देवदेवेश ! आपके अनुग्रहसे वह सब दोष दूर हो जायँ और मेरा व्रत पूर्ण हो जाय। आपको नमस्कार है।'

तदनन्तर दिक्पालोंको अर्घ्य प्रदान कर मुख्य देवताकी अङ्ग-पूजा करे और अन्तमें फिर प्रार्थना करे। ब्राह्मणका पूजन करे और ब्राह्मण भी व्रतकी पूर्णताके लिये इस प्रकार आशीर्वाद प्रदान करे—

वाक्सम्पूर्णं मनः पूर्णं पूर्णं कायव्रतेन ते।
सम्पूर्णस्य प्रसादेन भव पूर्णमनोरथः॥
ब्राह्मणा यत्प्रभाषन्ते ह्यनुमोदन्ति देवताः।
सर्वदेवमया विप्रा नैतद्वचनमन्यथा॥
जलधिः क्षारतां नीतः पावकः सर्वभक्षताम्।
सहस्रनेत्रः शक्रोऽपि कृतो विप्रैर्महात्मभिः॥
ब्राह्मणानां तु वचनाद् ब्रह्महत्या प्रणश्यति।
अश्वमेधफलं साग्रं प्राप्यते नात्र संशयः॥

व्यासवाल्मीकिवचनाद् ब्राह्मणवचनाच्च गर्गगौतमपराशरधौम्याङ्गिरसवसिष्ठनारदादिमुनिवचनात् सम्पूर्णं भवतु ते व्रतम्॥ (उत्तरपर्व ११०। २३—२७)

यजमान भी ब्राह्मणको बिदा कर सब सामग्री उसके घर भेज दे। पीछे पञ्चयज्ञकर भोजन करे। इस सम्पूर्ण व्रतको जो एक बार भी भक्तिसे करता है, वह खण्डित-व्रतका सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है और व्रतभङ्गके पापसे मुक्त हो जाता है। इस व्रतको जो करता है, वह धन, रूप, आरोग्य, कीर्ति आदि प्राप्त कर सौ वर्षपर्यन्त भूमिपर सुख भोगकर स्वर्ग प्राप्त करता है और अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है। महाराज ! प्रायश्चित्तरूप इस सम्पूर्ण व्रतको प्रसन्न हो महर्षि गर्गजीने मुझे बताया था और बाल्यावस्थामें मैंने भी इसे किया था। इसलिये राजन् ! आप भी इस व्रतको करें, जिससे जन्मान्तरोंमें भी किये खण्डित व्रत पूर्ण हो जायँ।

राजन् ! इसी प्रकार एक अन्य पण्यस्त्री-व्रत है, जो रविवारको हस्त, पुष्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र आनेपर प्रारम्भ किया जाता है तथा उसमें विधिपूर्वक विष्णुस्वरूप कामदेवका पूजन किया जाता है, अन्तमें सभी उपकरणोंसे युक्त शय्या तथा विष्णुप्रतिमा ब्राह्मणको दान कर दी जाती है। व्रती स्त्रीको चाहिये कि वह सदाचारके नियमोंका पालन करती रहे। इस व्रतके करनेसे पण्यस्त्रियों-जैसी अधम स्त्रियोंका भी उद्धार हो जाता है। (अध्याय ११०-१११)

वृन्ताक-त्याग एवं ग्रह-नक्षत्रव्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं वृन्ताक (बैगन) के त्यागकी विधि बता रहा हूँ। व्रतीको चाहिये कि एक वर्ष, छः मास अथवा तीन मास वृन्ताकका त्याग कर उद्यापन करे। उसके बाद संकल्पपूर्वक भरणी अथवा मघा नक्षत्रमें उपवासकर एक स्थण्डिल बनाकर उसपर अक्षत-पुष्पोंसे यमराजका तथा उनके परिकरोंका आवाहनकर गन्ध, पुष्प, नैवेद्य आदि उपचारोंसे यम, काल, नील, चित्रगुप्त, वैवस्वत, मृत्यु तथा परमेष्ठी—इन पृथक्-पृथक् नामोंसे विधिपूर्वक पूजन करे। तदनन्तर अग्निस्थापन कर तिल और घीसे इन्हीं नाम-मन्त्रोंके द्वारा हवन करे। तदनन्तर स्विष्टकृत् एवं प्रायश्चित्त होम करे। आभूषण, वस्त्र, छाता, जूता, काला कम्बल, काला बैल, काली गाय और दक्षिणाके साथ सोनेका बना हुआ वृन्ताक ब्राह्मणको दान कर दे और अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मण-भोजन कराये। ऐसा करनेसे पौण्डरीक-यज्ञका फल प्राप्त होता है। साथ ही व्रतीको सात जन्मतक यमका दर्शन नहीं करना पड़ता और वह दीर्घ समयतक स्वर्गमें समादृत होकर निवास करता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज ! अब मैं ग्रह-नक्षत्र-व्रतकी विधि बतलाता हूँ, जिसके करनेसे सभी क्रूर ग्रह शान्त हो जाते हैं और लक्ष्मी, धृति, तुष्टि तथा पुष्टिकी प्राप्ति होती है। जिस रविवारको हस्त नक्षत्र हो उस दिन भगवान् सूर्यका पूजन कर नक्तव्रत करना चाहिये। इस नक्तव्रतको सात रविवारतक भक्तिपूर्वक करके अन्तमें भगवान् सूर्यकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर ताम्रपात्रमें स्थापित करे। फिर उसे घीसे स्नान कराकर रक्त चन्दन, रक्त पुष्प, रक्त वस्त्र, धूप, दीप आदिसे पूजनकर लड्डूका भोग लगाये। जूता, छाता, दो लाल वस्त्र और दक्षिणाके साथ वह प्रतिमा ब्राह्मणको दे। इस व्रतको करनेसे आरोग्य, सम्पत्ति और संतानकी प्राप्ति होती है।

चित्रा नक्षत्रसे युक्त सोमवारसे आरम्भ कर सात सोमवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें चन्द्रमाकी चाँदीकी प्रतिमा बनाकर, चाँदी अथवा काँसेके पात्रमें स्थापित कर श्वेत पुष्प, श्वेत वस्त्र आदिसे उनका पूजन करे। दध्योदनका भोग लगाकर जूता, छाता तथा दक्षिणासहित वह मूर्ति ब्राह्मणको प्रदान करे। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये, इससे चन्द्रमा प्रसन्न होते हैं। उनके प्रसन्न होनेसे दूसरे सभी ग्रह प्रसन्न हो जाते हैं।

स्वाती नक्षत्रसे युक्त भौमवारसे आरम्भ कर सात भौमवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी भौमकी प्रतिमा बनाकर ताम्रपात्रमें स्थापित कर रक्त चन्दन, रक्त वस्त्र आदिसे पूजनकर घीयुक्त कसारका भोग लगाकर सब सामग्री ब्राह्मणको दे। इसी प्रकार विशाखायुक्त बुधवारको बुधका पूजन कर उद्यापनमें स्वर्णमयी बुधकी प्रतिमा ब्राह्मणको प्रदान कर दे। अनुराधा नक्षत्रसे युक्त बृहस्पतिवारके दिनसे सात बृहस्पतिवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी देवगुरु बृहस्पतिकी मूर्ति बनाकर सुवर्णपात्रमें स्थापित करे तदनन्तर गन्ध, पीत पुष्प, पीत वस्त्र, यज्ञोपवीत आदिसे उनकी पूजा करके खाँड़का भोग लगाकर सब सामग्री एवं मूर्ति ब्राह्मणको प्रदान कर दे। इसी प्रकार ज्येष्ठायुक्त शुक्रवारको व्रतका आरम्भ कर सात शुक्रवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी शुक्रकी प्रतिमा बनाकर चाँदी अथवा बाँसके पात्रमें स्थापित कर श्वेत चन्दन, श्वेत वस्त्र आदिसे पूजन कर घी और पायसका भोग लगाये। सब पदार्थ एवं प्रतिमा ब्राह्मणको प्रदान करे।

इसी विधिसे मूल नक्षत्रयुक्त शनिवारसे आरम्भ कर सात शनिवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें शनि, राहु और केतुका पूजन करना चाहिये और तिल तथा घीसे ग्रहोंके नाम-मन्त्रोंसे हवन करके नवग्रहोंकी समिधाओंसे प्रत्येक ग्रहको क्रमसे एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस बार आहुति दे। शनैश्चर आदिकी प्रतिमा लौह अथवा सुवर्णकी बनाये। कृशरान्नका भोग लगाकर सब सामग्रीसहित वे प्रतिमाएँ ब्राह्मणको प्रदान कर दे। इससे सभी ग्रहोंकी पीड़ा शान्त हो जाती है। इस व्रतको विधिपूर्वक करनेसे क्रूर ग्रह भी सौम्य एवं अनुकूल हो जाते हैं और उसे शान्ति प्रदान करते हैं।

(अध्याय ११२-११३)

शनैश्चर-व्रतके प्रसंगमें महामुनि पिप्पलादका आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! एक बार त्रेतायुगमें अनावृष्टिके कारण भयंकर दुर्भिक्ष पड़ गया। उस घोर अकालमें कौशिकमुनि अपनी स्त्री तथा पुत्रोंके साथ अपना निवास-स्थान छोड़कर दूसरे प्रदेशमें निवास करने निकल पड़े। कुटुम्बका भरण-पोषण दूभर हो जानेके कारण बड़े कष्टसे उन्होंने अपने एक बालकको मार्गमें ही छोड़ दिया। वह बालक अकेला भूख-प्याससे तड़पता हुआ रोने लगा। उसे अकस्मात् एक पीपलका वृक्ष दिखायी पड़ा। उसके समीप ही एक बावड़ी भी थी। बालकने पीपलके फलोंको खाकर ठंडा जल पी लिया और अपनेको स्वस्थ पाकर वह वहीं कठिन तपस्या करने लगा तथा नित्यप्रति पीपलके फलोंको खाकर समय व्यतीत करने लगा। अचानक वहाँ एक दिन देवर्षि नारद पधारे, उन्हें देखकर बालकने प्रणाम किया और आदरपूर्वक बैठाया। दयालु नारदजी उसकी अवस्था, विनय और नम्रताको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने बालकका मौञ्जीबन्धन आदि सब संस्कार कर पद-क्रम-रहस्यसहित वेदका अध्ययन कराया तथा साथ ही द्वादशाक्षर वैष्णवमन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**) का उपदेश दिया।

अब वह प्रतिदिन विष्णुभगवान्‌का ध्यान और मन्त्रका जप करने लगा। नारदजी भी वहीं रहे। थोड़े समयमें ही बालकके तपसे संतुष्ट होकर भगवान् विष्णु गरुड़पर सवार हो वहाँ पहुँचे। देवर्षि नारदके वचनसे बालकने उन्हें पहचान लिया, तब उसने भगवान्‌में दृढ़ भक्तिकी माँग की। भगवान्‌ने प्रसन्न होकर ज्ञान और योगका उपदेश प्रदान किया और अपनेमें भक्तिका आशीर्वाद देकर वे अन्तर्धान हो गये। भगवान्‌के उपदेशसे वह बालक महाज्ञानी महर्षि हो गया।

एक दिन बालकने नारदजीसे पूछा—'महाराज! यह किस कर्मका फल है जो मुझे इतना कष्ट उठाना पड़ा। इतनी छोटी अवस्थामें भी मैं क्यों ग्रहोंद्वारा पीड़ित हो रहा हूँ। मेरे माता-पिताका कुछ भी पता नहीं, वे कहाँ हैं। फिर भी मैं अत्यन्त कष्टसे जी रहा हूँ। द्विजोत्तम! सौभाग्यवश आपने

दया करके मेरा संस्कार किया और मुझे ब्राह्मणत्व प्रदान किया।' नारदजी यह वचन सुनकर बोले—'बालक! शनैश्चरग्रहने तुम्हें बहुत पीड़ा पहुँचायी और आज यह सम्पूर्ण देश उसके मन्दगतिसे चलनेके कारण उत्पीड़ित है। देखो, वह अभिमानी शनैश्चर ग्रह आकाशमें प्रज्वलित दिखायी पड़ रहा है।'

यह सुनकर बालक क्रोधसे अग्निके समान उद्दीप्त हो उठा। उसने उग्र दृष्टिसे देखकर शनैश्चरको आकाशसे भूमिपर गिरा दिया। शनैश्चर एक पर्वतपर गिरे और उनका पैर टूट गया, जिससे वे पंगु हो गये। देवर्षि नारद भूमिपर गिरे हुए शनैश्चरको देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे नाच उठे। उन्होंने सभी देवताओंको बुलाया। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, अग्नि आदि देवता वहाँ आये और नारदजीने शनैश्चरकी दुर्गति सबको दिखायी।

ब्रह्माजीने बालकसे कहा—महाभाग! तुमने पीपलके फल भक्षण कर कठिन तप किया है। अतः नारदजीने तुम्हारा पिप्पलाद[1] नाम उचित ही रखा है। तुम आजसे इसी नामसे संसारमें विख्यात होओगे। जो कोई भी शनिवारको तुम्हारा भक्तिभावसे पूजन करेंगे, अथवा 'पिप्पलाद' इस नामका स्मरण करेंगे, उन्हें सात जन्मतक शनिकी पीड़ा नहीं सहन करनी पड़ेगी और वे पुत्र-पौत्रसे युक्त होंगे। अब तुम शनैश्चरको पूर्ववत् आकाशमें स्थापित कर दो, क्योंकि इनका वस्तुतः कोई अपराध नहीं है। ग्रहोंकी पीड़ासे छुटकारा पानेके लिये नैवेद्य निवेदन, हवन, नमस्कार आदि करना चाहिये। ग्रहोंका अनादर नहीं करना चाहिये। पूजित होनेपर ये शान्ति प्रदान करते हैं[2]।

शनिकी ग्रहजन्य पीड़ाकी निवृत्तिके लिये शनिवारको स्वयं तैलाभ्यङ्ग करके ब्राह्मणोंको भी अभ्यङ्गके लिये तैल देना चाहिये। शनिकी लौह-प्रतिमा बनाकर तैलयुक्त लौह-पात्रमें रखकर एक वर्षतक प्रति शनिवारको पूजन करनेके बाद कृष्ण पुष्प, दो कृष्ण वस्त्र, कसार, तिल, भात आदिसे उनका पूजन कर काली गाय, काला कम्बल, तिलका तेल और दक्षिणासहित सब पदार्थ ब्राह्मणको प्रदान करना चाहिये। पूजन आदिमें शनिके इस मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये—

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः॥ (यजु० ३६। १२)

राज्य नष्ट हुए राजा नलको शनिदेवने स्वप्नमें अपने एक प्रार्थना-मन्त्रका उपदेश दिया था। उसी नाम-स्तुतिसे उन्हें पुनः राज्य उपलब्ध हुआ था। उस स्तुतिसे शनिकी प्रार्थना करनी चाहिये। सर्वकामप्रद वह स्तुति इस प्रकार है—

क्रोडं नीलाञ्जनप्रख्यं नीलवर्णसमस्रजम्।
छायामार्तण्डसम्भूतं नमस्यामि शनैश्चरम्॥
नमोऽर्कपुत्राय शनैश्चराय नीहारवर्णाञ्जनमेचकाय।
श्रुत्वा रहस्यं भवकामदश्च फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र॥
नमोऽस्तु प्रेतराजाय कृष्णदेहाय वै नमः।
शनैश्चराय क्रूराय शुद्धबुद्धिप्रदायिने॥
य एभिर्नामभिः स्तौति तस्य तुष्टो भवाम्यहम्।
मदीयं तु भयं तस्य स्वप्नेऽपि न भविष्यति॥

(उत्तरपर्व ११४। ३९—४२)

जो भी व्यक्ति प्रत्येक शनिवारको एक वर्षतक इस व्रतको करता है और इस विधिसे उद्यापन करता है, उसे कभी शनिकी पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती। यह कहकर ब्रह्माजी सभी देवताओंके साथ अपने परमधामको चले गये और पिप्पलादमुनिने भी ब्रह्माजीके आज्ञानुसार शनैश्चरको उनके स्थानपर प्रतिष्ठित कर दिया। महामुनि पिप्पलादने शनिग्रहकी

१-यहाँ यह कथा बड़ी सुन्दर है। इसके पढ़नेसे शनिग्रहकी पीड़ा भी शान्त हो जाती है। ये महर्षि अथर्वण पैप्पलादसंहिताके द्रष्टा हैं। इनकी कथा प्रायः अनेक व्रत-माहात्म्य एवं स्कन्द आदि पुराणोंमें मिलती है। पर अन्तर यह है कि अन्यत्र सर्वत्र इन्हें दधीचिऋषिका पुत्र बताया गया है। माताके नाममें भी थोड़ा अन्तर है, कहीं प्रातिथेयीका और कहीं सुवर्चाका नाम मिलता है, जो पतिके साथ सती हो गयी थीं। तब ये पीपलके द्वारा पालित हुए। सभी कथाएँ बड़ी पुण्यप्रद एवं शनि-पीड़ाको शान्त करनेवाली हैं। अन्तर कल्पभेदका है, अतः संदेह नहीं करना चाहिये।

२-चारवृत्तं शनैश्च शुभाशुभफलप्रदः। हतसाध्या ग्रहाश्चैते न भवन्ति कदाचन॥
बलिहोमनमस्कारैः शान्तिं यच्छन्ति पूजिताः। अतोऽर्थमस्य दिवसे स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम्॥ (उत्तरपर्व ११४। २९-३०)
इसी भावके श्लोक याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियोंमें भी आये हैं।

इस प्रकार प्रार्थना की—

कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः ।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः प्रीयतां मे ग्रहोत्तमः ॥

(उत्तरपर्व ११४ । ४७)

जो व्यक्ति शनैश्चरोपाख्यानको भक्तिपूर्वक सुनता है तथा शनिकी लौह-प्रतिमा बनाकर तेलसे भरे हुए लौह-कलशमें रखकर ब्राह्मणको दक्षिणासहित दान देता है, उसको कभी भी शनिकी पीड़ा नहीं होती। (अध्याय ११४)

आदित्यवार नक्त-व्रत तथा संक्रान्ति- व्रतके उद्यापनकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवान् गोविन्द ! आप कोई ऐसा व्रत बतलाइये, जो सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला, आरोग्यदायक और अनन्त फलप्रद हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! परब्रह्म विधाता जो परम सनातन धाम है, वह संसारमें सूर्य, अग्नि तथा चन्द्र—इन तीनोंमें विभक्त होकर स्थित है। कुरुनन्दन ! उस परमात्माकी आराधना कर मनुष्य क्या नहीं प्राप्त कर सकता ? इसलिये रविवारके दिन नक्तव्रत करना चाहिये। भगवान् सूर्यमें अनन्य भक्ति रखकर आदित्यवारको यह व्रत करना चाहिये। ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजाकर सायंकाल रक्तचन्दनसे एक द्वादशदल कमलकी रचना करे और उसके द्वादश दलोंमें सूर्य, दिवाकर, विवस्वान्, भग, वरुण, महेन्द्र, आदित्य, शान्त, सूर्यके अश्व, यम, मार्तण्ड तथा रविकी स्थापना करे और उनका पूजन कर तिल, रक्तचन्दन, फल तथा अक्षतसे युक्त अर्घ्य प्रदान करे। अनन्तर विसर्जन कर दे। रात्रिमें भगवान् भास्करका स्मरण करता हुआ तैलरहित भोजन करे। व्रतके पूर्व दिन शनिवारको तैलाभ्यङ्ग न करे। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त व्रत करके उद्यापन करे और यथाशक्ति गुड़से पूर्ण एक ताम्रपात्रमें स्वर्णकमल स्थापित करे तथा उसके ऊपर स्वर्णमयी भगवान् सूर्यकी द्विभुज प्रतिमा स्थापित करे, साथ ही एक सुवर्णमयी सवत्सा गौ भी स्थापित करे। इनका पूजन कर विद्वान् ब्राह्मणको यह सब सामग्री निवेदित कर दे।

इस प्रकार जो स्त्री-पुरुष इस व्रतको वर्षभर सम्पन्न कर विधिपूर्वक उद्यापन करते हैं, वे नीरोग, धार्मिक, धन-धान्य, पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न हो जाते हैं और अन्तमें सूर्यलोकको प्राप्त करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—राजन् ! अब मैं संक्रान्तिके समय किये जानेवाले उद्यापनरूप अन्य व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो इस लोकमें समस्त कामनाओंके फलका प्रदाता और परलोकमें अक्षय फलदायक है। सूर्यके उत्तरायण या दक्षिणायनके दिन अथवा विषुवयोगमें इस संक्रान्तिव्रतका आरम्भ करना चाहिये। इस व्रतमें संक्रान्तिके पहले दिन एक बार भोजन करके (रात्रिमें शयन करे।) संक्रान्तिके दिन प्रातःकाल दातून करनेके पश्चात् तिलमिश्रित जलसे स्नान करना चाहिये। सूर्य-संक्रान्तिके दिन भूमिपर चन्दनसे कर्णिकासहित अष्टदल कमलकी रचना करे और उसपर सूर्यका आवाहन करे। कर्णिकामें **'सूर्याय नमः'**, पूर्वदलपर **'आदित्याय नमः'**, अग्निकोणस्थित दलपर **'सप्तार्चिषे नमः'**, दक्षिण दलपर **'ऋङ्मण्डलाय नमः'**, नैर्ऋत्यकोणवाले दलपर **'सवित्रे नमः'**, पश्चिमदलपर **'वरुणाय नमः'**, वायव्यकोण-स्थित दलपर **'सप्तसप्तये नमः'**, उत्तरदलपर **'मार्तण्डाय नमः'** और ईशानकोणवाले दलपर **'विष्णवे नमः'**—इन मन्त्रोंसे सूर्यदेवको स्थापित कर उनकी बार-बार अर्चना करे। तत्पश्चात् वेदीपर भी चन्दन, पुष्पमाला, फल और खाद्य पदार्थोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये और अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। पुनः अपनी शक्तिके अनुसार सोनेका कमल बनवाकर उसे घृतपूर्ण पात्र और कलशके साथ ब्राह्मणको दान कर दे। तत्पश्चात् चन्दन और पुष्पयुक्त जलसे भूमिपर सूर्यदेवको अर्घ्य प्रदान करे (अर्घ्यका मन्त्रार्थ इस प्रकार है—) 'अनन्त ! आप ही विश्व हैं, विश्व आपका स्वरूप है, आप विश्वमें सर्वाधिक तेजस्वी, स्वयं उत्पन्न होनेवाले, धाता और ऋग्वेद, सामवेद एवं यजुर्वेदके स्वामी हैं, आपको बारंबार नमस्कार है।' इस विधिसे मनुष्यको प्रत्येक मासमें सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये अथवा (यदि ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो) वर्षकी समाप्तिके दिन यह सारा कार्य बारह बार करे (दोनोंका फल समान ही है)।

एक वर्ष व्यतीत होनेपर घृतमिश्रित खीरसे अग्नि और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भलीभाँति संतुष्ट करे और बारह गौ एवं

रत्नसहित स्वर्णमय कमलके साथ कलशोंको दान कर दे। इसी प्रकार सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी शेषनागसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनवाकर दान करना चाहिये। जो ऐसा करनेमें असमर्थ हों, वे आटेकी शेषसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनाकर स्वर्णनिर्मित सूर्यके साथ दान कर सकता है। जबतक इस मृत्युलोकमें महेन्द्र आदि देवगणों, हिमालय आदि पर्वतों और सातों समुद्रोंसे युक्त पृथ्वीका अस्तित्व है, तबतक स्वर्गलोकमें अखिल गन्धर्वसमूह उस व्रतीकी भलीभाँति पूजा करते हैं। पुण्य क्षीण होनेपर वह सृष्टिके आदिमें उत्तम कुल और शीलसे सम्पन्न होकर भूतलपर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होता है। वह सुन्दर रूप और सुन्दर पत्नीसे युक्त होता है, बहुत-से पुत्र और भाई-बन्धु उसके चरणोंकी वन्दना करते हैं। इस प्रकार जो मनुष्य सूर्य-संक्रान्तिकी इस पुण्यमयी अखिल विधिको भक्तिपूर्वक पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेकी सम्मति देता है, वह भी इन्द्रलोकमें देवताओंद्वारा पूजित होता है। (अध्याय ११५-११६)

भद्राका चरित्र एवं उसके व्रतकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! लोकमें भद्रा विष्टि नामसे प्रसिद्ध है, वह कैसी है, कौन है, वह किसकी पुत्री है, उसका पूजन किस विधिसे किया जाता है? कृपया आप बतानेका कष्ट करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भद्रा भगवान् सूर्यनारायणकी कन्या है। यह भगवान् सूर्यकी पत्नी छायासे उत्पन्न है और शनैश्चरकी सगी बहिन है। वह काले वर्ण, लम्बे केश, बड़े-बड़े दाँत और बहुत ही भयंकर रूपवाली है। जन्मते ही वह संसारका ग्रास करनेके लिये दौड़ी, यज्ञोंमें विघ्न-बाधा पहुँचाने लगी और उत्सवों तथा मङ्गल-यात्रा आदिमें उपद्रव करने लगी और पूरे जगत्‌को पीड़ा पहुँचाने लगी। उसके उच्छृङ्खल स्वभावको देखकर भगवान् सूर्य अत्यन्त चिन्तित हो उठे और उन्होंने शीघ्र ही उसका विवाह करनेका विचार किया। जब जिस-जिस भी देवता, असुर, किन्नर आदिसे सूर्यनारायणने विवाहका प्रस्ताव रखा, तब उस भयंकर कन्यासे कोई भी विवाह करनेको तैयार न हुआ। दुःखित हो सूर्यनारायणने अपनी कन्याके विवाहके लिये मण्डप बनवाया, पर उसने मण्डप-तोरण आदि सबको उखाड़कर फेंक दिया और सभी लोगोंको कष्ट देने लगी। सूर्यनारायणने सोचा कि इस दुष्टा, कुरूपा, स्वेच्छाचारिणी कन्याका विवाह किसके साथ किया जाय। इसी समय प्रजाके दुःखको देखकर ब्रह्माजीने भी सूर्यके पास आकर उनकी कन्याद्वारा किये गये दुष्कर्मोंको बतलाया। यह सुनकर सूर्यनारायणने कहा—'ब्रह्मन्! आप ही तो इस संसारके कर्ता तथा भर्ता हैं, फिर आप मुझसे ऐसा क्यों कह रहे हैं। जो भी आप उचित समझें वही करें।' सूर्यनारायणका ऐसा वचन सुनकर ब्रह्माजीने विष्टिको बुलाकर कहा—'भद्रे! बव, बालव, कौलव आदि करणोंके अन्तमें तुम निवास करो और जो व्यक्ति यात्रा, प्रवेश, माङ्गल्य कृत्य, खेती, व्यापार, उद्योग आदि कार्य तुम्हारे समयमें करे, उन्हींमें तुम विघ्न करो। तीन दिनतक किसी प्रकारकी बाधा न डालो। चौथे दिनके आधे भागमें देवता और असुर तुम्हारी पूजा करेंगे। जो तुम्हारा आदर न करें उनका कार्य तुम ध्वस्त कर देना।' इस प्रकार विष्टिको उपदेश देकर ब्रह्माजी अपने धामको चले गये, इधर विष्टि भी देवता, दैत्य, मनुष्य सब प्राणियोंको कष्ट देती हुई घूमने लगी। महाराज! इस तरहसे भद्राकी उत्पत्ति हुई और वह अति दुष्ट प्रकृतिकी है, इसलिये माङ्गलिक कार्योंमें उसका अवश्य त्याग करना चाहिये।

भद्रा पाँच घड़ी मुखमें, दो घड़ी कण्ठमें, ग्यारह घड़ी हृदयमें, चार घड़ी नाभिमें, पाँच घड़ी कटिमें और तीन घड़ी पुच्छमें स्थित रहती है। जब भद्रा मुखमें रहती है तब कार्यका नाश होता है, कण्ठमें धनका नाश, हृदयमें प्राणका नाश, नाभिमें कलह, कटिमें अर्थभंश होता है पर पुच्छमें निश्चितरूपसे विजय एवं कार्य-सिद्धि हो जाती है[1]।

१-मुखे तु घटिकाः पञ्च द्वे कण्ठे तु सदा स्थिते। हृदि चैकादश प्रोक्ताश्चतस्रो नाभिमण्डले॥
कट्यां पञ्चैव विज्ञेयास्तिस्रः पुच्छे जयावहाः। मुखे कार्यविनाशाय ग्रीवायां धननाशिनी॥

भद्राके बारह नाम हैं—(१) धन्या, (२) दधिमुखी, (३) भद्रा, (४) महामारी, (५) खरानना, (६) कालरात्रि, (७) महारुद्रा, (८) विष्टि, (९) कुलपुत्रिका, (१०) भैरवी, (११) महाकाली तथा (१२) असुरक्षयकरी।

इन बारह नामोंका प्रातःकाल उठकर जो स्मरण करता है, उसे किसी भी व्याधिका भय नहीं होता। रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है और सभी ग्रह अनुकूल हो जाते हैं। उसके कार्योंमें कोई विघ्न नहीं होता। युद्धमें तथा राजकुलमें वह विजय प्राप्त करता है[1] जो विधिपूर्वक नित्य विष्टिका पूजन करता है, निःसंदेह उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। अब मैं भद्राके व्रतकी विधि बता रहा हूँ—

राजन्! जिस दिन भद्रा हो उस दिन उपवास करना चाहिये। यदि रात्रिके समय भद्रा हो तो दो दिनतक एकभुक्त व्रत करना चाहिये। एक प्रहरके बाद भद्रा हो तो तीन प्रहरतक उपवास करना चाहिये अथवा एकभुक्त रहना चाहिये। स्त्री अथवा पुरुष व्रतके दिन सुगन्ध आमलक लगाकर सर्वौषधियुक्त जलसे स्नान करे अथवा नदी आदिपर जाकर विधिपूर्वक स्नान करे। देवता एवं पितरोंका तर्पण तथा पूजन कर कुशाकी भद्राकी मूर्ति बनाये और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसकी पूजा करे। भद्राके बारह नामोंसे एक सौ आठ बार हवन करनेके बाद तिल और पायस ब्राह्मणको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर तिलमिश्रित कृशरान्नका भोजन करना चाहिये। फिर पूजनके अन्तमें इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

छायासूर्यसुते देवि विष्टिरिष्टार्थदायिनि।
पूजितासि यथाशक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव॥

(उत्तरपर्व ११७।३९)

इस प्रकार सत्रह भद्राव्रत कर अन्तमें उद्यापन करे। लोहेकी पीठपर भद्राकी मूर्तिको स्थापित कर काला वस्त्र पहनाकर गन्ध, पुष्प आदिसे पूजन कर प्रार्थना करे। लोहा, तैल, तिल, बछड़ासहित काली गाय, काला कम्बल और यथाशक्ति दक्षिणाके साथ वह मूर्ति ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये और विसर्जन करना चाहिये। इस विधिसे जो भी व्यक्ति भद्राव्रत और व्रतका उद्यापन करता है, उसके किसी भी कार्यमें विघ्न नहीं पड़ता। भद्राव्रत करनेवाले व्यक्तिको प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी तथा ग्रह आदि कष्ट नहीं देते। उसका इष्टसे वियोग नहीं होता और अन्तमें उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है[2]। (अध्याय ११७)

महर्षि अगस्त्यकी कथा और उनके अर्घ्य-दानकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! अब आप सभी पापोंको दूर करनेवाले अगस्त्यमुनिके चरित्र, अर्घ्यदानकी विधि और अगस्त्योदय-कालका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! एक बार देवश्रेष्ठ मित्र और वरुण दोनों मन्दराचलपर कठिन तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्यामें बाधा डालनेके लिये इन्द्रने उर्वशी अप्सराको भेजा। उसे देखकर दोनों क्षुब्ध हो उठे। अपने मनके विकारको जानकर उन्होंने अपना तेज एक कुम्भमें स्थापित कर दिया। राजा निमिके शापसे उसी कुम्भसे प्रथम महर्षि वसिष्ठका अनन्तर दिव्य तपोधन महात्मा अगस्त्यका प्रादुर्भाव हुआ।

अगस्त्यमुनिका विवाह लोपामुद्रासे हुआ। अनन्तर विप्रोंसे घिरे हुए अगस्त्यमुनि अपनी पत्नीके साथ रहकर मलयपर्वतके एक प्रदेशमें वैखानस-विधिके अनुसार अत्यन्त

इदि प्राणहरा ज्ञेया नाभ्यां तु कलहावहा। कट्यामर्थपरिभ्रंशो विष्टिपुच्छे ध्रुवो जयः॥
(उत्तरपर्व ११७।२३—२५)

१-धन्या दधिमुखी भद्रा महामारी खरानना। कालरात्रिर्महारुद्रा विष्टिश्च कुलपुत्रिका॥
भैरवी च महाकाली असुराणां क्षयंकरी। द्वादशैव तु नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्॥
न च व्याधिर्भवेत् तस्य रोगी रोगात्प्रमुच्यते। ग्रहाः सर्वेऽनुकूलाः स्युर्न च विघ्नादि जायते॥
रणे राजकुले द्यूते सर्वत्र विजयी भवेत्॥ (उत्तरपर्व ११७।२७—३०)

२-भद्राके विषयमें ज्योतिष-ग्रन्थोंमें विस्तारसे वर्णन मिलता है, विशेषकर मुहूर्त-चिन्तामणिकी पीयूषधारा व्याख्यामें। पञ्चाङ्गोंकी यह व्यापक वस्तु है। यह प्रायः प्रत्येक द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी और द्वादशी-त्रयोदशीको लगी रहती है। इसका पूरा समय प्रायः २४ घंटेका होता है। इस अध्यायमें उसके रहस्यको ठीकसे समझानेका प्रयत्न किया गया है और उसकी शान्तिका भी उपाय बतलाया है।

कठोर तप करने लगे। वे बहुत कालतक तपस्या करते रहे, उसी समय बड़े ही दुराचारी और ब्राह्मणोंद्वारा किये जा रहे यज्ञोंका विध्वंस करनेवाले दो दैत्य जिनका नाम इल्वल और वातापि था, वहाँ उपस्थित हुए। ये दोनों बड़े ही मायावी थे। इन दोनोंका प्रतिदिनका कार्य यह था कि एक भाई मेष बनकर विविध प्रकारके भोजनोंका रूप धारण कर लेता और दूसरा भाई श्राद्धमें भोजन करने-हेतु ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देकर बुलाता और भोजन कराता। भोजन कर लेनेके तुरंत बाद ही इल्वल अपने भाईका नाम लेकर पुकारता। दैत्यकी पुकार सुनते ही उसका दूसरा भाई ब्राह्मणोंके पेटको चीरता हुआ बाहर निकल जाता था। इस प्रकार उन दोनों दैत्योंने अनेक ब्राह्मणों तथा मुनियोंको मार डाला।

एक दिनकी बात है, इल्वलने भृगुवंशमें उत्पन्न ब्राह्मणोंके साथ अगस्त्यमुनिको भोजनके लिये आमन्त्रित किया। भोजनके समय अगस्त्यमुनिने इल्वलके द्वारा बनाया गया भोजन सारा-का-सारा खा डाला, पर मुनि निर्विकार होकर शुद्ध हो गये थे। इल्वलने पूर्वरीतिसे अपने भाई वातापिको पुकारकर कहा—'भाई ! अब क्यों विलम्ब कर रहे हो, मुनिके शरीरको चीरकर बाहर आ जाओ।' इसपर अगस्त्यमुनिने कहा—'अरे दुष्ट दैत्य ! तुम्हारा भाई वातापि तो उदरमें ही भस्म होकर समाप्त हो गया, अब वह बाहर कहाँसे आयेगा। यह सुनकर इल्वल बहुत ही क्रुद्ध हो उठा, परंतु अगस्त्यमुनिने उसको भी अपनी क्रुद्ध दृष्टिसे जलाकर भस्म कर डाला। उन दोनों दैत्योंके मारे जानेपर शेष दैत्य भी मुनिके वैरको स्मरण करते हुए भयभीत होकर समुद्रमें जाकर छिप गये। वे रात्रिके समय समुद्रसे बाहर निकलकर मुनियोंका भक्षण करते, यज्ञपात्र फोड़ डालते और पुनः समुद्रमें जाकर छिप जाते। दैत्योंके इस प्रकारके उत्पातको देखकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि सभी देवता आपसमें विचारकर महर्षि अगस्त्यजीके पास आकर बोले—'ब्रह्मर्षे ! आप समुद्रके जलको सोख लीजिये।' यह सुनकर अगस्त्यजीने अपनेमें आग्नेयी धारणाका अवधान कर समुद्रके जलका पान कर लिया। समुद्रके सूख जानेपर देवताओंने उन सभी दैत्योंका संहार कर डाला।

इस प्रकार महर्षि अगस्त्यने इस संसारको निष्कण्टक कर दिया। उसके बाद गङ्गाजीके जलसे समुद्र पुनः भर गया। तब देवता और दैत्योंने मिलकर मन्दराचल पर्वतको मथानी तथा नागराज वासुकिको रस्सी बनाकर समुद्रका मन्थन किया। उस समय समुद्रसे चन्द्रमा, लक्ष्मी, अमृत, कौस्तुभमणि, ऐरावत हाथी आदि उत्तम-उत्तम रत्न निकले। समुद्रसे ही अति भयंकर कालकूट विष भी निकला, जिसके गन्धमात्रसे ही देवता और दैत्य सभी मूर्च्छित होने लगे। इस कालकूट विषका कुछ भाग भगवान् शंकरने पान कर लिया। जिससे वे नीलकण्ठ कहलाये, तब ब्रह्माजीने कहा कि 'भगवान् शंकरके अतिरिक्त संसारमें ऐसा किसीमें सामर्थ्य नहीं है, जो इस शेष विषका पान करे, अतः देवगणो ! आप सब दक्षिण दिशामें लंकाके समीप निवास करनेवाले अगस्त्यमुनिके पास जायँ, वे हमलोगोंके शरणदाता हैं। ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर सभी देवता अगस्त्यमुनिके पास गये। मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने सबको भयभीत पाकर उन्हें यह आश्वासन दिया कि मैं उस विषको अपने तपोबलके प्रभावसे हिमालय पर्वतमें प्रविष्ट कर दूँगा। तब महर्षि अगस्त्यजीके तपोबलके प्रभावसे वही विष हिमालयके शिखरों, निकुंजों तथा वृक्षोंमें बिखर गया और शेष बचे हुए विषको धतूर, अर्क आदि वृक्षोंमें उन्होंने बाँट दिया। उसी हिमालय पर्वतके विषसे युक्त वायुके प्रभावसे प्राणियोंमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं, जिससे प्राणियोंको कष्ट सहन करना पड़ता है। उस विषयुक्त वायुका प्रभाव वृषकी संक्रान्तिसे लेकर सिंह-संक्रान्तितक बना रहता है। बादमें उसका वेग शान्त हो जाता है। इस प्रकार कालकूट विषके विनाशकारी प्रभावसे अगस्त्यमुनिने समस्त प्राणियोंकी रक्षा की।

पूर्वकालमें प्रजाकी बहुत वृद्धि हुई। उस समय ब्रह्माजीने अपने शरीरसे मृत्युको उत्पन्न किया और मृत्युने प्रजाका भयंकर विनाश किया। एक दिन वह मृत्यु अगस्त्यमुनिके समीप भी आयी। अगस्त्यजीने क्रोधभरी दृष्टिसे मृत्युको तत्काल भस्म कर दिया। पुनः ब्रह्माजीको दूसरी व्याधिरूप मृत्युकी उत्पत्ति करनी पड़ी।

दण्डकारण्यमें श्वेत नामक एक राजा रहता था, स्वर्ग जानेपर भी वह प्रतिदिन क्षुधाके कारण अपने मांसको ही खाकर कष्ट भोग रहा था। एक दिन दुःखी हो राजाने अगस्त्यमुनिसे कहा—'महाराज ! सभी वस्तुओंका दान तो

मैंने किया है, परंतु अन्न और जलका दान मैं नहीं कर सका और न मैंने श्राद्ध ही किया। इसलिये मुझे इस रूपमें प्रतिदिन अपना ही मांस खाना पड़ रहा है। प्रभो ! आप दया करके कोई उपाय कीजिये, जिससे कि मुझे इस विपत्तिसे छुटकारा प्राप्त हो।' राजाद्वारा इस प्रकार दीन वचन सुनकर अगस्त्यमुनि दयार्द्र हो उठे और उन्होंने रत्नोंद्वारा श्राद्ध कराया। श्राद्धके फलस्वरूप सहसा वह दिव्य देह धारणकर स्वर्गलोकमें दिव्य भोग भोगने लगा।

एक बार विन्ध्याचल पर्वतके हृदयमें यह प्रश्न उठा कि सूर्यनारायण मेरुपर्वतकी परिक्रमा तो करते हैं, पर मेरी नहीं करते। क्यों न मैं उनका मार्ग रोक दूँ। मनमें यह निश्चय कर विन्ध्यगिरि प्रतिदिन बढ़ने लगा। विन्ध्याचलको बढ़ते हुए देखकर सभी देवता व्याकुल हो उठे और उन्होंने अगस्त्यमुनिके पास जाकर निवेदन किया—'प्रभो ! आप कृपाकर सूर्यके मार्गको अवरुद्ध करनेवाले उस विन्ध्यगिरिको रोकें और उसे स्थिर कर दें।' देवताओंका विनययुक्त वचन सुनकर अगस्त्यजीने विन्ध्याचल पर्वतके पास पहुँचकर कहा—'पर्वतोत्तम ! मैं तीर्थयात्रा करने जा रहा हूँ, तुम थोड़ा नीचे हो जाओ, तो उस पार चला जाऊँ।' मुनिकी आज्ञासे विन्ध्याचल नीचा हो गया। अगस्त्यमुनिने पर्वतको लाँघकर कहा—'जबतक मैं तीर्थयात्रासे वापस नहीं आ जाता, तबतक तुम इसी स्थितिमें रहना।' इतना कहकर अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशाको चले गये और फिर वापस नहीं लौटे। आज भी आकाशमें दक्षिण दिशामें देदीप्यमान हो रहे हैं। और लोपामुद्राके साथ महर्षि अगस्त्यकी यह त्रिलोकी वन्दना करता है।

एक समयकी बात है, अपनी पत्नी लोपामुद्राकी इच्छापर अगस्त्यजीने कुबेरको बुलाकर आनन्दके सभी ऐश्वर्य महल, शय्या, वस्त्राभूषण आदि उन्हें उपलब्ध करा दिये और लोपामुद्राके साथ अगस्त्यजी बहुत समयतक आनन्दित होते रहे।

राजन् ! इस प्रकार अगस्त्यमुनिके अनेक अद्भुत दिव्य चरित्र हैं। आप भी भगवान् अगस्त्यके लिये अर्घ्य प्रदान करें, इससे आपको महान् पुण्य प्राप्त होगा। उनके अर्घ्यदानकी विधि इस प्रकार है—

जब कन्या राशिमें सूर्यके सात अंश (५।२२) शेष रहते हैं, उसी दिन महर्षि अगस्त्यका पूर्वमें उदय होता है, उसी समय उनके निमित्त अर्घ्य देना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि प्रातः श्वेत तिलोंसे स्नानकर श्वेत वस्त्र, श्वेत पुष्पोंकी माला आदिसे विभूषित होकर पञ्चरत्नसहित एक सुवर्ण कलश स्थापित करे। उसके ऊपर अनेक प्रकारके भोज्य पदार्थ और सप्तधान्यसहित घीका पात्र रखे। उसके ऊपर जटाधारी, हाथमें कमण्डलु धारण किये हुए, शिष्योंके साथ अगस्त्यमुनिकी स्वर्ण-प्रतिमा बनाकर स्थापित करना चाहिये। तत्पश्चात् श्वेत चन्दन, चमेलीके पुष्प, उत्तम धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनकी पूजा करनेके बाद अर्घ्य देना चाहिये। खजूर, नारियल, कूष्माण्ड, खीरा, ककड़ी, कर्कोटक, आरवेल्ल, बीजपूर (बिजौरा), बैगन, अनार, नारंगी, केला, कुशा, काश, दूर्वाके अंकुर, नीलकमल तथा अंकुरित अन्न—यह सभी सामग्री एक बाँसके पात्रमें रखकर सुवर्ण, चाँदी अथवा ताँबेका अर्घ्यपात्र नम्र हो सिरसे लगाकर प्रसन्न-चित्तसे जानुओंको पृथ्वीपर टेककर दक्षिणाभिमुख हो इन मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक भगवान् अगस्त्यको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये—

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव ।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥
विन्ध्यवृद्धिक्षयकर मेघतोयविषापह ।
रत्नवल्लभ देवर्षे लंकावास नमोऽस्तु ते ॥
वातापिर्भक्षितो येन समुद्राः शोषिताः पुरा ।
लोपामुद्रापतिः श्रीमान् योऽसौ तस्मै नमो नमः ॥
येनोदितेन पापानि प्रलयं यान्ति व्याधयः ।
तस्मै नमोऽस्त्वगस्त्याय सशिष्याय सुपुत्रिणे ॥

(उत्तरपर्व ११८। ६९—७२)

'देवर्षे ! आपका वर्ण काश-पुष्पके समान है, आप अग्नि और मरुत्‌से उद्भूत हैं। मित्रावरुणके पुत्र कुम्भयोने ! आपको नमस्कार है। आप वृष्टिमें अमृतका संचार करनेवाले हैं, आपने बढ़ते हुए विन्ध्यगिरिको निवृत्त किया था और आप दक्षिण दिशामें निवास करते हैं, आपको नमस्कार है। आपने वातापि राक्षसको भस्म कर दिया तथा समुद्रको सोख लिया, लोपामुद्राके पति भगवान् अगस्त्य ! आपको बार-बार नमस्कार है। आपके उदय होनेपर सारी व्याधियाँ नष्ट हो जाती

है, शिष्यों और पुत्रोंके साथ भगवन्! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार अर्घ्य प्रदान कर वह प्रतिमा विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मणको दानमें दे दे।

किसी एक फल अथवा धान्य आदिका एक वर्षतक त्याग करे। इस विधिसे यदि ब्राह्मण सात वर्षतक अर्घ्य दे तो चारों वेदोंका ज्ञाता और सभी शास्त्रोंका मर्मज्ञ हो जाता है। क्षत्रिय समस्त पृथ्वीको जीतकर राजा बनता है। वैश्य धन-धान्य तथा पशुओं एवं समृद्धिको प्राप्त करता है तथा शूद्र धन, सम्मान, आरोग्य प्राप्त करता है और स्त्रियोंको सौभाग्य, ऋद्धि-वृद्धि तथा पुत्रकी प्राप्ति होती है। विधवाको अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है, कन्याको श्रेष्ठ पति प्राप्त होता है तथा रोगी अगस्त्यमुनिको अर्घ्य देकर रोगसे छुटकारा पा जाता है। जिस देशमें भगवान् अगस्त्यका इस विधिसे पूजन होता है और अर्घ्य दिया जाता है, वहाँ कभी दुर्भिक्ष, अकाल आदिका भय नहीं होता। अगस्त्य ऋषिके आख्यानको सुननेवाले सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं[1]। (अध्याय ११८)

नवोदित चन्द्र, गुरु एवं शुक्रको अर्घ्य देनेकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं नवोदित चन्द्रमाको अर्घ्य देनेकी विधि बता रहा हूँ। प्रतिमास शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको प्रदोषकालके समय भूमिपर गोबरका एक मण्डल बनाकर उसमें रोहिणीसहित चन्द्रमाकी प्रतिमाको स्थापित करके श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, अनेक प्रकारके फल, नैवेद्य, दही, श्वेत वस्त्र तथा दूर्वाङ्कुर आदिसे उनका पूजन करे और इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे—

नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः।
आप्यायस्व स मे त्वेवं सोमराज नमो नमः॥

(उत्तरपर्व ११९।६)

जो व्यक्ति इस विधिसे चन्द्रमाको प्रतिमास अर्घ्य देता है, उसे पुत्र, पौत्र, धन, पशु, आरोग्य आदिकी प्राप्ति होती है तथा सौ वर्षतक सुख भोगकर अन्तमें वह चन्द्रलोकको और फिर मोक्षको प्राप्त करता है।

राजन्! शुक्रके दोषकी निवृत्तिके लिये यात्राके आरम्भमें, गमनकालमें और शुक्रोदयके समय शुक्रदेवकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। शुक्रकी पूजन-विधिको मैं बता रहा हूँ, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनें—

सुवर्ण, चाँदी अथवा कांस्यके पात्रमें मोतीयुक्त चाँदीकी शुक्रकी मूर्तिको पुष्प तथा श्वेत वस्त्रसे अलंकृतकर श्वेत चावलोंपर स्थापित करे। षोडशोपचार अथवा पञ्चोपचारसे शुक्रदेवकी पूजा करके इस मन्त्रसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करे—

नमस्ते सर्वदेवेश नमस्ते भृगुनन्दन।
कवे सर्वार्थसिद्ध्यर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व १२०।४)

तदनन्तर प्रणामपूर्वक मूर्तिको विसर्जित कर सवत्सा गौके साथ वह प्रतिमा तथा अन्य सभी सामग्री ब्राह्मणको दे दे। इस विधिसे शुक्रदेवकी पूजा करनेसे सभी मनःकामनाओंकी पूर्ति हो जाती है और फसल अच्छी होती है।

इसी प्रकार सुवर्ण आदिके पात्रमें सुवर्णकी बृहस्पतिकी मूर्ति स्थापित करे। प्रतिमाको सर्षपयुक्त जल तथा पञ्चगव्यसे स्नान कराकर पीत पुष्प तथा पीत वस्त्रोंसे अलंकृत करे। अनन्तर विविध उपचारोंसे उनका पूजन कर अर्घ्य प्रदान कर घीसे हवन करे। सवत्सा गौके साथ वह बृहस्पतिकी मूर्ति दक्षिणासहित ब्राह्मणको दान कर दे। यात्राकाल, बृहस्पतिकी संक्रान्ति और उनके उदयके समय जो इनका पूजन करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। शुक्र तथा बृहस्पतिका इस विधिसे पूजन करनेसे पूजकके घरमें उनका दोष नहीं होता। (अध्याय ११९-१२०)

१-इस व्रतका उल्लेख मत्स्यपुराण अध्याय ६१ आदिमें तथा इनकी कथा, इनका अनेक आश्रमोंमें निवास और अगस्त्यार्घ्यपर ऋग्वेद १।१७९।६ से लेकर अग्नि, गरुड, बृहद्धर्म आदि पुराणोंतकमें अपार सामग्री भरी पड़ी है। हेमाद्रि, गोपाल तथा रत्नाकर आदिने भी इन्हें अपने व्रत-निबन्धोंमें कई पृष्ठोंमें संगृहीत किया है।

प्रकीर्ण व्रत[1]

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं अत्यन्त गुप्त विविध प्रकीर्ण व्रतोंका वर्णन कर रहा हूँ। जो प्रातः स्नानकर अश्वत्थ वृक्षका पूजनकर ब्राह्मणोंको तिलसे भरे हुए पात्रका दान करता है, उसे कृत-अकृत किसी कार्यके लिये शोक नहीं करना पड़ता। यह **पात्रव्रत** सभी पापोंको दूर करनेवाला है। सुवर्णकी बृहस्पतिकी प्रतिमा बनाकर उसे पीत वस्त्रादिसे अलंकृतकर पुण्य दिनमें ब्राह्मणको दान करना चाहिये। यह **वाचस्पतिव्रत** बल और बुद्धिप्रदायक है। एकभुक्त रहकर लवण, कटु, तिक्त, जीरक, मरिच, हींग और सोंठसे युक्त पदार्थ तथा शिलाजीत—ये सात पदार्थ सात कुटुम्बी ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये, इस **शिलाव्रत**को करनेसे लक्ष्मीलोककी तथा वाक्पटुता प्राप्त होती है। नक्तव्रतकर गाय, वस्त्र और सुवर्णका सुदर्शनचक्र तथा त्रिशूल गृहस्थ ब्राह्मणको दानमें दे और उन्हें प्रणाम कर '**शिवकेशवौ प्रीयेताम्**' यह वाक्य कहे। यह **शिवकेशवव्रत** महापातकोंको भी नष्ट कर देता है। एक वर्षतक एकभुक्त रहकर सुवर्णका बना हुआ बैल और उपस्करोंसहित तिलधेनु ब्राह्मणको दान करे। इस व्रतको **रुद्रव्रत** कहते हैं। यह व्रत सभी प्रकारके पाप एवं शोकको दूर करता है और व्रतीको शिवलोककी प्राप्ति कराता है।

पञ्चमी तिथिके दिन सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नानकर गृहस्थाश्रमके सात उपस्करों—घर, ऊखल, सूप, सिल, थाली, घड़ा तथा चूल्हाका दान गृहस्थ ब्राह्मणको देना चाहिये। इसे **गृहव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेसे सभी सुख प्राप्त होते हैं। इस व्रतका उपदेश अत्रिमुनिने अनसूयाको किया था।

सुवर्णका कमल तथा नीलकमल शर्करापात्रसहित श्रद्धासे गृहस्थ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। यह **नीलव्रत** है। इस व्रतको जो कोई भी व्यक्ति करता है, उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। आषाढ़ आदि चार महीनोंमें तैलाभ्यङ्ग नहीं करना चाहिये। अन्तमें पारणामें तिलके तेलसे भरा हुआ नया घड़ा ब्राह्मणको दे और घी तथा पायसयुक्त भोजन कराये, इस व्रतको **प्रीतिव्रत** कहते हैं। इसे भक्तिपूर्वक करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

चैत्र मासमें दही, दूध, घी और गुड़, खाँड़, ईखके द्वारा बने पदार्थोंका त्याग करना चाहिये और बादमें दो ब्राह्मणोंकी पूजाकर दही, दूध तथा दो वस्त्र, रससे भरे पात्र आदि पदार्थ '**गौरी मे प्रीयताम्**' कहकर ब्राह्मणको देना चाहिये। यह **गौरीव्रत** है। इस व्रतको जो करता है, उसे गौरीलोककी प्राप्ति होती है।

त्रयोदशीसे एक वर्षतक नक्तव्रत करनेके बाद पारणामें दो वस्त्रोंसहित सुवर्णका अशोक वृक्ष तथा ब्राह्मणको दक्षिणा देकर '**प्रद्युम्नः प्रीयताम्**' यह वाक्य कहना चाहिये। यह **कामव्रत** है। इस व्रतको करनेसे सभी प्रकारके शोक दूर हो जाते हैं तथा विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। आषाढ़ आदि चार मासोंमें अपने नख नहीं काटने चाहिये और बैगनका भोजन भी नहीं करना चाहिये। अन्तमें कार्तिक पूर्णिमाके दिन घी और शहदसे भरे हुए घटके साथ सुवर्णका बैगन ब्राह्मणको दान दे। इसे **शिवव्रत** कहते हैं। शिवव्रत करनेवाला व्यक्ति रुद्रलोकको प्राप्त करता है। इसी प्रकार पूर्णिमाको एकभुक्तव्रत करनेके बाद चन्दनसे पूर्णिमाकी मूर्ति बनाकर उसका पूजन करे। अनन्तर दूध, दही, घी, शहद और श्वेत शर्करा—इन पाँच सामग्रियोंसे भरे हुए पाँच घड़े पाँच ब्राह्मणोंको दानमें दे। इस व्रतको **पञ्चव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेसे समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। हेमन्त और शिशिर ऋतुमें उद्भूत पुष्पोंका त्यागकर फाल्गुनकी पूर्णिमाको यथाशक्ति सुवर्णके बने हुए तीन पुष्प ब्राह्मणको दान देकर '**शिवकेशवौ प्रीयेताम्**'इस वाक्यका उच्चारण करना चाहिये। इसे **सौगन्ध्यव्रत** कहते हैं। इस व्रतके करनेसे शिरःप्रदेशसे सुगन्धि उत्पन्न होती रहती है और व्रतीको उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको नमक नहीं खाना चाहिये। जो व्यक्ति एक वर्षतक नियमपूर्वक इस **सौभाग्यव्रत**को करके अन्तमें सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा कर गृहके साथ गृहस्थके उपयोगी सामग्रियों तथा उत्तम शय्याका दान देकर '**भवानी प्रीयताम्**' इस वाक्यको कहता है, उसे गौरीलोककी प्राप्ति होती है। यह उत्तम सौभाग्यको प्रदान

१-मत्स्यपुराणके १०१ वें अध्याय तथा पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय २० में भी स्वल्प भेदके साथ इन व्रतोंका वर्णन है।

करनेवाला है।

संध्या-समय एक वर्षतक मौनव्रत रखकर पारणाकर तथा घृतकुम्भ, दो वस्त्र और घण्टा ब्राह्मणको दान करना चाहिये। इसे **सारस्वतव्रत** कहते हैं। यह व्रत विद्या और रूपको देनेवाला है। इस व्रतको करनेसे सरस्वतीलोककी प्राप्ति होती है।

एक वर्षतक पञ्चमी तिथिको उपवास करनेके बाद सुवर्णकमल और श्रेष्ठ गौ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। इसे **लक्ष्मीव्रत** कहते हैं। यह व्रत कान्ति एवं सौभाग्यको प्रदान करता है। व्रतीको जन्म-जन्ममें लक्ष्मीकी प्राप्ति और अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

जो स्त्री चैत्र माससे आरम्भ कर नियमसे (प्रातःकाल) एक वर्षतक जलका पान करे और (भगवान् सूर्यके निमित्त) जलधारा प्रदान करे और वर्षके अन्तमें घृतपूर्ण नवीन कलशका दान करे तो उसे सौभाग्य प्राप्त होता है। इसे **धाराव्रत** कहा गया है। यह सभी रोगोंका नाशक, कान्ति एवं सौभाग्य-प्रदायक तथा सपत्नीके दर्पको नाश करनेवाला है।

गौरीसहित रुद्र, लक्ष्मीसहित विष्णु और राज्ञीसहित भगवान् सूर्यकी मूर्तिको विधिपूर्वक स्थापित कर उनका पूजन करे, घण्टायुक्त गौ, दोहनी और दक्षिणाके साथ उस मूर्तिको ब्राह्मणको दान दे। इस व्रतको **देवव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेसे शरीर दिव्य हो जाता है।

श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प आदिसे शिवलिङ्ग और विष्णुकी मूर्तिका प्रतिदिन एक वर्षतक उपलेपन करनेके बाद जलसे भरे हुए घटके साथ सुन्दर गाय ब्राह्मणको दान दे। यह **शुक्लव्रत** है। यह व्रत बहुत कल्याणकारी है। इस व्रतको करनेवाला शिवलोकको प्राप्त करता है।

अश्वत्थ, सूर्यनारायण और गङ्गाजीका नित्य प्रणाम-पूर्वक पूजनकर नौ वर्षतक एकभुक्तव्रत करे, अन्तमें सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजाकर तीन गाय और सुवर्णका वृक्ष ब्राह्मणको दान दे। इस व्रतको **कीर्तिव्रत** कहते हैं। यह व्रत ऐश्वर्य और कीर्तिको देनेवाला है। प्रतिदिन गोबरका मण्डल बनाकर उसमें अक्षतोंद्वारा कमल बनाये, उसके ऊपर शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, गौरी तथा गणपतिको घीसे स्नान कराकर एक वर्षतक प्रतिदिन पूजन करनेके बाद सामवेदका गान करके अन्तमें आठ अंगुलके सुवर्ण-कमलसहित उत्तम गाय ब्राह्मणको दान दे। इस व्रतको **सामव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति शिवलोकको प्राप्त करता है।

नवमीको एकभुक्तव्रत कर अन्तमें कन्याओंको भोजन कराये तथा उन्हें कंचुकी, दो वस्त्र प्रदान करे एवं सुवर्णका सिंहासन भी ब्राह्मणको दे। इस व्रतको **वीरव्रत** कहते हैं। जो स्त्री इस व्रतको करती है, उसे अनेक जन्मोंतक सुन्दर रूप, अखण्ड सौभाग्य और सुखकी प्राप्ति होती रहती है। व्रतीको शिवलोककी प्राप्ति होती है। अमावास्यासे जो एक वर्षपर्यन्त श्राद्ध करता है और श्रद्धापूर्वक पाँच पयस्विनी सवत्सा गौ, पीले वस्त्र तथा जलपूर्ण कलश दान करता है, वह व्यक्ति अपने पूर्वजोंका उद्धारकर विष्णुलोकको प्राप्त करता है। यह **पितृव्रत** कहलाता है।

जो स्त्री एक वर्षतक ताम्बूलका त्यागकर अन्तमें सुवर्णके तीन ताम्बूल बनाकर उसमें चूनेकी जगह मोती रखकर तथा सुपारीके चूर्णके साथ गणेशको निवेदित कर ब्राह्मणको दान करती है, उसे कभी भी दुर्भाग्यकी प्राप्ति नहीं होती, साथ ही मुखमें उत्तम सुगन्ध और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। यह **पत्रव्रत** है। चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ तथा आषाढ़—इन चार मासोंमें अथवा एक मास अथवा एक पक्षपर्यन्त जलका अयाचितव्रत करना चाहिये। अन्तमें जलपूर्ण कलश, अन्न, वस्त्र, घी, सप्तधान्य, तिलपात्र और सुवर्ण ब्राह्मणको दे। इस व्रतको **वारिव्रत** कहते हैं। वारिव्रतको करनेवाला व्यक्ति एक कल्पपर्यन्त ब्रह्मलोकमें निवास करनेके बाद पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा होता है।

जो एक वर्षतक पञ्चामृतसे भगवान् शिव और भगवान् विष्णुको स्नान कराकर अन्तमें गाय, शङ्ख और सुवर्ण ब्राह्मणको दान करता है, वह बहुत कालतक शिवलोकमें निवास करता है और राजाका पद प्राप्त करता है। यह **वृत्तिव्रत** कहलाता है। जो व्यक्ति सर्वथा मांसाहारका परित्याग कर अन्तमें सुवर्णका हरिण और सवत्सा गौ ब्राह्मणको दान करता है, उसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। इसे **अहिंसाव्रत** कहते हैं, यह सम्पूर्ण शान्तियोंको देनेवाला है। जो माघ मासमें प्रातःकाल स्नानकर अन्तमें ब्राह्मण-दम्पतिकी वस्त्र, आभूषण, पुष्पमाला आदिसे पूजाकर उनको स्वादिष्ट भोजन कराता है,

वह आरोग्य और सौभाग्यको प्राप्त करता है और कल्पपर्यन्त सूर्यलोकमें निवास करता है। इस व्रतको **सूर्यव्रत** कहते हैं।

जो आषाढ़ आदि चार मासोंमें प्रातःकाल स्नानकर कार्तिक पूर्णिमाके दिन घृतकुम्भ और गौ गृहस्थ ब्राह्मणको दान देकर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मण-भोजन कराता है, उसकी सभी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसे अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। यह **वैष्णवव्रत** कहलाता है। जो एक अयनसे दूसरे अयनतक मधु और घीका त्याग करके अन्तमें घी और गौ ब्राह्मणको दानकर घी और पायस ब्राह्मणोंको भोजन करता है, उसे शील और आरोग्यकी प्राप्ति होती है। इस व्रतको **शीलव्रत** कहते हैं। जो (नियतकालतक) प्रतिदिन संध्याके समय दीपदान करता है तथा अभक्ष्य पदार्थ एवं तेलका सेवन नहीं करता, फिर व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको दीपक, सुवर्णके बने चक्र, त्रिशूल और दो वस्त्र दान करता है, वह महान् तेजस्वी होता है। यह कान्ति प्रदान करनेवाला व्रत **दीपव्रत** कहलाता है।

जो स्त्री एकभुक्त रहकर एक सप्ताहतक गन्ध, पुष्प, रक्त चन्दन आदिसे भगवती गौरीकी पूजा करती है, साथ ही प्रत्येक दिन क्रम-क्रमसे कुमुदा, माधवी, गौरी, भवानी, पार्वती, उमा तथा काली—इन सात नामोंसे एक-एक सुवासिनी स्त्रीका पुष्प, चन्दन, कुंकुम, ताम्बूल तथा नारिकेल एवं अलंकारोंसे पूजनकर **'कुमुदा प्रीयताम्'** इस प्रकारसे कहकर विसर्जन करती है तथा आठवें दिन उन्हीं पूजित सुवासिनी स्त्रियोंको निमन्त्रित कर उन्हें षड्रस भोजन आदिसे तृप्तकर वस्त्र, माला तथा आभूषण एवं दर्पण आदि प्रदान करती है, साथ ही एक ब्राह्मणकी भी पूजा करती है, उसे सुन्दर देह और सौभाग्य प्राप्त होता है, इसे **सप्तसुन्दरकव्रत** कहा जाता है। चैत्र मासमें सभी प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंका त्याग करना चाहिये और अन्तमें सुगन्धद्रव्यसे पूर्ण एक सीपी, दो सफेद वस्त्र अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। इस व्रतको **वरुणव्रत** कहते हैं। इसको करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और वरुणलोककी प्राप्ति होती है।

वैशाख मासमें नमकका त्यागकर अन्तमें सवत्सा गौ ब्राह्मणको दे। यह **कान्तिव्रत** है। इस व्रतको करनेसे कीर्ति और कान्तिकी वृद्धि होती है तथा अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। जो तीन पलसे अधिक परिमाणका सोनेका ब्रह्माण्ड बनाकर उसे तिलकी ढेरीमें रखे तथा 'मैं अहंकाररूपी तिलका दान करनेवाला हूँ' ऐसी भावना करके घीसे अग्निको तथा दक्षिणासे ब्राह्मणको तृप्त करे एवं तीन दिनतक तिलव्रती रहे। फिर माला, वस्त्र तथा आभूषणोंद्वारा ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करके विश्वात्माकी तृप्तिके उद्देश्यसे किसी शुभ दिनमें तिलसहित ब्रह्माण्ड ब्राह्मणको दान करे तो ऐसा करनेवाला पुरुष पुनर्जन्मसे रहित ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। इसका नाम **ब्रह्मव्रत** है। यह मनुष्योंको मोक्ष देनेवाला है।

जो तीन दिनतक दुग्धका आहारकर सुवर्णसहित सवत्सा गौ तथा एक पलसे अधिक सुवर्णसे कल्पवृक्ष बनाकर चावलोंके ढेरपर स्थापित कर उत्तम वस्त्र और पुष्पमालाओंसे ढककर ब्राह्मणको दान करता है, उसे कल्पभर स्वर्गमें निवास-स्थान मिलता है, इसे **कल्पव्रत** कहते हैं। जो अयाचितव्रतकर सभी अलंकारोंसे अलंकृत एक श्रेष्ठ बछियाका व्यतीपात तथा ग्रहण, अयन-संक्रान्तिमें ब्राह्मणको दान करता है, उसे परलोकगमनमें कोई कष्ट नहीं होता तथा उसका मार्ग सुखदायी होता है, इसे **द्वारव्रत** कहते हैं।

जो एक वर्षतक अष्टमीको रात्रिमें एक बार भोजन करता है तथा अन्तमें ब्राह्मणको पयस्विनी गौका दान करता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है। इसे **सुगतिव्रत** कहते हैं। जो हेमन्त और शिशिर ऋतुमें ईंधनका दान करता है और अन्तमें घी तथा गाय ब्राह्मणको दान करता है, वह आरोग्य, द्युति, कान्ति तथा ब्रह्मपदको प्राप्त करता है। यह **वैश्वानरव्रत** सभी पापोंका नाशक है। जो एकादशीको नक्तव्रतकर चैत्र मासके चित्रा नक्षत्रमें सुवर्णका शंख और चक्र ब्राह्मणको दान करता है, वह कल्पपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास कर पृथ्वीपर राजाका पद प्राप्त करता है। यह **विष्णुव्रत** कहलाता है। जो एक वर्षतक पञ्चमीको दुग्धाहार कर अन्तमें दो गाय ब्राह्मणको दान करता है, वह एक कल्पतक लक्ष्मीलोकमें निवास करता है। यह **देवीव्रत** कहलाता है। जो एक वर्षतक सप्तमीके दिन नक्तव्रत कर अन्तमें पयस्विनी गाय ब्राह्मणको दान करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। इसे **भानुव्रत** कहते हैं। जो चतुर्थीको एक वर्षतक रात्रिमें भोजन करता है और अन्तमें आठ गौएँ अग्निहोत्री ब्राह्मणको दान करता है, उसके सभी

तरहके विघ्न दूर हो जाते हैं। इसे **विनायकव्रत** कहते हैं। जो चातुर्मास्यमें फलोंका त्याग कर कार्तिकमें सुवर्णका फल, दो गौ, दो श्वेत वस्त्र और घीसे पूर्ण घट दक्षिणासहित ब्राह्मणको दान करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। इसे **फलव्रत** कहते हैं।

एक वर्षतक सप्तमीको उपवास कर अन्तमें सुवर्णका कमल बनाकर और कांस्यकी दोहनीसहित सवत्सा गौ पौराणिक ब्राह्मणको दान करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह **सौरव्रत** है। जो बारह द्वादशियोंको उपवास करके अन्तमें यथाशक्ति वस्त्रसहित जलपूर्ण बारह घट ब्राह्मणोंको दान करता है, उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। यह **गोविन्दव्रत** भगवान् गोविन्दके पदको प्राप्त करानेवाला है।

कार्तिक पूर्णिमाको वृषोत्सर्गकर रात्रिमें भोजन करना चाहिये। इस व्रतको **वृषव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेसे गोलोककी प्राप्ति होती है। कृच्छ्र-प्रायश्चित्तके अन्तमें गोदान कर यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। यह **प्राजापत्यव्रत** है। इससे पापशुद्धि होती है। जो एक वर्षतक चतुर्दशीको नक्तव्रत करके अन्तमें दो गायोंका दान करता है, वह शैव-पदको प्राप्त करता है। यह **त्र्यम्बकव्रत** है। सात रात्रि उपवास कर ब्राह्मणको घृतपूर्ण घटका दान करे। इसे **ब्रह्मव्रत** कहते हैं, इससे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको उपवास कर रात्रिके समय पञ्चगव्य-पान करे अर्थात् कपिला गौका मूत्र, कृष्णा गौका गोबर, श्वेत गौका दूध, लाल गौका दही तथा कबरी गौका घी लेकर मन्त्रोंसे कुशोदक मिलाकर प्राशन करे। दूसरे दिन प्रातः स्नानकर देवता और पितरोंका तर्पण आदि करनेके बाद ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। इसे **ब्रह्मकूर्चव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेसे बाल्य, यौवन और बुढ़ापेमें किये गये सभी प्रकारके पापोंका नाश हो जाता है। जो एक वर्षतक तृतीयाको बिना पकाये अन्न, फल इत्यादिका भोजन करता है और अन्तमें सुन्दर गौ ब्राह्मणको दानमें देता है, वह शिवलोकमें निवास करता है। इसे **ऋषिव्रत** कहते हैं।

एक वर्षतक ताम्बूल आदि मुखवासके पदार्थोंका त्याग-कर अन्तमें ब्राह्मणको गायका दान करे। यह **सुमुखव्रत** है। इससे कुबेरलोककी प्राप्ति होती है। रात्रिभर जलमें निवास कर प्रातःकाल जो गोदान करता है, उसे वरुणलोककी प्राप्ति होती है। यह **वरुणव्रत** कहलाता है। जो चान्द्रायणव्रत करनेके बाद सुवर्णका चन्द्रमा बनाकर ब्राह्मणको दान करता है, उसे चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। यह **चन्द्रव्रत** है।

ज्येष्ठ मासकी अष्टमी और चतुर्दशीको पञ्चाग्नि-सेवन करके सुवर्णसहित गौका ब्राह्मणको दान करे, यह **रुद्रव्रत** है। इससे रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। जो एक वर्षतक तृतीयाको शिवालयमें उपलेपन करनेके बाद गोदान करता है वह स्वर्गलोक प्राप्त करता है। यह **भवानीव्रत** है।

जो माघ मासकी सप्तमी तिथिको रात्रिमें आर्द्र वस्त्रोंको धारण किये रहता है और उपवास कर ब्राह्मणको गौका दान करता है, वह कल्पभरतक स्वर्गमें निवास करता है। यह **तापनव्रत** कहलाता है। जो तीन रात्रि उपवास कर फाल्गुनकी पूर्णिमाको गृहदान करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह **धामव्रत** है। पूर्णमासीको उपवासकर तीनों संध्याओंमें वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि देकर सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। इस व्रतको **इन्दुव्रत** कहते हैं। इस व्रतके प्रभावसे उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। जो शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको नमकसे भरे हुए काँसेके पात्रके साथ वस्त्र और दक्षिणा एक वर्षतक ब्राह्मणको देता है और अन्तमें शिवमन्दिरमें गोदान करता है, वह कल्पभरतक शिवलोकमें निवास करनेके बाद राजाओंका राजा होता है। इसे **सोमव्रत** कहते हैं। एक वर्षतक प्रत्येक प्रतिपदाको एक समय भोजन करनेके बाद कपिला गौ ब्राह्मणको दान करे। यह **आग्नेयव्रत** है। इसके करनेसे अग्निलोककी प्राप्ति होती है।

जो माघ मासकी एकादशी, चतुर्दशी और अष्टमीको एकभुक्त रहता है तथा वस्त्र, जूता, कंबल, चर्म आदि शीत निवारण करनेवाली वस्तुओंका दान करता है तथा चैत्रमें इन्हीं तिथियोंमें छाता, पंखा आदि उष्णनिवारक पदार्थोंका दान करता है, उसे अश्वमेध यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है। यह **सौख्यव्रत** है। एक वर्षतक दशमी तिथिको एकभुक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी स्त्री-रूप दस दिशाओंकी मूर्ति तिलोंकी राशिपर स्थापितकर गायसहित ब्राह्मणको दान करनेसे महापातक दूर हो जाते हैं। यह **विश्वव्रत** है। इसे करनेसे

ब्रह्माण्डका आधिपत्य मिलता है। जो शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको नक्तव्रत करके सूर्यनारायणका पूजनकर सप्तधान्य और लवण ब्राह्मणको दान देता है, वह अपने सात कुलोंका उद्धार करता है। यह **धान्यव्रत** है। एक मास उपवासकर जो ब्राह्मणको गाय प्रदान करता है, उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। इसे **भीमव्रत** कहते हैं।

जो तीस पलसे अधिक पर्वत और समुद्रोंसहित स्वर्णकी पृथ्वी बनाकर तिलोंकी राशिपर रखकर कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है तथा दूध पीकर रहता है, वह सात कल्पतक रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह **महीव्रत** कहलाता है।

माघ अथवा चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको गुड़का भक्षण करे तथा सभी उपस्करोंसहित गुडधेनु ब्राह्मणको दान दे, उसे **उमाव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेवाला गौरीलोकमें निवास करता है। जो एक वर्षतक केवल एक ही अन्नका भोजन करता है और भक्ष्य पदार्थोंके साथ जलका घड़ा दान करता है, वह कल्पपर्यन्त शिवलोकमें निवास करता है। इसे **प्राप्तिव्रत** कहते हैं। जो कार्तिकसे आरम्भ कर प्रत्येक मासकी तृतीयाको रात्रिमें गोमूत्रमें पकायी गयी लपसीका प्राशन करता है, वह गौरीलोकमें एक कल्पतक निवास करता है, अनन्तर पृथ्वीपर राजा होता है। यह महान् कल्याणकारी **रुद्रव्रत** है। जो पुरुष कन्यादान करता है अथवा कराता है, वह अपने इक्कीस कुलोंसहित ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। कन्यादानसे बढ़कर कोई भी दान उत्तम नहीं है। इस दानको करनेसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। यह **कन्यादानव्रत** है। तिलपिष्टका हाथी बनाकर दो लाल वस्त्र, अंकुश, चामर, माला आदिसे उसको सजाकर तथा ताम्रपात्रमें स्थापित करनेके बाद वस्त्राभूषण आदिसे पत्नीसहित ब्राह्मणका पूजन करके गलेतक जलमें स्थित होकर वह हाथी उनको दान कर दे। यह **कान्तारव्रत** है। इस व्रतको करनेसे जंगल आदिसे सम्बन्धित समस्त संकट और पापोंसे छुटकारा मिल जाता है।

जो ज्येष्ठा नक्षत्र आनेपर '**त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रम्०**' आदि मन्त्रोंसे इन्द्रदेवताका व्रत-पूजन तथा हवन करते हैं, वे प्रलयपर्यन्त इन्द्रलोकमें निवास करते हैं। इसे **पुरन्दरव्रत** या **इन्द्रव्रत** कहते हैं। जो पञ्चमीको दूधका आहार करके सुवर्णकी नाग-प्रतिमा ब्राह्मणको देता है, उसे कभी सर्पका भय नहीं रहता। शुक्ल पक्षकी अष्टमीको उपवास कर दो श्वेत वस्त्र और घण्टासे भूषित बैल ब्राह्मणको दान दे। इसे **वृषव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेवाला एक कल्पतक शिवलोकमें निवास करता है तथा पुनः राजाका पद प्राप्त करता है। उत्तरायणके दिन एक सेर घीसे सूर्यनारायणको स्नान कराकर उत्तम घोड़ी ब्राह्मणको दे। इस व्रतको **राज्ञीव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेवाले व्यक्तिको अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है तथा अन्तमें वह पुत्र, भाई, स्त्री आदिसहित सूर्यलोकमें निवास करता है। जो नवमीको नक्तव्रतकर भगवती विन्ध्यवासिनीकी पूजाकर पिञ्जरके साथ सुवर्णका शुक ब्राह्मणको प्रदान करता है, उसे उत्तम वाणी और अन्तमें अग्निलोककी प्राप्ति होती है। इसे **आग्नेयव्रत** कहते हैं।

विष्कुम्भ आदि सत्ताईस योगोंमें नक्तव्रत करके क्रमसे घी, तेल, फल, ईख, जौ, गेहूँ, चना, सेम, शालि-चावल, नमक, दही, दूध, वस्त्र, सुवर्ण, कंबल, गाय, बैल, छतरी, जूता, कपूर, कुंकुम, चन्दन, पुष्प, लोहा, ताम्र, कांस्य और चाँदी ब्राह्मणको देना चाहिये। यह **योगव्रत** है। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसको कभी अपने इष्टसे वियोग नहीं होता। जो कार्तिकी पूर्णिमासे आरम्भ कर आश्विनकी पूर्णिमातक बारह पूर्णिमाओंमें क्रमसे मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन—इन बारह राशियोंकी स्वर्ण-प्रतिमाओंको वस्त्र, माल्य आदिसे अलंकृत एवं पूजितकर दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको दान करता है, उसके सम्पूर्ण उपद्रवोंका शमन हो जाता है एवं सारी आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसे सोमलोककी प्राप्ति होती है। यह **राशिव्रत** कहलाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— महाराज! मैंने इन विविध व्रतोंको बतलाया है, इन व्रतोंकी विधि श्रवण करने या पढ़ने-मात्रसे ही पातक, महापातक और उपपातक नष्ट हो जाते हैं। जो कोई भी व्यक्ति इन व्रतोंको भक्तिपूर्वक करेगा, उसे धन, सौख्य, संतान, स्वर्ग आदि कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं होगा।

(अध्याय १२१)

माघ-स्नान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! कलियुगमें मनुष्योंको स्नान-कर्ममें शिथिलता रहती है, फिर भी माघ-स्नानका विशेष फल होनेसे इसकी विधिका वर्णन कर रहा हूँ। जिसके हाथ, पाँव, वाणी, मन अच्छी तरह संयत हैं और जो विद्या, तप तथा कीर्तिसे समन्वित हैं, उन्हें ही तीर्थ, स्नान-दान आदि पुण्य कर्मोंका शास्त्रोंमें निर्दिष्ट फल प्राप्त होता है। परंतु श्रद्धाहीन, पापी, नास्तिक, संशयात्मा और हेतुवादी (कुतार्किक) इन पाँच व्यक्तियोंको शास्त्रोक्त तीर्थ-स्नान आदिका फल नहीं मिलता[1]।

प्रयाग, पुष्कर तथा कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंमें अथवा चाहे जिस स्थानपर माघ-स्नान करना हो तो प्रातःकाल ही स्नान करना चाहिये। माघ मासमें प्रातः सूर्योदयसे पूर्व स्नान करनेसे सभी महापातक दूर हो जाते हैं और प्राजापत्य-यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण सदा प्रातःकाल स्नान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। उष्ण जलसे स्नान, बिना ज्ञानके मन्त्रका जप, श्रोत्रिय ब्राह्मणके बिना श्राद्ध और सायंकालके समय भोजन व्यर्थ होता है। वायव्य, वारुण, ब्राह्म और दिव्य—ये चार प्रकारके स्नान होते हैं। गायोंके रजसे वायव्य, मन्त्रोंसे ब्राह्म, समुद्र, नदी, तालाब इत्यादिके जलसे वारुण तथा वर्षाके जलसे स्नान करना दिव्य स्नान कहलाता है। इनमें वारुण स्नान विशिष्ट स्नान है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी और बालक, तरुण, वृद्ध, स्त्री तथा नपुंसक आदि सभी माघ मासमें तीर्थोंमें स्नान करनेसे उत्तम फल प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मन्त्रपूर्वक स्नान करें और स्त्री तथा शूद्रोंको मन्त्रहीन स्नान करना चाहिये। माघ मासमें जलका यह कहना है कि जो सूर्योदय होते ही मुझमें स्नान करता है, उसके ब्रह्महत्या, सुरापान आदि बड़े-से-बड़े पाप भी हम तत्काल धोकर उसे सर्वथा शुद्ध एवं पवित्र कर डालते हैं[2]।

माघ-स्नानके व्रत करनेवाले व्रतीको चाहिये कि वह संन्यासीकी भाँति संयम-नियमसे रहे, दुष्टोंका साथ नहीं करे। इस प्रकारके नियमोंका दृढ़तासे पालन करनेसे सूर्य-चन्द्रके समान उत्तम ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है।

पौष-फाल्गुनके मध्य मकरके सूर्यमें तीस दिन प्रातः माघ-स्नान करना चाहिये। ये तीस दिन विशेष पुण्यप्रद हैं। माघके प्रथम दिन ही संकल्पपूर्वक माघ-स्नानका नियम ग्रहण करना चाहिये। स्नान करने जाते समय व्रतीको बिना वस्त्र ओढ़े जानेसे जो कष्ट सहन करना पड़ता है, उससे उसे यात्रामें पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। तीर्थमें जाकर स्नानकर मस्तकपर मिट्टी लगाकर सूर्यको अर्घ्य देकर पितरोंका तर्पण करे। जलसे बाहर निकलकर इष्टदेवको प्रणामकर शंख-चक्रधारी पुरुषोत्तम भगवान् श्रीमाधवका पूजन करे। अपनी सामर्थ्यके अनुसार यदि हो सके तो प्रतिदिन हवन करे, एक बार भोजन करे, ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करे और भूमिपर शयन करे। असमर्थ होनेपर जितना नियमका पालन हो सके उतना ही करे, परंतु प्रातःस्नान अवश्य करना चाहिये। तिलका उबटन, तिलमिश्रित जलसे स्नान, तिलोंसे पितृ-तर्पण, तिलका हवन, तिलका दान और तिलसे बनी हुई सामग्रीका भोजन करनेसे किसी भी प्रकारका कष्ट नहीं होता[3]। तीर्थमें शीतके निवारण करनेके लिये अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिये। तैल और आँवलेका दान करना चाहिये। इस प्रकार एक माहतक स्नानकर अन्तमें वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि देकर ब्राह्मणका पूजन करे और कंबल, मृगचर्म, वस्त्र, रत्न तथा अनेक प्रकारके पहननेवाले कपड़े, रजाई, जूता तथा जो भी शीतनिवारक वस्त्र हैं, उनका दान कर **'माधवःप्रीयताम्'** यह वाक्य कहना चाहिये। इस प्रकार माघ मासमें स्नान करनेवालेके अगम्यागमन, सुवर्णकी चोरी आदि गुप्त अथवा प्रकट जितने भी पातक हैं, सभी नष्ट

१-यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनस्तु सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः। हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः॥ (उत्तरपर्व १२२। ३-४)

२-माघमासे रटन्त्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ। ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कं कं तं तं पुनीमहे॥ (उत्तरपर्व १२२। १५)

३-तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलभोक्ता तिलोदकी। तिलहोता च दाता च षट्तिले नावसीदति॥ (उत्तरपर्व १२२। २७)

हो जाते हैं। माघ-स्नायी पिता, पितामह, प्रपितामह तथा माता, मातामह, वृद्धमातामह आदि इक्कीस कुलोंसहित समस्त पितरों आदिका उद्धार कर और सभी आनन्दोंको प्राप्तकर अन्तमें विष्णुलोकको प्राप्त करता है[1]। (अध्याय १२२)

स्नान और तर्पण-विधि

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! स्नानके बिना न तो शरीर ही निर्मल होता है और न भावकी ही शुद्धि होती है, अतः शरीरकी शुद्धिके लिये सबसे पहले स्नान करनेका विधान है। घरमें रखे हुए अथवा तुरंतके निकाले हुए जलसे स्नान करना चाहिये। (किसी जलाशय या नदीका स्नान सुलभ हो तो और उत्तम है।) मन्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको मूल मन्त्रके द्वारा तीर्थकी कल्पना कर लेनी चाहिये। '**ॐ नमो नारायणाय**'—यह मूल मन्त्र है। पहले हाथमें कुश लेकर विधिपूर्वक आचमन करे तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए बाहर-भीतरसे पवित्र रहे। फिर चार हाथका चौकोर मण्डल बनाकर उसमें निम्नाङ्कित मन्त्रोंद्वारा भगवती गङ्गाका आवाहन करे—'गङ्गे! तुम भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हो, श्रीविष्णु ही तुम्हारे देवता हैं, इसीलिये तुम्हें वैष्णवी कहते हैं। देवि! तुम जन्मसे लेकर मृत्युतक मेरे द्वारा किये गये समस्त पापोंसे मेरा त्राण करो। स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें कुल साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, इसे वायुदेवताने (गिनकर) कहा है। माता जाह्नवि! वे सब-के-सब तीर्थ तुम्हारे जलमें स्थित हैं। देवलोकमें तुम्हारा नाम नन्दिनी और नलिनी है। इनके अतिरिक्त क्षमा, पृथ्वी, आकाशगङ्गा, विश्वकाया, शिवा, अमृता, विद्याधरा, सुप्रसन्ना, लोक-प्रसादिनी, क्षेम्या, जाह्नवी, शान्ता और शान्तिप्रदायिनी आदि भी तुम्हारे अनेकों नाम हैं[2]। जहाँ स्नानके समय इन पवित्र नामोंका कीर्तन होता है, वहाँ त्रिपथगामिनी भगवती गङ्गा उपस्थित हो जाती हैं।

सात बार उपर्युक्त नामोंका जप करके सम्पुटके आकारमें दोनों हाथोंको जोड़कर उनमें जल ले। तीन, चार, पाँच या सात बार उसे अपने मस्तकपर डाले, फिर विधिपूर्वक मृत्तिकाको अभिमन्त्रित कर अपने अङ्गोंमें लगाये। अभिमन्त्रित करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे सर्वं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
नमस्ते सर्वलोकानामसुधारिणि सुव्रते॥

(उत्तरपर्व १२३। १२-१३)

'वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं। भगवान् श्रीविष्णुने भी वामनरूपसे तुम्हें एक पैरसे नापा था। मृत्तिके! मैंने जो बुरे कर्म किये हों, उन सबोंको दूर कर दो। देवि! भगवान् श्रीविष्णुने सैकड़ों भुजाओंवाले वराहका रूप धारण करके तुम्हें जलसे बाहर निकाला था। तुम सम्पूर्ण लोकोंके समस्त प्राणियोंमें प्राण संचार करनेवाली हो। सुव्रते! तुम्हें मेरा नमस्कार है।'

इस प्रकार मृत्तिका लगाकर पुनः स्नान करे। फिर विधिवत् आचमन करके उठे और शुद्ध सफेद धोती एवं चद्दर धारण कर त्रिलोकीको तृप्त करनेके लिये तर्पण करे। सबसे पहले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और प्रजापतिका तर्पण करे। तत्पश्चात् 'देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व, श्रेष्ठ अप्सराओं, क्रूर सर्प, गरुड पक्षी, वृक्ष, जाम्भक आदि असुर, विद्याधर, मेघ, आकाशचारी जीव, निराधार जीव, पापी जीव तथा धर्मपरायण जीवोंको तृप्त करनेके लिये मैं जल देता हूँ'—यह कहकर उन सबको जलाञ्जलि दे[3]। देवताओंका तर्पण करते समय यज्ञोपवीतको

१-माघ-स्नान-माहात्म्यके नामसे विभिन्न पुराणोंके कई स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। जिनका सारभूत अंश इस अध्यायमें उद्धृत है।

२-विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता। पाहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्। दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि॥
नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च। क्षमा पृथ्वी च विहगा विश्वकाया शिवामृता॥
विद्याधरा सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी। क्षेम्या तथा जाह्नवी च शान्ता शान्तिप्रदायिनी॥ (उत्तरपर्व १२३। ५—८)

३-देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसां गणाः। क्रूराः सर्पाः सुपर्णाश्च तरवो जम्भकादयः॥

बायें कंधेपर डाले रहे, तत्पश्चात् उसे गलेमें मालाकी भाँति कर ले और मनुष्यों, ऋषियों तथा ऋषिपुत्रोंका भक्तिपूर्वक तर्पण करे। 'सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु और पञ्चशिख[1]—ये सभी मेरे लिये जलसे सदा तृप्त हों।' ऐसी भावना करके जल दे। इसी प्रकार मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु, नारद तथा सम्पूर्ण देवर्षियों एवं ब्रह्मर्षियोंका अक्षतसहित जलके द्वारा तर्पण करे। इसके बाद यज्ञोपवीतको दायें कंधेपर रखकर बायें घुटनेको पृथ्वीपर टेककर बैठे, फिर अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, हविष्मान्, ऊष्मप, सुकाली, भौम, सोमप तथा आज्यप-संज्ञक पितरोंका तिल और चन्दनयुक्त जलसे भक्तिपूर्वक तर्पण करे। इसी प्रकार हाथोंमें कुश लेकर पवित्र भावसे परलोकवासी पिता, पितामह आदि और मातामह आदिका नाम-गोत्रका उच्चारण करते हुए तर्पण करे। इस क्रमसे विधि और भक्तिके साथ सबका तर्पण करके निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते तृप्तिमखिला यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति ॥

(उत्तरपर्व १२३। २५)

जो लोग मेरे बान्धव न हों, जो मेरे बान्धव हों तथा जो दूसरे किसी जन्ममें मेरे बान्धव रहे हों, वे सब मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हों। उनके सिवा और भी जो कोई प्राणी मुझसे जलकी अभिलाषा रखते हों, वे भी तृप्ति-लाभ करें।' (ऐसा कहकर उनके उद्देश्यसे जल गिराये।)

तत्पश्चात् विधिपूर्वक आचमन कर अपने आगे पुष्प और अक्षतोंसे कमलकी आकृति बनाये। फिर यत्नपूर्वक सूर्यदेवके नामोंका उच्चारण करते हुए अक्षत, पुष्प और रक्तचन्दनमिश्रित जलसे अर्घ्य दे। अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते विष्णुसखाय वै ॥
सहस्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे।
नमस्ते सर्ववपुषे नमस्ते सर्वशक्तये ॥
जगत्स्वामिन् नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित।
पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदधारिणे ॥
नमस्ते सर्वलोकेश सर्वासुरनमस्कृत।
सुकृतं दुष्कृतं चैव सम्यग्जानासि सर्वदा ॥
सत्यदेव नमस्तेऽस्तु सर्वदेव नमोऽस्तु ते।
दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १२३। २७—३१)

'हे भगवान् सूर्य! आप विश्वरूप और भगवान् विष्णुके सखा हैं, इन दोनों रूपोंमें आपको नमस्कार है। आप सहस्रों किरणोंसे सुशोभित और सबके तेजरूप हैं, आपको सदा नमस्कार है। सर्वशक्तिमान् भगवन्! सर्वरूपधारी आप परमेश्वरको बार-बार नमस्कार है। दिव्य चन्दनसे भूषित और संसारके स्वामी भगवन्! आपको नमस्कार है। कुण्डल और अङ्गद आदि आभूषण धारण करनेवाले पद्मनाभ! आपको नमस्कार है। भगवन्! आप सम्पूर्ण लोकोंके ईश और सभी देवोंके द्वारा वन्दित हैं, आपको मेरा प्रणाम है। आप सदा सब पाप-पुण्यको भलीभाँति जानते हैं। सत्यदेव! आपको नमस्कार है। सर्वदेव! आपको नमस्कार है। दिवाकर! आपको नमस्कार है। प्रभाकर! आपको नमस्कार है।

इस प्रकार सूर्यदेवको नमस्कार कर तीन बार प्रदक्षिणा करे। फिर द्विज, गौ और सुवर्णका स्पर्श कर अपने घर जाय और वहाँ भगवान्‌की प्रतिमाका पूजन करे। (अध्याय १२३)

रुद्र-स्नानकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप सभी दोषोंको शान्त करनेवाले रुद्र-स्नानके विधानका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस सम्बन्धमें महर्षि अगस्त्यके पूछनेपर देवसेनापति भगवान् स्कन्दने जो बताया था, उसे आप सुनें। जो मृतवत्सा (जिसके लड़के अल्प अवस्थामें मर जाते हों), वन्ध्या, दुर्भगा, संतानहीन या केवल कन्या जनती हो, उस स्त्रीको चाहिये कि वह रुद्र-स्नान करे। अष्टमी, चतुर्दशी अथवा रविवारके दिन नदीके तटपर या

विद्याधरा जलधारास्तथैवाकाशगामिनः। निराधाराश्च ये जीवाः पापकर्मरताश्च ये ॥
तेषामाप्यायनायैतद् दीयते सलिलं मया। । (उत्तरपर्व १२३। १५—१७)

१-सनकः सनन्दनश्चैव तृतीयश्च सनातनः। कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा ॥
सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा। (उत्तरपर्व १२३। १८-१९)

महानदियोंके संगममें, शिवालयमें, गोष्ठमें अथवा अपने घरमें सुयोग्य ब्राह्मणद्वारा स्नानविधिका परिज्ञानकर स्नान करे। वह गोबरद्वारा उपलिप्त स्थानमें एक उत्तम मण्डप बनाकर उसके मध्यमें अष्टदल कमल बनाये। उसके मध्यमें कर्णिकाके ऊपर भगवान् महादेवकी, उनके वाम तथा दक्षिण भागमें क्रमशः पार्वती एवं विनायककी और कमलके अष्टदलोंमें इन्द्रादि दिक्पालोंकी स्थापना करे। तदनन्तर गन्धादि उपचारोंसे उनकी पूजा करे। मण्डपके चारों कोणोंमें कलश स्थापित करे। चारों दिशाओंमें भूत-बलि भी दे। मण्डपके अग्निकोणमें कुण्ड बनाकर नमक, सर्षप, घी और मधुसे **'मा नस्तोके तनये॰'** (यजु॰ १६।१६) इत्यादि वैदिक मन्त्रसे हवन करे। आचार्य, ब्रह्मा एवं ऋत्विजोंके साथ जापकका भी वरण करे। एकादश रुद्रपाठ भी कराये। इस प्रकार दूसरे मण्डपका निर्माण कर उस व्रतकर्त्री स्त्रीको मण्डपमें बैठाकर रुद्रपूजक आचार्य उसे स्नान करायें। अर्क-पत्रके दोनेमें जल लेकर रुद्रैकादशिनीका पाठ कर उस अभिमन्त्रित जलसे स्त्रीका अभिषेक करे। अनन्तर सप्तमृत्तिकामिश्रित जल, रुद्र-कलशके जल एवं इन्द्रादि दिक्पालोंके पूजित कलशोंके अभिमन्त्रित जलसे उसे स्नान कराये। इस प्रकार रुद्र-स्नान-विधि पूर्ण हो जानेपर स्वर्णमयी धेनु, प्रत्यक्ष धेनु तथा अन्य सामग्री आचार्यको दान करे और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर वस्त्र, दक्षिणा देकर क्षमा-याचना करे। जो स्त्री इस विधिसे स्नान करती है, वह सौभाग्य-सुख प्राप्त करती है और पुत्रवती होती है। उसके शरीरमें रहनेवाले सभी दोष ब्राह्मणोंकी आज्ञासे, रुद्र-स्नान करनेसे दूर हो जाते हैं। पुत्र, लक्ष्मी तथा सुखकी इच्छा करनेवाली नारीको यह व्रत अवश्य करना चाहिये, इससे वह जीवितवत्सा हो जाती है।

(अध्याय १२४)

ग्रहण-स्नानका माहात्म्य और विधान[1]

युधिष्ठिरने कहा—द्रव्य और मन्त्रोंकी विधियोंके ज्ञाता (पूर्णविदांविद्) भगवन्! सूर्य एवं चन्द्रके ग्रहणके अवसरपर स्नानकी जो विधि है, मैं उसे सुनना चाहता हूँ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! जिस पुरुषकी राशिपर ग्रहणका ग्रावन (लगना) होता है, उसके लिये मन्त्र और औषधसहित स्नानका जो विधान है, उसे मैं बतला रहा हूँ। ऐसे मनुष्यको चाहिये कि चन्द्र-ग्रहणके अवसरपर चार ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर गन्ध-माल्य आदिसे उनकी पूजा करे। ग्रहणके पूर्व ही औषध आदिको एकत्र कर ले। फिर छिद्ररहित चार कलशोंकी, उनमें समुद्रकी भावना करके स्थापना करे। फिर उनमें सप्तमृत्तिका—हाथीसार, घुड़साल, वल्मीक (बल्मोट-दियाड़), नदीके संगम, सरोवर, गोशाला और राजद्वारके मिट्टी लाकर डाल दे। तत्पश्चात् उन कलशोंमें पञ्चगव्य, मोती, गोरोचना, कमल, शङ्ख, पञ्चरत्न, स्फटिक, श्वेत चन्दन, तीर्थ-जल, सरसों, राजदन्त (एक ओषधि-विशेष), कुमुद (कुईं) खस, गुग्गुल—यह सब डालकर उन कलशोंपर देवताओंका आवाहन इस प्रकार करे—'सभी समुद्र, नदियाँ, नद और जलप्रद तीर्थ यजमानके पापोंको नष्ट करनेके लिये यहाँ पधारें।' इसके बाद प्रार्थना करे—'जो देवताओंके स्वामी माने गये हैं तथा जिनके एक हजार नेत्र हैं, वे वज्रधारी इन्द्रदेव मेरी ग्रहणजन्य पीडाको दूर करें। जो समस्त देवताओंके मुखस्वरूप, सात जिह्वाओंसे युक्त और अतुल कान्तिवाले हैं, वे अग्निदेव चन्द्र-ग्रहणसे उत्पन्न हुई मेरी पीडाका विनाश करें। जो समस्त प्राणियोंके कर्मोंके साक्षी हैं तथा महिष जिनका वाहन है, वे धर्मस्वरूप यम चन्द्र-ग्रहणसे उद्भूत हुई मेरी पीडाको मिटायें। जो राक्षसगणोंके अधीश्वर, साक्षात् प्रलयाग्निके सदृश भयानक, खड्गधारी और अत्यन्त भयंकर हैं, वे निर्ऋति देव मेरी ग्रहणजन्य पीडाको दूर करें। जो नागपाश धारण करनेवाले हैं तथा मकर जिनका वाहन है, वे जलाधीश्वर साक्षात् वरुणदेव मेरी चन्द्र-ग्रहणजनित पीडाको नष्ट करें। जो प्राणरूपसे समस्त प्राणियोंकी रक्षा करते हैं, (तीव्रगामी) कृष्णमृग जिनका प्रिय वाहन है, वे वायुदेव मेरी

१-यह अध्याय मत्स्यपुराणके ६८ वें अध्यायमें इसी प्रकार प्राप्त है, लेकिन भविष्यपुराणका पाठ कुछ त्रुटिपूर्ण एवं अशुद्ध है, अतः उसे शुद्ध करनेके लिये मत्स्यपुराणकी सहायता ली गयी है।

चन्द्रग्रहणसे उत्पन्न हुई पीडाका विनाश करें।

'जो (नव) निधियोंके[1] स्वामी तथा खड्ग, त्रिशूल और गदा धारण करनेवाले हैं, वे कुबेरदेव चन्द्र-ग्रहणसे उत्पन्न होनेवाले मेरे पापको नष्ट करें। जिनका ललाट चन्द्रमासे सुशोभित है, वृषभ जिनका वाहन है, जो पिनाक नामक धनुष (या त्रिशूलको) धारण करनेवाले हैं, वे देवाधिदेव शंकर मेरी चन्द्र-ग्रहणजन्य पीडाका विनाश करें। ब्रह्मा, विष्णु और सूर्यसहित त्रिलोकीमें जितने स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं, वे सभी मेरे (चन्द्रजन्य) पापको भस्म कर दें।' इस प्रकार देवताओंको आमन्त्रित कर व्रती ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंकी ध्वनिके साथ-साथ उन उपकरणयुक्त कलशोंके जलसे स्वयं अभिषेक करे। फिर श्वेत पुष्पोंकी माला, चन्दन, वस्त्र और गोदानद्वारा उन ब्राह्मणोंकी तथा इष्ट देवताओंकी पूजा करे। तत्पश्चात् वे द्विजवर उन्हीं मन्त्रोंको वस्त्र-पट्ट अथवा कमलदलपर अङ्कित करें फिर द्रव्ययुक्त उन कलशोंको यजमानके सिरपर रख दें। उस समय यजमान पूर्वाभिमुख हो अपने इष्टदेवकी पूजा कर उन्हें नमस्कार करते हुए ग्रहण-कालकी वेलाको व्यतीत करे। चन्द्र-ग्रहणके निवृत्त हो जानेपर माङ्गलिक कार्य कर गोदान करे और उस (मन्त्रद्वारा अङ्कित) पट्टको स्नानादिसे शुद्ध हुए ब्राह्मणको दान कर दे।

जो मानव इस उपर्युक्त विधिके अनुसार ग्रहणका स्नान करता है, उसे न तो ग्रहणजन्य पीडा होती है और न उसके बन्धुजनोंका विनाश ही होता है, अपितु उसे पुनरागमनरहित परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सूर्य-ग्रहणमें मन्त्रोंमें सदा सूर्यका नाम उच्चारण करना चाहिये। इसके अतिरिक्त चन्द्र-ग्रहण एवं सूर्य-ग्रहण—दोनों अवसरोंपर सूर्यके निमित्त पद्मराग मणि और निशापति चन्द्रमाके निमित्त एक सुन्दर कपिला गौका दान करनेका विधान है। जो मनुष्य इस (ग्रहण-स्नानकी विधि) को नित्य सुनता अथवा दूसरेको श्रवण कराता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

(अध्याय १२५)

मरणासन्न (मृत्युके पूर्व) प्राणीके कर्तव्य तथा ध्यानके चतुर्विध भेद

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! गृहस्थ व्यक्तिको अपने अन्त समयमें क्या करना चाहिये[2]। कृपाकर इस विधिको आप बतायें। मुझे यह सुननेकी बहुत ही अभिलाषा है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! जब मनुष्यको यह ज्ञात हो जाय कि उसका अन्त समीप आ गया है तो उसे गरुडध्वज भगवान् विष्णुका स्मरण करना चाहिये। स्नान करके पवित्र हो शुद्ध श्वेत वस्त्र धारण कर अनेक प्रकारके पुष्पादि उपचारोंसे नारायणकी पूजा एवं स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करे। अपनी शक्तिके अनुसार गाय, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र आदिका दान करे और बन्धु, पुत्र, मित्र, स्त्री, क्षेत्र, धन, धान्य तथा पशु आदिसे चित्तको हटाकर ममत्वका परित्याग कर दे। मित्र, शत्रु, उदासीन अपने और पराये लोगोंके उपकार और अपकारके विषयमें विचार न करे अर्थात् शान्त हो जाय। प्रयत्नपूर्वक सभी शुभ एवं अशुभ कर्मोंका परित्याग कर इन श्लोकोंका स्मरण करे—'मैंने समस्त भोगों एवं मित्रोंका परित्याग कर दिया, भोजन भी छोड़ दिया तथा अनुलेपन, माला, आभूषण, गीत, दान, आसन, हवन आदि क्रियाएँ, पदार्थ, नित्य-नैमित्तिक और काम्य सभी क्रियाओंका उत्सर्जन कर दिया है। श्राद्धधर्मोंका भी मैंने परित्याग कर दिया है, आश्रमधर्म और वर्णधर्म भी मैंने छोड़ दिये हैं। जबतक मेरे हाथ-पैर चल रहे हैं, तबतक मैं स्वयं अपना कार्य कर लूँगा, मुझसे सभी निर्भय रहें, कोई भी पाप कर्म न करे। आकाश, जल, पृथ्वी, विवर, बिल, पर्वत, पत्थरोंके मध्य, धान्यादि फसलों, वस्त्र, शयन तथा आसनों आदिमें जो कोई प्राणी

१-पुराणों तथा महाभारतादिमें निधिपति यक्षराज कुबेरके सदा नौ निधियोंके साथ ही प्रकट होनेकी बात मिलती है। पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और वर्च—ये नौ निधिगण हैं।

२-इसी तरहकी बातें गरुडपुराण, भागवत १। १९। ३७-३८ आदिमें महाराज परीक्षितद्वारा महर्षि शुकदेवजी आदिसे पूछी गयी हैं तथा मनुष्यके जीवनका कब अन्त हो जाय, यह नहीं कहा जा सकता। अतः सदा ही ध्यानपूर्वक भगवान्‌का स्मरण-भजन करते रहना चाहिये, यही सबका सारांश है।

अवस्थित हैं, वे मुझसे निर्भय होकर सुखी रहें। जगद्गुरु भगवान् विष्णुके अतिरिक्त मेरा कोई बन्धु नहीं। मेरे नीचे-ऊपर, दाहिने-बाँयें, मस्तक, हृदय, बाहुओं, नेत्रों तथा कानोंमें मित्र-रूपमें भगवान् विष्णु ही विराज रहे हैं[1]।'

इस प्रकार सब कुछ छोड़कर सर्वेश भगवान् अच्युतको हृदयमें धारण कर निरन्तर वासुदेवके नामका कीर्तन करता रहे और जब मृत्यु अति समीप आ जाय, तब दक्षिणाग्र कुश बिछाकर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर सिरकर शयन करे तथा जगत्पति भगवान् विष्णुका इस प्रकार चिन्तन करे—

विष्णुं जिष्णुं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनम्।
नारायणं नरं शौरिं वासुदेवं जनार्दनम्॥
वाराहं यज्ञपुरुषं पुण्डरीकाक्षमच्युतम्।
वामनं श्रीधरं कृष्णं नृसिंहमपराजितम्॥
पद्मनाभमजं श्रीशं दामोदरमधोक्षजम्।
सर्वेश्वरेश्वरं शुद्धमनन्तं विश्वरूपिणम्॥
चक्रिणं गदिनं शान्तं शङ्खिनं गरुडध्वजम्।
किरीटकौस्तुभधरं प्रणमाम्यहमव्ययम्॥
अहमस्मि जगन्नाथ मयि वासं कुरु द्रुतम्।
आवयोरन्तरं मास्तु समीराकाशयोरिव॥
अयं विष्णुरयं शौरिरयं कृष्णः पुरो मम।
नीलोत्पलदलश्यामः पद्मपत्रायतेक्षणः॥
एष पश्यतु मामीशः पश्याम्यहमधोक्षजम्।
इत्थं जपेदेकमनाः स्मरन् सर्वेश्वरं हरिम्॥

(उत्तरपर्व १२६। १९—२५)

'भगवान् विष्णु, जिष्णु, हृषीकेश, केशव, मधुसूदन, नारायण, नर, शौरि, वासुदेव, जनार्दन, वाराह, यज्ञपुरुष, पुण्डरीकाक्ष, अच्युत, वामन, श्रीधर, कृष्ण, नृसिंह, अपराजित, पद्मनाभ, अज, श्रीश, दामोदर, अधोक्षज, सर्वेश्वरेश्वर, शुद्ध, अनन्त, विश्वरूपी, चक्री, गदी, शान्त, शंखी, गरुडध्वज, किरीटकौस्तुभधर तथा अव्यय परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ। जगन्नाथ! मैं आपका ही हूँ, आप शीघ्र मुझमें निवास करें। वायु एवं आकाशकी तरह मुझमें और आपमें कोई अन्तर न रहे। मैं नीले कमलके समान श्यामवर्ण, कमलनयन भगवान् विष्णु अथवा शौरि अथवा भगवान् श्रीकृष्ण आपको अपने सामने देख रहा हूँ, आप भी मुझे देखें।'

इन मन्त्रोंको पढ़कर भगवान् विष्णुको प्रणाम करे और उनका दर्शन करे तथा '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस मन्त्रका निरन्तर जप करता रहे। जो व्यक्ति प्रसन्नमुख, शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये हुए, केयूर, कटक, कुण्डल, श्रीवत्स, पीताम्बर आदिसे विभूषित, नवीन मेघके समान श्यामस्वरूप भगवान् विष्णुका ध्यान कर प्राणोंका परित्याग करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो भगवान् अच्युतमें लीन हो जाता है।

राजा युधिष्ठिरने पुनः पूछा—भगवन्! अन्त समयकी जो यह विधि आपने बतायी, वह स्वस्थचित्त रहनेपर ही सम्भव है, परंतु अन्तसमयमें तरुण और नीरोगी पुरुषोंकी भी चित्तवृत्ति मोहग्रस्त हो जाती है, वृद्ध और रोगियोंकी तो बात ही क्या है। अतिवृद्ध और रोगग्रस्त व्यक्तिके लिये कुशाके आसनपर ध्यान करना तो असम्भव ही है। इसलिये प्रभो! दूसरा भी कोई सुगम उपाय बतानेका कष्ट करें, जिससे साधन निष्फल न हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! यदि और कुछ करना सम्भव न हो तो सबसे सरल उपाय यह है कि चारों तरफसे चित्तवृत्ति हटाकर गोविन्दका स्मरण करते हुए प्राणका त्याग करना चाहिये, क्योंकि व्यक्ति जिस-जिस भावका स्मरण

१-परित्यजाम्यहं भोगांस्त्यजामि सुहृदोऽखिलान्। भोजनं हि मयोत्सृष्टमुत्सृष्टमनुलेपनम्॥
स्रग्भूषणादिकं गेयं दानमासनमेव च। होमादयः पदार्था ये ये च नित्यक्रमागताः॥
नैमित्तिकास्तथा काम्याः श्राद्धधर्मादयोज्झिताः। त्यक्ताश्चाश्रमिका धर्मा वर्णधर्मास्तथोज्झिताः॥
पद्भ्यां कराभ्यां विहरन् कुर्वाणः कर्म चोद्वहन्। न पापं कस्यचित्प्राप्य्याः प्राणिनः सन्तु निर्भयाः॥
नभसि प्राणिनो ये च ये जले ये च भूतले। क्षितेर्विवरगा ये च ये च पाषाणसम्पुटे॥
धान्यादिषु च वस्त्रेषु शयनेष्वासनेषु च। ते स्वयं तु विबुध्यन्ते दत्तं तेभ्योऽभयं मया॥
न मेऽस्ति बान्धवः कश्चिद्विष्णुं मुक्त्वा जगद्गुरुम्। मित्रपक्षे च मे विष्णुरधश्चोर्ध्वं तथा पुनः॥
पार्श्वतो मूर्ध्नि हृदये बाहुभ्यां चैव चक्षुषोः। श्रोत्रादिषु च सर्वेषु मम विष्णुः प्रतिष्ठितः॥ (उत्तरपर्व १२६। ९—१

कर प्राण त्यागता है, उसे वही भाव प्राप्त होता है। अतः सब प्रकारसे निवृत्त होकर निरन्तर वासुदेवका चिन्तन करना चाहिये[1]।

राजन्! अब आप भगवान्‌के चिन्तन-ध्यानके स्वरूपोंको सुनें, जिन्हें महर्षि मार्कण्डेयजीने मुझसे कहा था—राज्य, उपभोग, शयन, भोजन, वाहन, मणि, स्त्री, गन्ध, माल्य, वस्त्र, आभूषण आदिमें यदि अत्यन्त मोह रहता है तो यह रागजनित 'आद्य' ध्यान है।

यदि जलाने, मारने, तड़पाने, किसीके ऊपर प्रहार करनेकी द्वेषपूर्ण वृत्ति हो और दया न आये तो इसे ही क्रोधजनित 'रौद्र' ध्यान कहा गया है। वेदार्थके चिन्तन, इन्द्रियोंके उपशमन, मोक्षकी चिन्ता, प्राणियोंके कल्याणकी भावना आदि ही धर्मपूर्ण सात्त्विक ('धर्म्य') ध्यान है। समस्त इन्द्रियोंका अपने-अपने विषयोंसे निवृत्त हो जाना, हृदयमें इष्ट-अनिष्ट किसीकी भी चिन्ता नहीं करना और आत्मस्थिर होकर एकमात्र परमेश्वरका चिन्तन करना, परमात्मनिष्ठ हो जाना—यह 'शुक्ल'-ध्यानका स्वरूप है। 'आद्य' ध्यानसे तिर्यक्-योनि तथा अधोगतिकी प्राप्ति होती है, 'रौद्र' ध्यानसे नरक प्राप्त होता है। 'धर्म्य' (सात्त्विक) ध्यानसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है और 'शुक्ल'-ध्यानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे कल्याणकारी 'शुक्ल' ध्यानमें ही मन-चित्त सदा लगा रहे। (अध्याय १२६)

इष्टापूर्त[2]की महिमा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! विधिपूर्वक वापी, कूप, तडाग, बावली, वृक्षोद्यान तथा देवमन्दिर आदिका निर्माण करानेवाले तथा इन कार्योंमें सहयोगी—कर्मकार शिल्पी, सूत्रधार आदि सभी पुण्यकर्मा पुरुष अपने इष्टापूर्तधर्मके प्रभावसे सूर्य एवं चन्द्रमाकी प्रभाके समान कान्तिमान् विमानमें बैठकर दिव्यलोकको प्राप्त करते हैं। जलाशय आदिकी खुदाईके समय जो जीव मर जाते हैं, उन्हें भी उत्तम गति प्राप्त होती है। गायके शरीरमें जितने भी रोमकूप हैं, उतने दिव्य वर्षतक तडाग आदिका निर्माण करनेवाला स्वर्गमें निवास करता है। यदि उसके पितर दुर्गतिको प्राप्त हुए हों तो उनका भी वह उद्धार कर देता है। पितृगण यह गाथा गाते हैं कि देखो! हमारे कुलमें एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने जलाशयका निर्माणकर प्रतिष्ठा की। जिस तालाबके जलको पीकर गौएँ संतृप्त हो जाती हैं, उस तालाब बनवानेवालेके सात कुलोंका उद्धार हो जाता है। तडाग, वापी, देवालय और सघन छायावाले वृक्ष—ये चारों इस संसारसे उद्धार करते हैं।

जिस प्रकार पुत्रके देखनेसे माता-पिताके स्वरूपका ज्ञान होता है, उसी प्रकार जलाशय देखने और जल पीनेसे उसके कर्ताके शुभाशुभका ज्ञान होता है। इसलिये न्यायसे धनका उपार्जनकर तडाग आदि बनवाना चाहिये। धूप और गर्मीसे व्याकुल पथिक यदि तडागादिके समीप जलका पान करे और वृक्षोंकी घनी छायामें ठंडी हवाका सेवन करता हुआ विश्राम करे तो तडागादिकी प्रतिष्ठा करनेवाला व्यक्ति अपने मातृकुल और पितृकुलका उद्धार कर स्वयं भी सुख प्राप्त करता है। इष्टापूर्तकर्म करनेवाला पुरुष कृतकृत्य हो जाता है। इस लोकमें जो तडागादि बनवाता है, उसीका जन्म सफल है और उसीकी माता पुत्रिणी कहलाती है। वही अजर है, वही अमर है। जबतक तडाग आदि स्थित हैं और उसकी निर्मल कीर्तिका प्रचार-प्रसार होता रहता है, तबतक वह व्यक्ति स्वर्गवासका सुख प्राप्त करता है। जो व्यक्ति हंस आदि पक्षीको कमल और कुवलय आदि पुष्पोंसे युक्त अपने तडागमें जल पीता हुआ देखता है और जिसके तालाबमें घट, अञ्जलि, मुख तथा चंचु आदिसे अनेक जीव-जन्तु जल पीते हैं, उसी व्यक्तिका जन्म

१-तिष्ठन् भुञ्जन् स्वपन् गच्छंस्तथा धावंस्ततस्ततः। उत्क्रान्तिकाले गोविन्दं संस्मरंस्तन्मयो भवेत्॥
यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
(उत्तरपर्व १२६। ३९—४०)

२-भविष्यपुराणमें यह विषय तीन पर्वोंमें तीन बार आया है और वेदोंसे लेकर स्मृतियों तथा अन्य पुराणोंमें भी बार-बार आता है। यह अन्तर्वेदी और बहिर्वेदीके नामसे विख्यात है। इसमें जलाशय, वृक्ष, उद्यान आदि लगानेसे सर्वाधिक पुण्योंका लाभ बताया गया है। यहाँ इसका थोड़ा-सा संक्षेप कर दिया गया है। मात्र सारभूत बातें दी गयी हैं।

सफल है, उसकी कहाँतक प्रशंसा की जाय। जो तडाग आदि बनाकर उसके किनारे देवालय बनवाता है तथा उसमें देवप्रतिष्ठा करता है, उसके पुण्यका कहाँतक वर्णन किया जाय? देवालयकी ईंट जबतक खण्ड-खण्ड न हो जाय, तबतक देवालय बनानेवाला व्यक्ति स्वर्गमें निवास करता है। कूप ऐसे स्थानपर बनवाना चाहिये, जहाँ बहुत-से जीव जल पी सकें, कूपका जल स्वादिष्ट हो तो कूप बनवानेवालेके सात कुलोंका उद्धार हो जाता है। जिसके बनाये हुए कूपका जल मनुष्य पीते हैं, वह सभी प्रकारका पुण्य प्राप्त कर लेता है, ऐसा मनुष्य सभी प्राणियोंका उपकार करता है। तडाग बनवाकर उसके तटपर वृक्षोंके बीच उत्तम देवालय बनवानेसे उस व्यक्तिकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त रहती है और बहुत समयतक दिव्य भोग भोगकर वह चक्रवर्ती राजाका पद प्राप्त करता है। जो व्यक्ति वापी, कूप, तडाग, धर्मशाला आदि बनवाकर अन्नका दान करता है और जिसका वचन अति मधुर है, उसका नाम यमराज भी नहीं लेते।

वे वृक्ष धन्य हैं, जो फल, फूल, पत्र, मूल, वल्कल, छाल, लकड़ी और छायाद्वारा सबका उपकार करते हैं। वस्तुओंके चाहनेवालोंको वे कभी निराश नहीं करते। धर्म-अर्थसे रहित बहुतसे पुत्रोंसे तो मार्गमें लगाया गया एक ही वृक्ष श्रेष्ठ है, जिसकी छायामें पथिक विश्राम करते हैं। सघन छायावाले श्रेष्ठ वृक्ष अपनी छाया, पल्लव और छालके द्वारा प्राणियोंको, पुष्पोंके द्वारा देवताओंको और फलोंके द्वारा पितरोंको प्रसन्न करते हैं। पुत्र तो निश्चित नहीं है कि एक वर्षपर भी श्राद्ध करेगा या नहीं, परंतु वृक्ष तो प्रतिदिन अपने फल-मूल, पत्र आदिका दानकर वृक्ष लगानेवालेका श्राद्ध करते हैं। वह फल न तो अग्निहोत्रादि कर्म करनेसे और न ही पुत्र उत्पन्न करनेसे प्राप्त होता है, जो फल मार्गमें छायादार वृक्षके लगानेसे प्राप्त होता है।

छायादार वृक्ष, पुष्प देनेवाले वृक्ष, फल देनेवाले वृक्ष तथा वृक्षवाटिका कुलीन स्त्रीकी भाँति अपने पितृकुल तथा पतिकुल दोनों कुलोंको उसी प्रकार सुख देनेवाले होते हैं, जैसे लगाये गये वृक्ष आदि अपने लगानेवाले तथा रक्षा आदि करनेवाले दोनोंके कुलोंका उद्धार कर देते हैं। जो भी बगीचा आदि लगाता है, उसे अवश्य ही उत्तम लोककी प्राप्ति होती है और वह व्यक्ति नित्य गायत्रीजपका, नित्य दानका और नित्य यज्ञ करनेका फल पाता है। जो पुरुष एक पीपल, एक नीम, एक बरगद, दस इमली तथा एक-एक कैथ, बिल्व और आमलक तथा पाँच आमके वृक्ष लगाता है, वह कभी नरकका मुँह नहीं देखता[1]। जिसने जलाशय न बनवाया हो और एक भी वृक्ष न लगाया हो, उसने संसारमें जन्म लेकर कौन-सा कार्य किया। वृक्षोंके समान कोई भी परोपकारी नहीं है। वृक्ष धूपमें खड़े रहकर दूसरोंको छाया प्रदान करते हैं तथा फल, पुष्प आदिसे सबका सत्कार करते हैं। मानवोंकी शुभ गति पुत्रोंके बिना नहीं होती—यह कथन तो उचित ही है, किंतु यदि पुत्र कुपुत्र हो गया तो वह अपने पिताके लिये कलंकस्वरूप तथा नरकका हेतु भी बन जाता है। इसलिये विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि विधिपूर्वक वृक्षारोपण करके उसका पालन-पोषण करे। इससे संसारमें न तो कलंक होता है और न निन्द्य गति ही प्राप्त होती है, बल्कि कीर्ति, यश एवं अन्तमें शुभ गति प्राप्त होती है।

इसी प्रकार जो व्यक्ति भव्य देव-मन्दिर बनवाकर उसमें देवमूर्तियोंकी प्रतिमाओंको स्थापित करता है, मन्दिरमें अनुलेपन, देवताओंका अभिषेक, दीपदान तथा विविध उपचारोंद्वारा उनकी अर्चा करता अथवा करवाता है, वह इस संसारमें राज्यश्री प्राप्त कर अन्तमें परमधामको प्राप्त करता है तथा इस लोकमें कीर्ति एवं यशरूपी शरीरसे प्रतिष्ठित रहता है। (अध्याय १२७—१२९)

दीपदानकी महिमा-प्रसंगमें जातिस्मरा रानी ललिताका आख्यान

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! वह कौन-सा व्रत, तप, नियम अथवा दान है, जिसके करनेसे इस लोकमें अत्यन्त तेजोमय शरीरकी प्राप्ति होती है। इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! किसी समय

१-अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश तिन्तिडीकान्। कपित्थबिल्वामलकीत्रयं च पञ्चाम्ररोपी नरकं न पश्येत्॥ (उत्तरपर्व १२८। ११)

पिंगल नामके एक तपस्वी मथुरामें आकर प्रवास कर रहे थे। उन तपस्वीसे देवी जाम्बवतीने भी यही प्रश्न किया था, उस विषयको आप सुनें—पिंगलमुनिने कहा था—'देवि! संक्रान्ति, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, वैधृति, व्यतिपातयोग, उत्तरायण, दक्षिणायन, विषुव, एकादशी, शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी, तिथिक्षय, सप्तमी तथा अष्टमी—इन पुण्य दिनोंमें स्नान कर, व्रतपरायण स्त्री अथवा पुरुषको अपने आँगनके मध्य घृत-कुम्भ और जलता हुआ दीपक भूमिदेवको दान देना चाहिये। इससे प्रदीप्त एवं ओजस्वी शरीर प्राप्त होती है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—मधुसूदन! भूमिके देवता कौन हैं? मेरे इस संशयको दूर करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! पूर्वकालमें सत्ययुगके आदिमें त्रिशंकु नामका एक (सूर्यवंशी) राजा था, जो सशरीर स्वर्गको जाना चाहता था। पर महर्षि वसिष्ठने उसे चाण्डाल बना दिया, इससे त्रिशंकु बहुत दुःखी हुआ और उसने विश्वामित्रजीसे समस्त वृत्तान्त कहा। इससे क्रुद्ध होकर विश्वामित्रने दूसरी सृष्टिकी रचना प्रारम्भ कर दी। उस सृष्टिमें सभी देवताओंके साथ-साथ त्रिशंकुके लिये दूसरा स्वर्ग बनाना प्रारम्भ कर दिया और शृङ्गाटक (सिंघाड़ा), नारियल, कोद्रव, कूष्माण्ड, ऊँट, भेड़ आदिका निर्माण किया और नये सप्तर्षि तथा देवताओंकी प्रतिमाका भी निर्माण कर दिया। उस समय इन्द्रने आकर इनकी प्रार्थना की* और विश्वामित्रजीसे सृष्टि रोकनेका अनुरोध किया तथा दीपदान करनेकी सम्मति दी। जो प्रतिमाएँ इन्होंने बनायी थीं, उनमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवताओंका वास हुआ और वे ही इस संसारके प्राणियोंका कल्याण करनेके लिये मर्त्यलोकमें प्रतिमाओंमें मूर्तिमान् रूपमें स्थित हुए और नैवेद्यादिको ग्रहण करते हैं तथा अपने भक्तोंपर प्रसन्न होकर वरदान देते हैं, वे ही भूमिदेव कहलाते हैं। राजन्! इसीलिये उनके सम्मुख दीपदान करना चाहिये। भगवान् सूर्यके लिये प्रदत्त दीपकी रक्तवस्त्रसे निर्मित वर्तिका 'पूर्णवर्ति' कहलाती है। इसी प्रकार शिवके लिये निर्मित श्वेत वस्त्रकी वर्तिका 'ईश्वरवर्ति', विष्णुके लिये निर्मित पीत वस्त्रकी वर्तिका 'भोगवर्ति', गौरीके लिये निर्मित कुसुम रंगके वस्त्रसे निर्मित वर्तिका 'सौभाग्यवर्ति', दुर्गाके लिये लाक्षके रंगके समान रंगवाले वस्त्रसे निर्मित वर्तिका 'पूर्णवर्तिका' कहलाती है। ऐसे ही ब्रह्माके लिये प्रदत्त वर्तिका 'पद्मवर्ति', नागोंके लिये प्रदत्त वर्तिका 'नागवर्ति' तथा ग्रहोंके लिये प्रदत्त वर्तिका 'ग्रहवर्ति' कहलाती है। इन देवताओंके लिये ऐसे ही वर्तिकायुक्त दीपकका दान करना चाहिये। पहले देवताका पूजन करनेके बाद बड़े पात्रमें घी भरकर दीपदान करना चाहिये। इस विधिसे जो दीपदान करता है, वह सुन्दर तेजस्वी विमानमें बैठकर स्वर्गमें जाता है और वहाँ प्रलयपर्यन्त निवास करता है। जिस प्रकार दीप प्रकाशित होता है, उसी प्रकार दीपदान करनेवाला व्यक्ति भी प्रकाशित होता है। दीपके शिखाकी भाँति उसकी भी ऊर्ध्वगति होती है। दीपक घृत या तेलके जलाने चाहिये, वसा, मज्जा आदि तरलद्रव्य-युक्तके नहीं। जलते हुए दीपको बुझाना नहीं चाहिये, न ही उस स्थानसे हटाना चाहिये। दीप बुझा देनेवाला काना होता है और दीपको चुरानेवाला अंधा होता है। दीपका बुझाना निन्दनीय कर्म है।

राजन्! आप दीपदानके माहात्म्यमें एक आख्यान सुनें—विदर्भ देशमें चित्ररथ नामका एक राजा रहता था। उस राजाके अनेक पुत्र थे और एक कन्या थी, जिसका नाम था ललिता। वह सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न अत्यन्त सुन्दर थी। राजा चित्ररथने धर्मका अनुसरण करनेवाले महाराज काशिराज चारुधर्माके साथ ललिताका विवाह किया। चारुधर्माकी यह प्रधान रानी हुई। वह विष्णु-मन्दिरमें सहस्रों प्रज्वलित दीपक प्रतिदिन जलाया करती थी। विशेषरूपसे आश्विन-कार्तिकमें बड़े समारोहपूर्वक दीपदान करती थी। वह चौराहों, गलियों, मन्दिरों, पीपलके वृक्षके पास, गोशाला, पर्वतशिखर, नदीतटों तथा कुओंपर प्रतिदिन दीप-दान करती थी। एक बार उसकी सपत्नियोंने उससे पूछा—'ललिते! तुम दीपदानका फल हमें भी बतलाओ। तुम्हारी भक्ति देवताओंके पूजन आदिमें न होकर दीपदानमें इतनी अधिक क्यों है?' यह सुनकर ललिताने कहा—'सखियो! तुमलोगोंसे मुझे कोई शिकायत नहीं है, न ही ईर्ष्या, इसलिये मैं तुमलोगोंसे दीपदानका फल कह रही हूँ। ब्रह्माजीने मनुष्योंके उद्धारके लिये साक्षात् पार्वतीजीको मद्रदेशमें श्रेष्ठ देविका नदीके रूपमें पृथ्वीपर अवतरित किया, वह पापोंका नाश करनेवाली है, उसमें एक बार भी स्नान करनेसे मनुष्य शिवजीका गण हो जाता

है। उस नदीमें जहाँ भगवान् विष्णुने नृसिंहरूपसे स्वयं स्नान किया था, उस स्थानको नृसिंहतीर्थ कहते हैं। नृसिंहतीर्थमें स्नान करनेमात्रसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

सौवीर नामके एक राजा थे, जिसके पुरोहित थे मैत्रेय। राजाने देविकाके तटपर एक विष्णुमन्दिर बनवाया। उस मन्दिरमें मैत्रेयजी प्रतिदिन पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे पूजन और दीपदान किया करते थे। वे एक दिन कार्तिककी पूर्णिमाको वहाँ दीपदानका बहुत बड़ा उत्सव मना रहे थे। रात्रिके समय सभी लोगोंको नींद आ गयी। उस मन्दिरमें अपने पूर्वजन्ममें मूषिकारूपमें रहनेवाली मुझे दीपककी घृतवर्तिको खानेकी इच्छा हुई। उसी क्षण मुझे बिल्लीकी आवाज सुनायी दी। मैंने भयभीत होकर दीपककी बत्ती छोड़ दी और छिप गयी, वह दीपक बुझने नहीं पाया। मन्दिरमें पूर्ववत् प्रकाश हो गया। कुछ काल बाद मेरी मृत्यु हो गयी, पुनः मैं विदर्भदेशमें चित्ररथ राजाकी राजकन्या हुई और काशिराज चारुधर्माकी मैं पटरानी हुई। सखियो! कार्तिक मासमें विष्णुमन्दिरमें दीपदानका ऐसा सुन्दर फल होता है। चूँकि मैं मूषिका थी, मेरा दीपदानका कोई संकल्प नहीं था, फिर भी मुझसे अनायास जो मन्दिरमें भयवश दीप प्रज्वलित हुआ अथवा मैं दीपको नष्ट न कर सकी, उस समय बिना परिज्ञानके मुझसे जो दीपदानका पुण्यकर्म हुआ था, उसी पुण्य-कर्मके फलस्वरूप आज मैं श्रेष्ठ महारानीके पदपर स्थित हूँ और मुझे अपने पूर्वजन्मका ज्ञान है। इसी कारण मैं आज भी निरन्तर दीपदान करती रहती हूँ। मैं दीपदानके फलको भलीभाँति जानती हूँ, इसलिये नित्य देवालयमें दीप जलाती हूँ।' ललिताका यह कथन सुनकर सभी सहेलियाँ भी दीपदान करने लगीं और बहुत समयतक राज्य-सुख भोगकर सभी अपने पतिके साथ विष्णुलोकको चली गयीं। इस प्रकार जो भी पुरुष अथवा स्त्री दीप-दान करते हैं, वे उत्तम तेज प्राप्तकर विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं। (अध्याय १३०)

वृषोत्सर्गकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! कार्तिक और माघकी पूर्णिमा, चैत्रकी पूर्णिमा तथा तृतीया और वैशाखकी पूर्णिमा एवं द्वादशीमें शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न वृषभको चार गौओंके साथ छोड़नेसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। इस वृषोत्सर्गकी विधिको गर्गाचार्यने मुझसे इस प्रकार बतलाया है—सबसे पहले षोडशमातृकाका पूजनकर मातृश्राद्ध तथा फिर आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिये। फिर एक कलश स्थापित कर उसपर रुद्रका पूजन करके घृतसे हवन करना चाहिये। उस सर्वाङ्गसुन्दर तरुण बछड़ेके वाम भागमें त्रिशूल और दक्षिण भागमें चक्रयुक्त चिह्न अंकितकर कुंकुम आदिसे अनुलिप्त करे, गलेमें पुष्पकी माला पहना दे। अनन्तर चार तरुण बछियाओंको भी भूषित कर उनके कानमें कहे कि 'आपके पतिस्वरूप इस पुष्ट एवं सुन्दर वृषको मैं विसर्जित कर रहा हूँ, आप इसके साथ स्वच्छन्दतापूर्वक प्रसन्न होकर विहार करें।' पुनः उनको वस्त्रसे आच्छादितकर एवं स्वादिष्ट भोजनसे संतुष्ट कर देवालय, गोष्ठ अथवा नदी-संगम आदि स्थानोंमें छोड़ना चाहिये। वे पुरुष धन्य हैं, जो स्वेच्छाचारी, गरजते हुए, ककुद्मान् तथा अहंकारसे पूर्ण वृष छोड़ते हैं। इस विधिसे जो वृषोत्सर्ग करता है, उसके दस पुस्त पहलेके और दस पुस्त आगेके भी पुरुष सद्गतिको प्राप्त करते हैं। यदि वृष नदीके जलमें प्रवेश करता है और उसके सींगसे या पूँछसे जो जल उछलता है, उस तर्पणरूप जलसे वृषोत्सर्ग करनेवाले व्यक्तिके पितरोंको अक्षयतृप्ति प्राप्त होती है। अपने सींगसे या खुरोंसे यदि वह मिट्टी खोदता है तो वृषोत्सर्ग करनेवालेके पितरोंके लिये वह खोदी भूमि जल भर जानेपर मधुकुल्या बन जाती है। चार हजार हाथ लम्बे-चौड़े तडाग बनानेसे पितरोंको उतनी तृप्ति नहीं होती, जितनी तृप्ति एक वृष छोड़नेसे होती है। मधु और तिलको एक साथ मिलाकर पिण्डदान करनेसे पितरोंको जो तृप्ति नहीं होती, वह तृप्ति एक वृषोत्सर्ग करनेसे प्राप्त होती है। जो व्यक्ति अपने पितरोंके उद्धारके लिये वृष छोड़ता है, वह स्वयं भी स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १३१)

फाल्गुन-पूर्णिमोत्सव

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! फाल्गुनकी पूर्णिमाको ग्राम-ग्राम तथा नगर-नगरमें उत्सव क्यों मनाया जाता है और गाँवों एवं नगरोंमें होली क्यों जलायी जाती है? क्या कारण है कि बालक उस दिन घर-घर अनाप-शनाप शोर मचाते हैं? अडाडा किसे कहते हैं, उसे शीतोष्णा क्यों कहा जाता है तथा किस देवताका पूजन किया जाता है। आप कृपाकर यह बतानेका कष्ट करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पार्थ! सत्ययुगमें रघु नामके एक शूरवीर प्रियवादी सर्वगुणसम्पन्न दानी राजा थे। उन्होंने समस्त पृथ्वीको जीतकर सभी राजाओंको अपने वशमें करके पुत्रकी भाँति प्रजाका लालन-पालन किया। उनके राज्यमें कभी दुर्भिक्ष नहीं हुआ और न किसीकी अकाल मृत्यु हुई। अधर्ममें किसीकी रुचि नहीं थी। पर एक दिन नगरके लोग राजद्वारपर सहसा एकत्र होकर 'त्राहि', 'त्राहि' पुकारने लगे। राजाने इस तरह भयभीत लोगोंसे कारण पूछा। उन लोगोंने कहा कि महाराज! ढोंढा नामकी एक राक्षसी प्रतिदिन हमारे बालकोंको कष्ट देती है और उसपर किसी मन्त्र-तन्त्र, ओषधि आदिका प्रभाव भी नहीं पड़ता, उसका किसी भी प्रकार निवारण नहीं हो पा रहा है। नगरवासियोंका यह वचन सुनकर विस्मित राजाने राज्यपुरोहित महर्षि वसिष्ठ मुनिसे उस राक्षसीके विषयमें पूछा। तब उन्होंने राजासे कहा—'राजन्! माली नामका एक दैत्य है, उसीकी एक पुत्री है, जिसका नाम है ढोंढा। उसने बहुत समयतक उग्र तपस्या करके शिवजीको प्रसन्न किया। उन्होंने उससे वरदान माँगनेको कहा।' इसपर ढोंढाने यह वरदान माँगा कि 'प्रभो! देवता, दैत्य, मनुष्य आदि मुझे न मार सकें तथा अस्त्र-शस्त्र आदिसे भी मेरा वध न हो, साथ ही दिनमें, रात्रिमें, शीतकाल, उष्णकाल तथा वर्षाकालमें, भीतर अथवा बाहर कहीं भी मुझे किसीसे भय न हो।' इसपर भगवान् शंकरने 'तथास्तु' कहकर यह भी कहा कि 'तुम्हें उन्मत्त बालकोंसे भय होगा।' इस प्रकार वर देकर भगवान् शिव अपने धामको चले गये। वही ढोंढा नामकी कामरूपिणी राक्षसी नित्य बालकोंको और प्रजाको पीड़ा देती है। 'अडाडा' मन्त्रका उच्चारण करनेपर वह ढोंढा शान्त हो जाती है। इसलिये उसको अडाडा भी कहते हैं। यही उस राक्षसी ढोंढाका चरित्र है। अब मैं उससे पीछा छुड़ानेका उपाय बता रहा हूँ।

राजन्! आज फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी पूर्णिमा तिथिको सभी लोगोंको निडर होकर क्रीडा करनी चाहिये और नाचना, गाना तथा हँसना चाहिये। बालक लकड़ियोंके बने हुए तलवार लेकर वीर सैनिकोंकी भाँति हर्षसे युद्धके लिये उत्सुक हो दौड़ते हुए निकल पड़ें और आनन्द मनायें। सूखी लकड़ी, उपले, सूखी पत्तियाँ आदि अधिक-से-अधिक एक स्थानपर इकट्ठाकर उस ढेरमें रक्षोघ्न मन्त्रोंसे अग्नि लगाकर उसमें हवनकर हँसकर ताली बजाना चाहिये। उस जलते हुए ढेरकी तीन बार परिक्रमा कर बच्चे, बूढ़े सभी आनन्ददायक विनोदपूर्ण वार्तालाप करें और प्रसन्न रहें। इस प्रकार रक्षामन्त्रोंसे, हवन करनेसे, कोलाहल करनेसे तथा बालकोंद्वारा तलवारके प्रहारके भयसे उस दुष्ट राक्षसीका निवारण हो जाता है।

वसिष्ठजीका यह वचन सुनकर राजा रघुने सम्पूर्ण राज्यमें लोगोंसे इसी प्रकार उत्सव करनेको कहा और स्वयं भी उसमें सहयोग किया, जिससे वह राक्षसी विनष्ट हो गयी। उसी दिनसे इस लोकमें ढोंढाका उत्सव प्रसिद्ध हुआ और अडाडाकी परम्परा चली। ब्राह्मणोंद्वारा सभी दुष्टों और सभी रोगोंको शान्त करनेवाला वसोर्धारा-होम इस दिन किया जाता है, इसलिये इसको होलिका भी कहा जाता है। सब तिथियोंका सार एवं परम आनन्द देनेवाली यह फाल्गुनकी पूर्णिमा तिथि है। इस दिन रात्रिको बालकोंकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये। गोबरसे लिपे-पुते घरके आँगनमें बहुतसे खड्गहस्त बालक बुलाने चाहिये और घरमें रक्षित बालकोंको काष्ठनिर्मित खड्गसे स्पर्श कराना चाहिये। हँसना, गाना, बजाना, नाचना आदि करके उत्सवके बाद गुड़ और बढ़िया पकवान देकर बालकोंको विसर्जित करना चाहिये। इस विधिसे ढोंढाका दोष अवश्य शान्त हो जाता है।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! दूसरे दिन चैत्र माससे वसन्त ऋतुका आगमन होता है, उस दिन क्या करना चाहिये?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! होलीके दूसरे

दिन प्रतिपदामें प्रातःकाल उठकर आवश्यक नित्यक्रियासे निवृत्त हो पितरों और देवताओंके लिये तर्पण-पूजन करना चाहिये और सभी दोषोंकी शान्तिके लिये होलिकाकी विभूतिकी वन्दना कर उसे अपने शरीरमें लगाना चाहिये। घरके आँगनको गोबरसे लीपकर उसमें एक चौकोर मण्डल बनाये और उसे रंगीन अक्षतोंसे अलंकृत करे। उसपर एक पीठ रखे। पीठपर सुवर्णसहित पल्लवोंसे समन्वित कलश स्थापित करे। उसी पीठपर श्वेत चन्दन भी स्थापित करना चाहिये। सौभाग्यवती स्त्रीको सुन्दर वस्त्र, आभूषण पहनकर दही, दूध, अक्षत, गन्ध, पुष्प, वसोर्धारा आदिसे उस श्रीखण्डकी पूजा करनी चाहिये। फिर आम्रमंजरीसहित उस चन्दनका प्राशन करना चाहिये। इससे आयुकी वृद्धि, आरोग्यकी प्राप्ति तथा समस्त कामनाएँ सफल होती हैं। भोजनके समय पहले दिनका पकवान थोड़ा-सा खाकर इच्छानुसार भोजन करना चाहिये। इस विधिसे जो फाल्गुनोत्सव मनाता है, उसके सभी मनोरथ अनायास ही सिद्ध हो जाते हैं। आधि-व्याधि सभीका विनाश हो जाता है और वह पुत्र, पौत्र, धन-धान्यसे पूर्ण हो जाता है। यह परम पवित्र, विजयदायिनी पूर्णिमा सब विघ्नोंको दूर करनेवाली है तथा सब तिथियोंमें उत्तम है। (अध्याय १३२)

दमनकोत्सव, दोलोत्सव तथा रथयात्रोत्सव आदिका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! इस संसारमें बहुतसे सुगन्धित पुष्प हैं, परंतु उनको छोड़कर दमनक (दौना) नामक पुष्प देवताओंको क्यों चढ़ाया जाता है तथा दोलोत्सव और रथयात्रोत्सव मनानेकी क्या विधि है, इसका वर्णन करनेकी आप कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पार्थ! मन्दराचल पर्वतपर दमनक नामका एक श्रेष्ठ तथा अत्यन्त सुगन्धित वृक्ष उत्पन्न हुआ। उसके दिव्य गन्धके प्रभावसे देवाङ्गनाएँ विमुग्ध हो गयीं और ऋषि-मुनि भी जप, तप वेदाध्ययन आदिसे च्युत हो गये। इस प्रकार उसके गन्धसे सब लोग उन्मत्त हो गये। सभी शुभ कार्यों एवं मङ्गल-कार्योंमें विघ्न उपस्थित हो गया। यह देखकर ब्रह्माजीको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और वे दमनकसे बोले—'दमनक! मैंने तुम्हें संसार (के दोषों) के दमन (शान्त) करनेके लिये उत्पन्न किया है, किंतु तुमने सम्पूर्ण संसारको उद्वेलित कर दिया है, तुम्हारा यह काम ठीक नहीं है। सज्जनोंका कहना है कि अतिशय सर्वत्र वर्ज्य है। इसलिये ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे लोगोंमें उद्वेग न पैदा हो। एकका अपकार करनेवाला व्यक्ति अधम कहा जाता है, परंतु जो अनेकोंका अपकार करनेमें प्रवृत्त हो गया हो, उसके लिये क्या कहा जाय? तुमने तो बहुतसे लोगोंको दुःख दिया है, इसलिये मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि कोई भी व्यक्ति तुम्हारे पुष्पको देवकार्य तथा पितृकार्यमें आजसे ग्रहण नहीं करेगा।' ब्रह्माजीद्वारा दिये गये शापको सुनकर दमनकने कहा—'महाराज! मैंने द्वेषवश अथवा क्रोधवश किसीका अपकार नहीं किया है। आपने ही मुझे इतना सुगन्ध दिया है कि उसके प्रभावसे सभी लोग स्वयं उन्मत्त हो जाते हैं। इसमें मेरा क्या दोष है। आपने ही मेरा ऐसा स्वभाव बनाया है। जिसकी जो प्रकृति होती है, उसे वह त्याग नहीं सकता; क्योंकि प्रकृति त्यागनेमें वह असमर्थ होता है[1]। निरपराध होते हुए भी आपने मुझे शाप दिया है।' दमनककी इस तर्कसंगत बातको सुनकर ब्रह्माजीने कहा—'दमनक! तुम्हारा कथन ठीक है। मैंने तुम्हें शाप दिया है। उसका मुझे हार्दिक दुःख है। उसकी निवृत्तिके लिये मैं तुझे वरदान देता हूँ कि वसन्त-ऋतुमें तुम सभी देवताओंके मस्तकपर चढ़ोगे। जो व्यक्ति भक्तिभावसे दमनक-पुष्प देवताओंपर चढ़ायेगा, उसे सदा सुख प्राप्त होगा। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी दमनक-चतुर्दशीके नामसे विख्यात होगी और उस दिन व्रत-नियमके पालन करनेसे व्रतीके सभी पाप नष्ट हो जायँगे। इतना कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और दमनक भी अपने गन्धसे त्रिभुवनको वासित करता हुआ शिवजीके निवास-स्थान मन्दराचलपर रहने लगा। उसी दिनसे लोकमें दमनक-पूजा प्रसिद्ध हुई[2]।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं

१-या यस्य जन्तोः प्रकृतिः शुभा वा यदि वेतरा। स तस्यामेव रमते दुष्कृते सुकृते तथा॥ (उत्तरपर्व १३३। १५)

२-अग्नि, मत्स्य और शिवपुराणमें इसका अधिक विस्तारसे वर्णन है।

दोलोत्सवका वर्णन कर रहा हूँ। किसी समय नन्दनवनमें दोलोत्सव हुआ। वसन्त ऋतुमें देवाङ्गनाएँ और देवता मिलकर दोला-क्रीड़ा करने लगे। नन्दनवनमें यह मनोहारी उत्सव देखकर भगवती पार्वतीजीने शंकरजीसे कहा—'भगवन्! इस क्रीड़ाको आप देखें। आप मेरे लिये भी एक दोला बनवाइये, जिसपर मैं आपके साथ बैठकर दोला-क्रीड़ा कर सकूँ।' पार्वतीजीके यह कहनेपर शिवजीने देवताओंको अपने पास बुलाकर दोला बनानेको कहा। देवताओंने शिवजीके कथनानुसार सुन्दर उत्तम इष्टापूर्तमय दो स्तम्भ गाड़कर उसपर सत्यस्वरूप एक लकड़ीका पटरा रखा और वासुकि नागकी रस्सी बनाकर उसके फणोंपर बैठनेके लिये रत्नजटित पीठकी रचना की। उस फणके ऊपर अत्यन्त मृदुल कपास और रेशमी वस्त्र बिछाकर दोलाकी शोभा बढ़ानेके लिये मोतियोंके गुच्छों और फूल-मालाओंसे उसे सजा दिया। इस प्रकार देवताओंने अति उत्तम दोला तैयार कर भगवान् शंकरको आदरपूर्वक प्रदान किया। अनन्तर भगवान् चन्द्रभूषण भगवती पार्वतीके साथ दोलापर बैठ गये। भगवान् शंकरके पार्षद दोला झुलाने लगे तथा जया और विजया दोनों सखियाँ चँवर डुलाने लगीं। उस समय पार्वतीजीने बहुत ही मधुर स्वरमें गीत गाया, जिससे शिवजी आनन्दमग्न हो गये। गन्धर्व गीत गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं और चारण विविध प्रकारके बाजे बजानेमें संलग्न हो गये। परंतु शिवजीके दोला-विहारसे सभी पर्वत काँपने लगे, समुद्रमें हलचल मच गया, प्रचण्ड पवन चलने लगा, सारा लोक त्रस्त हो गया। इस प्रकार त्रैलोक्यको अति व्याकुल देखकर इन्द्रादि सभी देवगणोंने सभीके पापोंका नाश करनेवाले शिवजीके पास आकर प्रणाम किया और प्रार्थना कर कहने लगे—'नाथ! अब आप दोला-लीलासे निवृत्त हों, क्योंकि त्रैलोक्यको क्षोभ प्राप्त हो रहा है।' इस प्रकार देवताओंकी प्रार्थना सुनकर प्रसन्न हो शिवजीने दोलासे उतरकर कहा कि 'आजसे वसन्त ऋतुमें जो व्यक्ति इस दोलोत्सवको करेगा तथा नैवेद्य अर्पित कर तत्तद् देवताओंके मूल मन्त्रोंसे उन्हें दोलापर आरोहण करायेगा, करेगा, आनन्द मनायेगा और स्तुति-पाठ करेगा, वह सभी अभीष्टोंको प्राप्त करेगा।'

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—महाराज! अब मैं रथयात्राका वर्णन करता हूँ।

एक बार चैत्र मासमें मलयपर देवताओंसे समावृत भगवान् शंकर शान्तभावसे विराजमान थे। इसी समय मृत्युलोकमें इधर-उधर घूमते हुए देवर्षि नारद ब्रह्मलोकसे भगवान् शंकरके पास आये। उन्होंने भगवान्को प्रणाम किया और आसनपर बैठ गये। सर्वज्ञ भगवान् शंकरने देवर्षि नारदसे पूछा—'मुने! आपका आगमन कहाँसे हो रहा है?' नारद बोले—'देवदेव! मैं मृत्युलोकसे आ रहा हूँ। वहाँ कामदेवके मित्र वसन्त ऋतुने सारा संसार अपने वशमें कर लिया है। वहाँ मन्द-मन्द सुगन्धित मलय पवन बहता है। वसन्त ऋतुके सहयोगी—कोकिल, आम्रमञ्जरी आदि सभी उसके कार्यमें सहयोग प्रदान कर रहे हैं। नगर-नगर और ग्राम-ग्राममें वसन्त ऋतु यह घोषणा कर रहा है कि इस संसारका ही नहीं, अपितु तीनों लोकोंका स्वामी एकमात्र कामदेव है। भगवन्! उसीके शासनमें सभी लोग उन्मत्तसे हो रहे हैं। चैत्र मासका यह विचित्र प्रभाव देखकर मैं आपसे निवेदन करने आया हूँ।' नारदजीका वचन सुनकर भगवान् शंकर गन्धर्व, अप्सरा, मुनिगण और सभी देवताओंको साथ लेकर मृत्युलोकमें आये और उन्होंने देखा कि जैसा नारदजीने कहा था, वही स्थिति मृत्युलोकमें व्याप्त है। सब लोग उन्मत्त हो गये हैं। आनन्दमें मग्न हैं। शिवजी वसन्तकी शोभा देख ही रहे थे कि उनके साथ जो देवता आदि आये थे, वे भी आनन्दित हो गाने-बजाने लगे। वसन्तके प्रभावसे देवताओंको भी क्षुब्ध देखकर शंकरने यह विचार किया कि यह तो बड़ा अनर्थ हो रहा है। इसके प्रतीकारका कोई-न-कोई उपाय करना ही चाहिये। जो अनर्थ होता हुआ देखकर भी उसके निवारणका उपाय नहीं करता, वह अवश्य ही विपत्तिमें पड़कर दुःखको प्राप्त करता है। अब मुझे इन सबकी उन्मादसे रक्षा करनी चाहिये और स्वामिभक्त वसन्त ऋतुका भी सम्मान रखना चाहिये। यह विचारकर शिवजीने वसन्त ऋतुको अपने पास बुलाकर कहा कि 'वसन्त! तुम केवल चैत्र मासमें अपना प्रभाव प्रकट करो, चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें सभी जीवोंको और विशेष रूपसे देवताओंको सुख देनेवाले हो जाओ।' अनन्तर देवताओंको स्वस्थचित्त किया और यह भी कहा कि 'जो व्यक्ति वसन्त ऋतुमें रथयात्रोत्सव करेगा, वह इस संसारमें

दिव्य भोगोंको भोगनेवाला तथा नीरोग होगा।' इतना कहकर शिवजी सभी देवताओंके साथ अपने लोकको चले गये। वसन्त ऋतु भी शिवजीके आज्ञानुसार वनमें विहार करता हुआ अन्तर्धान हो गया। उसी दिनसे लोकमें रथयात्रोत्सवका प्रचार-प्रसार हुआ। जो देवताओंकी रथयात्रा करता है, उसके धन, पशु, पुत्र आदिकी वृद्धि होती है और अन्तमें वह सद्गतिको प्राप्त करता है[1]।

राजन्! अब आप विशेष तिथियोंका वर्णन सुनें। तृतीयाको गौरी, चतुर्थीको गणपति, पञ्चमीको लक्ष्मी अथवा सरस्वती, षष्ठीको स्कन्द, सप्तमीको सूर्य, अष्टमी और चतुर्दशीको शिव, नवमीको चण्डिका, दशमीको वेदव्यास आदि शान्तचित्त ऋषि-महर्षि, एकादशी तथा द्वादशीको भगवान् विष्णु, त्रयोदशीको कामदेव और पूर्णिमाको सभी देवताओंका अर्चन-पूजन करना चाहिये। इस प्रकार देवताओंकी निर्दिष्ट तिथियोंमें ही दमनकोत्सव, दोलोत्सव और रथयात्रा आदि उत्सव करने चाहिये। इस प्रकार वसन्त ऋतुमें उत्सव करनेवाला व्यक्ति बहुत कालतक स्वर्गका सुख भोगकर पुनः चक्रवर्ती राजाका पद प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—राजन्! जब भगवान् शंकरने अपने नेत्रकी ज्वालासे कामदेवको भस्म कर डाला था, उस समय कामदेवकी पत्नियाँ रति और प्रीति दोनों रो-रोकर विलाप करने लगीं। इसपर पार्वतीजीके हृदयमें दया उत्पन्न हो गयी और वे शिवजीसे प्रार्थना करने लगीं—'महाराज! आप कृपाकर इस कामदेवको जीवनदान दें और शरीर प्रदान कर दें।' यह सुनकर प्रसन्न हो शिवजीने कहा—'पार्वती! यद्यपि अब यह मूर्तिमान् रूपमें जीवित नहीं हो सकता, परंतु चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको प्रतिवर्ष एक बार यह मनसे उत्पन्न होकर जीवित होगा। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको जो भी कामदेवका पूजन करेगा, वह वर्षभर सुखी रहेगा। इतना कहकर शिवजी कैलासपर चले गये। राजन्! इसकी विधिको सुनें—चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको स्नान कर एक अशोकवृक्ष बनाकर उसके नीचे रति, प्रीति और वसन्तसहित कामदेवकी प्रतिमाको सिंदूर और हल्दीसे बनाना चाहिये अथवा सुवर्णकी मूर्ति स्थापित करनी चाहिये। मूर्ति ऐसी होनी चाहिये, जिसकी सेवामें विद्याधरियाँ हाथ जोड़े हों, अप्सराएँ जिसके चारों तरफ खड़ी हों, गन्धर्व नृत्य कर रहे हों। इस प्रकार मध्याह्नके समय गन्ध, पुष्प, धूप, अक्षत, ताम्बूल, दीप, अनेक प्रकारके फल, नैवेद्य आदि उपचारोंसे कामदेवकी तथा अपने पतिकी भी पूजा करे। जो इस प्रकार प्रतिवर्ष कामोत्सव करता है, वह सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्य, लक्ष्मी आदिको प्राप्त करता है। विष्णु, ब्रह्मा तथा सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह, कामदेव, वसन्त और गन्धर्व, असुर, राक्षस, सुपर्ण, नाग, पर्वत आदि उसपर प्रसन्न हो जाते हैं। उसको कभी शोक नहीं होता। जो स्त्री वसन्त ऋतुमें रति, प्रीति, वसन्त, मलयानिल आदि परिवारसहित कामदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करती है, वह सौभाग्य, रूप, पुत्र और सुखको प्राप्त करती है।

महाराज! इसी प्रकार ज्येष्ठ मासके प्रतिपद् तिथिसे लेकर पूर्णिमातक भगवती भूतमाताका पूजनोत्सव मनाना चाहिये। अनेक प्रकारके मनोविनोदपूर्ण एवं हास्यपूर्ण गीत, नाटक आदिका आयोजन करना चाहिये। नवमी अथवा एकादशीको दीपक जलाकर अतीव भक्तिपूर्वक भगवतीके समीप ले जाने चाहिये।

इस प्रकार पूर्णिमातक प्रदोषके समय दीपमहोत्सव करना चाहिये और द्वादशीके दिन भूतमाताका विशेष उत्सव मनाना चाहिये। इस प्रकार अनेक प्रकारके उत्सवोंसे भूतमाताका पूजन करनेवाले व्यक्ति सपरिवार प्रसन्न रहते हैं और उनके घरमें किसी प्रकारका विघ्न उत्पन्न नहीं होता। यह भूतमाता भगवती पार्वतीके अंशसे समुद्भूत हैं।

(अध्याय १३३—१३६)

१-कालक्रमसे इस रथयात्राका प्रचलन कम हो गया, किंतु आषाढ़-शुक्ल द्वितीयाको सर्वत्र जगन्नाथजीकी रथयात्रा निकलती है, विशेषकर पुरीमें।

नम्र निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें 'संक्षिप्त भविष्यपुराणाङ्क' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। विशेषाङ्कके रूपमें पुराणोंके संक्षिप्त अनुवादके प्रकाशनकी परम्परा 'कल्याण'में प्रारम्भसे ही चली आ रही है। पिछले कई दिनोंसे कुछ महानुभावोंका यह विशेष आग्रह था कि 'कल्याण'के विशेषाङ्क-रूपमें 'भविष्यपुराण'का प्रकाशन किया जाय। यह बात हमें भी अच्छी लगी; क्योंकि अठारह महापुराणोंके अन्तर्गत भविष्यपुराण भी नवें महापुराणमें परिगणित है। साथ ही चतुर्वर्ग-चिन्तामणि, व्रतार्क, दानसागर, व्रतरत्नाकर, जयसिंहकल्पद्रुम आदि सभी प्राचीन निबन्ध-ग्रन्थोंमें व्रत, दान एवं धार्मिक अनुष्ठानके प्रकरणमें मूल श्लोकोंका संदर्भ भी भविष्यपुराणका ही प्रायः मिलता है। इन सब कारणोंसे इस पुराणकी श्रेष्ठता और महत्व विशेष रूपसे परिलक्षित होनेपर भी सामान्यजन इसकी विषयवस्तुसे अनभिज्ञ-जैसे ही हैं। इसलिये स्वाभाविकरूपसे यह प्रेरणा हुई कि भविष्यपुराणकी कथावस्तुको जनता-जनार्दनके प्रकाशमें लानेके लिये इस बार इसी महापुराणका संक्षिप्त अनुवाद विशेषाङ्कके रूपमें प्रस्तुत किया जाय। इस प्रेरणाके अनुसार ही यह निर्णय कार्यरूपमें परिणत हुआ।

वास्तवमें भविष्यपुराण सौर-प्रधान ग्रन्थ है। इसके अधिष्ठातृ-देव भगवान् सूर्य हैं। सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देवता हैं। उनसे ही संसारको प्रकाश, ऊष्मा, प्राणशक्ति, वृष्टि, अन्न और अन्य जीवनोपयोगी सामग्रियाँ उपलब्ध होती हैं, उनके बिना पूरा विश्व अन्धकारमें विलीन होकर प्रलयको प्राप्त हो जायगा। सूर्योदयके बाद ही दिशाओं, नगर, पर्वत, ग्राम, मनुष्य और पशु-पक्षियोंका विभाजन और उनकी पहचान स्पष्ट होती है, अन्यथा सारा जगत् दृष्टिविहीन और परिचयशून्य हो जाय। इस पुराण तथा अन्य पुराणों एवं वैदिक संहिताओंके अनुसार सूर्य ही वृक्ष, लता, गुल्म, पशु-पक्षी और देवता तथा मनुष्योंके प्राण हैं—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।'** इसलिये इनकी उपासनासे सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हों, आयु-आरोग्यकी प्राप्ति हो, तो इसमें क्या आश्चर्य है? तीनों संध्याओंमें इन्हींकी उपासना की जाती है। भविष्यपुराणमें कहा गया है कि संध्यामें दीर्घकालतक सूर्योपासना करके ऋषि-मुनियोंने दीर्घ आयु प्राप्त की थी—**'ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः।'** सम्पूर्ण ज्योतिश्चक्र और ज्योतिष-शास्त्रके घड़ी-घंटे आदिके मूल निर्देशक सूर्य ही हैं। भगवान् सूर्यदेवकी महिमाका विस्तृत वर्णन इसी पुराणमें उपलब्ध होता है। इसके ब्राह्मपर्वमें कई चमत्कारिक वर्णन प्राप्त होते हैं, जिन्हें बार-बार पढ़नेपर भी आकर्षण बना ही रहता है। इसी प्रकार मध्यमपर्वकी कर्मकाण्डीय सामग्री, प्रतिसर्गपर्वकी ऐतिहासिक सामग्री और भक्तोंके चरित्र बड़े भव्य और आकर्षक हैं। उत्तरपर्वके व्रत-धर्म-दान, सदाचार तथा देवोपासना आदिके निर्देशक सभी अध्याय बार-बार मननीय और शिक्षाप्रद हैं।

आज भारतवासी अपनी सनातन संस्कृति और सनातन परम्परासे विचलित-सा होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा है। वह अपने आदर्श सर्वेश्वरवाद तथा सर्वभूतात्मवादके पवित्र सिद्धान्तको भूलकर एक देश-विशेषकी पार्थिव सीमामें अपनेको आबद्ध कर मोहित हो गया है और इसीको राष्ट्रियता और देशप्रेमके नामसे पुकारता है और उसी देश-विशेषकी केवल आर्थिक स्वतन्त्रताको ही 'स्वराज्य' मानकर उसकी प्राप्तिके प्रयत्नमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री मानने लगा है। मनुष्यका पुरुषार्थ-चतुष्टय—अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष आज केवल दो—'अर्थ और काम' में ही सीमित हो गया है और वह अर्थ-काम ही मोक्षानुगामी और धर्मसम्मत न होनेसे आसुरी हो गया है। फलतः आजका मानव असुर मानव बनता जा रहा है। उसकी धर्मपर आस्था नहीं, भगवान्पर विश्वास नहीं। मनमाना आचरण करनेमें ही उसे गौरवका बोध होता है। सब ओर आज यही यथेच्छाचार और यही अधिकार तथा अर्थकी अपार लिप्सा एवं व्यक्तिगत स्वार्थकी पापमयी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। सभी प्रायः प्रमत्त हैं। क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये क्रूरता, निर्दयता, हिंसा और हत्याका आश्रय आतंकवादके नामपर धड़ल्लेसे लिया जा रहा है। ऐसे नाजुक समयमें पुराण-जैसे आध्यात्मिक ग्रन्थोंके प्रचार-प्रसार, पठन-पाठन और आलोडनसे ही देशमें शान्तिमय वातावरण, सुस्थिरता और सन्मार्गपर चलनेकी प्रवृत्ति जाग्रत् हो सकती है। पुराणोंमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचारके साथ-साथ यज्ञ,

व्रत, दान, तप, तीर्थसेवन, देवपूजन, श्राद्ध-तर्पण आदि शास्त्रविहित शुभकर्मोंमें तथा पारस्परिक उत्तम व्यवहारमें जनसाधारणको प्रवृत्त करनेके लिये उनके लौकिक एवं पारलौकिक फलोंका वर्णन किया गया है। भविष्यपुराणमें भी इन सब विषयोंका तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य कई विषयोंका समावेश हुआ है। पाठकोंकी सुविधाके लिये 'भविष्यपुराण'के भावोंका सार-संक्षेप इस विशेषाङ्कके प्रारम्भमें लेखरूपमें प्रस्तुत किया गया है। उसके अवलोकनसे भविष्यपुराणके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय पाठकोंके ध्यानमें आ सकेंगे। आशा है, पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे।

'भविष्यपुराण'के प्रकाशनका निर्णय जितनी सरलतासे हुआ, इसके सम्पादनमें उतनी ही कठिनाइयोंका भी अनुभव हुआ। भविष्यपुराण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होते हुए भी मालूम पड़ता है इन दिनों विशेष-रूपसे उपेक्षित-सा रहा। 'वेंकटेश्वर प्रेस'से प्रकाशित एक ही मूल संस्करण इस पुराणका उपलब्ध हो सका। अन्य प्रकाशित मूल प्रतियाँ भी इसीकी प्रतिलिपि मात्र थीं। इसके अतिरिक्त इस पुराणका कोई संस्करण तथा इस पुराणकी कोई टीका तथा किसी भी भाषामें कोई अनुवाद भी उपलब्ध नहीं हुआ। जिसके कारण मूल पाठ-भेद आदिका निर्णय करना कठिन था। जो संस्करण उपलब्ध हुए उनके मूल श्लोकोंमें अशुद्धियाँ मिलनेसे अनुवाद आदिके कार्यमें भी विशेष कठिनाईका अनुभव हुआ।

इस वर्षसे 'कल्याण'के वर्षका प्रारम्भ तीन मास पूर्व जनवरीसे कर दिया गया है। हम यह चाहते थे कि 'कल्याण'के अङ्क हम अपने पाठकोंको समयसे प्रेषित करें, परंतु इन अपरिहार्य विषम परिस्थितियोंके कारण अनुवाद-कार्य पूरा न होनेसे न चाहते हुए भी विलम्ब हो ही गया। इस विलम्बके कारण हमारे प्रिय पाठकोंको निश्चितरूपसे अधीर होना पड़ा होगा तथा कष्टका अनुभव भी हुआ होगा, जिसके लिये क्षमा-प्रार्थनाके अतिरिक्त मेरे पास कोई दूसरा उपाय भी नहीं है। भविष्यमें हमारा यह प्रयास अवश्य होगा कि समयसे आपकी सेवामें 'कल्याण'के अङ्क प्रस्तुत हों।

भविष्यपुराणके इस संक्षिप्त अनुवादका कलेवर विशेषाङ्ककी पृष्ठ-संख्यासे अधिक होनेके कारण तीन परिशिष्टाङ्कोंमें यह पूर्ण हो सकेगा। ये परिशिष्टाङ्क पाठकोंकी सेवामें यथासमय प्रेषित होंगे। इस अङ्कके सम्पादनमें जिन महानुभावोंने हमारी सहायता की है, उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। अनुवादका कार्य पूज्यवर पं० श्रीमहाप्रभुलालजी गोस्वामीके द्वारा तथा उनके निरीक्षणमें सम्पन्न हुआ तथा पुराणके कुछ अंशोंका अनुवाद पं० श्रीमूलशंकरजी शास्त्रीके द्वारा सम्पन्न हुआ। हम इन दोनों महानुभावोंके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करते हैं। अनुवादके संशोधन आदि कार्योंमें वाराणसीके पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्री तथा अपने 'कल्याण'-सम्पादकीय विभागके पं० श्रीजानकीनाथजी शर्माने विशेष सहयोग प्रदान किया है। इनके प्रति भी हम हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। इस विशेषाङ्कके सम्पादन, प्रूफसंशोधन, चित्रनिर्माण, मुद्रण आदि कार्योंमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहृदयता मिली है, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते। इस बार भविष्यपुराणके सम्पादन-कार्यके क्रममें परमात्मप्रभु और उनकी ललित लीला-कथाओंका चिन्तन-मनन तथा स्वाध्यायका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा, यह हमारे लिये विशेष महत्त्वकी बात है। हमें आशा है, इस विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकोंको भी यह सौभाग्य-लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये आप सबसे पुनः क्षमा-प्रार्थना करते हुए भगवान् श्रीवेदव्यासजीके चरणोंमें नमन करते हैं, जिनके कृपाप्रसादसे आज हम सभी जीवनका मार्गदर्शन कर लाभान्वित हैं—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

—राधेश्याम खेमका
सम्पादक

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥

वर्ष ६६ } गोरखपुर, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१७, फरवरी १९९२ ई० { संख्या २ / पूर्ण संख्या ७८३

कृष्णाय तुभ्यं नमः

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

श्रीकृष्ण! आपने मत्स्यरूप धारणकर प्रलयसमुद्रमें डूबे हुए वेदोंका उद्धार किया, समुद्र-मन्थनके समय महाकूर्म बनकर पृथ्वीमण्डलको पीठपर धारण किया, महावराहके रूपमें कारणार्णवमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया, नृसिंहके रूपमें हिरण्यकशिपु आदि दैत्योंका विदारण किया, वामनके रूपमें राजा बलिको छला, परशुरामके रूपमें क्षत्रिय जातिका संहार किया, श्रीरामके रूपमें महाबली रावणपर विजय प्राप्त की, श्रीबलरामके रूपमें हलको शस्त्ररूपमें धारण किया, भगवान् बुद्धके रूपमें करुणाका विस्तार किया था तथा कल्किके रूपमें म्लेच्छोंको मूर्च्छित करेंगे। इस प्रकार दशावतारके रूपमें प्रकट आपकी मैं वन्दना करता हूँ।

श्रावणपूर्णिमाको रक्षाबन्धनकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! प्राचीन कालमें देवासुर-संग्राममें देवताओंद्वारा दानव पराजित हो गये। दुःखी होकर वे दैत्यराज बलिके साथ गुरु शुक्राचार्यजीके पास गये और अपनी पराजयका वृत्तान्त बतलाया। इसपर शुक्राचार्य बोले—'दैत्यराज ! आपको विषाद नहीं करना चाहिये। दैववश कालकी गतिसे जय-पराजय तो होती ही रहती है। इस समय वर्षभरके लिये तुम देवराज इन्द्रके साथ संधि कर लो, क्योंकि इन्द्र-पत्नी शचीने इन्द्रको रक्षा-सूत्र बाँधकर अजेय बना दिया है। उसीके प्रभावसे दानवेन्द्र ! तुम इन्द्रसे परास्त हुए हो। एक वर्षतक प्रतीक्षा करो, उसके बाद तुम्हारा कल्याण होगा। अपने गुरु शुक्राचार्यके वचनोंको सुनकर सभी दानव निश्चिन्त हो गये और समयकी प्रतीक्षा करने लगे। राजन् ! यह रक्षाबन्धनका विलक्षण प्रभाव है, इससे विजय, सुख, पुत्र, आरोग्य और धन प्राप्त होता है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! किस तिथिमें किस विधिसे रक्षाबन्धन करना चाहिये। इसे बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! श्रावण मासकी पूर्णिमाके दिन प्रातःकाल उठकर शौच इत्यादि नित्य-क्रियासे निवृत्त होकर श्रुति-स्मृति-विधिसे स्नान कर देवताओं और पितरोंका निर्मल जलसे तर्पण करना चाहिये तथा उपाकर्म-विधिसे वेदोक्त ऋषियोंका तर्पण भी करना चाहिये। ब्राह्मणवर्ग देवताओंके उद्देश्यसे श्राद्ध करें। तदनन्तर अपराह्न-कालमें रक्षापोटलिका इस प्रकार बनाये—कपास अथवा रेशमके वस्त्रमें अक्षत, गौर सर्षप, सुवर्ण, सरसों, दूर्वा तथा चन्दन आदि पदार्थ रखकर उसे बाँधकर एक पोटलिका बना ले तथा उसे एक ताम्रपात्रमें रख ले और विधिपूर्वक उसको प्रतिष्ठित कर ले। आँगनको गोबरसे लीपकर एक चौकोर मण्डल बनाकर उसके ऊपर पीठ स्थापित करे और उसके ऊपर मन्त्रीसहित राजाको पुरोहितके साथ बैठना चाहिये। उस समय उपस्थित जन प्रसन्न-चित्त रहें। मङ्गल-ध्वनि करें। सर्वप्रथम ब्राह्मण तथा सुवासिनी स्त्रियाँ अर्घ्यादिके द्वारा राजाकी अर्चना करें। अनन्तर पुरोहित उस प्रतिष्ठित रक्षापोटलीको इस मन्त्रका पाठ करते हुए राजाके दाहिने हाथमें बाँधे—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः ।
तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल ॥

(उत्तरपर्व १३७ । २०)

तत्पश्चात् राजाको चाहिये कि सुन्दर वस्त्र, भोजन और दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंकी पूजाकर उन्हें संतुष्ट करे। यह रक्षाबन्धन चारों वर्णोंको करना चाहिये। जो व्यक्ति इस विधिसे रक्षाबन्धन करता है, वह वर्षभर सुखी रहकर पुत्र-पौत्र और धनसे परिपूर्ण हो जाता है।

(अध्याय १३७)

महानवमी-(विजयादशमी-) व्रत

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! महानवमी सब तिथियोंमें श्रेष्ठ है। सभी प्रकारके मङ्गल और भगवतीकी प्रसन्नताके लिये सब लोगोंको और विशेषकर राजाओंको महानवमीका उत्सव अवश्य मनाना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! इस महानवमी-व्रतका आरम्भ कबसे हुआ ? क्या यशोदाके गर्भसे प्रादुर्भूत होनेके समयसे महानवमी-व्रतका प्रचलन हुआ अथवा इसके पूर्व सत्ययुग आदिमें भी यह महानवमी-व्रत था ? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! वह परमशक्ति सर्वव्यापिनी, भावगम्या, अनन्ता और आद्या आदि नामसे विश्वविख्यात है। उनका काली, सर्वमङ्गला, माया, कात्यायिनी, दुर्गा, चामुण्डा तथा शंकरप्रिया आदि अनेक नाम-रूपोंसे ध्यान और पूजन किया जाता है।

देव, दानव, राक्षस, गन्धर्व, नाग, यक्ष, किन्नर, नर आदि सभी अष्टमी तथा नवमीको उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। कन्याके सूर्यमें आश्विन मासके शुक्ल पक्षमें अष्टमीको यदि मूल नक्षत्र हो तो उसका नाम महानवमी है। यह महानवमी तिथि तीनों लोकोंमें अत्यन्त दुर्लभ है। आश्विन मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी और नवमीको जगन्माता भगवती श्रीअम्बिकाका पूजन करनेसे सभी शत्रुओंपर विजय प्राप्त हो जाती है। यह तिथि पुण्य, पवित्रता, धर्म और सुखको देनेवाली है। इस दिन

मुण्डमालिनी चामुण्डाका पूजन अवश्य करना चाहिये। सभी कल्पों और मन्वन्तरोंमें देव, दैत्य आदि अनेक प्रकारके उपचारोंसे नवमी तिथिको भगवतीकी पूजा किया करते हैं और तीनों लोकोंमें अवतार लेकर भगवती मर्यादाका पालन करती रहती हैं। राजन्! यही पराम्बा जगन्माता भगवती यशोदाके गर्भसे उत्पन्न हुई थीं और वे कंसके मस्तकपर पैर रखकर आकाशमें चली गयीं और फिर विन्ध्याचलमें स्थापित हुईं, तभीसे यह पूजा प्रवर्तित हुई।

भगवतीका यह उत्सव पहलेसे ही प्रसिद्ध था, परंतु सभी प्राणियोंके उपकारके लिये तथा सभी विघ्न-बाधाओंकी शान्तिके लिये ही मैंने अपनी बहनके रूपमें भगवती विन्ध्यवासिनी देवीकी महिमाका विशेषरूपसे प्रचार किया। विन्ध्यवासिनी भगवतीके स्थानमें नव रात्रि, तीन रात्रि, एक रात्रि उपवास या अयाचितव्रत अथवा नक्तव्रत कर अनेक प्रकारके उपचारोंसे भगवतीकी आराधना करनी चाहिये। ग्राम-ग्राम, नगर-नगर और घर-घरमें सभी लोगोंको स्नान कर प्रसन्नचित्त होकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री आदि सभीको भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। विशेषकर राजाओंको तो यह पूजन अवश्य करना चाहिये।

विजयकी इच्छा रखनेवाले राजाको प्रतिपदासे अष्टमी-पर्यन्त लोहाभिहारिक कर्म (अस्त्र-शस्त्र-पूजन) करना चाहिये। सर्वप्रथम पूर्वोत्तर ढालवाली भूमिमें नौ अथवा सात हाथ लम्बा-चौड़ा, पताकाओंसे सुसज्जित एक मण्डप बनाना चाहिये। उसमें अग्निकोणमें तीन मेखला और पीपलके समान योनिसे युक्त एक अति सुन्दर एक हाथके कुण्डकी रचना करनी चाहिये। राजाके चिह्न—छत्र, चामर, सिंहासन, अश्व, ध्वजा, पताका आदि और सभी प्रकारके अस्त्र-शस्त्र, मण्डपमें लाकर रखे। उन सबका अधिवासन करे। इसके अनन्तर ब्राह्मणको चाहिये कि वह स्नानकर श्वेत वस्त्र धारणकर मण्डपादिकी पूजा करे और फिर ओंकारपूर्वक राजचिह्नोंके निर्दिष्ट मन्त्रोंद्वारा घृतसे संयुक्त पायससे हवन-कर्म करे। पूर्वकालमें बहुत ही बलवान्, शक्तिशाली लोह नामका एक दैत्य पैदा हुआ था। उसको देवताओंने मारकर खण्ड-खण्ड कर पृथ्वीपर गिरा दिया। वही दैत्य आज लोहाके रूपमें दिखायी पड़ता है। उसीके अङ्गोंसे ही विभिन्न प्रकारके लोहेकी उत्पत्ति हुई है। इसलिये उसी समयसे लोहाभिहारिक कर्म राजाओंको विजय प्राप्त करनेमें सहायक सिद्ध हुआ, ऐसा ऋषियोंने बतलाया है। हवनका बचा हुआ शेष पायस हाथी और घोड़ोंको खिलाकर उनको अलंकृत कर माङ्गलिक घोष करते हुए रक्षकोंके साथ समारोहपूर्वक नगरमें घुमाना चाहिये। राजाको भी प्रतिदिन स्नानकर पितरों और देवताओंकी पूजा करनेके बाद राजचिह्नोंकी भी भलीभाँति पूजा करनी चाहिये। इससे राजाको विजय, कीर्ति, आयु, यश तथा बलकी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार लोहाभिहारिक कर्म करनेके अनन्तर अष्टमीके दिन पूर्वाह्णमें स्नान कर नियमपूर्वक सुवर्ण, चाँदी, पीपल, ताँबा, मृत्तिका, पाषाण, काष्ठ आदिकी दुर्गाकी सुन्दर मूर्ति बनाकर उत्तम सुसज्जित स्थानके बीच सिंहासनके ऊपर स्थापित करे। कुंकुम, चन्दन, सिन्दूर आदिसे उस मूर्तिको चर्चित कर कमल आदि पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य आदिसे अनेक बाजे-गाजेके साथ उनका पूजन करना चाहिये। वन्दीजन स्तुति करें। बहुतसे लोग छत्र-चामर आदि राजचिह्न लेकर चारों ओर खड़े होकर स्थित रहें। दीक्षायुक्त राजा पुरोहितके साथ बिल्वपत्रोंसे भगवतीकी इस मन्त्रसे पूजा करे—

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥
अमृतोद्भवः श्रीवृक्षो महादेवीप्रियः सदा।
बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि॥

(उत्तरपर्व १३८। ८६-८७)

इस प्रकार पूजनकर उसी दिनसे द्रोणपुष्पी (गूमा) से पूजा करनी चाहिये। असुरोंके साथ युद्ध करनेसे जो क्षति भगवतीके शरीरको हुई उसकी पूर्ति द्रोणपुष्पीसे ही हुई। इसलिये द्रोणपुष्पी भगवतीको अत्यन्त प्रिय है। फिर शत्रुओंके वधके लिये खड्गको प्रणामकर सुभिक्ष, राज्य और अपने विजयकी प्राप्ति-हेतु भगवतीसे प्रार्थना करनी चाहिये और उनका ध्यान तथा इस स्तुतिका पाठ करना चाहिये—

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
कुंकुमेन समालब्धे चन्दनेन विलेपिते।
बिल्वपत्रकृतामाले दुर्गेऽहं शरणं गतः॥

(उत्तरपर्व १३८। ९३-९४)

इस प्रकार अष्टमीको सब प्रकारसे भगवतीका पूजन कर रात्रिको जागरण करना चाहिये और नृत्यादिक उत्सव कराना चाहिये। प्रसन्नतापूर्वक रात्रिके बीत जानेपर नवमीको प्रातःकाल भगवतीकी बड़े समारोहके साथ विशेष पूजा करनी चाहिये। अपराह्न-समयमें रथके बीच भगवती दुर्गाकी प्रतिमाको स्थापित कर पूरे राज्य भरमें भ्रमण कराना चाहिये। अपनी सेनासहित राजाको भी साथ रहना चाहिये।

सभी प्रकारके विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये भूतशान्ति करनी चाहिये। जिससे यात्रा निर्विघ्न पूर्ण हो। इस विधिसे जो राजा अथवा सामान्य व्यक्ति भगवतीकी यात्रा करता है, वह सभी प्रकारके पापोंसे छूटकर भगवतीके लोकको प्राप्त कर लेता है और उस व्यक्तिको शत्रु, चोर, ग्रह, विघ्न आदिका भय नहीं होता। भगवतीके भक्त सदा नीरोग, सुखी और निर्भय हो जाते हैं। जो व्यक्ति भगवतीके उत्सव-विधिका श्रवण करता है या पढ़ता है, उसके भी सभी अमङ्गल दूर हो जाते हैं।

(अध्याय १३८)

इन्द्रध्वजोत्सवके प्रसंगमें उपरिचर वसुका वृत्तान्त

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके समय ब्रह्मा आदि देवताओंने 'इन्द्रको विजय प्राप्त हो', इसलिये ध्वजयष्टिका निर्माण किया। ध्वजयष्टिको देवताओं, सिद्ध-विद्याधर तथा नाग आदिने मेरु पर्वतपर स्थापित कर सभी उपचारों—पुष्प, धूप तथा दीपादिसे उसकी पूजा की और अनेक प्रकारके आभूषण, छत्र, घण्टा, किंकिणी आदिसे उसे अलंकृत किया। उस ध्वजयष्टिको देखकर दैत्य त्रस्त हो गये और युद्धमें देवताओंने उन्हें पराजित कर स्वर्गका राज्य प्राप्त कर लिया। दैत्य पाताल लोकको चले गये। उसी दिनसे देवता उस इन्द्रयष्टिका पूजन और उत्सव करने लगे।

एक समय अपने महान् पुण्य-प्रतापके कारण राजा उपरिचर वसु स्वर्गमें आये। उनका देवताओंने बहुत सम्मान किया। उनसे प्रसन्न होकर इन्द्रने वह ध्वज उन्हें दिया और वर देते हुए कहा कि पृथ्वीमें इस ध्वजकी आप पूजा करें, इससे आपके राज्यके सभी दोष दूर हो जायँगे और जो भी राजा वर्षा-ऋतुमें (भाद्रपद शुक्ल द्वादशी) श्रवण नक्षत्रमें इसका पूजन करेगा, उसके राज्यमें क्षेम और सुभिक्ष बना रहेगा, किसी प्रकारका उपद्रव नहीं होगा, प्रजाएँ प्रसन्न एवं नीरोग होंगी, सर्वत्र धार्मिक यज्ञ होंगे। राज्यमें प्रचुर धन-सम्पत्ति होगी। इन्द्रका यह वचन सुनकर राजा उपरिचर वसु इन्द्र-ध्वजको लेकर अपने नगरमें चले आये और प्रतिवर्ष इन्द्र-ध्वजकी पूजा कर उत्सव मनाने लगे। इस ध्वजयष्टिको भी प्रत्यक्ष देवी माना गया है।

अब मैं इन्द्रध्वजके उत्सवकी विधि बता रहा हूँ। बीस हाथ लंबे, सुपुष्ट, उत्तम काष्ठकी एक यष्टि बनाकर उसे सुन्दर रंग-बिरंगे वस्त्रोंसे सुसज्जित करे। उसमें तेरह आभूषण लगवाये। पहला आभूषण पिटक चौकोर होता है, इसे 'लोकपाल पिटक' कहते हैं, दूसरा आभूषण लाल रंगका वृत्ताकार होता है, इसी प्रकार अन्य देवसम्बन्धी पिटकोंका निर्माण कर तथा यष्टिमें बाँधकर कुश, पुष्पमाला, घण्टा, चामर आदिसे समन्वित उस ध्वजको स्थापित करे। अनन्तर हवन कराकर गुडसे युक्त मिष्टान्न और पायस ब्राह्मणोंको भोजन कराये। भोजनोपरान्त उन्हें दक्षिणा दे। उस ध्वजको धीरेसे खड़ाकर स्थापित कर दे। नौ दिन या सात दिनतक उत्सव मनाना चाहिये। अनेक प्रकारके नृत्य, गायन, वादन कराते हुए मल्लयुद्ध आदि उत्सव भी कराने चाहिये। वस्त्राभूषण तथा स्वादिष्ट भोजनादिसे सभी लोगोंको संतुष्ट कर सम्मानित करना चाहिये। रात्रिको जागरण कर ध्वजकी भलीभाँति रक्षा करनी चाहिये।

इन्द्रध्वजका पूजन, अर्चन तथा उत्सवादि कार्य सम्पन्न करना चाहिये। यदि एक वर्ष करनेके बाद दूसरे वर्ष किसी व्यवधानके कारण पूजनादि कार्य न हो सके तो पुनः बारह वर्ष बाद ही करना चाहिये। ध्वजके अङ्ग-भङ्ग होनेपर अनेक प्रकारके उपद्रव प्रारम्भ हो जाते हैं। यदि ध्वजपर कौआ बैठ जाय तो दुर्भिक्ष पड़ता है, उलूक बैठे तो राजाकी मृत्यु हो जाती है। कपोत बैठे तो प्रजाका विनाश होता है। इसलिये सावधान होकर उसकी रक्षा करनी चाहिये और भक्तिपूर्वक इन्द्रध्वजका उत्थापनकर पूजन करना चाहिये। यदि प्रमादवश ध्वज गिर पड़े या टूट जाय तो सोने अथवा चाँदीका ध्वज बनाकर उसका उत्थापन और अर्चनकर शान्तिक-पौष्टिक

आदि कर्म सम्पन्न कराये। ब्राह्मणको भोजन आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। इस विधिसे जो राजा इन्द्रध्वजकी यात्रा एवं पूजा करता है, उसके राज्यमें यथेष्ट वृष्टि होती है। मृत्यु और अनेक प्रकारके ईति-भीति आदि दुर्योगों, कष्टोंका भय नहीं रहता तथा राजा शत्रुओंको पराजित कर चिर कालतक राज्य-सुख भोगकर अन्त समयमें इन्द्रलोकको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १३९)

दीपमालिकोत्सव

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने वामनरूप धारणकर दानवराज बलिको छलकर इन्द्रको राज्यका भार सौंप दिया और राजा बलिको पाताल लोकमें स्थापित कर दिया। भगवान्‌ने बलिके यहाँ सदा रहना स्वीकार किया। कार्तिककी अमावास्याको रात्रिमें सारी पृथ्वीपर दैत्योंकी यथेष्ट चेष्टाएँ होती हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! कौमुदीतिथिकी विधिको विशेष रूपसे बतानेकी कृपा करें। उस दिन किस वस्तुका दान किया जाता है। किस देवताकी पूजा की जाती है तथा कौन-सी क्रीडा करनी चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको प्रभातके समय नरकके भयको दूर करनेके लिये स्नान अवश्य करना चाहिये। अपामार्ग (चिचिड़ा) के पत्र सिरके ऊपर मन्त्र पढ़ते हुए घुमाये[1]। इसके बाद धर्मराजके नामों—यम, धर्मराज, मृत्यु, वैवस्वत, अन्तक, काल तथा सर्वभूतक्षयका उच्चारण कर तर्पण करे। देवताओंकी पूजा करनेके बाद नरकसे बचनेके उद्देश्यसे दीप जलाये। प्रदोषके समय शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदिके मन्दिरोंमें, कोष्ठागार, चैत्य, सभामण्डप, नदीतट, महल, तडाग, उद्यान, वापी, मार्ग, हस्तिशाला तथा अश्वशाला आदि स्थानोंमें दीप प्रज्वलित करने चाहिये।

अमावास्याके दिन प्रातःकाल स्नानकर देवता और पितरोंका भक्तिपूर्वक पूजन-तर्पण आदि करे तथा पार्वण श्राद्ध करे। अनन्तर ब्राह्मणको दूध, दही, घृत और अनेक प्रकारके स्वादिष्ट भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करे और उन्हें संतुष्ट करे। अपराह्णकालमें राजाद्वारा अपने राज्यमें यह घोषित कराना चाहिये कि 'आज इस लोकमें बलिका शासन है। नगरके सभी लोगोंको अपनी सामर्थ्यके अनुसार अपने घरको स्वच्छ—साफ-सुथरा करके नाना प्रकारके रंग-बिरंगे तोरण-पताकाओं, पुष्पमालाओं तथा बंदनवारोंसे सजाना चाहिये। नगरके सभी लोगों अर्थात् नर-नारी, बाल-वृद्ध आदिको चाहिये कि सुन्दर उत्तम वस्त्र पहनकर कुंकुम, चन्दन आदिका लेप लगाकर ताम्बूलका भक्षण करते हुए आनन्दपूर्वक नृत्य-गीतादिकोंका आयोजन करें।' इस प्रकार अतीव उल्लाससे एवं प्रीतिपूर्वक इस दिन दीपोत्सव मनाना चाहिये। प्रदोषके समय दीपमाला प्रज्वलित कर अनेक प्रकारके दीप-वृक्ष खड़े करने चाहिये। उस समय राक्षस लोकमें विचरण करते हैं। उनके भयको दूर करनेके लिये श्रेष्ठ कन्याओंको दीप-वृक्षोंपर तण्डुल (धानका लावा) फेंकते हुए दीपकोंसे नीराजन करना चाहिये। दीपमालाओंके जलानेसे प्रदोष-वेला दोषरहित हो जाती है और राक्षसादिका भय दूर हो जाता है। इस प्रकार अति शोभासम्पन्न नगरकी शोभा देखनेके उद्देश्यसे राजाको अपने मित्र, मन्त्री आदिके साथ अर्धरात्रिके समय धीरे-धीरे पैदल ही चलना चाहिये। राजकर्मचारी भी हाथमें प्रज्वलित दीपक लिये रहें। पूरे नगरकी रमणीयता देखकर राजाको यह मानना चाहिये कि राजा बलि मेरे ऊपर आज प्रसन्न हो गये होंगे। फिर राजा अपने महलमें वापस आ जाय।

आधी रात बीत जानेपर जब सब लोग निद्रामें हों, उस समय घरकी स्त्रियोंको चाहिये कि वे सूप बजाते हुए घरभरमें घूमती हुई आँगनतक आयें और इस प्रकार वे दरिद्रा—अलक्ष्मीका अपने घरसे निस्सारण करें। प्रातःकाल होते ही राजाको चाहिये कि वस्त्र, आभूषण आदि देकर ब्राह्मणों, सत्पुरुषोंको संतुष्ट करे और भोजन, ताम्बूल देकर मधुर वचनोंसे पण्डितोंका सत्कार करे तथा सामन्त, सिपाही और

१-मन्त्र इस प्रकार है—

हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणं पुनः पुनः।
आपदं किल्बिषं चापि ममापहर सर्वशः। अपामार्ग नमस्तेऽस्तु शरीरं मम शोधय॥ (उत्तरपर्व १४०। ९)

सेवक आदिको आभूषण, धन आदि देकर संतुष्ट करे तथा अनेक प्रकारके मल्लक्रीडा आदिका आयोजन करे। राजाको मध्याह्नके अनन्तर नगरके पूर्व दिशामें ऊँचे स्तम्भ अथवा वृक्षोंपर कुश और काशकी बनी मार्गपाली[1] बाँधकर उसकी पूजा करे। फिर हवन करे। अपनी प्रजाको भोजन देकर संतुष्ट करे। उस समय राजाको मार्गपालीकी आरती करनी चाहिये, यह आरती विजय प्रदान करती है। उसके बाद गाय, बैल, हाथी, घोड़ा, राजा, राजपुत्र, ब्राह्मण, शूद्र आदि सभी लोगोंको उस मार्गपालीके नीचेसे निकलना चाहिये। मार्गपालीको बाँधनेवाला अपने दोनों कुलोंका उद्धार करता है। इसका लङ्घन करनेवाले वर्षभर सुखी और नीरोग रहते हैं। फिर भूमिपर पाँच रंगोंसे मण्डल लिखकर उसके मध्यमें प्रसन्नमुख, द्विभुज, कुण्डल धारण करनेवाले कूष्माण्ड, बाण तथा मुर आदि दानवोंके साथ सर्वाभरणभूषित रानी विन्ध्यावलीसहित राजा बलिकी मूर्तिकी स्थापना करे और कमल, कुमुद, कह्लार, रक्त कमल आदि पुष्पों तथा गन्ध, दीप, नैवेद्य, अक्षत और दीपकों तथा अनेक उपहारोंसे राजा बलिकी पूजा कर इस प्रकार प्रार्थना करे—

बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो।
भविष्येन्द्रसुराराते पूजेयम् प्रतिगृह्यताम्॥

(उत्तरपर्व १४० । ५४)

इस प्रकार पूजन कर रात्रिको जागरणपूर्वक महोत्सव करना चाहिये। नगरके लोग अपने-अपने घरमें शय्यामें श्वेत तण्डुल बाँधकर राजा बलिको उसमें स्थापित कर फल-पुष्पादिसे पूजन करें और बलिके उद्देश्यसे दान करें, क्योंकि राजा बलिके लिये जो व्यक्ति दान देता है, उसका दिया हुआ दान अक्षय हो जाता है। भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर बलिसे पृथ्वीको प्राप्त किया और यह कार्तिकी अमावास्या तिथि राजा बलिको प्रदान की, उसी दिनसे यह कौमुदीका उत्सव प्रवृत्त हुआ है[2]। यह तिथि सभी उपद्रव, सभी प्रकारके विघ्न, शोक आदिको दूर करनेवाली है। धन, पुष्टि, सुख आदि प्रदान करती है। 'कु' यह पृथ्वीका वाचक शब्द है और 'मुदी'का अर्थ होता है प्रसन्नता। इसलिये पृथ्वीपर सबको हर्ष देनेके कारण इसका नाम कौमुदी पड़ा। जो राजा वर्षभरमें एक दिन राजा बलिका उत्सव करता है, उसके राज्यमें रोग, शत्रु, महामारी और दुर्भिक्षका भय नहीं होता। सुभिक्ष, आरोग्य और सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। इस कौमुदी तिथिको जो व्यक्ति जिस भावमें रहता है, उसे वर्षभर उसी भावकी प्राप्ति होती है। यदि व्यक्ति उस दिन रुदन कर रहा हो तो रुदन, हर्षित है तो हर्ष, दुःखी है तो दुःख, सुखी है तो सुख, भोगसे भोग, स्वस्थतासे स्वस्थता तथा दीन रहनेसे दीनताकी प्राप्ति होती है[3]। इसलिये इस तिथिको हृष्ट और प्रसन्न रहना चाहिये। यह तिथि वैष्णवी भी है, दानवी भी है और पैत्रिकी भी है। दीपमालाके दिन जो व्यक्ति भक्तिसे राजा बलिका पूजन-अर्चन करता है, वह वर्षभर आनन्दपूर्वक सुखसे व्यतीत करता है और उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। (अध्याय १४०)

शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मों तथा नवग्रह-शान्तिकी विधिका वर्णन[4]

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये आप यह बतलानेकी कृपा करें कि सम्पूर्ण कामनाओंकी अविचल सिद्धिके लिये शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मोंका अनुष्ठान किस प्रकार करना चाहिये?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! लक्ष्मीकी कामनावाले अथवा शान्तिके अभिलाषी तथा वृष्टि, दीर्घायु और पुष्टिकी इच्छासे युक्त मनुष्यको ग्रहयज्ञका समारम्भ करना चाहिये। मैं सम्पूर्ण शास्त्रोंका अवलोकन करनेके पश्चात् पुराणों

१-मार्गपाली दरवाजेके पास बना हुआ स्वागतद्वार है, जो कुश, काश, तृण आदि और आम्र तथा अशोकके पत्तोंसे अलंकृत कर बनायी जाती है।

२-विष्णुना वसुधा लब्ध्वा प्रीतेन बलये पुनः। उपकारपरो दत्तश्चासुराणां महोत्सवः॥
ततः प्रभृति राजेन्द्र प्रवृत्ता कौमुदी पुनः। (उत्तरपर्व १४० । ५९-६०)

३-यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर। हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति हि॥
रुदिते रोदिति वर्षं हृष्टो वर्षं प्रहृष्यति। भुक्तो भोक्ता भवेद् वर्षं स्वस्थः स्वस्थो भवेदिति॥ (उत्तरपर्व १४० । ६८-६९)

४-यह पाँच आथर्वण कल्पों—नक्षत्र, वैतान, संहिताविधि, अङ्गिरस एवं शान्तिकल्पमेंसे प्रथम एवं पाँचवें शान्तिकल्पका समन्वित रूप है

एवं श्रुतियोंद्वारा आदिष्ट इस ग्रहशान्तिका संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ। इसके लिये ज्योतिषीद्वारा बतलाये गये शुभ मुहूर्तमें ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर ग्रहों एवं ग्रहाधिदेवोंकी स्थापना करके हवन प्रारम्भ करना चाहिये। पुराणों एवं श्रुतियोंके ज्ञाता विद्वानोंने तीन प्रकारके ग्रहयज्ञ बतलाये हैं। पहला दस हजार आहुतियोंका अयुतहोम, उससे बढ़कर दूसरा एक लाख आहुतियोंका लक्षहोम तथा सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला तीसरा एक करोड़ आहुतियोंका कोटि-होम होता है। दस हजार आहुतियोंवाला ग्रहयज्ञ नवग्रहयज्ञ कहलाता है। इसकी विधि जो पुराणों एवं श्रुतियोंमें बतलायी गयी है, प्रथम मैं उसका वर्णन कर रहा हूँ। (यजमान मण्डपनिर्माणके बाद) हवनकुण्डकी पूर्वोत्तर-दिशामें स्थापनाके लिये एक वेदीका निर्माण कराये, जो दो बीता लम्बी-चौड़ी, एक बीता ऊँची, दो परिधियोंसे सुशोभित और चौकोर हो। उसका मुख उत्तरकी ओर हो। पुनः कुण्डमें अग्निकी स्थापना करके उस वेदीपर देवताओंका आवाहन करे। इस प्रकार उसपर बत्तीस देवताओंकी स्थापना करनी चाहिये।

सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु—ये लोगोंके हितकारी ग्रह कहे गये हैं। इन ग्रहोंकी प्रतिमा क्रमशः ताँबा, स्फटिक, रक्तचन्दन, स्वर्ण, चाँदी तथा लोहेसे बनानी चाहिये। श्वेत चावलोंद्वारा वेदीके मध्यमें सूर्यकी, दक्षिणमें मंगलकी, उत्तरमें बृहस्पतिकी, पूर्वोत्तर-कोणपर बुधकी, पूर्वमें शुक्रकी, दक्षिण-पूर्वकोणपर चन्द्रमाकी, पश्चिममें शनिकी, पश्चिम-दक्षिणकोणपर राहुकी और पश्चिमोत्तरकोणपर केतुकी स्थापना करनी चाहिये। इन सभी ग्रहोंमें सूर्यके शिव, चन्द्रमाके पार्वती, मंगलके स्कन्द, बुधके भगवान् विष्णु, बृहस्पतिके ब्रह्मा, शुक्रके इन्द्र, शनैश्चरके यम, राहुके काल और केतुके चित्रगुप्त अधिदेवता माने गये हैं। अग्नि, जल, पृथ्वी, विष्णु, इन्द्र, सौवर्ण देवता, प्रजापति, सर्प और ब्रह्मा—ये सभी क्रमशः प्रत्यधिदेवता हैं। इनके अति-रिक्त विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश, सावित्री, लक्ष्मी तथा उमाको उनके पतिदेवताओंके साथ और अश्विनीकुमारोंका भी व्याहृतियोंके उच्चारणपूर्वक आवाहन करना चाहिये। उस समय मंगलसहित सूर्यको लाल वर्णका, चन्द्रमा और शुक्रको श्वेत वर्णका, बुध और बृहस्पतिको पीत वर्णका, शनि और राहुको कृष्ण वर्णका तथा केतुको धूम्र वर्णका जानना और ध्यान करना चाहिये। बुद्धिमान् यज्ञकर्ता जो ग्रह जिस रंगका हो, उसे उसी रंगका वस्त्र और फूल समर्पित करे, सुगन्धित धूप दे। पुनः फल, पुष्प आदिके साथ सूर्यको गुड़ और चावलसे बने हुए अन्न (खीर) का, चन्द्रमाको घी और दूधसे बने हुए पदार्थका, मंगलको गोझियाका, बुधको क्षीरषष्टिक (दूधमें पके हुए साठीके चावल)का, बृहस्पतिको दही-भातका, शुक्रको घी-भातका, शनैश्चरको खिचड़ीका, राहुको अजशृंगी नामक लताके फलके गूदाका और केतुको विचित्र रंगवाले भातका नैवेद्य अर्पण करके सभी प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंद्वारा पूजन करे।

वेदीके पूर्वोत्तरकोणपर एक छिद्ररहित कलशकी स्थापना करे, उसे दही और अक्षतसे सुशोभित, आम्रके पल्लवसे आच्छादित और दो वस्त्रोंसे परिवेष्टित करके उसके निकट फल रख दे। उसमें पञ्चरत्न डाल दे और उसे पञ्चभङ्ग (पीपल, बरगद, पाकड़, गूलर और आमके पल्लव) से युक्त कर दे। उसपर वरुण, गङ्गा आदि नदियों, सभी समुद्रों और सरोवरोंका आवाहन तथा स्थापन करे। राजेन्द्र! धर्मज्ञ पुरोहितको चाहिये कि वह हाथीसार, घुड़शाल, चौराहे, बिमवट, नदीके संगम, कुण्ड और गोशालाकी मिट्टी लाकर उसे सर्वौषधिमिश्रित जलसे अभिषिक्त कर यजमानके स्नानके लिये वहाँ प्रस्तुत कर दे तथा 'यजमानके पापको नष्ट करनेवाले सभी समुद्र, नदी, नद, बादल और सरोवर यहाँ पधारें' ऐसा कहकर इन देवताओंका आवाहन करे। तत्पश्चात् घी, जौ, चावल, तिल आदिसे हवन प्रारम्भ करे। मदार, पलाश, खैर, चिचिंडा, पीपल, गूलर, शमी, दूब और कुश—ये क्रमशः नवों ग्रहोंकी समिधाएँ हैं। इनमें प्रत्येक ग्रहके लिये मधु, घी और दही अथवा पायससे युक्त एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको सदा सभी कर्मोंमें अँगूठेके सिरेसे तर्जनीके सिरेतककी मापवाली तथा बरोह, शाखा और पत्तोंसे रहित

और अथर्वपरिशिष्ट, याज्ञवल्क्यस्मृति १।२९५—३०८, वृद्धपाराशर ११, पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ८२—८६, नारदपुराण १।५१, मत्स्यपुराण, अग्निपुराण २६४—२७४ आदिमें भी प्राप्त है।

समिधाओंकी कल्पना करनी चाहिये। परमार्थवेत्ता यजमान सभी देवताओंके लिये उन-उनके पृथक्-पृथक् मन्त्रोंका मन्द स्वरसे उच्चारण करते हुए समिधाओंका हवन करे। अनन्तर प्रत्येक देवताके लिये उसके मन्त्रद्वारा हवन करना चाहिये। ब्राह्मणको '**आ कृष्णेन रजसा०**' (यजु० ३३।४३)—इस मन्त्रका उच्चारण कर सूर्यको आहुति देनी चाहिये। पुनः '**इमं देवा०**' (यजु० ९।४०) इस मन्त्रसे चन्द्रमाको आहुति दे। मंगलके लिये '**अग्निर्मूर्धा०**' (यजु० १३।१४) इस मन्त्रसे आहुति दे। बुधके लिये '**उद्बुध्यस्व०**' (यजु० १५।५४) और देवगुरु बृहस्पतिके लिये '**बृहस्पते अति०**' (यजु० २६।३) ये मन्त्र माने गये हैं। शुक्रके लिये '**अन्नात्परि०**' (यजु० १९।७५) और शनैश्चरके लिये '**शं नो देवीरभीष्टय०**' (यजु० ३६।१२) इस मन्त्रसे आहुति दे। राहुके लिये '**कया नश्चित्र०**' (यजु० २७।३९) यह मन्त्र कहा गया है तथा केतुकी शान्तिके लिये '**केतुं कृण्वन्०**' (यजु० २९।३७) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। चरु आदि हवनीय पदार्थोंमें घी मिलाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन करना चाहिये, तत्पश्चात् व्याहृतियोंका उच्चारण करके घीकी दस आहुतियाँ अग्निमें डाले। पुनः श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर प्रत्येक देवताके मन्त्रोच्चारणपूर्वक चरु आदि पदार्थोंका हवन करे।

फिर '**आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं०**' (ऋ० ४।३।१, कृष्णयजु० तै० सं० १।३।१४।१) इस मन्त्रका उच्चारण कर रुद्रके लिये हवन और बलि देनी चाहिये। तत्पश्चात् उमाके लिये '**आपो हि ष्ठा०**' (वाजस० सं० ११।५०)—इस मन्त्रसे, स्वामिकार्तिकेयके लिये '**स्योना०**' इस मन्त्रसे, विष्णुके लिये '**इदं विष्णुः०**' (यजु० ५।१५) इस मन्त्रसे, ब्रह्माके लिये '**तमीशानम्०**' (वाजस० २५।१८) इस मन्त्रसे और इन्द्रके लिये '**इन्द्रमिद्देवताय०**'—इस मन्त्रसे आहुति डाले। इसी प्रकार यमके लिये '**आयं गौः०**' (यजु० ३।६) इस मन्त्रसे हवन बतलाया गया है। कालके लिये '**ब्रह्मजज्ञानम्०**' (यजु० १३।३) यह मन्त्र प्रशस्त माना गया है। अग्निके लिये '**अग्निं दूतं वृणीमहे०**' (ऋक्सं० १।१२।१) यह मन्त्र बतलाया गया है। वरुणके लिये '**उदुत्तमं वरुणपाशम्०**' (ऋक्सं० १।२४।१५) यह मन्त्र कहा गया है। वेदोंमें पृथ्वीके लिये '**पृथिव्यन्तरिक्षम्०**'—इस मन्त्रका पाठ है। विष्णुके लिये '**सहस्रशीर्षा पुरुषः०**' (वाजस० सं० ३१।१) यह मन्त्र कहा गया है।

हवन समाप्त हो जानेपर चार ब्राह्मण अभिषेक-मन्त्रोंद्वारा उसी जलपूर्ण कलशसे पूर्व अथवा उत्तर मुख करके बैठे हुए यजमानका अभिषेक करें और ऐसा कहें—'ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—ये देवता आपका अभिषेक करें। जगदीश्वर वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्ण, सामर्थ्यशाली संकर्षण (बलराम), प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये सभी आपको विजय प्रदान करें। इन्द्र, अग्नि, ऐश्वर्यशाली यम, निर्ऋति, वरुण, पवन, कुबेर, ब्रह्मासहित शिव, शेषनाग और दिक्पालगण—ये सभी आपकी रक्षा करें। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, शान्ति, पुष्टि, कान्ति, तुष्टि—ये सभी माताएँ जो धर्मकी पत्नियाँ हैं, आकर आपको अभिषिक्त करें। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु—ये सभी ग्रह प्रसन्नतापूर्वक आपको अभिषिक्त करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, गौ, देवमाताएँ, देवपत्नियाँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सराओंके समूह, अस्त्र, सभी शस्त्र, नृपगण, वाहन, औषध, रत्न, (कला, काष्ठा आदि) कालके अवयव, नदियाँ, सागर, पर्वत, तीर्थस्थान, बादल, नद—ये सभी सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये आपको अभिषिक्त करें।'

इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वौषधि एवं सम्पूर्ण सुगन्धित पदार्थोंसे युक्त जलसे स्नान करा दिये जानेके पश्चात सपत्नीक यजमान श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत चन्दनका अनुलेप करे और विस्मयरहित होकर शान्त चित्तवाले ऋत्विजोंका प्रयत्नपूर्वक दक्षिणा आदि देकर पूजन करे तथा सूर्यके लिये कपिला गौका, चन्द्रमाके लिये शङ्खका, मंगलके लिये भार वहन करनेमें समर्थ एवं ऊँचे डीलवाले लाल रंगके बैलका, बुधके लिये सुवर्णका, बृहस्पतिके लिये एक जोड़ा पीले वस्त्रका, शुक्रके लिये श्वेत रंगके घोड़ेका, शनैश्चरके लिये काली गौका, राहुके लिये लोहेकी बनी हुई वस्तुका और केतुके लिये उत्तम बकरेके दानका विधान है। यजमानको ये सारी दक्षिणाएँ सुवर्णके साथ अथवा स्वर्णनिर्मित मूर्तिके रूपमें देनी चाहिये अथवा जिस प्रकार गुरु (पुरोहित) प्रसन्न हों, उनके

आज्ञानुसार सभी ब्राह्मणोंको सुवर्णसे अलंकृत गौएँ अथवा केवल सुवर्ण दान करना चाहिये। पर सर्वत्र मन्त्रोच्चारणपूर्वक ही इन सभी दक्षिणाओंके देनेका विधान है।

दान देते समय सभी देय वस्तुओंसे पृथक्-पृथक् इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—'कपिले ! तुम रोहिणीरूप हो, तीर्थ एवं देवता तुम्हारे स्वरूप हैं तथा तुम सम्पूर्ण देवोंकी पूजनीया हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। शङ्ख ! तुम पुण्योंके भी पुण्य और मङ्गलोंके भी मङ्गल हो। भगवान् विष्णुने तुम्हें अपने हाथमें धारण किया है, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। जगत्को आनन्दित करनेवाले वृषभ ! तुम वृषरूपसे धर्म और अष्टमूर्ति शिवजीके वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। सुवर्ण ! तुम ब्रह्माके आत्मस्वरूप, अग्निके स्वर्णमय बीज और अनन्त पुण्यके प्रदाता हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। दो पीले वस्त्र अर्थात् पीताम्बर भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रिय हैं, इसलिये विष्णो ! उसको दान करनेसे आप मुझे शान्ति प्रदान करें। अश्व ! तुम अश्वरूपसे विष्णु हो, अमृतसे उत्पन्न हुए हो तथा सूर्य एवं चन्द्रमाके नित्य वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। पृथ्वी ! तुम समस्त धेनुस्वरूपा, कृष्ण (गोविन्द) नामवाली और सदा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाली हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। लौह ! चूँकि विश्वके सभी सम्पादित होनेवाले लौह-कर्म हल एवं अस्त्र आदि सारे कार्य सदा तुम्हारे ही अधीन हैं, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। छाग ! चूँकि तुम सम्पूर्ण यज्ञोंके मुख्य अङ्गरूपसे निर्धारित हो और अग्निदेवके नित्य वाहन हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। गौ ! चूँकि गौओंके अङ्गोंमें चौदहों भुवन निवास करते हैं, इसलिये तुम मेरे लिये इहलोक एवं परलोकमें भी कल्याण प्रदान करो। जिस प्रकार भगवान् केशव तथा शिवकी शय्या कभी शून्य नहीं रहती, बल्कि लक्ष्मी तथा पार्वतीसे सदा सुशोभित रहती है, वैसे ही मेरे द्वारा भी दान की गयी शय्या जन्म-जन्ममें सुखसे सम्पन्न रहे। जैसे सभी रत्नोंमें समस्त देवता निवास करते हैं, वैसे ही रत्न-दान करनेसे वे देवता मुझे शान्ति प्रदान करें। सभी दान भूमिदानकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते, अतः भूमि-दान करनेसे मुझे इस लोकमें शान्ति प्राप्त हो।' इस प्रकार कृपणता छोड़कर भक्तिपूर्वक रत्न, सुवर्ण, वस्त्रसमूह, धूप, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे ग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये।

राजन् ! अब आप भक्तिपूर्वक ग्रहोंके स्वरूपोंको सुनें—(चित्र-प्रतिमादि विधानोंमें) सूर्यदेवकी दो भुजाएँ निर्दिष्ट हैं, वे कमलके आसनपर विराजमान रहते हैं, उनके दोनों हाथोंमें कमल सुशोभित रहते हैं। उनकी कान्ति कमलके भीतरी भागकी-सी है और वे सात घोड़ों तथा सात रस्सियोंसे जुते रथपर आरूढ रहते हैं। चन्द्रमा गौरवर्ण, श्वेत वस्त्र और श्वेत अश्वयुक्त हैं तथा उनके आभूषण भी श्वेत वर्णके हैं। धरणीनन्दन मंगलकी चार भुजाएँ हैं। वे अपने चारों हाथोंमें खड्ग, ढाल, गदा तथा वरद-मुद्रा धारण किये हैं, उनके शरीरकी कान्ति कनेरके पुष्प-सरीखी है। वे लाल रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। बुध पीले रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। पीत चन्दनसे अनुलिप्त हैं। वे दिव्य सोनेके रथपर विराजमान हैं। देवताओं और दैत्योंके गुरु बृहस्पति और शुक्रकी प्रतिमाएँ क्रमशः पीत और श्वेत वर्णकी होनी चाहिये। उनके चार भुजाएँ हैं, जिनमें वे दण्ड, रुद्राक्षकी माला, कमण्डलु और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। शनैश्चरकी शरीर-कान्ति इन्द्रनीलमणिकी-सी है। वे गीधपर सवार होते हैं और हाथमें धनुष-बाण, त्रिशूल और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। राहुका मुख सिंहके समान भयंकर है। उनके हाथोंमें तलवार, कवच, त्रिशूल और वरमुद्रा शोभा पाती है तथा वे नीले रंगके सिंहासनपर आसीन होते हैं। ध्यान (प्रतिमा) में ऐसे ही राहु प्रशस्त माने गये हैं। केतु बहुतेरे हैं। उन सबकी दो भुजाएँ हैं। उनके शरीर आदि धूम्रवर्णके हैं। उनके मुख विकृत हैं। वे दोनों हाथोंमें गदा एवं वरमुद्रा धारण किये हैं और नित्य गीधपर समासीन रहते हैं। इन सभी लोक-हितकारी ग्रहोंको किरीटसे सुशोभित कर देना चाहिये तथा इन सबकी ऊँचाई अपने हाथके प्रमाणसे एक सौ आठ अङ्गुल (साढ़े चार हाथ) की होनी चाहिये।

हे पाण्डुनन्दन ! यह मैंने आपको नवग्रहोंका स्वरूप बतलाया है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ऐसी प्रतिमा बनाकर इनकी पूजा करे। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे ग्रहोंकी पूजा करता है, वह इस लोकमें सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा अन्तमें स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यदि किसी निर्धन मनुष्यको कोई ग्रह नित्य पीडा पहुँचा रहा हो तो उस

बुद्धिमान्‌को चाहिये कि उस ग्रहकी यत्नपूर्वक भलीभाँति पूजा करके तत्पश्चात् शेष ग्रहोंकी भी अर्चना करे, क्योंकि ग्रह, गौ, राजा और ब्राह्मण—ये विशेषरूपसे पूजित होनेपर रक्षा करते हैं, अन्यथा अवहेलना किये जानेपर जलाकर भस्म कर देते हैं। इसलिये वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्यको दक्षिणासे रहित यज्ञ नहीं करना चाहिये, क्योंकि भरपूर दक्षिणा देनेसे (यज्ञका प्रधान) देवता भी संतुष्ट हो जाता है। नवग्रहोंके यज्ञमें यह दस हजार आहुतियोंवाला हवन ही होता है। इसी प्रकार विवाह, उत्सव, यज्ञ, देवप्रतिष्ठा आदि कर्मोंमें तथा चित्तकी उद्विग्नता एवं आकस्मिक विपत्तियोंमें भी यह दस हजार आहुतियोंवाला हवन ही बतलाया गया है। इसके बाद अब मैं एक लाख आहुतियोंवाले यज्ञकी विधि बतला रहा हूँ, सुनिये।

विद्वानोंने सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये लक्षहोमका विधान किया है, क्योंकि यह पितरोंको परम प्रिय और साक्षात् भोग एवं मोक्षरूपी फलका प्रदाता है। बुद्धिमान् यजमानको चाहिये कि ग्रहबल और ताराबलको अपने अनुकूल पाकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराये और अपने गृहके पूर्वोत्तर दिशामें अथवा शिवमन्दिरकी समीपवर्ती भूमिपर विधानपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये, जो दस हाथ अथवा आठ हाथ लम्बा-चौड़ा चौकोर हो तथा उसका मुख (प्रवेशद्वार) उत्तर दिशाकी ओर हो। उसकी भूमिको यत्नपूर्वक पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू बना देना चाहिये।

तदनन्तर मण्डपके पूर्वोत्तर भागमें यथार्थ लक्षणोंसे युक्त एक सुन्दर कुण्ड[1] तैयार कराये। परिमाणसे कम अथवा अधिक परिमाणमें बना हुआ कुण्ड अनेकों प्रकारका भय देनेवाला हो जाता है, इसलिये शान्तिकुण्डको परिमाणके अनुकूल ही बनाना चाहिये। ब्रह्माने लक्षहोमको अयुतहोमसे दसगुना अधिक फलदायक बतलाया है, इसलिये इसे प्रयत्न-पूर्वक आहुतियों और दक्षिणाओंद्वारा सम्पादित करना चाहिये। लक्षहोममें कुण्ड चार हाथ लम्बा और दो हाथ चौड़ा होता है, उसके भी मुखस्थानपर योनि बनी होती है और वह तीन मेखलाओंसे युक्त होता है। देवताओंकी स्थापनाके लिये एक वेदीका भी विधान बतलाया है, जो तीन परिधियोंसे युक्त हो। इनमें पहली परिधि दो अङ्गुल ऊँची शेष दो एक-एक अङ्गुल ऊँची होनी चाहिये। विद्वानोंने इन सबकी चौड़ाई दो अङ्गुलकी बतलायी है। वेदीके ऊपर दस अङ्गुल ऊँची एक दीवाल बनायी जाय, उसीपर पहलेकी ही भाँति फूल और अक्षतोंसे देवताओंका आवाहन किया जाय। राजेन्द्र! अधिदेवताओं एवं प्रत्यधिदेवताओंसहित सभी ग्रहोंको सूर्यके सम्मुख ही स्थापित करना चाहिये, उत्तराभिमुख अथवा पराङ्मुख नहीं। लक्ष्मीकामी मनुष्यको इस यज्ञमें (सभी देवताओंके अतिरिक्त) गरुडकी भी पूजा करनी चाहिये। (उस समय ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—) 'गरुड! तुम्हारे शरीरसे सामवेदकी ध्वनि निकलती रहती है, तुम भगवान् विष्णुके वाहन और नित्य विषरूप पापको हरनेवाले हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।'

तत्पश्चात् पहलेकी तरह कलशकी स्थापना करके हवन आरम्भ करे। एक लाख आहुतियोंसे हवन करनेके पश्चात् पुनः समिधाओंकी संख्याके बराबर और अधिक आहुतियाँ डाले। फिर अग्निके ऊपर घृतकुम्भसे वसोर्धारा गिराये। (वसोर्धाराकी विधि यह है—) भुजा-बराबर लम्बी गूलरकी लकड़ीसे, जो खोखली न हो तथा सीधी एवं गीली हो, स्रुवा बनवाकर उसे दो खंभोंपर रखकर उसके द्वारा अग्निके ऊपर सम्यक् प्रकारसे घीकी धारा गिराये। उस समय अग्निसूक्त (ऋ० सं०१।१), विष्णुसूक्त (वाजसं० ५।१-२२), रुद्रसूक्त (वही १६) और इन्दु (सोम) सूक्त (ऋ० १।९१) पाठ करना चाहिये तथा महावैश्वानर साम और ज्येष्ठसामका गान करना चाहिये। तदुपरान्त पूर्ववत् यजमान स्नान कर स्वस्तिवाचन कराये तथा काम-क्रोधरहित होकर शान्तचित्तसे पूर्ववत् ऋत्विजोंको पृथक्-पृथक् दक्षिणा प्रदान करे। नवग्रहयज्ञके अयुतहोममें चार वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको अथवा श्रुतिके जानकार एवं शान्त स्वभाववाले दो ही ऋत्विजोंको नियुक्त करना चाहिये। विस्तारमें नहीं फँसना चाहिये।

इसी प्रकार लक्षहोममें अपने सामर्थ्यके अनुकूल मत्सर-रहित होकर दस, आठ अथवा चार ऋत्विजोंको नियुक्त करना चाहिये। पाण्डवश्रेष्ठ! सम्पत्तिशाली यजमानको यथाशक्ति भक्ष्य पदार्थ, आभूषण, वस्त्रोंसहित शय्या, स्वर्णनिर्मित कड़े,

---

१-'कल्याण' अग्निपुराणाङ्क अ० २४ की टिप्पणीमें कुण्ड-मण्डप-निर्माणकी पूरी विधि द्रष्टव्य है।

कुण्डल और अँगूठी आदि सभी वस्तुएँ लक्षहोममें नवग्रह-यज्ञसे दसगुनी अधिक देनी चाहिये। मनुष्यको कृपणतावश दक्षिणारहित यज्ञ नहीं करना चाहिये। जो लोभ अथवा अज्ञानसे भरपूर दक्षिणा नहीं देता, उसका कुल नष्ट हो जाता है। समृद्धिकामी मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार अन्नका दान करना चाहिये, क्योंकि अन्न-दानरहित किया हुआ यज्ञ दुर्भिक्षरूप फलका दाता हो जाता है। अन्नहीन यज्ञ राष्ट्रको, मन्त्रहीन ऋत्विज्को और दक्षिणारहित यज्ञ यज्ञकर्ताको जलाकर नष्ट कर देता है। इस प्रकार (विधिहीन) यज्ञके समान अन्य कोई शत्रु नहीं है। अल्प धनवाले मनुष्यको कभी लक्षहोम नहीं करना चाहिये, क्योंकि यज्ञमें (दक्षिणा आदिके लिये) प्रकट हुआ विग्रह सदाके लिये कष्टकारक हो जाता है। स्वल्प सम्पत्तिवाला मनुष्य केवल पुरोहितकी अथवा दो या तीन ब्राह्मणोंकी भक्तिके साथ विधिपूर्वक पूजा करे अथवा एक ही वेदज्ञ ब्राह्मणकी भक्तिके साथ दक्षिणा आदिसे प्रयत्नपूर्वक अर्चना करे, बहुतोंके चक्करमें न पड़े। अधिक सम्पत्ति होनेपर लक्षहोम करना चाहिये, क्योंकि यह अधिक लाभदायक है। इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। वह आठ सौ कल्पोंतक शिवलोकमें वसुगण, आदित्यगण और मरुद्गणोंद्वारा पूजित होता है तथा अन्तमें मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य किसी विशेष कामनासे इस लक्षहोमको विधिपूर्वक सम्पन्न करता है, उसे उस कामनाकी प्राप्ति तो हो ही जाती है, साथ ही वह अविनाशी पदको भी प्राप्त कर लेता है। इसका अनुष्ठान करनेसे पुत्रार्थीको पुत्रकी प्राप्ति होती है, धनार्थी धन लाभ करता है, भार्यार्थी सुन्दर पत्नी, कुमारी कन्या सुन्दर पति, राज्यसे भ्रष्ट हुआ राजा राज्य और लक्ष्मीका अभिलाषी लक्ष्मी प्राप्त करता है। इस प्रकार मनुष्य जिस वस्तुकी अभिलाषा करता है, उसे वह प्रचुर मात्रामें प्राप्त हो जाती है। जो निष्कामभावसे इसका अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।

(अध्याय १४१)

कोटिहोमका विधान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! प्राचीन कालमें प्रतिष्ठान (पैठण) नामक नगरमें संवरण नामके एक महान् भाग्यशाली राजा थे। वे सभी शास्त्रोंमें निपुण, ब्रह्मतत्त्वके ज्ञाता, पितृभक्त तथा देव-ब्राह्मणके उपासक थे।

एक समयकी बात है, ब्रह्माजीके पुत्र महायोगी सनक राजा संवरणके पास आये। उन्हें देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने मुनिको आसन देकर प्रणाम किया तथा अर्घ्य, पाद्य आदिसे उनका सत्कारकर अपना राज्य और स्वयंको भी उनके लिये समर्पित किया। मुनिने भी राजाद्वारा किये गये अभिवादन और सत्कारको स्वीकार किया। उसके बाद ब्रह्मर्षि सनकने अनेक राजाओं, महाराजाओंके चरित और इतिहास-पुराण आदिकी कथाएँ उन्हें सुनायीं। राजा कथा सुनकर आत्मविभोर हो उठे। इसी अवसरपर राजा संवरणने जगत्के प्राणियोंके हितकी दृष्टिसे सनकजीसे प्रार्थना करते हुए कहा—'देवर्षे! भूकम्प, उपलवृष्टि, ग्रहयुद्ध, अनावृष्टि, राज्योपद्रव आदि उत्पातोंकी शान्तिके लिये कोई उपाय बतानेकी कृपा करें, जिससे कि धन-धान्यकी वृद्धि, आरोग्य, सुख और स्वर्गकी प्राप्ति हो।' राजा संवरणकी प्रार्थनाको सुनकर सनकजीने कहा—'राजन्! सभी कार्योंकी सिद्धि करनेवाले शान्तिप्रद कोटिहोमकी विधि बता रहा हूँ, जिसके करनेसे ब्रह्महत्यादि पातक छूट जाते हैं। सभी उत्पात शान्त हो जाते हैं। साथ ही आरोग्य एवं सुखकी भी प्राप्ति होती है। इसका विधान इस प्रकार है—

सबसे पहले शुद्ध मुहूर्त देखकर देवालय, नदीके तटपर, वनमें अथवा घरमें कोटिहोम करना चाहिये। सर्वप्रथम वेदवेत्ता ब्राह्मणका वरण कर गन्ध, अक्षत, पुष्प, माला, वस्त्र, आभूषण आदिसे उनका पूजनकर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वं नो गतिः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणः।
त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे सर्वं मे स्यान्मनोगतम्॥
आपद्विमोक्षाय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम्।
कोटिहोमाख्यमतुलं शान्त्यर्थं सार्वकामिकम्॥

(उत्तरपर्व १४२। १७-१८)

'विप्रश्रेष्ठ! आप ही हमलोगोंके माता-पिता हैं, आप ही

हमारे आश्रय हैं और आप ही गति हैं। आपके अनुग्रहसे हमारे सभी मनोरथ परिपूर्ण हो जायँ। आपत्तिसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिये तथा सार्वकामिक शान्ति प्राप्त करनेके लिये आप कोटिहोम नामक उत्तम यज्ञ करा दें।'

आचार्यको भी श्वेत वस्त्र आदिसे अलंकृत होकर विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ पुण्याहवाचन करना चाहिये। पूर्व और उत्तरकी ओर ढालयुक्त समतल भूमिपर बने हुए मण्डपको ब्राह्मण सूत्र-द्वारा घेर दे। मण्डपका प्रमाण इस प्रकार है—एक सौ हाथ विस्तारका मण्डप उत्तम, पचास हाथका मध्यम तथा पच्चीस हाथका मण्डप निकृष्ट है, किंतु शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार ही मण्डप बनाकर उसके बीचमें आठ हाथ लंबा-चौड़ा, तीन मेखलासे युक्त, बारह अंगुलके विस्तारयुक्त योनिसहित एक चौरस कुण्ड बनाना चाहिये। कुण्डके पूर्व दिशामें चार हाथ लंबी-चौड़ी वेदी बनाये, जो एक हाथ ऊँची हो। उसमें सभी देवताओंको स्थापित करे। मण्डपकी भूमिको गोबर-मिट्टीसे अच्छी तरह लीपकर पञ्चपल्लवोंसे सुसज्जित जलपूर्ण चौदह कलशोंको स्थापित करना चाहिये। मण्डपके ऊपर वितान और तोरण लगाने चाहिये। सब सामग्री एकत्रित कर पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन, जयशब्दपूर्वक शुद्ध दिनसे पुरोहितको हवन प्रारम्भ करना चाहिये। मण्डपके पूर्वमें ब्रह्मा, मध्यमें विष्णु, पश्चिममें रुद्र, उत्तरमें वसु, ईशानमें ग्रह, अग्निकोणमें मरुत् और शेष दिशाओंमें लोकपालोंकी (वेदियोंपर) स्थापना करे। गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे वैदिक और पौराणिक मन्त्रोंद्वारा सबका अलग-अलग पूजन और प्रार्थना करे।

इसके पश्चात् वेदपाठी ब्राह्मणोंसहित विधानपूर्वक कुण्डका संस्कार करे। कुण्डमें अग्नि प्रज्वलितकर उस अग्निका नाम घृतार्चिष रखे। विद्यावृद्ध, वयोवृद्ध, गृहस्थ, जितेन्द्रिय, स्वकर्मनिष्ठ शुद्ध और ज्ञानशक्तिसम्पन्न एक सौ ब्राह्मणोंको हवनके लिये नियुक्त करे अथवा जिस संख्यामें उत्तम ब्राह्मण उपलब्ध हों, उनका ही वरण करना चाहिये। इसके बाद पञ्चमुख अग्निका ध्यान करना चाहिये। नामसहित उनकी सात जिह्वाओंकी पूजा करनी चाहिये। धुआँयुक्त अग्निमें हवन करना व्यर्थ होता है। इसलिये प्रज्वलित अग्निमें ही हवन करना चाहिये।

ऋग्वेदी ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख, यजुर्वेदीको उत्तराभिमुख, सामवेदीको पश्चिमाभिमुख और अथर्वणवेदी ब्राह्मणको दक्षिणाभिमुख बैठकर आधार और आज्यभागकी आहुतियाँ देनी चाहिये। पहले ब्रह्माका स्थापन कर इस कर्मको आरम्भ करना चाहिये। आदिमें 'प्रणव' लगाकर अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका उच्चारण कर व्याहृतियोंसे हवन करना चाहिये। घी, काला तिल तथा जौ मिलाकर पलाशकी समिधाओंसे कोटिहोम करना चाहिये। एक हजार आहुति पूर्ण होनेपर पूर्णाहुति करनी चाहिये। पुनः उसी प्रकार हवन करना चाहिये। इस विधिसे कोटिहोम करना चाहिये। इसमें दस हजार बार पूर्णाहुतियाँ दी जाती हैं। इसमें सभी ब्राह्मणों और यजमानको काम, क्रोध आदि दोषोंसे दूर रहना चाहिये।

कोटिहोमकी विधिको सुनकर राजा संवरणने कहा कि महर्षे! इस कोटिहोममें बहुत अधिक समय लगेगा, इतने दिनतक संयमसे रहना बहुत ही कठिन कार्य है। इसलिये कृपाकर आप कोटिहोमकी संक्षिप्त विधि बतानेका कष्ट करें, जिससे कम समयमें यह निर्विघ्न पूर्ण हो जाय।

राजाके इस प्रकारके वचनको सुनकर सनक मुनिने कहा—'राजन्! कोटिहोम चार प्रकारका होता है—शतमुख, दशमुख, द्विमुख और एकमुख। समयानुसार इन चारोंमेंसे जो भी होम हो सके वही करना चाहिये। एक हाथ प्रमाणवाले उत्तम एक सौ कुण्ड बनाकर प्रत्येक कुण्डपर एक-एक ब्राह्मणको अथवा समय कम रहनेपर प्रत्येक कुण्डपर दस-दस ब्राह्मणोंको हवनके लिये नियुक्त करे। एक कुण्डमें अग्निका संस्कार कर उसी अग्निको अन्य कुण्डोंमें भी प्रज्वलित करना चाहिये। इस विधिद्वारा जो हवन किया जाता है, उससे एक ही कोटिहोम होता है, जो शतमुख होम कहलाता है। यदि समयका अभाव न हो तो दस कुण्ड बनाकर प्रत्येक कुण्डपर बीस-बीस ब्राह्मण हवनके लिये नियुक्त करने चाहिये। यह दशमुख नामक कोटिहोम है। यदि महीने-दो-महीनेका समय हो तो दो कुण्ड बनाकर प्रत्येक कुण्डपर पचास-पचास ब्राह्मणोंको हवनके लिये आमन्त्रित करना चाहिये। यह द्विमुख कोटिहोम है। अधिक-से-अधिक समय हो तो एक कुण्डमें अग्नि-स्थापन कर उत्तम कुलोत्पन्न वेदवेत्ता सदाचारी ब्राह्मणोंसे हवन कराना चाहिये। इस हवनमें ब्राह्मणोंकी संख्याका कोई

नियम नहीं और समयकी सीमा भी निश्चित नहीं है। यह एकमुख कोटिहोम स्वेच्छायज्ञ कहलाता है। इस स्वेच्छायज्ञमें बहुत समय लगता है और बीचमें अनेक प्रकारके विघ्न भी उत्पन्न हो जाते हैं। धन और शरीरकी स्थिरताका कुछ भी भरोसा नहीं है। इसलिये संक्षेपसे ही यज्ञ करना चाहिये।

यज्ञ सम्पन्न कर अच्छी प्रकारसे महोत्सव मनाना चाहिये। सभी ब्राह्मणोंको कटक, कुण्डल, वस्त्र, दक्षिणा, एक सौ गाय, एक सौ घोड़े और स्वर्ण आदि प्रदान करना चाहिये तथा पुरोहितकी पूजा करनी चाहिये। दीनों, अन्धों तथा कृपणों आदिको भोजन देकर अन्तमें कलशोंके जलसे अवभृथ स्नान करे और ब्राह्मण यजमानका अभिषेक करे। इस विधिसे जो राजा या व्यक्ति कोटिहोम करता है, वह आरोग्य, पुत्र, राज्यवृद्धि, ऐश्वर्य, धन-धान्य प्राप्तकर सभी प्रकारसे संतुष्ट रहता है तथा उसको ग्रहपीड़ा भी नहीं भोगनी पड़ती। राज्यमें अनावृष्टि, उत्पात, महामारी, दुर्भिक्ष आदि कभी नहीं होते। सभी तरहके पाप और ग्रहोंकी पीड़ाको दूर करनेवाला शान्तिदायक यह कोटिहोम है, इसको करनेवाला व्यक्ति इन्द्रलोकको प्राप्त कर लेता है[1]। (अध्याय १४२)

महाशान्ति-विधान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं भगवान् शंकरद्वारा कही गयी महाशान्तिका विधान बतलाता हूँ, यह राजाओंके लिये कल्याणकारी है तथा भयंकर विघ्नोंको दूर करनेवाली है। इस महाशान्तिको राजाके अभिषेक, यात्रा तथा दुःस्वप्नके समय, दुर्निमित्तमें, ग्रहोंकी प्रतिकूलतामें, बिजली और उल्काके गिरनेपर, जन्म-नक्षत्रमें केतुके उदय होनेपर, पृथ्वी-कम्पन और प्रसूतिकालमें, मूलगण्डान्तमें, मिथुन संततिके उत्पत्तिकालमें, राजाके छत्र अथवा ध्वजाके अपने स्थानसे पतनके समय, काक, उलूक और कबूतरके घरमें प्रवेश करनेपर, क्रूर ग्रहकी दृष्टि पड़नेपर या जन्मके समय क्रूर ग्रहोंके योग होनेपर, लग्नकुण्डलीमें द्वादश, चतुर्थ और अष्टम स्थानमें बृहस्पति, शनि, सूर्य एवं मंगलके स्थित होनेपर तथा युद्धके समय, वस्त्र, आयुध, मणि, केश, गौ, अश्वके विनाशके समय, रात्रिमें इन्द्रधनुष दिखायी पड़नेपर, घरके तुला-भंगके समय तथा सूर्य और चन्द्र-ग्रहण आदिके समयमें यह महाशान्ति प्रशस्त मानी गयी है। इसके करनेसे सभी दुर्निमित्त शान्त हो जाते हैं। पाण्डव! उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा शीलसम्पन्न वैदिक ब्राह्मणोंसे इस महाशान्तिको कराना चाहिये। विशेषरूपसे अथर्ववेद, यजुर्वेद तथा ऋग्वेदके ज्ञाता, पवित्र ज्ञानसम्पन्न, जप-होमपरायण और अनेक कृच्छ्रादि व्रतोंके द्वारा शुद्ध व्यक्ति इसमें प्रशस्त माने गये हैं। प्रथम भगवान्‌की आराधना करके क्रियाका आरम्भ करना चाहिये।

दस या बारह हाथका एक सुन्दर मण्डप बनाकर उसके मध्यमें चार हाथकी वेदी बनाये और आग्नेय दिशामें एक हाथ प्रमाणवाला एक सुन्दर कुण्ड बनवाये और वह कुण्ड तीन मेखलाओंसे युक्त तथा योनिसे विभूषित होना चाहिये। मण्डपको चन्दन, माला, तोरण आदिसे अलंकृत कर गोबरसे लीपना चाहिये। मण्डपमें वेदीके ऊपर आग्नेयादि कोणोंमें क्रमशः चार और बीचमें पाँचवाँ कलश स्थापित करना चाहिये। कलशोंको पञ्चपल्लवों, सर्वौषधि, पञ्चरत्न, रोचना, चन्दन, सप्तमृत्तिका, धान्य तथा पुण्य तीर्थके जल, नारिकेल आदिसे भलीभाँति स्थापित करना चाहिये। ब्रह्मकूर्च-विधानसे पञ्चगव्यका निर्माण करे। इसके अनन्तर वैदिक मन्त्रोंसे कलशोंको अभिमन्त्रित कर उनका पूजन करे। मध्य कुम्भको रुद्रकुम्भ कहा जाता है।

इसके बाद स्वस्तिवाचन करना चाहिये। अनन्तर अग्निकार्य सम्पन्न करे। '**अग्निं दूतं०**' (यजु०२२।१७) इस मन्त्रके द्वारा कुण्डमें अग्नि स्थापित करे। '**हिरण्यगर्भः०**' (यजु० १३।४) इस मन्त्रसे ब्रह्मासनको स्थापित करे। अग्नि-पूजनके अनन्तर आज्य (घृत) का संस्कार करे, अनन्तर विधिपूर्वक यज्ञीय द्रव्योंको यथावत् स्थापित करना चाहिये। इसके बाद पुरुषसूक्त (यजु०३१।१-१६) का पाठ करते हुए

१-वर्तमान समयके लिये यह विषय अत्यन्त उपयोगी है। सम्पन्न, धर्मात्मा तथा राजनीतिज्ञोंको इसका आश्रय लेकर विश्व-कल्याण करना चाहिये। आजकल विश्वमें अनेक दैवी और सामाजिक उपद्रव व्याप्त हैं। कोटिहोमपर कोटिरुद्रहोमात्मक-पद्धति आदि अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हैं किंतु यह प्रकरण भी उपयोगी है।

चरुका निर्माण करे। उसके सिद्ध होनेके बाद पृथ्वीपर स्थापित करे। इसके पश्चात् शमीकी अठारह तथा पलाशकी सात समिधाओंको अग्नि प्रज्वलित करनेके लिये कुण्डमें डाले। आघार और आज्य-भाग-संज्ञक हवन करनेके बाद **'जातवेदसे॰'** (ऋ॰ १।९९।१) इस ऋचाके द्वारा घीकी सात आहुतियाँ प्रदान करे। पुनः **'जातवेदसे॰'** इस मन्त्रसे स्थालीपाकद्रव्यका हवन करे। 'तरत् स मन्दी॰' (ऋ॰९।५८।१-४) इस सूक्तसे चार बार हवन करे। इसके बाद **'यमाय सोमं'** (ऋ॰ १०।१४।१३) इस मन्त्रसे 'स्वाहा' शब्दका प्रयोगकर सात आहुतियाँ दे। तदनन्तर **'इदं विष्णुर्वि॰'** (यजु॰५।१५) इस मन्त्रसे सात बार आहुति दे। फिर २७ नक्षत्रोंके लिये २७ आहुतियाँ दे। अनन्तर **'यत्कर्मणा॰'** इसके द्वारा हवन करनेके बाद स्विष्टकृत् हवन करे। तदनन्तर घृतसहित तिलसे ग्रहहोम करे। इसके बाद प्रायश्चित्त-निमित्तक हवन करके होम-कर्मको समाप्त करे। तदनन्तर श्रेष्ठ द्विज यजमानके दुर्निमित्तकी शान्तिके लिये पाँच कलशोंके जलसे मन्त्रोंके द्वारा यथाक्रम अभिषेक करे। **'सहस्राक्षेण॰'** (ऋ॰ १०।१६१।३) इस मन्त्रसे प्रथम कलशके जलसे, **'शतायुषा॰'** द्वारा द्वितीय कलशके जलसे, **'सजोषा॰'** (ऋ॰ ३।४७।२) इस मन्त्रसे तृतीय कलशके जलसे, **'विश्वानि देव॰'** (ऋ॰५।८२।५) इस मन्त्रसे चतुर्थ कलशके जलसे तथा **'ऋतमस्तु॰'** इस मन्त्रसे पञ्चम कलशके जलसे अभिषेक करे। इसके बाद **'नमोस्तु सर्वभूतेभ्यः॰'** इस मन्त्रसे दिशाओंको बलि-नैवेद्य प्रदान करे।

यजमानके स्नान करनेके समय ब्राह्मणगण शान्तिका पाठ करें। चारों ओर शान्ति-जलसे जलकी धारा गिराये। अन्तमें पुण्याहवाचनपूर्वक शान्तिकर्मको सम्पन्न करे। ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, शय्या, आसन एवं दक्षिणा दे। दीन, अनाथ, विशिष्ट श्रोत्रियोंको भी भोजन आदि प्रदान करना चाहिये। ऐसा करनेसे आयुकी वृद्धि और शत्रुपर तत्क्षण विजय प्राप्त होती है तथा पुत्र-लाभ होता है। जैसे शस्त्रोंका प्रहार कवचसे हट जाता है, वैसे ही दैवी विघ्न भी इस शान्तिकर्मसे दूर हो जाते हैं। अहिंसक, इन्द्रियसंयमी, धर्मसे धन अर्जित करनेवाला, दया और दक्षिणासे युक्त व्यक्तिके लिये सभी ग्रह अनुकूल हो जाते हैं[1]।

(अध्याय १४३)

विनायक-शान्ति[2]

महाराज युधिष्ठिरने कहा—देवेश ! विभो ! अब आप विनायक-शान्तिकी विधि मुझे बतायें, जिसके करनेसे सभी मानव समस्त आपत्तियोंसे मुक्त हो जाते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! विनायकके प्रिय श्रेष्ठ शान्तिका मैं वर्णन करता हूँ, इसके आचरणसे सभी अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं। यह विनायक-शान्ति सम्पूर्ण विघ्नोंको दूर करनेके लिये की जाती है। स्वप्नमें जलमें अवगाहन करना, मुण्डित सिरों तथा गेरुआ वस्त्रको देखना, मस्तकरहित शव, बिना किसी कारणके ही दुःखी होना, कार्यमें असफल हो जाना इत्यादि विनायकद्वारा गृहीत होनेपर ही दिखायी देते हैं। विनायकद्वारा गृहीत हो जानेपर राजपुत्र राज्यको प्राप्त नहीं कर सकता, कुमारी पति नहीं प्राप्त कर सकती, गर्भिणी पुत्रको और श्रोत्रिय आचार्यत्वको प्राप्त नहीं कर पाता। विद्यार्थी पढ़ नहीं पाता, व्यापारी व्यापारमें लाभ नहीं पाता और कृषक कृषिकार्यमें सफल नहीं होता।

इसलिये इन विघ्नोंको दूर करनेके लिये पुण्य दिनमें स्नपन-कार्य करना चाहिये। पीले सरसोंकी खली, घृत और सुगन्धित कुंकुमका उबटन लगाकर स्नान कर पवित्र हो जाय। ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराये। विधिपूर्वक कलश-स्थापन करे और ब्राह्मण अभिमन्त्रित जलके द्वारा यजमानका अभिषेक करे और इस प्रकार कहे—

सहस्राक्षं शतधारमृषिणा पावनं कृतम्।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते॥
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः।

१-अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जित धनस्य च। दयादाक्षिण्य युक्तस्य सर्वे सानुग्रहा ग्रहाः॥ (१४३-४५)

२-यह प्रकरण याज्ञवल्क्य आदि प्रायः अधिकांश स्मृतियोंमें और पुराणोंमें भी इसी प्रकार प्राप्त होता है।

भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि ।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु ते सदा ॥

(उत्तरपर्व १४४ । १२—२४)

—मैं तुम्हें अभिषिक्त कर रहा हूँ, पावमानी ऋचाओंकी अधिष्ठातृदेवता तुम्हें पवित्र करें। महाराजा वरुण, भगवान् सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु तथा सप्तर्षिगण अपना-अपना तेज तुममें आधान करें। तुम्हारे केशों, सीमन्त, मस्तक, ललाट, कानों एवं आँखोंमें जो भी दौर्भाग्य है, उसको ये अप् देवता नष्ट करें।

अनन्तर कुशाको दक्षिण हाथमें ग्रहण कर सरसोंके तेलसे हवन करे। मित, सम्मित, साल, कालकंटक, कूष्माण्ड तथा राजपुत्रके अन्तमें स्वाहा समन्वित कर हवन करे। चतुष्पथपर कुश बिछाकर सूपमें इनके निमित्त बलि-नैवेद्य अर्पण करे। खिले हुए फूल तथा दूर्वासे अर्घ्य दे। मण्डलमें अर्घ्य प्रदानकर विनायककी माता अम्बिकाकी पूजा करे और यह प्रार्थना करे—मातः ! आप मुझे रूप, यश, ऐश्वर्य, पुत्र तथा धन प्रदान करें और मेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करें[1]। अनन्तर सफेद वस्त्र, सफेद माला और श्वेत चन्दन धारणकर ब्राह्मणको भोजन कराये और गुरुको दो वस्त्र प्रदान करे। इस प्रकार ग्रहोंकी और विनायककी विधिपूर्वक पूजा करनेसे सम्पूर्ण कर्मोंके फलकी प्राप्ति होती है और लक्ष्मीकी भी प्राप्ति हो जाती है। भगवान् सूर्य, कार्तिकेय एवं महागणपतिकी पूजा करके मनुष्य सभी सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १४४)

नक्षत्रार्चन-विधि (रोगावलिचक्र)

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! एक बार कौशिकमुनि अग्निहोत्र करनेके बाद सुखपूर्वक बैठे हुए थे। उसी समय महर्षि गर्गने उनसे पूछा—'ब्रह्मन्! बंदीगृहमें निरुद्ध हो अथवा विषम परिस्थितियोंमें अवरुद्ध, दस्यु, शत्रु अथवा हिंस्र पशुओंसे घिरा हो तथा व्याधियोंसे पीड़ित तो ऐसे व्यक्तिकी कैसे मुक्ति हो सकती है। इसे आप मुझे बतलायें।'

कौशिक मुनि बोले—गर्भाधानके समय, जन्म-नक्षत्रमें, मृत्यु-सम्बन्धी ज्ञान होनेपर जिसको रोग-व्याधि उत्पन्न हो जाती है, उसे कष्ट तो होता ही है, उसकी मृत्यु भी सम्भाव्य है। यदि कृत्तिका नक्षत्रमें कोई व्याधि होती है तो वह पीड़ा नौ राततक बनी रहती है। रोहिणीमें तीन राततक, मृगशिरामें पाँच राततक और यदि आर्द्रामें रोग उत्पन्न हो तो वह व्याधि प्राण-वियोगिनी हो जाती है। पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्रमें सात रात, आश्लेषामें नौ रात, मघामें बीस दिन, पूर्वाफाल्गुनीमें दो मास, उत्तराफाल्गुनीमें तीन पक्ष (४५ दिन), हस्तमें स्वल्पकालिक पीड़ा, चित्रामें आधे मास, स्वातीमें दो मास, विशाखामें बीस दिन, अनुराधामें दस दिन, ज्येष्ठामें आधे मास और मूलमें मृत्यु हो जाती है। पूर्वाषाढ़ामें पंद्रह दिन, उत्तराषाढ़ामें बीस दिन, श्रवणमें दो मास, धनिष्ठामें आधा मास, शतभिषमें दस दिन, पूर्वाभाद्रपदमें नौ दिन, उत्तराभाद्र-पदमें पंद्रह दिन, रेवतीमें द [illegible] था अश्विनीमें एक दिन-रात कष्ट होता है।

मुने ! कुछ विशिष्ट नक्षत्रोंमें व्याधि उत्पन्न होनेपर मनुष्यके प्राणतक भी चले जाते हैं[2], इसमें संदेह नहीं। इसकी विशेष जानकारीके लिये ज्योतिषियोंसे भी परामर्श करना चाहिये।

रोगके प्रारम्भिक नक्षत्रका ज्ञान हो जानेपर उस नक्षत्रके अधिदेवताके निमित्त निर्दिष्ट द्रव्योंद्वारा हवन करनेसे रोग-व्याधिकी शान्ति हो जाती है। व्याधि नक्षत्रके किस चरणमें उत्पन्न हुई है, इसका ठीक पता लगाकर आपत्तिजनक स्थितियोंमें व्याधिसे मुक्तिके लिये उस नक्षत्रके स्वामीके मन्त्रोंसे अभीष्ट समिधाद्वारा हवन करना चाहिये। अश्विनी नक्षत्रमें क्षीरी (दूधवाले—वट, पीपल, खिरनी आदि) वृक्षोंकी समिधासे अश्विनीकुमारोंके मन्त्रोंसे हवन करना चाहिये। भरणीमें

१-रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे। पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे॥ (१४४। २१)

२-ज्योतिर्निबन्ध आदि ज्यौतिष-ग्रन्थोंके अनुसार आर्द्रा, आश्लेषा, पू॰फा॰, स्वाती, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा और पू॰ भा॰ में मृत्युका भय होता है या बीमारी स्थिर हो जाती है। अतः इसकी निवृत्तिके लिये तत्तद् मन्त्र आदिका जप-हवन करना चाहिये।

'**यमदैवत यमाय स्वाहा॰**' इस मन्त्रसे घी, मधु और तिलसे हवन करना चाहिये। इसी प्रकार कृत्तिकामें भी अग्निके मन्त्रोंसे हवन करना चाहिये। रोहिणीमें प्रजापतिके मन्त्रसे, मृगशिरामें घीसे, पुनर्वसुमें दितिदेवीके लिये दूध और घी-मिश्रित आहुति प्रदान करनी चाहिये। पुष्यमें बृहस्पतिके मन्त्रोंसे घी और दूधद्वारा, आश्लेषाके देवता सर्प हैं, अतः बड़के दूध और घीसे मिश्रित आहुति देनी चाहिये। इसी प्रकार स्वाती, मूल आदि सभी नक्षत्रोंमें घी-मिश्रित आहुति देनी चाहिये।

मुने ! ब्रह्माजीने यह बतलाया है कि विधिपूर्वक गायत्री-मन्त्रद्वारा भी प्रायः एक सहस्र (१,०००) घृतकी आहुतियाँ देनेपर सम्पूर्ण ज्वरों एवं व्याधियोंका सद्यः उपशमन हो सकता है। क्योंकि गायत्रीका अर्थ ही है कि गान, हवन, पूजनद्वारा त्राण करनेवाली।

(अध्याय १४५)

अपराधशतशमन-व्रत

महर्षि वसिष्ठजीने राजा इक्ष्वाकुसे कहा—राजन् ! अब आपको एक व्रत बतला रहा हूँ, जिससे महाफलकी प्राप्ति होती है और सैकड़ों दोष—पापोंका शमन हो जाता है।

राजा इक्ष्वाकुने पूछा—ब्रह्मन् ! मुख्यरूपसे सौ अपराध या दोष-पाप कौन-कौन हैं और वह व्रत कौन-सा है, जिसके अनुष्ठानमात्रसे उनकी शान्ति हो जाती है। इस व्रतमें किस देवताकी पूजा होती है और किस समय यह व्रत किया जाता है, आप बतलानेकी कृपा करें।

महर्षि वसिष्ठ बोले—महाबाहो ! अपराधशतशमन-व्रतको सुनो, जिसका अनुष्ठान करनेमात्रसे मनुष्यको सभी प्रकारकी कामनाएँ और मुक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। कृत-अकृत सभी गुरुतर पाप रुईकी राशिके समान जलकर भस्म हो जाते हैं। राजन् ! अब आप इन अपराधोंके नाम और लक्षणको सुनें—अनाश्रमित्व—चारों आश्रमोंसे बाहर रहकर स्वच्छन्द नास्तिक-वृत्ति अपनाना, अनग्निता—अग्निहोत्र, हवन आदि सभी कार्योंका परित्याग, व्रतहीनता— कोई भी सत्य, ब्रह्मचर्य और एकादशी आदि व्रतोंका पालन न करना, अदातृत्व— कभी भी कुछ भी अन्न, धन या आशीर्वाद आदि न देना, अशौच, निर्दयता, लोभ, क्षमाशून्यता, जनपीड़ा, प्रपञ्चमें पड़ना, अमङ्गल, व्रतभङ्ग, नास्तिकता, वेदनिन्दा, कठोरता, असत्यता, हिंसा, चोरी, इन्द्रिय-परायणता, मनको वशमें न रखना, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ, शठता, धूर्तता, कटुभाषण, प्रमाद, स्त्री, पुत्र, माता आदिका पालन न करना, अपूज्यकी पूजा करना, श्राद्धका त्याग, जप न करना, बलिवैश्वदेव तथा पञ्चयज्ञका त्याग, संध्या, तर्पण, हवन आदि नित्यकर्मोंका परित्याग, अग्निका बुझाना, ऋतुकालके बिना ही स्त्री-सम्पर्क, पर्व आदिमें स्त्री-सहवास, चुगली, दूसरेकी स्त्रीके साथ गमन, वेश्यागामिता, अपात्रको दान देना, अल्पदान, अन्त्यजसङ्ग, माता-पिताकी सेवा न करना, सबसे झगड़ा करना, पुराण और स्मृतियोंका अनादर करना, अभक्ष्य-भक्षण, स्वामि-द्रोह, बिना विचारे कार्य करना, कृषि-कार्य करना, भार्यासंग्रह, मनपर विजय न प्राप्त करना, विद्याकी विस्मृति, शास्त्रका त्याग करना, ऋण लेकर वापस न करना, चित्रकर्म करना, सदा कामनाओंका दास होना, भार्या, पुत्र एवं कन्या आदिका विक्रय करना, पशु-मैथुन, इन्धनार्थ वृक्ष काटना, बिलोंमें पानी आदि डालना, तड़ागादिके जलको दूषित करना, विद्याका विक्रय, स्ववृत्तिका परित्याग, याचना, कुमित्रता, स्त्री-वध, गो-वध, मित्र-वध, भ्रूण-हत्या, पौरोहित्य, दूसरेका अन्न और शूद्रके अन्नको ग्रहण करना, शूद्रका अग्निकर्म सम्पन्न करना, विधिविहीन कर्मका निष्पादन, कुपुत्रता, विद्वान् होनेपर याचना करना, वाचालता, प्रतिग्रह लेना, श्रौत-संस्कारहीनता, आर्त व्यक्तिका दुःख दूर न करना, ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णचोरी, गुरुपत्नीगमन तथा पातकियोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करना—ये अपराध हैं। अन्य तत्त्ववेत्ताओंने भी विविध प्रकारके अपराधोंको कहा है।

अनघ ! भगवान् सत्येशकी पूजा करनेसे तत्क्षण सभी प्रकारके अपराध नष्ट हो जाते हैं। मनुष्योंद्वारा व्रत और पूजन करनेसे भगवान् स्वयं उसके वशमें हो जाते हैं। ये जगत्पति भगवान् विष्णु लक्ष्मीके साथ सत्यरूपी ध्वजके ऊपर स्थित रहते हैं। इनके पूर्वमें वामदेव, दक्षिणमें नृसिंह भगवान्, पश्चिममें भगवान् कपिल, उत्तरमें वराह तथा ऊर्ध्वमें अच्युत स्थित रहते हैं। इन्हें ही ब्रह्मपञ्चक जानना चाहिये। ये ही सत्येश हैं, इन्हींकी सदैव पूजा करनी चाहिये। ये सत्येश

भगवान् पद्म, कौमोदकी गदा, पाञ्चजन्य शंख तथा सुदर्शन चक्र धारण किये रहते हैं। उनके चरणकमलके अग्रभागसे पवित्र गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ है। इनकी आठ शक्तियाँ हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—जया, विजया, जयन्ती, पापनाशिनी, उन्मीलनी, वंजुली, त्रिस्पृशा और विवर्धना। वे भगवान् हरि शुक्लाम्बरधारी, सौम्य, प्रसन्नमुख, सभी आभरणोंसे युक्त, शोभायमान और भुक्ति-मुक्तिप्रदाता हैं।

राजन्! उनकी जिस विधिसे प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये, उसे आप सुनें। मार्गशीर्ष आदि बारह मासोंमें द्वादशी, अमावास्या अथवा अष्टमीके दिन शुक्ल या कृष्ण पक्षका विचार किये बिना शुद्ध होकर उपवासपूर्वक व्रत करना चाहिये। शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंमें जनार्दनकी पूजा करनेका संकल्प लेना चाहिये। इस प्रकार नियम ग्रहण करके दन्तधावनपूर्वक तडाग, पुष्कर अथवा घरपर ही स्नानकर नित्य-नैमित्तिक कर्म करने चाहिये। एक पल सुवर्णके मानसे लक्ष्मीसहित सत्येशकी प्रतिमा बनवाये जो अष्टशक्तियोंसे समन्वित पद्मासनपर स्थित हो। दुग्धसे पूरित कुम्भपर स्थित सुवर्ण-पद्मके ऊपर उस प्रतिमाको स्थापित करे। उस पद्मकी कर्णिकाओंपर देवाधिदेवकी आठ शक्तियोंकी पूजा करे। अनन्तर भगवान् सत्येश (विष्णु) और सत्या (लक्ष्मी) की विधिवत् विविध पाद्यादि उपचारोंसे पूजा करे। अनन्तर इस प्रकार प्रार्थना करे—

कृष्ण कृष्ण प्रभो राम राम कृष्ण विभो हरे।
त्राहि मां सर्वदुःखेभ्यो रमया सह माधव॥
पूजा चेयं मया दत्ता पितामह जगद्गुरो।
गृहाण जगदीशान नारायण नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व १४६।४८-४९)

अनन्तर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणको दान देकर व्रतका समापन करना चाहिये। इस व्रतको दोनों पक्षोंमें करे और वर्ष पूरा होनेपर उद्यापन करे। ब्राह्मणसे प्रार्थना करे कि हे ब्राह्मण देवता! मेरे सभी पाप दूर हो जायँ। ब्राह्मण कहें—'आपके सभी पाप एवं दुःख दूर हो जायँ।' तदनन्तर ब्राह्मणको वह मूर्ति समर्पित कर समापन करना चाहिये।

राजन्! ब्रह्माजीने कहा है कि इस व्रतको करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है। जो फल सभी वेदोंके अध्ययनसे और सभी तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे प्राप्त होता है, उससे कोटिगुना फल इस व्रतके आचरणसे होता है और व्रतीको इस लोकमें धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, मित्र तथा सुखकी प्राप्ति होती है। व्रतको करनेवाले व्यक्तिको विद्या और आरोग्यकी भी प्राप्ति होती है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसमें कोई संदेह नहीं है। जो इसको पढ़ता अथवा सुनता है, उसके भी सभी पाप दूर हो जाते हैं। (अध्याय १४६)

काञ्चनपुरीव्रत-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! एक बार विश्वके उत्पत्ति, पालन और संहारकारक अक्षर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु श्वेतद्वीपमें सुखपूर्वक बैठे हुए थे। उसी समय जगन्माता लक्ष्मीने उनके चरणोंमें पञ्चाङ्ग प्रणाम कर उनसे पूछा—'भगवन्! आप भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं। महाभाग! मुझपर भी दया करके आप कोई ऐसा रूप-सौभाग्यदायक सर्वोत्तम व्रत बतलायें, जिसके आचरणसे समस्त तीर्थ आदि पुण्य कर्मोंका फल प्राप्त हो जाय।'

भगवान् विष्णु बोले—देवि! जिस प्रकार आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम, वर्णोंमें ब्राह्मण, नदियोंमें गङ्गा, जलाशयोंमें समुद्र, देवताओंमें विष्णु (मैं) तथा स्त्रियोंमें तुम (लक्ष्मी) श्रेष्ठ हो, उसी प्रकार व्रतोंमें काञ्चनपुरी व्रत उत्तम है। इस व्रतका पहले भगवती पार्वतीने भगवान् शंकरके साथ अनुष्ठान किया था। सीताजीने भी भगवान् श्रीरामके साथ इसी व्रतका पालन कर अखण्ड साम्राज्य प्राप्त किया था। दमयन्तीके वियोगमें राजा नलने भी इस व्रतको किया था। वनवासी पाण्डवोंने भी द्रौपदीके साथ इस व्रतका आचरण किया और सभी कष्टोंसे मुक्त होकर साम्राज्य-लाभ किया। भद्रे! यह व्रत स्वर्ग और मोक्षको प्रदान करनेवाला है। रम्भा, मेनका, इन्द्राणी (शची) सत्यभामा, शाण्डिली, अरुन्धती, उर्वशी तथा देवदत्ता आदि श्रेष्ठ स्त्रियोंने इस व्रतका आचरण करके सौभाग्य, सुख और अपने मनोरथ प्राप्त किये थे। पातालमें नागकन्याओंने और गायत्री, सरस्वती एवं सावित्री आदि उत्तम देवियों तथा अन्य नारियोंने सभी कामनाओंकी पूर्तिकी अभिलाषासे इस व्रतका

अनुष्ठान किया था। यह व्रत सभी प्रकारके दुःखोंका नाशक, प्रीतिवर्धक तथा व्रतोंमें उत्तम है, इसलिये इस व्रतका मैं वर्णन कर रहा हूँ। इसके अनुष्ठानसे ब्रह्महत्या आदि महापातकोंके करनेवाले, तौल-मापमें कमी करनेवाले, कन्या बेचनेवाले, गौ बेचनेवाले, अगम्यागमनमें लिप्त, मांसभक्षी, जारजपुत्रके यहाँ भोजन करनेवाले, भूमिका हरण करनेवाले आदि पापकर्मी भी पापोंसे निःसंदेह मुक्त हो जाते हैं। इसकी विधि इस प्रकार है—

देवि! यह काञ्चनपुरी-व्रत किसी महीनेमें शुक्ल या कृष्ण पक्षकी तृतीया, एकादशी, पूर्णिमा, संक्रान्ति, अमावास्या तथा अष्टमीको उपवासपूर्वक किया जा सकता है। व्रती इस दिन काञ्चनपुरी बनवाकर दान करे। वह पूर्वाह्णमें नदी आदिके शुद्ध निर्मल जलमें स्नान करे। पहले मन्त्रपूर्वक पवित्र मृत्तिका ग्रहणकर उसे शरीरमें लगाये फिर जलमें गोते लगाये। इस विधिसे स्नान कर शुद्धात्मा व्रती अपने घर आये और उस दिन किसी पाखण्डी, विधर्मी, धूर्त, शठ आदिसे वार्तालाप न करे। अपना हाथ-पैर धोकर पवित्र हो आचमन करे। एक उत्तम जलसे भरा स्वर्णयुक्त शंख लेकर उस जलको द्वादशाक्षर-मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर 'हरि' इस मन्त्रका जप कर जल पी ले। शमीवृक्षसे चार स्तम्भोंसे युक्त एक वेदी बनाये जो चार हाथ प्रमाणकी हो। वेदीको पुष्पमाला, वितान, दिव्य धूप आदिसे अधिवासित और अलंकृत कर ले। वेदीके मध्यमें एक पद्मकी रचना करे। मण्डलके बीचमें सुन्दर एक भद्रपीठका निर्माण कराये। भद्रपीठके ऊपर सुन्दर आसनपर लक्ष्मीके साथ भगवान् जनार्दनकी स्थापना करे। मण्डलके अग्र भागमें जलपूर्ण कलशकी स्थापना कर उसमें क्षीरसागरकी कल्पना करे। कलशपर चार पल, दो पल अथवा एक पलकी काञ्चन-पुरीकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर स्थापित करे। उसके आगे कदली-स्तम्भ और तोरण लगाये। फिर ब्राह्मणोंद्वारा उसकी प्रतिष्ठा कराये।

उस पुरीके मध्यमें विष्णुसहित लक्ष्मीकी सुवर्णमय प्रतिमाकी स्थापना करनी चाहिये। पञ्चामृतसे देवेश नारायण तथा लक्ष्मीको स्नान कराकर मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए चन्दन, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा उनका पूजन करना चाहिये। इन्द्रादि लोकपालोंकी पूजा भी यथाक्रमसे करनी चाहिये। विघ्ननिवारणके लिये गणपति तथा नवग्रहोंका पूजन कर हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् पायस, सोहाल, फेनी, मोदक आदिका नैवेद्य अर्पितकर देश-कालके अनुसार फल भी अर्पण करना चाहिये। दस दिशाओंमें दस घृतपूरित दीपक प्रज्वलित करे। पुष्पमाला, चन्दन आदि भी चढ़ाये, साथ ही विष्णुस्तवराज, पुरुषसूक्त आदिका पाठ करे। सोलह सपत्नीक ब्राह्मणोंमें लक्ष्मी-विष्णुकी भावना कर पूजा करे। अन्तमें पूजित सभी पदार्थ उन्हें निवेदित कर प्रार्थना करे कि 'ब्राह्मण देवता! भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हो जायँ।' शय्या-दान तथा गो-दान भी करे। जो काञ्चनपुरी आदिकी प्रतिमा पूजित की गयी है, उसे व्रती देख न सके, इसलिये वस्त्रसे आच्छादितकर अपने नेत्रोंको वस्त्रसे ढककर दीपके साथ मण्डपमें ले आये और आचार्य कहे—'आप सभी कामनाओंको देनेवाली एवं दुःख-दौर्भाग्यको दूर करनेवाली इस रमणीय काञ्चनपुरीका दर्शन करें।'

अनन्तर व्रती नेत्रके वस्त्रको खोलकर गुरुके सम्मुख पुष्पाञ्जलि देकर उस शुभ पुरीका दर्शन करे। तदनन्तर चाँदी, ताँबे अथवा किसी शंखमें पञ्चरत्न, गङ्गाजल, फल, सरसों, अक्षत, रोचना तथा दहीमिश्रित अर्घ्य बनाकर भगवान् विष्णुको प्रदान करे और प्रार्थना करे—'सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले भगवान् लक्ष्मीनारायण! आप इस सुवर्णपुरीके प्रदान करनेसे मनोवाञ्छित फल पूर्ण करें। नारायण! लक्ष्मीकान्त! जगन्नाथ! आप इस अर्घ्यको ग्रहण करें, आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार महातेजस्वी भगवान् विष्णुको अर्घ्य देकर भक्तिपूर्वक देवी लक्ष्मीको भी अर्घ्य प्रदान करना चाहिये और कहना चाहिये कि 'देवि! आप ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, पार्वती एवं भगवान् कार्तिकेयसे पूजित हैं। धर्मकी कामनासे मेरे द्वारा भी आप पूजित हैं, आप मुझे सौभाग्य, पुत्र, धन, पौत्र प्रदान करें। देवि! आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्यको ग्रहण कर मुझे सुख प्रदान करें।' इस प्रकार व्रतको पूर्णकर महोत्सव मनाये एवं रात्रिमें जागरण करे। निद्रारहित होकर जागरण करनेसे सौ यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। प्रातःकाल निर्मल जलसे स्नानकर पितर और देवताओंकी पूजाकर सपत्नीक ब्राह्मणोंको वस्त्र देकर भोजन कराये और यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान कर क्षमा-याचना

करे। दीन, अंध, बधिर, पंगु आदि सबको संतुष्ट करे। अनन्तर पारणा करे। तदनन्तर मधुर पायसयुक्त व्यञ्जनोंसे मित्र और बान्धवोंके साथ भोजन करे। ऐसा करनेसे व्रती ब्रह्मलोकको प्राप्त कर ब्रह्माके साथ आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है। अनन्तर रुद्रलोक, उसके बाद विष्णुलोकको प्राप्त करता है। देवि ! काञ्चनपुरी नामक यह व्रत पूर्वसमयमें तुमने भी किया था, उसी पुण्यके प्रभावसे त्रैलोक्यपूजित मुझे स्वामीके रूपमें तुमने प्राप्त किया है। (अध्याय १४७)

कन्यादान एवं ब्राह्मणोंकी परिचर्याका माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! जो विवाह करने योग्य कन्याको अलंकृतकर ब्राह्मविधिसे सुयोग्य वरको प्रदान करता है, वह सात पूर्व और सात आगे आनेवाली पीढ़ियोंको तथा अपने कुलके सभी मनुष्योंको भी इस कन्या-दानके पुण्यसे तार देता है, इसमें संदेह नहीं। जो प्राजापत्य-विधिके द्वारा कन्या-दान करता है, वह दक्षप्रजापतिके लोकको प्राप्त करता है। वह अपना उद्धार कर अपार पुण्य प्राप्त करता है तथा अन्तमें स्वर्गलोक प्राप्त करता है। जो पृथ्वी, गौ, अश्व, गजका दान हीन वर्णको करता है, वह घोर नरकमें पड़ता है। शुल्क लेकर कन्याका दान करनेवाला घोर नरक प्राप्त करता है और हजारों वर्षोंतक अपवित्र लाला-भक्षण करता हुआ नरकमें जीवनयापन करता है। इसलिये सवर्णा कन्या सवर्णको ही प्रदान करनी चाहिये। ब्राह्मणके बालक अथवा किसी अनाथको जो चूडाकरण, उपनयन आदि संस्कारोंसे संस्कृत करता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है। अनाथ कन्याका विवाह करानेवाला स्वर्गमें पूजित होता है[1]। पूर्वजोंने कहा है कि जो कन्यादानके साथ प्रदीप्त शुद्ध स्वर्णका दान करता है, वह द्विगुणित कन्यादानका फल प्राप्त करता है। कन्याकी पूजासे विष्णुकी पूजाके समान पुण्य होता है।

महाराज ! पृथ्वीपर ब्राह्मण ही देवता हैं, स्वर्गमें ब्राह्मण ही देवता हैं। इतना ही नहीं तीनों लोकोंमें ब्राह्मणसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। ब्राह्मणोंमें यह शक्ति है कि वे मन्त्र-बलके प्रभावसे देवताको अदेवता और अदेवताको देवता बना देते हैं। इसलिये महाभाग ! ब्राह्मणकी सदा पूजा करनी चाहिये। देवगण ब्राह्मणसे ही पूर्वमें उत्पन्न हुए ऐसा स्मृतियोंका कथन है। सम्पूर्ण जगत् ब्राह्मणसे ही उत्पन्न है। इसलिये ब्राह्मण पूज्यतम हैं। देवगण, पितृगण, ऋषिगण जिसके मुखसे भोजन करते हैं, उस ब्राह्मणसे श्रेष्ठ और कौन हो सकता है ? धर्मज्ञ ! ब्राह्मणोंका कल्याणकरनेवाला व्यक्ति स्वर्गलोकमें पूजित होता है। जब प्रत्यक्ष देवता ब्राह्मण संतुष्ट होकर बोलते हैं तो यह समझना चाहिये कि परोक्षमें देवताओंकी ही यह वाणी है। उसीसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है, अतः सदा ब्राह्मणकी सेवा करनी चाहिये। (अध्याय १४८—१५०)

दानकी महिमा और प्रत्यक्ष धेनु-दानकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आपके श्रीमुखसे मैंने पुराणोंके विषयोंको सुना। व्रतोंको भी मैंने विस्तारपूर्वक सुना, संसारकी असारताको भी मैंने समझा, अब मैं दानके माहात्म्यको सुनना चाहता हूँ। दान किस समय, किसको, किस विधिसे देना चाहिये, यह सब बतानेकी कृपा करें। मेरी समझसे दानसे बढ़कर अन्य कोई पुण्य कार्य नहीं है, क्योंकि धनिकोंका धन चोरोंद्वारा चुराया जा सकता है अथवा राजाद्वारा छिनवाया जा सकता है, अतः धन रहनेपर दान अवश्य करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मृत्युके उपरान्त धन आदि वैभव व्यक्तिके साथ नहीं जाते, परंतु ब्राह्मणको दिया गया दान परलोकमें पाथेय बनकर उसके साथ जाता है। हृष्ट, पुष्ट, बलवान् शरीर पानेसे भी कोई लाभ नहीं है, जबतक कि किसीका उपकार न करे। उपकारहीन जीवन व्यर्थ है। इसलिये एक ग्राससे आधा अथवा उससे भी कम मात्रामें किसी चाहनेवाले व्यक्तिको दान क्यों नहीं दिया जाता ?

१- द्विजपुत्रमनाथं वा संस्कुर्याद्यश्च कर्मभिः।
चूडोपनयनाद्यैश्च सोऽश्वमेधफलं लभेत्। अनाथां कन्यकां दत्त्वा नाकलोके महीयते॥ (उत्तरपर्व १४८। ७-८)

इच्छानुसार धन कब और किसको प्राप्त हुआ या होगा[१] ? धर्म, अर्थ तथा कामके विषयमें सचेष्ट होकर जिसने प्रयत्न नहीं किया, उसका जीवन लोहारकी धौंकनीकी भाँति व्यर्थ ही चलता है। जिस व्यक्तिने न दान दिया, न हवन किया, तीर्थ-स्थानोंमें प्राण नहीं त्यागा, सुवर्ण, अन्न-वस्त्र तथा जल आदिसे ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं किया, वही व्यक्ति जन्म-जन्ममें अन्न, वस्त्ररहित, रोगसे ग्रसित, हाथमें कपाल लेकर दर-दर भटकता हुआ याचना करता रहता है। अनेक प्रकारके कष्टोंको सहकर प्राणोंसे भी अधिक प्रिय जो धन एकत्र किया गया है, उसकी एक ही सुगति है दान। शेष भोग और नाश तो प्रत्यक्ष विपत्तियाँ ही हैं[२]। उपभोगसे और दानसे धनका नाश नहीं होता, केवल पूर्व-पुण्यके क्षीण होनेसे ही धनका नाश होता है। मरणोपरान्त धनपर अपना स्वामित्व नहीं रह जाता, इसलिये अपने हाथसे ही सुपात्रको धनका दान कर लेना चाहिये। राजन्! दान देनेके अनेक रूप हैं, इस विषयमें व्यास, वाल्मीकि, मनु आदि महापुरुषोंने पहले ही बतलाया है कि पूर्वजन्ममें किये गये व्रत, दान एवं देवपूजन आदि पुण्यकर्म ही दूसरे जन्ममें फलीभूत होते हैं।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! भगवान् विष्णु, शिव एवं ब्राह्मणोंकी प्रसन्नताके लिये जो दान जिस विधिसे देना चाहिये आप उस विधिका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! गौ, भूमि और सरस्वती—ये तीन दान सभी दानोंमें श्रेष्ठ और मुख्य हैं। ये अतिदान कहे गये हैं[३]। गायोंके दुहने, पृथ्वीको जोतकर अन्न उपजाने तथा विद्याके पढ़ने-पढ़ानेसे सात कुलोंका उद्धार होता है। अब मैं दान देने योग्य गौके लक्षणों और गोदानकी विधि बता रहा हूँ—महाराज! सुपुष्ट, सुन्दर, सवत्सा, पयस्विनी और न्यायपूर्वक अर्जित धनसे प्राप्त गौ श्रेष्ठ ब्राह्मणको देना चाहिये। वृद्धा, रोगिणी, वन्ध्या, अङ्गहीन, मृतवत्सा, दुःशीला और दुग्धरहित तथा अन्यायपूर्वक प्राप्त गौका कभी दान नहीं करना चाहिये। राजन्! किसी पुण्य दिनमें स्नानकर पितरोंका तर्पण कर भगवान् शिव और विष्णुका घी और दुग्धसे अभिषेक करनेके बाद सोनेकी सींगयुक्त, रौप्य खुरवाली, कांस्यके दोहन-पात्रसहित सवत्सा गौका पुष्प आदिसे भलीभाँति पूजन करना चाहिये, उसे वस्त्र तथा माला आदिसे अलंकृत कर ले। गौको पूर्व या उत्तराभिमुख खड़ा करना चाहिये। अनन्तर दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको गौका दान करना चाहिये और प्रार्थनापूर्वक इस प्रकार प्रदक्षिणा करनी चाहिये—

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः॥
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्।

(उत्तरपर्व १५१। २९-३०)

गायकी पूँछ पकड़कर, हाथीका सूँड़, घोड़ेका कान तथा दासीके सिरका स्पर्श कर और मृगचर्मकी पूँछ पकड़कर दान करना चाहिये। जब ब्राह्मण गाय लेकर जाने लगे तो उसके पीछे-पीछे आठ-दस कदमतक जाना चाहिये। इस विधिसे जो व्यक्ति गोदान करता है, उसे सभी प्रकारके अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं और स्वर्गकी प्राप्ति होती है। सात जन्मोंमें किये गये पापका उसी क्षण नाश हो जाता है। राजन्! यह विधि दक्षप्रजापतिके लिये भगवान् विष्णुने कही है। गोदान करनेवाला चतुर्दश इन्द्रोंके समयतक स्वर्गमें निवास करता है। यह गोदान सभी पापोंको दूर करनेवाला है। इससे बढ़कर और कोई प्रायश्चित्त नहीं है। गोदान ही एक ऐसा दान है, जो जन्म-जन्मान्तरतक फल देता रहता है।' (अध्याय १५१)

तिलधेनु-दानकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! अब मैं भगवान् वाराहके द्वारा कहे गये तिलधेनु-दानकी विधि बता रहा हूँ। जिससे दाता ब्रह्महत्यादि महापातकों तथा सभी उपपातकोंसे मुक्त हो जाता है और स्वर्गमें निवास करता है।

१-प्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते। इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥ (उत्तरपर्व १५१। ६)

२-आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः। गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः॥ (उत्तरपर्व १५१। ११)

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति धनस्य। यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥ (सुभाषितरत्नावली)

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्यरत मति सोइ पाकी॥ (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड)

३-त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती। (उत्तरपर्व १५१। १८)

पहले पृथ्वीको गोबरसे लीपकर उसपर काला मृगचर्म तथा उसके चारों ओर कुश बिछा ले। तदनन्तर उसपर गायकी आकृतिके रूपमें तिलकी राशि फैला ले अर्थात् तिलमयी धेनु बना ले। सफेद, कृष्ण, भूरे तथा गोमूत्रवर्णके तिलोंसे धेनुकी रचना करनी चाहिये। चार आढकके मानकी गाय और एक द्रोण तिलसे बछड़ेका निर्माण करे। गायके खुरके पास चाँदी, सींगके पास स्वर्ण, जिह्वाके पास शक्कर, मुखके पास गुड़, गलकम्बलके पास कम्बल, पैरके स्थानमें ईख, पीठके स्थानपर ताँबा और नेत्रोंके लिये मुक्ता रखनी चाहिये। इसी प्रकार कानके स्थानपर पीपलके पत्ते, दाँतोंके स्थानपर फल, पूँछके स्थानपर माला और स्तनोंके स्थानपर मक्खन रखे। सिरके स्थानपर सफेद वस्त्र, रोमोंके स्थानपर सफेद सरसों रख दे। सुन्दर फलों तथा मणि-मुक्ताओंसे उस तिलमयी कल्पित धेनुको सुसज्जित करे। कांस्यकी दोहनी भी समीपमें रख दे। किसी पुण्य पर्वके दिन उस धेनुका पूजन इत्यादि कर ब्राह्मणको दान कर दे और इस मन्त्रको पढ़ते हुए प्रार्थनापूर्वक प्रदक्षिणा करे—

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या वै देवेष्ववस्थिता।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥

(उत्तरपर्व १५२। १५)

दक्षिणासहित गाय ब्राह्मणको दे दे। इस विधिसे जो तिलधेनुका दान करता है, वह व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।

जो व्यक्ति इस दानका अनुमोदन कर प्रसन्नचित्त होकर प्रशंसा करते हैं तथा विधिपूर्वक जो ब्राह्मण दान ग्रहण करते हैं वे भी ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। प्रशान्त, सुशील, वेदव्रतपरायण ब्राह्मणके लिये तिलधेनुका दान करनेवाले व्यक्तिको अपने कृत-अकृतका शोक नहीं करना पड़ता। तिलधेनु-दान करनेवाले व्यक्तिको तीन दिन अथवा एक दिन तिलका ही भोजन करना चाहिये। दान करनेसे मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं और उसके अंदर पवित्रता आ जाती है। तिलका भक्षण करना चान्द्रायणव्रतसे अधिक श्रेष्ठ माना गया है। बाल्य, युवा अथवा वृद्धावस्थामें मन, वचन तथा कर्मसे जो पाप हुआ हो अथवा अभक्ष्य-भक्षण, अगम्यागमन, अपेयपान इत्यादि जो पातक, महापातक और उपपातक किये गये हों, वे सब तिलधेनुके दानसे दूर हो जाते हैं। पवित्र गङ्गा आदि नदियोंमें थूकने तथा नग्न स्नान करनेसे जो पाप होता है, वह भी नष्ट हो जाता है। तिलधेनुका दान करनेवाला व्यक्ति यमलोकके मार्गकी भयंकर यातनाओंका अतिक्रमणकर सुवर्णके विमानमें बैठकर उत्तम लोकमें चला जाता है। राजन्! नैमिषारण्यमें कथा-प्रसंगके समय मुनियोंने यह विधि सुनायी और नारदजीने मुझे इस विधिका उपदेश किया, वही तिलधेनु-दानकी विधि मैंने आपसे कही है। तिलधेनुका दान करना पवित्र, पुण्य और माङ्गल्यप्रद तथा कीर्तिवर्धक है। श्राद्धके समय ब्राह्मणोंको इस माहात्म्यका श्रवण करानेसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। गौ, घर, शय्या और कन्या एक व्यक्तिको ही देनी चाहिये, क्योंकि विभाजनसे दोनोंको अधोगतिकी प्राप्ति होती है और विक्रय करनेसे सात कुल दुर्गतिको प्राप्त करते हैं। इस दानके प्रभावसे दान करनेवाला उत्तम विमानमें बैठकर साक्षात् विष्णुभगवान्‌के समीप पहुँच जाता है। माघ अथवा कार्तिककी पूर्णिमा, चन्द्र-सूर्य-ग्रहण, अयन-संक्रान्ति, विषुव-योग, व्यतीपात-योग, वैशाख अथवा मार्गशीर्षकी पूर्णिमा और गजच्छाया-योगमें तिलधेनुका दान प्रशस्त माना गया है। (अध्याय १५२)

जलधेनु-दानके प्रसंगमें महर्षि मुद्गलका आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! अब मैं जलधेनु-दानकी विधि बता रहा हूँ, जिससे देवाधिदेव भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। उत्तम जलसे पूर्ण एक कलश स्थापित करे, उसमें पञ्चरत्न, धान्य, दूर्वा, पञ्चपल्लव, कुष्ठसंज्ञक ओषधि, खश, जटामांसी, मुरा, प्रियंगु और आँवला छोड़े। फिर उसे दो श्वेत वस्त्रों, यज्ञोपवीत और पुष्पमालाओंसे अलंकृत करे। कुशके आसनपर कलशको रखकर उसके आस-पास जूता, छाता आदि तथा चारों दिशाओंमें चाँदीके चार पात्रोंमें तिल, दही, घृत तथा मधु भरकर रखे। कलशमें सवत्सा धेनुकी कल्पना कर उसे गोमयसे उपलिप्त कर दे। पूँछके स्थानपर माला लटका दे। समीपमें दोहनपात्र भी रख ले। इसके बाद सब उपचारोंसे भगवान् विष्णुकी यथाशक्ति

पूजाकर उस कलशमें जलधेनुकी अभिमन्त्रणा करे और इस प्रकार कहे—

विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहाख्या च विभावसोः ।
सोमशक्रार्कशक्तिर्या धेनुरूपेण साऽस्तु मे ॥

(उत्तरपर्व १५३ । ८)

'जो गौमाता भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें लक्ष्मीके रूपमें निवास करती हैं और अग्निदेवकी पत्नी स्वाहा तथा चन्द्रमा, सूर्य एवं इन्द्रकी शक्ति-रूपमें प्रतिष्ठित हैं वे मेरे लिये इस जलरूपी कलशमें अधिष्ठित हों।'

इस मन्त्रसे कलशमें धेनुको प्रतिष्ठित कर वत्स-समन्वित उस जलधेनुका तथा जलशायी भगवान् अच्युत गोविन्दका भलीभाँति पूजन करे। तदनन्तर वीतराग और शान्तचित्त होकर भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये उस कलशस्थित जलधेनुका ब्राह्मणको दान कर दे और इस प्रकार कहे—

शेषपर्यङ्कशयनः श्रीमान् शार्ङ्गविभूषितः ।
जलशायी जगद्योनिः प्रीयतां मम केशवः ॥

(उत्तरपर्व १५३ । ११)

'शेषनागरूपी शय्यापर शयन करनेवाले, शार्ङ्गधनुषसे विभूषित, जलशायी, जगद्योनि ! श्रीसम्पन्न भगवान् केशव ! आप (इस दानरूपी कर्मसे) मुझपर प्रसन्न हों।'

दान करनेके बाद उस दिन गोव्रत करना चाहिये। इस विधिसे जलधेनुका दान करनेवाला व्यक्ति सभी प्रकारके आनन्दको प्राप्त करता है तथा उसे सार्वकालिक अतुल शान्ति प्राप्त होती है एवं सभी मनोरथोंकी सिद्धि हो जाती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

राजन् ! इस विषयमें एक आख्यान सुना जाता है जो इस प्रकार है—किसी समय जातिस्मर महात्मा मुद्गल ऋषि भ्रमण करते हुए यमलोकमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि पापी जीव अनेक प्रकारके कुम्भीपाक आदि दारुण नरकमें कष्ट भोग रहे हैं और यमराजके अति भयंकर दूत उन्हें अनेक प्रकारके दुःख दे रहे हैं। मुद्गलमुनिको देखकर नरकके जीवोंकी पीड़ा शान्त हो गयी और उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई तथा वे सुखका अनुभव करने लगे। जीवोंको सुखी देखकर मुनिको बहुत आश्चर्य हुआ, उसपर उन्होंने यमराजसे इसका कारण पूछा। यमराजने कहा—'मुने ! आपको देखकर नरकके जीवोंको जो प्रसन्नता हुई है, उसका कारण यह है कि आपने तीन जन्मोंमें विधिवत् जलधेनुका दान किया है, उसीके प्रभावसे आपका दर्शन सबको आह्लादित कर रहा है। जो आपका दर्शन करेंगे, आपका ध्यान करेंगे, आपकी चर्चा सुनेंगे अथवा आप जिन्हें देखेंगे, स्मरण करेंगे उनको भी सुख-शान्ति और आनन्द होगा। जलधेनुका दान करनेवालेको हजारों जन्मोंतक कोई क्लेश नहीं होता। इससे अधिक प्रसन्नतादायक अन्य कोई कर्म नहीं है। मुने ! अब आप मेरे द्वारा अर्घ्य, पाद्य आदि स्वीकार कर अपने धामको जाइये। जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णका आश्रय ग्रहण किया है, वे मेरे द्वारा नियमन करने योग्य नहीं हैं। जो भगवान् श्रीकृष्णका पूजन-व्रत करता है, नित्य उनका ध्यान करता है, उनके कृष्ण, अच्युत, अनन्त, वासुदेव आदि नामोंका निरन्तर उच्चारण करता है, वह इस लोकमें नहीं आता। जो '**अच्युतः प्रीयताम्**' ऐसा कहकर दान देता है, वह मेरे लोकमें नहीं आता। वे भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं और हम सभी उनके आज्ञाकारी हैं। मैं लोकोंका संयमन करता हूँ और मेरा संयमन भगवान् श्रीकृष्ण करते हैं[1]।' यमराजका यह वचन सुनकर अग्नि, शस्त्र आदिसे पीड़ित सब नरकके जीव भगवान्‌की स्तुति करते हुए उनके पवित्र नामोंका स्मरण करने लगे। भगवान् विष्णुका स्मरण करते ही उस पुण्यकर्मके

१-कृष्णस्तु पूजितो यैस्तु ये कृष्णार्थमुपोषिताः। यैश्च नित्यं स्मृतः कृष्णो न ते मद्विषयोपगाः ॥
नमः कृष्णाच्युतानन्त वासुदेवेत्युदीरितम्। यैर्भावभावितैर्विप्र न ते मद्विषयोपगाः ॥
दाने ददद्भिर्यैरुक्तमच्युतः प्रीयतामिति। श्रद्धापुरःसरैर्विप्र न ते मद्विषयोपगाः ॥
स एव नाथः सर्वस्य तन्नियोगकरा वयम्। जनसंयमनश्चाहमस्मत्संयमनो हरिः ॥

(उत्तरपर्व १५३ । ३०—३३)

ऐसे ही 'हरिगुरुवशगोऽस्मि न स्वतन्त्रः, प्रभवति संयमने ममापि विष्णुः' आदि प्रायः पंद्रह श्लोक विष्णुपुराणके यमगीतामें हैं, जो प्रायः प्रतिदिन पठनीय हैं।

प्रभावसे नरककी अग्नि शीतल हो गयी। यमराजके सभी अस्त्र-शस्त्र प्रभावशून्य हो गये, अन्धकार दूर हो गया। सर्वत्र प्रकाश छा गया। यमदूत मूर्च्छित हो गये। शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु बहने लगी। मधुर ध्वनियाँ होने लगीं। पूय और रुधिरकी नदियोंमें उत्तम गङ्गाजल प्रवाहित होने लगा। सभी जीव दुःखसे छूटकर उत्तम वस्त्र, आभूषण, माला आदिसे विभूषित हो गये तथा तीनों पापोंसे मुक्त हो गये। यह अद्भुत दृश्य देखकर धर्मराज उन निष्पाप नारकीय जीवोंका पाद्यादिसे अर्चन करने लगे और इसे भगवान् विष्णुकी महिमा समझकर उनको बार-बार प्रणाम करने लगे।

यमराज इस प्रकार स्तुति कर ही रहे थे कि उनके देखते-ही-देखते नरकके सभी जीव दिव्य विमानोंमें बैठकर स्वर्गमें चले गये। मुद्गल ऋषि भी यह सब चरित्र देखकर अपने धाममें चले आये और भगवान् विष्णुका प्रभाव तथा जलधेनु-दानके माहात्म्यका बार-बार स्मरण करते हुए कहने लगे—

अहो ! भगवान् विष्णुकी माया बड़ी विचित्र और कठिन है, जिससे मोहित होकर प्राणी परमेश्वरको नहीं पहचान पाता। इसी कारण जीव कीट, जूँ, पतङ्ग, वृक्ष, लता, पशु, पक्षी आदि योनियोंमें भ्रमण करते हैं और अपनी मुक्तिके लिये प्रयत्न नहीं करते। यह आश्चर्य है कि मायासे मोहित व्यक्ति अपना हित नहीं पहचान पाता। विष्णुभगवान्‌की माया यद्यपि बड़ी ही विचित्र है, परंतु भगवान्‌का आश्रय ग्रहण करनेपर व्यक्ति उस मायाको दूर कर लेता है। जो व्यक्ति मानव-जन्म पाकर भी भगवान्‌की आराधना नहीं करता, उसका मनुष्यके रूपमें जन्म लेना ही व्यर्थ है। ऐसा कौन अभागा व्यक्ति होगा, जो भगवान्‌की आराधना नहीं करेगा, जबकि भक्तिपूर्वक थोड़ी-सी भी आराधना की जाय तो भगवान् विष्णु इस लोक तथा परलोकमें उसका कल्याण कर देते हैं। भगवान्‌को धन, वस्त्र, आभूषण आदि कुछ भी नहीं चाहिये। उन्हें तो मात्र हृदयकी भक्ति एवं शुद्ध प्रेम चाहिये[1]। इसलिये जीव ! तुम भगवान्‌से दूर क्यों रहते हो ! हजारों जन्मोंके बाद इस कर्मभूमिमें दुर्लभ मानव-रूपमें जन्म लेकर जो व्यक्ति श्रीविष्णुकी आराधना और जलधेनुका दान नहीं करता, उस व्यक्तिका यह जन्म ही व्यर्थ है। वह व्यक्ति मायाके जालमें पड़ा रहता है। मुद्गल ऋषिने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा कि 'मनुष्यो ! मैं पुकार-पुकारकर कहता हूँ कि आपलोगोंको दोनों लोकोंमें कल्याण प्राप्त करनेके लिये श्रीविष्णुभगवान्‌की आराधना और जलधेनुका दान करना चाहिये। नरककी यातना अति दुःखदायिनी है, इसे मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे देखा है। विचार करनेपर यह सत्य ही मालूम पड़ता है कि उस दुःखसे बचनेके लिये भगवान् विष्णुमें अपने मनको लगाना चाहिये, यही श्रेयस्कर उपाय है[2]।'

(अध्याय १५३)

घृतधेनुदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं घृतधेनुदान और घृतधेनु-निर्माणकी विधि बता रहा हूँ, इसे आप प्रेमपूर्वक सुनें। गायके घीसे भरे हुए कलशोंको गायकी आकृतिमें बनाकर उन्हें गन्ध, पुष्प आदिसे अलंकृत कर श्वेत वस्त्रसे भलीभाँति ढँक दे और दोहन-स्थानपर कांस्यकी दोहनी रख दे। पैरोंकी जगहपर ईखके डंडे, खुरकी जगहपर चाँदी, आँखके स्थानपर सोना, सींगोंके स्थानपर अगरुकाष्ठ, दोनों बगलमें सप्तधान्य, गलकम्बलके स्थानपर ऊनी वस्त्र, नासिकाके स्थानपर तुरुष्कदेशीय कपूर, स्तनोंके स्थानपर फल, जिह्वाके स्थानपर शर्करा, मुखके स्थानपर दूधमिश्रित गुड, पूँछकी जगहपर रेशमी वस्त्र तथा रोओंकी जगहपर सफेद (गौर) सरसों और पीठकी जगह ताम्रपात्र स्थापित करे। इस प्रकारसे घृतधेनुकी रचना करे। इसी प्रकार घृतधेनुके पास ही घृतधेनु-वत्सकी भी कल्पना करे। तदनन्तर विधिपूर्वक घृत-

---

१-यो न वित्तर्द्धिविभवैर्न वासोभिर्न भूषणैः। तुष्यते हृदयेनैव कलमीशं न पूजयेत्॥ (उत्तरपर्व १५३। ६५)

२-महर्षि मुद्गलप्रोक्त मुद्गलपुराण सभी उपपुराणोंमें बड़ा है और इनकी धर्मनिष्ठा एवं भक्तिकी विशिष्ट कथा महाभारतके सत्तुप्रस्थीय मुद्गलोपाख्यानमें भी अतीव आकर्षक है। धर्मकी उपेक्षाके कारण मुद्गलपुराण अब प्रायः लुप्त-सा हो रहा है। ऐसे ही गणेशपुराण भी लुप्त-सा हो रहा है। समर्थ व्यक्तियोंको इन दोनोंको प्रकाशित करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

धेनुकी प्रतिष्ठाकर भलीभाँति पूजन करे और इस प्रकार कहे—

आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम्।
आज्यं सुराणामाहारः सर्वमाज्ये प्रतिष्ठितम्॥
त्वं चैवाज्यमयी देवि कल्पितासि मया किल।
सर्वपापापनोदाय सुखाय भव भामिनि॥

(उत्तरपर्व १५४। ८-९)

'घृतको तेजौवर्धक तथा पापापहारी बतलाया गया है। देवताओंका आहार घृत ही है, सभी कुछ घृतमें ही प्रतिष्ठित है, इसलिये घृतमयी देवि ! तुम मेरे द्वारा घृतकुण्डोंमें कल्पित की गयी हो, मेरे पापोंको नष्टकर मुझे आनन्द प्रदान करो।'

ऐसा कहकर दक्षिणासहित घृतधेनुका दान ब्राह्मणको दे दे और कहे कि ब्राह्मणदेवता ! मेरा उपकार करनेके लिये आप इस आज्यमयी धेनुको ग्रहण करें। उस दिन घृतका ही आहार करना चाहिये। इसी विधिसे नवनीत (मक्खन) धेनुका भी दान करना चाहिये। घृतधेनुका दान करनेवाला व्यक्ति उस लोकमें निवास करता है, जहाँ घी और दूधकी नदियाँ बहती हैं। वह व्यक्ति अपने सात पीढ़ीके लोगोंका भी उद्धार कर देता है। ये फल तो सकाम दान देनेवाले व्यक्तियोंके हैं, किंतु जो व्यक्ति निष्कामभावसे घृतधेनुका दान करता है, वह निष्कल्मष होकर परम पदको प्राप्त करता है। घृत सर्वदेवमय है, इसलिये घृतके दानसे सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। (अध्याय १५४)

लवणधेनुदान-विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आप इस प्रकारके दानकी विधिका वर्णन करें, जिसे करनेसे सभी दानोंका फल प्राप्त हो जाय एवं सभी पापोंका नाश हो जाय और सभी मनोरथ सिद्ध हो जायँ तथा व्यक्ति शुद्ध हो जाय।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! सभी दानोंमें लवणधेनुका दान उत्तम है। इससे ब्रह्महत्या, गोहत्या, पितृहत्या, गुरुपत्नीगमन, विश्वासघात, क्रूरता आदि अनेक प्रकारके पापोंका आचरण करनेवाला व्यक्ति मुक्त हो जाता है। वह धन, धान्य, पुत्र, पौत्र एवं सुख प्राप्त कर दीर्घायु होकर इस संसारके सुखको भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त कर लेता है। अब मैं इस लवणधेनुदानकी विधिको बता रहा हूँ—

भूमिको गोबरसे लीपकर उसके ऊपर कुश बिछा दे तथा उसके ऊपर मेषका चर्म बिछा दे। उसपर पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके बैठे। चाहे कोई मनुष्य धनी हो या गरीब प्रायः एक आढ़क अर्थात् चार सेर लवण रखकर उसमें धेनुकी कल्पना करनी चाहिये। सुवर्णमण्डित चन्दनकाष्ठके सींग, चाँदीके खुर, ईखके पैर, फलोंके स्तन, शर्कराकी जिह्वा, चन्दनकी नासिका, सीपके कान, मोतियोंकी आँखोंकी कल्पना कर उसके कपोलमें सत्तुपिण्ड, मुखमें जौ, दोनों पार्श्वोंमें तिल और गेहूँ—इस प्रकार सप्तधान्य उस लवणधेनुके अङ्गोंमें स्थापित करे। इसी प्रकार ताम्रसे पीठ, गुडपिण्डसे अपान-देश, कम्बलसे पूँछका, अंगूरसे चार स्तनोंका, मधुर फलों एवं मधुसे योनि-देशकी रचना करनी चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त सामग्रियोंसे लवण-धेनुकी रचनाकर सेरभर नमकके मानसे उसके वत्सकी कल्पना करे। धेनु तथा बछड़ेको वस्त्र-आभूषण आदिसे अलंकृत करे। तदनन्तर स्वयं स्नान कर देवताओं और ब्राह्मणकी पूजा करे। स्त्री-पुत्रके साथ गायकी पूजा एवं प्रदक्षिणा करे और इस मन्त्रको पढ़कर नमस्कार करे—

लवणे वै रसाः सर्वे लवणे सर्वदेवताः।
सर्वदेवमये देवि लवणाख्ये नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व १५५। १८)

'लवणमें सभी रस निहित हैं। सभी देवताओंका निवास लवणमें रहता है, इसलिये सर्वदेवमयी लवणधेनु ! आपको मेरा नमस्कार है।'

अनन्तर दक्षिणाके साथ वह धेनु ब्राह्मणको समर्पित कर दे। राजन्! लवणधेनुका दान करनेसे सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा और सभी यज्ञों तथा दानोंका भी फल प्राप्त हो जाता है। इस विधिसे जो व्यक्ति रसमयी लवणधेनुका दान करता है, उसे सौभाग्य, सुख, आरोग्य, सम्पत्ति, धन-धान्यकी प्राप्ति होती है तथा वह प्रलयपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है।

(अध्याय १५५)

सुवर्णधेनुदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं सुवर्णधेनुदानकी विधि बता रहा हूँ, जिससे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। पचास पल (प्रायः तीन किलो), पचीस पल अथवा जितनी भी सामर्थ्य हो उस मानमें शुद्ध सुवर्णसे रत्नजटित सुन्दर कपिला सुवर्णधेनुकी रचना करनी चाहिये। उसके चतुर्थांशसे उसका वत्स बनाये। गलेमें चाँदीकी घंटी लगाये, रेशमी वस्त्र ओढ़ाये, इसी प्रकार हीरेके दाँत, वैदूर्यका गलकम्बल, ताँबेके सींग, मोतीकी आँखें और मूँगेकी जीभ बनाये। कृष्णमृगचर्मके ऊपर एक प्रस्थ गुड़ रखकर उसके ऊपर सुवर्णधेनुको स्थापित करे। अनेक प्रकारके फलयुक्त आठ कलश, अठारह प्रकारके धान्य, छाता, जूता, आसन, भोजन-सामग्री, ताँबेका दोहनपात्र, दीपक, लवण, शर्करा आदि स्थापित करे। तदनन्तर स्नान कर सुवर्णधेनुकी प्रदक्षिणा कर उसकी भलीभाँति पूजा करे। पूजनके अनन्तर प्रार्थनापूर्वक उस सुवर्णधेनुको दक्षिणा तथा सभी उपस्करोंके साथ ब्राह्मणको दान करे।

राजन् ! गौके जिस अङ्गमें जो देवता, मनु एवं तीर्थ निवास करते हैं वे इस प्रकार हैं[1]—नेत्रोंमें सूर्य और चन्द्रमा, जिह्वामें सरस्वती, दाँतोंमें मरुद्गण, कानोंमें अश्विनीकुमार, सींगके अग्रभागमें रुद्र और ब्रह्मा, ककुद्में गन्धर्व और अप्सराएँ, कुक्षिमें चारों समुद्र, योनिमें गङ्गा, रोमकूपोंमें ऋषिगण, अपानदेशमें पृथ्वी, आँतोंमें नाग, अस्थियोंमें पर्वत, पैरोंमें चतुर्विध पुरुषार्थ, हुंकारमें चारों वेद, कण्ठमें रुद्र, पृष्ठभागमें मेरु और समस्त शरीरमें भगवान् विष्णु निवास करते हैं। इस प्रकार यह सुवर्णधेनु सर्वदेवमयी और परम पवित्र है।

जो व्यक्ति सुवर्णधेनुका दान करता है, वह मानो सभी प्रकारके दान कर लेता है। इस कर्मभूमिमें यह दान बहुत दुर्लभ है। इसलिये प्रयत्नपूर्वक काञ्चनधेनुका दान करना चाहिये। इससे संसारसे उद्धार हो जाता है और कीर्ति तथा शान्तिकी प्राप्ति होती है तथा उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और अन्तमें उसे शिवलोककी प्राप्ति होती है।

(अध्याय १५६)

रत्नधेनुदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! अब मैं गोलोक प्राप्त करानेवाले अत्युत्तम रत्नधेनु-दानकी विधि बता रहा हूँ। किसी पुण्य दिनमें भूमिको पवित्र गोबरसे लीपकर उसमें धेनुकी कल्पना करे। पृथ्वीपर कृष्णमृगचर्म बिछाकर उसपर एक द्रोण लवण रखकर उसके ऊपर विधिपूर्वक संकल्पसहित रत्नमयी धेनु स्थापित करे। बुद्धिमान् पुरुष उसके मुखमें इक्यासी पद्मरागमणि तथा चरणोंमें पुष्पराग स्थापित करे। उस गौके ललाटपर सोनेका तिलक, उसकी दोनों आँखोंमें सौ मोती, दोनों भौंहोंपर सौ मूँगा और दोनों कानोंकी जगह दो सीपें लगाये। उसके सींग सोनेके होने चाहिये। सिरकी जगह सौ हीरोंको स्थापित करना चाहिये। कण्ठ और नेत्र-पलकोंमें सौ गोमेदक, पृष्ठभागमें सौ इन्द्रनील (नीलम), दोनों पार्श्वस्थानोंमें सौ वैदूर्य (बिल्लौर), उदरपर स्फटिक तथा कटिदेशपर सौ सौगन्धिक (माणिक-लाल) मणि रखना चाहिये। खुरोंको स्वर्णमय, पूँछको मुक्ता (मोतियों) की लड़ियोंसे युक्त कर तथा दोनों नाकोंकी सूर्यकान्त तथा चन्द्रकान्त मणियोंसे रचना कर कर्पूर और चन्दनसे चर्चित करे[2]। रोमोंको केसर और नाभिको चाँदीसे बनवाये। गुदामें सौ लाल मणियोंको लगाना चाहिये।

१-नेत्रयोः सूर्यशशिनौ जिह्वायां तु सरस्वती। दन्तेषु मरुतो देवाः कर्णयोश्च तथाश्विनौ॥
शृङ्गाग्रगौ सदा चास्या देवौ रुद्रपितामहौ। गन्धर्वाप्सरसश्चैव ककुद्देशे प्रतिष्ठिताः।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारो योनौ त्रिपथगामिनी॥
ऋषयो रोमकूपेषु अपाने वसुधा स्थिता। अन्त्रेषु नागा विज्ञेयाः पर्वताश्चास्थिषु स्थिताः॥
धर्मकामार्थमोक्षास्तु पादेषु परिसंस्थिताः। हुंकारे च चतुर्वेदाः कण्ठे रुद्राः प्रतिष्ठिताः॥
पृष्ठभागे स्थितो मेरुर्विष्णुः सर्वशरीरगः। एवं सर्वमयी देवी पावनी विश्वरूपिणी॥ (उत्तरपर्व १५६। १६—२०)

२-इतने बहुमूल्य रत्नोंका दान करनेके उल्लेखसे लोभ, धूर्तता या असम्भावनाकी कल्पनाकर चकित नहीं होना चाहिये, क्योंकि पूर्ण

अन्य रत्नोंको संधिभागोंपर लगाना चाहिये। जीभको शक्करसे, गोबरको गुड़से और गोमूत्रको घीसे बनाना चाहिये। दही-दूध प्रत्यक्ष ही रखे। पूँछके अग्रभागपर चमर तथा स्तनोंके पास ताँबेकी दोहनी रखनी चाहिये।

इसी प्रकार गौके चतुर्थांशसे बछड़ा बनाना चाहिये। इसके बाद धेनुको आमन्त्रित करे। उस समय गुड़धेनुकी तरह आवाहन कर यह कहना चाहिये—'देवि! चूँकि रुद्र, इन्द्र, चन्द्रमा, ब्रह्मा, विष्णु—ये सभी तुम्हें देवताओंका निवासस्थान मानते हैं तथा समस्त त्रिभुवन तुम्हारे ही शरीरमें व्याप्त है, अतः तुम भवसागरसे पीड़ित मेरा शीघ्र ही उद्धार करो।' इस प्रकार आमन्त्रित करनेके बाद गौकी पूजा तथा परिक्रमा कर भक्तिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम करके उस रत्नधेनुका दान ब्राह्मणको दक्षिणाके साथ करे, अन्तमें क्षमा-प्रार्थना करे। इस प्रकार सम्पूर्ण विधियोंको जाननेवाला जो पुरुष इस रत्नधेनुका दान करता है, वह शिवलोक (कैलास या सुमेरुस्थित दिव्य शिवधाम) को प्राप्त करता है तथा पुनः बहुत समयके बाद इस पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा होता है और उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। (अध्याय १५७)

उभयमुखी धेनु-दानका माहात्म्य

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—प्रभो! उभयमुखी अर्थात् प्रसवके समयमें गौका दान किस प्रकार करना चाहिये और उसके दानका क्या फल है। इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! उभयमुखी गौ-दानका संयोग बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है। जबतक बछड़ेके पैर प्रसवके समय भीतर हों और केवल सिर बाहर दिखलायी दे उस समय वह गौ मानो साक्षात् सप्तद्वीपवती पृथ्वी है[1]। ऐसी उभयमुखी गौके दानके फलका वर्णन शक्य नहीं। यज्ञ और दान करनेसे जो फल प्राप्त नहीं होता, वह फल केवल उभयमुखी-धेनुके दानसे ही प्राप्त हो जाता है और दाताका उद्धार हो जाता है। सींगोंको स्वर्णसे, खुरोंको चाँदीसे तथा पूँछको मोतीकी मालाओंसे अलंकृतकर जो उभयमुखी धेनुका दान करता है, वह गौ और बछड़ेके शरीरमें जितने रोम हैं, उतने ही हजार वर्षतक स्वर्गमें पूजित होता है तथा अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। जो व्यक्ति सुवर्णसहित उभयमुखी धेनुका दान करता है, उसके लिये गोलोक और ब्रह्मलोक सुलभ हो जाता है। दुर्बल, अङ्गहीन गौ और दक्षिणासे रहित दान नहीं करना चाहिये। (अध्याय १५८)

गोसहस्रदान-विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन! आप गोसहस्र-दानका विधान बतायें। यह किस समय किस विधिसे किया जाता है।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रजेश्वर! गौएँ सम्पूर्ण संसारमें पवित्र हैं और गौएँ ही उत्तम आश्रयस्थान हैं। संसारकी आजीविकाके लिये ब्रह्माजीने इनकी सृष्टि की है। तीनों लोकोंके हितकी कामनासे गौकी सृष्टि प्रथम की गयी है। इनके मूत्र और पुरीषसे देवमन्दिर भी पवित्र हो जाते हैं औरोंके लिये तो कहना ही क्या[2]! गौएँ काम्य यज्ञोंकी मूलाधार हैं, इनमें सभी देवताओंका निवास है। गोमयमें साक्षात् लक्ष्मीका निवास है। ब्राह्मण और गौ—दोनों एक ही कुलके दो रूप हैं। एकमें मन्त्र अधिष्ठित हैं और एकमें हविष्य-पदार्थ। इन्हीं गौओंके पुत्रोंके द्वारा सारे संसार और देवताओंका भरण-पोषण होता है। राजन्! आप ऐसी विशिष्ट गुणमयी गौके दानका विधान सुनें। एकमात्र सर्वगुण तथा सर्वलक्षण-सम्पन्न गौका दान करनेपर समस्त कुटुम्ब तर जाता है, फिर यदि अधिक गौएँ दानमें दी जायँ तो उनके माहात्म्यके विषयमें क्या कहा जाय?

धर्माचरण, देवाराधन और ईमानदारी तथा परस्पर उपकारकी भावनासे भारत ऐसा ही समृद्ध था कि कोई वस्तु दाम लेकर नहीं बेची जाती थी। इस बातको 'कल्याण'के 'हिन्दू संस्कृति-अङ्क' से लेकर १९६८ के कई साधारण अङ्कोंमें बार-बार प्रमाणोंद्वारा सिद्ध किया गया है।

१-अन्य पुराणोंमें भी इसका महत्त्व आया है और इसकी परिक्रमासे सप्तद्वीपवती पृथ्वीकी परिक्रमाका पुण्य बतलाया गया है।

२-यासां मूत्रपुरीषेण देवतायतनान्यपि। शुचीनि समजायन्त किं भूतमधिकं ततः॥ (उत्तरपर्व १५९। ३)

प्राचीन कालमें महाराज नहुष और महामति ययातिने भी सहस्रों गौओंका दान किया था, जिसके प्रभावसे वे ब्रह्म-स्थानको प्राप्त हो गये। पुत्रकी कामनासे देवी अदितिने भी गङ्गाजीके तटपर अपार गोदान किया था, जिसके फलस्वरूप उन्होंने तीनों लोकोंके स्वामी नारायण (भगवान् वामन—उपेन्द्र) को पुत्ररूपमें प्राप्त किया।

राजन्! ऐसा सुना जाता है कि पितृगण इस प्रकारकी गाथा गाते हैं—क्या मेरे कुलमें ऐसा कोई पुण्यात्मा पुत्र होगा, जो सहस्रों गौओंका दान करेगा, जिसके पुण्यकर्मसे हम सब परमसिद्धिको प्राप्त कर सकेंगे, अथवा हमारे कुलमें सहस्रों गोदान करनेवाली कोई दुहिता (कन्या) होगी जो अपने पुण्य-कर्मके आधारपर मेरे लिये मोक्षकी सीढ़ी तैयार कर देगी[१]।

राजन्! अब मैं शास्त्रोक्त सार्वकामिक गोसहस्रदानरूप यज्ञकी विधि बता रहा हूँ। दाता किसी तीर्थस्थान अथवा गोष्ठ या अपने घरपर ही दस या बारह हाथका लंबा-चौड़ा एक सुन्दर मण्डप बनवाये। उसमें तोरण लगाये जायँ। उसके चारों दिशाओंमें चार दरवाजे लगाये जायँ। मण्डपके मध्यमें चार हाथकी एक सुन्दर वेदी बनाये। इस वेदीके पूर्वोत्तर-दिशा (ईशानकोण)में एक हाथके प्रमाणकी ग्रहवेदीका निर्माण करे। ग्रहयज्ञके विधानसे उसपर क्रमसे ग्रहोंकी स्थापना करे। सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रकी अर्चना करनी चाहिये। यज्ञके लिये ऋत्विजोंका वरण, पुनः वेदीके पूर्वोत्तर-भागमें एक शिव कुण्डका निर्माण कर द्वार-प्रदेशमें पल्लवोंसे सुशोभित दो-दो कलशोंकी स्थापना करनी चाहिये और उनमें पञ्चरत्न डाल देना चाहिये। तदनन्तर हवन करना चाहिये। तुलापुरुषदानके समान इसमें भी लोकपालोंके निमित्त बलि-नैवेद्य प्रदान करना चाहिये। सहस्रों गौओंमेंसे सवत्सा दस गौओंको अलग कर उन्हें वस्त्र और माला आदिसे खूब अलंकृत कर ले। इन दसों गौओंके मध्य जाकर विधिपूर्वक सबकी पूजा करे। इनके गलेमें सोनेकी घंटी, ताँबेके दोहनपात्र, खुरोंमें चाँदी और मस्तकको सुवर्ण-तिलकसे अलंकृत कर सींगोंमें भी सोना लगा दे। गोमाताके चतुर्दिक् चमर डुलाना चाहिये। इसी प्रसंगमें मुनियोंने सुवर्णमय नन्दिकेश्वर (वृषभ) को लवणके ऊपर रखकर अथवा प्रत्यक्ष वृषभके भी दानका विधान बतलाया है। इस प्रकार दस-दस गौके क्रमसे गोसहस्र या गोशत दान करना चाहिये। यदि संख्यामें सम्पूर्ण गौएँ उपलब्ध न हो सकें तो दस गौओंकी पूजाकर शेष गौओंकी परिकल्पना कर उनका दान करना चाहिये[२]।

तदनन्तर पुण्यकाल आनेपर गीत एवं माङ्गलिक शब्दोंके साथ वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नान कराया हुआ यजमान अञ्जलिमें पुष्प लेकर इस प्रकार उच्चारण करे—'विश्वमूर्तिस्वरूप विश्वमाताओंको नमस्कार है। लोकोंको धारण करनेवाली रोहिणीरूप गौओंको बारंबार प्रणाम है। गौओंके अङ्गोंमें इक्कीसों भुवन तथा ब्रह्मादि देवताओंका निवास है, वे रोहिणीस्वरूपा[३] माताएँ मेरी रक्षा करें। गौएँ मेरे अग्रभागमें रहें, गौएँ मेरे पृष्ठभागमें रहें, गौएँ नित्य मेरे चारों ओर वर्तमान रहें और मैं गौओंके मध्यमें निवास करूँ[४]। चूँकि तुम्हीं वृषरूपसे सनातन धर्म और भगवान् शिवके वाहन हो, अतः मेरी रक्षा करो!' इस प्रकार आमन्त्रित कर बुद्धिमान् यजमान सभी सामग्रियोंके साथ एक गौ और नन्दिकेश्वरको गुरुको दान कर दे तथा उन दसों गौमेंसे एक-एक तथा हजार गौओंमेंसे एक-एक सौ, पचास-पचास अथवा बीस-बीस गौ प्रत्येक ऋत्विजको समर्पित कर दे। तत्पश्चात् उनकी आज्ञासे अन्य ब्राह्मणोंको दस-दस या पाँच-पाँच गौएँ देनी चाहिये। एक ही गाय बहुतोंको नहीं देनी चाहिये, क्योंकि वह दोषप्रदायिनी हो जाती है। बुद्धिमान् यजमानको आरोग्यवृद्धिके लिये एक-एकको अनेक

१-दुहिता वा कुले कश्चिद् गोसहस्रप्रदायिनी। सोपानः सुगतिर्दत्तो भविष्यति न संशयः॥ (उत्तरपर्व १५९।१४)

२-भविष्यपुराणमें बार-बार गौओंकी अपार महिमा और गोसहस्र-दान आदिकी विधिका निर्देश यही सूचित करता है कि भारत गो-भक्त देश था और यहाँ दूध-दहीकी सचमुच नदियाँ बहती थीं। कृष्णके व्रजमें गो-चारणकी कथा और वहाँकी अद्भुत गो-सम्पत्तिकी कथा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। आज जो भारत कंगाल-सा बन गया है तथा रत्नदान, सुवर्णशृङ्गी सहस्र गोदान आदिकी बातें कल्पना-सी लगती होंगी, वह सब शास्त्रोंकी उपेक्षा और गो-भक्ति-शून्यताका ही परिणाम है।

३-वाजसने० ८।४१ आदिमें बार-बार रोहिणीरूपा गौओंको कामधेनु एवं सुरभिरूपा कहा गया है। रोहिणी गौ प्रायः लाल वर्णकी होती है।

४-गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः। गावो मे सर्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥ (उत्तरपर्व १५९।३३)

गौएँ देनी चाहिये। इस प्रकार एक हजार गोदान करनेवाला यजमान एक दिनके लिये पुनः पयोव्रत करे और इस महादानका अनुकीर्तन स्वयं सुनाये अथवा सुने।

यदि उसे विपुल समृद्धिकी इच्छा हो तो उस दिन ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना चाहिये। इस विधिसे जो मनुष्य एक हजार गौओंका दान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सिद्धों एवं चारणोंद्वारा सेवित होता है। वह क्षुद्र घंटियोंसे सुशोभित सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर आरूढ़ होकर सभी लोकपालोंके लोकोंमें देवताओंद्वारा पूजित होता है। इस गोसहस्र-दानसे पुरुष अपने इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। गोदानमें गौ, पात्र, काल एवं विधिका विशेषरूपसे विचार करना चाहिये। (अध्याय १५९)

वृषभदानकी महिमा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—जनार्दन! आपकी अमृतमयी वाणीसे मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, मेरे हृदयमें एक कौतूहल है। तीनों लोकोंमें यह प्रसिद्धि है कि गौओंका स्वामी—गोपति (वृषभ) गोविन्दस्वरूप है, अतः प्रभो! ऐसे महनीय वृषभ-दानका फल बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! सुनिये, यह वृषभ-दान पवित्रोंमें पवित्रतम और दानोंमें सबसे उत्तम दान है। एक स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट वृषभके दानका फल दस धेनुओंके दानसे अधिक है। हृष्ट-पुष्ट, युवा, सुन्दर, सुशील, रूपवान् और ककुद्मान् एक ही शुभ लक्षणसम्पन्न वृषके दानसे उस दान करनेवाले व्यक्तिके सभी कुलोंका उद्धार हो जाता है। पुण्यपर्वके दिन वृषभकी पूँछमें चाँदी लगाकर तथा भलीभाँति उसे अलंकृत कर दे, तदनन्तर दक्षिणाके साथ उस वृषका दान ब्राह्मणको देकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः।
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन॥

(उत्तरपर्व १६०।९)

इस विधिसे वृषभ-दान करनेवाले व्यक्तिके सात जन्म पहलेके किये गये समस्त पाप इसके प्रभावसे उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं और अन्तमें वह व्यक्ति वृषभयुक्त कामचारी दिव्य विमानमें बैठकर स्वर्गलोकमें चला जाता है। महीपते! उस वृषके शरीरमें जितने रोम हैं, उतने हजार वर्षतक वह गोलोकमें पूजित होता है, इसके बाद गोलोकसे अवतीर्ण होकर इस लोकमें उत्तम कुलीन ब्राह्मणके घरमें जन्म लेता है। वह व्यक्ति यज्ञ करनेवाला, महान् तेजस्वी और सभी ब्राह्मणोंद्वारा पूजित होता है। महाराज! आपने जो यह पूछा कि यह उत्तम वृषदान किसे करना चाहिये, उसके विषयमें मैं बतला रहा हूँ। जो ब्राह्मण शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, वेदवेत्ता, अहिंसक और प्रतिग्रहसे डरनेवाला, मनुष्योंका उद्धार करनेमें समर्थ तथा गृहस्थ हो। उसे दृढ़, पुष्ट, बलवान्, भार-वहन करनेमें समर्थ और सब गुणोंसे युक्त उत्तम वृष प्रदान करना चाहिये। इस प्रकारसे एक वृषभका दान दस धेनु-दानसे भी अधिक फलप्रद है।

(अध्याय १६०)

कपिलादानकी महिमा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—जगत्पते! अब आप कपिला-दानका माहात्म्य बतलानेकी कृपा करें, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाला एवं दानोंमें परम पुण्यप्रद है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महामते! इस सम्बन्धमें प्राचीन कालमें विनताश्वने भगवान् वाराह एवं धरणीदेवीके जिस संवादको मुझे बताया था उसे आप सुनें। धरणीदेवीके पूछनेपर भगवान् वाराहने कहा कि 'भद्रे! कपिला गौके दान करनेसे सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है तथा यह परम पवित्र है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने सम्पूर्ण तेजोंका सार एकत्र कर यज्ञोंमें अग्निहोत्रकी सम्पन्नताके लिये कपिला गौकी रचना की थी। कपिला गौ पवित्रोंको पवित्र करनेवाली, मङ्गलोंका मङ्गल तथा परम पूज्यमयी है। तप इसीका रूप है, व्रतोंमें यह उत्तम व्रत, दानोंमें उत्तम दान तथा निधियोंमें यह अक्षय निधि है। पृथ्वीमें गुप्त रूपसे या प्रकट रूपसे जितने पवित्र तीर्थ हैं एवं सम्पूर्ण लोकोंमें द्विजातियोंद्वारा सायंकाल और प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि हवनकी जो भी क्रियाएँ हैं, वे सभी कपिला गायके घृत, क्षीर तथा दहीसे होती हैं। भामिनि! कपिलाके सिर और ग्रीवामें सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल

उठकर उसके गले एवं मस्तकके गिरे हुए जलको श्रद्धापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करता है, वह पवित्र हो जाता है और उसी क्षण उसके पाप भस्म हो जाते हैं। प्रातःकाल उठकर जिसने कपिला गौकी प्रदक्षिणा की, उसने मानो सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर ली। वसुन्धरे ! कपिला गौकी एक प्रदक्षिणा करनेपर भी दस जन्मके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। पवित्र व्रतके आचरण करनेवाले पुरुषको कपिला गौके मूत्रसे स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मानो गङ्गा आदि सभी तीर्थोंमें स्नान कर चुका। भक्तिपूर्वक एक बार कपिलाके गोमूत्रसे स्नान करनेपर मनुष्यके जीवनभरके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। एक हजार गौके दानका फल एक कपिला गौके दानके समान है। गौओंकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। गौके दूध-दही, घृत, गोमूत्र, गोमय आदिको अपवित्र नहीं करना चाहिये। गौओंके शरीरको खुजलाना और उनकी सेवा करना परम श्रेष्ठ धर्म माना गया है। गौके भय एवं रोगकी स्थितिमें उसकी भलीभाँति सेवा करनी चाहिये। जो गौओंके चरनेके लिये हरी-भरी गोचरभूमिका दान करता है, वह दिव्य स्वर्गवासका फल प्राप्त करता है। साक्षात् ब्रह्माजीने कपिला गौके दस भेद बतलाये हैं। इस कपिला गौका जो श्रोत्रिय ब्राह्मणको दान करता है वह अप्सराओंसे अलंकृत दिव्य विमानपर प्रतिष्ठित होकर स्वर्ग जाता है। सोनेके समान रंगवाली कपिला प्रथम श्रेणीकी है और गौर पिङ्गलवर्णवाली द्वितीय श्रेणीकी। तीसरी लाल-पीले नेत्रवाली, चौथी अग्निके समान नेत्रवाली, पाँचवीं जुहूके समान वर्णवाली, छठी घीके समान पिङ्गलवर्णवाली, सातवीं उजली-पीली, आठवीं दुग्धवर्णके समान पीली, नवीं पाटलवर्णवाली तथा दसवीं पीले पूँछवाली[1]। ये सभी कपिलाएँ संसार-सागरसे उद्धार कर देती हैं, इसमें संशय नहीं। जो शूद्र होकर कपिलाका दान लेता है और उसका दूध पीता है, वह पतित होकर चंडाल हो जाता है और अन्तमें नरकमें जाता है। इसलिये किसी ब्राह्मणेतरको कपिलाका दान नहीं लेना चाहिये। श्रोत्रिय, धनहीन, सदाचारी तथा अग्निहोत्री ब्राह्मणको एक कपिला गौका दान करनेसे दाता सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।

गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि दान देनेके लिये जल्दी ही प्रसव करनेवाली धेनुका पालन करे। जिस समय वह कपिला धेनु आधा प्रसव करनेकी स्थितिमें हो जाय, उसी समय उसे ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये। जब उत्पन्न होनेवाले बछड़ेका मुख योनिके बाहर दीखने लगे और शेष अङ्ग अभी भीतर ही रहें, अर्थात् अभी पूरे गर्भका उसने मोचन (बाहर) नहीं किया, तबतक वह धेनु सम्पूर्ण पृथ्वीके समान मानी जाती है। वसुन्धरे ! ऐसी गायका दान करनेवाले पुरुष ब्रह्मवादियोंसे सुपूजित होकर ब्रह्मलोकमें उतने करोड़ वर्षोंतक निवास करते हैं, जितनी कि धेनु और बछड़ेके रोमोंकी संख्याएँ होती हैं। सोनेसे सींग तथा चाँदीसे खुरको सम्पन्न करके कपिला गौका दान करते समय उस धेनुका पुच्छ ब्राह्मणके हाथपर रख दे। हाथपर जल लेकर शुद्ध वाणीमें ब्राह्मणसे संकल्प पढ़वावे। जो पुरुष इस प्रकार (उभयमुखी गौका) दान करता है, उसने मानो समुद्रसे घिरी तथा पर्वतों,वनों एवं रत्नोंसे परिपूर्ण समूची पृथ्वीका दान कर दिया—इसमें कोई संशय नहीं। ऐसा मनुष्य इस दानसे निश्चय ही पृथ्वी-दानके तुल्य फलका भागी होता है। वह अपने पितरोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक भगवान् विष्णुके परम धाममें पहुँच जाता है। ब्राह्मणका धन छीननेवाला, गोघाती अथवा गर्भपात करानेवाला, दूसरोंको ठगनेवाला, वेदनिन्दक, नास्तिक, ब्राह्मणोंका निन्दक और सत्कर्ममें दोषदृष्टि रखनेवाला महान् पापी समझा जाता है। किंतु ऐसा घोर पापी भी बहुतसे सुवर्णोंसे युक्त उभयमुखी कपिलाके दानसे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। दाताको चाहिये कि उस दिन खीरका भोजन करे अथवा दूधके ही सहारे रहे।

जो इस प्रकार उभयमुखी कपिला गौका दान करता है वह सम्पूर्ण पृथ्वीके दानका फल प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर समाहितचित्तसे तीन बार भक्तिपूर्वक इस कल्प—'गोदान-विधान'को पढ़ता है, उसके वर्षभरके किये हुए पाप उसी क्षण इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे वायुके झोंकेसे धूलके समूह। जो पुरुष श्राद्धके अवसरपर इस परम पावन प्रसङ्गका पाठ करता है, उस बुद्धिमान् पुरुषके अन्तरमें दिव्य संस्कार भर जाते हैं और पितर उसकी वस्तुओंको बड़े

१-कपिलाके भेदों एवं उनकी अपार महिमाका वर्णन महाभारतके वैष्णवधर्मपर्वमें हुआ है, जो आश्वमेधिक पर्वका अन्तिम भाग है। पाणिनि-व्याकरण (५।२।९७) के गणपाठके अनुसार कपि अर्थात् बन्दरके समान वर्णवाली गायको कपिला कहते हैं।

प्रेमसे ग्रहण करते हैं। जो अमावास्याको ब्राह्मणोंके सम्मुख इसका पाठ करता है, उसके पितर सौ वर्षके लिये तृप्त हो जाते हैं। जो पुरुष मन लगाकर निरन्तर इसका श्रवण करता है, उसके सौ वर्षोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। (अध्याय १६१)

महिषी एवं मेषी-दानकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं पापनाशक, पुण्यप्रद तथा आयु और सुखप्रदायक महिषीके दानकी विधि बता रहा हूँ। सूर्य-चन्द्रग्रहण, कार्तिक-पूर्णिमा, अयनसंक्रान्ति, शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी आदि पर्व-दिनोंमें अथवा जब भी सामर्थ्य हो, उसी समय सांसारिक दुःखकी निवृत्तिके लिये महिषी-दान करना चाहिये। शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा अलंकृत महिषी उत्तम विद्वान् ब्राह्मणको देनी चाहिये। दान देनेके समय इस मन्त्रको पढ़ना चाहिये—

इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा।
महिषीदानमाहात्म्यात् सास्तु मे सर्वकामदा॥
धर्मराजस्य साहाय्ये यस्य पुत्रः प्रतिष्ठितः।
महिषासुरस्य जननी या सास्तु वरदा मम॥

(उत्तरपर्व १६२।९-१०)

'जो इन्द्रादि लोकपालोंकी कल्याणकारिणी राजमहिषी है और धर्मराजकी सहायता करनेके लिये जिसका पुत्र (महिष) उनका वाहन बना हुआ है तथा जो महिषासुरकी जननी है, वह मेरे लिये वरदायिनी हो। इस महिषी-दानसे मेरी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जायँ।'

प्रदक्षिणाके पश्चात् पृष्ठ-भागसे महिषीका दान करना चाहिये। वस्त्र, आभूषण और दक्षिणाके साथ महिषी ब्राह्मणको देकर विसर्जन करना चाहिये। इस विधिसे जो व्यक्ति महिषीका दान करता है, वह इस लोक तथा परलोकमें वाञ्छित फल प्राप्त करता है।

महाराज! इसी प्रकार मेषी-दान भी सभी पापोंको दूर करनेवाला है। एक सुवर्णमयी मेषीकी प्रतिमा बनाकर उसे उत्तम भूषण, रेशमी वस्त्र, चन्दन, पुष्पमाला आदिसे अलंकृतकर अथवा प्रत्यक्ष मेषीको अलंकृतकर उसका दान करना चाहिये। ग्रहण, विषुवयोग, अयनसंक्रान्ति आदि पवित्र दिनोंमें, दुःस्वप्न देखनेपर, अमावास्यामें अथवा जब भी श्रद्धा हो तब इसका दान करना चाहिये। दानके समय शिव-पार्वती, ब्रह्मा-गायत्री, लक्ष्मी-नारायण तथा रति-कामदेवकी पूजा करनी चाहिये, साथ ही लोकपालों और ग्रहोंकी भी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर हवन करना चाहिये। ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। पूजनके बाद मेषीकी प्रतिमाको तिलके कलशपर स्थापित कर उसके सामने नमक रखकर विधिपूर्वक पूजन करे और गृहस्थ ब्राह्मणको उसका दान कर दे। इस दानके प्रभावसे निःसंतानको पुत्र और निर्धनको धन प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति इस दानकी विधिको सुनता है, वह भी अहोरात्रमें किये गये पापोंसे छूट जाता है।

(अध्याय १६२-१६३)

भूमिदानकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! अब मैं सभी पापोंको दूर करनेवाले भूमिदानकी विधि बतला रहा हूँ। जो अग्निहोत्री, दरिद्र-कुटुम्बी तथा वैदिक ब्राह्मणको दक्षिणासहित भूमिका दान करता है, वह बहुत समयतक ऐश्वर्यका भोगकर अन्तमें दिव्य विमानमें बैठकर विष्णुलोकको जाता है। जबतक उसके द्वारा प्रदत्त भूमिपर अंकुर उपजते रहते हैं, तबतक भूमिदाता विष्णुलोकमें पूजित होता है। भूमिदानके अतिरिक्त और कोई भी दान विशिष्ट नहीं माना गया है। पुरुषर्षभ! अन्य दान कालक्रमसे क्षीण हो जाते हैं, परंतु भूमिदानका पुण्य क्षीण नहीं होता। जो व्यक्ति सस्यसम्पन्न भूमिका दान करता है, वह जबतक भगवान् सूर्य रहेंगे, तबतक सूर्यलोकमें वह पूजित होता रहेगा। धन-धान्य, सुवर्ण, रत्न, आभूषण आदि सब दान करनेका फल भूमिदान करनेवाला प्राप्त कर लेता है। जिसने भूमिदान किया, उसने मानो समुद्र, नदी, पर्वत, सम-विषम स्थल, गन्ध, रस, क्षीरयुक्त ओषधि, पुष्प, फल, कमल, उत्पल आदि सब कुछ दान कर दिया। दक्षिणासे युक्त अग्निष्टोम आदि यज्ञ करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य भूमिदान करनेसे प्राप्त हो जाता है। ब्राह्मणको भूमिदान देकर पुनः उससे वापस नहीं लेना चाहिये। सस्यसम्पन्न भूमिका दान करनेवाले व्यक्तिके पितर

प्रलयपर्यन्त संतुष्ट रहते हैं। अपनी आजीविकाके निमित्त जो पाप पुरुषसे होता है, वे सारे पाप गोचर्म-मात्र[1] भूमिके दान करनेसे दूर हो जाते हैं। एक हजार स्वर्ण मुद्राके दानसे जो फल बतलाया गया है, वही फल गोचर्म-प्रमाणमें भूमिका दान देनेसे प्राप्त हो जाता है। नरोत्तम! हजारों कपिला गौओंके दान करनेके समान पुण्य गोचर्म-मात्र भूमि देनेसे प्राप्त होता है। सगर आदि अनेक राजाओंने भूमिका उपयोग किया है, परंतु अपने-अपने आधिपत्यमें जिसने भी भूमिका दान किया, सभीको उसका फल प्राप्त हुआ। यमदूत, मृत्युदण्ड, असिपत्रवन, वरुणके घोर पाश और रौरवादि अनेक नरक और उनकी दारुण यातनाएँ भूमिदान करनेवालेके समीप नहीं आतीं। चित्रगुप्त, मृत्यु, काल, यम आदि सब भूमिदाताकी पूजा करते हैं। राजन्! भगवान् रुद्र, प्रजापति, इन्द्रादि देवता और असुरगण भूमिका दान करनेवालेकी पूजा करते हैं, स्वयं मैं भी उसकी अतीव प्रसन्नतासे पूजा करता हूँ। जिस भाँति माता अपनी संतानका और गौ जैसे अपने वत्सका दूध आदिके द्वारा पालन करती है, उसी प्रकार रसमयी भूमि भी भूमि देनेवालेकी रक्षा और पालन-पोषण करती है। जिस प्रकार जलके सेचनसे बीज अंकुरित होते हैं, उसी प्रकार भूमिदानसे सब मनोरथ अंकुरित होकर सफल सिद्ध होते हैं। जिस प्रकार सूर्यके उदय होते ही उनके प्रकाशसे अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार भूमिके दानसे सभी प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं।

भूमिको दान देकर वापस लेनेवालेको यमदूत वारुण पाशोंसे बाँधकर पूय तथा शोणितसे भरे कुण्डोंमें डालते हैं। अपने द्वारा दी गयी अथवा दूसरे व्यक्तिके द्वारा दी गयी भूमिका जो व्यक्ति अपहरण करता है, वह प्रलयपर्यन्त नरकाग्निमें जलता रहता है। दानमें प्राप्त भूमिके हरण हो जानेपर दुःखित व्यक्तिके रोने-कलपनेसे जितने अश्रुबिन्दु गिरते हैं, उतने हजार वर्षतक भूमिका हरण करनेवाला नरकमें कष्ट भोगता है। ब्राह्मणको भूमिदान देकर जो व्यक्ति पुनः उस भूमिका हरण करता है, उसे उल्टा लटका कर कुम्भीपाक नरकमें पकाया जाता है। दिव्य हजार वर्षके बाद वह व्यक्ति कुम्भीपाकसे निकलकर इस भूमिपर जन्म लेता है और सात जन्मतक अनेक प्रकारके कष्टोंको भोगता रहता है। इसलिये भूमिका हरण नहीं करना चाहिये। (अध्याय १६४)

सुवर्णरचित भूदानकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! भूमिका दान तो क्षत्रिय ही कर सकते हैं, क्योंकि क्षत्रिय ही भूमिका उपार्जन करनेमें, उसका दान करनेमें और उसके पालन करनेमें समर्थ होते हैं और लोगोंसे न तो भूमिका दान हो सकता है, न ही उसका पालन ही हो सकता है। अतः आप कोई ऐसा उपाय बताइये जो भूमिदानके समकक्ष हो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! यदि भूमिका दान सम्भव न हो तो सुवर्णके द्वारा भूमण्डलकी आकृति बनाकर और नदी-पर्वतोंको रेखाङ्कित कर उसे ही दान कर देना चाहिये। इससे सम्पूर्ण पृथ्वीके दानका फल प्राप्त हो जाता है। अब मैं इसकी विधि बता रहा हूँ।

सूर्य-चन्द्र-ग्रहण, जन्मनक्षत्र, विषुवयोग, युगादि तिथियों तथा अयनसंक्रान्ति आदि पुण्य समयोंमें पापक्षय और यशकी प्राप्तिके लिये इस दानको करना चाहिये। अन्य भी प्रशस्त समयोंमें जब धन एकत्र हो जाय, इस दानको किया जा सकता है। एक सौ पलसे लेकर कम-के-कम पाँच पलतक अर्थात् अपनी सामर्थ्यके अनुसार सुवर्णकी जम्बूद्वीपके आकारमें पृथ्वीकी प्रतिमा बनानी चाहिये। जिसके मध्यमें मेरु पर्वत तथा यथास्थान अन्य पर्वत अङ्कित हों। वह पृथ्वी सस्यसम्पन्न तथा लोकपालोंसे रक्षित, ब्रह्मा, शंकर आदि देवताओंसे सुशोभित तथा सभी रत्न आदि आभूषणोंसे अलंकृत हो। बाईस हाथ लंबा-चौड़ा तोरणयुक्त चार द्वारोंवाला एक सुन्दर मण्डप बनाकर उसमें चार हाथकी वेदी बनानी चाहिये। ईशानकोणमें वेदीपर देवताओंका स्थापन करे और अग्निकोणमें कुण्ड बनाये। पताका-तोरण आदिसे मण्डपको सजा ले। अनन्तर पञ्चलोकपाल और नवग्रहोंका षोडशोपचार पूजन करनेके बाद ब्राह्मणोंसे हवन कराना चाहिये। ब्राह्मणवर्ग वेदध्वनि करते हुए तथा मङ्गलघोषपूर्वक भेरी, शङ्ख इत्यादि वाद्योंकी ध्वनिके साथ

१-मध्यमस्य मनुष्यस्य व्यासेन परिसंख्यया। विंशद्दण्डोक्ष गोचर्म दत्वा स्वर्गे महीयते॥ (उत्तरपर्व १६४। २१)

उस सुवर्णमयी पृथ्वीकी प्रतिमाको मण्डपमें लाकर तिल बिछी हुई वेदीपर स्थापित करे। तत्पश्चात् उसके चारों ओर अठारह प्रकारके अन्नों, लवणादि रसों और जलसे भरे आठ माङ्गलिक कलशोंको स्थापित करना चाहिये। उसे रेशमी चँदोवा, विविध प्रकारके फल, मनोहर रेशमी वस्त्र और चन्दनद्वारा अलंकृत करना चाहिये। इस प्रकार अधिवासनपूर्वक पृथ्वीका सारा कार्य सम्पन्न कर स्वयं श्वेत वस्त्र और पुष्पमाला धारणकर, श्वेत वर्णके आभूषणोंसे विभूषित हो अञ्जलिमें पुष्प लेकर प्रदक्षिणा करे तथा पुण्यकाल आनेपर इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—

नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव भवनं यतः।
धात्री त्वमसि भूतानामतः पाहि वसुन्धरे॥
वसु धारयसे यस्मात् सर्वसौख्यप्रदायकम्।
वसुन्धरा ततो जाता तस्मात् पाहि भयादलम्॥
चतुर्मुखोऽपि नो गच्छेद्यस्मादन्तं तवाचले।
अनन्तायै नमस्तुभ्यं पाहि संसारकर्दमात्॥
त्वमेव लक्ष्मीर्गोविन्दे शिवे गौरीति संस्थिता।
गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा॥
बुद्धिर्बृहस्पतौ ख्याता मेधा मुनिषु संस्थिता।
विश्वं व्याप्य स्थिता यस्मात् ततो विश्वम्भरा मता॥
धृतिः क्षितिः क्षमा क्षोणी पृथिवी वसुधा मही।
एताभिर्मूर्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात्॥

(उत्तरपर्व १६५। २१—२६)

'वसुन्धरे! चूँकि तुम्हीं सभी देवताओं तथा सम्पूर्ण जीवनिकायकी भवनभूता तथा धात्री हो, अतः मेरी रक्षा करो। तुम्हें नमस्कार है। चूँकि तुम सभी प्रकारके सुख प्रदाता वसुओंको धारण करती हो, इसीसे तुम्हारा नाम वसुन्धरा है, तुम संसार-भयसे मेरी रक्षा करो। अचले! चूँकि ब्रह्मा भी तुम्हारे अन्तको नहीं प्राप्त कर सकते, इसलिये तुम अनन्ता हो, तुम्हें प्रणाम है। तुम इस संसाररूप कीचड़से मेरी रक्षा करो। तुम्हीं विष्णुमें लक्ष्मी, शिवमें गौरी, ब्रह्माके समीप गायत्री, चन्द्रमामें ज्योत्स्ना, रविमें प्रभा, बृहस्पतिमें बुद्धि और मुनियोंमें मेधा-रूपमें स्थित हो। चूँकि तुम समस्त विश्वमें व्याप्त हो, इसलिये विश्वम्भरा कही जाती हो। धृति, क्षिति, क्षमा, क्षोणी, पृथ्वी, वसुधा तथा मही—ये तुम्हारी मूर्तियाँ हैं। देवि! तुम अपनी इन मूर्तियोंद्वारा इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करो।'

इस प्रकार उच्चारणकर पृथ्वीकी मूर्ति ब्राह्मणोंको निवेदित कर दे। उस पृथ्वीका आधा अथवा चौथाई भाग गुरुको समर्पित करे। जो मनुष्य पुण्यकाल आनेपर सुवर्णनिर्मित कल्याणमयी पृथ्वीकी सुवर्णमूर्तिका इस विधिके साथ दान करता है, वह वैष्णव पदको प्राप्त होता है तथा क्षुद्र घंटिकाओं (घुँघरू) से सुशोभित एवं सूर्यके समान तेजस्वी विमानद्वारा वैकुण्ठमें जाकर तीन कल्पपर्यन्त निवास करता है और पुण्य क्षीण होनेपर इस संसारमें आकर वह धार्मिक चक्रवर्ती राजा होता है।

(अध्याय १६५)

हलपंक्तिदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! अब मैं सर्व-पापनाशक तथा सर्वसौख्यप्रद हलपंक्ति-दानकी विधि बतला रहा हूँ, जिससे सभी प्रकारके दानोंका फल प्राप्त हो जाता है। एक हलके लिये चार बैलोंकी आवश्यकता होती है और दस हलोंकी एक पंक्ति होती है। साखूकी लकड़ीसे दस हल बनवाकर उन्हें सुवर्ण-पट्ट और रत्नोंसे मढ़कर अलंकृत कर ले। वस्त्र, स्वर्ण, पुष्प तथा चन्दन आदिसे मण्डित तरुण, सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट, उत्तम वृष उन हलोंमें जोतने चाहिये। बैलोंके कंधोंपर जुआ भी रखे, साथमें कील लगा हुआ अंकुश आदि उपकरण भी रहने चाहिये। पर्वकालमें हलपंक्तिके साथ सस्यसम्पन्न बड़ा ग्राम, छोटा ग्राम अथवा सौ निवर्तन (सौ बीघा) अथवा पचास निवर्तन भूमि देनी चाहिये। इसका दान विशेषरूपसे कार्तिकी, वैशाखी, अयनसंक्रान्ति, जन्मनक्षत्र, ग्रहण, विषुवयोगमें करे। वेदवेत्ता, सदाचारी, सम्पूर्णाङ्ग, अलंकृत दस ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। दस हाथ प्रमाणवाला एक मण्डप बनाकर उसमें पूर्व दिशामें एक हाथ प्रमाणवाले दो अथवा एक कुण्ड बनवाये। निमन्त्रित ब्राह्मणोंसे पलाशकी समिधा, घी, काला तिल और खीरसे व्याहृतियों, पर्जन्यसूक्त, आदित्यसूक्त और रुद्रमन्त्रोंसे हवन कराये। तदनन्तर यजमान स्नान कर शुक्ल वस्त्र आदिसे अलंकृत हो सप्तधान्यके ऊपर

हलपंक्तिको स्थापित करे और उसमें बैलोंको जोते। उस समय विविध प्रकारके वाद्य-यन्त्रोंको बजाना चाहिये और ब्राह्मणवर्ग वेद-पाठ करें। यजमान दानके समय पुष्पाञ्जलि ग्रहण कर इन मन्त्रोंको पढ़े—

यस्माद् देवगणाः सर्वे हले तिष्ठन्ति सर्वदा।
वृषस्कन्धे संनिहितास्तस्माद्भक्तिः शिवेऽस्तु मे॥
यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धर्मे चास्तु दृढा सदा॥

(उत्तरपर्व १६६। १६-१७)

'चूँकि बैलके कंधेपर स्थित हलमें सभी देवगण सदा स्थित रहते हैं, अतः भगवान् शंकरमें मेरी भक्ति हो। अन्य समस्त दान भूमिदानकी सोलहवीं कलाके भी तुल्य नहीं हैं, अतः धर्ममें मेरी सुदृढ़ भक्ति हो।' इसके बाद भूमि और हल उन ब्राह्मणोंको दे दे। इस प्रकार जो व्यक्ति हलपंक्तिका दान करता है, वह अपने इक्कीस कुलोंसहित स्वर्ग जाता है। सात जन्मतक उस व्यक्तिको निर्धनता, दुर्भाग्य, व्याधि आदि दुःख नहीं भोगने पड़ते और वह पृथ्वीका अधिपति होता है। युधिष्ठिर! दान करते समय जो भक्तिपूर्वक इस दानकर्मका दर्शन करता है, वह भी जन्मभर किये गये पापोंसे मुक्त हो जाता है। इस दानको महाराज दिलीप, ययाति, शिबि, निमि, भरत आदि सभी श्रेष्ठ राजर्षियोंने किया, जिसके प्रभावसे वे राजा आज भी स्वर्गका सुख भोग रहे हैं। इसलिये भक्तिपूर्वक सभी स्त्री-पुरुषोंको यह दान करना चाहिये। यदि दस हलपंक्तिका दान करनेमें समर्थ न हो तो पाँच, चार अथवा एक ही हलका दान करे। हल-पंक्तिका दान करनेवाले हलसे जितनी मिट्टी उठती है और बैलोंके शरीरमें जितने भी रोम होते हैं, उतने ही हजार वर्षतक शिवलोकमें निवासकर अन्तमें पृथ्वीपर श्रेष्ठ राजा होते हैं। (अध्याय १६६)

आपाक-दानके प्रसंगमें राजा हव्यवाहनकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! कृपाकर आप ऐसा कोई दान बतायें, जिससे मनुष्य धन, पुत्र और सौभाग्यसे सम्पन्न हो सके।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैं इस सम्बन्धमें एक इतिहास कह रहा हूँ, आप श्रद्धापूर्वक सुनिये। किसी समय चन्द्रवंशमें हव्यवाहन नामका एक राजा हुआ था। उसके राज्यमें न कोई उपद्रव होता था और न कोई उसका शत्रु ही था। सभी नीरोग रहते थे। वह बड़ा प्रतापी, स्वस्थ, बली और शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेवाला था। परंतु पूर्वजन्मके अशुभ कर्मके प्रभावसे उसके पास कोई ऐसा मन्त्री नहीं था जो राज्यको सुचारुरूपसे चला सके तथा उसे कोई पुत्र, मित्र या सहायक बन्धु-बान्धव भी न था। उसे कभी समयसे भोजन आदि भी नहीं मिल पाता था। इस कारण वह राजा सदा चिन्तित रहता था।

एक बार उसके यहाँ पिप्पलाद मुनि पधारे। राजाकी पटरानी शुभावतीने मुनिकी श्रद्धापूर्वक पाद्य, अर्घ्य आदिसे पूजा की और आसनपर उन्हें बैठाकर निवेदन किया कि 'मुनीश्वर! यह निष्कण्टक राज्य तो हमें मिला है, परंतु मन्त्री, मित्र, पुत्र आदि हमें क्यों नहीं प्राप्त हुए। इसका कारण बतानेकी कृपा करें।' रानीका वचन सुनकर पिप्पलाद मुनिने कहा कि—'देवि! पूर्वजन्ममें किये गये कर्मोंके फल ही अगले जन्ममें प्राप्त होते हैं, यह कर्मभूमि है, अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। जिस पदार्थका पूर्वजन्ममें मनुष्यने सम्पादन नहीं किया है, उसे शत्रु, मित्र, बान्धव, राजा आदि कोई भी नहीं दे सकते। पूर्वजन्ममें तुमने राज्यका दान किया था, वह तुम्हें प्राप्त हो गया, परंतु तुमलोगोंने मित्र, भृत्य आदिसे कोई सम्बन्ध नहीं रखा, अतः इस जन्ममें ये सब कैसे प्राप्त होंगे?'

इसपर रानी शुभावती बोली—महाराज! पूर्वजन्ममें जो हुआ वह तो बीत गया, अब इस समय आप ऐसा कोई व्रत, दान, उपवास, मन्त्र अथवा सिद्धयोग बतानेकी कृपा करें, जिससे मुझे पुत्र, धन, मित्र, भृत्य इत्यादि प्राप्त हो सकें। रानीका वचन सुनकर पिप्पलाद मुनि बोले—'भद्रे! एक आपाक नामका महादान है, जो सभी सम्पत्तियोंका प्रदायक है। श्रद्धापूर्वक कोई भी आपाकका दान करता है तो उसे महान् लाभ होता है। इसलिये तुम श्रद्धासे आपाकदान करो।' मुनिके कथनानुसार रानी शुभावतीने आपाकदान किया। फलतः उसे पुत्र, मित्र, धन और भृत्य प्राप्त हो गये।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! अब मैं उस आपाक-दानकी विधि बता रहा हूँ, आप श्रद्धापूर्वक सुनें। बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि ग्रह और ताराबलका विचारकर शुभ मुहूर्तमें अगर, चन्दन, धूप, पुष्प, वस्त्र, आभूषण, नैवेद्य आदिसे भार्गव (कुम्हार) का ऐसा सम्मान करे, जिससे वह संतुष्ट हो और उससे निवेदन करे कि महाभाग! आप विश्वकर्मास्वरूप हैं। आप मेरे लिये सुन्दर छोटे-बड़े मिट्टीके घड़े, स्थाली, कसोरे, कलश आदि पात्रोंका निर्माण करें। भार्गव भी उन पात्रोंको बनाये। तदनन्तर विधिपूर्वक एक आँवाँ—भट्ठी लगाये। अनन्तर उन एक हजार मिट्टीके पात्रोंको आँवेंमें स्थापित कर सायंकालके समय उसमें अग्नि प्रज्वलित करे और रात्रिको जागरणकर वाद्य, गीत, नृत्य आदिकी व्यवस्थाकर उत्सव मनाये। सुप्रभात होते ही यजमान आँवेंकी अग्निको शान्तकर पात्रोंको बाहर निकाल ले। अनन्तर स्नानकर श्वेत वस्त्र पहनकर उनमेंसे सोलह पात्रोंको सामने स्थापित करे। रक्तवस्त्रसे उन्हें आच्छादितकर पुष्पमालाओंसे उसका अर्चन करे और ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन आदि कराकर भार्गवका भी पूजन करे। ये पात्र माणिक्य, सोने, चाँदी अथवा मिट्टीतकके हो सकते हैं। सौभाग्यवती स्त्रियोंकी पूजाकर भाण्डोंकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये और इन मन्त्रोंको पढ़ते हुए उन पात्रोंका दान करना चाहिये—

आपाक ब्रह्मरूपोऽसि भाण्डानीमानि जन्तवः।
प्रदानात् ते प्रजापुष्टिः स्वर्गश्चास्तु ममाक्षयः॥
भाण्डरूपाणि यान्यत्र कल्पितानि मया किल।
भूत्वा सत्पात्ररूपाणि उपतिष्ठन्तु तानि मे॥

(उत्तरपर्व १६७। ३२-३३)

'आपाक (आँवाँ)! आप ब्रह्मरूप हैं और ये सभी भाण्ड प्राणीरूप हैं। आपके दान करनेसे मुझे प्रजाओंसे पुष्टि प्राप्त हो, अक्षय स्वर्ग प्राप्त हो। मैंने जितने पात्र निर्माण कराये हैं, ये सभी सत्पात्रके रूपमें मेरे समक्ष प्रस्तुत रहें।'

जिसकी इच्छा जिस पात्रको लेनेकी हो उसे वह स्वयं ही ले ले, रोके नहीं। इस विधिसे जो पुरुष अथवा स्त्री इस आपाक-दानको करते हैं, उससे तीन जन्मतक विश्वकर्मा संतुष्ट रहते हैं और पुत्र, मित्र, भृत्य, घर आदि सभी पदार्थ मिल जाते हैं। जो स्त्री इस दानको भक्तिपूर्वक करती है,वह सौभाग्यशाली पतिके साथ पुत्र-पौत्रादि सभी पदार्थोंको प्राप्त कर लेती है और अन्तमें अपने पतिसहित स्वर्गको जाती है। नरेश्वर! यह आपाक-दान भूमिदानके समान ही है। (अध्याय १६७)

गृहदान-विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आप सभी शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं, अतः आप गृहदानकी विधि और महिमा बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! गार्हस्थ्यधर्मसे बढ़कर कोई धर्म नहीं और असत्यसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। ब्राह्मणसे बढ़कर कोई पूज्य नहीं और गृहदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। धन, धान्य, स्त्री, पुत्र, हाथी, घोड़ा, गौ, भृत्य आदिसे परिपूर्ण घर स्वर्गसे भी अधिक सुख देनेवाला है। जिस प्रकार सभी प्राणी माताके आश्रयसे जीवित रहते हैं, उसी प्रकार सभी आश्रम भी गृहस्थ-आश्रमपर ही आधृत हैं।अपने घर रात्रिको पैर फैलाकर सोनेमें जो सुख है, वह सुख स्वर्गमें भी नहीं। अपने घरमें शाकका भोजन करना भी उत्तम सुख है, इसलिये महाराज! सुन्दर घर बनवाकर ब्राह्मणको देना चाहिये। जो व्यक्ति शैव, वैष्णव, योगी, दीन, अनाथ, अभ्यागत आदिके लिये गृह, धर्मशाला बनाता है, उस व्यक्तिको सभी व्रत और सभी प्रकारके दान करनेका फल प्राप्त हो जाता है। पक्के ईंटसे सुदृढ़, ऊँचा, शुभ्रवर्ण, जाली, झरोखा, स्तम्भ, कपाट आदिसे युक्त, जलाशय और पुष्प-वाटिकासे भूषित, उत्तम आँगनसे सुशोभित सुन्दर घर बनाना चाहिये। गृह कछुएकी पीठके समान ऊँचा एवं बरामदोंसे सुसज्जित होना चाहिये। उसे कई मंजिलों तथा गलियों आदिसे समन्वित होना चाहिये। लोहा, सोना, चाँदी, ताँबा, लकड़ी, मृत्तिका आदिके पात्र, वस्त्र, चर्म, वल्कल, तृण, पाषाण, पात्र, रत्न, आभूषण, गाय, भैंस, घोड़ा, बैल, सभी प्रकारके धान्य, घी, तेल, गुड़, तिल, चावल, ईख, मूँग, गेहूँ, सरसों, मटर, अरहर, चना, उड़द, नमक, खजूर, द्राक्षा, जीरा, धनिया, चूल्हा, चक्की, छलनी, ऊखल, मूसल, सूप, हाँड़ी, मथानी, झाड़ू तथा जलकुम्भ आदि ये सब गृहस्थके

उपकरण हैं, इनको घरमें स्थापित करनेके बाद शुभ मुहूर्तमें कुलीन एवं शीलसम्पन्न, वेदशास्त्रके जाननेवाले, गृहस्थधर्मका पालन करनेवाले, जितेन्द्रिय सपत्नीक ब्राह्मणोंको बुलाकर वस्त्र, गन्ध, आभूषण, पुष्पमाला आदिसे उनका पूजन कर शान्तिकर्मके लिये उनको नियुक्त करना चाहिये। घरके आँगनमें एक मेखलासहित कुण्डका निर्माण करवाना चाहिये। ब्राह्मणोंद्वारा तुष्टि-पुष्टि प्रदान करनेवाला ग्रहयाग करे। ब्राह्मण रक्षोघ्नसूक्त पढ़नेके बाद वास्तु-पूजाकर सभी दिशाओंमें भूतबलि दे। इसके बाद यजमान पुण्य पवित्र घोषके साथ ब्राह्मणोंको दानके निमित्त बनाये गये उन घरोंमें प्रवेश कराये और वहाँ शय्याओंपर उन सपत्नीक ब्राह्मणोंको बिठलाये। जिस घरको पूर्वमें ही जिस ब्राह्मणके लिये नियत किया गया है उसे **'इदं गृहं गृहाण'** 'इस गृहको ग्रहण करें' ऐसा कहकर प्रदान करे। ब्राह्मण **'स्वस्ति'** कहें और **'कोऽदात्'** (यजु० ७।४८) इस मन्त्रका पाठ करें। यदि सामर्थ्य हो तो एक-एक घर ब्राह्मणोंको दे अथवा एक ही घर बनवाकर एक सत्पात्र ब्राह्मणको देना चाहिये। राजन्! शीत, वायु और धूपसे रक्षा करनेवाली तृणमयी कुटी ब्राह्मणोंको देनेपर भी जब सभी कामनाओंकी पूर्ति हो जाती है और स्वर्ग प्राप्त होता है तो फिर उत्तम घर दान देनेके फलका वर्णन कहाँतक किया जा सकता है! गाय, भूमि, सुवर्ण आदिके दान और अनेक प्रकारके यम-नियमोंका पालन गृहदानके सोलहवें भागकी भी बराबरी नहीं कर सकते। जो व्यक्ति सभी सामग्रियोंसहित सुदृढ़ और सुन्दर घर ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १६८)

अन्नदानकी महिमाके प्रसंगमें राजा श्वेत और एक वैश्यकी कथा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! किसी समय मुनियोंने अन्नदानका जो माहात्म्य कहा था, उसे मैं कह रहा हूँ, आप एकाग्रचित्त होकर सुनें। अनघ! आप अन्नदान करें, जिससे तत्काल संतुष्टि प्राप्त होती है। वनमें श्रीरामचन्द्रजीने दुःखी होकर लक्ष्मणसे कहा था—'लक्ष्मण! सम्पूर्ण पृथ्वी अन्नसे परिपूर्ण है, फिर भी हमलोगोंको अन्न नहीं मिल रहा है, इससे यही जान पड़ता है कि हमलोगोंने पूर्वजन्मोंमें ब्राह्मणोंको कभी अन्नका भोजन नहीं कराया[1]।' मनुष्य जिस कर्मरूपी बीजको बोता है, जैसा कर्म करता है, वह उसीका फल पाता है। संसारमें यह ठीक ही कहा जाता है कि बिना दिये कुछ नहीं मिलता। भोजन-योग्य जिस अन्नका दान किया जाता है, वह अन्न दान परम श्रेयस्कर है। भारत! भोज्य पदार्थोंमें बहुतसे पदार्थ हैं, किंतु अन्नका दान सब दानोंसे श्रेष्ठ दान है। सत्यसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं, संतोषसे बड़ा कोई सुख नहीं और अन्नदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। स्नान, अनुलेपन और वस्त्रालंकारोंसे मनुष्योंको वैसी तृप्ति नहीं होती, जैसी भोजनसे होती है। इस विषयमें एक इतिहास है—

राजन्! बहुत पहले एक श्वेत नामके चक्रवर्ती राजा हुए हैं, उन्होंने अनेक यज्ञ किये और अनेक युद्धोंमें विजय प्राप्त की। अनेक प्रकारका दान दिये और धर्मपूर्वक राज्यपर शासन किया। राजाने अनेक प्रकारके उत्तम भोग भोगकर अन्तमें राज्यका परित्याग कर वनमें जाकर तपस्या की। अन्तमें वे दिव्य विमानमें आरूढ़ होकर स्वर्ग गये। वहाँ विद्याधर, किंनर आदिके साथ विहार करने लगे। अप्सराएँ उनकी सेवामें रहती थीं। गन्धर्व उन्हें गीत सुनाकर रिझाते, इन्द्र भी उनका बड़ा सम्मान करते थे। राजाको दिव्य वस्त्र, आभूषण, पुष्पमाला आदि पहननेको तो मिलता था, परंतु भोजनके समय विमानमें बैठकर भूलोकमें आकर अपने पूर्व-शरीरके मांसको प्रतिदिन खाना पड़ता था। प्रतिदिन मांसका भोजन करनेके बाद भी पूर्वजन्मके कर्मके कारण उस पूर्वशरीरका मांस घटता नहीं था। इस प्रकार प्रतिदिन मांस-भक्षणसे व्याकुल होकर राजाने ब्रह्माजीसे कहा—'ब्रह्मन्! आपके अनुग्रहसे मुझे स्वर्गका सुख प्राप्त हुआ है, सभी देवता मेरा आदर करते हैं। सभी सामग्री उपभोगके लिये प्राप्त होती रहती है, परंतु सभी भोगोंके रहते हुए भी यह पापिनी क्षुधा कभी शान्त नहीं होती, मुझे सदा सताती रहती है। इसी कारण मुझे अपने पूर्व-शरीरके मांसको प्रतिदिन खानेके लिये भूलोकमें जाना पड़ता है और इसमें मुझे बड़ी घृणा होती है। मैंने कौन-सा ऐसा पाप किया

१-पृथिव्यामन्नपूर्णायां वयमन्नस्य काङ्क्षिणः। सौमित्रे नूनमस्माभिर्न ब्राह्मणमुखे हुतम्॥ (उत्तरपर्व १६९।४)

है, जिससे मुझे उत्तम भोजन नहीं मिलता। आप कृपाकर ऐसा कोई उपाय बतायें जिससे मेरा यह दुःख दूर हो जाय।

ब्रह्माजी बोले—राजन्! आपने अनेक प्रकारके दान दिये हैं, बहुत-से यज्ञ किये हैं और गुरुजनोंको भी संतुष्ट किया है, परंतु ब्राह्मणोंको स्वादिष्ट उत्तम व्यञ्जनोंका भोजन नहीं कराया। अन्नदान न करनेसे ही आज आपकी यह दशा हो रही है। अन्नसे बढ़कर कोई संजीवनी नहीं। अन्नको ही अमृत जानना चाहिये। इसलिये अब आप पृथ्वीपर जाकर वेदशास्त्र जाननेवाले कुलीन ब्राह्मणोंको भोजन करायें। उससे आपका यह दुःख दूर हो जायगा।

ब्रह्माजीका वचन सुनकर राजा श्वेतने पृथ्वीपर आकर महर्षि अगस्त्यजीको परमभक्तिसे भोजन कराया और अपने गलेकी दिव्य एकावली (माला[1]) को दक्षिणाके रूपमें समर्पित किया। अगस्त्यजीको भोजन कराते ही राजा श्वेत संतुष्ट हो गये और सभी देवता वहाँ आकर अतीव आदरपूर्वक राजाको विमानमें बैठाकर स्वर्गलोक चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने जब रावणका वध कर दिया, तब वह एकावली अगस्त्यजीने श्रीरामचन्द्रजीको दे दी। यह अन्नदानका ही माहात्म्य है।

मेरा वचन सत्य है कि प्राणियोंके लिये अन्नसे बढ़कर कोई उत्तम पदार्थ नहीं है। अन्न जीवोंका प्राण है। अन्न ही तेज, बल और सुख है। इसलिये अन्नदाता प्राणदाता है। भूखा व्यक्ति जिस दूसरे व्यक्तिके घर आशा करके जाता है और वहाँसे संतुष्ट होकर आता है तो भोजन देनेवाला व्यक्ति धन्य हो जाता है, उसके समान पुण्यकर्मा और कौन होगा? दीक्षा-प्राप्त स्नातक, कपिला गौ, याज्ञिक, राजा, भिक्षु तथा महोदधि—ये सब दर्शनमात्रसे पवित्र कर देते हैं। इसलिये घरपर आये भूखे व्यक्तिको जो भोजन न दे सके उसका गृहस्थाश्रम व्यर्थ है। अन्नके बिना कोई अधिक समयतक जीवित नहीं रह सकता। मनुष्योंका दुष्कृत अर्थात् किया हुआ दूषित कर्म अन्नमें प्रविष्ट हो जाता है, इसलिये जो ऐसे व्यक्तिका अन्न खाता है, वह अन्न देनेवालेके दुष्कृतका ही भक्षण करता है। इसके विपरीत अमृतमय पवित्र परान्नका भोजन करनेवाले व्यक्तिका एक महीनेका किया हुआ पुण्य अन्नदाताको प्राप्त हो जाता है। जिस अन्नके दानका इतना महत्व है, उसका दान क्यों नहीं करते? (अर्थात् थोड़ा-बहुत अवश्य करो, करना चाहिये।) जो व्यक्ति ब्राह्मण-अतिथि आदिको भोजन आदि कराने तथा भिक्षा देनेके पूर्व ही स्वयं भोजन कर लेता है, वह केवल पाप ही भक्षण करता है। जिस व्यक्तिने दस हजार या एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराया है, उसने मानो ब्रह्मलोकमें अपना स्थान बना लिया।

प्राचीन कालमें वाराणसीमें देवता और ब्राह्मणोंका पूजक धनेश्वर नामका एक वैश्य रहता था। उसकी दुकानमें एक स्थानपर एक सर्पिणीने अंडा दिया और वह उस अंडेको छोड़कर कहीं अन्यत्र चली गयी। वैश्यने अंडेको देखा और उसपर दयाकर उसकी रक्षा करने लगा। कुछ समय बाद अंडेको फोड़कर कृष्ण सर्पका बच्चा बाहर निकला। उस सर्पके बच्चेको वैश्य प्रतिदिन दूध पिलाता था। वह सर्प भी वैश्यके पैरोंपर लोटता, उसके अङ्गोंको चाटता और पूरे घरमें निर्भय हो घूमता रहता। वैश्य भी भलीभाँति सर्पकी रक्षा करता। थोड़े ही समयमें वह भयंकर सर्प हो गया। किसी समयकी बात है, वह धनेश्वर गङ्गा-स्नान करनेके लिये गया था और उसका पुत्र दुकानपर बैठकर सामान बेच रहा था। उसी समय वह सर्प उस लड़केके पैरोंके बीचसे निकला, जिससे वह लड़का डर गया और उसने सर्पको डंडेसे मारा। चोट लगते ही सर्प उछलकर वैश्यपुत्रके सिरपर बैठ गया और क्रोधित होकर कहने लगा—'मूर्ख! मैं तुम्हारे पिताकी शरणमें हूँ और तुम्हारे पिताने ही मेरा पालन-पोषण किया है, इसलिये मैं तुम्हारा भी भला ही चाहता था, परंतु तुमने मुझे अकारण ही प्रताड़ित किया है, इसलिये अब मैं तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूँगा।' सर्पके इस प्रकार कहनेके साथ ही वैश्यके घरमें दुःखी हो सब रोने लगे।

उसी समय अच्युत, गोविन्द, अनन्त आदि भगवान्‌के पवित्र नामोंका उच्चारण करता हुआ स्नान कर वह धनेश्वर भी घर आ गया। पुत्रकी वैसी स्थिति देखकर उसने सर्पसे कहा—'पन्नग! तुम मेरे पुत्रके मस्तकपर फण फैलाये क्यों बैठे हो? यह ठीक ही कहा गया है कि मूर्ख मित्र और हीन

१-महाराज श्वेतकी कथा कई स्थानोंपर है, किंतु वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्डके ७७ तथा ७८ सर्गोंमें बड़ी रम्य शैली और मधुर पदावलियोंमें वर्णित हुई है। वहाँ एकावली मालाकी जगह केयूर आदि दिव्य आभूषणकी बात निर्दिष्ट है।

जातिमें उत्पन्न प्राणीके साथ सम्बन्ध करना अपने हाथसे जलता हुआ अंगारा उठाना है[1]।' वणिक्‌की बात सुनकर साँपने कहा—'धनेश्वर ! तुम्हारे पुत्रने मुझे निरपराध ही मारा है, इसलिये तुम्हारे सामने ही मैं इसका प्राण ले रहा हूँ, जिससे अन्य कोई भी व्यक्ति ऐसा काम न करे।' यह सुनकर धनेश्वरने कहा—'सर्प ! जो उपकार, भक्ति तथा स्नेह आदिको भूलकर अपने रास्तेसे भटक जाय अर्थात् अपने कर्तव्यमार्गको छोड़ दे, उसे कौन रोक सकता है, परंतु क्षणमात्र तुम इस बालकको छोड़ दो, दंश न करो, जिससे मैं ब्राह्मणोंको भोजन कराकर अपना और्ध्वदैहिक कर्म अपने हाथसे कर सकूँ, क्योंकि बादमें मेरे पास कोई पुत्र नहीं रहेगा।' सर्पने इस बातको स्वीकार कर लिया।

तदनन्तर वैश्यने वेदवेत्ता और जितेन्द्रिय एक हजार ब्राह्मणों तथा संन्यासियों आदिको घी, पायससहित मधुर स्वादिष्ट भोजन कराया। भोजनसे संतुष्ट हो ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर कहा—

वणिक्पुत्र चिरं जीव नश्यन्तु तव शत्रवः।
अभीष्टफलसंसिद्धिरस्तु ते ब्राह्मणाज्ञया॥

(उत्तरपर्व १६९।६३)

'वणिक्पुत्र ! ब्राह्मणोंकी आज्ञासे तुम चिरंजीवी होओ, तुम्हारे सभी शत्रु नष्ट हो जायँ और तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जाय।'

ऐसा कहकर ब्राह्मणोंने अक्षत और पुष्प वैश्यपुत्रके मस्तकपर छोड़े। ब्राह्मणोंके वाग्वज्रसे ताड़ित होकर वह सर्प मस्तकसे गिरा और मर गया। सर्पको मरा हुआ देखकर धनेश्वरको बड़ा दुःख हुआ और वह सोचने लगा कि मैंने इस सर्पको पुत्रकी भाँति पाला था और आज यह मेरे ही दोषसे मर गया। यह बड़ा ही अनुचित हुआ। उपकार करनेवालेमें जो साधुता रखता है, उसकी साधुतामें कौन-सी विशेषता रहती है ? अर्थात् वह प्रशंसाके योग्य नहीं है, किंतु जो अपकारियोंमें साधुता रखता है, उसकी साधुता ही सराहनीय है[2]।

इस प्रकार अनेक प्रकारसे पश्चात्ताप करते हुए दुःखी होकर वैश्यने न तो उस दिन भोजन किया, न ही रात्रिमें सो सका। प्रातःकाल होते ही गङ्गामें स्नान कर देवता-पितरोंका पूजन-तर्पण आदिकर घर आया और पुनः एक हजार ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके उत्तम व्यञ्जनोंका भोजन कराकर संतुष्ट किया। इसपर ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर कहा—'धनेश्वर ! हमलोग तुमसे बहुत ही संतुष्ट हैं, इसलिये तुम वर माँगो।' यह सुनकर उसने वर माँगा कि 'यह मृत सर्प पुनः जीवित हो जाय।' वैश्यके यह कहनेपर ब्राह्मणोंने अभिमन्त्रित जल सर्पके ऊपर छिड़का। जलके छींटे पड़ते ही वह सर्प जीवित हो गया। यह देखकर धनेश्वर बड़ा ही प्रसन्न हुआ और नगरके लोग धनेश्वरकी प्रशंसा करने लगे।

महाराज ! यह सहस्र-ब्राह्मण-भोजन (अन्नदान) का संक्षेपसे मैंने माहात्म्य वर्णन किया। जो व्यक्ति ब्राह्मणोंको और अभ्यागतोंको अन्न देता है, वह बहुत दिनतक संसार-सुखको भोगकर विष्णुलोकको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय १६९)

स्थालीदानकी महिमामें द्रौपदीके पूर्वजन्मकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! आपके द्वारा अन्नदानके माहात्म्यको सुनकर मुझे भी एक बात स्मरण आ रही है। जिसे मैंने अपनी आँखोंसे देखा है, उसे मैं आपको सुनाता हूँ। जिस समय दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदिने द्यूतक्रीडामें छलसे हमारे राज्यको छीन लिया और हमलोग द्रौपदीके साथ वल्कल वस्त्र तथा मृग-चर्म धारण कर वनको जा रहे थे, उस समय नगरके लोग और सदाचारी ब्राह्मण स्नेहसे हमारे साथ चलने लगे। उन्हें देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं यह सोचने लगा कि जो व्यक्ति ब्राह्मण, मित्र, भृत्य आदिका पोषण करता है, उसीका जीवन सफल है। अपना पेट तो मनुष्य, जीव, जन्तु, पशु, पक्षी सभी भर लेते हैं। अभ्यागत, सुहृद्वर्ग और कुटुम्बको छोड़कर जो व्यक्ति

१-मूर्खे मित्रे सम्बन्धं हीनजातिजने हि यः। यः करोत्यबुधोऽङ्गारान् स स्वहस्तेन कर्षति॥ (उत्तरपर्व १६९।५६)

२-उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः। अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरिष्यते॥ (उत्तरपर्व १६९।६७)

केवल अपना ही पेट भरता है, वह जीवित होते हुए भी मरे हुएके समान है। यही सोचकर मैंने उन ब्राह्मणोंसे कहा कि आपलोग त्रिकालज्ञ और ज्ञान-विज्ञानमें पारंगत हैं और मेरे स्नेहके वशीभूत होकर ही आये हैं। अब कोई ऐसा उपाय बतानेकी कृपा कीजिये जिससे कि भाई, बन्धु, मित्र, भृत्यसहित आपलोगोंके लिये भी भोजन आदिका प्रबन्ध हो सके, क्योंकि इस निर्जन वनमें हमें बारह वर्ष बिताना है। मेरे इस प्रकारके वचनको सुनकर मैत्रेय मुनिने मुझसे कहा कि कौन्तेय! एक प्राचीन वृत्तान्त मैंने दिव्य दृष्टिसे देखा है, जिसे मैं कह रहा हूँ, आप ध्यानसे सुनें।

किसी समय एक तपोवनमें कोई दुर्भगा, दरिद्रा, ब्रह्मचारिणी ब्राह्मणी निवास कर रही थी। वह इस दशामें भी प्रतिदिन ब्राह्मणोंका पूजन किया करती। उसकी शम-दमसे परिपूर्ण श्रद्धाको देखकर एक दिन ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर उससे कहा—'सुव्रते! हमलोग तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, तुम कोई वर माँगो।' तब ब्राह्मणीने कहा—'महाराज! किसी व्रत अथवा दानकी ऐसी विधि बतानेकी कृपा कीजिये, जिसके करनेसे मैं पतिकी प्रिय, पुत्रवती, सौभाग्यवती, धनाढ्य तथा लोकमें प्रशंसाके योग्य हो जाऊँ।'

ब्राह्मणीका यह वचन सुनकर वसिष्ठजीने कहा कि ब्राह्मणि! मैं तुम्हें सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले स्थालीदानकी विधि बता रहा हूँ। पाँच सौ पल, दो सौ पचास पल अथवा एक सौ पचीस पल ताँबेका पात्र बनाये अथवा सामर्थ्य न हो तो मिट्टीकी उत्तम हाँड़ी बना ले। वह गहरी और सुदृढ़ हो। उसे मूँग तथा चावलसे बने पदार्थसे भरकर चन्दनसे चर्चित कर एक मण्डलके मध्यमें स्थापित कर ले तथा उसके समीप सब प्रकार शाक, जलपात्र, घीका पात्र रखे और पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र आदिसे उसका पूजन करे और इस प्रकार उस पात्रकी प्रार्थना करे—

ज्वलज्ज्वलनपार्श्वस्थैस्तण्डुलैः सजलैरपि।
न भवेद्भोज्यसंसिद्धिर्भूतानां पिठरीं विना॥
त्वं सिद्धिः सिद्धिकामानां त्वं पुष्टिः पुष्टिमिच्छताम्।
अतस्त्वां प्रणमाम्याशु सत्यं कुरु वचो मम॥
ज्ञातिबन्धुसुहृद्वर्गे विप्रे प्रेष्यजने तथा।
अभुक्तवति नाश्नीयात् तथा भव वरप्रदा॥

(उत्तरपर्व १७०। २२—२४)

इसका भाव यह है कि समीप ही प्रज्वलित अग्नि हो, चावल हो तथा जल भी हो, किंतु यदि स्थाली (बटलोई) न हो तो भोजन नहीं पकाया जा सकता। स्थाली! तुम सिद्धि चाहनेवालोंके लिये सिद्धि तथा पुष्टि चाहनेवालोंके लिये पुष्टि-स्वरूप हो। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। मेरी बातको सत्य करो। मेरे ज्ञातिवर्ग, सुहृद्वर्ग, बन्धुवर्ग तथा भृत्यवर्ग आदि जबतक भोजन न कर लें, तबतक तुममें-से भोजन घटे नहीं—ऐसा वर प्रदान करो।

यह मन्त्र पढ़कर वह पात्र द्विजश्रेष्ठको दान कर दे। यह दान रविवार, संक्रान्ति, चतुर्दशी, अष्टमी, एकादशी अथवा तृतीयाको करना चाहिये। वसिष्ठजीका यह उपदेश मानकर वह ब्राह्मणी नित्य ब्राह्मणोंको दक्षिणासहित स्थालीपात्र देने लगी। पार्थ! उसी पुण्यके प्रभावसे जन्मान्तरमें वही ब्राह्मणी द्रौपदी-रूपमें तुम्हारी भार्या हुई है और दान देनेमें द्रौपदीका हाथ कभी शून्य नहीं रहेगा; क्योंकि यह द्रौपदी, सती, शची, स्वाहा, सावित्री, भू, अरुन्धती तथा लक्ष्मीके रूपमें जहाँ रह रही हो, वहाँ फिर कौन-सा पदार्थ दुर्लभ हो सकता है। इतना कहकर मैत्रेय मुनिने कहा कि महाराज युधिष्ठिर! यह द्रौपदी अपनी स्थालीसे अन्न दे तो सम्पूर्ण जगत्को तृप्त कर सकती है, फिर इन थोड़ेसे ब्राह्मणोंके भोजन आदिके विषयमें आप क्यों चिन्तित होते हैं?

मैत्रेयजीका ऐसा वचन सुनकर भगवन्! हमलोगोंने भी वैसा ही किया और सभी परिजनोंके साथ ब्राह्मणोंको नित्य भोजन कराने लगे। प्रभो! अन्नदानके प्रसंगसे यह स्थालीदानकी विधि मैंने कही, इसलिये आप मेरी धृष्टताको क्षमा करें। जो व्यक्ति सुन्दर ताम्रकी स्थाली बनाकर चावलोंसे उसे भरकर पर्व-दिनमें इस विधिसे ब्राह्मणको देता है, उसके घर सुहृद्, सम्बन्धी, बान्धव, मित्र, भृत्य और अतिथि नित्य भोजन करें तो भी भोजनकी कमी नहीं होती।

(अध्याय १७०)

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेससे प्रकाशित कल्याणके पुनर्मुद्रित पुराण-साहित्य

महाभारत-सटीक, सचित्र, सजिल्द, छः खण्डोंमें सेट [कोड नं० 728]—धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके महान् उपदेशों एवं प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओंके उल्लेखसहित इसमें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग, नीति, सदाचार, अध्यात्म, राजनीति, कूटनीति आदि मानव-जीवनके उपयोगी विषयोंका विशद वर्णन है। यह ग्रन्थ **संक्षिप्त महाभारत** (केवल भाषा) (कोड नं० 39, 511), सचित्र, सजिल्द सेटके रूपमें (दो खण्डोंमें) भी उपलब्ध है।

संक्षिप्त पद्मपुराण सचित्र, सजिल्द [कोड नं० 44]—इसमें भगवान् विष्णुके माहात्म्यके साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों एवं उनके परात्पररूपोंके विशद वर्णन, एकादशी माहात्म्य, शालग्रामका स्वरूप और उनकी महिमा, तुलसीवृक्षकी महिमा, भगवन्नाम-कीर्तन आदिकी विस्तृत चर्चा है।

संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क सचित्र, सजिल्द [कोड नं० 279]—इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती-चरित्र, शिव पार्वती-विवाह, कुमार कार्तिकेयके जन्मकी कथा तथा तारकासुर-वध आदिका वर्णन है। इसके अतिरिक्त अनेक आख्यान एवं बहुत-से रोचक, ज्ञानप्रद प्रसंग और आदर्श-चरित्रोंका भी विस्तृत वर्णन हैं।

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत सचित्र, सजिल्द [कोड नं० 1133]—इसमें पराशक्ति भगवतीके स्वरूप-तत्त्व-महिमा आदिके तात्त्विक विवेचनसहित भगवतीकी मनोरम लीला-कथाओंका सरस एवं कल्याणकारी वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें देवी-माहात्म्य, देवी-आराधनाकी विधि एवं उपासनापर भी विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

संक्षिप्त शिवपुराण सचित्र, सजिल्द [कोड नं० 789]—सुप्रसिद्ध शिवपुराणका यह संक्षिप्त अनुवाद—परात्पर परमेश्वर शिवके कल्याणमय स्वरूप-विवेचन, तत्त्व-रहस्य, महिमा, लीला आदिके रोचक वर्णनसे युक्त है।

संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क सचित्र, सजिल्द [कोड नं० 631]—इसमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्नस्वरूपा प्रकृति-श्रीराधाकी, सर्वप्रधानताके साथ श्रीकृष्णकी गोलोक-लीला तथा अवतार-लीलाका विशद वर्णन है।

श्रीमद्भागवत सचित्र, सजिल्द दो खण्डोंमें सेट [कोड नं० 26, 27]—इस महापुराणमें साधन-भक्ति, सिद्धा-भक्ति, मर्यादा-मार्ग, पुष्टि-मार्ग, अनुग्रहमार्ग आदिका सुन्दर समन्वय है। इस ग्रन्थका **मूल-अंग्रेजी अनुवाद** दो खण्डोंमें (कोड नं० 56, 57), **भागवत सुधासागर** (कोड नं० 28), **शुक-सुधा-सागर** (कोड नं० 252) सम्पूर्ण भाषानुवाद, **मूल-मोटा टाइप** (ग्रन्थाकार) तथा **मूल-मझला** संस्करण भी उपलब्ध है।

महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण सचित्र, सजिल्द [कोड नं० 38]—इस ग्रन्थमें भगवान् श्रीकृष्णकी अगणित रसमयी कथाओंके साथ संतानगोपाल-मन्त्र, अनुष्ठान-विधि तथा अनेक शिक्षाप्रद कथाओंका अनुपम संग्रह है।

सं० ब्रह्मपुराण सचित्र, सजिल्द [कोड नं० 1111]—इसमें सृष्टिकी उत्पत्ति, पृथुका पावन चरित्र, सूर्य एवं चन्द्रवंशका वर्णन, श्रीकृष्णचरित्र, कल्पान्तजीवी मार्कण्डेय मुनिका चरित्र तथा तीर्थोंके वर्णनमें अनेक आख्यानोंका अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है। ब्रह्माका विस्तृत विवेचन होनेके कारण यह ब्रह्मपुराण कहा जाता है।

सं० मार्कण्डेयपुराण सचित्र, सजिल्द [कोड नं० 539]—इस पुराणमें दुर्गासप्तशतीकी कथा एवं चण्डी देवीका माहात्म्य, हरिश्चन्द्रकी कथा, मदालसा-चरित्र, अत्रि-अनुसूयाकी कथा, धर्मका स्वरूप, दत्तात्रेय-चरित्र आदि अनेक उपाख्यानोंका विस्तृत वर्णन है।

सं० नारदपुराण सचित्र, सजिल्द [कोड नं० 1183]—इसमें सदाचार-महिमा, वर्णाश्रम-धर्म, भक्ति तथा भक्तके लक्षण, विविध प्रकारके मन्त्र, देवपूजन, तीर्थ-माहात्म्य, दान-धर्मके साथ अनेक भक्तिपरक आख्यानोंका बड़ा ही सरस वर्णन किया गया है। इसमें पुराणके पाँचों लक्षणोंका सम्यक् रूपसे परिपाक हुआ है।

श्रीविष्णुपुराण सचित्र, सजिल्द (हिन्दी-अनुवाद) मोटा टाइप [कोड नं० 1364]—यह वैष्णव-भक्तिका मूलाधार है। इसमें सृष्टिवर्णनके साथ, मन्वन्तर, वेदकी शाखाओंका विवेचन, श्राद्ध-निरूपण, सूर्य-चन्द्रवंशके राजाओंके उपाख्यान, कलिधर्म-निरूपण, प्रलय-वर्णन तथा भगवान् वासुदेवके चरित्रका वर्णन तथा भक्ति, ज्ञान एवं उपासनाके साथ अनेक आख्यानोंका सुन्दर विवेचन किया गया है।

श्रीविष्णुपुराण-सानुवाद, सचित्र, सजिल्द (कोड नं० 48) प्रकाशनमें पहलेसे ही उपलब्ध है।

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित 'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

क्रमांक	विशेषाङ्क	कल्याणवर्ष
1184	श्रीकृष्णाङ्क	(कल्याणवर्ष ६)
749	ईश्वराङ्क	(" " ७)
635	शिवाङ्क	(" " ८)
41	शक्ति-अङ्क	(" " ९)
616	योगाङ्क	(" " १०)
627	संत-अङ्क	(" " १२)
604	साधनाङ्क	(" " १५)
1104	भगवताङ्क	(" " १६)
39 / 511	सं० महाभारत (दो खण्डोंमें)	(" " १७)
1002	सं० वाल्मीकिरामायणाङ्क	(" " १८)
44	सं० पद्मपुराण	(" " १९)
539	सं० मारकण्डेयपुराण	(" " २१)
1111	सं० ब्रह्मपुराण	(" " २१)
43	नारी-अङ्क	(" " २२)
659	उपनिषद्-अङ्क	(" " २३)
518	हिन्दू-संस्कृति-अङ्क	(" " २४)
279	सं० स्कन्दपुराणाङ्क	(" " २५)
40	भक्तचरिताङ्क	(" " २६)
573	बालक-अङ्क	(" " २७)
1183	सं० नारदपुराण	(" " २८)
48	श्री श्रीविष्णुपुराण (हिन्दी-अनुवादसहित)	(" " २८)
667	संतवाणी-अङ्क	(" " २९)
587	सत्कथा-अङ्क	(" " ३०)
636	तीर्थाङ्क	(" " ३१)
660	भक्ति-अङ्क	(" " ३२)
1133	सं० श्रीमद्देवीभागवत (केवल हिन्दी)	(" " ३४)
574	सं० योगवसिष्ठ-अङ्क	(" " ३५)
789	सं० शिवपुराण	(" " ३६)
631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क	(कल्याणवर्ष ३७)
1135	भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क	(" " ३९)
572	परलोक और पुनर्जन्माङ्क	(" " ४३)
517	श्रीगर्गसंहिता-अङ्क	(" " ४४)
1113	नरसिंहपुराणम्	(" " ४५)
657	श्रीगणेश-अङ्क	(" " ४८)
42	श्रीहनुमान-अङ्क	(" " ४९)
791	सूर्याङ्क	(" " ५३)
584	सं० भविष्यपुराणाङ्क	(" " ६६)
586	शिवोपासनाङ्क	(" " ६७)
628	श्रीरामभक्ति-अङ्क	(" " ६८)
653	गोसेवा-अङ्क	(" " ६९)
448	भगवल्लीला-अङ्क	(" " ७२)
1044	वेदकथाङ्क	(" " ७३)
1189	सं० गरुडपुराणाङ्क	(" " ७४)

उपनिषद्

उपनिषद्	विवरण
ईशादि नौ उपनिषद्	अन्वय, हिंदी-व्याख्यासहित
बृहदारण्यकोपनिषद्	सानुवाद, शांकरभाष्यसहित
छान्दोग्योपनिषद्	सानुवाद, शांकरभाष्यसहित
ईशावास्योपनिषद्	सानुवाद, शांकरभाष्यसहित
केनोपनिषद्	सानुवाद, शांकरभाष्यसहित
कठोपनिषद्	सानुवाद, शांकरभाष्यसहित
माण्डूक्योपनिषद्	सानुवाद, शांकरभाष्यसहित
मुण्डकोपनिषद्	सानुवाद, शांकरभाष्यसहित
प्रश्नोपनिषद्	सानुवाद, शांकरभाष्यसहित
तैत्तिरीयोपनिषद्	सानुवाद, शांकरभाष्यसहित
ऐतरेयोपनिषद्	सानुवाद, शांकरभाष्यसहित
श्वेताश्वतरोपनिषद्	सानुवाद, शांकरभाष्यसहित